श्रीबाणभट्टात्मजश्रीभूषणभट्टप्रणीता

कादम्बरी

(उत्तरार्द्ध)

संस्कृत व्याख्या, टिप्पणी हिन्दी अनुवाद, एवं भूमिका सहित

आचार्य मोहनदेव पन्त

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास

कादम्बरी

उत्तरभागः

महाकविश्रीबाणभट्टात्मजश्रीभूषणभट्टविरचितः

संस्कृतटीका-टिप्पणी-भूमिका-हिन्दीभाषानुवादोपेतश्च

टीकाटिप्पणीकारो हिन्दीभाषानुवादकश्च

श्री मोहनदेवपन्तः

अम्बालास्कन्धावारस्थ-दीवान कृष्णकिशोर-
सनातनधर्म-संस्कृत-महाविद्यालयस्य
सेवानिवृत्तप्रधानाचार्यः

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली : वाराणसी : पटना

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
शाखाएं : चौक, वाराणसी २२१ ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४

प्रथम संस्करण : वाराणसी १९७७
मूल्य : अजिल्द
सजिल्द

श्रीसुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी–१ द्वारा प्रकाशित तथा श्रीसोमारूराम भगत, गौरीशङ्कर प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी–१ द्वारा मुद्रित ।

दो शब्द

संस्कृत भाषा से परिचित सभी जानते हैं कि बाण संस्कृत के गद्य-सम्राट् हैं। इनके **'हर्षचरित'** और **'कादम्बरी'** संस्कृत साहित्य के दो रत्न-ग्रन्थ हैं किन्तु बाण **'कादम्बरी'** को अधूरा ही छोड़कर काल-कवलित हो गये थे, जिसकी पूर्ति बाद को उनके पुत्र ने की। भारत में ऐसा कोई विश्वविद्यालय नहीं होगा, जहाँ न्यूनाधिक रूप में **कादम्बरी** पाठ्य-क्रम में नियत न हो। बाण-कृत पूर्व भाग का अधिक प्रचार होने के कारण इस पर कितनी ही टीकायें हो चुकी हैं। सब से सरल, विस्तृत और छात्रोपयोगी टीका श्रीभानुचन्द्र गणि की है, जिसको लेकर कादम्बरी का सम्पादन मैंने कर ही रखा है। उत्तर भाग की टीका श्रीभानुचन्द्र गणि की टीका के ही सदृश उनके पट्ट शिष्य श्रीसिद्धचन्द्र गणि ने कर रखी है, लेकिन वह आजकल दुर्लभ है। इसी कारण श्रीमोतीलाल बनारसीदास वालों के अनुरोध पर मैंने सोचा कि मैं श्रीभानुचन्द्र की टीका से और अधिक सरल, छात्रोपयोगी टीका उत्तर भाग पर लिखूँ। तदनुसार मैंने यह 'छात्रतोषिणी' टीका लिखी है। इसको लिखने बैठे मुझे मूलपाठ के लिये चौखम्भा वालों की आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र द्वारा संपादित और टीकित प्रति ही मिली। मुख्यतः मूलपाठ मैंने इसी पुस्तक का अपनाया है, किन्तु इसमें मुझे पाठों के सम्बन्ध में कितनी ही विसंगतियाँ और मुद्रण-त्रुटियाँ भी दिखाई पड़ीं, जिनका मैं—जैसे मुझे उचित लगा—संशोधन करता चला गया। जब मैं आधे से अधिक भाग की टीका कर चुका, तो एक दिन अचानक मुझे अपने एक पुराने शिष्य के पास से श्रीसिद्धचन्द्र गणि की टीका मिल गई। बाद को पाठ संशोधन तथा व्याख्या हेतु उससे मुझे बड़ी सहायता मिली। श्रीसिद्धचन्द्र टीका में ठीक अपने गुरु के पद-चिह्नों पर चले हैं और मैंने पाया कि मेरी टीका उससे भी और अधिक सरल और छात्रोपयोगी बन रही है। अपनी अन्य **'छात्रतोषिणियों'** की तरह इसे भी मैंने सरल से सरल बनाने का पूरा प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत टीका में बिना विग्रह किये मैंने कोई भी समस्त पद नहीं छोड़ा है। साथ ही प्रत्येक शब्द का पर्यायवाची भी दे दिया है। जहाँ अर्थ समझने में कुछ कठिनाई प्रतीत हुई, वहाँ भावार्थ दे दिया है और कहीं-कहीं टिप्पणियाँ कर दी हैं। अलंकारों का भी पूरा स्पष्टीकरण कर रखा है। सन्धि के सम्बन्ध में मैंने **'वाक्ये सा विवक्षामपेक्षते'** इस व्याकरण-नियम के अनुसार छात्रों के स्पष्ट बोध हेतु कहीं की है, कहीं नहीं भी की है। आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका भी लिख दी है, जिसमें बाण-पुत्र के विषय में यथासंभव जानकारी दे दी है, साथ ही उनके उत्तर भाग की पूरी विवेचना भी कर दी है। ग्रन्थ के अन्त में उनके सुभाषितों का एक लघु **परिशिष्ट** भी जोड़ दिया है।

जहाँ तक हिन्दी अनुवाद का प्रश्न है, अपने 'हर्षचरित' आदि के अनुवादों की तरह मैंने यहाँ भी—जैसा कि अनुवाद का नियम है—शाब्दिक ही रखा है। न कोई शब्द छोड़ा, न जोड़ा। वाक्य भी उसी प्रकार रखे हैं जैसे मूल-संस्कृत में हैं यद्यपि कहीं-कहीं मैंने लंबे-लंबे बहुव्रीहियों के विशेषणात्मक उपवाक्य अवश्य बनाये हैं जो सभी बहुव्रीहियों में स्वभावतः निगूढ़ रहते ही हैं। कहीं-कहीं लंबी-लंबी 'सत्सप्तमियों' के भी मैंने साधारण वाक्य बनाये हैं। मैंने

देखा है कि अधिकतर अनुवादकों ने मूल में चल रहे दीर्घ-दीर्घ वाक्यों का कुछ शब्द छोड़कर और कुछ अपनी ओर से जोड़कर छोटे-छोटे वाक्य बना रखे हैं। श्लिष्ट स्थलों में उन्होंने एक ही अर्थ लिया, दूसरा छोड़ दिया। ऐसे अनुवादों में एक दोष तो यह है कि बेचारा कोमल-मति छात्र अनुवाद का मूल-संस्कृत से सम्बन्ध जोड़ने में रह जाता है, दूसरे उसमें संस्कृत की आत्मा नष्ट हो जाती है और तीसरे, वह यह जानने से भी वञ्चित रह जाता है कि संस्कृत भाषा अपने भीतर कितनी बड़ी समास-शक्ति और समाहार-शक्ति सँजोये रहती है। अनुवाद की हिन्दी भी मैंने उन लोगों की तरह 'संस्कृतनुमा' एवं 'पण्डिताऊ' नहीं बनाई, बल्कि बोल-चाल की रखी है।

मुझे इस ग्रन्थ के लिखने में आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र तथा श्रीसिद्धचन्द्र गणि की टीकाओं से बड़ी सहायता मिली है, तदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। मैं श्रीमोतीलाल बनारसीदास वालों का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे लिखने की प्रेरणा दी है और ग्रन्थ का प्रकाशन भी किया है। दूर रहने के कारण मुझे प्रूफ देखने की सुविधा नहीं रही, इसलिए इसमें यदि कुछ मुद्रण की अशुद्धियाँ रह गई हों, तो कृपालु पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

देहरादून
शिवरात्रि २८-२-७६

—मोहनदेव पन्त

भूमिका

भूषणभट्ट—

संस्कृत वाङ्मय में कादम्बरी गद्य-काव्य की चूड़ान्त रचना है—इस पर दो मत नहीं हो सकते। इसकी कृतित्व का श्रेय—अपने ही ढंग से—दो व्यक्तियों—पिता-पुत्रों–को है। पिता हैं बाणभट्ट और पुत्र हैं भूषणभट्ट अथवा पुलिनभट्ट। पिता ने तो पूर्व भाग तथा **'हर्षचरित'** में अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ विवरण दे रखा है, लेकिन उनके पुत्र भूषणभट्ट का जीवन-वृत्त अब तक अन्धकार के गर्त में ही पड़ा हुआ है। यहाँ तक कि उन्होंने अपना नाम तक नहीं बताया कि क्या है। ग्रन्थारम्भ में केवल **"तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि'** लिखकर वे सन्तोष कर बैठे। पिता भी तो अपने ऐसे सुयोग्य पुत्र के नाम पर चुप्पी साधे हुए हैं। धनपाल (१००० ई०) ने अपनी **'तिलकमञ्जरी'** में दोनों पिता-पुत्रों का अपनी संयुक्त श्रद्धाञ्जलि में इस प्रकार स्मरण कर रखा है :—

> **'केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।**
> **किं पुनः क्लृप्तसन्धान-पुलिन्दकृतसन्निधिः॥**

उक्त श्लोक में कवि ने श्लेष की चमत्कारक भाषा में बाण (कवि) पर बाण (शर) का और पुलिन्द (बाणपुत्र) पर पुलिन्द (शबर) का आरोप कर रखा है अर्थात् केवल बाण ही नहीं, प्रत्युत बाण साधे पुलिन्द भी सामने हैं, तो बेचारे कवि-हरिणों की खैर कहाँ ? इस उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि बाण के पुत्र का नाम पुलिन्द था, किन्तु पुलिन्द एक म्लेच्छ जाति है, इसलिए उसके नाम से एक उच्चजातीय ब्राह्मण तथा महाकवि का नाम होना हमारे विचार से सर्वथा असंगत है। प्रो० भण्डारकर की गवेषणानुसार उसका नाम पुलिनभट्ट था, जो जँचता भी है। हमारे विचार से धनपाल ने श्लेष-संगति बिठाने हेतु ही पुलिन को पुलिन्द कर दिया होगा जैसे कि श्लेष में साधारणतः हुआ ही करता है। किन्तु पाश्चात्य मनीषी डा० बुह्लर ने अपने नये अनुसन्धान से यह सिद्ध कर दिया है कि बाण के पुत्र का असली नाम भूषणभट्ट है और यही नाम अब संस्कृत-जगत् में आम प्रचलित भी हो गया है।

भूषणभट्ट का देश-काल—

बाण ने अपने आत्म-कथ्य में अपना जन्म-स्थान बिहार में शोणनद के तीर पर स्थित **'प्रीतिकूट'** बता रखा है। ब्राह्मणों की बस्ती होने के कारण उसे **'ब्राह्मणाधिवास'** भी कहा करते थे। बाण बाद को सम्राट् हर्षवर्धन की राजसभा के मुख्य कवि बनकर कन्नौज चले आए और वहीं रहने भी लग गये थे। भूषणभट्ट का जन्मस्थान प्रीतिकूट या कन्नौज–इन दोनों में से कोई एक हो सकता है। बाण इस सम्बन्ध में भी मौन हैं।

जहाँ तक भूषणभट्ट के स्थिति-काल का सम्बन्ध है, वह तो ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा निश्चित ही है। बाण ने अपने आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्धन का जीवन-वृत्तान्त अपने 'हर्ष-चरित' में दे रखा है। हर्षवर्धन एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, जो गुप्त राजवंश के पतन के बाद भारत के शासनक्षेत्र में उतरे। इतिहासानुसार हर्षवर्धन का शासन-काल ६००-६४८ तक रहा। इस तरह इन दोनों पिता-पुत्रों का स्थिति-काल—कुछ वर्षों के अन्तर से—छठी शताब्दी का उत्तरार्ध और सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध ठहरता है। वैसे भी साहित्य-शास्त्री वामनाचार्य (७५०-८००) द्वारा अपनी **'काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः'** में कादम्बरी का उल्लेख तथा उससे लिये हुए उद्धरण भी कवि-युगल का उक्त समय ही सिद्ध करते हैं।

भूषणभट्ट का व्यक्तित्व—

हम कह आए हैं कि भूषणभट्ट—अपने पिता के ठीक विपरीत—अपनी लेखनी से अपने व्यक्तिगत वृत्तान्त के विषय में विलकुल मौन हैं। उनके ग्रन्थ से ही उनके सम्बन्ध में कुछ थोड़े से निष्कर्ष निकालें जा सकते हैं। पिता की तरह ये भी व्यक्तित्व के धनी थे। मालूम पड़ता है कि ये भी शैव रहे होंगे। हो सकता है कि इनकी कुल-परम्परा ही शैव सम्प्रदाय की हो। तभी तो पिता की तरह इन्होंने भी शिव-स्तुति के रूप में ग्रन्थ का मङ्गलाचरण किया है यद्यपि इनके शिव स्वतन्त्र शिव न होकर 'अर्धनारीश्वर' रूप में हैं। पिता की तरह इनमें भी विलक्षण प्रतिभा और प्रखर पाण्डित्य का व्यक्तित्व था। ये भी सभी शास्त्रों और कलाओं में निष्णात थे। इन्हें भी वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष और राजनीति का अच्छा ज्ञान था। साहित्य-कला और मानव-मनोविज्ञान के भी ये मर्मज्ञ थे। इन्हें रासायनिक प्रक्रिया भी आती थी, जिससे द्रव्य का प्रभाव कुछ से कुछ हो जाता है। स्वभाव में भूषण बड़े निरभिमानी लगते हैं। दर्प तो इन्हें छू तक न पाया। यह बात उनके इस उपोद्धात-श्लोक से सिद्ध हो जाती है :—

'दुःखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एव स मया न कवित्व-दर्पात्।

इनकी इस निरभिमानिता का यह फल हैं कि ये अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में मूक ही रहे, कुछ भी न लिख पाए। यदि इन्हें कवित्व-दर्प होता तो कादम्बरी के उत्तरभाग के अतिरिक्त कुछ और भी लिखकर कवि-हृदयों में अपनी और अधिक धाक जमाते। उत्तरभाग भी इन्होंने विवश होकर ही लिखा मालूम पड़ता है। तदर्थ ये पिता के प्रति कर्तव्यवद्ध थे। संस्कृत-विद्वानों में प्राचीनकाल से यह किंवदन्ती चली आ रही है कि बाणभट्ट जव कादम्बरी लिखते चले जा रहे थे तो इसी बीच उन्हें कृतान्त का क्रूर कर अपनी ओर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ने लगा। वेचारे बड़े दुःखी हुए कि मेरी यह कथा अधूरी ही छूटी जा रही है। मृत्यु-शय्या पर लेटे इनके प्राण शान्ति से नहीं निकल रहे थे। पिता की अन्तर्व्यथा को पुत्र भाँप गए। आश्वासन दिलाया कि उनकी कृति अधूरी नहीं रहने दी जाएगी, किन्तु मुमूर्षु पिता को विश्वास ही नहीं हो रहा था। उसने एतदर्थ पुत्रों[1] की योग्यता देखनी चाही। घर के आँगन में एक सूखा वृक्ष खड़ा था। पिता ने अपने बड़े पुत्र से उसका वर्णन करने को कहा, तो वह झट वर्णन कर बैठा—**'शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे'**। शुष्क वृक्ष की तरह पुत्र की भाषा को भी शुष्क देखकर बाण के प्राण भी शुष्क होने लगे। इतने में झट छोटा पुत्र भूषणभट्ट वर्णन कर बैठा—**'नीरस-तरुरिह विलसति पुरतः'**। सुनते ही मरणासन्न पिता के नीरस प्राणों में आशा की सरसता आ गयी। इस आशा के साथ कि इसके हाथों मेरी अधूरी छूटी कथा अवश्य पूरी हो जायगी, शान्ति के साथ प्राण त्याग दिये।

पिता की अधूरी लिखी कहानी को देखकर उनके पुत्र भूषणभट्ट ही क्या बल्कि समस्त संस्कृत-जगत् को बड़ा दुःख हो रहा था। योग्य पिता के योग्य पुत्र ने तत्काल कथा-प्रबन्ध पूरा करना अरम्भ कर दिया :—

"याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एव स मया न कवित्व-दर्पात्॥"

---

१. बाण के अन्य पुत्रों का अभी पता नहीं चला है।

कथा और आख्यायिका —

पिता-पुत्र की सम्मिलित कृति **कादम्बरी** पर विवेचन करने से पूर्व यह उचित होगा कि हम संक्षेपतः यह विचार कर लें कि यह गद्य-काव्य के किस भेद के अन्तर्गत है। साहित्य-शास्त्रियों ने गद्य-काव्य के दो भेद माने हैं—**आख्यायिका** और **कथा**। इन दोनों के मध्य इनके स्वरूप, संविधान और प्रतिपादन-शैली का जो भेद साहित्यिकों ने बताया है, उसे दण्डी ने संक्षेप में इस तरह स्पष्ट किया है, यद्यपि वे स्वयं इससे सहमत नहीं हैं—(१) **आख्यायिका** में सारी कहानी स्वयं नायक ही कहता है जबकि **कथा** में कहानी या तो नायक कहता है या कोई अन्य (२) **आख्यायिका** में कहानी का विभाग **उच्छ्वासों** में होता है और यत्र तत्र **वक्त्र** तथा **अपरवक्त्र** छन्द रहते है जबकि **कथा** में ऐसा नहीं होता। (३) **कथा** में कन्यापहरण, युद्ध, नायक नायिकाओं का वियोग एवं सूर्य और चन्द्रमा के उदयास्तों का वर्णन रहता है, जबकि **आख्यायिका** इनसे रहित होती है। (४) **कथा** में कवि जान-बूझकर कुछ विशेष साभिप्राय शब्दों को प्रयोग में लाता है जो **आख्यायिका** में नहीं होता।

किन्तु दण्डी यह भेद स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि **कथा** और **आख्यायिका** के मध्य लक्ष्मण रेखा-जैसी कोई खास भेदक सीमा-पंक्ति नहीं खींची जा सकती। यही कारण है कि कवियों ने उक्त भेदक बातों का अनिवार्य-रूप से अपनी कृतियों में पालन नहीं किया। इसलिये **कथा** और **आख्यायिका** दोनों ही गद्य-काव्य के पर्याय-शब्द हैं।

इस सम्बन्ध में अन्यान्य आलोचकों के लंबे-लंबे मत भी उद्धृत करके हम यहाँ विस्तार में नहीं जाना चाहेंगे। सारे विवाद को पढ़कर हम जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, वह यह है कि **कथा** और **आख्यायिका** में भेद अवश्य है। दण्डी की तरह हम दोनों को एक ही चीज नहीं मान सकते। भेद की जिन बातों पर सभी साहित्यिक सहमत हैं, वे ये है कि **आख्यायिका** की कथावस्तु ऐतिहासिक होती है जबकि **कथा** की कथावस्तु कल्पना-प्रसूत होती है। **आख्यायिका** का प्रकरण-विभाग उच्छ्वासों में होता है और उसमें कहीं-कहीं **वक्त्र** और **अपरवक्त्र** छन्द भी प्रयुक्त होते हैं जबकि **कथा** में इस तरह का विभाग नहीं रहता और न वक्त्र-अपरवक्त्र ही होते हैं। दूसरे शब्दों में, यों समझ लीजिए कि **आख्यायिका** कवि-भाषा में लिखा एक ऐतिहासिक जीवन वृत्त होता है जिसे अंग्रेजी में नैरेटिव (Narrative) कहते हैं जबकि **कथा** एक निरी कवि-कल्पित रचना होती है जिसे हम नॉवेल (Novel) अर्थात् उपन्यास कहेंगे। **अलंकार-सर्वस्व'** के रचयिता राजानक रुय्यक ने यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी है :--

गद्यं तु कथितं द्वेधा कथेत्याख्यायिकेति च।
कथा कल्पितवृत्तान्ता सत्यार्थाऽऽख्यायिका मता॥

बाण ने भी यही भेद मनमें रखकर अपने श्रीमुख से **कादम्बरी** को **'धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा'** कहकर **कथा** ही माना है और इसका स्वरूप भी स्पष्ट कर दिया है :—

'हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव॥"

कादम्बरी—

'कादम्बरी' सरस्वती के वरद पुत्र बाणभट्ट तथा उनके पुत्र भूषणभट्ट की सम्मिलित अमर रचना है जिसमें उनकी कला अपने ऐसे सशक्त समृद्ध, **'प्रौढ, परिपक्व'** और उर्वर रूप में निखरी है कि कुछ न पूछो ! वास्तव में यह संस्कृत- साहित्य के गद्य-काव्य की एक अनमोल निधि है, रोमानी प्रेम-भावना से ओत-प्रोत एक ऐसा उपन्यास है जिसके सम्बन्ध में संस्कृत का यह आभाणक ही चल पड़ा कि **'कादम्बरीरसज्ञानाम् आहारोऽपि न रोचते'**। **'कादम्बरी'** सचमुच

एक ऐसी 'कादम्बरी' (मदिरा) है जिसके मद में मत्त होकर स्वयं भूषणभट्ट को भी विवश होकर स्वीकार करना पड़ा :—

"कादम्बरी-रसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्"

'हर्षचरित' के आख्यायिका—ऐतिहासिक वृत्तान्त—होने के कारण बाण को अधिकतर पृथ्वी के धरातल से ही चिपका रहना पड़ा है, किन्तु कादम्बरी में ऐसी बात नहीं। यहाँ कलाकार स्वतन्त्र होकर, पार्थिव बन्धनों से उन्मुक्ति पाकर, कल्पना की ऐसी ऊँची उड़ाने भरता है कि वह पृथिवी-लोक से परे दिव्य लोकों तक पहुँच जाता है, द्यु-भू को एकाकार करके मानव को अतिमानव से मिला देता है और आत्मा का शारीरिक आवरण हटाकर दो-दो, तीन-तीन जन्मों के जगतों का हाल हमारे मानस टेलीविजन-पर प्रतिबिम्बित कर देता है ! ऐसी अद्भुत है बाण और भूषण रचित 'कादम्बरी' की रोमानी प्रेम की कहानी—ऐसा रोमानी प्रेम, जो जन्म-जन्मान्तरों तक चलता हुआ तप, त्याग और तितिक्षा से परिपूत होकर भौतिक धरातल से उठकर आध्यात्मिक ऊँचाई पर जा पहुँचता है। भारतीय प्रेम का यही आध्यात्मिक रूप है।

कादम्बरी का सार (पूर्वभाग)—

विदिशा-नरेश शूद्रक की राजसभा में एक बार कोई चण्डाल-कन्या आई और उन्हें वैशम्पायन-नामक एक तोता भेंट कर गई। तोता बड़ा विद्वान् था। उसने मनुष्य-वाणी में आशीर्वाद-श्लोक पढ़कर राजा का अभिनन्दन किया, तो राजा अचम्भित हो उठे। उन्होंने उसे अपना सारा वृत्तान्त सुनाने को कहा। तोता बोला—'महाराज, विन्ध्याटवी में पम्पा सरोवर के पास एक विशाल शाल्मली (सिम्बल) वृक्ष है। उसमें अन्य तोतों के साथ मेरे मां-बाप भी रहते थे। मेरी माँ मुझे जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गई थी। वृद्ध पिता ही मुझे पालते रहे। एक दिन क्या हुआ कि बड़े तड़के एक भील आया और वृक्ष पर चढ़ गया। वह घोसलों में से सभी तोतों को मार-मारकर नीचे पटकने लगा। उसने मेरे वृद्ध पिता की भी गर्दन मरोड़ी और नीचे पटक दिया। मैं भी पिता के पंखों में छिपा नीचे वृक्ष के सूखे पत्तों के ढेर पर जा गिरा, इसलिए मरा नहीं। भील नीचे उतरे और सभी मृत तोतों को बटोर ले जाए—इससे पहले ही मैं घिसट-घिसट कर पास ही में एक दूसरे वृक्ष की जड़ पर जा छिपा। प्यास के मारे मेरा दम निकल जा रहा था कि इतने में पम्पासर से स्नान करके लौटते हुए जाबालि ऋषि के पुत्र हारीत ने मेरे मुँह में पानी के कुछ बंद डाले और मुझे अपने पिता के आश्रम में ले आया। ऋषि जाबालि ने मुझे देखा, तो वे हँस पड़े और बोलने लगे कि यह तोते का बच्चा अपनी पूर्व जन्म की करणी का फल भोग रहा है। यह सुनते ही हारीत और सभी ऋषिगण उत्सुक होकर जाबालि से मेरे पूर्व जन्म की कहानी सुनाने का अनुरोध कर बैठे। ऋषि कहने लगे:—

उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। वहाँ तारापीड़ नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम विलासवती और मंत्री का नाम शुकनास था। बड़ी देर के बाद राजा का चन्द्रापीड़ नामक पुत्र हुआ। संयोग-वश उसी दिन शुकनास के यहाँ भी वैशम्पायन नाम का पुत्र हुआ। वे दोनों बड़े मित्र बन गए। पढ़-लिखकर जब चन्द्रापीड़ युवा हुआ, तो राजा ने उसका यौवराज्याभिषेक करना चाहा। युवराज बनने से पूर्व शुकनास ने चन्द्रापीड़ को बड़ा महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया और ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें कहीं। अभिषेक के बाद चन्द्रापीड़ इन्द्रायुध नामक घोड़े पर सवार होकर अपने मित्र वैशम्पायन तथा सेना को साथ लेकर दिग्विजय हेतु चल पड़ा। अपने शौर्य से एक-एक करके सभी राजाओं को जीतता हुआ वह उत्तर दिशा की ओर किरातों की भूमि में जा पहुँचा। वहाँ सेना को विश्राम का आदेश देकर एक दिन स्वयं अकेला वन-भ्रमणार्थ निकल पड़ा, तो उसे एक किन्नर-युगल दिखाई दिया जिसे ग्रहण हेतु उसने अपना घोड़ा छोड़ दिया। वह उसे पकड़ने से तो रहा, घोड़ा और स्वयं भी

थककर चूर हो गया। विश्राम के लिए किसी जलाशय को ढूँढ़ ही रहा था कि उसे पास में ही अच्छोद नाम का एक सरोवर दिखाई दिया। वहाँ पहुँचते ही राजकुमार को दूर से आ रही मधुर गति-ध्वनि सुनाई पड़ी। आगे जाकर क्या देखता है कि सरोवर के तीर पर एक शिव मन्दिर है, जहाँ एक अत्यन्त श्वेत वर्ण वाली तरुणी भक्ति-लीन हो जा रही है, साथ में रो भी रही है। उत्सुक हो चन्द्रापीड़ उसे पूछ ही बैठा कि 'देवी, क्या बात है? क्यों रोती हो?' तरुणी (महाश्वेता) अपनी कहानी सुनाने लगी :—

"भैया, यहाँ गन्धर्व लोग रहा करते हैं। मैं गन्धर्वराज हंस की इकलौती कन्या हूँ। एक दिन अपनी सहेली के साथ यहाँ अच्छोद सर में स्नान हेतु आई हुई थी कि क्या देखती हूँ कि एक सुन्दर युवक अपने मित्र के साथ आया हुआ है। देखते ही मैं उस पर मोहित हो गई। वह भी मुझ पर आसक्त हो गया। मित्र को पूछने पर पता चला कि वह युवक ऋषिकुमार पुण्डरीक है। मैं घर आई, पर चैन कहाँ? रात काटनी कठिन हो गई! उसी समय अपनी सखी तरलिका को साथ लिया और अभिसारिका बनकर प्रियतम को मिलने चल पड़ी, किन्तु उसे वहाँ नहीं पाया और उसके मित्र कपिञ्जल को रोते देखा। पूछा, तो पता चला कि पुण्डरीक काम-वेदना न सह सकने के कारण रात में ही दम तोड़ बैठा था। सुनते ही मैं वज्राहत जैसी हो गई और खूब रोयी-पीटी। अन्त में चिता बनाकर सती होने जा रही थी कि इतने में सहसा चन्द्रमण्डल से एक विशालकाय पुरुष नीचे उतरा और पुण्डरीक की मृत देह उठाकर ऊपर ले जाते हुए उसने मुझे संबोधित किया—'महाश्वेता, प्राण मत त्यागो। तुम्हारा अपने प्रियतम से पुनर्मिलन हो जायगा'। कपिञ्जल भी अपने सखा के मृतशरीर के पीछे-पीछे उस महापुरुष के साथ आकाश में उड़ गया। तब से मैं सब कुछ छोड़-छोड़ प्रिय के पुनर्मिलन की आशा में यहाँ तापसी का जीवन बिता रही हूँ। यही मेरी करुण कहानी है।"

चन्द्रापीड़ ने जब उसकी सखी तरलिका के सम्बन्ध में पूछा कि वह कहाँ है, तो महाश्वेता बोली—'उसे मैंने अपनी अभिन्न-हृदया सखी कादम्बरी को समझाने-बुझाने भेज रखा है। कादम्बरी गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री है। मेरी करुण दशा देखकर उसने तब तक अपना विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर रखी है जब तक कि मेरा अपने प्रियतम से पुनर्मिलन नहीं हो हो जाता है'। इसी बीच कादम्बरी का भृत्य केयूरक यह कहने महाश्वेता के पास आया कि कादम्बरी नहीं मान रही है। महाश्वेता ने अब उसे समझाने हेतु स्वयं जाना ठीक समझा। वह चित्ररथ का राज्य दिखाने के लिए चन्द्रापीड़ को भी साथ ले गई। उसने वहाँ जब उसका कादम्बरी से परिचय कराया, तो वे दोनों एक-दूसरे को देखते ही परस्पर हृदयों का आदान-प्रदान कर बैठे। कादम्बरी ने उसे प्रणय-प्रतीक रूप में एक अमूल्य हार भी भेंट किया। बाद में चन्द्रापीड़ महाश्वेता के कुटीर में लौटा, तो वहाँ अपनी खोज में आये हुए सैनिकों को पाया और उनसे सन्देश मिला कि राजा तारापीड़ उसे और वैशम्पायन को शीघ्र घर लौट देखना चाहते हैं। तदनुसार चन्द्रापीड कुछ चुने हुए अश्वारोहियों को साथ लेकर स्वयं तो द्रुत गति से आगे चल पड़ा और वैशम्पायन को कह गया कि वह धीरे-धीरे सेना के साथ आता रहे। स्वयं वह दिन-रात चलकर दूसरे ही दिन उज्जयिनी जा पहुँचा। [यह पूर्व भाग का सारांश है]

भूषणभट्ट-कृत उत्तरभाग—

कादम्बरी विरह-वेदना से मरी जा रही थी। इधर चन्द्रापीड़ को भी चैन कहाँ? वह सोचने लगा कि किस तरह फिर प्रियतमा के पास हेमकूट जाया जाय। ऐसे समय में सलाह देनेवाला वैशम्पायन देखो तो अभी सेना के साथ घर वापस नहीं पहुँचा था। अन्त में उसे एक उपाय सूझा। उसने अपने माता-पिता से पीछे छूटे पड़े वैशम्पायन को लिवा लाने की आज्ञा

प्राप्त कर ली और चल पड़ा। मार्ग में सेना तो मिल गई, लेकिन उसके साथ वैशम्पायन नहीं था। पूछने से पता चला कि अच्छोद सरोवर के पास पहुँचते ही उसका मन ऐसा बदला कि वह वहीं रम गया। चन्द्रापीड़ उसे ढूँढने वहीं पहुँचा, तो क्या देखता है कि वैशम्पायन वहाँ कहीं नहीं, महाश्वेता फूट-फूटकर रो रही है। पूछा, तो बोली—"यहाँ एक नवयुवक आया था, जो रह-रहकर मुझ पर प्रेमासक्त होता जा रहा था। क्रोध में आकर मैंने उसे शाप दे दिया कि तू तोते की तरह मुख में ही राग रख रहा है, अतः तोता बन जा, किन्तु मुझे पीछे पता चला कि वह तुम्हारा प्रिय सखा वैशम्पायन था।" अपने सखा का इस प्रकार अन्त सुनते ही चन्द्रापीड़ का हृदय फट गया और वह वहीं मिट्टी का ढेर बन गया। इतने में अपने प्रियतम को आया हुआ सुनकर कादम्बरी सज-धज कर उसे मिलने वहाँ पहुँची, तो उसे मृत पाकर मूच्छित होकर गिर पड़ी। होश आते ही प्रियतम की मृत देह के साथ सती होने जा रही थी कि सहसा चन्द्रापीड़ के मृत शरीर से चन्द्रमा के समान एक ज्योति निकली और आकाशवाणी हुई—'राजपुत्री, प्राण मत त्यागो; चन्द्रापीड़ के इस शरीर को सुरक्षित रखो। पुण्डरीक का शरीर भी चन्द्रलोक में सुरक्षित है। तुम दोनों तरुणियों को अपने-अपने प्रियतमों से पुनर्मिलन हो जाएगा।' यह देख और सुनकर सबके सब अवाक् रह गए। उधर उज्जयिनी जब राजा तारापीड और मंत्री शुकनास को अपने-अपने पुत्रों का यह दुखद समाचार मिला, तो वे भी रोते-चीखते अच्छोद सरोवर आ पहुँचे और कादम्बरी एवं महाश्वेता के साथ वहीं डेरा डाल बैठे।"

इतना वृत्तान्त कह चुकने के बाद ऋषि जाबालि ने तोते के बच्चे के सम्बन्ध में उत्सुक ऋषिगण से कहा कि यह पिछले जन्म में मंत्री-पुत्र वैशम्पायन था, जिसे महाश्वेता ने शुकयोनि में जाने का शाप दे दिया था। जाबालि से अपने पूर्व जन्म का हाल सुनते ही तोते के बच्चे को सब कुछ याद आ गया। उसने ऋषि से चन्द्रापीड़ के सम्बन्ध में जानना चाहा, तो वे बोले—'धीरज धरो बच्चे, जब तुम्हारे पंख निकलकर मजबूत हो जाएंगे, तब पूछना'।

जाबालि द्वारा कहा अपना वृत्तान्त सुनकर तोता राजा शूद्रक को बोला—'महाराज, ऋषि-पुत्र हारीत के संरक्षण में मेरा पालन-पोषण आश्रम में होता रहा। पंख मजबूत हुए कि मैं अपनी प्रेयसी महाश्वेता को देखने की उत्कट अभिलाषा से उत्तर दिशा की ओर उड़ भागा। मार्ग में इस चण्डाल-कन्या के कहने पर किसी व्याध ने थके माँदे सोये पड़े मुझे पकड़ लिया और इसके हाथ पकड़ा दिया। इस लड़की ने मुझे पिंजरे में रख कर कुछ समय पाला-पोसा और आज आपको भेंट कर दिया। मुझे पता नहीं यह कौन है और क्यों मुझे भेंट कर गई है?"

कुतूहल-वश राजा शूद्रक ने चण्डाल-कन्या को बुलाकर पूछा—'लड़की! बता, यह सारा मामला क्या है?' उसने उत्तर दिया—'महाराज, आप चन्द्रापीड़ हैं। यह तोता आपका प्रिय सखा वैशम्पायन है, जो उससे भी पूर्व जन्म में मेरा पुत्र पुण्डरीक था। मैं स्वयं लक्ष्मी हूँ! मेरा काम था तुम दोनों मित्रों को मिलाना, सो मैंने मिला दिया है। तुम दोनों का शाप समाप्त हो गया है अतः अब तुम अपना-अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लो'। इतना कह कर लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई। बाद में शूद्रक और तोता अपने पूर्व रूप में आ गए और अपनी-अपनी प्रियतमाओं से जा मिले। जीवन आनन्दमय हो गया। [यह उत्तरभाग का सारांश है।]

यदि हिन्दी के सूफी सम्प्रदाय वाले जायसी आदि रहस्यवादी कवियों की रोमानी प्रेमकहानियों की तरह **कादम्बरी** के उपर्युक्त कथानक में हम आध्यात्मिक संकेत भी ढूँढना चाहें तो वे भी मिल सकते हैं। जायसी की रानी पद्मावती के सदृश कादम्बरी (नायिका) को आप परम सौन्दर्यमयी परा-ज्योति समझ लें। उसकी प्राप्ति में लगा हुआ चन्द्रापीड़ जीव का प्रतीक है। वहाँ तक पहुँचाने वाला इन्द्रायुध मन है। महाश्वेता निर्मल प्रज्ञा है और पुण्डरीक

प्रज्ञा के साथ रहने वाला विज्ञानतत्त्व है। चन्द्रापीड़ की तरह कोई भी जीव गीता के **'अनेक-जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्'** इस सिद्धान्त के अनुसार त्याग, और तितिक्षा से उस परा-ज्योति को प्राप्त कर सकता है। लेकिन यह आध्यात्मिक छाया बड़ी झीनी है, कथा के भौतिक पक्ष से इतनी अधिक दबी हुई है कि इसे उभरने का अवसर ही नहीं मिला और वह दबी की दबी रह गई है।

हम देख चुके हैं कि उपन्यास के अन्तर्गत होने से कादम्बरी का उपर्युक्त कथानक निरी कल्पना है जैसे कि सभी उपन्यासों में हुआ ही करता है। किन्तु पाश्चात्य समीक्षक हमारी इस चूड़ान्त रचना—मास्टर-पीस–को अधिक आदर की दृष्टि से नहीं देखते। उनका कहना है कि मनुष्य का तोता बन जाना, तोता बनकर भी मानुषी वाणी बोलना, शाप से घोड़ा बन जाना, मर जाने पर भी देह का ज्यों का त्यों बना रहना, प्रेम का जन्म जन्मान्तर तक चलते रहना इत्यादि पौराणिक, तिलस्मी तथा अटपटी बातों में पाठकों का कोई आकर्षण नहीं। इसका आद्योपान्त सारा ही वातावरण असंभाव्य तथा अविश्वसनीय है। वे **कादम्बरी** को अपने यहाँ के मध्ययुगीन स्पेन्सरकी **'फेयरी क्वीन'** जैसी रचनाओं की कोटि में रखते हैं, जिनसे बच्चों का मनोरञ्जन हो जाय तो हो जाय, किन्तु यथार्थ के दर्शन उनमें कुछ नहीं होते। वे यह भी कहते हैं कि इसमें कोई सीधी कहानी न चलकर, कहानी पर कहानी, कहानी पर कहानी जुड़कर कथानक को कवियों ने इतना जटिल बना दिया है कि वह साधारण पाठकों की बुद्धि से परे हो जाती है और उनकी रुचि भंग कर देता है। हम उनके इन विचारों से सहमत नहीं हैं। यदि वे हमारे देश में होते अथवा भारत के सांस्कृतिक वातावरण में पले-पुसे होते, तो उनके विचार वैसे कदापि न बनते। भारतीय संस्कृति के पुनर्जन्म-सिद्धान्त, जातस्मरता, प्रणय-भावना की दृढ़निष्ठा और उसका जन्म-जन्मान्तर तक चलते रहना, दिव्य दृष्टि, शाप और वर आदि ऐसी बातें हैं, जिनमें हम भारतीयों की पूरी आस्था और दृढ़विश्वास है। **कादम्बरी** को माध्यम बनाकर कालिदास आदि की तरह बाण और भूषण ने भी भारतीय संस्कृति के इन्हीं तथ्यों तथा आदर्शों को उजागर किया है। पञ्चतन्त्र की तरह कहानी पर कहानी जुड़ने से रुचिभंग का प्रश्न भी नहीं उठता है, क्योंकि कड़ियाँ ऐसी निपुणता से जुड़ी हुई है कि उनसे कुतूहल और 'सस्पैन्स' उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता रहता है। पिता द्वारा फैलाई सभी कड़ियों का आपस में तालमेल बैठाकर जिस प्रकार भूषणभट्ट ने अन्त में उनको समन्वयात्मक रूप दिया है, वह उनके कला-नैपुण्य की अनोखी चीज है।

कादम्बरी का मूल-स्रोत—

जब कोई कवि, कलाकार या शिल्पी अपना कलाभवन निर्माण करने चलता है, तो वह कुछ प्रारम्भिक आधार और सामग्री अवश्य एकत्रित कर लेता है। कालिदास, भवभूति आदि सभी ने ऐसा किया है। बाण ने भी ऐसा किया है। उन्होंने अपनी इस कृति के लिए **बृहत्कथा** को अपना आधार चुना है। गुणाढ्य-कृत बृहत्कथा पैशाची भाषा में लिखा हुआ अनेक कथानकों का आकर-ग्रन्थ है। बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भिक श्लोकों में से अन्यतम में इसकी प्रशंसा कर रखी है, किन्तु आजकल यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। बाण के समय में उपलब्ध था। आजकल इसके तीन सार-ग्रन्थ अवश्य मिलते हैं—एक है सोमदेव-लिखित **कथासरित्सागर**, दूसरा क्षेमेन्द्रलिखित **बृहत्कथामञ्जरी** और तीसरा है बुधस्वामीकृत **बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह**। बाण ने अपनी 'कादम्बरी' के लिए **बृहत्कथा**-गत जिस सुमना राजा की कथा को अपना आधार बनाया, वह **कथासरित्सागर** के लम्बक १०, तरंग १३, और श्लोक २२–१७९ में संगृहीत है।

वहाँ नगरी काञ्चनपुरी है, यहाँ विदिशा; वहाँ राजा सुमना है, यहाँ शूद्रक; तोता लाने वाली निषाद-कन्या दोनों में समान हैं; वहाँ अपनी कहानी सुनाता हुआ तोता अपना निवास-स्थान हिमालय और रोहणी वृक्ष बताता है, तो यहाँ विन्ध्य और शाल्मली है; शबर द्वारा दोनों वृक्षों के तोतों को मारकर ले जाना दोनों में एक-जैसा है; वहाँ तोते के बच्चे को मारीच ऋषि पुलस्त्य के आश्रम में ले जाता है, यहाँ हारीत अपने पिता जाबालि के आश्रम में; वहाँ और यहाँ दोनों ऋषि तोते को शाप-वश शुक-योनि में पड़ा कहते हैं; वहाँ रत्नाकर नगर है, यहाँ उज्जयिनी; वहाँ राजा ज्योतिष्प्रभ है, यहाँ तारापीड; वहाँ राजकुमार सोमप्रभ है, यहाँ चन्द्रापीड; वहाँ घोड़ा उच्चैःश्रवा है, यहाँ इन्द्रायुध; दोनों राजकुमार दिग्विजय करते-करते हिमालय में किन्नर-युगल देखते हैं और उनका पीछा करते-करते सरोवर पहुँच जाते हैं; वहाँ शिवलिङ्ग की स्तुति करती हुई लड़की मनोरथप्रभा है, यहाँ महाश्वेता; दोनों युवाओं को देखती हैं, जो उनके वियोग में मर जाते हैं, आकाशवाणी दोनों जगह होती है और प्रेमिकाओं को सती होने से रोक देती है; तदनुसार बाद में प्रेमी-प्रेमिकाओं का पुनर्मिलन हो जाता है। इस तरह बाण की **कादम्बरी** की सारी कथा **कथासरित्सागर** से मिल रही है। यही **कादम्बरी** का मूलस्रोत है।

कथाकंकाल की प्राण-प्रतिष्ठा—

इसमें सन्देह नहीं कि बाण ने अपनी **'कादम्बरी'** के लिए गुणाढ्य की **बृहत्कथा** से उपरोक्त मूल लिया है। थोड़ा-सा कथानक इधर-उधर करके पात्र भी अन्य नामों से वही रखे हैं, किन्तु अपने मौलिक रूप में वहाँ सभी पात्र निरे निर्जीव, निष्प्राण कंकाल हैं। उनकी कहानी का महत्त्व दादी-नानी द्वारा अपने नाती-पोतों का मनोरञ्जन करने के सिवाय और कुछ नहीं है। उसमें विद्वानों के लिए कोई चीज नहीं। यह तो बाण और भूषण ही हैं, जिन्होंने अपनी कला-तूलिका से उन सब में ऐसा अनोखा रंग चढ़ाया कि सब कुछ के कुछ हो बैठे; अपनी कल्पना और कवित्व-शक्ति से उनमें रुधिर-मांस भरकर भीतर रस की ऐसी प्राणवत्ता फूँकी कि सारी नयी ही सृष्टि बन गई। क्या प्रधान पात्र चन्द्रापीड और कादम्बरी तथा पुण्डरीक और महाश्वेता तथा क्या गौण पात्र तारापीड़, विलासवती, शुकनास, पत्रलेखा आदि—सभी में बाण और भूषण भट्ट ने ऐसा व्यक्तित्व उभारा कि सभी सजीव हो उठे। निर्जीव को प्राणोच्छ्वसित करना ही तो कला कहलाती है। बाप-बेटों ने भी वही किया और अपनी **कादम्बरी** को साथ ही स्वयं को भी हमेशा के लिए अमर बना गये।

भूषणभट्ट का कला-वैशिष्ट्य—

भूषणभट्ट द्वारा जाबालि के मुँह से हारीत को कहलवाया **'यादृशाद्वै जायते तादृगेव भवति'** यह श्रुति-वाक्य व्यक्तिगत रूप से स्वयं कवि पर भी लागू हो जाता है अर्थात् जैसा पिता, वैसा पुत्र। भूषण सभी बातों में पिता-तुल्य हैं और वे उनके ही पद-चिह्नों पर चले हैं। उन्होंने स्वीकार भी किया है :—

'गद्ये कृतेऽपि गुरुणा तु तथाऽक्षराणि
यन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभावः।'

पाश्चात्य साहित्य से परिचित सभी जानते हैं कि पश्चिम जगत् के सुप्रसिद्ध कवि शेक्स-पीयर की कला ने जो विश्वव्यापी गरिमा अर्जित की है, उसका सारा श्रेय उस कवि के मानव-स्वभाव की विविधताओं के गहरे अध्ययन और उसकी मनोवैज्ञानिक भूमियों-अन्तर्भूमियों के सूक्ष्म विश्लेषण और चित्रण को ही जाता है। हमारे बाण तथा उनके पुत्र भूषण की प्रतिष्ठा का भी यही कारण है। उनका कला-वैशिष्ट्य इसी में निहित है। पिता की तरह पुत्र ने भी मानव-

स्वभाव का गहरा और व्यापक अध्ययन कर रखा है। वे भी मानव-मनोविज्ञान के मार्मिक विद्वान् हैं। उनकी सूक्ष्मेक्षिका की गहरी पैठ जैसे अन्तर्जगत्—भावलोक—में, उसके कोने-कोने में है, उसी तरह वहिर्जगत् में भी हैं। वह क्या नारी-पात्र और नर-पात्र, क्या उनकी रूप-माधुरी व नख-शिख तथा परिधान, प्रसाधन, क्या राजद्वार और वहाँ खड़े हाथी घोड़े, क्या उज्जयिनी और वहाँ का नागरिक जीवन, क्या मुनि आश्रम और मुनि लोगों की सात्त्विक वृत्तियाँ और क्या शबरावास तथा शबरों का घिनौना तामस जीवन—सभी जगह घूमी हुई है। यही कारण है कि इनके चित्रण इतने वास्तविक और मार्मिक बन बैठे। इनके प्रकृति-चित्र भी—क्या वन और वनसंपदा, क्या सूर्य और चन्द्रमा के अस्तोदय, क्या रात्रि, रात्रि-सन्ध्या और अरुणोदय, क्या वर्षा और शरद्—सभी बड़े आकर्षक एवं बिम्वग्राही हैं। आश्चर्य तो यह कि बहिर्जगत् के इन चित्रणों में वर्ण्य विषय ऐसा कोई नहीं मिलेगा, जिसका अणुमात्र भाग भी जानने के लिए शेष रह गया हो। सब कुछ सर्वाङ्गीण है और चित्रपट की तरह हमारे मानस चक्षु के आगे 'प्रत्यक्षायमाण' हो जाता है।

अब इनके अन्तर्जगत्—काव्य के भाव पक्ष—की ओर चलिए। यहाँ भी बहिर्जगत् के चित्रों की तरह अनोखे, मार्मिक, रसात्मक भाव चित्र मिलेंगे। यहाँ भी भूषणभट्ट मानव हृदय का ऐक्सरे जैसे लेकर उसके अन्तरतम में छिपे अमूर्त भावों को पाठकों के सामने अविकल रूप में धर देते हैं, जिनकी अनुभूति और आस्वाद में पाठक भाव-विभोर हो उठते हैं यह गुनगुनाते हुए कि क्या कमाल है! हम पीछे कह आये हैं कि कादम्बरी में मुख्य भाव प्रेम—शृङ्गार—है। शृङ्गार भी अपने शुद्ध और मर्यादित रूप में है, दण्डी के शृङ्गार की तरह अपवित्र और उच्छृङ्खल नहीं। वह भी मुख्यतः अपनी वियोगावस्था का है, संयोगावस्था का बहुत कम। महाश्वेता के साथ आये हुए चन्द्रापीड़ से आँखें टकराने के बाद कादम्बरी के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व—एक ओर कुमारीसुलभ लज्जा, तो दूसरी ओर काम-वासना की बलवती हूक; इधर माता पिता के प्रति कर्तव्यनिष्ठा का ध्यान, दूसरी तरफ प्रिय मिलन के लिए अत्युत्कट उत्कण्ठाजन्य बेचैनी; इधर कुल मर्यादा का खयाल, उधर देखो तो कामाग्नि दग्ध हृदय की विवशता, फिर निराशा में बेचारी की लंबी-लंबी आहें, तापशमन हेतु धारागृह में बेकार की भटकने, भाँति भाँति की तड़पन, उन्माद, मूर्छा आदि—ऐसा लगता है कि भूषणभट्ट ने विरहिन के हृदय का 'आपरेशन' करके जैसे हमारे आगे रख दिया हो।

पिता की तरह भूषणभट्ट का प्रेम हल्का फुल्का, वासनात्मक प्रेम नहीं है, आदर्श प्रेम है, जो तप तितिक्षा से उभरता है। वे वासना को हेय मानते हैं। वासना प्रेम के ऊपर जमी मैल की परत है और केवल बाहरी रूप रंग तथा शारीरिक आकर्षण पर टिकी रहती है। उसकी सभी बातें सैक्सी—यौन—हुआ करती है जबकि प्रेम की हार्दिक। वासना गिराती है, प्रेम ऊपर उठता है। बाण की महाश्वेता और पुण्डरीक इसी वासना के तो शिकार हो बैठे थे। किसी की भी पर्वाह न किये, चुपके चुपके रात में उस मनचली छोकरी का स्वेच्छाचार तथा ऊँचे ऋषिकुल में जन्मे उस ब्राह्मण छोकरे का नैतिक पतन—ये दोनो बातें आदर्शवादी बाण को भला क्योंकर भातीं, इसलिए उसने उन दोनों वासनाभोगियों को इस बात के लिए ऐसा कठोर दण्ड दिया, जो जन्म-जन्मान्तर चलता रहा। कालिदास ने भी तो वासना की भूखी शकुन्तला और पार्वती को तथा वासनावश कर्तव्यभ्रष्ट यक्ष को इसी तरह दण्डित किया था। भूषणभट्ट ने भी पिता के पद-चिह्नों पर चलकर महाश्वेता और पुण्डरीक वाली घटना के ठीक समानान्तर कादम्बरी और चन्द्रापीड पर भी वैसी ही घटना दोहराई है, और इन दोनों पथ-भ्रष्टों को भी उनकी उद्दण्डता के लिए कठोर दण्ड दिया है।

वैसे तो साहित्य-विधानानुसार साहित्य-शास्त्रियों ने वियोग की दश कामदशाओं में से अन्तिम दशा मृत्यु पर प्रतिबन्ध लगा रखा है। अधिक से अधिक वे प्रेमी-प्रेमिकाओं को आसन्न

मृत्यु तक ले जाने की अनुमति दे सकते हैं, मारने की नहीं, क्योंकि मृत्यु शृंगार को समाप्त करके करुण रस की सीमा बना देती है। किन्तु यह बाण और भूषण ही हैं जो चिर प्रचलित इस प्रतिबन्ध को तोड़कर प्रेमियों को मृत्यु तक ले गए हैं, काम-दी (comedy) को त्रास-दी (Tragedy) बना गए हैं, भले ही मृत्यु-घटना के बाद आकाशवाणी द्वारा दिये गए पुनर्मिलन के आश्वासन पर वे 'करुण' को फिर 'विप्रलम्भ-शृंगार' की सीमा के भीतर ले आए हो। साहित्यक्षेत्र में पिता-पुत्रों की यह बिलकुल नयी उद्भावना है।

तप-त्याग की अग्नि में वासना-मल के भस्म हो जाने पर कुन्दन बना प्रेम जब अपना शुद्ध रूप अपना लेता हैं, तब जाकर कहीं भूषणभट्ट विप्रलम्भ समाप्त करके उसे संभोग का रूप देते हैं, किन्तु उनका यह संभोग-चित्र यहाँ बड़ा ही संक्षिप्त है जैसा कि होना चाहिए। शृंगार रस के अतिरिक्त अङ्ग रूप में कवि ने अन्य सभी रसों को भी अभिव्यक्ति दे रखी है। शबर के चित्रण में भयानक रस शबराबास के वर्णन में बीभत्स रस वैशम्पायन के घर लौटने पर शुकनास की फटकार में रौद्ररस और चन्द्रापीड़ के हृदय के फट जाने पर आकाशवाणी एवं उसकी देह की यथावत् अविकृत स्थिति में अद्भुत रस की थोड़ी-सी झाँकी मिल जाती है।

भूषणभट्ट के कला-वशिष्ट्य में एक महत्त्वपूर्ण बात उनका पिता द्वारा अधूरी छोड़ी हुई कथा को पूरा करना है। उन्होंने उत्तरभाग लिखकर कथा की शृंखला को ऐसी निपुणता से जोड़ा कि मिलकर दोनों भाग एकाकार हो गए। पाठकों को कठिनाई से ही पता चलेगा कि उत्तरभाग बाण का नहीं, किसी दूसरे का है। दोनों भागों में एक-जैसा संविधान, एक-जैसी शैली और एक-जैसी भावाभिव्यक्ति मिलती है। जैसा कि हमने मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में स्पष्ट कर रखा है, अर्धनारीश्वर रूप में शिव के **'देह-द्वयार्धघटनारचितं शरीरमेकं ययोरनुपलक्षितसन्धिभेदम्'** इस तरह वर्णन में कवि का अपनी तरफ से पूर्वभाग से जोड़े हुए अपने उत्तरभाग की ओर व्यक्तिगत संकेत है अर्थात् जिस प्रकार आधे-आधे शरीर मिलकर बने शिवपार्वती युगल में जोड़ का कहीं पता ही नहीं चलता, वैसे ही पूर्वभाग और उत्तरभाग के जोड़ के सम्बन्ध में भी समझ लीजिए। दोनों में पूर्ण ऐकात्म्य है। फिर भी भूषणभट्ट की यह निरभिमानिता और विनम्रता ही समझें कि वे उत्तरभाग का भी श्रेय अपने को जरा भी न देकर पिता को ही दे रहे हैं :—

'बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि
वप्त्रैव यान्युचितकर्मबलात् कृतानि।
उत्कृष्टभूमिविततानि च यान्ति पोषं
तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि' ॥ ६ ॥

कुछ पाश्चात्य आलोचकों का कहना है कि भूषणभट्ट कथा को अपने पिता के कला-स्तर तक नहीं पहुँच पाए हैं। यह न बाप जैसी कल्पना की उड़ानें भर सके हैं, न बाण जैसा प्रकृति के चराचर तत्त्वों का सूक्ष्म वीक्षण और बिम्बग्राही चित्रण कर सके हैं और न ही शुकनास द्वारा चन्द्रापीड़ को अथवा कपिञ्जल द्वारा पुण्डरीक को दिया हुआ उदात्त प्रबोधन उद्भावित कर सके हैं। किन्तु हमारे विचार से उनके द्वारा किया हुआ भूषणभट्ट का यह अधःकरण अतिरंजित है। पिता द्वारा किये हुए विरहिणी कादम्बरी, एवं विरही चन्द्रापीड़ के विरह-चित्रणों में क्या भूषण की कम कल्पना है? इनके सूर्य चन्द्रों के उदयास्तों तथा वर्षा शरद् आदि प्रकृति तत्त्वों के वर्णन क्या बाप से कम बिम्बग्राही है? तारापीड़ द्वारा शुकनास के आगे खोले हुए यौवन की बुराइयों के कच्चे चिट्ठे तथा शुकनास द्वारा तारापीड़ को दिए गए प्रबोधन में क्या बाण के 'शुकनासोपदेश' की छाया नहीं झलकती? हम मानते हैं कि भूषणभट्ट उतने विस्तार में नहीं गए जितने विस्तार में बाण गए हैं। उसका कुछ कारण होगा। दूसरे, हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि

आखिकार पिता पिता ही होता है, पुत्र पुत्र ही। पिता में कला का पूरा निखार एवं परिपक्वता आ जाने के बाद ही तो उसने 'कादम्बरी' लिखी है, प्रारम्भ में नहीं। बाण की प्रारम्भिक रचना 'हर्ष-चरित' में ही कला का भला कौन सा निखार है! सभी कलाकार अपनी प्रारम्भिक अवस्था की रचनाओं में कुछ न कुछ त्रुटि रखे हुए ही होते हैं। क्या कालिदास की आरम्भिक हल्की-फुल्की रचना 'ऋतुसंहार' को लेकर विद्वानों में पहले यह विवाद नहीं चल पड़ा था कि इसे कालिदासकृत मानें या न मानें? इसलिए भूषणभट्ट ने अपने प्रारम्भिक प्रयत्न में ही जो कुछ लिखा, बहुत अच्छा लिखा! वह सर्वथा सराहनीय है।

भूषणभट्ट की भाषा-शैली :—

भूषण की शैली वही है, जो उनके पिता बाण की है। इस पर कुछ लिखने से पूर्व हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि बाण और भूषण की सम्मिलित कृति 'कादम्बरी' शैली-प्रधान रचना है, घटना-प्रधान नहीं। शैली-प्रधान रचनाओं में वर्णना को अधिक महत्त्व दिया जाता है, घटना को कम। ऐसी रचनायें बाण से बहुत पहले से ही बनती चली आ रही थीं। "भारतीय साहित्य में ऐसा भी युग था, जिसमें काव्य का प्रधान अवलम्ब आत्मा न रहकर श्रोत्रेन्द्रियाँ बन गईं। इसी युग में अलंकार-शास्त्रियों ने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि गद्य-काव्य की उत्कृष्टता शब्द-विन्यास की समृद्धि, वर्णन की आढ्यता, अलंकारों की प्ररोचना, दीर्घ और समस्त पदों की विन्यास-चातुरी, वाक्यों के विस्तार और ध्वनि के साटोप ध्वनन में निगूढ़ है"। इस प्रयास-साध्य शैली को अलंकृत-शैली कहते हैं, जिसमें काव्य का कला-पक्ष भाव-पक्ष पर छाया हुआ रहता है। प्राचीन काल के महाक्षत्रप रुद्रदामन् (१५० ई०) आदि के शिला-लेखों में इस शैली के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त (३६० ई०)—सम्बन्धी शिलालेख के गद्य का एक यह छोटा सा नमूना देखिए :—

'तस्य महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य कीर्तिमतस्त्रिदशभवनगमनावाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः'।

गद्यकारों के बाद यही अलंकृत शैली माघ, हर्ष-आदि कवियों ने अपने महाकाव्यों में और भवभूति आदि नाटकारों ने अपने नाट्यक्षेत्र में भी अपना ली।

बाण ने अपने 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक श्लोकों में विभिन्न देशों की शैली के सम्बन्ध में स्वयं लिख रखा है :—

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्॥'

अर्थात् उत्तर भारत में श्लेषमुखेन प्रतिपादन होता है, पश्चिम में केवल अर्थमात्र का अभिधान रहता है, दक्षिण में उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग होता है और पूर्व में शब्दाडम्बर ही रहता है। बाण ने इन चार विभिन्न प्रतिपादन-प्रकारों का समन्वय करना चाहा और वे अपनी एक समन्वित शैली बना बैठे। इस समन्वित शैली को पाञ्चाली रीति कहा जाता हैं :—

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥

शीला भट्टारिका के गद्य के सम्बन्ध में तो अभी कुछ पता नहीं चल रहा है, किन्तु 'बाणोक्तियाँ' हमारे पास **हर्षचरित** और **कादम्बरी** के रूप में मौजूद हैं। भाषा की इस पाञ्चाली रीति में शब्द और अर्थ का समान गुम्फ—शब्दार्थों का परस्पर संतुलन—रहता है। अर्थ अथवा वर्ण्य विषय उदात्त, कठोर और ओजस्वी हो, तो भाषा में भी कठोरता और ओज लाना अनिवार्य हो जाता है। ओज का स्वरूप है—**ओजः समासभूयस्त्वम्, एतद् गद्यस्य जीवितम्'**। फिर तो भाषा में दीर्घ-दीर्घ समास चलने लगते हैं, उसमें

शब्दाडम्बर आ जाता है, अप्रसिद्ध एवं कठिन-कठिनतर शब्द प्रयोग में आने लगते हैं और अलंकारों का ताँता सा बँध जाता है। ऐसी ओजस्विनी शब्दाडम्बरी भाषा गौड़ देश की होने से गौड़ी कहलाती है, जो स्वभावतः कठिन और प्रयाससाध्य हुआ करती है। यह अधिकतर बहिर्जगत् के चित्रण में कवि की बहुमुंखी (Objectrive) कला में प्रयुक्त होती है। बाण ने जहाँ अपनी चाण्डाल-कन्या, उज्जयिनी, विन्ध्याटवी, पम्पासर जाबालि-आश्रम, इन्द्रायुध, राजद्वार और अच्छोदसर आदि बाह्य जगत् के वर्णनों में यह विकटाक्षरबन्ध शैली अपनाई है, वहाँ भूषणभट्ट ने इसका प्रयोग हिमगृह, हिमगृह-भ्रमण, चन्द्रापीड़ के प्रयाण, स्कन्धावार, कायमान, तट-लतामण्डप, जलमण्डप, जलदकाल, अच्छोद, पक्कण आदि में किया है। सभी जानते हैं कि प्रस्तुत को हृदयङ्गम बनाने, उसमें प्रेषणीयता लाने हेतु कवियों को उसके समानान्तर अप्रस्तुत को रखना पड़ता है। इसे सादृश्य विधान या अप्रस्तुत-विधान कहते हैं। यह उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, परिसंख्या आदि के रूप होता है। कभी-कभी अप्रस्तुत-विधान विरोध-मुखेन भी किया जाता है जिसे विरोधाभास कहते हैं। इन सभी अलंकारों का बाण और भूषण—दोनों ने 'कादम्बरी' के बाह्य चित्रणों में खुलकर प्रयोग किया है। श्लेष का पुट लाकर वे इन्हें और अधिक चमत्कारक बना गए हैं। हम यहाँ भूषणभट्ट का थोड़ा सा अप्रस्तुत-विधान उदाहरणार्थ देना चाहेंगे। चन्द्रापीड़ के मुख पर उग रही काली-काली दाढ़ी-मूछों की रेखा के लिए उपमाओं की शृंखला देखिए :—

'शुकनास, पश्येयमायुष्मतश्चन्द्रापीडस्योत्सर्पिणी महानीलमणिप्रभेव कनक-शिखरिणः, गण्डमण्डलोद्भासिनी मदलेखेव गन्धद्विपस्य, उपहितकान्तिपतिपरभागा लक्ष्मच्छायेव चन्द्रमसः, विकासशोभापेक्षिणी मधुकरावलीव कमलाकरस्य ····श्मश्रुराजिलेखा।'

श्लेष का पुट भीतर रखे उपमा की झलक भी देखिए :—

'(कादम्बरी) मुररिपुशयनलीलेन मन्दोच्छ्वसितशेषा निमीलितलोचना किमपि चिन्तयति। कुन्दकलिकेव तुषारसिक्तपल्लववर्तिनी वनानिलेनायास्यते।··ज्ञानकीव पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य इव चम्पकाशोकेभ्यो बिभेति। ग्रीष्मलक्ष्मीरिवानुदिनमतिक्षामा भवति'।

उत्प्रेक्षा के रूप में अप्रस्तुत-विधान का भी शृंखलारूप एक नमूना देखिए :—

'आचरणादुत्कण्टकमनवरतमदनशरशल्यनिकरचितमिव शरीरमुद्वहन्तम्, उद्विकासिकेतक-रजःपटलधवलं प्रथमतरमेव भस्मसात्कृतमिव मदनहुतभुजा ··· उद्वेगावर्जितेन नयनजलस्रोत-सात्मने जलमिव प्रयच्छन्तम्, आत्मेच्छयैव मत्करग्रहणाय निर्वर्तितस्नानमिव स्वेदाम्भसा ··· आविष्टमिव, मत्तमिव ··· युवानम्।'

क्रमशः विरोधाभास और परिसंख्या का भी एक-एक उदाहरण देने की इच्छा हम संवरण नहीं सकते :—

'मधुरमपि दुःश्रवम्, सरसमपि शोषहेतुम्, कोमलमपि कठोरम्, नम्रमप्युन्नतम्, पेशलम-प्यहंकृतम्, ललितमपि प्रौढम् (आलापम्)।

'राजधर्मोऽनुरुद्धो न स्वरुचिः। वृद्धाः समासेविता न व्यसनानि। सतां चरितान्यनुवर्तितानि नेन्द्रियाणि, धनुरुन्नमितं न मनः। वृत्तं रक्षितं न शरीरम्, वाच्यात् भीतं न मरणात्'।

कुछ लोग, विशेषतः पाश्चात्य आलोचक बाण तथा भूषण के इन लम्बे लम्बे, समासबहुल कठिन वर्णनों को भाषा का एक ऐसा जंगल कहते हैं, जहाँ दुरूह क्लिष्ट समस्त शब्दों के रूप में भयंकर हिंस्र जन्तु घूमते रहते हैं, जिनसे पाठक बटोही वेचारा बहुत डर जाता है और घबराकर, ऊब कर बाहर निकलने को आतुर हो उठता है। वे हमें 'कादम्बरी' का दोष बताते हैं, किन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि बाण और भूषण का अवमूल्यन करने वाले वे यह क्यों भूल जाते हैं कि 'कादम्बरी' शैलीप्रधान रचना है और जैसा कि हम पीछे संकेत कर आए हैं—उस समय

काव्य की उत्कृष्टता मापने की यही एक मात्र शैली अथवा मानदण्ड था। गद्य काव्य का जीवित ओज ही होता था, जिसमें समासों की आढ्यता रहती थी ('ओजः समासभूयस्त्वम्, एतद् काव्यस्य जीवितम्') इसमें वाण अथवा भूषण का क्या दोष? दूसरे, उस समय संस्कृत 'मृत भाषा' नहीं थी जैसी आजकल है, वह 'जीवित भाषा' थी । समझने में कोई कठिनाई आगे नहीं आती थी। फिर भी कादम्बरीकारों को अपने पाठकों की इस शिकायत का आभास होता रहता है और वे सुबन्धु की तरह उन्हें जंगल में ही भटकते रहने देना नहीं पसन्द करते हैं। थोड़ी ही देर बाद वे पाठक बटोहियों को जंगल से बाहर निकाल कर उनके विश्राम हेतु सरस, हरित शाद्वल का निर्माण कर देते हैं। वह शाद्वल होता है अन्तर्जगत्—मानव-हृदय के कोमल मधुर भावों का सरस, सरल धरातल। कला एकदम बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी (*Subjective*) हो जाती है तथा भाव-प्रधान बन जाती है। भावात्मक स्थलों में उतरते ही वाक्यों की गति मन्थर पड़ जाती है। समास समाप्त हो जाते हैं। होते हैं भी तो छोटे छोटे और नितान्त सुबोध। भावों की तरह शैली में भी मधुरता और कोमलता आ जाती है वाण और भूषण ने हृदय की मार्मिक भूमि प्रेम, करुणा, वेदना, ज्ञान आदि मनोभावों का विश्लेषण और चित्रण इसी सरल शैली में किया है, जिसे वैदर्भी रीति कहते हैं। इस तरह वाण तथा भूषण की भाषा शैली विषय के अनुरूप ही चलती है। यही उनकी समन्वयात्मक शैली है। भूषणभट्ट ने अन्तर्जगत्—शोक, करुणा, प्रबोधन, प्रेम आदि मनोभावों—का चित्रण इसी सरल शैली में कर रखा है। उदाहरण के लिए विलासवती का शोकोद्गार देखिए :—

'...त्स, जगदेकचन्द्र, चन्द्रापीड, चन्द्रानन, गच्छत एव ते मयाऽस्य हतहृदयस्य ... दुष्करं मे वत्सस्य पुनर्मुखावलोकनमिति। बलाद् गतोऽसि। किं करोमि? को वात्र ...य। मन्दभाग्याया ममैवैतान्यपुण्यानां विलसितानि'।

...सी तरह मेघनाद के प्रति चन्द्रापीड की वैशम्पायन-विषयक जिज्ञासा देखिए :—

'अयि, दृष्टस्त्वयाच्छोदसरसि वैशम्पायनः? पृष्टो वावस्थान-कारणम्? पृष्टेन वा किञ्चिद् न वा? पश्चात्तापी वास्मद्-परित्यागेन? स्मरति वास्माकम्? पृष्टोऽसि वानेन ...न्मदीयम्?'

अधिक उदाहरणों के विस्तार में न जाकर हम वाण और भूषण–दोनों पिता-पुत्रों में भावाभिव्यक्ति के सम्बन्ध में एक उल्लेख्य बात अन्त में यह बता देना चाहते हैं कि जब किसी मनोभाव को, चाहे वह संचारी हो अथवा असंचारी–तीव्रता अथवा अतिरेक देना हो, तो वे उसका मूर्तकरण अथवा चेतनीकरण कर देते हैं। उदाहरण के लिए उत्तरभाग के आरम्भ में ही पत्रलेखा द्वारा चन्द्रापीड को लिवा लाने का आश्वासन दिए जाने पर भूषणभट्ट का कादम्बरी-गत लज्जादि भावों का चित्रण देखिए :—

'अपि चेदानीमानीतस्यापि कुमारस्य न ददाति तरलता–लज्जिता लज्जैव दर्शनम्। मनोभवविकारवेदनाविलक्षं वैलक्ष्यमेव न पुरस्तिष्ठति। अप्रतिपत्तिसाध्वसजडा जडतैव नोपसर्पति। स्वयमुपसर्पणलघु लाघवमेव तत्प्रतिपत्तिस्थैर्यं नावलम्बते'।

भूषणभट्ट को इसकी प्रेरणा अपने पिता से ही मिली है। देखिए वाण का पूर्वभाग :—

"तस्याः सकाशादशिक्षतेव लज्जापि लज्जा–लीलाम्, विनयोऽपि विनयातिशयम्, मुग्धतापि मुग्धताम् .... विलासोऽपि विलासम्"।

जो भारतीय विद्वान् आजकल अमूर्त भावों के मूर्तकरण (Personification) को पश्चिम से आयातित मानते हैं, वे सरासर भ्रम में हैं। यह तो हमारे यहाँ वैदिककाल से चला आ रहा है। इस तरह भूषणभट्ट पिता की तरह ही भावजगत् के भी वैसे ही सिद्धहस्त चितेरे हैं जैसे बहिर्जगत् के।

भूषणकालीन भारत :—

कोई भी कवि या कलाकार जब कोई रचना करता है, तो उसका अपने समसामयिक समाज से प्रभावित होना स्वाभाविक है। उसके वे प्रभाव, समसामयिक गतिविधियाँ—चाहे राजनैतिक हो, धार्मिक हो या अन्य हो—उसकी कृति में यत्र-तत्र स्वतः बिखरी रहती हैं। बाण के पूर्व भाग में तो समाज के व्यापक प्रभाव अभिव्यक्त हो सके हैं, लेकिन भूषण के उत्तर-भाग में वे सीमित हैं।

भूषणभट्ट के काल में समाज का गठन वर्ण और आश्रम व्यवस्था के रूप में मिलता है। ब्राह्मण-वर्ग उच्च माना जाता था और वह समाज में आदर का पात्र था। ब्राह्मण साधारणतः अध्ययन-अध्यापन, यजन याजन आदि षट्कर्मा ('षट्कर्मा विप्रः') होते थे, किन्तु वे मन्त्री आदि का काम भी कर लिया करते थे। तारापीड़ का मन्त्री शुकनास और चन्द्रापीड़ का मन्त्री पुण्डरीक दोनों ब्राह्मण थे। देश में राजत्व प्रणाली प्रचलित थी, गणतन्त्रामक नहीं। राजा भी कुलक्रमागत होते थे। राजगृह दीर्घिकाओं उद्यानों, आरामों और क्रीड़ापर्वतों से सम्पन्न रहते थे। राजाओं में कूटनीति भी चलती रहती थी। सेना में घोड़े, हाथी और पदाति का ही उल्लेख है, रथों का नहीं। मन्त्री की तरह सेनापति भी कुलक्रम से लिया जाता था, मनोनीत नहीं। महाराजाधिराज सम्राट् होता था, जिसके नीचे अनेक माण्डलिक राजा ('राजन्यसहस्राणि') रहते थे। पुत्र का विवाह करके उसे राज्यभार सौंप राजा वानप्रस्थी हो जाते थे, मृत्यु तक सत्ता से चिपके नहीं रहते थे।

देश में शिक्षा का पूरा प्रबन्ध था। लड़कियों को भी शिक्षा मिला करती थी, किन्तु उनका पाठ्यक्रम प्रायः साहित्य न होकर कलासम्बन्धी एवं गृहसम्बन्धी हुआ करता था। नृत्य और संगीत का विशेष प्रचार था। चित्रकला और मूर्तिकला भी लोकप्रिय थी। 'उत्किरण'—पत्थर और सुवर्णादि धातुओं पर मूर्ति उकेरना—('उत्कीर्णेव') 'पुस्त'—मिट्टी की बनी गुजरी आदि की कलाकारी (पुस्तमय इव'), 'रौप्यरस'—सोना चाँदी का मुलम्मा चढ़ाना—आदि शिल्पों का भी प्रचलन था। जड़ीबूटियों से विषनिर्हरण की विधि भी लोग जानते थे। विविध रोगों का ज्ञान और उनकी चिकित्सा भी चल पड़ी थी। स्त्रीवीर्य अथवा पुरुषवीर्य के अनुसार जातक का गर्भ में ही या गर्भ से बाहर आने पर मर जाना, अल्पायु अथवा दीर्घायु होने का आयुर्विज्ञान जाबालि ने अपने पुत्र हारीत को सुना ही रखा है। शुकनास के मुँह से नानाविध द्रव्यसंयोग से कुछ का कुछ प्रभाव हो जाने का उल्लेख रासायनिक (Chemistry) की ओर संकेत करता है।

समाज में बाल-विवाह नहीं होते थे। पर्दाप्रथा नहीं के बराबर थी। रानी विलासवती विना पर्दा के आम लोगों के बीच 'वार्ताहरों' से बातें करती देखी गई है। चन्द्रापीड़ को विवाह के बाद कादम्बरी का हाथ पकड़े माता-पिता के सामने हम खड़ा देखते हैं। महिलाओं के प्रति भद्र व्यवहार हुआ था। गृहस्थ जीवन का वातावरण सौहार्दपूर्ण रहा करता था। घर में सर्वेसर्वा होता हुआ भी पुरुष घरेलू मामलों में पत्नी की राय ले लिया करता था। चन्द्रापीड़ के विवाह के सम्बन्ध में तारापीड़ का विलासवती के साथ विचार-विमर्श से मालूम होता है कि पुत्र-पुत्री का विवाह प्रश्न पिता-माता के हाथ में रहता था, किन्तु स्वयंवरप्रथा भी प्रचलित थी। महाश्वेता और कादम्बरी के विवाह प्रणय-विवाह ही थे, जिनका उनके माता-पिताओं ने हृदय से अभिनन्दन किया। सती-प्रथा प्रचलित थी। प्रियतम की मृत्यु पर महाश्वेता और कादम्बरी सती होने को तय्यार हीं तो थी, किन्तु समाज में सती-प्रथा का विरोध उठ खडा हो गया था। बाण ने पूर्व भाग में महाश्वेता के 'अनुमरण' (सती होने) के प्रयत्न के विषय में

चन्द्रापीड़ के मुँह से उसे आत्महत्या, मूर्खता और महापाप की संज्ञा दिलवाई। चन्द्रापीड़ की मृत्यु पर तारापीड़ और विलासवती के अग्निप्रवेश के प्रयत्न से पता चलता है कि पुत्र-विनाश पर कहीं-कहीं माता-पिता का भी चिता बनाकर भस्म होने का रिवाज था।

धार्मिक क्षेत्र में श्रौत-स्मार्त विधि-विधानों और अनुष्ठानों का पूरा-पूरा पालन होता रहता था। वैदिक और अवैदिक कर्मों द्वारा अभीष्ट सिद्धि पर लोगों का विश्वास जमा हुआ था। पुत्र की आयु-वृद्धि हेतु स्वयं राजा तारापीड़ मृत्युञ्जय मंत्र का जप कर रहे थे। पूर्व जन्म और अगले जन्म में, शाप और वरों में लोगों को दृढ़ आस्था थी। देवमन्दिरों में से उज्जयिनी में महेश्वर-मन्दिर, कार्तिकेय मन्दिर एवं मातृमन्दिर का उल्लेख मिलता है। मनोकामना-पूर्ति हेतु मातृमन्दिर में मनौती भी की जाती थी। टोणे-टोटके भो चलते रहते थे। भूत-प्रेत ('आवि-ष्टेव') और ग्रह भी लोगों पर चिपटते हैं—यह विश्वास भी जनता में चला आ रहा था। ज्योतिष को भी लोग मानते थे और ज्योतिषियों से मुहूर्त निकलवा कर काम आरम्भ करते थे, किन्तु कभी-कभी कार्य की महत्ता एवं अनिवार्यता के आगे ज्योतिष की अवहेलना भी की जाती थी ('यस्यामेव वेलायां चित्तवृत्तिः, सैव वेला सर्वकार्येषु') तथा ज्योतिषी लोग कभी-कभी डर के मारे अशुभ मुहूर्त को शुभ भी कह देते थे जैसा कि हम चन्द्रापीड़ के सम्बन्ध में देखते हैं। देश में 'महाक्रतु' भी हुआ करते थे। जगह-जगह धर्मार्थ प्याऊ, कुआ, उद्यान और धर्मशाला आदि बनाये जाते थे। निम्न जाति के लोगों की धार्मिक क्रियायें तामसिक हुआ करती थीं। उनमें रुधिर द्वारा 'बलिपूजा' तथा 'पशु-उपहार' प्रचलित था। समाज में छूआछूत था। 'शबरावास' में तोते ने चण्डाल-कन्या के हाथ का भोजन नहीं खाया, फूलमूल ही खाए, वह भी 'प्राण-सन्धारण' हेतु।

हम देखते हैं कि भूषणभट्ट के उत्तर-भाग के घटना-चक्र का आधा भाग किम्पुरुषवर्ष अथवा गन्धर्वलोक में घटित हुआ है। पहले किम्पुरुषवर्ष पुराणों के अनुसार भारतवर्ष से भिन्न ही देश था, जो हिमालय की प्रथम श्रृंखला (Renge) में काश्मीर से लेकर हिमाचल, गढ़वाल, नेपाल और आसाम तक फैला हुआ था। रामायण (उ० का० सर्ग १०१) के अनुसार यह भरत ही थे जिन्होंने सर्वप्रथम आक्रमण करके और जीतकर इसका भारतवर्ष में विलय किया। यहाँ के आदिवासी अप्सरायें, किन्नर, किरात और सिद्ध होते थे, किन्तु विलय के बाद वहाँ भारी संख्या में भारतीय बस गए। अप्सरायें अपने बेजोड़ सौन्दर्य में जग-विख्यात हैं। उनमें उन्मुक्त प्रेम एवं स्वयंवर-विवाह प्रचलित था जैसे कि कादम्बरी के पिता चित्ररथ ने **अस्माकं परस्पराभिरुचि-निष्पन्नो धर्म्यो विवाहः'** कहकर स्पष्ट कर रखा है। किन्तु भारत में विलय के बाद जब दोनों संस्कृतियाँ आपस में मिल गईं तो भारत की एकपति-निष्ठा और सती-प्रथा इनमें भी चल पड़ी। इधर उनका स्वयंवर-विवाह भारत ने भी 'गन्धर्व-विवाह' नाम से अपना लिया। संगीत में गन्धर्व लोग बड़े प्रवीण होते थे। इनके संगीत से भारत इतना प्रभावित हुआ कि संगीत का नाम ही गन्धर्वों के नाम से 'गन्धर्व-विद्या' पड़ गया। वीणा इनका मुख्य वाद्य-यन्त्र होती थी। यह वीणा के साथ गा रही महाश्वेता की गीति ही थी, जिसने चन्द्रापीड़ पर जादू डाला था। इनके यहाँ भी राजत्व-प्रथा थी। धर्म में ये आस्तिक थे और पाप-पुण्य, पर-लोक, शाप आदि में आस्था रखते थे। ये 'शिव-पूजक' थे। अच्छोदसर के किनारे 'अमलमुक्ता-शिला-घटित' मन्दिर कादम्बरी के पिता का ही बनाया हुआ था, जहाँ उन्होंने शिव की 'चतुर्मुख-स्फटिक-मूर्ति' स्थापित कर रखी थी। तपस्या इनके यहाँ भी प्रचलित थी। तारापीड़ **'गन्धर्वलोकोचितानहरह उपचारान् अनिच्छन्'** इस कथनानुसार गन्धर्वों के भारतीयों से भिन्न और भी कितने ही **उपचार**—विधि-विधान—थे, जिनका महाश्वेता और कादम्बरी पालन कर रही थी, तारापीड़ नहीं, किन्तु भूषणभट्ट ने उनका कोई उल्लेख नहीं किया।

—मोहनदेव पन्त

, किन्तु
। नृत्य
ा'—
नरी
दि

कादम्बरी

उत्तरभागः

मङ्गलाचरणम्

देहद्वयार्धघटनारचितं शरीरमेकं ययोरनुपलक्षितसंधिभेदम् ।
वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्ध्यै सृष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ ॥ १ ॥

"छात्र-तोषिणी" टीका

सरस्वतीं प्रणम्यादौ पाद-पद्मं गुरोस्तथा ।
कादम्बर्युत्तरार्धस्य क्रियते "छात्र-तोषिणी" ॥ १ ॥
न कश्चिद् त्यज्यते शब्दः न च भाव उपेक्ष्यते ।
हस्तामलकितं सर्वं छात्राणां हितकाम्यया ॥ २ ॥

निर्विघ्न-ग्रन्थपरिसमाप्ति-कामो ग्रन्थकारः आदौ मङ्गलमाचरति **देहद्वयेति** ।

अन्वयः—ययोः देह···रचितम् शरीरम् अनुप···भेदम् [सत्] एकम् [अस्ति] सुदुर्घ··· गन्धर्वलो सृष्टेः गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ वन्दे ।

था, **देह०**—द्वौ अवयवौ अस्येति **द्वयम् देहयोः द्वयम्** द्वे शरीरे इत्यर्थः तस्य ये **अर्धे**= नेपागौ तयोः **घटनया**=सम्मिलनेन **रचितम्**=निर्मितम् **शरीरम् अनुप०**—न उप-भतः=दृष्टः **सन्धेः**=सन्धानस्य सम्मिलनस्येत्यर्थः **भेदः**=भिन्नता भेदक-चिह्नमिति यावत् स्मन् तथाभूतम् एकम् अर्थात् परस्पर-सम्मिलनेन द्वयोः शरीरयोः एकं शरीरं जातम्, किन्तु कुत्रापि स्थाने तयोः सम्मिलनस्य चिह्नं न दृश्यते, पूर्णतया एकाकारभूतमिति यावत्, **सु**=सुष्ठु **दुः**=दुःखेन घटयितुं शक्या इति सुदुर्घटा संयोजयितुम् अतिकठिना दुष्पूरेत्यर्थः या **कथा**=पूर्वभागगता कादम्बरी-कथा तस्याः यः **परिशेषः**=अवशिष्ट-भागः तस्य **सिद्ध्यै**= निष्पत्त्यै पूर्तये इत्यर्थः **तौ** प्रसिद्धौ **सृष्टेः**=संसारस्य **गुरू**=माता-पितरौ निर्मातारौ इत्यर्थः **गिरेः**=हिमालय-पर्वतस्य **सुता**=पुत्री पार्वतीत्यर्थः च **परमेश्वरः**=**महादेवः**=शिवश्च तौ **वन्दे**=प्रणमामि ।

टिप्पणी—यहाँ कवि अर्धनारीश्वर महादेव को प्रणमन कर रहा है, जिसमें आधा शरीर महादेव और आधा पार्वती का है, एवं जो मिलकर पूरी तरह से एकाकार हो गये हैं । कवि का यह मंगलाचरण-श्लोक उसकी कथा की ओर संकेत कर रहा है । पिता की मृत्यु के कारण कादम्बरी की कथा अधूरी ही छूट गई थी । पुत्र भूषणभट्ट ने वह पूरी की । आश्चर्य तो यह है कि कथा की टूटी हुई श्रृंखला उसने ऐसी निपुणता से जोड़ी कि अर्धनारीश्वर की तरह दोनों भाग एकाकार हो गए हैं । पाठकों को कठिनता से पता चलेगा कि उत्तरार्ध भाग बाण का नहीं; किसी और का है । यहाँ जोड़ होने पर भी जोड़ का पता न चलना बताया गया है, इसलिए

मैं बड़ी कठिनतासे जोड़े जाने वाले कथा के शेष-भागकी पूर्ति हेतु सृष्टि-जनक उन पार्वती-परमेश्वर को नमन करता हूँ, जिनका दो शरीरों के आधे-आधे भागोंको जोड़ने से बना हुआ शरीर ऐसा एक [—रूप] हो गया है कि जहाँ जोड़ का भेदक चिह्न नहीं दिखाई देता ॥१॥

व्याधूतकेसरसटाविकरालवक्त्रं हस्ताग्रविस्फुरितशङ्खगदासिचक्रम् ।
आविष्कृतं सपदि येन नृसिंहरूपं नारायणं तमपि विश्वसृजं नमामि ॥ २ ॥

उपोद्घातः

आर्यं यमर्चति गृहे गृह एव लोकः पुण्यैः कृतश्च यत एव ममात्मलाभः ।
सृष्टैव येन च कथेयमनन्यशक्त्या वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि ॥ १ ॥

विशेषोक्ति अलंकार है ['सति हेतौ फलाभावः' विशेषोक्तिः]। कथा के उत्तरार्ध-पूर्वार्ध दोनों भाग अर्धनारीश्वर की तरह एकाकार होकर जुड़े हुए हैं—यह उपमा ध्वनि है। श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है [उक्ता वसन्ततिलका त-भ-जा ज-गौ गः]।

व्याख्या—अधिकस्याधिकं फलमिति न्यायेन ग्रन्थकारो मङ्गलान्तरमाचरति **व्याधूतेति ।**

अन्वयः—येन व्याधूत'''वक्त्रम्, हस्ता'''चक्रम्, सपदि नृसिंह-रूपम् आविष्कृतम्, तम् अपि विश्वसृजम् नारायणम् नमामि ।

येन [नारायणेन] **व्याधूत०**—**व्याधूताः**=प्रकम्पिताः याः **केसराणम्**=स्कन्धगत-वालानाम् **सटाः**=समूहाः ताभिः **विकरालम्**=भयङ्करम् **वक्त्रम्**=मुखं यस्य तथाभूतम् **हस्ता०**—**हस्तानाम्**=चतुर्णां भुजानाम् **अग्रेषु**=अग्रभागेषु **विस्फुरितानि**=विभ्राजितानि **शङ्खश्च गदा** च **असिः**=खड्गश्च **चक्रश्च** यस्य तथाभूतम्, **सपदि**=झटिति **नृसिंहस्य**=नरसिंहस्य **रूपम्**=शरीरमित्यर्थः **आविष्कृतम्**=प्रकटितम् **तम् अपि विश्वं**=जगत् **सृजति**=निर्मातीतित विश्वसृजम् **नारायणम्**=विष्णुम् नमामि अर्थात् भक्तप्रह्लाद-त्राणाय येन नारायणेन भीषणो नरसिंहावतारो धृतः तमप्यहं प्रणमामि ।

टिप्पणी—यहाँ विष्णु के नरसिंहावतार का उल्लेख किया गया है। पद्म-पुराण के अनुसार राक्षसराज हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद विष्णु का परम-भक्त था। पिता के रोकने पर भी जब वह विष्णु-भक्तिसे नहीं हटा तो राक्षसराज ने उसे बड़ी-बड़ी यातनायें दीं। अन्त में खंभे में बाँधकर कहा—'बता कहाँ है तेरा विष्णु ?' प्रह्लाद की प्रार्थना पर तत्काल खंभा फाड़कर विष्णु भगवान् नरसिंहावतार धारणकर प्रकट हो गए और हिरण्यकशिपु को नाखूनों से चीर कर क्षण में हीं समाप्त कर दिये। इस श्लोक में भी वसन्ततिलका ही छन्द है।

व्या०—मङ्गलाचरणानन्तरं कविः प्रकृतमनुसरति **आर्यमिति । अन्वयः**–सरलः **आर्यम्**–आदरणीयम् **यम्**—तातम् **गृहे-गृहे**—प्रतिगृहम् **लोकः**=सकला जना एव **अर्चति**—पूजयति, **पुण्यैः**=पूर्व-जन्मकृतैः सत्कर्मभिः **यतः**—यस्मात् तातात् **मम**=भूषणभट्टस्य **आत्मनो लाभः**=जन्मेत्यर्थः **कृतः**—प्राप्तः, **येन**=तातेन च न अन्या यस्याः तथाभूता अनन्यसाधारणा अप्रतिमेति यावत् चासौ **शक्तिः**=कवित्व-शक्तिः काव्य-निर्माण-नैपुणीत्यर्थः तया **इयम् कथा**—'कादम्बरी' **सृष्टा**=रचिता एव, **वागीश्वरम्**=वाचाम् ईश्वरम् वाचि कृताधिकारमिति यावत् **तम् पितरम्** स्वजनकं बाणभट्टमित्यर्थः **आनतः अस्मि एव**=प्रणमामि। गृहे-गृहे प्रासादरम्, मज्जन्मदातारम्, अनन्य-साधारणकवित्वशक्तिकम्, कादम्बरीप्रणेतारम्, वाचस्पतिं स्वपितरं वन्दे इति भावः।

टिप्पणी—यहाँ श्लोक के चारों ही पादों में कवि ने 'एव' शब्द का प्रयोग कर रखा है, जो या तो अधिकपदत्व या अस्थानस्थपदत्व दोषको स्थान दे रहा है। यहाँभी छन्द पूर्ववत् ही है।

जिसने हिलाई हुई केसर-सटा से भीषण बने मुख वाला तथा हाथों के अग्र-भागमें देदीप्यमान शंख, गदा, खड्ग और चक्र वाले नरसिंह का रूप झट प्रकट कर दिया था, उस जगत्-स्रष्टा नारायण को भी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

जिस आर्य को घर-घर में लोग पूजते हैं, पुण्य कर्मों द्वारा जिससे मुझे जन्म प्राप्त हुआ है, जिसने अनन्य-साधारण [कवित्व-] शक्ति से यह [कादम्बरी-] कथा रची है, उस वाचस्पति पिता को मेरा नमन है ॥ ३ ॥

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥ २ ॥
गद्ये कृतेऽपि गुरुणा तु तथाक्षराणि यन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभावः।
एकप्लवामृतरसास्पदचन्द्रपादसंपर्क एव हि मृगाङ्कमणेर्द्रवाय ॥ ३ ॥

व्या०—याते दिवमिति। अन्वयः सरलः। **पितरि**=जनके **दिवम्**=स्वर्गम् **याते**=गते सति मृते इत्यर्थः **तस्य**=पितुः **वचसा**=वाण्या **सार्धम्**=सह एव **भुवि**=जगति **यः कथा-प्रबन्धः**=कादम्बरीरूप-काव्य-ग्रन्थः अथवा कथायाः प्रबन्धः=क्रमः **विच्छेदम्**=भङ्गम् विराममिति यावत् **आप**=प्राप्तवान्, मरणे पितुः वाग्विरामे ग्रन्थोऽपि विरतः, न पूर्णतां गत इति भावः। **सताम्**=सज्जनानाम् विदुषामिति यावत् **यस्य**=कादम्बरीग्रन्थस्य **असमाप्तिः**=अपूर्णता तया **कृतम्** **दुःखम्**=खेदम् **विलोक्य**=दृष्ट्वा एव मया **सः**=ग्रन्थः **प्रारब्धः**=पूर्णतां नेतुं प्रक्रान्तः, **न तु कवित्वस्य**=काव्यरचयितृत्वस्य **दर्पात्**=अभिमानात्, 'अहं कविरस्मि' इत्यभिमानमवलम्ब्य नाहं पितुरपूर्णां कृतिं पूरयितुं प्रयते, अपितु 'अपूर्ण-कृत्या विद्वांसः खिद्यन्ते' इति कृत्वैवेति भावः। एतेन भूषणभट्टस्य विनयातिशयो व्यज्यते।

टिप्पणी—इस श्लोक में वाक्य-निर्माण कुछ त्रुटि-पूर्ण है। पूर्वार्ध में **'यत्'** से आरब्ध विशेषणात्मक उपवाक्य जैसे **'आप'** इस तिङन्त क्रिया से समाप्त हुआ है, उसी तरह तृतीय पाद का **'यत्'** से बना उपवाक्य भी तिङन्त से समाप्ति चाहता है, जो हो न सकी है। यहाँ 'यत्' के स्थान में **'तत्'** पाठ देकर समाधान हो सकता है। श्लोक में वाक्-विच्छेद के साथ ही कथा-प्रबन्ध-विच्छेद होने में सहोक्ति अलंकार है। एवं शब्द का सम्बन्ध **'विलोक्य'** के साथ होने के कारण उसे वहाँ न रखकर **'प्रारब्ध'** के साथ रखने पर अस्थानस्थ-पदता दोष है। वृत्त पूर्ववत् है।

व्या०—गद्ये कृतेऽपीति। **अन्वयः**—गुरुणा कृते गद्ये अपि यत् मे अक्षराणि तथा निर्गतानि, सः पितुः एव अनुभावः [अस्ति], मृगाङ्कमणेः द्रवाय हि एक···संपर्कः एव [कारणं भवति]।

गुरुणा=पित्रा, **कृते**=रचिते **गद्ये**=कादम्बर्यात्मक-गद्यकाव्ये **अपि यत् मे अक्षराणि**=कथापूरकपदानीत्यर्थः **तथा**=तेनैव प्रकारेण **निर्गतानि**=निःसृतानि अर्थात् यथा पित्रा लिखितानि, तथैव यन्मयाऽपि लिखितानि, सः पितुः **एव अनुभावः**=प्रभावः कृपेति यावत् अस्ति; **हि**=यतः **मृगाङ्कमणेः**=चन्द्रकान्तमणेः **द्रवाय**=द्रुतये स्रवणायेति यावत् एकः=मुख्यः असाधारण इति यावत् ['एके मुख्यान्यकेवलाः' इत्यमरः] प्लवः प्रवाहो यस्य तथाभूतः यः अमृतरसः=सुधारसः तस्य **आस्पदम्**=स्थानं यश्चन्द्रः तस्य **पादानाम्**=किरणानाम् **सम्पर्कः**=संसर्गः एव कारणं भवतीति शेषः। यथा अमृत-भरित-चन्द्र-किरण-प्रभावेण चन्द्रकान्त-मणिः प्रस्रवति तथैव अहमपि पितृ-कृपा-प्रभावेणैव लिखामीति भावः।

टिप्पणी—यहाँ अपने द्वारा कादम्बरी की शेष कथा लिखी जाने के समानान्तर कवि ने चन्द्र किरणों द्वारा चन्द्रकान्त-मणि का पिघलना रखा है, इसलिए दृष्टान्त अलंकार है। दृष्टान्त वहाँ होता है जहाँ दो समानान्तर वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव सम्बन्ध अर्थात् छिपा हुआ सादृश्य हो।

पिता के स्वर्ग सिधारने पर उनकी वाणी के साथ-साथ ही जगत में [कादम्बरी] कथा का जो क्रम (बीच में ही) टूट गया था तथा जिसकी असमाप्ति से विद्वान् लोगों को खेद हो रहा था, उसे देख कर (ही) मैंने इसे आरम्भ किया है, न कि (अपने) कवित्व के अभिमान में आकर ॥ २ ॥

पिता द्वारा लिखे हुए गद्यकाव्य में भी जो मेरे अक्षर उसी तरह [लेखनी से] निकल पड़े हैं, वह मेरे पिता का ही प्रभाव है। चन्द्रकान्त मणि के पिघलने के लिए असाधारण अमृत रसप्रवाह वाले चन्द्रमा की किरणों का संपर्क ही कारण हुआ करता है ॥ ३ ॥

गङ्गां प्रविश्य भुवि तन्मयतामुपेत्य स्फीताः समुद्रमितरा अपि यान्ति नद्यः ।
आसिन्धुगामिनि पितुर्वचनप्रवाहे क्षिप्ता कथानुघटनाय मयापि वाणी ॥ ४ ॥
कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम् ।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसन्दधानः ॥ ५ ॥

व्या०—गङ्गामिति—अन्वयः—भुवि इतराः [क्षुद्राः] नद्यः अपि गङ्गाम् प्रविश्य, तन्मयताम् उपेत्य स्फीताः [सत्यः] समुद्रम् यान्ति, मया अपि आसिन्धुगामिनि पितुः वचनप्रवाहे कथानुघटनाय वाणी क्षिप्ता ।

भुवि—पृथिव्याम् **इतराः**=अन्याः **नद्यः**=क्षुद्रसरित इत्यर्थः । अपि **गङ्गाम्**=भागीरथीम् **प्रविश्य**—गत्वा ता एव तन्मया तस्या भावः **तन्मयता** ताम् **उपेत्य**=प्राप्य **स्फीताः**—विपुलाः सत्यः **समुद्रम्**—सागरम् **यान्ति**—गच्छन्ति; मया अपि भूषणभट्टेन **सिन्धुम्**—सागरम् मर्यादीकृत्येति आसिन्धु=सागरपर्यन्तं गच्छतीति तथोक्ते पितुः वचनानां प्रवाहे=शब्दविन्यास-नद्याम् कथायाः=कादम्बरी-ग्रन्थस्येत्यर्थः **अनुघटनाय**—संयोजनाय पूर्तये इति यावत् **वाणी क्षिप्ता**—प्रेरिता अर्थात् यथा क्षुद्रा अपि नदी गङ्गायाम् प्रविश्य विपुलीभूय समुद्रं गच्छति तथैव मम क्षुद्रा वाणी अपि पितुः कथा-सरिति प्रविश्य कथासमुद्रं प्राप्नोति, पितुः कृपया एव अपूर्णं कादम्बरी-ग्रन्थम् अहं समापयामीति यावत् ॥ ४ ॥

टिप्पणी—यहाँ भी भूषणभट्ट विनयातिशय व्यक्त कर रहे हैं कि जिस तरह गन्दे नदी-नाले भी पवित्र गंगा नदी में मिलकर पवित्र और विशाल हो समुद्र तक पहुँच जाते हैं, उसी तरह मेरी दोषपूर्ण वाणी भी पिता के परम उत्कृष्ट पूर्व भाग से जुड़कर कथा को समाप्ति तक ले जा रही है । यहाँ रूपकालंकार है ।

व्या०—कादम्बरीति । अन्वयः—अयम् समस्त एव जनः कादम्बरी-रस-भरेण मत्तः [सन्] नकिञ्चित् अपि चेतयते, यत् रसवर्णविवर्जितेन अपि आत्मवचसा तच्छेषम् अनुसंदधानः (अहम्) न भीतः अस्मि ।

अयम् समस्तः—सकल एव **जनः**=लोकः **कादम्बरी**=कथाविशेषः एव **कादम्बरी**=सुरा तस्याः **रसः**=शृङ्गारादि-रूपः एव **रसः**—स्वादः तस्य **भरेण**—अतिशयेन **मत्तः**—क्षीवः सन् न किञ्चित् अपि **चेतयते**—विवेचयति, यत्=यस्मात् एतस्मात् कारणात् एव रसः=शृङ्गारादिरूपः तस्य व्यञ्जकाः वाणीः इति रसवर्णाः [मध्यमपदलोपी स०] तैः **विवर्जितेन**—रहितेन अपि **आत्मनः वचसा**—स्ववाण्या **तस्याः**=कादम्बरीकथायाः **शेषम्**=अवशिष्ट-भागम् **अनुसन्दधानः**—संयोजयन् पूरयन्नित्यर्थः न भीतोऽस्मि=न विभेमि; अयं भावः—शृङ्गारादिरसभरिता मत्पितृ-लिखिता कादम्बरी-कथा वस्तुतः सुरा अस्ति, यत्पानेन सर्वोऽपि संसारः मदमत्तो भूत्वा चेतनारहितो जातः, अत एवासौ शृङ्गारादिरसरहितां दोष-पूर्णाम् अपि मल्लिखितावशिष्टकथां न तथा मन्यते मदमत्तानां गुणदोषविवेचनासामर्थ्यात् । अत एव सदोषं लिखन्नप्यहं न विभेमि । अत्रापि कवेर्विनयो व्यज्यते ॥ ५ ॥

टिप्पणी—यहाँ कवि श्लेषालंकार का बड़ा चमत्कार दिखा गया है । कादम्बरी पर वह कादम्बरीत्व [सुरात्व] और शृङ्गारादि रस पर रसत्व [स्वादत्व] का आरोप करके दोनों का एकीकरण कर देता है । कादम्बरी कथा के शृङ्गारादि रस से पाठक ऐसा विभोर हो जाता है

पृथिवी पर [छोटी-छोटी] नदियाँ भी गंगा में जाकर, तन्मयता प्राप्त करके विशाल होती हुई समुद्र में पहुँच जाती हैं; मैंने भी [कथा-रूपी] समुद्र तक जाने वाली पिता की वाणी-रूपी नदी में कथा जोड़ने के लिए अपनी वाणी प्रेरित कर दी है ॥ ४ ॥

ये सारे लोग कादम्बरी [कथा] के रस [शृंगार आदि] के रूप में कादम्बरी (मदिरा) के रस [स्वाद] के अतिरेक से मत्त हुए कुछ भी चेतना नहीं रख रहे हैं, इसी कारण रस-व्यञ्जक अक्षरों से रहित होती हुई भी अपनी वाणी द्वारा उसका शेष भाग रचता हुआ मैं (आलोचकों से) डरा हुआ नहीं हूँ ॥ ५ ॥

**बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि [1]वप्त्रैव यान्युचितकर्मबलात्कृतानि ।
उत्कृष्टभूमिविततानि च यान्ति पोषं तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि ॥ ६ ॥**

जैसे मदिरा-रस से कोई व्यक्ति मदमत्त होता है। यही कारण है कि मेरी रची हुई अवशिष्ट कथा में उसे दोष नहीं दिखाई पड़ते हैं। तब मैं अपने दोषों के लिए किसीसे डरूँ तो क्यों डरूँ ? यहाँ दो विभिन्न कादम्बरियों और रसों में अभेदाध्यवसान होने से भेदे अभेदातिशयोक्ति अलंकार है।

यहाँ 'अयम् जनः' का कवि की ओर भी संकेत हो सकता है अर्थात् कादम्बरी के रस-पान से मैं इतना मत्त हुआ बैठा हूँ कि अपनी सारी चेतना खो बैठा हूँ। इसीलिए त्रुटिपूर्ण लिख रहा हूँ, वह भी निर्भय होकर। मदमत्त को न भय होता है, न त्रुटिज्ञान, निर्भय हो वह सब कुछ बोल जाता है।

व्या०—बीजानीति—अन्वयः—गर्भितफलानि यानि बीजानि वप्त्रा एव उत्कृष्ट-भूमि-विततानि, उचित-कर्म-बलात् च विकासभाञ्जि कृतानि (सन्ति) पोषम् यान्ति, तानि तु तस्य तनयेन संहृतानि। गर्भः सञ्जातः अस्येति [गर्भ+इतच्] **गर्भितम्**=अन्तः स्थितम् **फलम्**—[काव्य-पक्षे] उद्देश्यम्, सहृदयानन्दजननमित्यर्थः [कृषिपक्षे] धान्यादि येषु तथाभूतानि यानि **बीजानि**=बृहत्कथादिस्थितमूलानि, अन्यत्र धान्यादिकारणानि, **वप्त्रा**=पित्रा वाणेनेत्यर्थः, अथ च वपनकर्त्रा कृषकेण एव उत्कृष्टा=रसादिना उत्कर्षं गता, अथ च उर्वरा या भूमिः=काव्य-स्तरः; क्षेत्रम् तत्र विततानि=विस्तारितानि; विकीर्णानि, उचितं यत् कर्म=कल्पना; जलसेकादि तस्य **बलात्**=प्रभावात् च **विकासम्**=संवर्धनम् भजन्तीति तथोक्तानि **कृतानि**=विहितानि सन्ति **पोषम्**=परिपुष्टिम्; समृद्धिम् **यान्ति**=प्राप्नुवन्ति तानि=बीजानि तु **तस्य**=वप्तुः—पितुः कृषकस्य च **तनयेन**=पुत्रेण भूषणभट्टेन, अथ च कृषकसूनुना **संहृतानि**=उपसंहृतानि; एकत्रीकृतानि। अयंभावः—यथा कश्चित् कृषकः उर्वरभूमौ बीजानि उप्त्वा जलसिञ्चनादिक्रियया च विकासं नीत्वा पुष्णाति, तत्पुत्रश्च फलीभूतानि तान्येव संगृह्णाति, तथैव पित्रा बाणभट्टेन बीज-रूपेण बृहत्कथागतं यत् कथानकमादाय उच्चकाव्यक्षेत्रे संस्थाप्य रसनादिव्यापारेण च सम्यक् परिपोष्य अर्धे एव त्यक्तम् तत् एव तत्पुत्रेण भूषणभट्टेन उपसंहृतम् ॥ ६ ॥

टिप्पणी—यहाँ ग्रन्थकार श्लेष द्वारा दो समानान्तर अर्थों का प्रतिपादन कर रहा है। प्रकृत अर्थ तो काव्यपरक ही है अर्थात् बीज रूपसे लेकर जो कथा पिता ने आरम्भ की और उसे उत्कृष्ट काव्य-स्तर पर पहुँचा कर तथा रसादि सामग्री से अच्छी तरह विकसित और परिपुष्ट करके बीच में ही छोड़ दी थी, वह उसके पुत्र ने पूरी की; किन्तु शब्दविन्यास से यहाँ किसान द्वारा बीज बोना और सींचना, गोड़ना आदि व्यापार से उसे पुष्ट-समृद्ध-करना तथा अन्त में उसके पुत्र द्वारा फसल काटना—यह दूसरा अर्थ भी निकल जाता है। किन्तु यह अप्रकृत अथवा असम्बद्ध अर्थप्रतिपादन करना यहाँ बिलकुल असंगत है, इसलिए उपमेयोपमान-भाव में वाक्यार्थ का पर्यवसान मानना पड़ेगा अर्थात् जिस तरह कृषक और उसका पुत्र करता है, उसी तरह मेरे पिता और मैंने किया है। इस तरह यहाँ उपमाध्वनि है।

कथा का पूर्व संदर्भ—अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में गन्धर्वलोक गया हुआ राज-कुमार चन्द्रापीड़ गन्धर्वराजकुमारी कादम्बरी पर प्रेमासक्त हो बैठा। इसी बीच उसका पिता उसे उज्जयिनी लौट आने का सन्देश भेज देता है। पिता की आज्ञा से राजकुमार लौट तो

जिस तरह फलवाले बीज वप्ता [किसान] द्वारा उत्कृष्ट [उर्वर] भूमि में बोये तथा उचित [जलसिञ्चन आदि] क्रिया के प्रभाव से विकसित किये जाने से परिपुष्ट होते हैं और उन्हें उसका पुत्र बटोरता है, उसी तरह फलवाले जो बीज [कथास्रोत] वप्ता रूप पिता द्वारा उत्कृष्ट भूमि (काव्यक्षेत्र) में विस्तृत किये गए तथा उचित (रस, कल्पना आदि) क्रिया के प्रभाव से विकसित होकर परिपुष्ट हो रहे हैं, उन्हीं का उसके पुत्र ने उपसंहार किया है ॥ ६ ॥

१. वप्त्रेव ।

चन्द्रापीडकथा

'अपि चेदानीमानीतस्यापि कुमारस्य न ददाति तरलतालज्जिता लज्जैव दर्शनम्। मनोभवविकारवेदनाविलक्षं वैलक्ष्यमेव न पुरस्तिष्ठति। अप्रतिपत्तिसाध्वसजडा जडतैव नोपसर्पति। स्वयमुपसर्पणलघु लाघवमेव तत्प्रतिपत्तिस्थैर्यं नावलम्बते। बलात्तदानयनापराधभीता भीतिरेव न सन्मुखीभवति। अथ कथञ्चिद् गुरुजनत्रपया वा राजकार्यानु-

---

आता है, किन्तु घर में उसके मदनव्यथित हृदय को चैन कहाँ ! कुछ समय बाद सेना के साथ उसकी अन्तरङ्ग दासी पत्रलेखा, जिसे उसने प्रेयसी के विनोद हेतु उसके पास छोड़ रखा था, वापस आ जाती है। चन्द्रापीड उत्सुकतावश दासी से कादम्बरी का हाल पूछने लगता है, तो उसकी करुण दशा का चित्र खींचती हुई वह अपने और कादम्बरी के बीच जो कुछ बातें हुई, उन्हें राजकुमार से कह रही है। पत्रलेखा द्वारा राजकुमार को लिवा लाने का आश्वासन दिए जाने पर कादम्बरी कह रही है।

व्या०—अपिचेति—अपि च किञ्च इदानीं **कुमारस्य**=चन्द्रापीडस्य अत्र=मत्पार्श्वे इत्यर्थः आनीतस्य=त्वया प्रापितस्य तरलतायाः चञ्चलतायाः लज्जिता लज्जा एव दर्शनं न ददाति भविष्यदर्थे लट्, स्वस्याम् उत्पन्नेन चाञ्चल्येनात्यधिकं लज्जिता भूत्वाऽहं तं द्रष्टुं न शक्ष्यामीत्यर्थः। **मनो०**—मनोभवः=कामः तस्य विकारेण—विकृत्या हृदि उद्बुद्धेन काम-भावेनेति भावः या वेदना—पीडा तया विलक्षम्—विस्मयान्वितम् (विलक्षं विस्मयान्वितम्' इत्यमरः) आकुलमिति यावत् वैलक्ष्यम्—विलक्षाया भावः आकुलता एव न पुरः—अग्रे तिष्ठति अर्थात् आनीतस्य कुमारस्य समक्षं काम-पीडा-कृतया आकुलतया स्थातुं न समर्था स्याम्। **अप्रति०**—अप्रतिपत्तिः—किंकर्तव्य-विमूढता, साध्वसम्—भयं च ताभ्यां जडा—स्तब्धा निश्चेष्टेति यावत् जडता न उपसर्पति—तत्समीपे गच्छति, स्वाग्रे तमवलोक्य किंकर्तव्य-विमूढतया भयेन च तमुपगन्तुं नाहं पारयिष्ये इति भावः। स्वयम् उपसर्पणेन लघु—तुच्छम् लाघवम्—तुच्छता एव तस्य—लाघवस्य प्रतिपत्तिः—स्वीकृतिः तस्याः स्थैर्यम्—स्थिरताम् दृढतामिति यावत् न अवलम्बते—आश्रयति अर्थात् स्वयं तत्समीप-गमने मम यत् लाघवं भविष्यति, दृढतया तत् स्वीकर्तुं न मे मनः करोति। **बलात्०**—बलात्—अनिच्छया (चन्द्रापीडस्य) आनयनस्य योऽपराधः तस्मात् भीता भीतिः—भयम् एव न संमुखी भवति भविष्यदर्थे लट्, हठ-पूर्वकं तदानयनस्यापराधं कृत्वा भीताऽहं तस्याग्रे स्थातुं न शक्ष्यामि।

टिप्पणी—लज्जिता लज्जैव—यहाँ ग्रन्थकार ने शृङ्गार-रसगत लज्जा आदि व्यभिचारी भावों का मूर्तकरण किया है। इससे इन भावों की अतिशयता व्यक्त होती है, जैसे कहते भी हैं—'इस काम से लज्जा भी लजा जाती है। अर्थात् अत्यधिक लज्जा होती है। यहाँ कवि अपने पिता के अनुकरण पर चला जैसे—"तस्याः सकाशादशिक्षतेव लज्जापि लज्जालीलाम्, विनयोऽपि विनयातिशयम्, मुग्धतापि मुग्धताम्'''''विलासोऽपि विलासम्" (पूर्वार्ध)। वैसे प्रियतम के सामने आने पर नायिका में लज्जा, वैलक्ष्य, जडता, लाघव और भीति—ये मनोविकार स्वाभाविक ही हुआ करते हैं।

"और भी (सुनो); यदि कुमार तुम्हारे द्वारा यहाँ लाया भी जाय, तो चञ्चलता से उत्पन्न अत्यधिक लाज ही मुझे उनके दर्शन नहीं करने देगी। काम-विकार की वेदना से उत्पन्न अत्यधिक घबराहट ही मुझे उनके आगे नहीं ठहरने देगी। कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञानाभाव और भय से हक्की-बक्की बनी मैं उनके पास जा ही न सकूँगी। स्वयं ही उनके पास जाने में मैं निश्चय ही अपना हल्कापन नहीं अपना सकूँगी। बलात् उन्हें यहाँ लिवा लाने के अपराध से बहुत डरी हुई मैं उन्हें अपना मुँह नहीं दिखा पाऊँगी और यदि किसी तरह माता-पिता की लज्जा से,

रोधेन वा चिरावलोकितसहसम्बर्धितबन्धु[1]जनदर्शनसुखेन वा सुहृन्मुख[2]कमलावलोकनोत्कण्ठया वा पुनरागमनखेदपरिजिहीर्षया वा निजगृहावस्थानरुच्या वा जन्मभूमिस्नेहेन वाऽनिच्छया वाऽस्य जनस्योपरि पादपतनेनापि नानेतुमेव पारितो यदा मयि स्नेहात्कृतयत्नयापि प्रियसख्या तदा सुतरामेव न किञ्चित्। किं चाधुनाप्यधिकमुपजातम्। सैवाहं कादम्बरी याऽनेन कुमारेण मधु[3]मदमुखरमधुकरकुलकलकोलाहलाकुलितकोककामिनीकरुण[4]कूजितजनितविरहिजनमनोदुःखे विकचदलारविन्दवृन्दनिष्यन्दानन्दितमन्दगन्धवहसुगन्धदशदिशि विकसितकुसुमामोदमुकुलितमानिनीमानग्रहोन्मोचन[5]दक्ष-

व्या०—**अथेति**—गुरु-जनस्य = माता-पित्रोः त्रपया—लज्जया वा राजकार्यस्य—शासन-सम्बन्धि = कार्यस्य अनुरोधेन—वशात् **चिरा०**—चिरात्—दीर्घकालानन्तरम् अवलोकितः—दृष्टः सह-संवर्धितः—सहभोजन-क्रीडादिव्यापारेषु यापित-जीवनः यः बन्धुजनः—बान्धव-लोकः तस्य दर्शनेन—साक्षात्कारेण यत् सुखम्—आनन्दः तेन, **सुहृत्०**—सुहृदाम् = मित्राणाम् यानि मुखानि कमलानीवेति लुप्तोपमा कमलसदृश-सुन्दरमुखानीत्यर्थः तेषाम् अवलोकने या उत्कण्ठा = औत्सुक्यम् तया अथवा पुनः आगमने = उज्जयिनीतोऽत्र गन्धर्वलोके आयाने यः **खेदः**—क्लेशः तस्य परिजिहीर्षया-परिहर्तुमिच्छया अर्थात् कस्तावत् पुनः गन्धर्वलोकगमन-कष्टं सहेतेति विचारेण **निजम्**—स्वकीयं यद् गृहम् तत्र अवस्थानम्—निवासः तस्मिन् रुच्या—अभिलाषेण, अथवा अस्य जनस्य—मम कादम्बर्याः इत्यर्थः उपरि अनिच्छया अर्थात् मयि तस्याभिलाषस्याभावात्, यदा मयि स्नेहात् मां प्रति तव प्रेम-कारणात् पादयोः—चन्द्रापीडस्य चरणयोः पतनात्—नमनादित्यर्थः अपि कृतः प्रयत्नः यया तथाभूतया प्रियसख्या—त्वया पत्रलेखया आनेतुम्—अत्र प्रापयितुं एव न पारितः = शक्तः अर्थात् तं त्वं नानेतुं पारितवती तदा सुतराम् एव न किञ्चित्—अर्थात् सर्वमेव विफलम्। 'मधुमद···प्रदोषसमये···हिमगृहे वीक्षिता' इत्यस्ति वाक्यम्। **मधु०**—मधु—मकरन्दः पुष्परस इति यावत् तेन यः मदः = मत्तता तेन मुखराः—शब्दायमानाः ये मधुकराः—भ्रमराः तेषां कुलस्य—समूहस्य कलेन—अस्पष्टमधुरेण कोलाहलेन—कलकलेनेति यावत् आकुलिताः—व्याकुलीकृताः याः कोकानाम्—चक्रवाक-पक्षिणाम् कामिन्यः—स्त्रियः तासां करुणेन—दीनता-पूर्णेन कूजितेन—शब्देन जनितम्—कृतम् विरहि-जनानाम्—वियोगि-स्त्रीपुंसाम् मनसि—चित्ते दुःखम्—खेदो यस्मिन् तथाभूते एतत् अन्यानि च 'प्रदोषसमये' इत्यस्य विशेषणानि। रात्रौहि चक्रवाकमिथुनस्य वियोगात् प्रदोषे तस्य खेदः समुचित एव। **विकच०**—विकचानि—विकसितानि दलानि—पत्राणि येषां तथाभूतानि यानि अरविन्दानाम्—कमलानां वृन्दानि—समूहाः तेषां निष्यन्देन—स्यन्दमानेन मकरन्देनेत्यर्थः आनन्दितः—प्रसन्नो यो मन्दो गन्धवहः—वायुः तेन सुगन्धाः—सुगन्धिताः दश दिशः = आशाः यस्मिन्

अथवा राजकार्यवश, अथवा चिरकाल के बाद देखे गये, एक-साथ पले-पुसे बन्धुजनों को देखने के आनन्द से, अथवा मित्रों के कमल-जैसे मुखों को देखने की उत्सुकता से, अथवा दोबारा (यहाँ) आने के क्लेश से बचने की इच्छा से, अथवा अपने घर रहने की अभिलाषा से, अथवा जन्म-भूमि के स्नेह से, अथवा इस जन की (= मेरी) चाह न होने से, मेरे प्रति स्नेह के कारण (उनके) चरणों में गिरने तक का प्रयत्न किये हुए भी प्रिय सखी (= तुम) यदि (उन्हें) न ला सकी, तो कुछ भी न बना। और अब भी अधिक क्या हुआ ? मैं वही कादम्बरी हूँ, जिसे कुमार ने सायं-समय हिमगृह में देखा था—ऐसा सायं-समय जब मकरन्द के मद से वाचाल बने हुए भ्रमर-समूह के अस्पष्ट-मधुर कोलाहल से व्याकुल बनायी चकवियों का करुण शब्द विरही लोगों के मन को संताप दिए रहता है, खिली हुई पंखुड़ियों वाले कमलों के समूह से चू रहे मकरन्द से आनन्दित हुई वायु द्वारा दश दिशायें सुगन्धित बनी रहती हैं, विकसित फूलों की सुगन्धि से मानिनी स्त्रियों की अध-खुली

१. बन्धुजनोत्कण्ठया। २. कमलदर्शनेन। ०. मत्तमद। ४. कूजिते जनित। ५. मोचनहस्ते कुसुमायुधे।

कुसुमायुधे कर्पूरक्षोदमिश्रचन्दनपङ्कपिण्डे कुपितकामिनीविनोददक्षगेयमुखरपरिजने पुनरुक्तदर्शनाभ्युत्थानव्रीडितकञ्चुकिजने प्रदोषसमये जरठशरकाण्डविपाण्डुनिबिड-कुण्डलोद्घृष्टलडहयुवतिगण्डस्थलान्यखण्डमण्डले विडम्बयति मण्डयति गगनं चान-वरतविस्फुरद्विशदकरनिर्भरावर्जितज्योत्स्नाजलासारवर्षिणि चन्द्रमसि दूरविक्षिप्त-

तस्मिन् [अत्र प्रदोषे अरविन्दानां विकचदलत्वं चिन्त्यम्, तदानीं तेषां निमीलितत्वात्। 'सुगन्धाः' 'अत्र सुष्ठु गन्धो यासु ताः इति बहुव्रीहौ' गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः' (पा० ५।४।१३५) इत्यनेनेदन्तादेशे 'सुगन्धयः' इत्येवोचितम्]। विकसित०—विकसितानि—प्रफुल्लानि यानि कुसुमानि तेषाम् आमोदेन—सौरभेण मुकुलितः—मुकुलावस्थां प्राप्तो मुकुलवत् उन्मुक्त्युन्मुख इत्यर्थः यः मानिनीनाम्—पतिषु प्रणयकोपवतीनां स्त्रीणाम् मानः—प्रणयकोपः तस्य यो ग्रहः—ग्रहणम् ग्रन्थिरित्यर्थः तस्य उन्मोचने—मोक्षणे, दूरीकरणे दक्षः—निपुणः कुसुमायुधः मदनः यस्मिन् तथाभूते प्रदोष-समये आगते कामोद्रेकात् मानिनीनां मान-भंगो भवतीत्याशयः।

टिप्पणी—इसके आगे का 'कर्पूर···पिण्डे' वाला विशेषण 'प्रदोष-समये' से संगत न होकर आगे के 'चन्द्रमसि' से संगत होता है, क्योंकि चन्द्रमा ही कपूर-चूर्ण-मिश्रित चन्दनपङ्कः पिण्ड-सा लगता है। हो सकता है कि मूललिपिकार की भूल से यह यहाँ लिखा गया हो और बाद को यह भूल यथावत् चली आ रही हो। इसलिए हमने इस विशेषण को चन्द्रमा के ही साथ जोड़ा है।

व्या०—कुपितः—कुपिताः—प्रियेषु कृतप्रणयकोपाः याः कामिन्यः—कामुक्यः तासां विनोदे—मनोरञ्जने प्रसादने इति यावत् दक्षो निपुणः अतएव गेये—गाने मुखरः—शब्दायमानः गानप्रसक्त इति यावत् परिजनः—भृत्यवर्गो यस्मिन् तथाभूतं, **पुनरुक्त०**—पुनरुक्तानि—मुहुर्मुहुः क्रियमाणानि दर्शनानि=परस्पर-साक्षात्काराः अभ्युत्थानानि=स्वागत-सत्कारार्थ' स्वासनात् उत्थानानि च तैः व्रीडितः=लज्जितः कञ्चुकिजनो यस्मिन् तस्मिन्, राजगृहेषु सायं समये नायक-नायिकानां वारं-वारं परस्परवीक्षणम् अभ्युत्थानं च दृष्ट्वा—कञ्चुकिनो लज्जन्ते इत्याशयः, एवं विशेषणविशिष्टे प्रदोषसमये—सायंकाले, **कर्पूर०**—कर्पूरस्य—घनसारस्य क्षोदेन चूर्णेन मिश्रः=सम्मिश्रितः युक्त इत्यर्थः यः चन्दनस्य पङ्कः—कर्दमः तस्य पिण्डे—गोलके, एतत्—अन्यानि च चन्द्रमसीत्येतस्य विशेषणानि, चन्द्रो हि किमपि श्वेत-पीतो भवति, अतएव तस्य कर्पूरचूर्णमिश्रितचन्दनपङ्कपिण्ड-सदृशत्वमुक्तम्, जरठ०-जरठाः—परिपक्वाः शरस्य—घासविशेषस्य ये काण्डाः—नालाः तद्वत् विपाण्डूनि—ईषच्छ्वेतपीतानि च निबिडैः—घनैः कुण्डलैः—कर्णवेष्टनैः उद्घृष्टानि—प्राप्तघर्षणानि च लडहानाम्—रूपवतीनाम् ['लडहः' प्राकृतभाषाशब्दोऽत्र कविना प्रयुक्तः] युवतीनां—तरुणीनां गण्डस्थलानि—कपोल-स्थलानि विडम्बयति-अनुकुर्वति तत्तुल्ये इति यावत् [भवभूतिनाऽपि गण्डस्थलस्य शरकाण्डेन तुलना कृता—'शरकाण्ड-पाण्डुगण्डस्थला' माल० ३।८], **अनव०**—अनवरतम्—निरन्तरम् यथा स्यात्तथा विस्फुरन्तः—देदीप्यमानाः ये विशदाः—निर्मलाः कराः—किरणाः तैः निर्भरं—भृशं यथास्यात्तथा आवर्जिता—मुक्ता अधः-क्षिप्तेत्यर्थः ज्योत्स्ना—चन्द्रिका एव जलम् तस्य आसारम्—धारा-संपातम् ['धारा-संपात आसारः' इत्यमरः] वर्षतीति तथोक्ते अखण्डम्—पूर्णं मण्डलं यस्य तस्मिन् चन्द्रमसि

मान-ग्रंथि को (पूरा) खोल देने में कामदेव दक्ष बना रहता है, प्रणय-कुपित कामिनियों के मनोरंजन में निपुण परिजन गान छेड़े हुए रहते हैं, और (नायक-नायिकाओं के) वार-वार साक्षात्कारों एवं अभ्युत्थानों से कञ्चुकी लोग लज्जित हुए रहते हैं, एवं जब कपूर-चूर्ण-मिश्रित चन्दन के गारे का गोला-जैसा, परिपक्व सरकंडों के समान श्वेत-पीत, और घने कुंडलों से टकराये अल्हड़ युवती के कपोल-स्थल का अनुकरण करता हुआ एवं निरन्तर चमक रही निर्मल किरणों द्वारा अच्छी तरह छिटकाई चाँदनी के रूप में जल की धारा बरसाने वाला पूर्ण चन्द्रमा

दलनिवहकुमुदकाननामोदवासितदिगन्तायाः कुमुदिन्यास्तटे चन्द्रकरस्पर्शप्रवृत्तशशिमणिशिखरनिर्झरझङ्कारिणि क्रीडापर्वतनितम्बके हृद्यहरिचन्दनरसकणिकाजालकच्छलेन तत्करतलस्पर्शसुखसंभवस्वेदजलनिवहमिव वहति तत्कालहारिणि मुक्ताशिलापट्टशयने कुसुमामोदसुरभितदशदिशि तुषारकणनिकरहारिण्यपि वहिरेव देहदाहमात्रकाप[1]हारिणि सर्वरमणीयानां संदोहभूते हिमगृहे कुसुमस्रस्तरावलम्बिनी वीक्षिता। ममापि चा-

---

गगनम् आकाशम् मण्डयति—विभूषयति सति, दूर०—दूरं यथा स्यात्तथा विक्षिप्तानि विकीर्णानीत्यर्थः दलानां—पत्राणाम् निवहः—समूहो यस्य तथाभूतं यत् कुमुदानाम्—रात्रि-कमलानां काननं—वनम् तस्य आमोदेन सौरभेण वासिताः—सुगन्धीकृताः दिशाम् अन्ताः—प्रान्तभागाः यया तथाभूतायाः कुमुदिन्याः—कुमुद-संहतेः कुमुद-पूर्णदीर्घिकाया इति यावत् तटे—तीरे, चन्द्र०—चन्द्रस्य कराणां किरणानां स्पर्शेन—संपर्केण प्रवृत्ताः—प्रसृताः स्यन्दितुमारब्धा इत्यर्थः शशिमणीनाम्—चन्द्रकान्तमणीनाम् शिखरेभ्यः—अग्रेभ्यः ये निर्झराः—वारिप्रवाहाः तेषां झंकारः—शब्दः अस्मिन् अस्तीति तथोक्ते क्रीडापर्वतस्य—क्रीडा निमित्तं निर्मितस्य कृत्रिमशैलस्य नितम्बके—कटि-भागे, क्रीडापर्वतो हि चन्द्रकान्त-मणिनिर्मित आसीत्, प्रदोष समये चन्द्रकर-सम्पर्केण मणयः स्यन्दन्ते स्म जलधारा च वहति स्मेति भावः, हृद्य०-हृद्यः—हृदयप्रीतिकरः रम्य इति यावत् यो हरिचन्दनस्य—पीतवर्णस्य चन्दनविशेषस्य रसः—जलम् तेषां कणिकानाम्—क्षुद्र-कणानां जालस्य—समूहस्य छलेन—व्याजेन तत्कर०—तस्य—चन्द्रापीडस्य करतलस्य स्पर्शेन यत् सुखम्—आनन्दः तस्मात् संभवो यस्य तथाभूतं तज्जनितमित्यर्थः यत् स्वेद-जलम् तस्य निवहम्—राशिम् इव वहति—धारयति, तत्काले—तस्मिन् समये हारिणि—मनोहरे मुक्ताशिलायाः—मौक्तिकप्रस्तरस्य यः पट्टः—फलकः स एव शयनं—शय्या तस्मिन्।

टिप्पणी—हृद्यः—कादम्बरी जिस शय्यापर लेटी हुई थी, वह मोती की शिला की एक लंबी पट्टिका थी, जिस पर चन्दन का जल छिड़का हुआ था और जल-कणिकायें विखरी हुई थीं। इस पर कवि की कल्पना यह है कि चन्दनजल कणिकायें तो केवल बहाना है; वास्तव में वह राजकुमार के करस्पर्श से कादम्बरी का सात्त्विक-भाव के रूप में बह रहा मानो-स्वेद-जल हो। इस तरह यहाँ व्याजापह्नुत्युत्थापित उत्प्रेक्षालंकार है।

व्या०—कुसुमा०—कुसुमानाम् आमोदेन-सुगन्धेन सुरभिताः-सौरभयुक्तीकृताः दश दिशः येन तथाभूते, तुषारस्य—हिमस्य कणानाम् निकरैः—समूहैः हारिणी—मनोहरा अपि बहिः एव न तु अन्तः देहस्य यो दाहः—कामजनित-सन्ताप एव मात्रकम् अपहरति—निराकरोतीति तथोक्ते सर्वाणि च तानि रमणीयानि—रम्य-वस्तूनि तेषां संदोहभूते समूह-रूपे हिमगृहे—तुषार-भवने कुसुमानां स्रस्तरं-तल्पम् अवलम्बते-आश्रयतीति तथोक्ता अहं कुमारेण वीक्षिता—दृष्टा।

गगन को शोभित कर रहा था। हिमगृह दूर-दूर तक बिखरी पड़ी पंखुड़ियों के ढेरों वाले कुमुद-वन की सुगन्ध से दिक्-प्रान्तभागों को सुगन्धित किये कुमुदिनी (बावड़ी) के तट पर चन्द्रमा के किरणों के स्पर्श के कारण चन्द्रकान्त मणियों के शिखरों से बह रहे झरनों से मुखरित हुए क्रीड़ा पर्वत के मध्य-भाग में स्थित था; जो फूलों की सुगन्धि से दश दिशाओं को सुरभित कर रहा था, हिमकणों के समूह से सुहावना बना हुआ भी वह बाहर ही शरीर के ताप-मात्र को मिटा रहा था (न कि हृदय के ताप को); और जहाँ सभी रमणीय वस्तुओं के ढेर लगे हुए थे। मैं सुन्दर हरिचन्दन के कण-समूह के बहाने उन (कुमार) के करतल-स्पर्श के आनन्द से उत्पन्न पसीने के जल-समूह को जैसे रख रहे, और उस समय बहुत अच्छे लग रहे मौक्तिक-शिला की पट्टी के ऊपर फूलों की सेज पर लेटी पड़ी थी। मेरी भी एक बार उनको देखने को तर-

---

१. कायहारिणि।

पुनरुक्तदर्शनस्पृहे त एवैते लोचने ययोरालोकनपथमसौ यातः। तदेव चेदमप्रतिपत्तिशून्यं हतहृदयं येनान्तःप्रविष्टोऽपि न पारितो धारयितुम्। तदेव चैतच्छरीरं येन तत्समीपे चिरमुदासीनेन स्थितम्। स एव चायं पाणिर्योऽलीकगुरुजनापेक्षी नात्मानं परिग्राहितवान्। अनपेक्षितपरपीडश्चन्द्रापीडोऽपि स एव योऽत्र वारद्वयमागत्य प्रतिगतः। मय्येवोपक्षीणमार्गणतया चाकिञ्चित्करोऽन्यत्र पञ्चशरोऽपि स एव यस्त्वयावेदितो मे।

प्रतिज्ञातं च मया महाश्वेतायाः। 'त्वयि दुःखितायां नाहमात्मनः पाणिं ग्राहयिष्यामि' इति। सा तु 'देवि, मैवं स्म मनसि करोः, कुमतिरियम्, अतिदारुणोऽयं पापकारी मकरकेतुः कदाचिददृश्यमाने प्रियजने जनितहृदयानुरागाज्जीवितमप्यपहरति' इत्यब्रवीत्। एतदपि नास्त्येव मे। मदनेन वा दैवेन वा विरहेण वा यौवनेन वानुरागेण वा

मम अपि अपुनरुक्तम्—न द्विरावृत्तम् एकवारमित्यर्थः यत् दर्शनम् तस्मिन् स्पृहा अभिलाषः ययोः तथा भूते ते एव एते लोचने नयने ययोः दर्शनस्य पन्थाः—गोचरः तम् असौ कुमारः यातः गतः तम् दृष्टवतीत्यर्थः।

टिप्पणी—अपुनरुक्त०—कादम्बरी की आँखें चन्द्रापीड का 'अपुनरुक्त' दर्शन चाहती थीं अर्थात् वे चाहती थीं कि एक बार उस सुन्दर कुमार को तो देखें। 'पुनरुक्त' का शाब्दिक अर्थ 'दो बार कहा हुआ' होता है, किन्तु साहित्य में लक्षणा द्वारा 'दोबारा किया हुआ' अर्थात् द्विरावृत्त अर्थ में इसका आम प्रयोग मिलता है।

व्या०—अप्रतिपत्तिः—किंकर्तव्यविमूढता तया शून्यम्—रहितम् कर्तव्याकर्तव्यविवेकरहितमित्यर्थः हत–हृदयम् दग्ध–हृदयम् येन—हृदयेन अन्तःप्रविष्टोऽपि = प्राप्त–प्रवेशोऽपि कुमारो धारयितुं–रक्षितुम् न पारितः शक्तः अर्थात् निजहृदये प्रविष्टमपि कुमारं सा तत्र धारयितुं न शशाक। तस्य = कुमारस्य समीपे उदासीनेन—तटस्थेन स्थितम् तं नालिलिङ्गेत्यर्थः। पाणिः—हस्तः अलीकम्–मिथ्यैव गुरुजनम्–माता-पितरौ अपेक्षते–गणयतीति तथोक्तः आत्मानं न परिग्राहितवान्–स्वीकारितवान् अर्थात् अहं तेन सह विवाहं न कृतवती। अन०—न अपेक्षिता–गणिता परस्याः–अन्यस्याः ममेत्यर्थः पीडा–वेदना येन तथाभूतः वार–द्वयम् द्विवारम्। मयि एव उपक्षीणाः क्षयं गताः, मयि प्रक्षिप्य समाप्तिं गताः इत्यर्थः मार्गणाः बाणाः यस्य तस्य भावः तत्ता तया अन्यत्र कुमारे इति यावत् अकञ्चित्करः = किमपि कर्तुं न क्षमः बाणानाम् अभावात्, पञ्च शराः यस्य सः—मदनः तस्य पञ्चशरा इमे सन्ति—**"अरविन्दमशोकं च चूतं च नव-मल्लिका, नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्च-बाणस्य सायकाः"**। मय्येव पञ्चशराः तेन प्रहृता इतिभावः, आवेदितः—कथितः।

प्रतिज्ञातम् प्रतिज्ञा कृता पाणिं न ग्राहयिष्यामि—विवाहं न करिष्यामि। कुमतिः—दुर्विचारः, अतिशयेन दारुणः कठोरः पापकारी पापं करोतीति तथोक्तः पापीत्यर्थः, मकरः–मत्स्यः केतुः ध्वजो यस्य तथाभूतः कामदेव इत्यर्थः अदृश्यमाने दृष्टिपथं न प्राप्यमाणे जनितः–उत्पादितः मम हृदये अनुरागः—प्रेम तस्मात् जीवितम्—प्राणान् अपि अपहरति समापयतीत्यर्थं इति अब्रवीत्—अवोचत्। एतदपि मे मम नास्त्येव अर्थात् मयि अनुरागमुत्पाद्य मदनः मम प्राणान्

सती हुई ये वही आँखें हैं, जिन्होंने उन्हें देख लिया था, हक्का-बक्का बना यह वही मुआ हृदय है, जो भीतर प्रविष्ट हुए उन्हें न रख सका। और यह वही शरीर है, जो देर तक उनके समीप उदासीन बना रहा। और यह वही हाथ है, जो यों ही माता-पिता की झूठी पर्वाह करता हुआ अपने को (उन्हें) न पकड़वा सका। दूसरे की वेदना की पर्वाह न किये चन्द्रापीड़ भी वही है, जो दो बार आकर वापस चला गया।

मैंने महाश्वेता से प्रतिज्ञा कर रखी है कि 'तुम्हारे दुःखी रहते-रहते मैं अपना पाणिग्रहण नहीं कराऊँगी'। किन्तु वह बोली—"नहीं रानी, मन में ऐसा मत लाओ। यह बुरा विचार है। पापी कंदर्प इतना अधिक निष्ठुर है कि प्रियजन के न दीखने पर हृदय में उत्पन्न अनुराग के कारण कभी-कभी प्राण तक ले बैठता है"। यह भी तो मुझसे नहीं हो रहा है।

मदेन वा हृदयेन वा न्येन वा केनापि दत्तः संकल्पमयः कुमारो जनसन्निधावपि केनचिद्-विभाव्यमानः सिद्धः इव सर्वदा मे ददाति दर्शनम्। अपि चासाविव नायमकाण्डपरित्यागनिष्ठुरहृदयः। अयमेवास्मद्विरहकातरः। नायं नक्तंदिवं लक्ष्मीसमाकुलः। न पृथिव्याः पतिः। न सरस्वतीमपेक्षते। न कीर्तिशब्दं वर्धयति। पश्यामि चाहर्निशमासीनोत्थिता भ्रामयन्ती शयाना जाग्रती निमीलितलोचना चलती स्वप्नायमाना च शयने श्रीमण्डपे गृहकमलिनीषूद्यानेषु लीलादीर्घिकासु क्रीडापर्वतके बालगिरिनदिकासु च यथा तमज्ञजनविडम्बनकहेतुं विप्रलम्भकं कुमारं ते तथा कथितमेव मया। तदलमनया तदानयनकथया। इत्यभिदधानाऽतर्कितागतमूर्च्छेव निमीलिताक्षी पक्ष्माग्रसम्पिण्डित-नयनजलवर्षिणी विलीयमानेवोत्पीड्यमानेवान्तर्जातमन्युवेगेन तथैव वेदिकावितानना-

---

नापहरति, अहं जीविताऽस्मीति भाव। संकल्पमयः हृदये ध्यान-रूपे स्थितः जनानाम् संनिधौ-समीपे अविभाव्यमानः चक्षुषा न दृश्यमानः सिद्धः—अणिमाद्यष्टसिद्धि-सम्पन्नः देवयोनिविशेषः इव सर्वदा मे मह्यं दर्शनं ददाति। असौ-दूरगतो वास्तविकः कुमारः अकाण्डे-असमये यः परित्यागः त्यजनम् तस्मिन् निष्ठुरं कठोरं हृदयं यस्य तथाभूतः, अस्तीति शेषः। अयम्—हृदि स्थित संकल्परूपः कुमारः अस्माकम्—ममेत्यर्थः विरहेण कातरः। नक्तंदिवम्—अहर्निशम् लक्ष्मीः—राजलक्ष्मीः प्रजाशासनकार्यमित्यर्थः तस्यां समाकुलः-व्यग्रः न अस्ति। सरस्वतीम् न अपेक्षते अध्ययनादिकार्येषु न दत्तावधान इत्यर्थः। कीर्तेः-यशसः शब्दम् गानमित्यर्थः अत्र वास्तवकुमारापेक्षया ध्यान-स्थितकुमारे आधिक्यप्रतिपादनात् व्यतिरेकालंकारः। अहर्निशम्-नक्तंदिवम् आसीना स्थिता भ्राम्यन्ती—भ्रमणं कुर्वती, शयाना स्वपन्ती, जाग्रती उन्निद्रा, निमीलिते—पिहिते लोचने नयने यस्याः तथाभूता स्वप्नायमाना-स्वप्नम् अनुभवन्ती श्रीमण्डपे श्री-पूर्णे जनाश्रये, गृहकमलिनीषु सदनपद्मिनीषु लीलार्थं निर्मिताः दीर्घिकाः-सरस्यः तासु, बालाः लघ्व्यश्च ताः गिरिनदिकाः पर्वतक्षुद्रनद्यः तासु, अज्ञः मूढश्चासौ जनः मत्तल्य इतियावत् तस्य विडम्बनस्य व्यामोहनस्य एकं केवलं हेतुम् कारणभूतम्, विप्रलम्भकम् प्रतारकम् पश्यामि अवलोकयामि। तस्य आनयनस्य मत्पार्श्वे प्रापणस्य कथया कथनेन अलम् अर्थात् तस्यानयनप्रस्तावं मा कुरु। अभिदधाना कथयन्ती, अतर्कि०—अतर्कितं यथा स्यात्तथा आगता अतर्कितोपनता अकस्मात्प्राप्तेति यावत् मूर्छायाम् तथाभूता इवेत्युत्प्रेक्षायाम् निमीलिते अक्षिणी—नयने यया तथाभूता पक्ष्मा० पक्ष्मणाम् नेत्र-रोम्णाम् अग्रेषु अग्रभागेषु संपिण्डितम्—राशिभूतम् एकत्रितमिति यावत् नयनयोः जलम् अश्रुजलम् वर्षतीति तथोक्ता विलीयमाना लयं गच्छन्ती इवेत्युत्प्रेक्षा अन्तः हृदये जातः यो मन्युः दुःखम् क्रोधो वा तस्य वेगेन आधिक्येनेत्यर्थः उत्पीड्यमाना क्लिश्यमाना इवेत्युत्प्रेक्षा-

---

मदन अथवा दैव अपना विरह अथवा यौवन अथवा अनुराग अथवा मद अथवा हृदय अथवा जिस किसी के भी द्वारा दिया हुआ संकल्प-रूप कुमार लोगों के सामने भी सिद्ध पुरुष की तरह किसी के देखने में न आता हुआ सदा मुझे दर्शन देता रहता है। इसके अतिरिक्त उस (वास्तविक कुमार) की तरह यह (संकल्पमय कुमार) इतना कठोर हृदय नहीं है कि असमय में ही छोड़ बैठे। यही मेरे वियोग से कातर रहता है। यह रात-दिन लक्ष्मी में व्यस्त नहीं रहता। यह न पृथिवी का पति है, न इसे सरस्वती की आवश्यकता है और नही यह (निज) कीर्ति-गान में वृद्धि लाता है। मैं रात-दिन जिस तरह बैठती उठती, घूमती, सोती, आँखें मीचे हुए चलती, स्वप्नों को देखती, शय्या पर श्रीमण्डप में, गृह-कमलिनियों में, उपवनों में, क्रीड़ा के तालावों में, क्रीड़ा-पर्वत पर, छोटी छोटी पहाड़ी नदियों में (मुझ-जैसी) भोली-भालियों को बुद्धू बनाने वाले उस छलिया कुमार को देखा करती हूँ, सो मैंने तुम्हें कह ही दिया हैं। इसलिए उसे यहाँ लाने की बात मत करो" यह कहती हुई वह अकस्मात् मूर्छा को प्राप्त हुई—जैसी आँखें बन्द किये, बरौनियों को अग्र-भागों में इकट्ठा हुआ अश्रु-जल बहाए पिघलती हुई—जैसी, हृदय में उठी वेदना के वेग से उत्पीड़ित हुई—जैसी, उसी अवस्था में वेदी के चँदोवे के मध्य भाग की

भिदामांशुकावलम्बिन्यां बाहुलतिकायामच्छसलिलस्रोतसि प्रसूतायां मृणालिकायामिव जलाहतिश्यामारुणतामरसमिवाननमुपावेश्य तूष्णीमुत्कीर्णेव तस्थौ।

अहं तु तच्छ्रुत्वा समचिन्तयम्। 'सत्यमेव गरीयः खलु जीवितालम्बनमिदं विनोदश्च वियोगिनां यदु[1]त संकल्पमयः प्रियः। नितरां कुलाङ्गनानां विशेषतः कुमारीणाम्। तथा हि। अनेन सार्धमकृतदूतिकापादपतनदैन्यानि प्रतिक्षणं समागमशतान्यकालरमणीयानि स्वेच्छाभिसरणसौख्यान्यदूषितकन्यकाभावानि सुरतानि। सुरतेषु चाकृतस्तनव्यवधानदुःखान्यालिङ्गनानि, अजनितव्रणदर्शनव्रीडानि नखदन्तक्षतसुखानि, अनाकुलितकेशपाशाः कचग्रहमहोत्सवाः, शब्दविहीनानि निधुवनानि,

याम् वेदिका०—वेदी एव वेदिका बद्धभूमिः तस्या वितानस्य उल्लोचस्य यो नाभिः मध्यभागः तत्र यद् दाम रज्जुः तत्र (स्थितम्) अंशुकम् वस्त्रम् अवलम्बते आश्रयतीति तथोक्तायाम् लता एव लतिका क्षुद्रलता बाहुः, लतिकेवेति लुप्तोपमा तस्याम् अच्छम् स्वच्छम् यत् सलिलम् जलम् तस्मिन् प्रसूतायाम् उत्पन्नायाम् मृणालिकायाम् कमलिन्याम् इव जलस्य आहत्या आघातेन संघट्टेनेत्यर्थः श्यामं कृष्णवर्णम् अरुणं रक्तञ्च यत् तामरसम् कमलम् तत् इव आननम् मुखम् उपावेश्य स्थापयित्वा उत्कीर्णा प्रस्तरादिषु तष्टा इव तस्थौ स्थितवती, अत्र सरल–सौकुमार्यात् बाहुलतिकायाः मृणालिकया तथा वर्तुल–रक्तत्वात् आननस्य तामरसेन सादृश्य–प्रतिपादनात् उपमालंकारः, तस्य चोत्प्रेक्षाचतुष्टयेन संसृष्टिः।

तु—किन्तु अहम् (पत्रलेखा) तत् 'संकल्पमयः कुमारः सर्वदैव दर्शनं ददातीति श्रुत्वा कादम्बरी–मुखात् आकर्ण्य समचिन्तयम्—अमृशम्—'गरीयः अतिशयेन गुरु महत्तरमित्यर्थः जीवितस्य प्राणानाम् अवलम्बनम् आधार–भूतम्, विनोदः मनोरञ्जनम् वियोगिनीनाम् विरहिणीनाम् यत् उक्तं कादम्बर्या–'संकल्पमयः प्रियः' नितराम् अतिशयेन कुलाङ्गनानाम् कुलवधूनाम् कुलीनस्त्रीणामित्यर्थः विशेषतः विशेषरूपेण कुमारीणाम् कन्यानाम् अनूढानामिति यावत्। अनेन संकल्पमयेन प्रियतमेन सार्धम् सह अकृत०—न कृतः अनुष्ठितः दूतिकायाः दूत्याः पादयोः चरणयोः पतन-रूपं दैन्यं दीनता येषु तथाभूतानि दूत्याः अनुकूलनं विनैवेत्यर्थः, प्रति–क्षणं क्षणे-क्षणे समागमस्य संगमस्य शतानि, अकाले असमये रमणीयानि रम्याणि, वास्तविक-प्रियतमेन सह सुरतस्य रात्र्यादिःनियत-समयो भवति, किन्तु संकल्पमयेन सह तत् सर्वदैव भवतीत्यर्थः, स्वेच्छा०–स्वस्याः आत्मन इच्छया यत् अभिसरणम् प्रियं प्रति गमनम् तस्य सौख्यम् सुखमेव सौख्यम् (स्वार्थे ष्यञ्) येषु तानि अदूषि०—न दूषितः दोषं प्राप्तः कन्यकायाः भावः कन्यात्वमित्यर्थः येषु तथाभूतानि अर्थात् संभोगे सत्यपि कन्यात्वं यथावत् अदूषितं तिष्ठति—संभोगस्य भावात्मकत्वात् सुरतानि संभोगाः भवन्तीति शेषः। सुरतेषु अकृत० न कृतम्–स्तननाम् कुचानाम् व्यवधानेन व्यवधया मध्यवर्ति कंचुककृत—तिरोधानेनेत्यर्थ दुःखं

डोरी के कपड़े को पकड़े बाहु–लता पर अपना मुँह रख कर—जिस तरह कि स्वच्छ जल धारा में उत्पन्न कमलिनी पर जल टकराने से काला-लाल कमल रहा करता है—वह चुपचाप पत्थर पर उकेरीहुई—जैसी स्थित रही।

यह सुनकर मैंने सोचा—'संकलपमय प्रिय' जो (इसने) कहा है, यह सचमुच विरहिणियों—अधिकतर कुलवधुओं, विशेष रूप से कुमारियों–के प्राणों का बड़ा भारी अवलंब और विनोद (का साधन) हुआ करता है। इस (संकलपमय) के साथ दूती के पैरों में पड़कर दीनता प्रकट किए बिना ही प्रतिक्षण सैंकड़ों मिलन तथा बिना समय के, स्वेच्छापूर्वक अभिसरण का आनन्द लिये, और कन्यात्व को दूषित किये बिना संभोग हुआ करते हैं। और उन संभोगों में ऐसे आलिंगन हुआ करते हैं जिनमें कुचोंके (कंचुकके) व्यवधान से होने वाला खेद नहीं, ऐसे नख और दन्तक्षत होते हैं जिनमें व्रण दीखने की लाज नहीं, ऐसे कचग्रह के महोत्सव होते हैं, जिनमें बाल नहीं बिखरते, ऐसी रति-क्रीड़ायें होती रहती हैं, जिनमें

१. यदुक्तसंकल्प।

अनुत्पादितगुरुजनविभावितक्षतवैलक्ष्याण्यधरखण्डनविलसितानि। नैनमन्धकारराशिरन्तरयति। न जलधरधारापातः स्थगयति। न नीहारनिकरस्तिरोदधाति।' इत्येवं चिन्तयन्त्या एव मेऽनुरागकथारसप्लावेनेव रक्तमागाद्दिवसः। तत्क्षणं प्रकटितरागं हृदयमिव कादम्बर्यास्त्रपया पलायमानमदृश्यत रविमण्डलम्। पल्लवशयनमिव संध्यारागमरचयद्यामिनी। परिचारक इव चन्द्रमणिशिलातलतल्पमकल्पयत्प्रदोषः। अत्रान्तरे

यैस्तानि आलिङ्गनानि आश्लेषाः, अजनि०—न जनिता उत्पादिता व्रणानाम् क्षतानाम् दर्शनात् अवलोकनात् व्रीडा लज्जा यैस्तथाभूतानि नखाः कररुहाश्च दन्ताः दशनाश्च तेषां समाहारः नख-दन्तम् तज्जनितानि सुखानि, अनाकु०—न आकुलितः विशीर्णः केश-पाशः केश-समूहः येषु तथाभूताः कचानां—केशानाम् ग्रहाः—ग्रहणानि एव महान्त उत्सवाः, शब्द०—शब्देन—सीत्कारेण भणितेन वा विहीनानि—रहितानि निधुवनानि—सुरतानि अनु०—न उत्पादितम्—कृतम् गुरु-जनैः—मातृपित्रादिभिः विभावितम्—ज्ञातम् यत् क्षतम्—अधरोष्ठे दन्ताघातः तेन वैलक्ष्यम्—लज्जा येषु तानि अधरखण्डनानि एव विलसितानि—क्रीडितानि। **नैनम्**—वास्तविक-प्रियवत् एनम् 'संकल्पमयं' प्रियम् अन्धकारस्य राशिः समूहः न अन्तरयति—व्यवधत्ते अर्थात् एषोऽन्धकारेऽपि प्रत्यक्षीभवति, जलधरस्य—मेघस्य धारापातः—धारासारः न स्थगयति—रुणद्धीत्यर्थः, नीहारस्य तुषारस्य निकरः राशिः कुज्झटिका-समूह इत्यर्थः न तिरोदधाति न छादयतीत्यर्थः।

टिप्पणी—यहाँ वास्तविक प्रियतमों और संकल्पमय प्रियतमों में परस्पर तुलना की गई है। 'संकल्पमय' के साथ सभी तरह की भोग-विलास-क्रीडायें विना किसी को डर-भय के बरावर ही मानस-रूप में होती रहती हैं; उनमें किसी प्रकार का प्रतिवन्ध नहीं होता जवकि वास्तविक प्रियतम के साथ ये बातें कहाँ। यहाँ लज्जादि-जनक कारण के होते-होते भी लज्जादि कार्य नहीं हो रहे हैं, अतः विशेषोक्ति अलंकार है, साथ ही संकल्पमय प्रिय में अधिकता बताने से व्यतिरेक भी है; इस तरह इन दोनों का संकर है।

व्या०-इति एवम् मे चिन्तयन्त्याः—विचारयन्त्याः एव अनुरागः—प्रेम अथ च लालिमा तस्य कथया कथाश्रवणेनेत्यर्थः यो रसः—आनन्दः अथ च जलम् तस्मिन् प्लावेन—मज्जनेन इव रक्तताम् प्रेमपूर्णत्वम् अथ च लालिमानम् दिवसोऽगात् प्राप्तवान्। अत्र विभिन्नानुरागयोः विभिन्नरसयोश्च भेदेऽभेदाव्यवसायात् भेदेऽभेदातिशयोक्तिः तदुत्थापितश्चोत्प्रेक्षालंकारः। **तत्क्षणम्**—स क्षणः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा प्रकटितः—प्रकटीकृतः रागः—प्रेम लालिमा च येन तथाभूतम् कादम्बर्याः हृदयम् इव त्रपया—लज्जया पलायमानं पलायनं—कुर्वन् रवेः—सूर्यस्य मण्डलम्—विम्बम् अदृश्यत लोकैरिति शेषः। कादम्बरीहृदयरागापेक्षया मम रागोन्यून इति लज्जाकारणम्। अत्रापि पूर्ववत् भेदेऽभेदातिशयोक्तिः किन्तु व्यञ्जकाभावात् उत्प्रेक्षा प्रतीयमानैव, ताभ्यां सह हृदयमिवेति उपमायाः संसृष्टिः। **पल्लव०**—यामाः त्रयः प्रहराः सन्त्यस्यामिति यामिनी—रात्रिः पल्लवानाम्—किसलयानाम् शयनम्—शय्यतेऽस्यामिति (अधिकरणे-ल्युट्) शय्येत्यर्थः तत् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्—सन्ध्यायाः सायंकालस्य रागः—लालिमा अरचयत्—अकरोत् **परि०**—परिचारकः सेवक इव प्रदोषः निशामुखम् चन्द्र एव मणेः शिलातलरूपं तल्पम् शय्याम् अकल्पयत् अरचयत्। उदीयमानो हि चन्द्रः मणिशिलाफलकमिव दृश्यते स्मेतिभावः

सिसकारियाँ नहीं, और अधर में दन्तक्षत के ऐसे विलास होते हैं, जिनमें क्षत के गुरु जन द्वारा देख लेने पर लज्जा नहीं होती। न अन्धकार समूह इस (संकल्पमय) को ढकता; न मूसलाधार पानी इसे रोकता, न ही घना कुहरा इसे आच्छादित करता—इस तरह मेरे सोचते-सोचते दिन अनुराग की कथा के रस में स्नान करने से मानो रक्त हो उठा। राग (प्रेम; लाली) व्यक्त किये (कादम्बरी) के हृदय की तरह सूर्यविम्व लाज के मारे तत्क्षण भागता हुआ—जैसा दिखलाई दिया। रात्रि ने सन्ध्या की लाली ला दी मानो वह (कादम्बरी हेतु) पल्लवों का बिछौना हो। सेवक की तरह प्रदोष समय चन्द्रमा के रूप में मणिशिला तल की शय्या तय्यार

चागत्य स्वं स्वं नियोगमशून्यं कुर्वाणा दूरतो दीपिकाधारिण्यो गन्धतैलावसिक्तसुरभिगन्धोद्गारिणीभिर्दीपिकाभिर्विरचितचक्रवालिका बालिकाः पर्यवारयन्। अथ निर्मललावण्यलक्षितानि दीपिकाप्रतिबिम्बानि ज्वलितानि मदनसायकशल्यानीवाङ्गलग्नानि समुद्वहन्तीं नवनिरन्तरकलिकाचितां चम्पकलतामिव तथावस्थितां तां पुनर्व्यजिज्ञपम्। 'देवि प्रसीद। नार्हस्यखेदार्हा हृदयखेदकारिणं संतापमङ्गीकर्तुम्। संहर मन्युवेगम्। एषाहमादाय चन्द्रापीडमागतैव' इति। अथानेन देवनामग्रहणगर्भेण मद्वचसा विषापहरणमन्त्रेणेव विषमूर्च्छिता झटित्युन्मील्य नयने सस्पृहं मामवलोक्य 'कः प्रदेशेऽस्मिन्' इति परिजनमपृच्छत्।

अत्रोपमा-रूपकयोः संसृष्टिः। अत्रान्तरे एतत्समय-मध्ये चागत्य 'बालिकाः पर्यवारयन्' इत्यस्ति वाक्यम्। स्वं स्वं नियोगम्—कर्तव्य-कर्म अशून्यं—अरिक्तमित्यर्थः कुर्वाणाः अर्थात् स्व-स्वकर्तव्य-कर्मसु व्याप्रियमाणाः, रात्रौ अन्धकार-निवारणायास्माभिः प्रकाशः कर्तव्य इति कृत्वा दूरतः दीपिका 'मशाल' इति भाषायांप्रसिद्धाः धारयन्तीत्येवंशीलाः **गन्ध०**—गन्धयुक्तं तैलं गन्धतैलम् (मध्यमपदलोपी समासः) तेन अवसिक्ताभिः—कृतसेकाभिः अत एव सुरभिम्—सुगन्धयुक्तं गन्धम् उद्गिरन्ति—उद्वमन्तीति तथोक्ताभिः दीपिकाभिः विरचिता कृता चक्रवालिका—मण्डलं याभिस्तथाभूताः बालिकाः कन्यकाः पर्यवारयन् पर्यगच्छन् कादम्बरीमिति शेषः। **अथेति**—निर्मलं स्वच्छं यत् लावण्यम्—कादम्बर्याः सौन्दर्यम् तेन लक्षितानि—दृष्टानि तस्याः दर्पणवत् सुन्दरशरीरे प्रतिफलितानीत्यर्थः दीपिकानाम् प्रतिबिम्बानि—प्रतिच्छायाः ज्वलितानि—दीपितानि मदनस्य—कामदेवस्य सायकानाम्—बाणानाम् शल्यानि अग्राणीत्यर्थः अङ्गेषु लग्नानि सक्तानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम् समुद्वहन्तीं धारयन्तीम् (कादम्बरीम्) दीपिकानां प्रतिबिम्बानि मदनस्य तस्यां प्रहृतानि ज्वलत्सायकाग्राणीव प्रतीयन्ते स्मेति भावः, **नव०**—नवाः—प्रत्यग्राः निरन्तरा—व्यवधान-रहिता घना इत्यर्थः याः कलिकाः कोरकाणि ताभिः चिताम्—व्याप्ताम् चम्पकलताम्—चम्पकपुष्पवल्लीम् इवेत्युपमा, शरीरस्य सरलत्वात् चम्पकलतया सादृश्यम्, दीपिकाप्रतिबिम्बानाञ्च लम्बाकारत्वात् पीतत्वाच्च कलिकाभिः सादृश्यम्। तथा पूर्वोक्त प्रकारेण (मूर्तिवत्) अवस्थिताम् ताम् कादम्बरीं पुनः अहं व्यजिज्ञपम् न्यवेदयम्—प्रसीद—प्रसन्ना भव। अर्हतीति अर्हा न खेदस्य अर्हा—योग्याअर्थात् अक्लेशयोग्या त्वम् हृदयस्य खेदं करोतीति तथोक्तं संतापम् अङ्गीकर्तुम्—स्वीकर्तुम् न अर्हसि—योग्याऽसि। मन्युः—क्रोधः तस्य वेगम्—रयम् संहर—त्यजेत्यर्थः। एषा—अहम् पत्रलेखा चन्द्रापीडम् आदाय गृहीत्वा आगता एव अतिशीघ्रमागच्छामीतिभावः। **अथा०**—देवस्य—भवतः नाम्नो ग्रहणम् उपादानम् गर्भे मध्ये यस्य तथाभूतेन मम वचसा—वचनेन अर्थात् मत्तःभवन्नाम श्रुत्वा विषेण मूर्च्छिता मूर्च्छां प्राप्ता (काचित्) स्त्रीव विषस्य अपहरणस्य—दूरीकरणस्य मन्त्रेण इवेत्युपमायाम् झटिति तत्कालमेव नयने उन्मील्य—उद्घाट्य स्पृहा—प्रबलेच्छा तया सहितं यथा स्यात्तथा अवलोक्य 'अस्मिन् प्रदेशे स्थाने—कोऽस्ति?' इति परिजनं भृत्यवर्गम् अपृच्छत्।

कर बैठा। इसी बीच आकर अपना-अपना काम करती हुई, दूर से मशालें पकड़े, लौडियाँ सुगन्धित तेल से तर बनी तथा सुगन्ध छोड़ती हुई मशालों द्वारा घेरा बाँधे (कादम्बरी के इर्द-गिर्द) देह में लगे कामदेव के जलते बाणों की नोकों को जैसे धारण करती हुई, नयी-नयी घनी कलियों से भरी चम्पक लता के समान, उसी तरह (मूर्तिवत्) खड़ी हुई उस (कादम्बरी) से मैंने फिर निवेदन किया—"देवी, प्रसन्न होओ। खेद के अयोग्य तुम्हें हृदय को खेद पहुँचाने वाला संताप नहीं अपनाना चाहिये। क्रोध के वेग को रोको। यह मैं चन्द्रापीड़को लेकर (अभी) आई।" इसके बाद आपका नाम बीच में ग्रहण किये मेरे कथन से झट आँखें खोलकर—जिस तरह कि विष-हरण मंत्र से (कोई) विषमूर्छित स्त्री आँखें खोल दिया करती है—तृष्णापूर्वक मुझे देखकर भृत्यजन को पूछ उठी—'यहाँ कोई है?'

अथ धवलवसनोल्लासितगात्रयष्टयः, द्वारप्रदेशसंपिण्डिताङ्गयः, परशुरामशरविवरविनिर्गता इव कलहंसपङ्क्तयः, कलहंसकलालापमधुररवैः प्रतिवाचमिव प्रयच्छद्भिर्नूपुरैः पतत्कर्णपूरपल्लवोल्लासितैश्चाज्ञाश्रवणाय धावद्भिरिव श्रवणैर्मौक्तिककुण्डलांशजालकानि स्कन्धदेशनिक्षिप्तानि चामराणीव वहन्त्यः, समाहतकपोलस्थलैः कुण्डलैर्बलादिव वाह्यमानाः, वाचालैः कर्णोत्पलमधुकरैः समाज्ञापयेति व्याहरन्त्यः कन्यकाः समधावन्। आज्ञाप्रतीक्षासु च मुखकमलावलोकिनीषु तासु क्रमेण दृष्टिं पातयन्ती स्निग्धामिन्दीवर-

---

अथ—'धवल०...कन्यकाः समधावन्' इत्यस्ति वाक्यम्। धवलैः—शुभ्रैः वसनैः—वस्त्रैः उल्लसिताः—शोभिताः गात्राणि—शरीराणि यष्ट्यो—लता इव यासां ताः, द्वार०—द्वारस्य प्रदेशे—स्थाने संपिण्डितानि संकुचितानि अङ्गानि—शरीराणि यासां ताः, परशु०—परशुरामस्य—जमदग्निपुत्रस्य शरेण—बाणेन यद् विवरकम्—छिद्रम् तस्मात् विनिर्गताः—निसृताः कलहंसानाम्—कादम्बानाम् मधुरध्वनिहंसानामिति यावत् ('कादम्बः कलहंसः स्यात्' इत्यमरः) पंक्तयः—श्रेणय इव एतानि अन्यानि च 'कन्यकाः' इत्येतस्य विशेषणानि।

टिप्पणी—परशुराम०—कहते हैं कि परशुरामजी ने शिवजी से धनुर्विद्या प्राप्त करने के अनन्तर कैलास से दक्षिण की ओर जाने के विचार से बाण द्वारा क्रौञ्चपर्वत का भेदन करके अपना रास्ता बनाने के लिए एक बड़ा भारी छेद किया था। कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि जब परशुराम शिवजी से धनुर्वेद सीखते थे, तो एक दिन शिव-पुत्र स्कन्द के साथ प्रतियोगिता में उन्होंने एक तीक्ष्ण तीर मारकर क्रौञ्चपर्वत बींध डाला था जिससे उस पर्वत में एक बड़ा लंबा विवर बन गया। इसे हंसद्वार भी कहते हैं, क्योंकि इसी विवर से होकर हंस मानसरोवर में आया जाया करते हैं। इसे ही आजकल 'माणा' दर्रा कहते हैं, जो गढ़वाल और तिब्बत की सीमा पर है।

व्या०-कल०—कलहंसानाम्—कादम्बानाम् कलः—मधुरो य आलापः—रवः तद्वत् मधुरो रवः येषां तथाभूतैः प्रतिवाचम्—उत्तरम् प्रयच्छद्भिः—ददद्भिः इव नूपुरैः—मञ्जीरैः उपलक्षिताः—युक्ता इत्यर्थः (अत्रोपलक्षणे तृतीया) शब्दायमानाः कन्यकानां नूपुरा उत्तरमिव ददति स्मेत्युत्प्रेक्षा, पत०—पतन्तः त्वराकारणात् भ्रश्यन्तः कर्णपूर-रूपाः पल्लवाः कर्णाभरणीकृत-किसलयाः तैः उल्लासितैः—उद्भासितैः आज्ञायाः—कादम्बर्या आदेशस्य श्रवणाय—आकर्णनाय धावद्भिः प्रद्रवद्भिः इव श्रवणैः—कर्णैः उपलक्षिताः, त्वरितगमनेन भ्रश्यमानानि तासां कर्णपूर-रूपपल्लवानि आदेशश्रवणाय धावन्ति श्रवणेन्द्रियाणीव प्रतीयन्ते स्मेत्युत्प्रेक्षा, मौक्तिक०—मौक्तिकैः—मुक्ताफलैः खचितानि कुण्डलानि मौक्तिक-कुण्डलानि कर्णाभरणविशेषाः तेषां अंशूनां—किरणानां जालकानि—समूहाः स्कन्धयोः—अंसयोः देशे भागे इत्यर्थः निक्षिप्तानि—स्थापितानि चामराणीव—बालव्यजनानीव वहन्त्यः—धारयन्त्यः स्कन्धपतितानि मौक्तिक-किरणानि श्वेतचामराणीव प्रतीयन्ते स्मेत्युत्प्रेक्षा, समा०—समाहतानि—ताडितानि

इसके बाद लौंडियाँ दौड़ आईं, जिनकी लता-जैसी देह श्वेत वस्त्रों से चमक रही थीं और अंग द्वार-प्रवेश पर सिमटे हुए थे, (द्वार-मार्ग में से निकली) जो परशुराम के (क्रौञ्च पर्वत में बनाये) छिद्र में से निकली कलहंसों की पंक्तियों के समान दीख रही थीं, जिनकी कलहंसों की-सी मधुर ध्वनि वाली पायजेबें उत्तर जैसे दे रही थीं, (कि 'जी, आई' (त्वरा में) गिरते हुए कर्णपूर के चमकते पल्लव ऐसे लग रहे थे मानो (स्वामिनी की) आज्ञा सुनने हेतु स्वयं कान ही दौड़े जा रहे हों, मोती-जड़े कुण्डलों की (कन्धे पर पड़ी) किरणावली से ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो कन्धों पर चाँवरियाँ रखे हुए हों, कपोल-स्थलों को टक्कर मारे हुए कुण्डलों में मानो बलपूर्वक धकेली जा रही थीं और शब्द करते हुए कर्णोत्पलों के भ्रमरों के माध्यमसे मानो यह कह रही थीं कि—'आज्ञा दीजिए'। आज्ञा की प्रतीक्षा किये तथा (स्वामिनी का) मुख-कमल निहारे उनपर क्रमशः स्नेहभरी, इन्दीवरमाला-जैसी दृष्टि डालती हुई

स्रजमिव मरकतशिलातले न्यषीदत्। अब्रवीच्च। 'पत्रलेखे, न खलु प्रियमिति ब्रवीमि। त्वामेव पश्यन्ती संधारयाम्येव जीवितमहम्। तथापि यद्ययं ते ग्रहस्तत्साधय समीहितम्'। इत्यभिधायाङ्गस्पृष्टनिवसनाभरणताम्बूलप्रदानप्रदर्शितप्रसादातिशयां मां व्यसर्जयत्।

इत्यावेद्य च किञ्चिदिव नमितमुखी शनैः पुनर्व्यजिज्ञपत्। 'देव प्रत्यग्रदेवीप्रसादातिशयाहितप्रागल्भ्या दुःखिता च विज्ञापयामि। 'देवेनाप्येतदवस्थां देवीं दूरीकुर्वता किमिदमापन्नवत्सलायाः स्वप्रकृतेरनुरूपं कृतम्' इति। चन्द्रापीडस्तु तथोपालम्भगर्भं विज्ञप्तः पत्रलेखया तं च कादम्बर्याः स्नेहोक्तिपुरःसरं गम्भीरं च संतापं[1] च

कपोलयोः स्थलानि—गण्डप्रदेशा यैस्तथाभूतैः कुण्डलैः—कर्णाभरणविशेषैः वाह्यमानाः—नीयमानाः प्रेर्यमाणाः इत्यर्थः वाचालैः शब्दायमानैः कर्णोत्पलेषु श्रोत्रधृत-नीलकमलेषु ये मधुकरा भ्रमराः तैः समाज्ञापय आदिश' इति व्याहरन्त्यः कथयन्त्य इवेति गम्योत्प्रेक्षा कन्यकाः समधावन्–प्राद्रवन्। आज्ञा०—आज्ञाया-आदेशस्य प्रतीक्षाः–प्रतिपालनमित्यर्थः यासां तासु मुखम् स्वामिन्याः—कादम्बर्या इति यावत् कमलमिवेयुपमा अवलोकयन्ति—पश्यन्तीति तथोक्तासु तासु कन्यकासु स्निग्धाम्— स्नेहपूर्णाम् इन्दीवराणाम्—नीलकमलानाम् स्रजम्—मालामिवेत्युपमा, दृष्टिं—दृशकं पातयन्ती—क्षिपन्ती मरकतस्य—हरितमणिविशेषस्य शिलायाः—प्रस्तरस्य तले—उपरि न्यषीदत्—अतिष्ठत्। अब्रवीत्—अकथयच्च—खलु निश्चयेन (त्वद्गमनम्) प्रियम्—इष्टम् इति हेतोः अहं न ब्रवीमि—कथयामि त्वं गच्छेति, (यतः) त्वाम् एव नतु कमप्यन्यम् पश्यन्ती—अवलोकयन्ती अहम् जीवितम्—प्राणान् संधारयामि एव—जीवाम्येवेत्यर्थः तथापि यदि ते ग्रहः—गमनस्य आग्रहः तर्हि समीहितम्—अभीष्टम् साधय—कुरु पूरयेति यावत् इति अभिधाय कथयित्वा (कादम्बरी) अङ्ग०—अङ्गैः स्पृष्टानि—प्रयुक्तानीत्यर्थः यानि निवसनानि—वस्त्राणि च आभरणानि भूषणानि च ताम्बूलं नागवल्ली-दलम् 'पान' इति भाषायां प्रसिद्धं च तेषां प्रदानेन मह्यं वितरणेन प्रदर्शितः प्रकटितः प्रसादस्य प्रसन्नताया अतिशयः आधिक्यं यस्यां तथाभूतां माम् व्यसर्जयत् प्रेषितवतीत्यर्थः।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण आवेद्य—विज्ञाप्य किञ्चित्—ईषत् इवेति वाक्यालंकारे नमितं—नीचैः कृतं मुखम्—आननं यया तथाभूता (पत्रलेखा) शनैः—मन्दम् व्यजिज्ञपत्—निवेदितवती—'देव, स्वामिन् (चन्द्रापीड) प्रत्यग्र०—प्रत्यग्रः—अभिनवो देव्याः—कादम्बर्याः प्रसादस्य—प्रसन्नतायाः मयि कृपाया इति यावत् यः अतिशयोऽतिरेकः तेन आहितम्—उत्पादितम् प्रागल्भ्यम्—साहसं धाष्टर्यमिति यावत् यस्यां तथाभूता दुःखिता खिन्ना च विज्ञापयामि—निवेदयामि—देवेन भवता अपि एषा अवस्था दशा यस्याः तथाभूतां देवीम्—कादम्बरीम् दूरीकुर्वता—त्यजतेत्यर्थः किमिति प्रश्ने इदम् दूरीकरणकार्यम् आपन्नेषु—कष्ट-पतितेषु वत्सलायाः हितकारिण्या इत्यर्थः स्वस्य आत्मनः प्रकृतेः स्वभावस्य अनुरूपम् उचितम्—कृतम्? नेति काकुः। चन्द्रा०—चन्द्रापीडः तु तथा उक्तप्रकारेण उपालम्भो भर्त्सनक गर्भे मध्ये यस्मिन्

(कादम्बरी) मरकतमणि के शिलातल पर बैठ गई और बोली—'पत्रलेखा, (कुमार के पास तुम्हारा जाना) मुझे अच्छा लगता है इस कारण मैं (तुम्हें जाने को) बोल रही हूँ यह नहीं (क्योंकि) तुम्हें ही देखती हुई तो मैं जी रही हूं, तथापि यदि तुम्हारा (जाने का) यह आग्रह है, तो तुम इच्छा पूरी कर लो'=इस तरह कहकर कुछ सिर झुकाये (पत्रलेखा) धीरे-धीरे फिर (चन्द्रापीड को) निवेदन करने लगी—देव, देवी (कादम्बरी) द्वारा (मुझ पर) किये नये अत्यधिक अनुग्रह के कारण ढीठ बनी तथा दुःखी हुई मैं निवेदन करती हूँ—'वैसी हालत में देवी (कादम्बरी) को छोड़ते हुए आपने भी क्या यह दुःखियों के प्रति स्नेह रखनेवाली अपनी प्रकृति के अनुरूप किया है?' पत्रलेखा के इस तरह उलाहनापूर्वक कहने पर चन्द्रापीड़ कादम्बरी का वह स्नेहोक्तिपूर्ण, गंभीर, ताप-भरा, परिहास-सहित, प्रार्थना-भरा,

१. ससन्तापं।

सपरिहासं च साभ्यर्थनं च साभिमानं च सावहेलं च सप्रसादं च सनिर्वेदं च सानुरागं च सार्तिविशेषं च सावष्टम्भं च सकोपं च सात्मार्पणं च ससद्भावं च सोत्प्रासं च सोपालम्भं च सानुक्रोशं च सस्पृहं च सावधारणं च मधुरमपि दुःश्रवं सरसमपि शोषहेतुं कोमलमपि कठोरं नम्रमप्युन्नतं पेशलमप्यहंकृतं ललितमपि प्रौढमालापमाकर्ण्योत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य च स्तिमितपक्ष्मतया दुर्विषहदुःखबाष्पोपप्लुतायताक्षं तन्मुखं स्वभावधीरप्रकृतिरपि नितरां पर्याकुलोऽभवत्।

अथ कादम्बरीशरीरादिवालापपदैरेव सहागत्य युगपद्गृहीतो हृदये मन्युना कण्ठे जीवितेनाधरपल्लवे वेपथुना मुखे श्वसितेन नासाग्रे स्फुरितेन चक्षुषि च बाष्पेण च तुल्य-

---

कादम्बर्याश्च तम् आलापम् आकर्ण्येत्यन्वयः, इतः परम् आलापस्य विशेषणानि स्नेहः प्रीतिः तस्य उक्तिः पुरःसरा मुख्या यस्मिन् तम् प्रेमोक्तिपूर्णमितियावत्, गम्भीरम् गभीरम् महत्त्वपूर्णमित्यर्थः तापेन संतापेन सहितम्, परिहासेन सह वर्तमानम्, अभ्यर्थना प्रार्थना तया सहितम्, अभिमानेन सहितम् साहङ्कारम्, अवहेला अवहेलनं तिरस्कार इति यावत् तया सहितम्, सप्रसादम् प्रसादेन अनुग्रहेण सहितम्, निर्वेदः स्वावमाननं तेन सहितम्, अनुरागः प्रेम, आर्तिः पीडा तस्याः विशेषः आधिक्यम्, अवष्टम्भः स्तब्धता, आत्मनः अर्पणम् समर्पणम् सद्भावः सौहृदम्, उत्प्रासः व्यङ्ग्योक्तिः आक्षेप इति यावत्, उपालम्भः भर्त्सना, अनुक्रोशः करुणा, स्पृहा इच्छा, अवधारणम् निश्चयः तैः सहितम्, मधुरम् मिष्टम् अपि दुःश्रवम् दुःखेन श्रोतुं योग्यम् मधुरं दुःश्रवमिति विरोधः, मधुरम् माधुर्याख्यगुणविशेषपूर्णमिति तत्परिहारः, सरसम् रसो जलम् तेन सहितम् अपि शोषस्य हेतुम् शोषकमिति विरोधः जलस्य शोषकत्वाभावात्, सरसम् शृङ्गाररस-पूर्णमिति तत्परिहारः, कोमलमपि कठोरमिति विरोधः कोमलम् अकठोराक्षरमिति तत्परिहारः, नम्रं निम्नमपि उन्नतम् उच्चैस्तरम् इति विरोधः नम्रम् विनयपूर्णमिति परिहारः, पेशलम् सुकुमारम् अपि अहंकृतम् साहंकारमिति विरोधः पेशलम् हृद्यमिति परिहारः, ललितम् मृदुलध्विति यावत् अपि प्रौढम् महत् इति विरोधः ललितम् सुकोमलबन्धमिति परिहारः, उपरि सर्वत्र विरोधाभासा-लंकारोऽस्ति। **आलापम्** कादम्बरी-पत्रलेखयोर्मध्ये जातं वार्तालापम् आकर्ण्य श्रुत्वा स्तिमिते कर्मणि यथा स्यात्तथा पत्रलेखया विशदः निवेदितः सन् निश्चले पक्ष्मणी नेत्ररोमपंक्ती ययोः तयोः भावः तत्ता तया निर्निमेषतयेत्यर्थः। **दुर्विषह०**—दुर्विषहम् असह्यं यद् दुःखम् तेन यद् बाष्पम् अश्रुजलम् तेन उपप्लुते परिपूर्णे आयते विशाले अक्षिणी नयने यस्मिन् तथाभूतं तस्याः कादम्बर्याः मुखम् उत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य वारं-वारं तस्य कल्पनां कृत्वेत्यर्थः स्वभावतः धीरा गंभीरा प्रकृतिः स्वभावः यस्य तथाभूतोऽपि नितराम् अत्यन्तम् पर्याकुलो व्याकुलः अभवत्।

अथेति—कादम्बर्याः शरीरात् देहात् इवेत्युत्प्रेक्षा, आलापस्य कादम्बरीवार्तालापस्य पदैः शब्दैः एव सह आगत्य आगमनं कृत्वा युगपत् एकदैव हृदये चित्ते मन्युना दुःखेन क्रोधेन वा गृहीतः चन्द्रापीड इति सर्वत्र सम्बध्यते, कण्ठे गले जीवितेन प्राणैः, वेपथुना कम्पेन अधरः पल्लव इवेति लुप्तोपमा तस्मिन्, श्वसितेन दीर्घनिश्वासैरित्यर्थः मुखे आनने, स्फुरितेन स्फुरणेन

साभिमान, अवहेलनायुक्त, अनुग्रह–भरा, निर्वेद–सहित, अनुराग–सहित अत्यधिक पीडा–भरा, स्तब्धता, कोप, आत्मसमर्पण, सौहार्द, ताना, उलाहना, करुणा, स्पृहा और निश्चयसे पूर्ण एवं मधुर होकर भी सुनने में बुरा, सरस होकर भी सुखा देने वाला, कोमल होकर भी कठोर और ललित होकर भी प्रौढ वार्तालाप सुनकर तथा बिना पलक झपकाए और असह्य दुःख के कारण आँसुओं की बाढ़ बहाते विशाल आँखों वाले उस (कादम्बरी) के मुख की बार-बार कल्पना करके स्वभावतः धीर प्रकृति का होता हुआ भी बहुत व्याकुल हो उठा।

तत्पश्चात् मानो कादम्बरी के शरीर से एकदम आलाप के शब्दों के ही साथ-साथ आकर हृदय में दुःख के, कण्ठ में प्राणों के, अधर-पल्लव में कम्प के, मुख में आहों के, नाक के अग्र-

वृत्तिर्भूत्वा कादम्बर्याः क्षरद्बाष्पविक्षेपपर्याकुलाक्षरमुच्चैः प्रत्युवाच। 'पत्रलेखे' किं करोमि। अनेन दुरात्मना दुःशिक्षितेन ज्ञानाभिमानिना पण्डितम्मन्येन दुर्विदग्धेन दुर्बुद्धिनालीकधीरेण स्वयंकृत[1]मिथ्याविकल्पशतसहस्रभरितेनाश्रद्दधानेन मूढहृदयेन यद्यदेवानेकप्रकारं श्रृङ्गारनृत्ताचार्येण भगवता मनोभवेनान्तर्गतविकारावेदनाय मामुद्दिश्य बाला बलात्कार्यंते तत्तदेवादृष्टपूर्वत्वाद्दिव्यकन्यकानां रूपानुरूपलीलासम्भावनया च तावतो मनोरथस्याप्यात्मन उपर्यसम्भावनया च सर्वं सहजमेवैतदस्या इति विकल्पसंशयदोलाधिरुढं मां ग्राहयतैवमीदृशस्य देव्या दुःखस्य तव चोपालम्भस्य हेतुतां नीतो-

नासायाः घ्राणस्य अग्रे प्रान्ते, बाष्पेण अश्रुणा चक्षुषि नयने (जातावेकवचनम्) गृहीतः अतएव कादम्बर्याः तुल्या समाना वृत्तिः स्थितिरित्यर्थः यस्य तथाभूतो भूत्वा चन्द्रापीडः क्षरन् स्रवन् यो बाष्पो नयनजलम् तस्य विक्षेपः पातनम् तेन पर्याकुलानि अव्यवस्थानि गद्गदानीत्यर्थः अक्षराणि यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा उच्चैः तारस्वरेण प्रत्युवाच उत्तरं ददौ, **पत्रलेखे**—दुरात्मना दुष्टेनेत्यर्थः दुः दुष्टं शिक्षितं यस्य तेन सम्यक् शिक्षां न प्राप्तेनेति यावत् पण्डितम् आत्मानं मन्यते तेन, दुः दुष्टं विदग्धेन चतुरेण दुष्टा बुद्धिर्यस्य तेन, अलीकेन मिथ्येत्यर्थः धीरेण धैर्यगुणोपेतेन, **स्वयं०**—स्वयम् आत्मना कृता ये मिथ्या-विकल्पाः अलीका मनोरथा ऊहापोहा तेषां शतानां सहस्राणि लक्षाणि तैः भरितेन पूरितेन विविधान् मिथ्या-संकल्प-विकल्पान् मनोरथांश्च कुर्वतेत्यर्थः, अश्रद्धानेन शास्त्रोक्ते विश्वासं न प्रकुर्वता मूढ-हृदयेन मूर्खेण हृदयेन यत् यत् अनेकप्रकारम् मन्यु-जीवित-वेपथु-श्वसित-परितापादिकं कार्यं श्रृङ्गारस्य कामकलाया इत्यर्थः नृत्ताचार्येण नृत्य-शिक्षकेण भगो माहात्म्यम् ('भगोऽर्क-ज्ञान-माहात्म्य-वैराग्यादिषु' इति वैजयन्ती) अस्यास्तीति तेन महात्मना मनसि भवतीति तथोक्तेन मनसिजेनेत्यर्थः अन्तर्गता आन्तरिका ये विकारा भावाः तेषाम् आवेदनाय प्रकटनाय माम् चन्द्रापीडम् उद्दिश्य लक्ष्यीकृत्य बाला कन्या कादम्बरीत्यर्थः बलात् हठात् कार्यंते कर्तुं प्रेर्यते, तत् तत् मन्युपरितापादिकं दिव्यानां दिवि भवानाम् कन्यकानां बालानाम् न पूर्वं दृष्टा इत्यदृष्टपूर्वाः तासां भावः तत्त्वम् तस्मात् अर्थात् दिव्यकन्याः पूर्वं कदापि न दृष्टा इति कारणात्, रूपस्य सौन्दर्यस्य अनुरूपा उचिता लीलाविलासः तस्याः सम्भावनया सम्भवतया, तावतो मनोरथस्य अभिलाषस्य आत्मन उपरि असंभावनया अकल्पनया अर्थात् सा माम् अभिलषतीति कल्पनाया अभावात्, अस्याः कादम्बर्या एतत् सर्वं मन्यु-श्वसित-परितापादिकं सहजम् स्वाभाविकम् एव विकल्पश्च संशयश्च तयोः दोलाम् प्रेंखाम् अधिरूढम् अधिष्ठितम्, संशय-पतितमित्यर्थः माम् ग्राहयता बोधयता (मूढहृदयेन) बुद्ध्यर्थक-ग्रहधातोः णिचि द्विकर्मकत्वमत्र बोध्यम्, देव्या कादम्बर्या एवम् उक्तप्रकारेण ईदृशस्य (मन्यु-तापादिकस्य) दुःखस्य तव पत्रलेखाया उपालम्भस्य भर्त्सनस्य हेतुताम् नीतोऽस्मि प्रापितोऽस्मि कारणीभूतोऽस्मीत्यर्थः।

भाग में फड़कन के, और आँखों में आँसुओं के घर कर लेने पर कादम्बरीकी स्थिति के समान होकर चन्द्रापीड़ उमड़ते आँसू गिराते गद्गद अक्षरों में ऊँचे स्वर से बोला—पत्रलेखा, मैं क्या करूँ। यह दुष्ट, दुःशिक्षित, ज्ञान का अभिमानी, अपने को पण्डित समझने वाला, बुराई में चतुर, दुर्बुद्धि, झूठमूठ का धीर, अपने किये लाखों संकल्प-विकल्पों से भरा, एवं अविश्वासी मूढ़ हृदय मुझे लक्ष्य करके अन्तर्गत विकारों को व्यक्त करने हेतु उस लड़की से बलात् जो-जो अनेक प्रकारके(मन्यु, कम्प, परितापादि)कार्य श्रृंगाररस के नृत्याचार्य भगवान कामदेव के द्वारा करवा रहा है, उस–उसके सम्बन्ध में दिव्य कन्याओंको पहले कभी न देखने के कारण संकल्प-विकल्प और संशय में झूलते मुझे मूढ़ हृदय ने सुझाया कि 'वह (मन्यु-परितापादि) तो संभवतः उसके रूप के अनुरूप विलास हों, तुम्हारे ऊपर उसकी चाह की सम्भावना ही कहाँ? यह सब उसमें स्वाभाविक है"। इसी कारण देवी (कादम्बरी) के ऐसे-ऐसे दुःख का तथा

१. स्वकृत।

ऽस्मि। मन्ये च ममापि मनोव्यामोहकारी कोपि शाप एवायम् । अन्यथाऽप्रबुद्धबुद्धेरपि येषु न सन्देह उपपद्यते तेष्वपि स्फुटेषु मदनचिह्नेषु कथं मे धीर्व्यामुह्येत। तिष्ठन्त्वेव तावदतिसूक्ष्मतया दुर्विभाववृत्तीनि तानि स्मितावलोकितकथितविहृतलीलालज्जायितानि यान्यन्यथापि सम्भवन्ति । चिरानुभूतात्मकण्ठसंसर्गसुभगं हारमिममकृतपुण्यस्य मे तत्क्षणमेव कण्ठे कारयन्त्या किमिव नावेदितम् । अपि च हिमगृहकवृत्तान्तस्तु तवापि प्रत्यक्ष एव । तत्किमत्र प्रणयकोपाक्षिप्तयाप्यन्यथा व्याहृतं देव्या । सर्वं एवायं विपर्ययान्मम दोषः। तदधुना प्राणैरप्युपयुज्यमानस्तथा करोमि यथा नेदृशमेकान्तनिष्ठुरहृदयं जानाति मां देवी ।' इत्येवं वदत्येव चन्द्रापीडेऽश्रावितैव प्रविश्य वेत्रहस्ता प्रतिहारी कृतप्रणामा व्यज्ञापयत्। 'युवराज, एवं देवी विलासवती समादिशति।

मन्ये संभावयामि अहम् मनसः चित्तस्य व्यामोहम् विक्षेपं करोतीत्येवंशीलः शापः दुराशीः, अन्यथा शापाभावे न प्रबुद्धा जागरिता बुद्धिः मतिः यस्य तथाभूतस्यापि मूर्खस्यापीत्यर्थः येषु (मदनचिह्नेषु) संदेहो न उपपद्यते जायते इत्यर्थः तेषु स्फुटेषु व्यक्तेषु मदनचिह्नेषु काम-लक्षणेषु अपि कथं मे धीः बुद्धिः व्यामुह्येत व्यामोहं गच्छेत्। तिष्ठन्त्विति—अतिसूक्ष्मतया अतिशयेन सूक्ष्मत्वात् दुःखेन विभावयितुं ज्ञातुं शक्या दुर्विभावा वृत्तिः वर्तनं येषां तानि स्मितम् ईषद्धास्यं च अवलोकितं वीक्षणं च कथितं जल्पितं च विरुतम् विहारश्च लीलया विलासेन लज्जायितम् लज्जया आचरितम्, सर्वत्र भावे क्तः (अत्र लज्जितमित्येवोचितम् अथवा लज्जा अस्या अस्तीति लज्जा (मतुवर्थे अच् लज्जावतीत्यर्थः सा इवाचरतीति लज्जायते ततः भावे क्तविधाने लज्जायितमिति) यानि अन्यथा प्रेमाभावेऽपि संभवन्ति उपपद्यन्ते इत्यर्थः। चिरा०—चिरं चिरकालम अनुभूतः उपयोगे आनीत इत्यर्थः आत्मनः स्वस्याः (कादम्बर्याः) कण्ठस्य गलस्य यः संसर्गः संपर्कः तेन सुभगं मनोहरम् इमम् हारम् मौक्तिकमालाम् न कृतं विहितम् पुण्यं सुकृतं येन तथाभूतस्य मे मम् चन्द्रापीडस्य कण्ठे कारयन्त्या सखीद्वारा प्रक्षेपयन्त्येत्यर्थः किम् इवेति वाक्यालंकारे न आवेदितम् ज्ञापितम् अर्थात् अहं त्वयि अनुरक्तेति तया ज्ञापितमेव। अपि च किञ्च हिमगृहस्य वृत्तान्तो वृत्तम् तवापि प्रत्यक्षः त्वयाऽपि प्रत्यक्षं दृष्ट एवेति भावः। तत् तस्मात् कारणात् अत्र अस्मिन् विषये प्रणयकृतः कोपः प्रणयकोपः तेन आक्षिप्तया आकुलया अपि देव्या कादम्बर्या अन्यथा अन्येनैव प्रकारेण प्रेमशून्येनेति यावत् व्याहृतम् कथितम् 'तदलं तदानयनकथया' इति। विपर्ययात् मतिवैपरीत्यात् अज्ञानादिति यावत् प्राणैः अपि उपयुज्यमानः कादम्बरी-कृते प्राणानपि पणीकुर्वन्नित्यर्थः एकान्तेन अतिशयेन निष्ठुरं कठोरं हृदयं यस्य तथाभूतम् मां न जानाति वेत्ति देवी कादम्बरी, इति वदति कथयति एव अश्राविता न श्रुतिविषयं प्रापिता पूर्वं न सूचितेति यावत् वेत्रं वेत्रयष्टिका हस्ते यस्याः सा प्रतीहारी द्वारपालिका कृतः प्रणामः वन्दना यया सा

तुम्हारे उलाहने का मैं हेतु बना। मैं मानता हूँ कि मेरे मन को चकरा देने वाला यह कोई शाप ही हैं, नहीं तो क्या बात है कि जिन कामचिह्नों पर अप्रबुद्ध बुद्धि वाले (=मूर्ख) को भी सन्देह नहीं होता, अभिव्यक्त हुए उन पर भी मेरी बुद्धि चकराये? अत्यन्त गूढ होने के कारण कठिनता से समझ में आने वाले उन स्मित, वीक्षण, कथन, विहरण, विलास और लज्जा दिखाने की वातों को तो छोड़ो, जो और कारणों से भी हो जाती है, (किन्तु) चिरकाल से अपने गले में पहना रमणीय मौक्तिक हार तत्काल मुझ अपुण्यात्मा के गले में (सखी द्वारा) डलवाते हुए उसने क्या कुछ सूचित नहीं किया? इसके अतिरिक्त, हिमगृह का वृत्तान्त तो तुम्हारा अपनी आँखों से देखा हुआ है ही। अतः इस सम्बन्ध में प्रणय-कोप से आकुल बनी देवी (कादम्बरी) ने और ही तरह यह कैसे कह दिया (कि 'कुमार को ले आने की वात मत करो')। यह सब कुछ बुद्धि-विपर्यय (अज्ञान) के कारण मेरा दोष है। इसलिए अब प्राणों तक का दाव लगाता हुआ ऐसा करूँगा कि जिससे देवी (कादम्बरी) मुझे इस प्रकार

कृतजल्पात्परिजनतः श्रुतं मया यथा किल पृष्ठतः स्थिताद्य पत्रलेखात्र पुनः परागतेति। न च मे त्वय्यस्यां च कश्चिदपि स्नेहस्य विशेषो विलसतीति मयैवेयं संवर्धिता। अपि च तवापि कापि महती वेला [1]वर्तते दृष्टस्य। तदनया सहित एवागच्छ। मनोरथशतलब्धमतिदुर्लभं ते मुखकमलालोकनम्' इति।

चन्द्रापीडस्तु तदाकर्ण्य चेतस्यकरोत्। 'अहो संदेहदोलारूढं मे जीवितम्। एवमम्बा निमेषमपि मामपश्यन्ती दुःखमास्ते। पत्रलेखामुखेन चैवमाज्ञापितमागमनाय मे निष्कारणवत्सलेन देवीप्रसादेन। आजन्मक्रमाहितो बलवाञ्जननीस्नेहः। वाञ्छाकुलं हृदयम्। अमोच्यं तातचरणशुश्रूषासुखम्। प्रमाथी मन्मथहतकः। हारिणी गुरु-

न्यज्ञापयत् निवेदितवती। युवराज०—समादिशति आज्ञापयति कृतः जल्पः परस्परम् आलापो येन तथाभूतात् परिजनतः भृत्यवर्गात् मया श्रुतम् आकर्णितम् पृष्ठतः पृष्ठे पश्चादिति यावत् अत्र सप्तम्यर्थे तसिल्, स्थिता विलम्बितेत्यर्थः पत्रलेखा अद्य अत्र अस्मिन् प्रदेशे उज्जयिन्यामिति यावत् परागता प्रतिनिवृत्ता। त्वयि पुत्रे अथ च अस्यां पत्रलेखायां स्नेहस्य प्रेम्णः कश्चित् अपि विशेषो भेदो न विलसति विद्यते इत्यर्थः मया एव इयं पत्रलेखा संवर्धिता पालन-पोषणेन वृद्धिं नीता। महती अधिका वेला समयः तवापि दृष्टस्य अवलोकितस्य अर्थात् तव दृष्टस्य अत्यधिककालो व्यतीतः, बहुतिथात् कालात् त्वं न दृष्टोऽसीति यावत्। मनोरथानां कामनानां शतैः लब्धं प्राप्तम् अतिशयेन दुर्लभं कठिनं ते मुखं कमलमिवेति लुप्तोपमा तस्य आलोकनं दर्शनम्।

चन्द्रा०—तत् आकर्ण्य श्रुत्वा चेतसि अकरोत् अचिन्तयदित्यर्थः। अहो इत्याश्चर्ये मे जीवितम् जीवनम् सन्देहः संशय एव दोलेति रूपकम् ताम् आरूढम् अधिष्ठितम् संशयापन्नमित्यर्थः। अम्बेति—एवम् निमेषम् अपि नेत्रनिमीलितम् क्षणमपीत्यर्थः अत्र कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया, माम् अपश्यन्ती नावलोकयन्ती दुःखं यथा स्यात्तथा आस्ते तिष्ठति दुःखमनुभवतीत्यर्थः। निः निर्गतम् कारणं निमित्तं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथेति निष्कारणम् वत्सलेन प्रीति-पूर्णेन देव्याः कादम्बर्याः प्रसादेन अनुग्रहेण पत्रलेखाया मुखेन द्वारा आगमनाय हेमकूटे आगन्तुम् एवम् आज्ञापितम् आदिष्टम्। आजन्म जन्म मर्यादीकृत्य क्रमेण क्रमशः आहितः आरोपितः जनन्याः मातुः स्नेहो बलवान् प्रबलः। हृदयं वाञ्छया कादम्बर्याम् अभिलाषेण आकुलम् व्याकुलम्। तातस्य पितुः चरणौ पादौ तयोः शुश्रूषा सेवा तस्याः सुखम् अमोच्यम् त्यक्तुं न शक्यम्। हत एव हतकः हतकश्चासौ मन्मथः कामदेव इति मन्मथ-हतकः [आहिताग्न्यादित्वात् मन्मथशब्दस्य पूर्वनिपातः] नीचो मन्मथ इत्यर्थः प्रमथ्नातीति तथोक्तः चित्तोद्वेगकारीत्यर्थः।

अत्यन्त कठोर हृदय वाला न समझे। इस तरह चन्द्रापीड के कहते-कहते ही बिना [पूर्व] सूचना दिए प्रविष्ट हो, हाथ में बेंत लिये प्रतीहारी प्रणाम किये निवेदन कर बैठी—'युवराज, महारानी विलासवती इस तरह आज्ञा देती हैं—'आपस में वार्तालाप किये दासियों से मैंने सुना है कि पत्रलेखा, जो पीछे रह गई थी, आज यहाँ फिर लौट आई है। तुममें और इसमें मेरा जो स्नेह है, उसमें कोई भी अन्तर नहीं है। मैंने ही इसे पाल-पोष कर बड़ा किया है। इसके अतिरिक्त, तुम्हें भी देखे बहुत समय हो गया है, इसलिए इसे साथ लिये ही तुम आओ। सकड़ों कामनाओं से प्राप्त तुम्हारे मुखकमल का दर्शन अतिदुर्लभ है।'

यह सुनकर चन्द्रापीड ने मन में सोचा—ओह! मेरा जीवन सन्देह के झूले पर चढ बैठा। (इधर) इस तरह माताजी पलभर भी मुझे न देख पाती हुई दुःख में पड़ जाती हैं और (उधर) निष्कारण स्नेह रखने वाले देवी (कादम्बरी) के अनुग्रह ने पत्रलेखा द्वारा मुझे इस तरह वहाँ आने का आदेश दिया है। (इधर) जन्म से लेकर लगातार (मुझमें) रखा हुआ जननी का स्नेह जोर मार रहा है, (उधर कादम्बरी के प्रति) अभिलाषा से हृदय

१. वर्ततेऽदृष्टस्य।

जनलालना। दुःसहान्युत्कण्ठितानि। अनुबन्धिनी बान्धवप्रीतिः। कुतूहलिन्यभिनवप्रार्थना। मुखावलोकिनः कुलक्रमागता राजानः। जीवितफलं प्रियतमामुखावलोकनम्। अनुरक्ताः प्रजाः। गरीयान्गन्धर्वराजसुतानुरागः। दुस्त्यजा जन्मभूमिः। परिग्राह्या देवी कादम्बरी। कालातिपातासहं मनः। विप्रकृष्टमन्तरं हेमकूटविन्ध्याचलयोः।' इत्येवं चिन्तयन्नेव प्रतीहार्योपदिश्यमानवर्त्मा पत्रलेखाकरावलम्बी जननीसमीपमगात्। तत्रैव च तमनेकप्रकारजननीलालनसुखाचिन्तितदुर्विषहहृदयोत्कण्ठं दिवसमनयत्।

उपनतायां नात्मचिन्तायामिवान्धकारितदशदिशि शर्वर्याम्, अनिवार्यविरहवेदनोन्मथ्यमानमानसाकुलेषु कलकरुणमुच्चैर्व्याहरत्सु चक्रवाकयुगलेषु, उत्तेजितस्मरशरं

गुरुजनस्य मातापित्रोः लालना प्रीतिः हारिणी हरतीति मन इति तथोक्ता मनोहरेत्यर्थः। उत्कण्ठितानि (भावे क्तः) कादम्बरी प्रत्यौत्सुक्यमितिभावः दुःसहानि असह्यानि। बान्धवानाम् स्वजनानां प्रीतिः स्नेहः अनुबध्नातीति तथोक्ता अनुगतेत्यर्थः गमन-विघ्नकारिणीति यावत्। अभिनवे नूतने वस्तुनि पूर्वं कदाऽप्यदृष्टायां दिव्य-कन्यायामिति यावत् प्रार्थना इच्छा कुतूहलं कौतुकमस्यामस्तीति तथोक्ता। कुलस्य वंशस्य क्रमेण परम्परया आगताः प्राप्ताः राजानो महीपाला मुखम् अवलोकयितुं शीलं येषामस्तीति तथोक्ताः। प्रियतमायाः प्रेयस्याः कादम्बर्या इत्यर्थः मुखस्य आननस्य अवलोकनं दर्शनं जीवितस्य जीवनस्य फलम् तन्मुखावलोकनं विना व्यर्थमेवैतज्जीवनमिति भावः। प्रजाः देशवासिनो जनाः अनुरक्ताः भक्ता मयीति शेषः। गन्धर्वराजस्य चित्ररथस्य सुतायां पुत्र्यां सुतायाः वा अनुरागः प्रेम गरीयान् अतिशयेन गुरुः अत्यधिक इति यावत्। जन्मनः स्वोत्पत्तेः भूमिः स्थानम् दुस्त्यजा दुखेन त्यक्तु योग्या यथोक्तम्—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। कादम्बरी देवी परिग्राह्या आत्मीयीकर्तुं योग्या परिणेतुं योग्येत्यर्थः। मनः कालस्य अतिपातम् अत्ययं विलम्बमिति यावत् न सहते इति तथोक्तम्। हेमकूटश्च विन्ध्याचलश्च तयोः अन्तरम् अन्तरालम् विप्रकृष्टम् दूरम्। इति एवं चिन्तयन् विचारयन् एव प्रतीहार्या उपदिश्यमानो निर्दिश्यमानो मार्गो यस्य तथाभूतः (चन्द्रापीडः) प्रतीहारी-दर्शितमार्गमनुसरन्नित्यर्थः पत्रलेखायाः करं हस्तम् अवलम्बते इति तथोक्तः जनन्याः मातुः समीपम् अगात् अगच्छत्। तत्रैव मातुः समीपे इत्यर्थः। अनेक०—अनेकप्रकारं विविधं जनन्या मातुः यत् लालनम् आलिंगनादिना स्नेहप्रदर्शनम् तेन यत् सुखम् आनन्दः तस्मिन् अचिन्तिता अविज्ञातेत्यर्थः दुर्विषहा दुःखेन विषोढुं योग्या असह्येत्यर्थः हृदयस्य उत्कण्ठा औत्सुक्यं यस्मिन् तथाभूतं दिवसं दिनम् अनयत् व्यत्ययापयत्।

उप०—'मनसा सस्मार···कादम्बरी-रूपस्ये' त्यस्ति वाक्यम्। आत्मनः स्वस्य चिन्ताया इवेत्युपमायाम् अन्धकारिताः अन्धकारं प्रापिताः दश दिशः यया तथाभूतायाम् शर्वर्याम् राज्याम् उपनतायाम् प्राप्तायाम् सत्याम् रात्रिवत् कथमहं कादम्बर्याः पार्श्वे गमिष्यामीति चिन्तयापि चन्द्रापीडस्य कृतेऽपि दिशः अन्धकारिताः, अनिवार्य०—अनिवार्या निवारयितुमशक्या या विरहस्य वियोगस्य वेदना पीडा तया उन्मथ्यमानं व्याकुलीक्रियमाणं यन्मानसं मनः तेन आकु-

---

अकुला रहा है, (इधर) पिता के चरणों की सेवा का सुख नहीं छोड़ा जा सकता, (उधर) मुआ कामदेव तंग कर रहा है। (इधर) माता-पिता का लाड-प्यार मन हर रहा है, (उधर) उत्सुकता असह्य बनती जा रही है। (इधर) बान्धवों का प्रेम पीछा नहीं छोड़ता, (उधर) नयी वस्तु की चाह में कुतूहल भरा हुआ है। (इधर) कुल-परंपरागत राजा लोग (मेरा) दर्शन कर रहे हैं, (उधर) जीवन का फल प्रेयसी का मुख-दर्शन है। (इधर) प्रजा अनुरक्त है। (उधर) गन्धर्वराज की पुत्री का अत्यधिक अनुराग है। (इधर) जन्म-भूमि छोड़ना कठिन है, (उधर) देवी कादम्बरी अपनाने योग्य है। (इधर) मन विलम्ब नहीं सह रहा है, (उधर) हेमकूट और विन्ध्याचल के बीच का फैसला देखो तो बहुत दूर का है"—इस तरह सोचता-

समुत्सर्पमाणेषु चन्द्रमसोऽङ्कोल्लधूसरालोकेष्वग्रमयूखेषु, विजृम्भमाणकुमुदिनीश्वासपरिमलग्राहिणि मन्दं मन्दमावातुमारब्धे प्रदोषानिले च, शयनवर्ती निमीलितलोचनोऽप्यप्राप्तनिद्राविनोदः, हेमकूटागमनखेदान्निपत्य विश्रान्तेनेव पादपल्लवच्छायायाम्, [1]जङ्घानुरोधिरोहिणा लग्नेनेव सुसंहतयोरूर्वोः, लिखितेनेव विस्तारिणि नितम्बफलके, मग्नेनेव नाभिमुद्रायाम्, उल्लसितेनव रोमराज्याम्, आरूढेनेव त्रिवलिसोपानहारिणि मध्यभागे, कृतपदेनेवोन्नतिविस्तारशालिनि स्तनतटे, मुक्तात्मनेव बाह्वोः, कृतावलम्बनेनेव हस्तयोः,

लेषु विह्वलेषु चक्रवाकाणां कोकानां युगलेषु द्वन्द्वेषु कलं मधुरं करुणं च दीनं च यथा स्यात्तथा उच्चैः तारस्वरेण व्याहरत्सु शब्दायमानेषु सत्सु, **उत्तेजित०**—अङ्कोल्लस्य पुष्पविशेषस्य या धूलिः परागः तद्वत् धूसरः धूसरवर्णः ईषत्पाण्डुर इत्यर्थः आलोकः प्रकाशः येषां तथाभूतेषु चन्द्रमसः चन्द्रस्य अग्राः प्रथमाः ये मयूखाः किरणाः तेषु उत्तेजिताः निशिताः स्मरस्य कामस्य शराः बाणाः यैः यथा स्यात्तथा समुत्सर्पमाणेषु परितः प्रसरत्सु सत्सु, **विजृम्भ०**—विजृम्भमाणाः विकसन्त्याः याः कुमुदिन्यः कुमुद्वत्यः तासां श्वासस्य यः परिमलः सुगन्धः तं ग्रहीतुम् आदातुं शीलमस्य तथोक्ते प्रदोषस्य निशामुखस्य सायंकालस्येत्यर्थः अनिले वायौ मन्दं-मन्दं शनैः शनैः आवातुं प्रचलितुम् आरब्धे प्रक्रान्ते सति, **शयन०**—शयने शय्यायां वर्तते इति तथोक्तः (चन्द्रापीडः) निमीलिते मुद्रिते लोचने नयने येन तथाभूतोऽपि सन् न प्राप्तः लब्धः निद्रायाः विनोदः सुखं येन सः हेमकूटात् तदाख्यपर्वतात् यत् आगमनम् तेन यः खेदः क्लमः तस्मात् तत्कारणादित्यर्थः निपत्य पतित्वा पादौ चरणौ कादम्बर्या इति शेषः एव पल्लवौ किसलयौ तयोः छायायाम् अनातपे विश्रान्तेन कृतविश्रमेण मनसा इत्यस्य विशेषणानि प्रक्रान्तानि, **जङ्घा०**—जङ्घाम् प्रसृताम् अनुरोद्धुम् आरोढुं च शीलमस्येति तथोक्तेन गुल्फादारभ्य जानुपर्यन्तो भागो जङ्घा, ताम् सोपानमिव अनुसृत्य कृतारोहेणेत्यर्थः सुसंहतयोः सुसंघटितयोः ऊर्वोः सक्थ्नोः लग्नेन संसक्तेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विस्तारिणि विस्तृते आयते इति यावत् नितम्बौ कटिपश्चाद्भागौ एव फलकं पट्टः तस्मिन् लिखितेन चित्रितेनेवेत्युत्प्रेक्षा, नाभिः तुन्दकूपिका तस्य मुद्रा मुद्राकारगर्तः इत्यर्थः तस्याम् मग्नेन त्रुडितेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम्, रोम्णां तनूरुहाणां राज्यां पङ्क्तौ उल्लसितेन उच्छ्वसितेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम्, त्रिवलिः एव सोपानानि आरोहणानि तैः हारिणि मनोहरे मध्यभागे कटिप्रदेशे आरूढेन कृतारोहेणेवेत्युत्प्रेक्षा, उन्नतिः औन्नत्यं च विस्तारः आयामश्च ताभ्यां शालेते शोभेते इत्येवंशीलयोः स्तनयोः कुचयोः तटे प्रान्ते कृतं विहितं पदं स्थानं येन तेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम् बाह्वोः भुजयोः मुक्तः संस्थापित इत्यर्थः आत्मा येन तथाभूतेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम्, हस्तयोः करयोः

सोचता ही वह प्रतीहारी द्वारा दिखाये मार्ग से, पत्रलेखा का हाथ पकड़े माँ के पास चल दिया और माँ के नाना-विध लाड़-प्यार के आनन्द में हृदय की असह्य उत्कण्ठा की परवाह न किये उसने वह दिन वहीं काटा।

अपनी चिन्ता की तरह दश दिशाओं में अंधेरा कर देने वाली जब रात हो गई, न मिटाये जा सकने वाली विरह-पीड़ा से मन में व्यथित और आकुल हुए चकवा-चकवियों के जोड़े जोर-जोर से मीठा और करुण शब्द करने लगे, अंकोल्ल पुष्प की पराग की तरह श्वेत-पीत प्रकाश वाली चन्द्रमा की किरणें काम के बाणों को तेज करते हुए फैलने लगी, जमुहाती हुई कुमुदिनियों के निश्वास की सुगन्ध लिये हुए सायंकालीन वायु मन्द-मन्द बहने लगी, शय्या पर लेटा हुआ (चन्द्रापीड़) आँखें मीचे हुए भी नींद का सुख न प्राप्त करता हुआ। हेमकूट से आने की थकान के कारण पड़कर (कादम्बरी के) चरण-किसलयों की छाया में विश्राम जैसे लेते हुए, पिंडली के अनुसार ऊपर चढ़े (और) जाँघों पर सटे हुए जैसे, विस्तृत नितम्बों के फलक पर चित्रित—जैसे, गोल नाभि-गर्त में डूबे—जैसे, रोम-पंक्ति पर उठे—जैसे,

१. जंघानुरोधरोहिणा।

आश्लिष्टेनेव कण्ठे, प्रविष्टेनैव कपोलयोः, उत्कीर्णेनेवाधरपुटे, ग्रथितेनेव नासिकासूत्रे, समुन्मीलितेनेव लोचनयोः, स्थितेनेव ललाटशालायाम्, अन्वितेनेव चिकुरभारान्धकारे, प्लवमानेनेव सर्वदिक्पथप्लाविनि लावण्यपूरप्लवे, मनसा सस्मार स्मरायतनभूतस्य कादम्बरीरूपस्य।

उत्पन्नात्मीयबुद्धिश्च निर्भरस्नेहार्द्रचेतास्तत एव वासरादारभ्य तां प्रति गृहीतरक्षापरिकर इव यतो यत एव मण्डलितकुसुमकार्मुकं मकरध्वजमस्यां प्रहरन्तमालोकितवाँस्ततस्तत एवात्मानमन्तरेर्पितवान्। एवमम्लानमालतीकुसुमकोमलतनौ निर्घृणं प्रहरन् लज्जस इत्युपालभमान इव दिवसमुत्तरलतारयान्तर्बाष्पार्द्रया दृष्ट्या कुसुमचापं पुनः स्मरशरप्रहार-

कृतं विहितम् अवलम्बनं ग्रहणं येन तेनेव, कण्ठे गलप्रदेशे आश्लिष्टेन आलिंगितेनेव, कपोलयोः गण्डस्थलयोः प्रविष्टेन कृतप्रवेशेनेव, अधरपुटे ओष्ठपुटे उत्कीर्णेन उल्लिखितेनेव, नासिका नासा एव सूत्रं तस्मिन् ग्रथितेन गुम्फितेनेव, लोचनयोः नेत्रयोः समुन्मीलितेन विकसितेनेव ललाटम् अलिकम् एव शाला गृहम् तस्मिन् स्थितेन कृतावस्थानेनेव, चिकुराणां केशानां भारः चयः अन्धकारः तिमिरमिव तस्मिन् अन्वितेन सम्बद्धेनेव, सर्वे च ते दिशां दिशानां पन्थानः मार्गाः तान् प्लावयतीत्येवंशीले लावण्यस्य सौन्दर्यस्य यः पूरः ओघः तस्य प्लवे प्रवाहे प्लवमानेन तरता इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षा मनसा अन्तःकरणेन स्मरः कामः तस्य आयतनं गृहं तद्भूतस्य तद्रूपस्य कादम्बर्या रूपस्य सौन्दर्यस्य सस्मार स्मृतवान् चन्द्रापीड इत्यन्वयः (स्मरस्येत्यत्र "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति कर्मणि षष्ठी) मातुः भवने स्थितस्यापि चन्द्रापीडस्य मनः कादम्बर्याः तत्तदङ्गेषु रमते स्मेति भावः।

उत्पन्न०—उत्पन्ना संजाता आत्मीया कादम्बरी-सम्बन्धे मदीयेयम् इतिरूपा बुद्धि, बोधः यस्य तथाभूतः चन्द्रापीडः निर्भरः निरतिशयः यः स्नेहः रागः तेन आर्द्रं कोमलं चेतः हृदयं यस्यः सः ततः तस्मात् एव वासरात् दिनात् आरभ्य प्रभृति तां कादम्बरीं प्रति गृहीतः आत्तः रक्षार्थं परिकरः परिच्छदः येन सः बद्धपरिकर इत्यर्थः यतो यतः दिशातः इति शेषः मण्डलितम् आकृष्य वक्रीकृतं कुसुमकार्मुकं पुष्पधनुः येन तथाभूतम् मकरध्वजं मदनम् अस्यां कादम्बर्यां प्रहरन्तम् प्रहारं कुर्वन्तम् आलोकितवान् अपश्यत्, ततः ततः एव स आत्मानम् अन्तरे मध्ये अर्पितवान् स्थापितवान् येन तस्यां प्रहृता वाणाः स स्वस्मिन् गृह्णीयादित्यर्थः। **एवम्**—एवम् अनेन प्रकारेण अम्लानम् न म्लानम् विकसितमित्यर्थः यत् मालत्या कुसुमं पुष्पं तद्वत् कोमला मृद्वी तनुः शरीरं तस्याम् निर्घृणं निर्गता घृणा दया यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा निर्दयमित्यर्थः प्रहरन् प्रहारं कुर्वन् दिवसं दिनम् एतद् रात्रेरप्युपलक्षकम् रात्रिमपि च (कालात्यन्तसंयोगे द्वि०) उत् अत्यधिकं तरला चञ्चला तारा कनीनिका यस्यां तथाभूतया अन्तः मध्ये वाष्पः अश्रु यस्यां तया दृष्ट्या कुसुमचापं कामम् उपलभमान उपालम्भं प्रयच्छन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् पुनः

त्रिवलियों की सीढ़ियों से मनोहर बने कटिप्रदेश पर चढ़े हुए—जैसे, उन्नत-पृथु कुच-प्रान्त पर डेरा जमाये—जैसे, भुजाओं पर अपने को स्थापित किये हुए—जैसे, हाथों पर आश्रय लिये हुए—जैसे, गले पर आलिंगन किये हुए—जैसे, कपोलों पर प्रविष्ट हुए—जैसे, अधरोष्ठ पर तराशे हुए—जैसे, नाक-रूपी सूत्र पर गूँथे हुए—जैसे, आँखों पर खिले हुए—जैसे, ललाट-रूपी भवन में स्थित हुए—जैसे, अन्धकार की तरह (काले-काले) केश-समूह पर (अपने को) संजोये—जैसे, (और) सभी दिङ्मार्गों को डुबा देने वाले (उसके) सौन्दर्य की बाढ़ के प्रवाह में तैरते हुए—जैसे, मन से मदन के निकेतनभूत कादम्बरी के सौन्दर्य की याद करता जाता था।

और (उस पर) अपनेपन की बुद्धि उत्पन्न किये, अत्यधिक प्रेम के कारण हृदय में कोमल बना हुआ (चन्द्रापीड) उस दिन से लेकर उसकी ओर से रक्षाहेतु बद्धपरिकर—जैसे जिस-जिस तरफ से कुसुम-धनुष को (खींचकर) मंडलाकार किये कामदेव को उस (कादम्बरी)

मूर्च्छितां संज्ञामिव लम्भयितुं तामवयवैरुवाह स्वेदजलवानुत्ससर्ज च दीर्घदीर्घान्निश्वास-मारुतान्। तच्चेतनालम्भमुदित इव च सर्वाङ्गीणं क्षणमपि न मुमोच रोमाञ्चम्। सह्यते हृदयेन वेदना न वेति तद्वार्तां प्रष्टुमिव नियुक्तेन मनसा शून्यतामधार्षीत्। तत्प्रति-वार्ताकर्णनायेव च गृहीतमौनः सर्वदैवातिष्ठत्। तदाननालोकनान्तरितमिव सर्वमेव नाद्राक्षीत्। चन्द्रबिम्बेपि नास्य दृष्टिररमत। तदालापपरिपूरितश्रोत्रेन्द्रिय इव न किंचिदप्यपरमन्तः [1]कर्णे कृतवान्। वीणाध्वनयोप्यस्य बहिरेवासन्। सुभाषितान्यपि न प्रवेशमलभन्त। सुहृद्वाचोपि परुषा इवाभवन्। बान्धवजनजल्पितान्यपि नासुखायन्त।

स्मरस्य कामस्य शराणानां वाणानां प्रहारैः आघातैः मूर्च्छितां मूर्च्छां प्राप्तां ताम् कादम्बरीम् संज्ञाम् चेतनाम् इव लम्भयितुं प्रापयितुं संज्ञायुक्तां कर्तुमित्यर्थः अवयवैः निजहस्तादिभिरित्यर्थः उवाह अवहत् स्वेदजलस्य घर्मजलस्य लवान् बिन्दून् दीर्घदीर्घान् अतिदीर्घान् निःश्वास-मारुतान् श्वासवायून् उत्ससर्ज मुमोच, अन्योऽपि कश्चित् मूर्च्छित-व्यक्तेरुपरि जलकणान् सिञ्चति वीजनं च करोति। तस्याः कादम्बर्याः यः चेतनायाः संज्ञायाः लम्भः प्राप्तिः तेन मुदितः प्रहृष्ट इव क्षणम् मुहूर्तम् अपि सर्वाङ्गीणम् सर्वाङ्गव्याप्तम् रोमाञ्चं रोमोद्गमं न मुमोच न तत्याज सततं धारयति स्मेत्यर्थः। **सह्यते**—'हृदयेन वेदना कामपीडा त्वया सह्यते न वा'? इति तस्याः कादम्बर्याः वार्तां वृत्तान्तं प्रष्टुम् अनुयोक्तुम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् नियुक्तेन प्रेषितेनेत्यर्थः मनसा चेतसा स्वयं शून्यतां रिक्तताम् अधार्षीत् दधौ। तस्याः कादम्बर्याः प्रतिवार्तायाः प्रत्युत्तरस्येत्यर्थः आकर्णनाय श्रवणाय इवेत्यु-त्प्रेक्षायाम् सर्वदैव नित्यमेव गृहीतं धृतं मौनं तूर्णीभावो येन तथाभूतः अतिष्ठत् तस्थौ। तस्याः कादम्बर्याः आननस्य मुखस्य आलोकनेन दर्शनेन अन्तरितं व्यवहितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सर्वम् एव न अद्राक्षीत् अपश्यत् अर्थात् स ध्याने तन्मुखमेव पश्यतिस्म, बहिर्नान्यत्, चन्द्रस्य बिम्बे मण्डले अपि अस्य चन्द्रापीडस्य दृष्टिः चक्षुः न अरमत न स्थितिं लेभे इत्यर्थः। तया कादम्बर्या सह य आलापः काल्पनिकः वार्तालापः तेन पूरितं भरितं श्रोत्रेन्द्रियं श्रवणं यस्य तथाभूत इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अपरम् अन्यत् न किञ्चित् कर्णे कृतवान् श्रुतवा-नित्यर्थः। वीणानां ध्वनयः शब्दा अपि अस्य चन्द्रापीडस्य बहिरेव बहिः स्थिता एव आसन्, न कर्णे गच्छन्ती स्मेत्यर्थः यथोक्तं श्रुत्या—'अन्यमना अभूवम् नाश्रौषम्' इति। **सुभाषितानि** सूक्तयः न प्रवेशमलभन्त नान्तर्गच्छन्तिस्म। सुहृदां मित्राणां वाचः वाण्यः अपि परुषाः कठोरा इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अभवन्। बान्धवाश्च ते जनाश्च तेषां जल्पितानि कथनानि न असुखायन्त न सुखानि=सुखकारकाणि अभवन्निति सुख (सुखशब्दोऽत्र विशेषणम्)+क्यष्

पर प्रहार करता देखता, उस-उस ओर बीच में अपने आप को खड़ा कर देता, "खिले हुए मालती पुष्प के समान कोमल शरीर पर निर्दयतापूर्वक प्रहार करते तुम्हें लाज नहीं आती?" इस प्रकार दिन भर अति चञ्चल घनी पुतलियों वाली, आँसुओं से भरी दृष्टि से कामदेव को उलाहना देता हुआ—जैसा, कामदेव के वाण-प्रहार से मूर्छित हुई उस (कादम्बरी) को होश में लाने हेतु—जैसे अपने अंगों से उसे उठाता और पसीने के जलकणों तथा लम्बे-लम्बे निःश्वास वायुओं का छोड़ता; उसके होश में आने से प्रसन्न हुआ—जैसे, सर्वाङ्ग-व्याप्त रोमाञ्च को धारण किये ही रहता; "हृदय पीड़ा सह रहा है या नहीं?" यह समाचार पूछने हेतु भेजे—जैसे मन से खाली-खाली रहता; उसका उत्तर सुनने के लिए—जैसे हमेशा ही चुप रहता; उसके मुख को देखते रहने से बीच में आया अन्य सब कुछ नहीं देख पाता। चन्द्रमंडल पर भी उसकी दृष्टि नहीं रमती। उसकी बातों से कान भरे हुए होने के कारण से—जैसे अन्य कुछ भी कानों के भीतर नहीं आने देता। वीणा की ध्वनि भी उससे बाहर ही बाहर रहता। सूक्तियाँ भी (उसके भीतर) प्रवेश नहीं कर पातीं। मित्रों की बातें कठोर-सी लगतीं। बान्धव लोगों के

१. क्रर्णं।

भावावगमभीत्येव यथापूर्वं न कस्यचिद्दर्शनमदात्। अनवरतमुक्तज्वालेन मदनहुतभुजान्तर्दह्यमानोऽपि गुरुजनत्रपया न सद्यःसमुद्धृतार्द्रारविन्दशयनमभजत। न सरसविसलताजालानि गात्रेष्वकरोत्। न जललवमौक्तिकक्षोदतारकितान्यजरठपद्मिनीपत्राणि पार्श्वेऽप्यकारयत्। न कुसुमपल्लवस्रस्तररचनामादिदेश। नानवरतधारानिपातोल्लसितशिशिरसीकराबद्धदुर्दिनं ददर्शापि धारागृहम्। न मकरन्दसंततसंपातशीतलाभ्यन्तराणि हर्म्योद्यानलताभवनान्यप्यसेवत। न मलयजजललुलितपृष्ठेषु मणिकुट्टिमेष्वप्यलुठदिच्छया। न तुहिनकरकरनिकरसंक्रान्तिहृद्येषु ललनाकरकलितचन्द्रकान्तमणिदर्पणे-

(भवत्यर्थे नामधातुः)। भावा०=भावस्य मनोगताभिप्रायस्य 'एत्र विरहकारणात् एवंभूत' इत्यस्यावगमः ज्ञानं तस्मात् भीत्या भयेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम् यथापूर्वं पूर्ववत् कस्यचित् कस्मै अपि (सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी) दर्शनं न अदात् ददौ। अनवरतम् निरन्तरं मुक्ता निःसारिता ज्वाला अर्चिः येन तथाभूतेन मदन एव हुतभुक् अग्निः तेन अन्तः हृदये दह्यमानः ज्वलन्नपि गुरुजनाः मातृपित्रादयः तेभ्यः या त्रपा लज्जा तया सद्यः प्रत्यग्रं समुद्धृतानि उत्पाटितानि आर्द्राणि क्लिन्नानि यानि अरविन्दानि कमलानि तेषां शयन शय्याम् न अभजत न सेवितवान्। सरसानि जलार्द्राणि यानि विसानि मृणालानि तेषां या लताः वल्लयः तासां जालकानि समूहान् गात्रेषु अङ्गेषु न कृतवान् धृतवानित्यर्थः। न जल०—जलस्य सलिलस्य लवाः कणाः एव मौक्तिकानां मुक्तामणीनां क्षोदाः चूर्णानि तैः तारकितानि सञ्जात-तारकाणि इति (तारक+इतच्) अजरठानि अजीर्णानि कोमलानीत्यर्थः पद्मिन्याः कमलिन्याः पत्राणि दलानि पार्श्वे सामीप्ये अपि न अकारयत भृत्यैरिति शेषः। कुसुमानि पुष्पाणि च पल्लवानि किसलयानि च तेषां स्रस्तरः आस्तरणम् तस्य रचनाम् निर्माणम् न आदिदेश आज्ञापितवान्। अनवरतं सततं यः धारायाः सलिलधारायाः निपातः पतनम् तेन उल्लसिताः उत्पतिताः ये शिशिराः शीतलाः सीकराः जल-कणिकाः तैः आबद्धं जनितमित्यर्थः दुर्दिनं वर्षादिनं यस्मिन् तथाभूतं धारागृहम् धारायन्त्रगृहम् न ददर्श दृष्टवानपि तत्र गमनं तु दूरापेतम्। न मकरन्द०—मकरन्दस्य पुष्परसस्य सततं निरन्तरं यः संपातः पतनम् तेन शीतलानि हिमानि अभ्यन्तराणि मध्यभागाः येषां तानि हर्म्येषु प्रासादेषु यत् उद्यानं तस्य लतागृहाणि लताभवनानि लताकुञ्जानीत्यर्थः अपि न असेवत सेवितवान्। न मलय०—मलयस्य चन्दनस्य यत् जलं सलिलं तेन लुलितानि स्पृष्टानि सिक्तानीति यावत् पृष्ठानि उपरितनभागाः येषां तथाभूतानि मणीनां कुट्टिमेषु बद्धभूमिषु ('कुट्टिमं त्वस्य बद्धभूः' इति हैमः) अपि इच्छया ईहया न अलुठत् गात्राणि शीतलयितुं न लुठितवान्। न तुहिन०—तुहिनाः शीताः कराः किरणा यस्य सः चन्द्र इत्यर्थः तस्य कराणां किरणानां यो निकरः समूहः तस्य सक्रान्तिः संक्रमः पतनमित्यर्थः तया हृद्येषु रम्येषु ललनानां स्त्रीणां करैः हस्तैः कलिताः धृताः ये चन्द्रकान्तमणिभिः खचिताः दर्पणाः आदर्शाः तेषु अपि आत्मनः स्वस्य संपातम् प्रतिबिम्बमित्यर्थः न

कथन भी सुखदायक नहीं होते। '(मेरे हृदय का) भाव कोई जान न बैठे' इस कारण किसी को दर्शन नहीं देता। निरन्तर लपटें छोड़े हुए कामानल से भीतर ही भीतर जलता हुआ भी गुरुजनों की लज्जा के कारण ताजे-ताजे लाये गीले कमलों की शय्या को नहीं अपनाता; न गीली-गीली मृणालों के लता-समूह अंगों पर धरता; जल-कणों के रूप में मोतियों के चूरे से तारों वाले-जैसे बने कमलिनी के कोमल पत्तों को पास में भी नहीं लाने देता; न फूलों और किसलयों का विस्तर बनाने की आज्ञा देता। लगातार धारा गिरती रहने से उठते हुए ठण्डे-ठण्डे जल-कणों द्वारा वर्षा का दिन बनाये हुए धारायन्त्र-गृह (Shower bath-room) की ओर ताकता तक भी नहीं था। मकरन्द के निरन्तर झरते रहने से शीतल बने भीतरी भाग वाले महलों के उपवन के लताकुञ्जों तक का भी सेवन नहीं करता। ऊपर से चन्दन-जल छिड़के मणिमय फर्शों पर इच्छा से नहीं लेटता। चन्द्रमा के किरण-समूह पड़ने से मनोहर बने,

ष्वप्यसंक्रामयदात्मसंपातम् । किं बहुना । नाश्यानहरिचन्दनरसचर्चामप्या चरणादापयत् ।

एवमेव केवलं रात्रौ दिवा [1]चाकृतनिर्वृतिज्वलताप्यदहनात्मकेन दहताप्यक्षतस्नेहेन्धनेन दुःखानुभावनायेव भस्मसादकुर्वता मदनदहनेनान्तर्बहिश्च क्वाथ्यमानदेहः शोषमगात् । आर्द्रतां पुनः प्रतिक्षणाधीयमानवृद्धिं नात्याक्षीत् । एवं च निष्प्रतिक्रियतया दुस्त्यजतया चातिविसंष्ठुलेनोपास्यमानोपि मनसिजेनाकारमेव लोकलोचनेभ्योऽरक्षन्न कुसुमशरसायकेभ्यो जीवितम् । तनोरेव तानवमङ्गीचकार न लज्जायाः । शरीरस्थिता-

---

ललनाभिः द्वारा इत्यर्थः असंक्रामयत् संक्रमणम् अकारयत्, (अत्र 'असंक्रामयत्' इति चिन्त्यम् समक्रामयदित्यस्यैव व्याकरणसंमतत्वात्) किं बहुना किं बहुकथनेनेत्यर्थः आचरणात् चरणपर्यन्तम् आश्यानः किमपि शुष्कः हरिचन्दनस्य पीतवर्णचन्दनस्य यो रसः द्रवः तेन चर्चाम् लेपम् अपि न अदापयत् भृत्यान् दातुं प्रेरितवान् ।

एवमेव—एतेनैव प्रकारेण रात्रौ निशायां दिवा दिने च (अत्र केवलपदं व्यर्थम्, अथवा 'न केवलं रात्रौ' इति पठनीयमासीत्) न निर्वृत्तिः उपशमः निर्वाणमितियावत् कर्मणि यथा स्यात्तथा ज्वलता दीप्यमानेन अपि न दहनः वह्निः आत्मा स्वरूपं यस्य तथाभूतेन, दहता प्लोषता अपि न क्षतम् समाप्तं स्नेहः प्रणय एव इन्धनं यस्मिन् तेन, दुःखस्य अनुभवाय भोगाय इवेत्युत्प्रेक्षायाम् भस्मसात् अकुर्वता भस्मत्वं न नयता (अत्र 'अभस्मसात् कुर्वता' इत्येव सुवचम् अव्यवहितकृधातुना एव सात्प्रत्ययविधानात्, अत्र तु नञो व्यवधानमस्ति) मदनः काम एव दहनः वह्निः तेन अन्तः हृदये वहिगात्रेषु क्वाथ्यमानः क्वाथवत् पच्यमानः देहः शरीरं यस्य सः शोषम् शुष्कतां क्षीणत्वमित्यर्थः अगात् प्राप शरीरं क्षीणोऽभवदित्यर्थः, पुनः किन्तु प्रतिक्षणं क्षणेक्षणे आधीयमाना क्रियमाणा वृद्धिः उपचयो यस्याः तथाभूताम् आर्द्रताम् सरसतां न अत्याक्षीत् मुमोच, अत्र शोषमगात्, आर्द्रताञ्च नात्याक्षीत् इति विरोधः, शोषम् क्षीणताम् आर्द्रताम् कादम्बरीं प्रति स्निग्धतामिति तत्परिहारः । **एवं च**—निः = न प्रतिक्रिया प्रतीकारः उपचार इति यावत् यस्य तस्य भावः तत्ता तया, दुःखेन त्यक्तुं शक्य इति दुस्त्यजः तस्य भावः तत्ता तया, अतिशयेन विसंष्ठुलेन विषमेणेत्यर्थः मनसिजेन मदनेन उपास्यमानः सेव्यमानः आकुलीक्रियमाण इत्यर्थः अपि लोकानां जनानां लोचनेभ्यः नयनेभ्यः आकारम् इंगितम् मुखे प्रतिबिम्बितं मनोभावमिति यावत् अरक्षत् जुगोप, न पुनः कुसुमशरस्य कामस्य सायकेभ्यः बाणेभ्यः जीवितम् प्राणान् अरक्षदिति पूर्वेणान्वयः वरं प्राणा गच्छेयुः किन्तु मत्कामविकारं लोका न जानीयुरिति भावः; तनोः शरीरस्यैव तानवं तनुताम् कृशतामिति यावत् अङ्गीचकार स्वीचकार, न पुनः लज्जायाः त्रपायाः तानवम् ह्रासम्, कामोद्वेगे लोका लज्जां त्यजन्ति, किन्तु चन्द्रापीडेन

से पकड़े चन्द्रकान्तमणि-जड़ित दर्पणों पर अपना प्रतिबिम्ब नहीं पड़ने देता । अधिक क्या कहें, हरिचन्दन के कुछ सूखे हुए द्रव से चरणों तक लेप भी नहीं करने देता था ।

इसी तरह कामाग्नि द्वारा भीतर और बाहर काढ़े की तरह देह के पकाये जाते रहने से वह सूखता गया—ऐसी कामाग्नि, जो रात और दिन बिना बुझे जलती रहती हुई भी अग्निरूप न थी, जलाती रहती हुई भी जिसके स्नेह-रूप इन्धन में कोई कमी नहीं आती थी और जो दुःख भोगने हेतु—जैसे भस्म नहीं कर रही थी, किन्तु चन्द्रापीड़ प्रतिक्षण बढ़ती जाती हुई आर्द्रता (गीलापन; स्नेह) को नहीं छोड़ता जा रहा था । और इस तरह जिस अति विषम काम-विकार का न कोई इलाज है और न जो छोड़ा ही जा सकता है, उसका शिकार बना हुआ भी (चन्द्रापीड़) लोगों की आँखों से चेहरे (के मनोभाव) की ही रक्षा करता था, काम के बाणों से प्राणों की नहीं; शरीर का ही ह्रास उसने अपनाया लज्जा का नहीं; शरीर की

---

१. निर्वृतिराज्वलता, निर्वृतिनाज्वलता ।

वेवानादरं कृतवान्न कुलक्रमस्थितौ। प्रजा एवान्वरुध्यत न मन्मथोत्कलिकाः। सुखमेवावधीरयामास न धैर्यम्। एवं चास्य पुरः कादम्बरीरूपगुणावष्टम्भाहितप्राणेन बलवतानुरागेणाकृष्यमाणस्य पश्चाद्गुरुजनप्रतिबन्धदृढतरेण महीयसा स्नेहेन च वार्यमाणस्य गम्भीरप्रकृतेः सरित्पतेरिव चन्द्रमसा सुदूरमुल्लास्यमानस्यापि मर्यादावशादात्मानं स्तम्भयतः कथंकथमपि कतिपयेष्वपि सहस्रसंख्यायमानेष्वतिक्रान्तेषु वासरेष्वेकदा रणरणकसकाशादिवान्तरलब्धावस्थानो निर्गत्य बहिर्नगर्यास्तरंगसङ्गशीतसीकरासारमरुन्ति कलक्कणितकलहंसचक्रवाकचक्रवालाक्रान्तसरससुकुमारसैकतानि सिप्रातटान्य-

न तथा कृतम्; शरीरस्य स्थितिः धारणं तस्याम् एव अनादरम् अवहेलनाम् कृतवान् न पुनः कुलक्रमस्य वंशपरम्परायाः स्थितौ मर्यादायाम् अनादरं कृतवान्, कामपीडितोऽपि कुलमर्यादां ररक्षेति भावः, प्रजाः लोकाः एव अन्वरुध्यत अन्वसरत्, न पुनः मन्मथस्य कामस्य उत्कलिकाः उत्कण्ठाः, सुखम् निजसौख्यम् एव अवधीरयामास अवगणयामास, न पुनः धैर्यम् धीरताम्। एवं चास्य—पुरः अग्रतः कादम्बर्याः रूपं सौन्दर्यं गुणः गाम्भीर्यादिश्च तयोः यः अवष्टम्भः अवलम्बनम् तेन आहिताः स्थापिताः धर्तुं योग्यीकृता इत्यर्थः प्राणाः असवो येन तथाभूतेन बलवता प्रबलेन अनुरागेण प्रेम्णा आकृष्यमाणस्य बलात् कादम्बरी-समीपे नीयमानस्य पश्चात् पृष्ठतश्च गुरुजनस्य मातृपित्रादिकस्य यः प्रतिबन्धः प्रतिरोधः तेन दृढतरेण अविचलेन महीयसा अतिशयेन महता स्नेहेन प्रीत्या वार्यमाणस्य अवरुध्यमानस्य, गम्भीरा प्रकृतिः मध्यम् अथ च स्वभावो यस्य तथाभूतस्य सरिताम् नदीनां पत्युः स्वामिनः सागरस्येत्यर्थ इव चन्द्रमसा चन्द्रेण सुदूरम् अत्यन्तम् उल्लास्यमानस्य उल्लासं प्राप्यमाणस्यापि मर्यादा सीमा अथ च कुलक्रमस्थितिः तस्या वशात् कारणादित्यर्थः आत्मानम् स्तम्भयतः नियन्त्रयतः अस्य चन्द्रापीडस्य अर्थात् चन्द्रेण समुल्लास्यमानोऽपि सागरो यथा स्वमर्यादां न लङ्घयति तथैव चन्द्रापीडोऽपि कादम्बर्या अनुरागेण समुल्लास्यमानोऽपि गंभीरस्वभावत्वात् कुलमर्यादां नालङ्घयत्, श्लिष्टोपमा, कथंकथमपि केनापि प्रकारेण कतिपयेषु कतिषु अङ्गुलिगण्येष्वित्यर्थः सहस्रसंख्यकेषु इवाचरत्सु (आचारार्थे क्यङ्) युगायमानेष्वित्यर्थः वासरेषु दिवसेषु अतिक्रान्तेषु व्यतीतेषु सत्सु, **एकदा०**—एकदा एकस्मिन् समये रणरणकम् उत्कण्ठाजनितविकलता तस्य सकाशात् पार्श्वात् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अन्तः गृहमध्ये न लब्धम् अवस्थानं स्थितिः येन सः विरह-वैकल्यात् अन्तःस्थातुमशक्त इत्यर्थः निर्गत्य निस्सृत्य नगर्याः उज्जयिन्याः तरङ्गैः वीचिभिः यः सङ्गः सम्पर्कः तेन शीताः शीतलाः ये शीकराः जलकणिकाः तेषाम् आसारः वृष्टिः येषु तथाभूताः मरुतः पवनाः येषु तानि, कलानि मधुराणि क्वणितानि शब्दाः येषां तथाभूताः ये कलहंसाः राजहंसाश्च चक्रवाकाः कोकाश्च तेषां चक्रवालेन समूहेन आक्रान्तानि अधिष्ठितानि सरसानि सजलानि सुकुमाराणि कोमलानि च सैकतानि सिक-

स्थिति ही की अवहेलना की कुल की स्थिति (मर्यादा) की नहीं; प्रजा के ही पीछे-पीछे चला, कामजनित उत्कण्ठाओं के पीछे-पीछे नहीं; सुख को ही ठुकराया, धैर्य को नहीं। और इस प्रकार आगे से कादम्बरी के सौन्दर्य एवं अन्य गुणों के अवलम्ब से प्राण धारण कराने वाले प्रबल अनुराग द्वारा खींचे जाते हुए और पीछे से माता-पिता के प्रतिबन्ध से अतिदृढ़ बने प्रबल स्नेह से रोके जाते हुए, चन्द्रमा द्वारा उछाले जाते हुए भी मर्यादा के कारण अपने को नियन्त्रण में रखे गम्भीर प्रकृति (मध्यभाग) वाले समुद्र की तरह (कादम्बरी के अनुराग द्वारा उछाले जाते हुए भी) मर्यादा के कारण अपने को नियन्त्रण में रखे हुए गम्भीर प्रकृति (स्वभाव) वाले उस चन्द्रापीड़) के जब हजारों-जैसे प्रतीत हो रहे कुछ दिन बीत गए, तो एक बार भीतर न बैठ पाता हुआ बेचैनी के पास से-जैसे (छूटकर) नगरी के बाहर निकलकर (चन्द्रापीड़) तरंगों के संपर्क से ठंडी-ठंडी जल-कणिकाओं की वृष्टि करने वाले वायु से युक्त, मधुर शब्द करते हुए राजहंसों तथा चक्रवाकों को रखे हुए सिप्रा नदी के स्निग्ध और कोमल तीरों पर पैदल ही

नुसरन्नाति[1]दूरमिव चरणाभ्यामेव बभ्राम। भ्राम्यंश्च रुद्रतनयायतनं रयेणागच्छतः सावष्टम्भया गत्या त्वरितखुरसंचारान्युज्यमानांश्च विरलीभवतश्च संघट्टमानांश्च विश्लिष्यतश्चोत्सहमानांश्च लम्बमानांश्च परापततश्च विच्छिन्नपङ्क्तिव्यवस्थानान्स्खलतोपि पततोप्यवसीदतोपि यथाशक्ति सादिभिरुत्पीडितान्निःसहतया दूरागमनखेदमतित्वरयागमनकार्यगौरवमावेदयतो दूरादेवातिबहूनिव तुरङ्गमानद्राक्षीत्। दृष्ट्वा चोत्पन्नकुतूहलस्तेषां परिज्ञानायान्यतमं पुरुषं प्राहिणोत्। आत्मनाप्यूरुदघ्नेन पयसोत्तीर्य शिप्रां तस्मिन्नेव भगवतः कार्तिकेयस्यायतने तत्प्रतिवार्तां प्रतिपालयन्नतिष्ठत्।

तत्रस्थश्च कुतूहलात्तस्मिन्नेव वाजिवृन्दे निक्षिप्तदृष्टिः पार्श्वस्थितां हस्तेनाकृष्य

तामयानि सिप्रायाः एतत्संज्ञकनद्याः तटानि तीराणि अनुसरन् अनुगच्छन्, न अतिदूरम् किमपि दूरमित्यर्थः इवेति वाक्यालंकारे, चरणाभ्याम् पद्भ्याम् एव बभ्राम भ्रमणमकरोत्) भ्राम्यन् भ्रमन् च रयेण वेगेन रुद्रस्य शिवस्य तनयः पुत्रः स्वामि-कार्तिकेयः तस्य आयतनम् मन्दिरम् प्रति आगच्छतः आगमनं कुर्वतः, अवष्टम्भः दर्पः तेन सहितया गत्या गमनेन, त्वरितः द्रुतः खुराणां शफानां संचारः निक्षेपः येषां तान् एतत् अन्यानि च 'तुरङ्गमान्' इत्येतस्य विशेषणानि, युज्यमानान् परस्परं मिलतः, विरलीभवतः दूरे-दूरे भवत इत्यर्थः संघट्टमानान् परस्परम् आघ्नतः, उत्सहमानान् उत्साहं प्रकुर्वतः सोत्साहानित्यर्थः, लम्बमानान् शरीरं दीर्घीकुर्वतः, परापततः आगच्छतः, विच्छिन्ना त्रोटिता पङ्क्तेः व्यवस्था नियमो यैः तान् भिन्नपंक्तीनित्यर्थः स्खलतः स्खलनं प्राप्तान् अपि, पततः पतनं कुर्वतः अपि, अवसीदतः अवसादं प्राप्नुवतः अपि यथाशक्ति शक्त्यनुसारम् सादिभिः अश्वारोहैः उत्पीडितान् शीघ्रगमनाय ताडितान् निस्सहतया दुःसहतया असमर्थतयेत्यर्थः दूरात् यत् आगमनम् तेन यः खेदः क्लमः तम् अतिशयेन त्वरया रयेण च आगमनेन कार्यस्य कृत्यस्य गौरवं गुरुत्वं महत्त्वमिति यावत् च आवेदयतः सूचयतः दूरात् विप्रकर्षात् एव अतिशयेन बहून् बहुसंख्यकान् इव तुरंगमान् अश्वान् अद्राक्षीत् अपश्यत्।

टिप्पणी—निःसहतया खल् प्रत्यय ईषत्, दुः और सु पूर्व रहने पर ही हुआ करता है, नि पूर्व रहने पर नहीं, इसलिए यहाँ 'सहनं सहः निर्गतः सहः येभ्यः तेषां भावः तत्ता' इस तरह व्युत्पत्ति करें।

दृष्ट्वा अवलोक्य च उत्पन्नं संजातं कुतूहलं कौतुकं यस्य तथाभूतश्चन्द्रापीडः तेषाम् तुरङ्गमानाम् परिज्ञानाय 'कस्येमे' इति ज्ञातुमित्यर्थः अन्यतमं कमप्येकं पुरुषं प्राहिणोत् प्रेषितवान्। आत्मना स्वयमपि ऊरुः सक्थिः परिमाणमस्येति ऊरुदघ्नं तेन पयसा जलेन सिप्रां नदीम् उत्तीर्य पारं गत्वा भगवतः कार्त्तिकेयस्य आयतने मन्दिरे तस्य प्रेषितपुरुषस्य प्रतिवार्तां प्रत्युत्तरं प्रतिपालयन् प्रतीक्षमाणः अतिष्ठत् तस्थौ। **तत्रस्थ०**—तत्र तिष्ठतीति तत्रस्थश्च कुतूहलात् कौतु-

---

ही विचरण कर रहा था। और विचरण करता हुआ वह दूर से ही कार्तिकेय-मन्दिर की ओर गर्वीली चाल से शीघ्र दौड़े चले आ रहे बहुत सारे घोड़ों को देख बैठा। जिनके पैर तेजी से उठ रहे थे, जो (आपस में) मिल रहे थे और (फिर) दूर-दूर हो जा रहे थे, टकराते थे और पृथक् हो जाते थे, उत्साह में आ रहे थे और शरीर तान रहे थे, दौड़े जाते हुए पंक्ति की व्यवस्था तोड़े हुए थे, ठोकर खाते हुए भी, गिरते हुए भी, खिन्न होते हुए भी सवारों द्वारा (शीघ्र चलने हेतु) यथाशक्ति तंग किये जा रहे थे और असह्य होने के कारण दूर से आने की थकान तथा आने के प्रयोजन की महत्ता सूचित कर रहे थे। और देखकर चन्द्रापीड़ को कुतूहल हो उठा। उसने उन घोड़ों को जानने के लिए (कि ये किसके हैं) एक व्यक्ति को भेज दिया। स्वयं भी जाँघ-जाँघ तक जल वाली सिप्रा नदी को पार करके भगवान् कार्तिकेय के उसी मन्दिर में उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा।

---

१. 'नातिदूर…संचारान्' नास्ति।

पत्रलेखामवादीत्। 'पत्रलेखे, पश्य य एष पुर एवार्ककिरणनिवारणोल्लासितया प्रेङ्खदालोललम्बशिखया मयूरपिच्छमय्या छत्रिकया[1] दुर्विभाव्यवदनोऽश्ववारो ज्ञायते केयूरकोऽयम्' इति। यावत्तया सहैवं निरूपयत्येव तावत्तस्मात्प्रहितपुरुषादुपलब्धात्मावस्थानं दृष्टिपथ एवावतीर्य तुरंगमादापतन्तं दूरात् द्रुतागमनधूलीधूसरश्यामीकृतशरीरं परिवर्तितमिवेतराकारेणोज्झिताङ्गरागसंस्कारान्मलिनेन वपुषा विषादशून्येन च मुखेनान्तर्दुःखसंभारपिशुनया च दृष्टया दूरत एवापृष्टामपि कष्टां कादम्बरीसमवस्थामनक्षरमावेदयन्तं केयूरकमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा च दर्शितप्रीतिरेह्येहीत्याहूय ससंभ्रमप्रणतोपसृतमतिदूरप्रसारिताभ्यां दोर्भ्यां पर्यष्वजत तम्। अपसृत्य पुनः कृतनमस्कारे तस्मिन्ननामयप्रश्न-

कात् वाजिनां तुरंगमाणां वृन्दे समूहे निक्षिप्ता प्रेरिता दृष्टिः चक्षुः येन सः पार्श्वे समीपे स्थितां पत्रलेखां हस्तेन आकृष्य अवादीत् प्रावोचत्—'य एषः अयम् पुरः अग्रे एव अर्कस्य सूर्यस्य किरणानां कराणां निवारणाय निरोधाय उल्लासितया उत्थापितया **प्रेङ्ख०**—प्रेङ्खन्ती चलन्ती लोला चञ्चला लम्बा दीर्घा शिखा अग्रं यस्याः तया मयूराणां पिच्छानि बर्हाणि एव मयूरपिच्छमयी (स्वरूपार्थे मयट्) तया छत्रिकया छत्रेण दुः दुःखेन कठिनतयेत्यर्थः विभाव्यमानं ज्ञायमानं वदनं मुखं यस्य तथाभूतः अश्ववारः अश्वारोही ज्ञायते सम्भाव्यते अयम् केयूरकः कादम्बर्या एतत्संज्ञको भृत्यः। **यावत्०**—स यावत् यावत्कालं तया पत्रलेखया सह एवं निरूपयति पश्यति एव, तावत् तावत्कालं तस्मात् प्रहितात् पूर्वं प्रेषितात् उपलब्धः ज्ञातः आत्मनः स्वस्य चन्द्रापीडस्येति यावत् अवस्थानं मन्दिरे स्थितिं येन तथाभूतम् केयूरकमद्राक्षीत् इत्युत्तरेणान्वयः, दृष्टिपथं दृष्टिगोचरे एव चन्द्रापीडस्येति शेषः तुरङ्गमात् अश्वात् अवतीर्य अवरुह्य आपतन्तम् आगच्छन्तम्, दूरात् दूरस्थानात् हेमकूटादित्यर्थः द्रुतं त्वरितं यत् आगमनम् तेन धूल्या रेणुना धूसरम् किमपि पाण्डुरम् श्यामीकृतं कृष्णवर्णीकृतं च शरीरं यस्य तथाभूतम्, इतरः अन्यः भिन्न इति यावत् यः आकारः आकृतिः तेन परिवर्तितं परिणतम्, उज्झितः त्यक्तः यः अङ्गरागः विलेपनम् च संस्कारः प्रसाधनञ्च ताभ्यां मलिनेन मलीमसेन वपुषा शरीरेण, विषादेन अवसादेन निमित्तभूतेन शून्येन रिक्तेन निस्तेजसेत्यर्थः मुखेन आननेन अन्तः हृदये यः दुःखस्य संभारः समूहः तस्य पिशुनया ज्ञापिकया दृष्ट्या चक्षुषा च दूरतः विप्रकर्षात् एव अपृष्टान् अननुयुक्ताम् कष्टाम् कष्टपूर्णाम् कादम्बर्याः समवस्थां दशाम् न अक्षराणि वाक्-प्रयोग इत्यर्थः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा मूकरूपेणेवेत्यर्थः आवेदयन्तम् ज्ञापयन्तम् केयूरकम् अद्राक्षीत् अपश्यत्। **दृष्ट्वा च०**—दृष्ट्वा तं विलोक्य च दर्शिता प्रकटिता प्रीतिः स्नेहः येन तथाभूतः (चन्द्रापीडः) 'एहि, एहि, आगच्छ, आगच्छ' इति उक्त्वा आहूय आकार्य ससम्भ्रमं सम्भ्रमः आदरः तेन सहितं यथा स्यात्तथा प्रणतं कृतप्रणामम् उपसृतं समीपे आगतञ्च तम् केयूरकम् अतिदूरं यथा स्यात्तथा प्रसारिताभ्यां दोर्भ्याम् भुजाभ्यां पर्यष्वजत आलिङ्गितवान्। **अपसृत्य०**—अपसृत्य पर्यष्वङ्गात् पृथक् भूत्वा पुनः

वहीं बैठा वह उसी अश्वसमूह पर दृष्टि डाले, पास में खड़ी हुई पत्रलेखा को हाथ से खींचकर बोला—"पत्रलेखा, देख, यह जो आगे-आगे अश्वारोही है, जिसका चेहरा सूर्य-किरणों को रोकने हेतु खोली हुई, हिलते हुए चञ्चल लम्बे ऊपरी सिरे वाली मोरपंखों की छत्री से देखने में नहीं आ रहा है, मालूम पड़ता है कि यह केयूरक है"। उस (पत्रलेखा) के साथ ज्यों ही इस तरह देख रहा था कि तभी भेजे हुए उस पुरुष से अपनी (चन्द्रापीड की) उपस्थिति का पता लगाए, (चन्द्रापीड के) दृष्टिगोचर होते ही घोड़े से उतर कर आते हुए, दूर से जल्दी-जल्दी आने के कारण धूल से शरीर में मटमैला और काला बने हुए, आकार में दूसरा ही जैसा लग रहे, अङ्गराग और प्रसाधन के छूट जाने के कारण मैले बने शरीर, विषाद के कारण सूने-सूने-से बने मुख और अन्तर्गत दुःखातिशय की सूचना देने वाली दृष्टि द्वारा दूर से ही न पूछने

१. वेत्रिकया।

वचसा संवर्ध्य सर्वानेव तत्सहायान् पुरः स्थितं पुनः पुनः सस्पृहमालोक्य केयूरकमवादीत्। 'केयूरक' त्वद्दर्शनेनैव भद्रं देव्याः सपरिवाराया इत्येतदावेदितम्। आगमनकारणमपि विश्रान्तः सुखितः कथयिष्यसि'। इत्युक्त्वा संभ्रान्तागतारोहकढौकितां करिणीमारुह्य कुतोऽस्य जनस्य सुखितेत्यभिदधानमेव केयूरकं पृष्ठतः पत्रलेखां चारोप्य स्वभवनमयासीत्। तत्र च निषिद्धाशेषराजलोकप्रवेशः प्रविश्य वल्लभोद्यानं सपरिवारेण केयूरकेण सहोत्ताम्यता चेतसाऽचेतितमेव दिवसकरणीयं निर्वर्तयामास। निर्वर्त्य च पत्रलेखाद्वितीयः सुदूरोत्सारितपरिजनः केयूरकमाहूयाब्रवीत्। 'केयूरक, कथय देव्याः कादम्बर्याः समदलेखाया महाश्वेतायाश्च संदेशम्।'

इत्यभिहितवति चन्द्रापीडे पुरः सप्रश्रयमुपविश्य केयूरकोऽप्यगादीत्। 'देव' किं

कृतः नमस्कारः अभिवादनं येन तस्मिन् केयूरके अनामयस्य कुशलस्य प्रश्नस्य वचसा वचनेन सर्वान् एव तस्य केयूरकस्य सहायान् सहागतान् पुरुषान् संवर्ध्य संवर्धनं कृत्वा समादृत्येत्यर्थः पुरः अग्रस्थितं वर्तमानम् केयूरकं पुनः पुनः सस्पृहं स्पृहया इच्छया सहितं यथा स्यात्तथा आलोक्य दृष्ट्वा अवादीत् उवाच—'केयूरक, तव दर्शनम् अवलोकनम् तेन एव सपरिवारायाः सपरिजनायाः देव्याः कादम्बर्याः भद्रं कुशलमस्तीति एतत् आवेदितं विज्ञापितं भवतीति शेषः। विश्रान्तः कृतविश्रामः सुखितः सुखं सञ्जातमस्येति (सुख+इतच्) सुस्थ इति यावत् सन् त्वम् आगमनस्य कारणम् हेतुम् अपि कथयिष्यसि वदिष्यसि इति उक्त्वा कथयित्वा संभ्रान्तं यथास्यात्तथा ससंभ्रमं सत्वरम् इति यावत् आगतः य आरोहकः हस्तिपकः तेन ढौकिताम् आनीताम् करिणीं हस्तिनीम् आरुह्य आरोहणं कृत्वा "अस्य जनस्य ममेत्यर्थः कुतः सुखिता सुखयुक्तता" इति अभिदधानं कथयन्तम् एव केयूरकं पृष्ठतः कृत्वा स्वपृष्ठभागे निवेश्य पत्रलेखां चापि आरोप्य हस्तिन्यां स्थापयित्वा स्वं निजं भवनं गृहम् अयासीत् ययौ। तत्र च—निषिद्धः निवारितः अशेषाः सर्वे च ये राजानः तेषां लोकस्य समूहस्य प्रवेशः येन तथाभूतः वल्लभम् प्रियम् उद्यानम् उपवनं सपरिवारेण सपरिजनेन केयूरकेण सह प्रविश्य गत्वा उत्ताम्यता अतिव्याकुलेन चेतसा मनसा अचेतितम् अज्ञातम् अबुद्धिपूर्वकं यन्त्रवदिति यावत् दिवसस्य वासरस्य करणीयं क्रियमाणं कृत्यजातम् निर्वर्तयामास अकरोत्। निर्वर्त्य कृत्वा च पत्रलेखा द्वितीया सहगामिनी यस्य सः पत्रलेखां सह कृत्वेत्यर्थः सुदूरम् अतिदूरे उत्सारितः निष्कासितः परिजनः भृत्यवर्गो येन सः केयूरकम् आहूय आकार्य अब्रवीत् अकथयत्—'केयूरक, देव्याः कादम्बर्याः मदलेखया एतत्संज्ञकया महाश्वेतायाः सख्या सहिताया महाश्वेतायाः कादम्बरीसख्याश्च सन्देशम् वाचिकम् इति चन्द्रापीडे अभिहितवति वदति सति पुरः अग्रे प्रश्रयेण विनयेन सहितं यथा स्यात्तथा उपविश्य

पर भी मूक-भाषा में कादम्बरी की दुःखभरी दशा बताते हुए केयूरक को देख बैठा। और देखकर स्नेह प्रकट किया—'आओ, आओ' इस तरह कह के पास बुलाकर सादर प्रणाम किये और पास में आये हुए उसे दूर तक आगे फैलाई भुजाओं से गले लगाया। पृथक् होकर उसके फिर नमस्कार करने पर, कुशल-प्रश्न पूर्वक उसके साथ आये हुए सभी जनों का स्वागत करके आगे खड़े हुए उसे फिर-फिर सस्पृह देखकर बोला—'केयूरक, तुम्हें देखने से ही सपरिवार देवी कादम्बरी सकुशल है—यह मालूम हो गया है। विश्राम करके, शान्त होकर (अपने) आने का कारण भी कहना' यह कहकर जल्दी-जल्दी आए हाथीवान द्वारा लायी गयी हथिनी पर चढ़कर 'इस जन (मुझ) को सुख कहाँ ?' यह कहते हुए ही केयूरक को अपने पीछे बिठाकर और पत्रलेखा को भी चढ़ाकर अपने घर चल दिया। और वहाँ सभी राजा लोगों का प्रवेश निषेध किये हुए उसने भृत्यवर्ग सहित केयूरक के साथ प्रिय उद्यान में प्रविष्ट हो, अनमने भाव से यन्त्रवत् ही दिन के काम किये। और [काम] करके पत्रलेखा को साथ लिये, नौकर-चाकरों को दूर हटाये वह केयूरक को बुलाकर बोला—'केयूरक, देवी कादम्बरी और मदलेखा सहित महाश्वेता का

विज्ञापयामि। नास्ति मयि संदेशलवोपि देव्याः कादम्बर्याः समदलेखाया महाश्वेताया वा। यदैव पत्रलेखां मेघनादाय समर्प्यागतेन प्रतिनिवृत्य मयायं देवस्योज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदितस्तदैवोर्ध्वं विलोक्य दीर्घमुष्णं च निश्वस्य सनिर्वेदम् 'एवमेतद्' इत्युक्त्वोत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमेवाश्रमपदमाजगाम। देव्यपि कादम्बरी झटिति हृदये द्रुघणेनेवाभिहता, अतर्कितापतिताशनिनेव मूर्ध्नि ताडिता, अन्तःपीडाकूणननिमीलितेन चक्षुषा मूर्च्छितेव मुषितेव परिभूतेव वञ्चितेव चोन्मुक्तेव चान्तःकरणेन, अविदितमहाश्वेतागमनवृत्तान्ता चिरमिव स्थित्वोन्मील्य नयने विलक्षेव लज्जितेव विस्मृतेव विस्मयस्तब्धदृष्टिर्महाश्वेतायाः कथयेति सासूयमिव मामादिश्य मदलेखायां पुनर्वलितमुखी सविलक्षस्मितं 'मदलेखे' अस्ति केनचिदपरेणैतत्कृतं करिष्यते वा

स्थित्वा केयूरकोऽपि अगादीत् अवदत्। **देव०—**देव, राजकुमार! किं विज्ञापयामि निवेदयामि। देव्याः कादम्बर्याः समदलेखायाः महाश्वेतायाः वा मयि मत्पार्श्वे संदेशस्य वाचिकस्य लवः अंशोऽपि नामापीत्यर्थः नास्ति। यदा यस्मिन् समये एव पत्रलेखां मेघनादाय एतत्संज्ञकाय चन्द्रापीडसेनापतेः पुत्राय समर्प्य न्यासीकृत्य प्रतिनिवृत्य प्रत्यागत्य मया अयम् देवस्य भवतः उज्जयिन्यां गमनस्य प्रयाणस्य वृत्तान्त उदन्तः निवेदितः विज्ञापितः, तदा एव ऊर्ध्वं विलोक्य दृष्ट्वा दीर्घम् आयतम् उष्णं च यथा स्यात्तथा निश्वस्य निःश्वासं मुक्त्वा निर्वेदः स्वावमाननम् ग्लानिरिति यावत् तेन सहितं यथा स्यात्तथा 'एवम् एतत्' 'एषा वार्ताऽस्ति ?' इति उक्त्वा कथयित्वा उत्थाय महाश्वेता पुनः तपसे तपश्चरितुं स्वं निजम् आश्रमस्य पदं स्थानम् आजगाम आगतवती। **देव्यपि०—**देवी कादम्बरी अपि···तं दिवसमस्थात् इत्यस्ति वाक्यम्। हृदये द्रुघणेन घनेन (द्रुघणो मुद्गर-घनौ इत्यमरः) इव अभिहता प्रहृता अतर्कितम् अचिन्तितं यथा स्यात्तथा आपतितः यः अशनिः वज्रं तेन इव मूर्ध्नि शिरसि ताडिता आहता, अन्तःपीडा मानसिकी व्यथा तया यत् कूणनं क्रन्दनं तेन निमीलितेन मुद्रितेन चक्षुषा नयनेन मूर्च्छितेव मूर्च्छां प्राप्तेव, मुषिता लुण्ठितेव, परिभूता पराभवं प्रापितेव वञ्चिता प्रतारितेव, अन्तःकरणेन मनसा उन्मुक्ता त्यक्तेवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षालंकारः, न विदितः ज्ञातः महाश्वेतायाः गमनस्य वृत्तान्तः उदन्तः यया सा चिरं बहुकालम् इवेति वाक्यालंकारे नयने उन्मील्य उद्घाट्य विलक्षा विस्मयान्वितेव, लज्जिता लज्जां प्राप्तेव, विस्मृता विस्मृतिं गतेवेति पुनरुत्प्रेक्षा, विस्मयेन आश्चर्येण स्तब्धा जडीभूता दृष्टिः यस्याः सा, 'महाश्वेतायाः कथय चन्द्रापीडो गत' इति महाश्वेतायाः (अत्र सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी) असूया ईर्ष्या तया सहितं यथा स्यात्तथा इव माम् केयूरकम् आदिश्य आज्ञाप्य मदलेखायां तां प्रतीत्यर्थः वलितं प्रवणं मुखं यस्या तथाभूता सती, विलक्षं विस्मयान्वितम् ('विलक्षो विस्मयान्विते' इत्यमरः) यत् स्मितम् मन्दहास्यं तेन सहितं यथा स्यात्तथा—'मदलेखे अपरेण अन्येन

सन्देश कहो"। चन्द्रापीड के ऐसे कहने पर आगे बैठकर केयूरक भी सविनय बोला—'देव, क्या निवेदन करूँ? मेरे पास देवी कादम्बरी अथवा मदलेखा सहित महाश्वेता का सन्देश का नाम तक नहीं। ज्यों ही पत्रलेखा को मेघनाद के सुपुर्द करके आप लौट आए तो मैंने आपका उज्जयिनी चले जाने का यह वृत्तान्त महाश्वेता को कहा, तभी ऊपर देखकर, लम्बी गरम आह खींचकर ग्लानि के साथ 'ऐसी बात है ?' यह कहके खड़ी हो वह फिर तपहेतु अपने आश्रम के स्थान में चल दी। देवी कादम्बरी भी शीघ्रही हृदय में घन की चोट खाई-जैसी, अप्रत्याशित रूप से गिरे वज्रद्वारा शिरपर आहत-जैसी, हृदय-वेदना की टीस में मुँदी आँख से मूछित हुई जैसी लुटी हुई, अपमानित हुई-जैसी ठगी हुई-जैसी हृदयसे खाली-खाली-जैसी महाश्वेता के जाने का वृत्तान्त न जाने हुए, देरतक बैठी, आखें फाड़कर हैरान-सी, लज्जित-सी, भूली-भूली-सी, आँखों में आश्चर्य से पथराई-सी 'महाश्वेता को कह दो [कि चन्द्रापीड चला गया है] इस तरह ईर्ष्यापूर्वक-जैसे मुझे आज्ञा देकर मदलेखा की ओर मुँह किए, आश्चर्य-भरी मुस्कान के साथ "मदलेखा, क्या दूसरे

यत्कुमारेण चन्द्रापीडेन' इत्येवमभिदधत्युत्थाय निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा शयनीये निपत्योत्तरवाससोत्तमाङ्गमवगुण्ठ्य निर्विशेषहृदयवेदना मदलेखामप्यनालपन्ती सकलमेव तं दिवसमस्थात्। परेद्युश्च प्रातरेवोपसृतं मामेवं दृढतरशरीरेषु म्रियमाणेष्विव भवत्स्वहमीदृशीमवस्थामनुभवामीत्युपालभमानेव न मे भवद्भिः पार्श्ववर्तिभिः कार्यमिति निर्भर्त्सयन्तीव किं मे पुरस्तिष्ठसीत्यन्तर्मन्युवेगेन तर्जयन्तीव च बाष्पपूरोद्रेकोत्कम्पपर्याकुलया दृष्ट्या चिरमालोकितवती। तथा दृष्टश्च दुःखितया देव्यादिष्टमेव गमनायात्मानं मन्यमानोऽहमनिवेद्यैव देव्यै देवपादमूलमुपागतोऽस्मि। तच्च देवैकशरणजनजीवितपरित्राणाकुलमतेः केयूरकस्य विज्ञापनाकर्णनावधानदानेन प्रसादं कर्तुमर्हति देवः। देव, श्रूयताम्। यदैव ते प्रथमागमनेनामोदिना मलयानिलेनेव चलितं समस्तमेव तत्कन्यका-

---

एतत् प्रियां परित्यज्य गमनं कृतम् विहितं करिष्यते वा' ? इति एवम् अभिदधती कथयन्ती उत्थाय उत्थानं कृत्वा निवारितः दूरीकृतः अशेषपरिजनस्य सकलभृत्यवर्गस्य प्रवेशो यया तथाभूता शयनीये शय्यायां निपत्य पतित्वा उत्तरं च तद् वासः वस्त्रम् उत्तरीयमित्यर्थः तेन उत्तमम् अङ्गम् शिरः अवगुण्ठ्य आच्छाद्य निर्गतः विशेषो यस्या इति निर्विशेषा समानेत्यर्थः हृदयस्य पीडा वेदना यस्याः ताम् समानदुःखामित्यर्थः मदलेखाम् अपि न आलपन्ती अभाषमाणा सकलम् सर्वम् एव तं दिवसं अस्थात् स्थितवती, (अत्र कालात्यन्तसंयोगे 'दिवसम्' इति द्वितीया)। परेद्युः अपरदिने उपसृतम् समीपे गतम् माम् केयूरकम्—'एवम् अतिशयेन दृढं कठिनं शरीरं येषां तेषु म्रियमाणेषु मृत्युं प्राप्नुवत्सु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् भवत्सु युष्मासु सत्सु अहम् कादम्बरी ईदृशीम् अवस्थां दशाम् अनुभवामि निर्विशे' इति उपलभमाना भर्त्सयन्ती इवेत्युत्प्रेक्षायाम् पार्श्वे वर्तन्ते इति तथोक्तैः समीपस्थितैरित्यर्थः भवद्भिः न मे कार्यं प्रयोजनम्, व्यर्था एव भवन्तः सर्वे इत्यर्थः इति अन्तः हृदये यो मन्युः क्रोधः तस्य वेगेन रयेण तर्जयन्ती परुषं निन्दन्ती इवेत्युत्प्रेक्षा च बाष्पः अश्रु तस्य यः पूरः प्रवाहः तस्य उद्रेकेण आधिक्येन यः उत्कम्पः वेपथुः तेन पर्याकुलया, पूर्णया दृष्ट्या चक्षुषा मां चिरम् आलोकितवती दृष्टवती। तथा तेन प्रकारेण दृष्टश्च तया दुःखितया दुखिन्या देव्या कादम्बर्या गमनाय भवत्समीपे इति शेषः आदिष्टम् आज्ञप्तम् एव आत्मानम् मन्यमानः अवगच्छन् देव्यै कादम्बर्यै अनिवेद्य अविज्ञाप्य एव देवस्य भवतः पादयोः मूलं चरणसमीपम् उपागतः आगतोऽस्मि। तत् तस्मात् कारणात् देवः भवान् एव एकः शरणम् आश्रयो यस्य तथाभूतः यः जनः कादम्बरी-रूपः तस्य जीवितस्य प्राणानां परित्राणे रक्षणे आकुला व्यग्रा मतिः बुद्धिः यस्य तथाभूतस्य केयूरकस्य विज्ञापना निवेदनं तस्याः आकर्णने श्रवणे यत् अवधानम् ध्यानं तस्य दानेन प्रसादं कृपांकर्तुम् अर्हति योग्योऽस्ति देवो भवान्। देव, श्रूयताम् आकर्ण्यताम्। यदैव— यदा यस्मिन् क्षणे एव ते तव आमोदः आनन्दः अथ च सौरभम् अस्मिन्नस्तीति तथोक्तेन प्रथमम्

किसी ने यह [कार्य] किया अथवा करेगा जो कुमार चन्द्रापीढ ने किया है ?" इस तरह कहती हुई, खड़ी हो, सभी भृत्यवर्ग प्रवेश पर रोक लगाए, शय्यापर पड़कर, चादर से शिर ढककर समान हृदय-वेदनावाली मदलेखा से भी न बोलती हुई उस सारे दिन पड़ी ही रही। दूसरे दिन प्रातः ही पास में गये हुए मुझे 'ऐसे हट्टे-कट्टे शरीरवाले [किन्तु काम करने में] मर रहे-जैसे तुम लोगों के रहते-रहते मैं यह दशा भोग रही हूँ' यह उलाहना देती हुई जैसी— 'आप लोगोंका मेरे पास रहने का कोई काम नहीं' यह फटकार देती हुई-जैसी—'मेरे आगे क्या खड़े हो ?' इस तरह हृदयगत क्रोध के आवेग में बुरी तरह खबर लेती हुई—जैसी अत्यधिक अश्रुप्रवाह के कारण क्षोभ–भरी दृष्टि से देर तक मुझे निहारती रही। मुझे उस तरह निहारते रहते (देख) में यह समझता हुआ कि देवी ने (आप के पास) जाने की आज्ञा मुझे दे ही दी है, उन्हें सूचित किए विना ही मैं आप की चरण-सेवा में चला आया हूँ)। इस लिए आप ही केवल एकमात्र शरण वाली उस देवी के प्राणों की रक्षार्थ मन में अकुलाये हुए (मुझ)

लतावनं तदैव सकलभुवनमनोभिरामं भवन्तमालोक्य वसन्तमिव रक्ताशोकतरुलतामिवारूढवान्मकरकेतनस्ताम्। इदानीं तु महान्तमायासमनुभवति त्वदर्थे कादम्बरी। तस्या हि दिनकरोदयादारभ्य दिवसकरकान्तोपलानलस्येव निःशब्दस्यापवनेरितस्याधूमस्याभस्मनः प्रज्वलतो मकरध्वजहुतभुजो न परिजनकरकमलकलितकोमलपल्लवलास्यलीलया प्रसरभङ्गः। नानुत्तालतालवृन्तवान्तजलजडकणिकासारसेकेन निर्वृतिः। न सरसहरिचन्दनपङ्कच्छटाच्छुरणेन च्छेदः। न विदलितमुक्ताफलवालुकापटलोद्धूलनेन व्युपरमः। नोत्कीलितयन्त्रमयकलहंसपङ्क्तिमुक्ताम्बुधारेण धारागृहेण प्रशमः। यथा यथा

आद्यम् यत् आगमनम् तेन मलयस्य मलयाचलस्य अनिलेन वायुना इव समस्तं सकलम् एव तत् कन्यकाः एव लताः तासां वनं काननं चलितं क्षुब्धम्, अत्रोपमारूपकसंकरः, तदा एव तस्मिन्नेव क्षणे सकलं समस्तं च तत् भुवनं संसारः तस्य मनसः चेतसः अभिरामं रुचिकरं भवन्तं त्वाम् आलोक्य दृष्ट्वा रक्ता लोहिता या अशोकतरोः अशोकवृक्षस्य लता शाखा तामिव तां कादम्बरीं मकरकेतनः कामः आरूढवान् प्रविष्टवानित्यर्थः, अत्रोपमालंकारः। इदानीं साम्प्रतं तु त्वदर्थे तव कृते कादम्बरी महान्तम् अत्यधिकम् आयासं खेदम् अनुभवति। **तस्याः०**—तस्याः कादम्बर्याः दिनकरस्य सूर्यस्य उदय उद्गमनं तस्मात् आरभ्य प्रभृति दिवसकरकान्तः सूर्यकान्तमणिश्चासौ उपलः प्रस्तरः तस्य अनलः वह्निः तस्येवेत्युपमायाम् निः निर्गतः शब्दः यस्मात् तथाभूतस्य ज्वलनशब्दरहितस्येति यावत्, न पवनेन वायुना ईरितस्य प्रेरितस्य इद्धस्येत्यर्थः, अधूमस्य धूमरहितस्य, अभस्मनः भस्मरहितस्य, प्रज्वलतः दीप्यमानस्य मकरध्वजः काम एवेतिरूपकम् हुतभुक् वह्निः तस्य परिजनस्य भृत्यवर्गस्य कराः हस्ताः कमलानि इवेति लुप्तोपमा तैः कलितस्य गृहीतस्य कोमलानां मृदूनां पल्लवानां किसलयानां लास्य-लीलया नर्तनव्यापारेण सञ्चालनेनेति यावत् प्रसरस्य विस्तारस्य भङ्गः उपशम इत्यर्थः जायते इति शेषः। **नानुत्ताल०**—न उत्तालं प्रबलं यथा स्यात्तथा मन्दं-मन्दमित्यर्थः तालवृन्तैः व्यजनैः वान्ताः पातिताः विकीर्णा इति यावत् याः जलस्य जडाः शीतलाः कणिकाः शीकराः तासाम् आसारस्य वृष्ट्याः सेकेन सिञ्चनेन न निर्वृतिः उपशमः भवतीति शेषः। न सरसः आर्द्रः यः हरिचन्दनस्य पीतचन्दनस्य पङ्कः द्रवः तस्य छटायाः समूहस्य छुरणेन लेपेन छेदः विनाशः। न विदलितानि चूर्णितानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां वालुकस्य सिकतायाः पटलैः समूहैः यत् उद्धूलनम् धूलियुक्तीकरणं तेन व्युपरमः उपशमः, न उत्कीलिताः कीलद्वारा ऊर्ध्वं स्थापिताः यन्त्रमया यन्त्ररूपाः ये कलहंसाः राजहंसाः तेषां पंक्तिभिः श्रेणिभिः मुक्ता त्यक्ता जलस्य धारा यस्मिन् तथाभूतेन धारागृहेण यन्त्रधारा-भवनेन प्रशमः उपशमः मकरध्वजहुतभुजः इति सर्वत्रान्वयः। **यथा यथा०**—इयं कादम्बरी यथा यथा चलितं प्रवृत्तं यत् जलयन्त्रं तस्मात् विगलिताभिः प्रच्युताभिः अतिशयेन शिशिरः शीतलः यः शीकराणां

केयूरक का निवेदन सुनने में ध्यान देने की कृपा करें। महाराज, सुनिए। जभी आमोद (आनन्द, सौरभ) भरे मलयाचल के पवन—जैसे आप के पहले-पहल आगमन से वह सारा कन्या-रूपी लताओं का वन हिल उठा था, तभी से सकल जगत के मन को भाने वाले आप को देखकर काम उस (कादम्बरी) पर इस तरह सवार हो गया जैसे सकल जगत के मन को भाने वाला वसन्त रक्ताशोक वृक्ष की डालपर सवार हो जाया करता है। अब तो कादम्बरी आप के खातिर बड़ा क्लेश झेल रही है। सूर्यकान्त मणि की आग की तरह सूर्योदय से लेकर जलती रहती उसकी कामाग्नि जो न शब्द करती है, न वायु से भड़कती है, न धुआँ छोड़ती है और न भस्म ही रखती है——भृत्यवर्ग द्वारा कर-कमलों से पकड़े कोमल किसलयों को डुलाते रहते (भी) फैलने से नहीं रुकती है, पंखों से मन्द-मन्द गिराये जल की शीतल कणिकाओं की वृष्टि के सिञ्चन से शान्त नहीं होती है; गीले हरिचन्दन के द्रव-समूह के लेप से नहीं बुझती है; चूर्ण किये हुए मोतियों की धूल की ढेर लगाने से नहीं थमती है; तथा कील ठोककर लगाए हुए

चलितजलयन्त्रविगलिताभिरतिशिशिरसीकरनिकरतारकिताभिरम्बुधाराभिराहन्यते तथा तथा वैद्युतानलसहोदर इव स्फुरति मदनपावकः। सुतरां च शिशिरः कुन्दकलिकाकलापमञ्जरीमिव विकासयति स्वेदजललवजालकसंततिमुपचारः। चित्रं चेदम्। मकरकेतुहुतभुजा दह्यमानमप्यग्निशौचमंशुकमिव नितरां निर्मलीभवति लावण्यम्। मन्ये च मृदुस्वभावमपि जलमिव मुक्ताफलतामुपगतं कठिनीभवत्युत्कण्ठितं हृदयमबलाजनस्य, यत्तादृशेनातिसंतापेनापि न विलीयते। बलवती खलु वल्लभजनसंगमाशा। यत्तथा-

---

जलकणानां निकरः समूहः तेन तारकिताभिः संजाततारकाभिरिव अम्बुनः जलस्य धाराभिः आहन्यते प्रह्रियते, तथा तथा विद्युतः अयम् इति वैद्युतः विद्युत्सम्बन्धी अनलः वह्निः तस्य सहोदर इव तत्सदृश इत्यर्थः मदन-पावकः कामानलः स्फुरति दीप्यते। उपमालंकारः।

टिप्पणी—वैद्युतानलः—यास्काचार्य ने अग्नि के तीन भेद बताये हैं—(१) पार्थिवाग्नि, (२) अन्तरिक्षाग्नि और (३) द्युलोकाग्नि। पार्थिवाग्नि और अन्तरिक्षाग्नि में यह भेद है कि पार्थिवाग्नि लकड़ी आदि से और भड़कती है एवं पानी से बुझ जाती है, जब कि अन्तरिक्षाग्नि लकड़ी आदि से बुझ जाती है और पानी से और भड़क उठती है। अन्तरिक्षाग्नि विद्युत् (बिजली) को कहते हैं। कादम्बरी की कामाग्नि को शान्त करने हेतु ज्यों-ज्यों जलद्वारा शीतोपचार किया जाता है, त्यों त्यों वह विद्युदग्नि की तरह और भड़कती जाती रहती हैं।

सुतरां०—सुतराम् सम्यक्तया (क्रियमाणः) शिशिरः शीतलः उपचारः प्रतीकारः कुन्दस्य एतत्संज्ञकस्य पुष्पविशेषस्य कलिकानां कोरकाणां कलापस्य समूहस्य मञ्जरीं वल्लरीम् इवेत्युपमायां स्वेदजलस्य घर्मजलस्य ये लवाः कणाः तेषां जालकानां समूहानां संततिम् पंक्तिम् विकासयति विकासं प्रापयति अर्थात् क्रियमाणः शीतोपचारः उष्णिमानमुत्पाद्य तस्यां स्वेदजलधारां जनयति न तूष्णिमानमपनुदति। चित्रम् विस्मयकारकम् इदम् यत् मकरकेतु-हुतभुजा कामानलेन दह्यमानं प्रज्वाल्यमानमपि लावण्यं तस्याः सौन्दर्यम् अग्निना शौचं शुद्धिः यस्य तथाभूतम् अग्निशुद्धमित्यर्थः अंशुकं वस्त्रमिव नितराम् अत्यन्तं निर्मलीभवति विशदीभवति।

टिप्पणी—अग्निशौचमंशुकम्—वैसे अन्य अंशुक जल आदिसे धुलकर निर्मल हो जाते हैं लेकिन अग्नि में जल जाते हैं। 'अग्निशौच अंशुक' में यह बात नहीं। वह अग्नि में और उज्ज्वल होकर निकलता है। यह कोई अग्निरोधक (फायर-प्रूफ) वस्त्र होता होगा। मार्कण्डेय पुराणके अन्तर्गत 'दुर्गासप्तशती' में भी इसका उल्लेख है—'वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी'।

मन्ये अहं जाने अबलाजनस्य नारीणां मृदुः कोमलः स्वभावः प्रकृतिर्यस्य तथा तथाभूतम् अपि उत्कण्ठितम् प्रियं प्रति सोत्कण्ठं हृदयं मृदुस्वभावमपि मुक्ताफलतां मौक्तिकत्वम् उपगतं प्राप्तं मौक्तिकीभवदित्यर्थः जलम् इवेत्युपमायां कठिनीभवति कठोरीभवति। यत् यतः तादृशेन तथा विधेन अतिसंतापेन कामानलकृतदाहेनापि न विलीयते विलयं प्राप्नोति। वल्लभः प्रियश्चासौ

यन्त्रमय राजहंसों की कतारों द्वारा जलधारा गिराने वाले यंत्रधारागृह से नहीं ठंडी पड़ती है। जैसे-जैसे कादम्बरी चलते फव्वारे से गिर रही अत्यधिक जलकण-समूह से तारों वाली जैसी बनी जलधाराओं से ताड़ित की जाती है, त्यों-त्यों अन्तरिक्षाग्नि का सहोदर भाई-जैसा (उसका) मदनानल (और-और) भड़कता जाता है। अच्छी तरह किया हुआ शीतोपचार कुन्द पुष्पके कलि-समूह की मंजरी-जैसी पसीने के कण-समूह की कतार को विकसित कर देता है। यह आश्चर्य की बात है कि कामानल द्वारा जलाया जाता हुआ भी (उसका) लावण्य अग्निशौच वस्त्र की तरह अत्यन्त निर्मल होता जा रहा है। मैं तो समझता हूँ कि कोमल स्वभाव का होता हुआ भी स्त्रियों का उत्कण्ठित हृदय मोती रूप में परिणत हुए जल की तरह कठोर हो जाता है, क्योंकि इस तरह के अतिशय सन्ताप से भी वह नहीं पिघल रहा है। प्रियतम से

विधमप्यनुभववेदनाविह्वलितप्राणमतिकष्टं प्राण्यते ! किं करोमि। कथय कथं कथ्यते कया वृत्त्या वर्ण्यते कीदृशेनोपायेन प्रदर्श्यते केन प्रकारेणावद्यते कया युक्त्या प्रकाश्यते कतमया वेदनयोपमीयते बलवती तदुत्कण्ठा। स्वप्नेषु विगलितवदनाः स्फुटं प्राणिनः। प्रतिदिनं दृश्यमानोपि यन्न पश्यसि तामीदृशीमवस्थाम्। प्रचण्डकिरणसहस्रातपसहानि कमलानि शयनीकृतानि म्लानिमुपनयन्त्या दिवसकरमूर्तिरपि निर्जिता तया निजोष्मणा। निष्करुणेन चाकारणवामेन कामेन मथ्यमानास्तास्ताश्चेष्टाः करोति। तथा हि। 'सासोढ-मदनवेदने त्वमतिकठिने मनसि निवससि' इति मृदुनि कुसुमशयने कथमपि सखीजनेन

जनः तेन संगमः मिलनं तस्य आशा इच्छा बलवती प्रबला खलु निश्चयेन भवतीति शेषः यत् यतः अनुभवस्य या वेदना अनुभूयमाना पीडेत्यर्थः तया विह्वलिताः व्याकुलीकृताः प्राणाः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अतिशयेन कष्टं यथा स्यात्तथा प्राण्यते जीव्यते संगमाशया एव विह्वलाः प्राणाः तिष्ठन्ति न तु गच्छन्तीति भावः। कथय ब्रूहि कथं केन प्रकारेण कथ्यते भण्यते ? कया वृत्त्या शब्दव्यापारेण, त्रिविधो हि शब्द-व्यापारः अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना चेति वर्ण्यते ! कीदृशेन उपायेन साधनेन प्रदर्श्यते दृष्टिपथं नीयते ? केन प्रकारेण आवेद्यते निवेद्यते ? कया युक्त्या तर्केण प्रकाश्यते प्रकटीक्रियते ? कतमया वेदनया पीडया उपमीयते तुलनाविषयीक्रियते ? बलवती प्रबला तस्याः कादम्बर्या उत्कण्ठा त्वद्विषयकौत्सुक्यम् अस्तीति शेषः। प्राणिनः जीवाः स्वप्नेषु निद्रायां मनोजन्यज्ञानेषु विगलिता विगता निवृत्तेति यावत् वेदना व्यथा येषां तथाभूताः भवन्तीति स्फुटं प्रत्यक्षमेव। प्रतिदिनं (रात्रौ स्वप्नेषु) दृश्यमानः तया दृष्टिविषयत्वं नीयमानोऽपि त्वं यत् यदि ताम् ईदृशीम् अवस्थां दशां कादम्बर्या इति शेषः न पश्यसि अर्थात् सा सदैव त्वां स्वप्नेषु पश्यतीत्यनेनैव त्वया यदि नानुमीयते कीदृशी तस्या वेदनेति। तर्हि किं करोमीति पूर्वेणान्वयः।

प्रचण्ड०—प्रचण्डानि तीव्राणि यानि किरणानां सूर्यस्य रश्मीनां सहस्राणि तेषाम् आतपम् ऊष्माणं सहन्ते इति तथोक्तानि शयनीकृतानि शय्यारूपेण प्रयुक्तानि कमलानि पद्मानि म्लानिं म्लानताम् उपनयन्त्या प्रापयन्त्या तया कादम्बर्या दिवसं करोतीति दिवसकरः सूर्यः तस्य मूर्तिः बिम्बमित्यर्थः निजेन स्वकीयेन ऊष्मणा तापेन निर्जिता अतिशयिता, कमलानि तीव्रं सूर्यातपं सहन्ते न म्लायन्ति च किन्तु तच्छरीर-संसर्गात् तानि तत्क्षणमेव म्लायन्तीत्यतः तस्याः कामतापः सूर्यतापादप्यधिक इति भावः, अत्र व्यतिरेकालंकारः। निष्करुणेन निर्दयेन अकारणं न कारणं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा, विना कारणमेवेत्यर्थः वामेन प्रतिकूलेन कामेन मदनेन मथ्यमाना विलोड्यमाना सा ताः चेष्टाः शारीरिकक्रियाः करोति, तथा हि—

सासोढ०—अतिशयेन पुनः पुनर्वा सोढा (— सह्+यङ् द्वित्व+क्त) मदनस्य कामस्य वेदना पीडा यया तत्सम्बुद्धौ त्वम् अतिकठिने अतिकठोरे मनसि हृदये चन्द्रापीडस्येति शेषः

मिलने की आशा सचमुच बलवान् हुआ करती है। तभी तो उस तरह भोगी जा रही वेदना से प्राणों के विह्वल रहते रहते वह बड़े कष्ट के साथ जी रही है। क्या करूँ ! तुम ही कहो, कैसे कहूँ ? किस शब्द-वृत्ति से वर्णन करूँ ? किस उपाय से (उसकी वेदना) दिखाऊँ ? किस प्रकार निवेदन करूँ ? किस युक्ति से (उसका दुःख) प्रकट करूँ ? किस वेदना से (उसकी वेदना की) तुलना करूँ ? उसकी उत्कण्ठा प्रबल है। यह प्रत्यक्ष है कि प्राणी स्वप्नों में वेदना-रहित हो जाते हैं। प्रतिदिन स्वप्नों में दिखाई देते हुए भी तुम (उसकी) वैसी उस हालत को जो नहीं देख पा रहे हो (तो मैं क्या करूँ ?)। (सूर्य की) हजारों किरणों का तीक्ष्ण ताप सह जाने वाले कमलों की शय्या को मुर्झा देने वाली वह अपने ताप से सूर्यबिम्ब को भी परास्त किये हुए है। नृशंस और बिना कारण प्रतिकूल बने हुए काम द्वारा सताई जाती हुई वह वे-वे चेष्टायें कर रही है, जैसे—'अरी बार-बार काम-पीड़ा को सहने वाली ! तू

पात्यते। कुसुमशयनगता च संतापगलितचरणतलालक्तकलवपाटलितैः शय्याकुसुमैः कुसुमशरेण शरतामुपनीतैः सरुधिरैरिव हृदयात्पतितैर्भयमुपजनयति। सर्वाङ्गीणमनङ्गशरनिवारणाय कवचमिव भवदनुस्मरणरोमाञ्चमुद्वहति। रोमाञ्चिनि कुचयुगले श्वासगलितमंशुकं निदधाना त्वत्पाणिग्रहणतृष्णया कण्टकशयनव्रतलीलामिव दक्षिणकरकमलमनुभावयति। वामं तु वामकपोलभरजडाङ्गुलिमुल्लसत्पद्मरागवलयप्रभांशुरज्यमानं ज्वलितमदनहुताशनविप्लुष्यमाणमिव हस्तकमलं विधुनोति। नलिनीदलव्यजनपवनविक्षिप्यमाणकर्णकुवलयदलं वदनमजस्रस्रवदश्रुभयपलायमानलोललोचनमिव बिभर्ति।

निवससि तिष्ठसि, इति कृत्वा सखीजनेन सखीभिः कथमपि केनापि प्रकारेण मृदुनि सुकुमारे कुसुमानां पुष्पाणां शयने शय्यायां पात्यते शयिता कार्यते, कुसुमशयनं गता प्राप्ता च सा संतापेन कामदाहेन गलितः द्रुतः यः चरणयोः तलस्य अलक्तकः लाक्षा तस्य लवैः कणैः पाटलितैः श्वेतलोहितीकृतैः शय्यायाः शयनस्य कुसुमैः पुष्पैः कुसुमशरेण शरतां बाणत्वम् उपनीतैः प्रापितैः बाणीकृतैरित्यर्थः सरुधिरैः शोणितसहितैः हृदयात् पतितैरिवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अलक्तक-रञ्जितानि शय्याकुसुमानि कामप्रक्षिप्ताः हृदयमभिहत्य सरुधिराः नीचैः पतिताः इमे काम-बाणा इति मत्वा सख्यो विभ्यतिस्मेति भावः।

सर्वाङ्गीण०—सर्वाङ्गीणं सर्वाङ्गव्याप्तं भवतः तव अनुस्मरेण अनुस्मृत्या (जायमानं) रोमाञ्चं रोमोद्गमम् अनङ्गस्य कामस्य शराणां बाणानां निवारणाय दूरीकरणाय कवचम् कञ्चुकमिवेत्युत्प्रेक्षायाम् उद्वहति धत्ते। रोमाञ्चिनि रोमाञ्चिते कुचयोः स्तनयोः युगले द्वये श्वासेन निःश्वासवायुना गलितं स्रस्तम् अंशुकम् कौशेयवसनं निदधाना स्थापयन्ती तव पाणिग्रहस्य करग्रहणस्य तृष्णया लालसया दक्षिणः वामेतरः करः हस्तः कमलमिवेति लुप्तोपमा, तत् कण्टकेषु शयनम् एव व्रतं नियमः तस्य लीला व्यापारम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अनुभवितुं प्रेरयति कारयतीत्यर्थः, रोमाञ्चाः कण्टकाः तेषु स्थितः दक्षिणहस्तः कण्टकशयनव्रतमिव करोतीति भावः। **वामं**—वामः दक्षिणेतरः यः कपोलः गण्डस्थलं तस्य भरेण भारेण जडाः स्तब्धीभूताः अङ्गुलयः यस्य तथाभूतम्, उल्लसत् भ्राजत् यत् पद्मरागैः शोणितरत्नैः खचितं वलयम् कटकम् तस्य प्रभायाः छटायाः अंशुभिः किरणैः रज्यमानं रक्तवर्णीक्रियमाणम्, अत एव ज्वलितः प्रदीप्तः यः मदनहुताशनः कामानलः तेन विप्लुष्यमाणं दह्यमानम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् वामं दक्षिणेतरं हस्तः कमलमिवेति लुप्तोपमायां विधुनोति प्रकम्पयति, पद्मरागरञ्जितः करः कामाग्निदह्यमान इव प्रतीयते स्मेति भावः। **नलिनी०**—नलिन्याः कमलिन्याः दलानि पत्राणि एव व्यजनानि तालवृन्तानि तेषां पवनेन वायुना विक्षिप्यमाणम् पश्चात् प्रेर्यमाणं कर्णयोः=श्रोत्रयोः कुवलयम् उत्पलं यस्मिन् तथाभूतम् वदनं मुखम् अजस्रं निरन्तरं यथा स्यात्तथा स्रवत् गलत् यत् अश्रु अस्रं तस्मात्

(चन्द्रापीडके) अतिकठोर हृदय में रह रही है, यह कहकर सखियों द्वारा वह किसी तरह कोमल फूलों की शय्या पर लिटा दी जाती है। कुसुमशय्या पर लेटी हुई वह ताप के कारण पिघल कर गिरे, पाँव तलों के महावर के छीटों से लाल-लाल बने शय्याकुसुमों से हृदय से गिरे, रक्त-रञ्जित काम के बाणों से-जैसे सखियों को डरा देती हैं। आप की याद से उठे सर्वाङ्ग-व्याप्त रोमाञ्च काम के बाणों को रोकने हेतु कवच-जैसा धारण करती है; निश्वास-पवन से नीचे खिसके वस्त्र को रोमाञ्च भरे उरोज-युगल पर रखती हुई वह तुम्हारे पाणि-ग्रहण की उत्कट अभिलाषा से दायें हाथ द्वारा काँटों पर शयन करने का व्रत-कर्म जैसे करवा रही है, किन्तु बायें कपोल का भार पड़ने से सुन्न हुई अंगुलियों वाले, पद्मरागमणि-जड़ित कड़े की जगमगाती छटा की किरणों से लाल बने हुए बायें हाथ को झटकती रहती है मानो वह कामानल से जल रहा हो। कमलिनी-पत्र के पंखे की हवा से पीछे जा रहे कर्णोत्पल वाला उसका मुख ऐसा लगता रहता है मानो निरन्तर आँसू झरते रहने के भयसे (मुख की) चंचल आँखें भागी जा रही हों। पल-पल में

प्रतिक्षणं क्षामतां व्रजन्ती न केवलं मङ्गलवलयं पतनभयेन दोलायमानं हृदयमपि मुहुर्मुहुः पाणिपल्लवेन रुणद्धि। शिशिरवारिक्षोदक्षरिण्या लीलाकमलमालिकयेव वपुषि निहितया सखीजनहस्तपरम्परया परिक्लाम्यति। तथा चरणयुगलेन रसनाकलापं नितम्बविस्तारेण मध्यं संगमाशया हृदयं हृदयेन भवन्तमुरसा बिसिनीपलाशप्रावरणं कण्ठेन जीवितं करकमलेन कपोलपालीं त्वदालापेनाश्रुपातं ललाटफलकेन चन्दनलेखिकामंसेन वेणीमधुना धारयति। त्वद्दिदृक्षया विघटमानं हृदयमभिवाञ्छति। गोत्रस्खलनेनेव जीवितेन लज्जते। प्रियसख्येव मूर्च्छया मनसि मुहुर्मुहुः स्पृश्यते। परिजनेनेव रणरणकेन

भयेन भीत्या पलायमानं धावत् लोलं चञ्चलं लोचनं नयनं यस्मात् तथाभूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् विभर्ति धत्ते। वायुविक्षिप्यमाणं कर्णोत्पलं अश्रुभयात् पलायमानं लोचनमिव प्रतीयते स्मेति भावः।

प्रति०—प्रतिक्षणं क्षणे-क्षणे क्षामतां कृशतां व्रजन्ती गच्छन्ती सा दोलायमानं प्रेङ्खोलयमानं न केवलं मङ्गलवलयम् मङ्गलकटकम् अपितु दोलायमानं हृदयम् अपि पतनात् स्रंसनात् भयं तेन मुहुः मुहुः वार-वार पाणिः करः पल्लव इवेति लुप्तोपमा तेन रुणद्धि वारयति। शिशिरं शीतलं यत् वारि जलं तस्य क्षोदं चूर्णं लघुकणानिति यावत् क्षरति स्रवतीत्येवंशीलया लीलार्थं क्रीडार्थं या कमलानां माला एव मालिका तया इवेत्युपमायाम् वपुषि शरीरे निहितया स्थापितया सखीजनस्य आलिजनस्य हस्तानां कराणां परम्परया श्रेण्या परिक्लाम्यति खेदं प्राप्नोति ग्लायतीति यावत्, एतेन तस्याः विरहाधिक्यं सूच्यते। तथा च चरणयोः युगलेन द्वयेन रसनाकलापं काञ्चीम धारयति, एतेन वियोगात् कटिभागस्य कृशत्वं व्यज्यते, नितम्बः कटिपश्चाद्भागः तस्य विस्तारेण कृदभिहितो भावो मूर्तवद् भवतीति नियमेन विस्तृतेन नितम्बेनेत्यर्थः मध्यम् कटिम् धारयतीति सर्वत्रान्वयः, एतेन नितम्बस्यापि कृशत्वं सूच्यते, संगमः मिलनम् तस्य आशया हृदयम्, हृदयेन भवन्तम् त्वाम्, उरसा वक्षसा बिसिनी कमलिनी तस्याः पलाशानि पत्राणि तेषां प्रावरणम् उत्तरीयकम् धारयति कामदाहोपशमनार्थमिति शेषः, कण्ठेन गलेन जीवितम् प्राणान्, एतेन प्राणानां कण्ठगतत्वं ध्वन्यते, करः कमलमिवेत्युपमा तेन कपोलस्य गण्डस्थलस्य पालीम् प्रान्तम्, विरहिणामेष स्वभावः यत्ते कपोल-पाली करे स्थापयन्तीति, तव त्वत्सम्बन्धी य आलापः वार्ता तेन अश्रुणाम् अस्राणां पातम् स्रवणम् रोदनमित्यर्थः, ललाटं भालम् एव फलकं पट्टम् तेन चन्दनस्य मलयजस्य लेखिकाम् लेखा रेखा एव लेखिका ताम्, अंसेन स्कन्धेन वेणीं प्रवेणीम् एतेन वियोगकारणात् केशानाम् असंस्कृतत्वमुक्तं भवति। द्रष्टुमिच्छा दिदृक्षा तत्र दिदृक्षां तया हृदयं विघटमानं स्फुटत् अभिवाञ्छति इच्छति, स्फुटिते हि हृदये तत्र स्थितं त्वां सा द्रक्ष्यतीति भावः।

गोत्र०—गोत्रस्य नाम्नः स्खलनेन अन्यस्य स्थाने अन्यस्य प्रतिपादनेन इवेत्युपमायाम् जीवितेन प्राणैरित्यर्थः, लज्जते त्रपते सा जीवितुं नेच्छतीत्यर्थः। प्रियसख्या प्रियाल्या इव मूर्च्छया मोहेन मुहुर्मुहुः वार-वार मनसि चित्ते स्पृश्यते आश्लिष्यते पुनःपुनः मूर्छतीत्यर्थः।

कृश बनती जाती हुई वह न केवल झूलते हुए मंगल-वलय को, अपितु झूलते हुए हृदय को भी गिर पड़ने के डर से बार-बार कर-किसलय से रोकती जाती है। (उसके) शरीर पर रखी, ठंडी-ठंडी जल की फुहारें गिराने वाली, विनोद हेतु बनाई कमल-माला के समान (अपनी) सखियों की हस्त-श्रेणी से वह ऊब जाती है। अपि च, इस समय वह चरण-युगल से मेखला को, विस्तृत नितम्ब से कटि को, मिलन की आशा से हृदय को, हृदय से आपको, छाती से कमलिनी-पत्रों की चादर को, कण्ठ से प्राणों को, कर-कमल से कपोल के प्रान्त भाग को, तुम्हारे विषय की बात से अश्रुपात को, भाल-पट्ट से चन्दन-रेखा को, और कन्धे से (बिखरी) वेणी को धारण कर रही है। तुम्हें देखने की इच्छा से वह हृदय को फटा हुआ चाहती है। गलत नाम लेने से-जैसे वह प्राणों से लजा रही है। प्रिय सखी की तरह मूर्छा द्वारा वह बार-

मदनपरवशा कुसुमशयनादुत्थाप्यते। परिचारिकयेवार्त्या स्रस्ताङ्गी संचार्यते। मुहुः पवनप्रेङ्खोलितमुत्कण्ठाव्यजनपल्लवभङ्गभयकम्पितमिव लतामण्डपमधिवसति। मुहुः सत्कोशकलिकं बिसवलयसंरक्षणरचिताञ्जलिपुटमिव स्थलनलिनीवनमधिशेते। मुहुरुद्बन्धनभयादिव निरन्तरकिसलयाच्छादितलतापाशमुद्यानमासेवते। मुहुर्निष्पतदविरतरोदनाताम्रनयनप्रतिबिम्बं स्रस्तरास्तरणत्रासनिमज्जत्कमलमिवोपवनसरोजलमवगाहते। तस्मादुत्थाय तमालवीथीमुपैति। तस्यां शाखावलम्बोर्ध्वभुजलतानिहितनिमीलित-

मदनस्य कामस्य परवशा अधीना सा परिजनेन भृत्यवर्गेण इव रणरणकेन उत्कण्ठाजनितवैक्लव्येन कुसुमानां शयनात् शय्यातः उत्थाप्यते उत्थानं कार्यते। रणरणक-कारणात् सा शयने स्थातुं न समर्थेति भावः, स्रस्तं पतितम् अङ्गं शरीरं यस्याः तथा भूता सा परिचारिकया सेविकया इव आर्त्या मनोवेदनया संचार्यते संचरणं कार्यते, आर्तिः एकत्र स्थातुं न ददातीत्यर्थः; सर्वत्रोपमालंकारः। **मुहुः**—पवनेन वायुना प्रेङ्खोलितम् कम्पितम् उत्कण्ठा उत्कलिका तया तत्कारणादित्यर्थः व्यजनार्थं वीजनार्थं यः पल्लवानां किसलयानां भङ्गः त्रोटनम् तस्मात् यत् भयं तेन कम्पितम् वेपितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् लतानां मण्डपं लतागृहमित्यर्थः अधिवसति अधितिष्ठति, वसतेरत्र सकर्मकत्वम्। मुहुः पुनः सती रम्या कोश-युक्ता कलिका कोरकः यस्मिन् तयाभूतम् कोशः बीजोत्पत्तिस्थानमुच्यते, बिसानां मृणालानां यत् बलयं कटकं तस्य यत् संरक्षणं तदर्थं रचितं बद्धम् अञ्जलि-पुटं येन तथाभूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् स्थल-कमलिनीनां वनम् अधिशेते, अधिपूर्वकत्वेन शीधातोः सकर्मकत्वम्। वलयनिर्माणाय मम बिसं मा भिन्दि रक्षतमिति वद्धाञ्जलि इव कमलिनीवनं ताम् प्रार्थयते इति भावः। मुहुः उद्बन्धनम् गलपाशविधानं तस्मात् भयात् इव निरन्तरम् अन्यवहितं यथा स्यात्तथा किसलयैः पल्लवैः आच्छादितः तिरोहितः लता एव पाशः बन्धनं यस्मिन् तथाभूतम् उद्यानम् उपवनम् आसेवते आश्रयते, पल्लवैरनावृतां लतां दृष्ट्वा तां पाशीकृत्य मा तावद् वराकी गलबन्धनेनात्मघातं कुर्यादिति हेतोः सखीभिः तथा प्रयतितम् यथा सा पल्लवाच्छादितलतावनमेव सेवेतेति भावः।

मुहुर्निष्प०—निष्पतत् प्रतिफलत् अविरतं अविच्छिन्नं यत् रोदनं तेन ताम्रे रक्तवर्णे ये नयने चक्षुषी तयोः प्रतिबिम्बं प्रतिच्छाया यस्मिन् तथाभूतम्, अतएव स्रस्तरे शय्यायां यत् आस्तरणं उपरि स्थापनमित्यर्थः तस्मात् यः त्रासः भयम् तेन निमज्जत् ब्रुडत् कमलं यत्र तथोक्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उपवनस्य उद्यानस्य सरसः कासारस्य जलम् अवगाहते अवगाहनं करोति अर्थात् रोदनेन लोहितायितं तन्नेत्रं जले प्रतिबिम्बितं सत् तत्स्रस्तरास्तरणार्थंत्रोटनभयात् जलनिमग्नं कमलमिव प्रतीयते। तस्मात् सरोजलात् उत्थाय उत्थिता भूत्वा वहिरागत्येत्यर्थः तमालानाम् तत्संज्ञकवृक्षविशेषाणां कालस्कन्धानामिति यावत् ('कालस्कन्धस्तमालः स्यात्' इत्यमरः) वीथीम् पंक्तिम् उपैति गच्छति। **तस्यां**=तस्यां तमालवीथ्यां शाखायाः विटपस्य अवलम्बः

बार हृदय से लगाई जाती रहती है। मदन-परवश वह भृत्यजन की तरह बेचैनी द्वारा कुसुम-शय्या से उठा दी जाती है। ढीले पड़े अंगों वाली वह सेविका के समान मनोवेदना द्वारा इधर-उधर घुमा दी जाती हैं। फिर वह वायु द्वारा दिलाए, उत्कण्ठा शमनार्थ पंखा बनाने हेतु पल्लवों के तोड़े जाने के भय से काँपते हुए-जैसे लता-मण्डप में डेरा डाल देती हैं। फिर वलय (बनाने) हेतु मृणालों को (तोड़े जाने से) संरक्षण देने के लिए अञ्जलि बाँधे-जैसे कोश-युक्त सुन्दर कली वाले कमलिनी-वन में लेट जाती है। फिर गल-फांस लगाने के भय के कारण मानो पल्लवों से निरन्तर खूब छाए लता-पाश वाले उद्यान का आश्रय ले लेती है। फिर निरन्तर रोते रहने के कारण लाल-लाल बना आँखों के पड़ते हुए प्रतिबिम्बों वाले (अतएव) शय्या पर बिछा दिए जाने के भयसे डूब रहे कमलों वाले-जैसे लग रहे उपवन-सरोवर के भीतर प्रवश कर जाती हैं। सरोवर से बाहर निकलकर तमाल वृक्षों की वीथी में चल पड़ती है।

लोचनवदना चम्पकदलमालिकोद्बद्धदेहाशङ्कामुत्पादयन्ती मुहूर्तं विश्रम्य संगीतकगृहमाविशति । ततो मधुरमुरजरवलयललितलास्यलीलयोद्वेज्यमाना मयूरीव मुक्तधारं धारागृहमभिपतति । ततोपि घनजलधारासीकरपुलकितकाया कदम्बकलिकेव कम्पमाना शुद्धान्तकमलिनीतीरमुपसर्पति । तस्माच्च भवनकलहंसरवमसहमाना प्रस्थिता तत्कालावतारितनूपुरयुगला निपुणप्रेक्षामिव क्षामतामभिनन्दति । वलयरचनाम्लापितमृणालकुपितैरिव भवनवापीचक्रवाकमिथुनैः कूजितेन खेद्यते । शय्याविलासमृदित-

---

आश्रयः यस्य तथाभूतः गृहीतशाख इत्यर्थः य ऊर्ध्वः ऊर्ध्वीकृतः भुजः बाहुः लतेवेति लुप्तोपमा, तस्यां निहितं स्थापितं निमीलते मुद्रिते लोचने नेत्रे यस्मिन् तथाभूतं वदनं मुखं यया सा चम्पकानां चम्पकपुष्पाणां यानि दलानि पत्राणि तेषां माला स्रक् एव मालिका तया उद्बद्धः उपरि कृतबन्धनः यो देहः, अत्र लक्षणया देहैकदेशः गलप्रदेशः गृह्यते, तस्य आशंकाम् उत्पादयन्ती जनयन्ती, तस्याः शाखावलम्बिनी पीतवर्णभुजा चम्पकपुष्पदलमालेव प्रतीयते स्म यया गलबन्धनं कृत्वा सा प्राणान् त्यक्तुमिच्छतीवेति भावः। मुहूर्तं क्षणं विश्रम्य विश्रामं कृत्वा संगीतगृहं संगीतशालाम् आविशति आ गच्छति। **मधुर०**=ततः तस्मात् संगीतगृहात् मधुरः मिष्टः यः मुरजस्य मृदङ्गस्य रवः शब्दः तस्य लयः तानविशेषः तेन ललिता रम्या या लास्यस्य नृत्यस्य लीला विलासः तया उद्वेज्यमाना उद्वेगं ग्लानिमिति यावत् प्राप्यमाणा मयूरी इव मुक्ता त्यक्ता प्रस्राविवेत्यर्थः धारा जलधारा येन तत् धारागृहं यन्त्रधाराभवनम् अभिपतति अभिगच्छति।

घनजल०—ततः तस्मात् धारागृहात् अपि घना निविडा ये जलधारायाः सीकराः कणिकाः तैः पुलकितः सञ्जातरोमोद्गमः कायः शरीरं यस्याः सा कदम्बस्य कदम्बपुष्पस्य कलिः एव कलिका सा इव कम्पमाना वेपमाना शुद्धान्तस्य अन्तःपुरस्य कमलिन्याः कमलिनीपूर्णसरस्याः तीरम् तटम् उपसर्पति उपसरति। तस्मात् कमलिनीतीरात् च **भवन०**=भवनस्य भवने पालिता इत्यर्थः ये कलहंसाः राजहंसाः तेषां रवम् शब्दम् असहमाना सोढुमशक्नुवाना प्रस्थिता चलिता तत्कालं स कालः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवतारितं चरणाभ्यां पृथक् कृतं नूपुरयोः मञ्जीरयोः युगलं द्वयं यया तथाभूता हंसा नूपुरध्वनिमनुसरन्ति स्मेत्यर्थः निपुणानां विदुषां प्रेक्षां बुद्धिम् इवेत्युपमायां क्षामतां कृशताम् अभिनन्दति प्रशंसति, क्षामत्वे देहस्य नूपुरादीनां धारणावतारणसौकर्यादित्याशयः प्रतीयते।

वलय०—वलयस्य कटकस्य रचनया निर्माणेन म्लापितानि म्लानिं प्रापितानि यानि मृणालानि बिसानि तेन कुपितैः क्रुद्धैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् भवनस्य याः वाप्यः दीर्घिकाः तासां चक्रवाकमिथुनैः रथाङ्गयुगलैः कूजितेन शब्देन खेद्यते खेदं प्राप्यते।

शय्या०—शय्यायां शयने यो विलासः इतस्ततः परिवर्तनमङ्गानामित्यर्थः तेन मृदितः

वहाँ ऊपर टहनी पकड़े लता-सी भुजा पर आँख-मूँदा मुख रखे वह चम्पा की पंखुड़ियों की माला से गल-फाँस लगाए की-सी शंका पैदा करती हुई कुछ देर विश्राम करके संगीतशाला में प्रविष्ट हो जाती है। मृदंग की मधुर ध्वनि की तान के साथ सुन्दर नृत्य-लीला से उद्विग्न होती हुई वहाँ से मोरनी की तरह जल धाराओं की बौछारें छोड़ने वाले जलयन्त्रधारा-गृह [**Shower bath**] में चल देती है। जल धाराओं की घनी जल-कणिकाओं से शरीर में रोमाञ्चित हुई वह वहाँ से अन्तःपुर को कमलिनी के तीर पर जा पहुँचती है। घर के राजहंसों का शब्द न सहन करती हुई वहाँ से तत्काल दोनों नूपुरों को उतारे विद्वानों की प्रज्ञा की तरह कृशता की प्रशंसा कर बैठती हैं। कड़ा बनाने (के काम में लाने) से म्लान कर दिये गये मृणालों के कारण कुपित हुए-जैसे घर की बावली के चक्रवाक-युगलों के पी-पी शब्द से तंग कर दी जाती है। शय्या पर सविलास लुढकते रहने से कुचले हुए फूलों के ढेर के कारण क्रुद्ध हुए-जैसे

कुसुमसंचयामर्षितैरिव प्रमदवनमधुकरैर्विरुतेनोद्वेज्यते। निर्भरोत्कण्ठागीतनिर्जितरवरोषितैरिवाङ्गणसहकारपिकवृन्दैः कलकलेनाकुलीक्रियते। मदनपाण्डुगण्डपरिभूतगर्भपत्रकान्तिभिर्विद्धेवोद्यानकेतकीसूचिभिरुद्भूतवेदना भवति। एवंप्रायैश्च मदनदुश्चेष्टितायासैः परिणाममुपैति दिवसः।

चन्द्रोदये चास्यास्तिमिरमयीवापैति धृतिः। कमलमयमिव दूयते हृदयम्। कुसुदमय इव विजृम्भते मकरकेतनः। चन्द्रकान्तमयमिव प्रक्षरति नयनयुगलम्। उदधिजलमयानीव वर्धन्ते श्वसितानि। चक्रवाकमया इव विघटन्ते मनोरथाः। शीतज्वरातुरेव मणिकुट्टिमोदरसंक्रान्तस्य तुषारकिरणमण्डलस्योपरि वेपथुलुलिततरलाङ्गुलि-

---

मर्दितः यः कुसुमानां सञ्चयः निकरः तेन अमर्षितः अमर्ष क्रोधम् प्राप्तैः इवेत्युत्प्रक्षायाम् प्रमदवनस्य अन्तःपुरोद्यानस्य मधुकरैः भ्रमरैः विरुतेन झंकारशब्देन उद्वेज्यते उद्वेगं प्राप्यते। **निर्भरो०**—निर्भरा अतिमात्रा या उत्कण्ठा उत्कलिका तया यत् गीतं गानं तेन निर्जितः पराजितः यः रवः शब्दः तेन रोषितैः रोषं प्रापितैः इवेत्युत्प्रक्षायाम् अङ्गणस्य प्राङ्गणस्य यः सहकारः आम्रवृक्षः तस्य ये पिकाः कोकिलाः तेषां वृन्दैः समूहैः कललेन कोलाहलेन आकुलीक्रियते व्याकुलीक्रियते। **मदन०**—मदनेन कामेन पाण्डुः श्वेत पीतः यः गण्डः कपोलः तेन परिभूता तिरस्कृता गर्भपत्राणां मध्यवर्ति-पत्राणां कान्तिः शोभा यासां तथाभूताभिः उद्यानस्य केतकीनां पुष्पविशेषवृक्षाणां सूचिभिः अग्रैः कण्टकैरित्यर्थः विद्धा छिन्ना इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उद्भूता प्रादुर्भूता वेदना पीडा यस्याः तथाभूता सा कादम्बरी भवति, विरहात् तस्याः कपोलौ श्वेतौ जातौ इति भावः एवंप्रायैः एवंविधैः मदनस्य कामस्य यानि दुश्चेष्टितानि दुर्विलसितानि तेषाम् आयासैः दिवसः दिनम् परिणामम् समाप्तिमित्यर्थः उपैति प्राप्नोति।

चन्द्रो०—चन्द्रस्य शशिनः उदये आकाशे आगमने च अस्याः कादम्बर्याः तिमिरम् एवेति तिमिरमयी अन्धकार-स्वरूपा इव धृतिः धैर्यम् अपैति अपगच्छति यथा चन्द्रोदये अन्धकारो विनश्यति तथैव तस्याः धृतिः अपि विनश्यतीत्यर्थः, कमलम् एव कमलमय इव हृदयं दूयते खिद्यते, कमलानां दवनमत्र संकोचः मकरकेतनः मदनः कुसुदमयः कैरवरूप इव विजृम्भते प्रफुल्लितो भवति, कुमुदवत् कामस्यापि चन्द्रोदये जृम्भणात्, नयनयोः नेत्रयोः युगलं द्वन्द्वं चन्द्रकान्तमयम् चन्द्रकान्तमणिरूपम् इव प्रक्षरति द्रवति अश्रुपातं करोति चन्द्रकान्तमणिः अपि चन्द्रोदये प्रक्षरति, श्वसितानि निःश्वासाः उदधिः समुद्रः तस्य, जलम् एवेति तज्जलमयानि तत्स्वरूपाणि इव प्रवर्धन्ते उपचीयन्ते, मनोरथाः अभिलषितानि चक्रवाकमया चक्रवाकरूपा इव विघटन्ते विच्छिद्यन्ते। **शीत०**—शीतज्वरेण शीतकृतेन ज्वरेण आतुरा पीडिता मणिकुट्टिमस्य मणिमयबद्धभूमेः उदरे मध्ये संक्रान्तस्य प्रतिफलितस्य तुषाराः शीताः किरणाः यस्य तथाभूतः चन्द्र इत्यर्थः तस्य मण्डलस्य बिम्बस्य उपरि वेपथुः कम्पः तेन लुलितः कंपितः तरलः सुन्दरः

प्रमदवन के भ्रमरों द्वारा झंकारों से सताई जाती है। गहरी उत्कण्ठा-भरे गान (के शब्द) द्वारा [अपने] शब्द के पराजित कर दिए जाने के कारण रुष्ट हुए आँगन के आम-वृक्ष की कोयलों के समूह द्वारा कोलाहल से व्याकुल कर दी जाती है। काम के कारण श्वेत बने कपोल द्वारा (अपनी) भीतरी पत्तों की [श्वेत] कान्ति में तिरस्कृत कर दिये गए उद्यान की केतकी (केवड़े) के काँटों द्वारा बींधी-जैसी टीस अनुभव करती हैं। और इस प्रकार (उसकी) काम-दुश्चेष्टाओं की पीड़ाओं के साथ दिन ढल जाता है। चन्द्रोदय होने पर उसका धैर्य जाता रहता है मानो वह अन्धकारमय हो, हृदय म्लान हो उठता है मानो वह कमलमय हो, काम विकसित हो जाता है मानो कुसुदरूप हो, दोनों आँखें टपक पड़ती हैं मानों वे चन्द्रकान्तमणिरूप हों, आहें बढ़ने लगती हैं मानो वे समुद्रजल-रूप हों, इच्छायें विच्छिन्न हो जाती हैं मानों वे चक्रवाकस्वरूप हों, शीतज्वर (जुड़ी) की रोगिणी की तरह मणियों के फर्श पर प्रतिबिम्बित

निकरं करयुगलं प्रसारयन्ती शशिसंतापमनक्षरं कथयति। सीत्कारेषु दशनांशुव्याजेन मन्मथशरजर्जरितहृदयप्रविष्टानिन्दुकिरणानिवोद्गिरति। वेपथुषु व्यजनीकृतकदलीदलकम्पोपदेशमिव गृह्णाति। विजृम्भिकासु कण्ठागतजीवितनिर्गममार्गमिवोपदिशति। गोत्रस्खलितविलक्षस्मितेषु हृदयनिपतितमदनशरपुष्परज इव वमति। बाष्पमोक्षेषु स्थूलाश्रुसंतानवेणिकावाहिनी विलीयत इव। शशिमणिदर्पणेषु विस्फुरितानेकप्रतिबिम्बनिभेन शतधेव विदलति। कुसुमशयनेषु परिमललालसागतालिमालाकुलिता

अङ्गुलीनां निकरः समूहः यस्मिन् तथाभूतम् करयोः हस्तयोः युगलं द्वयं प्रसारयन्ती विस्तारयन्ती शशिनः चन्द्रस्य संतापं न अक्षराणि वाणीत्यर्थः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा मूकभाषायामिति यावत् कथयति वदति करयोः कंपनेन प्रसारणेन च चन्द्रसंतापः स्वयमेव ज्ञाप्यते इतिभावः। उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा। **सीत्कारेषु०**—सीत्कारेषु मुखात् निःसृतेषु 'सीत्' इति शब्देषु दशनानां दन्तानां ये अंशवः किरणाः तेषां व्याजेन कैतवेन मन्मथस्य मदनस्य शरैः बाणैः जर्जरितं खण्डशः कृतं यत् हृदयम् अन्तःकरणं तत्र प्रविष्टान् कृतप्रवेशान् इन्दोः चन्द्रस्य किरणान् इव उद्गिरति उद्वमति, वेदनया सीत्कुर्वत्याः तस्याः बहिर्निर्गताः दशनकिरणाः उद्गीर्यमाणाः चन्द्रकिरणा इव प्रतीयन्ते इतिभावः, अत्रोत्प्रेक्षा अपह्नुत्युत्थापिता। **वेपथुषु०**—वेपथुषु कम्पेषु व्यजनीकृतानि तालवृन्तरूपे प्रयुज्यमानानि यानि कदल्या रम्भायाः दलानि पत्राणि तेभ्यः कम्पस्य प्रकम्पनस्य उपदेशं शिक्षाम् इव सा गृह्णाति प्राप्नोतीत्यर्थः कम्पमानानि कदलीदलानि तस्यै कम्पविषये शिक्षां ददतीवेति भावः। विजृम्भिकासु विजृम्भणेषु कण्ठे गले आगतं यत् जीवितं प्राणाः तत् निर्गमस्य निर्गमनस्य मार्गं पन्थानम् इव उपदिशति शिक्षयति कथयतीत्यर्थः। **गोत्र०**—गोत्रस्य नाम्नः यानि स्खलितानि अन्यथा उच्चारणानि तेषु यानि विलक्षाणि लज्जान्वितानि स्मितानि मन्दहसितानि तेषु हृदये निपतिताः प्रविष्टाः ये मदनस्य कामदेवस्य शराः बाणाः पुष्पाणि पुष्परूपबाणा इत्यर्थः तेषां रजः परागम् इव वमति उद्गिरति, स्मितेषु श्वेतदशनकिरणाः उद्गच्छन् हृदयपतितमदनपौष्पबाणपराग इव प्रतीयते इतिभावः। **बाष्प०**—बाष्पः अश्रुजलं तस्य मोक्षेषु मोचनेषु स्थूलानि यानि अश्रूणि तेषां संतानः परम्परा अविच्छिन्नधारा इत्यर्थः तस्य वेणी एव वेणिका प्रवाहः तां वाहयितुं प्रवाहयितुं शीलमस्या इति तथोक्ता सती विलीयते द्रवतीव, सतताश्रुधाराप्रवाहं मुञ्चन्ती सा स्वयं द्रवीभूय समाप्ता भवतीवेति भावः। **शशि०**—शशिमणिषु चन्द्रकान्तमणिरूपेषु दर्पणेषु मुकुरेषु विस्फुरितानि विभासितानि यानि स्वस्या एव प्रतिबिम्बानि तेषां निभेन व्याजेन शतधा शतप्रकारेण इव विदलति खंडीभवति, अत्र अपह्नुत्युथापिता उत्प्रेक्षा। **कुसुम०**—कुसुमानां पुष्पाणां शयनेषु शय्यासु परिमलस्य सौरभस्य लालसया लोभेन आगता ये अलयः भ्रमराः तेषां मालया श्रेण्या आकुलिता व्याप्तानि ['सुखादयो वृत्ति-विषये तद्वति वर्तन्ते'] तां परितः भ्रमन्ती भ्रमरपंक्तिः कामानलेन ज्वलन्त्याः तस्याः

हुए चन्द्रमण्डल के ऊपर कँपकँपी के कारण हिलते जाते हुए सुन्दर अंगुली-समूह वाले (अपने) दोनों हाथों को पसारती हुई मूक भाषा में चन्द्रमा का संताप कह जाती है। सिसकारियों में दन्त-किरणों के बहाने मदन-बाणों से खंड-खंड हुए पड़े हृदय में प्रविष्ट चन्द्र-किरणों को उगलती जैसे रहती है। कँपकँपियों में पंखा बनाये हुए केले के पत्तों से काँपने की शिक्षा जैसे ग्रहण करती है। जमुहाइयों में कण्ठ में आये हुए प्राणों को निकलने का मार्ग-जैसे बना देती है। (प्रियतम का) नाम ले पड़ने की गलती के कारण लज्जा-भरी मुसकानों में हृदय के भीतर घुसे काम के बाण-रूप फूलों की पराग को जैसे बाहर निकाल देती है। अश्रुपातों में अश्रुओं में अविच्छिन्न धारा बहाती हुई पिघलती-जैसी रहती है। चन्द्रकान्त-मणि के दर्पणों पर विभासित अनेक (निज) प्रतिबिम्बों के बहाने सौ-सौ तरह से जैसे विदीर्ण हो पड़ती है। फूलों की शय्याओं पर (लेटी) सौरभ के लोभ में आई भ्रमर-पंक्ति से घिरी ऐसी लगती है मानो (विरहानल का) धुआँ छोड़ रही हो। निर्मल कमलों के बिस्तरों पर केसरों के धूलि-समूह से

धूमायत इव। अमलकमलस्रस्तरेषु किञ्जल्करजःपुञ्जपिञ्जरिता ज्वलतीव। स्वेदप्रतीकारेषु विशदकर्पूरक्षोदधूलीधवलिता भस्मीभवतीव। न विज्ञायते किं मुग्धतया किं विलासेन किमुन्मादेन संगीतकमृदङ्गध्वनितेषु केकाशङ्कया धारागृहमरकतमणिमयूरमुखानि स्थगयति। दिवसावसानेषु विश्लेषभीता मृणालसूत्रैश्चित्रभित्तिविलिखितानि चक्रवाकमिथुनानि [1]संघट्टयति। चिन्तारतारम्भेषु मणिप्रदीपानवतंसोत्पलैस्ताडयति। उत्कण्ठालेखेषु संकल्पसमागमाभिज्ञानानि लिखति। दूतीसंप्रेषणेषु स्वप्नापराधोपालम्भान्संदिशति।

अपि च तस्याश्चन्दनपरिमल इव दक्षिणानिलेन सह समागच्छति मोहः। चक्रा-

सकाशात् उद्गच्छन्ती धूमपंक्तिरिव प्रतीयते इति भावः। **अमल०**—अमलानि निर्मलानि यानि कमलानि तेषां स्रस्तरेषु शयनीयेषु किञ्जल्कानां केसराणां रजसां धूलीनां पुञ्जेन समूहेन पिञ्जरिता रक्तपीतवर्णीकृता सती ज्वलति दह्यते इव। केसरपरागपिङ्गलिम्ना सा ज्वलती इव प्रतीयते। **स्वेद०**—स्वेदस्य घर्मजलस्य प्रतीकारेषु प्रतिक्रियासु तच्छोषणार्थं क्रियमाणेषु उपचारेषु इत्यर्थः विशदस्य श्वेतस्य कर्पूरस्य घनसारस्य क्षोदस्य चूर्णस्य धूल्या रजसा धवलिता धवलवर्णीकृता भस्मीभवति भस्मतां गच्छतीव कर्पूरक्षोदः भस्मेव प्रतीयते इतिभावः उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षा। **न**—न विज्ञायते अवगम्यते मुग्धतया मुग्धस्वभावकारणात् वा, विलासेन विभ्रमेण वा, उन्मादेन चित्तविक्षेपेण वा संगीते यानि मृदङ्गस्य मुरजस्य ध्वनितानि ध्वनयः तेषु केकानाम् मयूरवाणीनाम् ['केका मयूरवाणी स्यात्' इत्यमरः] शङ्कया भ्रान्त्या धारागृहे जलयन्त्रभवने मरकतमणीनां तन्निर्मितानामित्यर्थः मयूराणां शिखिनां मुखानि आननानि स्थगयति आच्छादयति यथा ते केकां न कुर्युः तस्याः हृदयं च न व्यथयेयुः। अत्र भ्रान्तिमान् अलंकारः। **दिवसा०**—दिवसस्य दिनस्य अवसानेषु समाप्तिषु विश्लेषात् विच्छेदात् भीता मृणालानां बिसानां सूत्रैः तन्तुभिः चित्राणां भित्तौ कुड्ये विलिखितानि चित्रितानि चक्रवाणां रथाङ्गानां मिथुनानि युगलानि संघटयति संयोजयति। **चिन्ता०**—चिन्तया चिन्तनमात्रेण न तु वास्तवेन ये रतस्य सम्भोगस्य आरम्भाः प्रवृत्तयः तेषु काल्पनिकसुरतेष्वित्यर्थः मणिप्रदीपान् मणिरूपदीपान् अवतंसैः अवतंसरूपेण धृतैः उत्पलैः कर्णकुवलयैः ताडयति आहन्ति यथा निर्वापिताः सन्तस्ते अन्धकारं कुर्युः किन्तु रत्नानां निर्वापणं त्रिकालासंभवम्। **उत्कण्ठा०**—उत्कण्ठया औत्सुक्येन ये लेखा लिख्यमान-प्रेमपत्राणीत्यर्थः तेषु संकल्पेन ये समागमाः मिलनानि तेषाम् अभिज्ञानानि स्मारकचिह्नानि लिखति लिपिबद्धीकरोति। दूतीनां संदेशवाहिकानां संप्रेषणेषु प्रियतमम् प्रति सम्प्रेष्येत्यर्थः स्वप्ने स्वप्नावस्थायां ये अपराधाः प्रियतमकृतानि आगांसि तेषाम् उपालम्भान् भर्त्सनानि संदिशति सन्देश-रूपेण कथयति। **अपि च**—तस्याः कादम्बर्याः चन्दनस्य मलयजस्य परिमलः सौरभम् इव दक्षिणानिलेन दक्षिणदिशायाः मलयाचलादागतेन मारुतेन सह

लाल-पीली बनी ऐसी लगती रहती है मानो (कामानल में) जल रही हो। पसीने के उपचारों में (बुरके हुए) स्वच्छ कपूर-चूर्ण की रज से श्वेत बनी ऐसी प्रतीत होती है जैसे भस्म होती जा रही हो। पता नहीं चलता कि भोलेपन के कारण या विलास के कारण या तो फिर उन्माद के कारण वह संगीत में मृदंग के शब्दों पर मोरों की बोली की आशंका से यन्त्रधारागृहों में मरकत मणि के बने मोरों के मुखों को (हाथ से) ढक देती है। दिन समाप्त हो जाने पर वियोग से डरी हुई वह चित्रों की दीवार पर चित्रित चकवों के जोड़ों को मृणाल की तन्तुओं से जकड़ देती है। मानसिक सम्भोग-क्रियाओं में वह मणिमय दीपों पर कर्णोत्पल की की चोट मारती है (जिससे वे बुझ जाएँ)। उत्कण्ठा से लिखे पत्रों में वह काल्पनिक मिलनों के स्मारक चिह्न लिख देती है। दूती भेजकर स्वप्न में (तुम्हारे द्वारा) किए

१. संघटयति।

ह्वशाप इव निशया सहापतति प्रजागरत्रासः। प्रतिरुतानीव वलभीकपोतकूजितैः सहाविर्भवन्ति दुःखानि। मधुकर इवोपवनकुसुमामोदेन सहोपसर्पति मरणाभिलाषः। तथा च जलकणिकेव पद्मिनीपलाशस्थिता कम्पते। प्रतिच्छायेव स्फटिकोपलसलिलमणिदर्पणमणिकुट्टिमतलेषु दृश्यते। नलिनीव शशिकरस्पर्शेन म्लायति। हंसीव सरसमृणालिकाहारव्यतिकरेण जीवति। शरदिव कुमुदकुवलयकमलसम्पर्कमनोहरगन्धवहा सकुसुमबाणा च विजृम्भते। चन्द्रमूर्तिरिव कमलप्रकरस्खलितपादपल्लवा संचरन्ती निशां नयति।

मोहः मूर्छा समागच्छति परिमलसहितो दक्षिणानिलः विरहिणां दुःसहो भवति। निशाया रजन्या सह चक्राह्वस्य रथाङ्गनाम्नः चक्रवाकस्येत्यर्थः शापः रात्रौ वियोग-रूपः इव प्रजागरः जागरणं तस्य भयम् भीतिः आपतति आगच्छति। वलभी गृहस्योपरितमो भागः यो गोपानसी इत्यप्युच्यते तस्यां ये कपोताः पारावताः तेषां कूजितैः शब्दैः सह प्रतिरुतानि प्रतिशब्दा इव दुःखानि आविर्भवन्ति प्रकटीभवन्ति। उपवनस्य उद्यानस्य कुसुमानां पुष्पाणाम् आमोदेन परिमलेन सह मधुकरः भ्रमर इव मरणस्य मृत्योः अभिलाषः इच्छा उपसर्पति मनसि प्रादुर्भवतीत्यर्थः, उपरि सर्वत्रोपमा। **तथा च**—पद्मिन्याः कमलिन्याः यानि पलाशानि पत्राणि तेषु स्थिता जलस्य कणिका लघुकण इव सा कम्पते वेपते। स्फटिकरूप उपलः प्रस्तरश्च सलिलं जलञ्च मणिदर्पणः मणिरूपः मुकुरश्च मणिकुट्टिमम् मणिमयबद्धभूमिः तस्य तलञ्चेति तलेषु प्रतिच्छाया प्रतिबिम्बम् इव दृश्यते आलोक्यते अर्थात् शरीरतापनिवृत्त्यर्थं सा जनैः स्फटिकोपलादिषु तथा दृश्यते यथा प्रतिबिम्बम्। शशिनः चन्द्रस्य कराणां किरणानां स्पर्शेन संपर्केण सा नलिनी कमलिनी इव म्लायति म्लाना भवति, नलिनी हि सौरकरैः विकसति चान्द्रकरैश्च म्लायति। उपरि सर्वत्रोपमा। **हंसीव**—सरसाः आर्द्राः याः मृणालिन्यः कमलिन्यः तासां हाराः मालाः तेषां व्यतिकरेण सम्बन्धेन माला-धारणेनेत्यर्थः सरसमृणालिकानाम् आहारस्य भक्षणस्य व्यतिकरेण हंसी वरटा इव जीवति प्राणिति अन्यत्र जीवननिर्वाहं करोति। इतः श्लिष्टोपमा शृंखला प्रारभते। **शरदिव**—कुमुदं श्वेतकमलं यत् रात्रौ विकसति, कुवलयं कमलं यत् दिवा विकसति तेषां सम्पर्केण सम्बन्धेन मनोहरं गन्धं वहति धारयतीति तथोक्ता कुसुमबाणः कामः तेन सह वर्तमाना सा कुमुद-कुवलयसंपर्कमनोहरः गन्धवहः वायुः यस्यां तथाभूता सा सकुसुमाः पुष्पैः सहिताः बाणाः शरा एतन्नामवृक्षविशेषाः 'सरकंडा' इति भाषायां प्रसिद्धाः यस्यां तथाभूता शरद् शरदृतुरिव विजृम्भते दृश्यते, अन्यत्र सर्वत्र व्याप्नोति। **चन्द्र०**—कमलानां प्रकरे समूहे स्खलिताः पतिताः पादानां किरणानां पल्लवः विस्तारः यस्याः तथाभूता चन्द्रस्य मूर्तिः बिम्बम् इव कमल-प्रकरे कामतापनिवारणार्थं स्खलिताः इतस्ततः पतितौ पादौ पल्लवौ किसलयौ इवेति लुप्तोपमायां यस्याः सा संचरन्ती व्रजन्ती निशां

अपराधों के लिए वह उलाहनाओंका सन्देश कहती है। दक्षिण दिशा की वायु के साथ सुगन्धि की तरह उसे मूर्छा आ जाती है। रात्रि के साथ चक्रवाकों के शाप की तरह जागरण का त्रास हो जाता है। कबूतरों के शब्दों के साथ प्रतिशब्दों की तरह उसके दुःख व्यक्त हो जाते हैं। उपवन के पुष्पों की सुगन्ध के साथ भ्रमर की तरह मरने की चाह समीप आ जाती है। इसी तरह कमलिनी के पत्ते पर पड़ी जल-कणिका की तरह डगमगाती है। परछाई की तरह बिल्लौरी पत्थर, जल, मणि-दर्पण तथा मणिमय फर्शों पर पड़ी दिखाई देती है। कमलिनी की तरह चन्द्र-किरणों के स्पर्श से मुरझा जाती है। गीली मृणालिकाओं के आहार (भक्षण) के सम्बन्ध से जीवन-निर्वाह करने वाली हंसनी की तरह गीली मृणालिकाओं के हारों (मालाओं) के सम्बन्ध से वह जी रही है। जिस तरह कुमुद और कुवलय के संपर्क से मनोहर बनी गन्धवह (वायु) रखे हुए, कुसुम-सहित बाणों (सरकंडों) वाली शरद् ऋतु सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं, उसी तरह कुमुद और कुवलय के संपर्क से मनोहर गन्ध रखे और कुसुम-बाण (काम) से युक्त वह भी इधर-उधर प्रसरण करती है। कमल-समूह पर पाद-पल्लव (किरण-समूह) डाल संचरण करती हुई

कुमुदिनीव रजनिकरकिरणकृतप्रजागरा दिवसमलीकनिद्रयातिवाहयति।

सुररिपुजलशयनलीलेव मन्दोच्छ्वसितशेषा निमीलितलोचना किमपि चिन्तयति। मलयनिम्नगेव सरसहरिचन्दनकिसलयलाञ्छितेषु शिलातलेष्वभिपतति। कुन्दकलिकेव तुषारसिक्तपल्लववर्तिनी वनानिलेनायास्यते। भुजंगीवासह्यसंतापालिङ्गितचन्दना शिखिशकुन्तकुलकोलाहलेन ताम्यति। हरिणीव केसरिकाननं परिहरति। कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरान्मदनचापादिव प्रमदवनात् त्रस्यति। जानकीव पीत-

रात्रिं नयति गमयति। **कुमुदि०**—रजनिं रात्रिं करोतीति रजनिकरः चन्द्रः तस्य किरणैः रश्मिभिः कृतः विहितः जागरः जागरणं यस्याः तथाभूता कुमुदिनी रात्रिकमलिनी इव अलीका मिथ्या या निद्रा तया दिवसम् अतिवाहयति व्यतियापयति। अत्र नेत्रयोः कुमुदिन्याश्च मिथ्यानिद्रत्वेन संकोचमात्रं विवक्षितम्। **सुर०**—मन्दम् यथा स्यात्तथा उच्छुभितः कृतश्वासोच्छ्वासः शेषः शेषनागः यस्यां तथाभूता-निमीलिते मुद्रिते लोचने नेत्रे यस्यां तथाभूता च मुरस्य तत्संज्ञकस्य राक्षसविशेषस्य रिपुः शत्रुः तत्संहारकः कृष्णः विष्णुरिति यावत् तस्य जले समुद्रजले शयनस्य लीला क्रीडा इव मन्दं विरहकारणात् विलम्बितं उच्छ्वसितम् उच्छ्वास एव शेषः अवशेषो यस्याः सा, निमीलित-लोचना च किमपि चिन्तयति ध्यायति, भगवान् विष्णुः शेषमधिशयानः मुद्रित-लोचनः यथा ध्यानमग्नस्तिष्ठति तथैव सापीति भावः। **मलय०**=मलयस्य मलयाचलस्य निम्नगा नदी इव सरसाः निविडरसाः ये हरिचन्दनस्य किसलयाः पल्लवाः तैः लाञ्छितेषु चिह्नितेषु शिलातलेषु प्रस्तरोपरि अभिपतति, वहति अन्यत्र शेते इत्यर्थः। **कुन्द०**=तुषारेण हिमेन सिक्ताः ये पल्लवाः किसलयाः तेषु वर्तते इत्येवंशीला, विशेषणमिदम् उभयत्र समानम्, कादम्बरी अपि हिमसिक्तकिसलयोपरि तापनिवारणार्थं शेते, कुन्दस्य माध्यपुष्पस्य कलिका कोरक इव वनस्य अनिलेन वायुना आयास्यते आयासं प्राप्यते। **भुजंगी**=असह्यः सोढुमशक्यः यः संतापः एकत्र विरहकृतः अन्यत्र सूर्यकृतः तेन आलिङ्गितम् आश्लिष्टं चन्दनं चन्दनलेपः अन्यत्र चन्दनवृक्षः यया तथाभूता भुजंगी सर्पिणी इव शिखिनां मयूराणां कुलस्य समूहस्य कोलाहलेन शब्देन ताम्यति खिद्यते। हरिणी मृगी इव केसरः बकुलवृक्षः ['अथ केसरे। बकुलः' इत्यमरः] अस्मिन् अस्तीति तथोक्तम् काननम् वनम् अथ च केसरिणः सिंहाः तेषां सिंहाध्युषितमित्यर्थः, काननम् परिहरति परित्यजति, बकुलः कामोद्दीपकः सिंहाश्च भयोत्पादकाः। **कुसुम०**=कुसुमेषु पुष्पेषु घटिताः लग्ना इत्यर्थः ये शिलीमुखाः भ्रमराः अन्यत्र कुसुमानि एव घटिताः कृताः ये शिलीमुखाः बाणाः तैः मनोहरात् मदनस्य कामस्य चापात् धनुषः इव प्रमदवनात् अन्तःपुरोद्यानात् त्रस्यति बिभेति। **जानकी०**=जानकी जनकपुत्री

चन्द्रमूर्ति की तरह वह कमल-समूह पर पाद-पल्लवों (पल्लवों-जैसे चरणों) में ठोकर खाए संचरण करती हुई रात बिता देती है। चन्द्रमा की किरणों से जगाई (विकसित की हुई) कुमुदिनी की तरह चन्द्र-किरणों से जगाई (निद्रा रहित की हुई) झूठमूठ की नींद से दिन काटती है। कृष्ण (विष्णु) की (समुद्र) जल में शयन करने की उस लीला की तरह—जिसमें शेषनाग मन्द २ श्वास लेता रहता है और (भगवान् की) आँखें मूँदी रहती हैं—वह भी मन्द २ निःश्वासमात्र अवशिष्ट रही, आँखें मूँदे कुछ ध्यान करती रहती है। सरस (घने रसवाले) हरिचन्दन के वृक्षों के पल्लवों से युक्त पत्थरों के ऊपर गिरने वाली मलयाचल की नदी की तरह वह सरस (गीले) हरिचन्दन वाले पल्लवों से युक्त शिलातलों पर गिर जाती (लेट जाती) है। जिस तरह तुषार (पाले) से सिञ्चित पल्लवों पर स्थित कुन्द पुष्प की कली वन के वायु से झकझोरी जाती है, उसी तरह वह-तुषार से सिञ्चित पल्लवों पर लेटी वनकी वायु से तंग की जाती है। असह्य ताप [धूप] के कारण चन्दन वृक्ष पर लिपटी सर्पिणी की तरह वह असह्य ताप [काम-दाह] के कारण चन्दन लगाये मयूर-समूह के कोलाहल से अकुला जाती है।

रक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य इव चम्पकाशोकेभ्यो बिभेति। उषेव स्वप्नसमागमेनापि कृतार्थतामेति। ग्रीष्मलक्ष्मीरिवानुदिनमति[1]क्षामा भवति। सर्वथा तस्याः कन्दर्पवेदनयाङ्गानि दिवसैर्जीवितसंधारणवस्तूनि वलयरचनया गृहकमलिनीमृणालान्युपदेशैः सखीजनवचनानि शय्यापरिकल्पनेनोपवनकुसुमान्यनवरतमोक्षेण मदनायुधानि निःशेषं क्षीणानि। किं बहुना। संप्रति तस्यास्त्वन्नामा सर्वसखीजनः त्वत्संबद्धानि सर्वरहस्यानि त्वत्समागमोपायान्वेषिणः सर्वसमवायास्त्वद्वार्त्तोपलम्भनतत्पराः सर्वप्रश्नास्त्वद्वृत्तान्त-

सीतेत्यर्थः इव पीतं पानविषयीकृतं रक्तं रुधिरं यैः तथाभूतैः रजन्यां रात्रौ चरन्तीति तथोक्तेभ्यः राक्षसेभ्य इत्यर्थः इव पीताः पीतवर्णाश्च ते रक्ताः लोहित वर्णाश्च तेभ्यः चम्पकाश्च अशोकाश्च तेभ्यः विभेति भयं प्राप्नोति ! **उषा०**=उषा बाणासुरस्य पुत्री इव स्वप्ने निद्रावस्थायां समागमः मिलनम् तेन अपि कृतार्थताम् कृत-कृत्यताम् एति प्राप्नोति।

टिप्पणी०—उषा=बाणासुर की पुत्री उषा एक रात स्वप्न में भगवान् कृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को देखकर उठी और उस पर मोहित हो गई। जागी तो उसके लिए तड़पने लगी। उसकी सखी चित्रलेखा तत्काल अपनी आसुरी माया से द्वारिका में सो रहे अनिरुद्ध को उठाकर उषा के पास ले आई और दोनों का गन्धर्व-विवाह हो गया।

ग्रीष्म०—ग्रीष्मस्य निदाघस्य लक्ष्मीः श्रीः इव अनुदिनं प्रतिदिनम् अतिशयेन क्षामा कृशा अन्यत्र क्षीयमाणा कचित् ग्रीष्म-निशेवेति पाठः स च साधीयान्, यथाग्रीष्मर्तौ निशा क्रमशः क्षीयते तथा सापि। अत्र श्लिष्टोपमा-शृंखला समाप्नोति। **सर्वथा**—सर्वथा सर्वप्रकारेण तस्याः कादम्बर्याः कन्दर्पस्य कामस्य वेदनया पीडया अङ्गानि हस्तपादादिकाः अवयवाः निश्शेषं पूर्णतया यथा स्यात्तथा क्षीणानि क्षीणतां गतानीति सर्वत्रान्वयः, दिवसैः वियोगवासरैरित्यर्थः जीवितस्य प्राणानां यत् संधारणम् अवलम्बनं तस्य वस्तूनि प्राणधारणोपयोगिपदार्थाः इत्यर्थः निःशेषं क्षीणानि, वलयानां कटकानां रचनया निर्माणेन गृह-कमलिन्याः भवनपद्मिन्याः मृणालानि बिसानि निःशेषं क्षीणानि, उपदेशैः शिक्षा-प्रदानैः सखीजनस्य सखीनां वचनानि वाणीत्यर्थः, शय्यानां शयनानां परिकल्पनेन विरचनेन उपवनस्य उद्यानस्य कुसुमानि पुष्पाणि, अनवरतं सततं यथा स्यात्तथा मोक्षेण प्रहारेण मदनस्य कामस्य आयुधानि शस्त्राणि। निःशेषं क्षीणानि। **किं बहुना**=बहुना बहूक्तेन किम्, सम्प्रति अधुना सर्वश्चासौ सखीजनः सर्वाः सख्यः तव एव नाम यस्य तथाभूतः अस्तीति शेषः, सर्वाणि रहस्यानि गुह्यानि त्वया सम्बद्धानि त्वद्विषयकाणीत्यर्थः सर्वे च ते समवायाः गोष्ठ्यः त्वया समागमः मिलनम् तस्य उपायं साधनम् अन्विष्यन्ति मृगयन्ते इति तथोक्ताः सन्ति, सर्वे च ते प्रश्नाः तव

केसरियों [सिंहों] के वन को छोड़ देने वाली हिरनी की तरह वह केसर [बकुला] के वृक्षों वाले वन को छोड़ देती है। पुष्पों पर बैठे शिलीमुखों [भ्रमरों] से सुन्दर बने प्रमदवन से वह ऐसी डरती है जैसे पुष्परूप बने शिलीमुखों (बाणों) से मनोहर काम के धनुष से। पीतरक्त (खून पिये हुए) राक्षसों से डरने वाली सीता की तरह वह पीत-रक्त (पीले और लाल) चम्पा तथा अशोक के पुष्पों से डरती है। स्वप्न में भी मिलन होने पर उषा की तरह वह कृतकृत्य हो जाती है। ग्रीष्म ऋतु की श्री की तरह वह दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। सर्वथा काम-वेदना से उसके अंग, (विरह-) दिनों से प्राणधारण की वस्तुयें, हाथ का कंगन बनाने से भवनकमलिनी के मृणाल, उपदेशों से सखीजन की बाणी, शय्या-रचना से उपवन के फूल, एवं लगातार प्रहार करते रहने से काम के बाण पूरी तरह क्षीण हो गए हैं। अधिक कहने से क्या, इस समय सभी सखियाँ तुम्हारी नाम-राशि बनी हुई हैं; सभी रहस्य तुमसे ही सम्बन्ध रख रहे हैं; सभी गोष्ठियाँ तुमसे

१. क्षामा श्यामा भवति।

मुखरः परिजनस्त्वदालापनिर्मिताः सर्वविनोदास्त्वदाकारमयश्चित्रकलाभ्यासस्त्वदुपालम्भगर्भा मागधीमङ्गलगीतयस्त्वद्दर्शनपुनरुक्ताः स्वप्नास्त्वत्परिहासप्राया मदनज्वरदाहविप्रलापास्त्वन्नामग्रहणैकोपायगम्यप्रबोधा मोहमहावेगाः।'

इत्यावेदयन्तं केयूरकं 'भवतु, संप्रति न शक्नोम्यतः परं श्रोतुम्' इत्यामीलनादत्तसंज्ञेव कादम्बरीव्यथाश्रवणवेदनासंभवानुकम्पयेव चन्द्रापीडमाक्रामन्ती मूर्च्छा न्यवारयत्। न तु पुनरवस्थानिवेदनपरिसमाप्तिः।

इति मूर्च्छानिमीलितश्च तामेवानुध्यायन्निव ससंभ्रमप्रतिपन्नशरीरेण केयूरकेण संभावितताल‍वृन्तया च पत्रलेखयानुभाव्यार्थसज्जया च नियत्या संज्ञां लम्भितश्चन्द्रापीडः

वार्ता वृत्तान्तः तस्य उपलम्भनं ज्ञानम् एव परं प्रधानं येषु तथाभूताः सन्ति, परिजनः भृत्यवर्गः तव वृत्तान्तः उदन्तः तस्मिन् मुखरः वाचालः त्वत्सम्बन्ध्यालापविषयकः अस्ति, सर्वे च ते विनोदाः मनोरञ्जनानि तव आलापः संभाषणम् तेन निर्मिताः रचिताः सन्ति, चित्रकलाया अभ्यासः परिशीलनं तव आकारः आकृतिः एवेति तन्मयो वर्तते, मागधीनां मङ्गलपाठिकानां गीतयः गानानि तव उपालम्भः भर्त्सनं गर्भे मध्ये यासां तथाभूताः सन्ति, स्वप्नाः निद्रायां मनोजन्य-ज्ञानानि तव दर्शनेन अवलोकनेन पुनरुक्ताः पुनरुक्तिपूर्णाः सन्ति, मदनस्य कामस्य यः ज्वरः तत्कृताः विप्रलापाः असम्बद्धभाषणानि तव परिहासः उपहासः प्रायः बाहुल्येन यत्र तथाभूताः सन्ति, मोहः मूर्च्छा तस्य महान्तः तीव्राः वेगाः रयाः तव नाम्नः ग्रहणम् एकः मुख्यः उपायः तेन गम्याः प्राप्याः प्रबोधाः प्रबोधनानि संज्ञा इति यावत् येषु तथाभूताः सन्ति" इति आवेदयन्तं विज्ञापयन्तं च केयूरकम्—भवतु अस्तु यत्त्वयोक्तम्। **संप्रति०**—संप्रति इदानीम् अतः परम् अधिकं श्रोतुम् आकर्णयितुं न शक्नोमि पारयामि, इति आमीलनं नेत्रनिमीलनं तस्मात् दत्ता कृता संज्ञा संकेतः यया तथाभूता मूर्च्छा मोहः कादम्बर्या कथायाः वृत्तान्तस्य श्रवणात् आकर्णनात् यः वेदनायाः चन्द्रापीडे पीडायाः संभव उत्पत्तिः तस्मिन् अनुकम्पा दया तया इव चन्द्रापीडम् आक्रमन्ती आगच्छन्ती न्यवारयत् न्यषेधत् केयूरकमिति शेषः अर्थात् केयूरक इतोऽप्यधिकां कादम्बरीव्यथाकथां कथयिष्यति चेत्तर्हि चन्द्रापीडस्याधिकाधिकं दुःखं संभविष्यतीति दयां कृत्वा मूर्छा चन्द्रापीडमागत्य नेत्रनिमीलनसंकेतेन केयूरकं न्यवारयदित्युत्प्रेक्षा, तु किन्तु एतावता न पुनः अवस्थायाः कादम्बरीदुःखदशाया निवेदनस्य विज्ञापनस्य परिसमाप्तिः पर्यवसानं जाता, तस्याः व्यथा-कथा इतोऽप्यधिका वर्तते इतिभावः। **इति०**—मूर्छया मोहेन निमीलितः मुद्रितनयनः च तां कादम्बरीम् एव अनुध्यायन् चिन्तयन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् संभ्रमः त्वरा तेन सहितं ससंभ्रमं यथा स्यात्तथा प्रतिपन्नम् पतनात् धृतं शरीरं चन्द्रापीडस्येति शेषः येन तथाभूतेन केयूरकेण, संभावितं गृहीतमित्यर्थः तालवृन्तं व्यजनं यया तथाभूतया पत्र-

मिलने का उपाय ढूँढने हेतु होती है, सभी प्रश्नों में तुम्हारा समाचार जानने की बात प्रधान रहती है, भृत्यवर्ग तुम्हारा वृत्तान्त ही कहता है, सभी मनोविनोद तुम्हारी बात-चीत के आधार बने रहते हैं, चित्रकला का अभ्यास तुम्हारा ही चित्र बनाने के लिए होता है, मंगलगान करने वाली महिलाओं के गीतों में तुम्हारी उलाहना भरी रहती है! स्वप्न तुम्हारे दर्शन की पुनरुक्तियों वाले होते हैं, कामज्वर के दाह की बड़बड़ाहटों में तुम्हारा ही परिहास रहता है और मूर्च्छा के महावेगों को जगा देने का एकमात्र उपाय तुम्हारा नाम-ग्रहण बनता है"। इस प्रकार आवेदन करते हुए केयूरक को—"बस, बस अब मैं इससे अधिक नहीं सुन सकता हूँ" यह कह के आँखें मींचने से संकेत किये हुए-जैसे, कादम्बरी की कथा सुनने से होने वाली व्यथा पर दया किये-जैसे चन्द्रापीड को आती हुई मूर्च्छा (केयूरक को आगे कहने से) रोक बैठी, किन्तु [कादम्बरी की] अवस्था की वर्णना फिर भी पूरी नहीं हुई।

इस प्रकार मूर्च्छा से आँखें मूँदे, उस [कादम्बरी] का ही ध्यान करता हुआ-जैसा, केयूरक द्वारा शीघ्र ही शरीर से थामा हुआ, हाथ में पंखा पकड़े पत्रलेखा तथा (वेदना)

स्वकृतपीडापराधेन भीतमपि लज्जितमिव विलक्षमिव निभृतस्थितं केयूरकमन्तर्वाष्पोपरुध्यमानकण्ठः कथमपि स्खलिताक्षरं प्रत्युवाच। 'केयूरक, येन प्रकारेणैवमेकान्तनिष्ठुरहृदयात्मन्यनुत्पन्नानुरागमेव मां संभाव्य देव्या कादम्बर्या दूरीकृतपुनर्मदागमनसंभावनया न त्वमागमनायादिष्टो न संदिष्टं वा किंचिन्महाश्वेतया समुपहृतानुबन्धया मदलेखया वा त्वन्मुखेन नोपालब्धोस्मि तथा मयि पत्रलेखया सर्वमाख्यातम्। तदभिजाततया महानुभावत्वादुदारतया समानशीलतया दक्षिणतया चैकान्तपेशलतया च स्वभावस्यात्मानमात्मना न कलयति देवी कादम्बरी। चन्द्रमूर्तेरालोकेन निश्चेतनस्य चन्द्रकान्ताख्यस्य पाषाणखण्डस्यार्द्रभावोपगमनमेवायत्तं, न पुनस्तत्कराकर्षणम्। नितरां पक्षपातिनोपि च मधुकरस्याभिगमनमेवाधीनम्। मकरन्दलाभे तु कलिकाश्रयिणी जम्भैव

लेखया च अनुभावयितुं कादम्बरीमधिकृत्य अनुभवितुं प्रेरयितुं योग्यः यः अर्थः वेदना-रूपः तस्मिन् सज्जया उद्युक्तया नियत्या दैवेन च संज्ञां चेतनां लम्भितः प्रापितः चन्द्रापीडः स्वेन आत्मना कृता कादम्बरीकष्टमावेद्य चन्द्रापीडे आपातिता पीडा वेदना एव अपराधः आगः तेन भीतं त्रस्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् लज्जितं जातलज्जम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् विलक्षं विस्मयान्वितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् निभृतं तूष्णीं यथा स्यात्तथा स्थितं केयूरकम् अन्तः अन्तर्गतः यो वाष्पः अश्रु तेन उपरुध्यमानः विष्टभ्यमानः कण्ठः गलो यस्य सः कण्ठे स्तंभितवाष्पवृत्तिरित्यर्थः कथमपि केनापि प्रकारेण स्खलितानि त्रुटितानि अक्षराणि यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा सगद्गदमित्यर्थः प्रत्युवाच प्रत्यवदत्। **केयूरक०**—येन प्रकारेण एकान्तम् अत्यन्तं यथा स्यात्तथा निष्ठुरं कठोरं हृदयं यस्य तथाभूतं आत्मनि स्वस्याम् कादम्बर्यामिति यावत् न उत्पन्नः उद्भूतः अनुरागः प्रेम यस्य तथाभूतम् एव मां संभाव्य मत्वा देव्या कादम्बर्या दूरीकृता अपाकृता पुनः मुहुः मम आगमनस्य संभावना कल्पना यया तथाभूतया तस्या त्वम् आगमनाय अत्र मत्पार्श्वे गमनायेत्यर्थः न आदिष्टः, आज्ञप्तः, महाश्वेतया वा न किञ्चित् संदिष्टं सन्देशः प्रेषितः, समुपहृतः दूरीकृतः समापित इति यावत् अनुबन्धः अनुरोधः यया तथाभूतया मदलेखया वा त्वन्मुखेन त्वद्-द्वारा न उपालब्धः उपालम्भविषयीकृतः अस्मि, तथा तेन प्रकारेण मयि मत्पार्श्वे इत्यर्थः पत्रलेखया सर्वम् आख्यातं कथितम्। **तदभि०**—तत् तस्मात् अभिजाता कुलीना तस्याः भावः तया उच्चकुलोत्पन्नतयेत्यर्थः महान् अनुभावः महिमा यस्याः तस्याः भावः तत्त्वं तस्मात्, उदारतया औदार्येण, समानं रूपाद्यनुगुणत्वेन सदृशं शीलं स्वभावः सरलतया ['दक्षिणे सरलोदारौ' इत्यमरः] स्वभावस्य प्रकृतेः एकान्तम् अत्यन्तं यथा स्यात्तथा पेशलतया मृदुतया च देवी कादम्बरी आत्मना स्वयम् आत्मानं स्वाम् न कलयति जानाति। **चन्द्र०**—चन्द्रमूर्तेः चन्द्रमण्डलस्य आलोकेन दर्शनेन एव निश्चेतनस्य जडस्य चन्द्रकान्तः आख्या संज्ञा यस्य तथाभूतस्य पाषाणखण्डस्य प्रस्तरशकलस्य आर्द्रभावे द्रवीभावे उपगमनं प्राप्तिः एव आयत्तम् अधीनम्, न पुनः, न तु तस्य कराणां किरणानाम् आकर्षणम्, **नितराम्**—नितराम् अत्यन्तं यथा स्यात्तथा पक्षाभ्याम् वाजाभ्यां पततीति अथ च

भुगवाने का मसाला तय्यार रखे नियति द्वारा होश में लाया हुआ चन्द्रापीड़ अपने द्वारा किये गये पीड़ा के अपराध से डरे हुए-से, लज्जित-से, अकबकाए-से चुप हुए केयूरक को भीतर ही भीतर आँसुओं से गला रुँध जाने पर किसी तरह लड़खड़ाती वाणी में बोला—'केयूरक, जिस तरह यों मुझे अत्यन्त कठोर-हृदय तथा उसे प्रेम न करने वाला समझकर देवी कादम्बरी ने मेरी फिर (हेमकूट) आने की संभावना मिटाये हुए न तो तुम्हें (यहाँ) आने का आदेश दिया, न महाश्वेता ने कोई सन्देश भेजा और न ही कोई अनुरोध किये, मदलेखा ने तुम्हारे द्वारा मुझे उलाहना दिया, वह सब पत्रलेखा ने मुझे कह दिया है। कुलीनता, महानुभावता, उदारता, एक-जैसा स्वभाव, सरलता तथा स्वभाव की अत्यधिक मृदुता के कारण देवी कादम्बरी स्वयं अपने को नहीं समझ पा रही है। चन्द्रबिम्ब देखनेमात्र से जड़ चन्द्रकान्त-नामक पत्थर

प्रभवति। दिवससंतापक्लान्तेन चोन्मुखता कुमुदाकरेण करणीया। विकासयति पुनस्तं ज्योत्स्नाभिरामा रजन्येव। निर्भरमन्तःसरसतायां सत्यामपि मधुमासलक्ष्मीपरिग्रहाद्विना पल्लवानुरागदर्शनस्य कृते किं करोतु पादपः। तत्र देव्याः कादम्बर्या एवाज्ञापराधिनी, ययाधरस्पन्दितमात्रप्रतीक्षे पुरःस्थायिनि दासजने निष्करुणतयात्मानमव्यापारयन्त्या सुखपरिपन्थिनी दुःखदानैकनिपुणा परहृदयपीडानपेक्षिणी लज्जापेक्षिता न जीवितसंदेह-

पक्षे आनुकूल्ये अनुरागे इत्यर्थः पततीति तथोक्तस्य मधुकरस्य भ्रमरस्य अभिगमनम् कलिकां प्रति आगमनम् एव आयत्तम् अधीनम् तु किन्तु मकरन्दस्य पुष्परसस्य लाभे प्राप्तौ कलिकाम् कोरकम् आश्रयतीति तथोक्ता जृम्भा जृम्भणं विकास इति यावत् एव प्रभवति समर्था अर्थात् मधुकरः कलिकां प्रति आगच्छति एव, मकरन्दं तु विकसन्ती कलिका एव ददाति। **दिवस०**—दिवसस्य वासरस्य यः सन्तापः उष्णिमा तेन क्लान्तेन पीडितेन कुमुदानां कैरवाणाम् आकरेण समूहेन उन्मुखता रजनिं प्रति प्रवणता करणीया कर्तव्या भवति, पुनः किन्तु तम् ज्योत्स्नया चन्द्रिका अभिरामा रमणीया रजनी रात्रिः एव विकासयति विकासं प्रापयति, कुमुदैः रात्र्युन्मुखता कर्तव्या भवति किन्तु तेषां विकासनं निजज्योत्स्ना द्वारा राश्या एव कर्तव्यं भवतीति भावः। **निर्भर०**—निर्भरम् अत्यन्तं यथा स्यात्तथा अन्तः मध्ये सरसस्य भावः सरसता आर्द्रता तस्यां सत्यां विद्यमानतायाम् अपि पादपः वृक्षः मधुमासः वसन्तं तस्य लक्ष्मीः श्रीः तस्याः परिग्रहः स्वीकारः आत्मीयीकरणमिति यावत् तस्मात् विना पल्लवस्य पल्लवरूपस्य अनुरागस्य लालिम्नः एव प्रेम्णः दर्शनस्य प्रकटनस्य कृते किं करोतु न किमपीत्यर्थः, पादपो हि अन्तः सरसोऽपि सन् यावत् वसन्तश्रिया नानुगृह्यते तावत् स पल्लवरूपेणानुरागं कथं प्रकटयेदिति भावः। सर्वत्र समासोक्तिः।

टिप्पणी—चन्द्रमूर्तेः ··· पादपः—साहित्यिक मान्यता है कि 'आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः पश्चात् पुंसस्तदिङ्गितैः'। कादम्बरी को देखते ही चन्द्रापीड उस पर मुग्ध तो हो गया, किन्तु इसके बाद कादम्बरी को भी तो उसके प्रेम का जवाब प्रेम में देना चाहिये, उसे ऐसी चेष्टायें या संकेत करने थे, जिनसे चन्द्रापीड पूरी तरह आश्वस्त हो जाता कि वह उसे प्रेम करती हैं, लेकिन वह ऐसा प्रमाण नहीं दे सकी। इसी बात को कवि ने प्रकृतितत्त्वों पर नायक-नायिका व्यवहार-समारोप करके बनाया है।

तत्र तस्मिन् विषये अर्थात् मया कादम्बरी न संभाविता—एतत्सम्बन्धे देव्याः कादम्बर्याः एव आज्ञा आदेशः अपराधिनी दोषिणी अस्तीति शेषः यया आज्ञया अधरस्य अधरोष्ठस्य स्पन्दितं स्पन्दनम् एवेति मात्रम् तस्मिन् प्रतीक्षा प्रतिपालनं यस्य तथाभूते पुरःस्थायिनि अग्रे स्थिते दासजने मयि निष्करुणतया निर्दयतया आत्मानम् स्वाम् अव्यापारयन्त्या अनियोजयन्त्या सुखस्य सौख्यस्य परिपन्थिनी विरोधिनी दुःखस्य कष्टस्य दानं वितरणम् एकं मुख्यं (कार्यम्) तस्मिन् निपुणा दक्षा परस्य परस्या वा या हृदयस्य पीडा वेदना तां न अपेक्षते इति तथोक्ता लज्जा त्रपा अपेक्षिता इष्टा, न पुनः जीवितस्य जीवनस्य प्राणानामिति यावत् यः सन्देहः

के टुकड़े का पिघल पड़ना उसके अपने वश में है, उसकी किरणों को खींचना नहीं। अत्यन्त पक्षपाती (अनुरागी) होते हुए भी भ्रमर का (पुष्प-कली के) पास आ जाना अपने अधीन होता है, किन्तु मकरन्द प्राप्त कराने में कली की जमुहाई (विकास) ही समर्थ है। दिन की गरमी से पीड़ित कुमुद-वन रजनी की ओर मुँह किये रहता है किन्तु उसे विकसित तो चाँदनी से रमणीय बनी रजनी ही करती है। भीतर अत्यन्त सरसर हते हुए भी वृक्ष वसन्त-श्री द्वारा अपनाये विना पल्लव-रूप में अनुराग (लाली, प्रेम) दिखाने के लिए क्या करे? इस सम्बन्ध में अपराध तो देवी कादम्बरी ही की आज्ञा का है, जो अधर-स्फुरणमात्र की प्रतीक्षा कर रहे, सामने खड़े [मुझ] दास जन की ओर निर्दयता के कारण अपने को न लगाती हुई, सुख की विरोधिनी, केवल दुःखमात्र देने में निपुण, दूसरे के हृदय की पीड़ा का पर्वाह न करने वाली

दायिनी देव्याः समवस्था । अथवास्य परिजनस्यापि देव्या अपि कोयमेवंविधो व्यामोहः । यदनिच्छन्त्यपि बलादसौ न व्यापारिता । कीदृशी चरणतलप्रतिबद्धस्य दासजनस्योपरि लज्जा । कीदृशं वा गौरवम् । को वानुरोधः । अविश्वस्तचित्तता वा केयमीदृशी, यदेवात्मनः शिरीषपुष्पकोमलस्येयमतिदारुणा पीडाङ्गीकृता न कृतार्थितो मे मनोरथः । अथवा क्रमागतमन्तर्धानं वामलोचनानां विशेषतोऽपरित्यक्तनिःशेषबालभावानामनतिप्रबुद्धमुग्धमनसिशयानां कन्यकानाम् । लज्जा न वा पारिता नामास्मिञ्जने स्वयं परित्यक्तु देव्या । मदलेखा तु द्वितीयं हृदयमस्याः । तया किमेवमहार्यसंयमधनैर्मुनिभिरप्यरक्षितहृदयापहारेणानिग्राह्यचौरेण शुचिभिरप्यपरिहार्यस्पर्शेनाबहिष्कार्यचण्डालेन भस्मीकृता-

संशयः तं ददातीति तथोक्ता प्राणसंकटकारिणीत्यर्थः देव्याः कादम्बर्याः समवस्था दशा, अर्थात् लज्जायाः कारणात् सा मयि प्रेम न प्रकटयन्ती सुखस्य स्थाने आत्मानं दुःखे पातितवती । **अथवा**—देव्याः कादम्बर्याः अस्य परिजनस्य भृत्यवर्गस्य अपि अयम् एष एवंविधः एतादृशः कः व्यामोहः बुद्धिमूढता यत् अनिच्छन्ती अनभिलषन्ती अपि असौ कादम्बरी न व्यापारिता मां प्रति स्वानुराग-प्रकटनाय न प्रेरिता इत्यर्थः । चरणयोः पादयोः तले प्रतिबद्धस्य लग्नस्य दासजनस्य ममेत्यर्थः उपरि कीदृशी लज्जा त्रपा ? अथवा गौरवम् गुरुता अथवा अनुरोधः प्रतिबन्धः अथवा कीदृशी न विश्वस्तं विश्वासपूर्णं चित्तं यस्याः तस्या भावः तत्ता अर्थात् विश्वासाभावः, यत् यस्मात् कारणात् एवम् एतेन प्रकारेण शिरीषस्य यत् पुष्पं तद्वत् कोमलस्य सुकुमारस्य आत्मनः स्वस्याः इयम् एषा अतिशयेन दारुण कठोरा पीडा वेदना अङ्गीकृता, किन्तु मे मनोरथः अभिलाषः न कृतार्थितः कृतकृत्यीकृतः न पूरित इति यावत् अर्थात् मयि स्वानुरागो न प्रकटीकृतः । **अथवा**—वामलोचनानां स्त्रीणाम् विशेषतः न परित्यक्तः मुक्तः अशेषः पूर्णो बालभावः बालत्वं याभिः तथाभूतानाम् वयःसन्धिस्थितानामित्यर्थः, न अत्यन्तं प्रबुद्धः जागरितः प्रदीप्त इति यावत् अतएव मुग्धः मुग्धावस्थायां स्थितः मनसिशयः कामः यासां तथाभूतानाम् कन्यकानाम् कुमारीणां अन्तर्धानं गोपनं स्वहृदयभावानभिव्यक्तिरिति यावत् क्रमागतम् परम्पराप्राप्तम् अस्तीति शेषः । अस्मिन् जने मयीत्यर्थः देव्या कादम्बर्या स्वयं परित्यक्तुं विहातुं लज्जा न पारिता शक्ता नामेति संभाव्ये ('नाम प्राकाश्य—संभाव्य—क्रोधो—पगम—कुत्सने' इत्यमरः] संभवतः इत्यर्थः, तु किन्तु मदलेखा अस्याः कादम्बर्याः द्वितीयं हृदयम् अभिन्नहृदया सखीत्यर्थः हृदयगतं तस्याः सर्वं रहस्यं जानातीति यावत्, तया कामेनायास्यमानं देवीशरीरमुपेक्षितमित्यस्ति वाक्यम् । तया मदलेखया किम् कस्मात् कारणात् एवम् एतेन प्रकारेण हर्तुम् अपहर्तुं शक्यं हार्यम् न हार्यं संयमः नियन्त्रणम् एव धनं येषां तथाभूतैः मुनिभिः ऋषिभिः अपि न रक्षितः हृदयस्य अपहारः अपहरणं यस्मात् तथाभूते न, न निग्रहीतुं शक्य इत्यनिग्राह्यश्चासौ चौरः तेन, शुचिभिः शुद्धैः अपि अपरिहार्यः परिहर्तुमशक्यः स्पर्शः यस्य तेन, न बहिष्कर्तुं योग्यः

लज्जा का खयाल कर बैठी, प्राणों को संशय में डाल देने वाली देवी की अवस्था का नहीं। अथवा देवी कादम्बरी की नौकर-नौकरानियों की बुद्धि पर भी ऐसा क्या पर्दा पड़ा कि उस (कादम्बरी) के न चाहने पर भी वे उसे बलात् (इस ओर) न लगा सकीं। (उसके) चरणतल से चिपके रहने वाले इस दास जन के प्रति भला यह कैसी लज्जा ? अथवा कैसा बड़प्पन ? अथवा कैसा नियन्त्रण जो शिरीष-पुष्प के सदृश अपने आपके लिए यह अति दारुण पीड़ा स्वीकार की, (लेकिन) मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया ? अथवा स्त्रियों में विशेषतः उन कुमारियों में, जिन्होंने अपना बालपन पूरी तरह न छोड़ा हो और जिनमें काम अच्छी तरह प्रबुद्ध न हुआ मुग्धावस्था में ही हो, छिपाव-दुराव परंपरागत होता है। यदि देवी कादम्बरी मेरे प्रति लज्जा का त्याग न कर सकी, तो मदलेखा उसका दूसरा हृदय थी ही। उसने इस प्रकार काम द्वारा सताये जा रहे देवी के शरीर की क्यों उपेक्षा की—ऐसा काम, जिससे न हरे जा सकने वाले संयम के धनी मुनि लोग भी हरे जाते हुए (अपने) हृदय को नहीं बचा पाते; जो ऐसा

पर्यवसानप्राणिसहस्रेणानिर्वाप्यश्मशानाग्निना सर्वदोषाश्रयेणाशरीरव्याधिना रूपापहारिणाकाण्डव्याधेन मर्मभेदिनालीकधनुर्धरेण सद्यःप्राणापहारक्षमेणाकालमृत्युनानिरूपितस्थानास्थानप्रवर्तिना परापकारकृतार्थेन हृदयवासिनापरप्रत्ययेन स्वयोनिना कामेन दुरात्मनायास्यमानं देवीशरीरमुपेक्षितम्। किमिति तत्रस्थस्यैव मे कर्णे नावेदितम्। अधुना श्रुत्वापि दिवसक्रमगम्येऽध्वनि किं करोमि। मलयानिलाहतलताकुसुमपातस्याप्यसहं देवीशरीरम्। वज्रसारकठिनहृदयैरपि दुर्विषहाः स्मरेषवः। न ज्ञायते निमेषेणैव किं भवतीति। प्रायेण च देव्याप्यनुभवनीय एवायमर्थः। यथा चास्य दुःखैकदानव्यसनिनो दुर्घटघटनापण्डितस्य यत्किंचनकारिणो निष्कारणकुपितस्य हतविधेः सर्वतो

चासौ चाण्डालः मातङ्गः हृदयस्थितत्वेन तस्य बहिष्कारः कर्तुं न शक्यते इति भावः, भस्मीकृतम् भस्मतां नीतम् अपर्यवसानम् अनन्तम् प्राणिसहस्रं येन तथाभूतेन, अनिर्वाप्यः न निर्वापयितुं प्रशमयितुं योग्यश्चासौ श्मशानस्य पितृवेश्मनः अग्निः तेन, अशरीरः शरीररहितश्चासौ व्याधिः रोगः तेन, अथवा न शरीरस्य व्याधिः तेन मानसिक-रोगेणेत्यर्थः रूपं सौन्दर्यम् अपहर्तुं शीलमस्येति तथोक्तेन, अकाण्डः काण्डेन बाणेन रहितश्चासौ व्याधः मृगवधाजीवः तेन ('काण्डोऽस्त्री दण्ड-बाणार्ववर्गावसरवारिषु' इत्यमरः] मर्म प्राणस्थानं हृदयमित्यर्थः भिनत्ति विध्यतीत्येवंशीलेन, अलीकः मिथ्या धनुर्धरः धानुष्कः तेन, पुष्पं हि न भवति वास्तविकं धनुः इति तस्य मिथ्याधनुर्धरत्वम् सद्यः तत्कालमेव प्राणानां जीवितस्य अपहरणे क्षमेण समर्थेन, अकाले असमयं मृत्युना, मृत्युजनकेनेत्यर्थः, अनिरूपिते अदर्शिते स्थानं च अस्थानं च तयोः प्रवर्तते इत्येवंशीलेन, परेषां यः अपकारः अहितम् तेन क्रियमाणेन कृतार्थः कृतकृत्यः तेन, हृदये वसति तिष्ठत्येवंशीलेन, न परस्मिन् अन्यस्मिन् प्रत्ययः विश्वासः यस्य तेन स्वयोनिना आत्मयोनिना स्वयम्भुवेत्यर्थः कामेन मदनेन दुरात्मना दुष्टात्मना आयास्यमानम् पीड्यमानम् देव्याः कादम्बर्याः शरीरं देहः उपेक्षितम् न चिन्तितमित्यर्थः। **किमिति**—किमिति कस्मात् कारणात् तत्र तिष्ठतीति तत्रस्थः तस्य हेमकूटस्थस्य एव मे कर्णे श्रोत्रे न आवेदितम् कथितं यत् कादम्बरी त्वयि अनुरक्तेति। अधुना इदानीम् श्रुत्वा तस्या अवस्थाम् आकर्ण्यापि दिवसानां दिनानां क्रमेण परम्परया गम्ये गन्तुं योग्ये अनेकदिनैः लंघनीये इत्यर्थः अध्वनि मार्गे किं करोमि न किमपि कर्तुं समर्थ इत्यर्थः। मलयस्य मलयाचलस्य यः अनिलः वायुः तेन आहतम ताडितं यत् कुसुमम् पुष्पं तस्य पातस्य पतनस्य अपि असहं सोढुमक्षमं देव्याः कादम्बर्याः शरीरम् अस्तीति शेषः। वज्रं हीरकः तस्य सारः मध्यम् तद्वत् कठिनं कठोरं हृदयम् अन्तःकरणं येषां तथाभूतैः अस्मद्विधैः अस्मत्सदृशैः अपि स्मरस्य कामस्य इषवः बाणाः दुर्विषहाः दुःखेन विषोढुं योग्याः सन्तीति शेषः। न ज्ञायते अवबुध्यते निमेषः नेत्रनिमीलनम् एव निमेषमात्रं तेन क्षणेनैवेत्यर्थः किं भवति जायते इति। प्रायेण प्रायः देव्या कादम्बर्या अपि अयम् एषः अर्थः दुःखरूपः अनुभवनीयः अनुभवविषयीकरणीयः। **यथा**—दुःखम् एव एकं मुख्यं यत् दानं तत्र व्यसनम् आसक्तिः अस्यास्तीति

चाण्डाल है कि जिसके स्पर्श से पवित्र लोग भी नहीं बच सकते और जिसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता, जिसने अनन्त प्राणि-सहस्रों को भस्म कर रखा है, जो न बुझाई जाने वाली मरघट की आग है, सभी बुराइयों का घर है, अशारीरिक रोग है, रूप हर लेता है, विना बाणों का व्याध है, मर्म-भेदी, झूठा धनुर्धर, तत्काल प्राण लेने में समर्थ, अकाल मृत्यु, स्थान और अस्थान को दिखाये विना कार्य करने वाला, दूसरों की बुराई से कृतार्थ हो जाने वाला, हृदय में डेरा डाले हुए, दूसरों पर अविश्वासी और स्वयंभू है। जब मैं नहीं था तो उसने मेरे कान में क्यों नहीं कह दिया ? अब सुनकर भी मैं क्या करूँ जहाँ रास्ता चलने में कितने ही दिन लग जाते हैं। देवी कादम्बरी का शरीर तो मलयाचल की वायु से झकझोरी लता के फूल का भी (अपने ऊपर) पड़ना नहीं सह सकता। वज्र-तुल्य कठिन हृदय वाले हम-

विसंष्ठुलं समारम्भं पश्यामि तथा जानामि नैवायमेतावता स्थास्यतीति। अन्यथा क्व निष्प्रयोजनाश्वमुखमिथुनानुसरणेनामानुषभूमिगमनम्। क्व च तत्र तृषितस्याच्छोद-दर्शनम्। क्व तत्तीरे विश्रान्तस्यामानुषगीतध्वनेराकर्णनम्। क्व तज्जिज्ञासागतस्य महाश्वेतावलोकनम्। क्व तत्र तरलिकया सह तवाभिगमनेन मद्गमनप्रस्तावः। क्व महाश्वेतया सह हेमकूटगमनम्। क्व तत्र देवीवदनदर्शनम्! क्वानुरागोत्पत्तिरस्मिञ्जने देव्याः। क्व वाऽपरिपूर्णमनोरथस्य मे पितुरलङ्घनीयागमनाज्ञा। तत्सुदूरमारोप्य पातिता वयं खल्वनेनानाकार्यकारिणास्मत्कर्मबलनियोगदक्षेण दग्धवेधसा। तथापि देवीं संभावयितुं प्रयतामहे।'

तथोक्तस्य, दुखने घटितुम् उत्पत्तुं योग्या दुर्घटा या घटना तत्र पण्डितस्य बुधस्य, यत्—किञ्चन यदेव तदेव कर्तुं शीलमस्येति तथोक्तस्य, निष्कारणं विना कारणेन यथा स्यात् तथा कुपितस्य कोपं प्राप्तस्य हतश्वासौ विधिः विधाता तस्य दुष्टविधातुरित्यर्थः सर्वतः सर्वथा विसंष्ठुलं विसदृशं समारम्भं कार्यं पश्यामि, तथा जानामि वेद्मि एतावता तस्या एतावद् दशाकरणमात्रेण न स्थास्यति विधाता, इतोऽप्यधिकं करिष्यतीत्यर्थः। **अन्यथा**—अन्यथा यद्येवं नास्ति, तर्हि निष्प्रयोजनं प्रयोजनं विनैव अश्वमुखयोः किन्नरयोः मिथुनस्य युगलस्य अनुसरणेन अनुगमनेन अमानुषाणाम् अमनुष्याणां देवानामित्यर्थः भूमौ स्थाने गमनम् यानम् ममेति शेषः, तत्र च तृषितस्य पिपासितस्य मम अच्छोदस्य एतत्संज्ञकस्य सरोवरस्य दर्शनम् अवलोकनम् क्व क्वेति महदन्तरम्, क्व च तस्य सरोवरस्य तीरे तटे विश्रान्तस्य कृतविश्रमस्य अमानुषस्य दिव्यस्य गीतस्य गानस्य ध्वनेः शब्दस्य आकर्णनं श्रवणम्, क्व तस्य गीतध्वनेः जिज्ञासा ज्ञातुमिच्छा तया गतस्य प्राप्तस्य मम महाश्वेताया अवलोकनं दर्शनम्, क्व तत्र महाश्वेतावलोकनस्थले तरलिकया एतदाख्यया तत्सख्या सह तव केयूरकस्य अभिगमनेन आगमनेन मम गमनस्य हेमकूटे यानस्य प्रस्तावः अवसरः, हेमकूटे गमनम्, देव्याः कादम्बर्याः वदनस्य मुखस्य दर्शनम्, क्व अस्मिन् जने मयीत्यर्थः देव्याः कादम्बर्याः रागस्य प्रेम्णः उत्पत्तिः, न पूर्णः मनोरथः अभिलाषः यस्य तथाभूतस्य मे अलंघनीया अनतिक्रमणीया आगमनस्य उज्जयिन्यां प्रत्यावर्तनस्य पितुः जनकस्य आज्ञा आदेशः। तत् तस्मात् कारणात् अकार्यं कर्तुमयोग्यं कार्यं कारयितुं शीलमस्येति तथोक्तेन, अस्माकं यत् कर्म पूर्वजन्मकृतधर्माधर्मरूपं तस्य यत् बलम् प्रभावः तस्य नियोगे प्रवर्तने दक्षेण निपुणेन अनेन दग्धवेधसा हतविधात्रा वयम् सुदूरम् अत्युच्चैः आरोप्य स्थापयित्वा पातिताः अधःस्थलं प्रापिताः। तथापि एवं सत्यपि देवीं कादम्बरीं संभावयितुं तत्र गत्वा समाश्वासयितु-

---

जैसे भी काम के बाणों को नहीं सह सकते हैं। पता नहीं पलक झपकते ही क्या हो जाता है। कादम्बरी को भी प्रायः इसका अनुभव करना पड़ रहा होगा। जैसा कि मैं दुःख देने का ही अभ्यासी, अनहोनी घटना का पण्डित, जो चाहे सो करने वाले, विना कारण कुपित हुए इस मुए विधाता का विषम कार्य देखता हूँ, उससे पता चलता है कि वह यहीं तक नहीं रहेगा, अन्यथा कहाँ मेरा विना प्रयोजन किन्नर-युगल के पीछे-पीछे चलकर अमानुष भूमि पर पहुँच जाना, कहाँ वहाँ प्यासे हुए मेरा अच्छोद सरोवर का देखना, कहाँ उसके तट पर विश्राम किये मेरा दिव्य गीत की ध्वनि सुनना, कहाँ उसकी जिज्ञासा से गए हुए मेरा महाश्वेता को देखना, कहाँ वहाँ तरलिका के साथ तुम्हारे आ पड़ने पर मेरा जाने का प्रस्ताव बनना, कहाँ महाश्वेता के साथ मेरा हेमकूट जाना, कहाँ वहाँ मेरा कादम्बरी को देखना, कहाँ इस जन पर उसका अनुराग उत्पन्न होना, और कहाँ अपूर्ण मनोरथ वाले मेरे लिए (घर) आने की पिता जी की अलंघनीय आज्ञा का आना। इसलिए न करने योग्य कामों को कराने वाले, हमारे (पूर्व जन्म के) कर्मों के बल को प्रयोग में लाने में निपुण इस जले विधाता ने सचमुच खूब ऊपर चढ़ाकर हमें नीचे पटक दिया है। तथापि हम देवी का आदर करने का प्रयत्न करेंगे"। इस प्रकार चन्द्रापीड के

इत्यभिदधत्येव चन्द्रापीडे 'नितरामयमनेनैव कादम्बरीवृत्तान्तेन संतापितस्तत्किमपरमहमेनमात्मतेजसा संतापयामि' इत्युत्पन्नदय इव भगवांस्तिग्मदीधितिरुत्तप्तकनकद्रवस्फुलिङ्गपिङ्गलद्युति दिग्विकीर्णधूर्जटिजटामण्डलानुकारि संजहार करसहस्रम्। अस्तानुसारेण च रवेर्वासरोऽपि यथोच्छ्रिततरुशिखरावलम्बिनो रक्तातपच्छेदानाकर्षन्नपससार। क्रमेणैव संजातकरुणानुबन्धयेव संध्ययाप्युपरि जलार्द्रपट इव प्रसार्यमाणे स्वरागपटले, निशागमेनाप्येवमस्य शून्यताविक्लवस्य मा भूद्दर्शनमित्याप्तेनेव सर्वतो नीलीपरिलम्बमानायामिव भ्राम्यमाणायां तिमिरलेखायाम्, कमलेष्वपि दुःसहत्वाच्छोषकारिणः संतापस्य तल्पकल्पनाभीतेष्विव संकुचत्सु, कुमुदेष्वपि शुचिस्वभावतयार्द्रार्द्रेषु शयनसंपाद-

---

मित्यर्थः प्रयतामहे प्रयत्नं करिष्यामः' इति अभिदधति वदति एव चन्द्रापीडे **नितरा०**—अयम् चन्द्रापीडः अनेन एव कादम्बर्याः वृत्तान्तेन उदन्तेन नितराम् भृशं यथा स्यात्तथा संतापितः संतापं प्रापितः, तत् तस्मात् एनम् चन्द्रापीडम् आत्मनः स्वस्य तेजसा तापेन अपरम् इतः अधिकं यथा स्यात् तथा किम् कस्मात् संतापयामीति उत्पन्ना संजाता दया करुणा यस्य तथाभूतः भगवान् तिग्माः उष्णा दीधितयः रश्मयो यस्य सः सूर्य इत्यर्थः **उत्तप्त०**—उत्तप्तम् उष्णीकृतं यत् कनकं सुवर्णं तस्य यो द्रवः रसः तस्य स्फुलिङ्गवत् कणवत् पिङ्गला पीतवर्णा द्युतिः कान्तिः यस्य तथाभूतम्, दिक्षु दिशासु विकीर्णा विक्षिप्ता या धूर्जटेः महादेवस्य सटा जटा तस्य मण्डलम् समूहम् अनुकरोति बिडम्बयतीति तथोक्तम्, तत्सदृशमित्यर्थः, उपमा, कराणां किरणानां सहस्रं सहस्र संख्यक-किरणानित्यर्थः संजहार अपाचकर्ष। **अस्ता०**—रवेः सूर्यस्य अस्तानुसारेण अस्तगमनानुसारं वासरः दिवसः अपि यथोच्छ्रितं यथोच्चं यथा स्यात्तथा तरूणां वृक्षाणां शिखराणि अग्राणि अवलम्बन्ते इति तथोक्तान् रक्तातपस्य लोहितधर्मस्य छेदान् खण्डान् आकर्षन् संहरन् अपससार अपासरत्। **क्रमेण०**—क्रमेण क्रमशः एव संजातः करुणायाः दयायाः अनुबन्धः सम्बन्धः यस्यां तथाभूतया इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सन्ध्यया सायंवेलया जलेन आर्द्रः क्लिन्नः यः पटः वसनं तस्मिन् इवेत्युपमायाम् स्वस्याः आत्मनः रागस्य अनुरागस्य (लालिम्नः, प्रेम्णः) पटले समूहे प्रसार्यमाणे विस्तार्यमाणे (सतिसप्तमी) अर्थात् दयार्द्रेव सन्ध्या चन्द्रापीडोपरि तापशमनार्थम् आर्द्रपटमिव रागपटलं प्रसारयामास, **निशा०**—निशायाः रजन्याः आगमेन आगमनेन प्रदोषसमयेनेत्यर्थः, अपि एवम् शून्यतया विमनस्कतया विक्लवस्य विह्वलस्य अस्य चन्द्रापीडस्य दर्शनम् आलोकनम् मा भूत् अर्थात् शून्यमनस्कं विह्वलञ्चैनं मा लोका पश्यन्त्विति आप्तेन गृहस्य श्रेष्ठपुरुषेण इवेत्युपमायाम् सर्वतः समन्तात् नीलीरागेण रञ्जितायां परिलम्बमानायां 'कनात' इति भाषायां प्रसिद्धायाम् तिमिरस्य अन्धकारस्य लेखायां वीथ्यां भ्राम्यमाणायाम् निक्षिप्यमाणायां सत्याम्, **कमले०**—शोषं करोतीति तथोक्तस्य शोषकस्येत्यर्थः संतापस्य कामकृतदाहस्य दुःसहत्वात् सोढुमशक्यत्वात् तल्पस्य शय्यायाः या कल्पना रचना ततो भीतेषु भयं प्राप्तेषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कमलेषु पद्मेषु अपि संकुचत्सु संकोचं गच्छत्सु मुद्रितेष्वित्यर्थः सत्सु, **कुमुदे०**—शुचिः पवित्रः अथ

कहते कहते ही कादम्बरी के इस समाचार ने इसे इस प्रकार अत्यन्त संतप्त कर दिया है, इसलिए मैं अपने तेज से इसे और अधिक क्यों तपाऊँ' इस विचार से दया-युक्त हुए-जैसे सूर्य भगवान् तपे हुए सोने के द्रव के कण के समान पीली-पीली कान्तिवाली, दिशाओं में बिखरे महादेव के जटा-मण्डल जैसा अपनी सहस्र किरणों को समेट बैठा। सूर्यास्त के पीछे पीछे दिन भी ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के शिखरों पर रह रहे रक्तातप-खण्डों को समेटता हुआ चल दिया। करुणायुक्त हुई-जैसी सन्ध्या गीले वस्त्र की तरह क्रम से ही अपनी लालिमा का समूह फैलाने लगी; प्रदोष-समय भी यह सोचकर अनमनेपन से विह्वल हो उठे कि इस (चन्द्रापीड) को कोई देख न ले, आत्मीय शिष्टजन की तरह चारों ओर नीली कनात-जैसी अन्धकार की रेखा घुमाने लगा, कमल भी (उसके शरीर को) सुखा देने वाले सन्ताप के असह्य हो जाने के कारण बिछौना बना दिये

नायेवाहमहमिकयोद्दलत्सु, चक्रवाकेष्वपि सहचरीविरहविधुरेषु कादम्बरीसमीपगमनोपदेशदानायेव कलकरुणमुच्चैर्मुहुर्मुहुर्व्याहरत्सु, चन्द्रमस्यपि भगवति समस्तभुवनैकातपत्रे सुधारजतकलशे पूर्वदिग्वधूवदनचन्दनतिलके गगनतललक्ष्मीलावण्यमहाह्रदे सकललोकाह्लादकारिणि सुधालिप्तैः करैरिव स्प्रष्टुमुच्छ्वासहेतुना तं ज्योत्स्नाजलेन च सेक्तुमुदयगिरिशिखरमारूढे, प्रौढे प्रदोषसमये चन्द्रापीडस्तस्मिन्नेव वल्लभोद्याने चन्द्रातपस्पर्शदर्शितविशदजललवोद्भेदहारिणि चन्द्रमणिशिलातले विमुच्याङ्गानि चरणसंवाहनोपसृतं केयूरकमवादीत्। 'केयूरक, किमाकलयसि यावद्वयं परापतामस्तावत्प्राणान्संधारयिष्यति

च शुक्लः स्वभावः प्रकृतिः येषां तेषां भावः तत्ता तया आर्द्राणि आर्द्राणि इति आर्द्रार्द्राणि अत्यन्तं जल-क्लिन्नानि, अथ च सरसानि सहृदयानीत्यर्थः तेषु कुमुदेषु रात्रिकमलेषु अपि अहं पूर्वम्, अहं पूर्वम् इति स्पर्धा अहमहमिका तया शयनस्य चन्द्रापीडस्य कृते तल्पस्य संपादनाय रचनाय इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उद्दलत्सु विकसत्सु सत्सु, चक्र०—सहचरीणां सङ्गिनीनां चक्रवाकीनां विरहेण वियोगेन विधुरेषु विह्वलेषु चक्रवाकेषु कादम्बर्याः समीप निकटे गमनस्य चन्द्रापीडकृते य उपदेशः तस्य दानाय वितरणाय इवेत्युत्प्रक्षायाम् कलं मधुरं करुणं सदयं च तथा स्यात्तथा उच्चैः तारम् मुहुर्मुहुः वारं वारं व्याहरत्सु ब्रुवत्सु सत्सु, चन्द्र०—सकलं समस्तं च तत् भुवनं जगत् तस्य एकम् अद्वितीयम् आतपत्रं छत्रं तस्मिन्, सुधायाः अमृतस्य रजतस्य रौप्यस्य कलशे कुम्भे, पूर्वदिक् पूर्वदिशा एव वधूः स्त्री तस्याः वदने मुखे चन्दनस्य मलयजस्य तिलके तिलकरूपे, गगनतलस्य आकाशतलस्य या लक्ष्मीः शोभा तस्याः लावण्यं सौन्दर्यं तस्य महाह्रदे महासरसि उपरि सर्वत्र रूपकालङ्कारः, सकलस्य लोकस्य भुवनस्य आह्लादम् आनन्दं करोतीत्येवंशीले भगवति चन्द्रमसि शशिनि अपि सुधया अमृतेन लिप्तैः स्निग्धैः करैः किरणैः हस्तैरिवेत्युत्प्रेक्षायाम् स्प्रष्टुं चन्द्रापीडं स्पर्शविषयीकर्तुम् उच्छ्वासस्य प्राणनस्य हेतुना कारणीभूतेन चैतन्यापादकेनेत्यर्थः ज्योत्स्ना चन्द्रिका एव जलं सलिलं तेन, अत्र रूपकम्, चन्द्रापीडं सेक्तुं सिक्तं कर्तुं च उदयगिरेः उदयाचलस्य शिखरं शृङ्गम् आरूढे अधिष्ठिते सति, प्रदोषसमये निशामुखे च प्रौढे पूर्णे सति चन्द्रापीडः तस्मिन् एव वल्लभे प्रिये उद्याने उपवने चन्द्रातप०—चन्द्रस्य य आतपः आलोकः तस्य स्पर्शेन संपर्केण दर्शितः प्रकटितः विशदस्य निर्मलस्य जलस्य यः लवः अंशः तस्य उद्भेदेन प्रादुर्भावेण हारिणि मनोहरे चन्द्रमणेः चन्द्रकान्तस्य शिलायाः दृषदः तले उपरि अङ्गानि हस्तपादाद्यवयवान् विमुच्य त्यक्त्वा, वेदनाकारणात् तस्याङ्गानि शिथिलीभूतान्यासन्निति भावः, चरणयोः पादयोः संवाहनाय संपीडनाय उपसृतम् समीपे आगतं केयूरकम् अवादीत् अकथयत्—'केयूरक, किम् आकलयसि विचारयसि, यावत् यावता समयेन वयं परापतामः हेमकूटं गच्छामः, तावत् तावता समयेन देवी कादम्बरी प्राणान् जीवितं धारयिष्यति प्राणधारणं करिष्यति? तत्र गत्वा वयं तां जीवितां

जाने से डरे हुए-जैसे बन्द होने लगे, शुचि (पवित्र श्वेत) स्वभाव होने के कारण कुमुद भी बिछौना बनाये जाने हेतु परस्पर प्रतिस्पर्धा से—जैसे विकसित होने लगे, सहचरियों के वियोग से विह्वल हुए चक्रवाक भी कादम्बरी के पास जाने का उपदेश देने हेतु-जैसे बार-बार मीठे और करुण-भरे ऊँचे स्वर में बोलने लगे। तथा सकल जगत के एकमात्र छत्र, अमृत के रजत-कलश, पूर्व दिशारूपी वधू के माथे की चन्दन की बिन्दी, गगनतल की शोभा के महान् सौन्दर्य-सरोवर, समस्त लोगों को आनन्द देने वाले चन्द्र भगवान अमृत-लिप्त करों (किरणों) के रूप में करों (हाथों) से-जैसे छूने के लिए तथा उस (चन्द्रापीड) को चेतना प्रदान करने वाले ज्योत्स्नारूपी जल से सींचने लिए उदयाचल के शिखर पर आरूढ़ हो गए। (इस तरह) प्रदोष-काल जब पूर्ण हो उठा, तो उसी प्रिय उद्यान में चाँदनी के स्पर्श द्वारा प्रकट किए स्वच्छ जल-कणों के प्रवाह से रमणीय बने चन्द्रकान्त मणि के शिलातलपर (अपने) अङ्गों का ढीला-ढाला छोड़ चन्द्रापीड पैर दबाने हेतु समीप में आए हुए केयूरक को बोला—"केयरक, तुम्हारा क्या खयाल

देवी कादम्बरी। पारयिष्यति वा तां विनोदयितुं मदलेखा। आगमिष्यति वा पुनस्त-स्समाश्वासनाय महाश्वेता। मत्परिचयोद्वेजिता प्रतिपत्स्यते वा शरीरस्थितये तयो-रभ्यर्थनाम्। द्रक्ष्यामि वा पुनस्तस्याः स्मेरसृक्कोपान्तमालोलतारकमुत्त्रस्तहरिणशाव-कायताक्षं मुखम्' इति।

स तु व्यज्ञपयत्। 'देव, धैर्यं समवलम्ब्य गमनाय यत्नः क्रियताम्। तिष्ठतु तावदासन्नवर्ती सखीजनः परिजनो वा। तस्या हि त्वदालोकनेच्छैव स्वेच्छया निमेषि-तुमपि न ददाति। समागमाशयैवावष्टब्धं हृदयम्। श्वसितमेव मुखे वहितम्। रोमाञ्च एव क्षणमपि शरीरं न मुञ्चति। दिवानिशं बाष्प एव लोचनपथस्थायी। प्रजागर एव

प्राप्स्यामः ? इत्यर्थः, अथवा मदलेखा एतन्नाम्नी तत्सखी तां कादम्बरीं विनोदयितुं तन्मनो रञ्जयितुं पारयिष्यति समर्था भविष्यति ? अथवा तस्याः समाश्वासनाय आश्वासनं दातुं महाश्वेता आगमिष्यति हेमकूटं द्वितीयवारमिति शेषः, मया सह कृतः यः चन्द्रापीडस्य परिचयः परिचितिः तेन उद्वेजिता उद्वेगं प्रापिता कादम्बरी शरीरस्य स्थितये धारणाय प्राणान् धारयितुमित्यर्थः तयोः महाश्वेता-मदलेखयोः अभ्यर्थनां प्रार्थनां प्रतिपत्स्यते अङ्गीकरिष्यति ? महाश्वेतया एव कादम्बर्या सह चन्द्रापीडस्य परिचयः कारितः, अतः सा तस्यां रुष्टा स्यादिति भावः। स्मेरः विकसितः स्मययुक्त इत्यर्थः सृक्कणोः ओष्ठप्रान्तयोः उपान्तः प्रान्तभागः यस्मिन् तथाभूतम्, आलोला चञ्चला तारका कनीनिका यस्मिन् तत्, उत्त्रस्तः भय-चकितः यः हरिण-शावकः मृगशिशुः तस्य इवेति लुप्तोपमा आयते दीर्घे ईक्षणे नयने यस्मिन् तत् मुखम् आननम् द्रक्ष्यामि अवलोकयिष्ये स केयूरकः तु व्यजिज्ञपत् न्यवेदयत्—देवेति—धैर्यम् धृतिम् समवलम्ब्य आश्रित्य गमनाय हेमकूटे गन्तुं यत्नः प्रयत्नः क्रियताम् विधीयताम् आसन्ने समीपे वर्तते इतितथोक्तः सखीजनः सख्यः परिजनः भृत्यवर्गः तावत् तिष्ठतु दूरमास्ताम्, हि यतः तस्याः कादम्बर्याः तव आलोकनं दर्शनं तस्य इच्छा कामना एव स्वेच्छया स्वेच्छानुसारं निमेषितुं निमेषं कर्तुम् अपि न ददाति त्वद्—दिदृक्षया नेत्रनिमीलनमपि न करोतीत्यर्थः। समागमः त्वया मिलनं तस्य आशया आशंसया एव हृदयम् अवष्टब्धं रुद्धमस्तीतिशेषः अन्यथा स्फुटितमेव स्यात्। मुखे आनने श्वसितम् उच्छ्वसितम् एव वहितम् प्रवाहरूपेण चलितम् (अत्र वह धातोः निष्ठायां सम्प्रसारणे[२] 'ऊढम्' इत्येव समुचितम् अथवा अवपूर्वकात् धा धातोः अवहितमितिकृत्वा भागुरिमतेन उपसर्गस्याकारस्य लोपे वहितम् = स्थितमित्युपपादनीयम्)। रोमाञ्चः रोमोद्गमः न मुञ्चति त्यजति ताम्, सा सदैव रोमाञ्चिता तिष्ठतीत्यर्थः। दिवानिशम् अहर्निशम् बाष्पः अश्रु एव लोचनयोः नयनयोः पथि मार्गे तिष्ठतीति तथोक्तः अस्तीति शेषः। प्रजागरः निद्रा

है ? क्या जब तक हम कादम्बरी के पास पहुँचते हैं, तब तक वह प्राण धारण कर लेगी ? अथवा क्या मदलेखा (तब तक) इसका मनोरञ्जन कर लेगी ? अथवा महाश्वेता उसे आश्वासन दिलाने हेतु फिर आ जाएगी ? अथवा मेरे साथ परिचय होने से उद्विग्न हुई वह प्राण-धारण करने हेतु उन दोनों की प्रार्थना स्वीकार कर लेगी ? अथवा क्या मैं उसके मुसकराते ओष्ठप्रान्तों, चपल पुतलियों तथा भयभीत मृग-शावक की-सी विशाल आखों वाले मुख को फिर देख पाऊँगा ?

वह (केयूरक) बोला—"देव, धैर्य रखकर वहाँ चलने का प्रयत्न कीजिए। समीप में रहने-वाली सखियों तथा भृत्य-वर्ग की बात रहने दीजिए, उसकी आपको देखने की इच्छा ही स्वेच्छा से पलक तक नहीं मारने देती। मिलन की आशासे ही हृदय टिका हुआ है। आहें ही मुख से निकलती रहती हैं। रोमाञ्च ही क्षणभर के लिए भी शरीर को नहीं छोड़ता। दिन-रात आँसू ही आखोंमें बने रहते हैं। निद्राक्षय ही रात में भी (उसपर) दृष्टि डाले हुए रहता है। बेचैनी ही उसका अकेला रहना नहीं सहती। प्राण ही कंठ से नहीं निकलते।"

रात्रावपि दत्तदृष्टिः अरतिरेव नैकाकिन्याः क्षाम्यत्यवस्थानम्। जीवितमेव कण्ठस्थानान्नापसरति।'

एवं वदन्तं तमादिदेश विश्रान्तये केयूरकम्। आत्मनापि गमनचिन्तां प्राविशत्। यदि तावदकथयित्वाऽनिपत्य चरणयोरनाघ्रातः शिरस्यगृहीताशीः सहसानुत्संकलित एव[1] तातेनाम्बया[2] वापक्रम्य गच्छामि ततो गतस्यापि मम कुतः सुखं किं श्रेयः कुतो वा फलावाप्तिः कीदृशी वा हृदयनिर्वृतिः। अथवा तिष्ठतु तावदियमुत्तरकालागामिनी चिन्ता। अपक्रम्य गत एव कथमहम्। तातेन दुस्तराहवार्णवोत्तरणमहासेतुबन्धादवन्ध्यवाञ्छितफलप्रदानकल्पद्रुमादहितविक्रान्तियशोनिष्क्रान्तिद्वारार्गलदण्डादशेषभुवनभवनोत्तम्भनस्तम्भात् स्वभुजादवारोप्य मय्येव राज्यभारः समारोपितः। तदनाख्याय पदमपि निर्याते

क्षयः रात्रौ निशायामपि दत्ता प्रेरिता दृष्टिः येन सः रात्रौ अपि निद्रातुं न ददातीत्यर्थः। अरतिः अनिर्वृतिः अधृतिरिति यावत् एकाकिन्या अद्वितीयायाः तस्याः अवस्थानं स्थितिं न क्षाम्यति सहते, सर्वदैवानिर्वृता तिष्ठतीत्यर्थः। कण्ठ-स्थानात् गल-प्रदेशात् जीवितं प्राणा एव न अपसरति गच्छति, प्राणाः कण्ठगताः सन्तीत्यर्थः।

एवम् उक्त-प्रकारेण वदन्तं कथयन्तं तं केयूरकं विश्रान्तये विश्रमितुम् आदिदेश आज्ञापितवान् चन्द्रापीड इति शेषः। आत्मनापि स्वयमपि च गमनस्य हेमकूटं प्रति प्रस्थानस्य चिन्तां प्राविशत् प्रवेशं कृतवान् गमनचिन्ताम् अकरोदित्यर्थः। अकथयित्वा अनिवेद्य गुरुजनाय तस्य चरणयोः पादयोः अनिपत्य प्रणामं न कृत्वेत्यर्थः, तेन शिरसि उत्तमाङ्गे अनाघ्रातः अचुम्बितः, न गृहीतः उपात्तः तस्य आशीः आशीर्वादः येन तथाभूतः सहसा सरसभम् तातेन पित्रा अम्बया मात्रा च अनुत्संकलितः अज्ञात एव अपक्रम्य पलायनं कृत्वा गच्छामि, ततः तर्हि गतस्यापि मम कुतः सुखं सौख्यम्, कुतः श्रेयः कल्याणम्, कुतो वा फलस्य अवाप्तिः प्राप्तिः कार्यसिद्धिरिति यावत् कीदृशी हृदयस्य निर्वृतिः सन्तुष्टिः। अथवा पक्षान्तर उत्तरकाले भविष्यत्काले आगामिनी आगमनशीला इयम् चिन्ता तिष्ठतु तावत् आस्ताम् तावत् अर्थात् भाविकालीनचिन्तायाः प्रश्न एवेदानीं नोदेति। अपक्रम्य पलाय्य अहं गत एव नास्मि। तातेन पित्रा। **दुस्तर०**—दुःखेन तरितुं योग्यो दुस्तरो य आहवः संग्राम एव अर्णवः समुद्रः तस्य उत्तरणे लंघने महान् चासौ सेतुबन्धः सेतुस्वरूपः तस्मात् रूपकम्, एतत् अन्यानि च 'स्वभुजात्' इत्यस्य विशेषणानि, **अवन्ध्य०**—अवन्ध्यश्चासौ वाञ्छित-फलस्य अभीष्टवस्तुनः प्रदाने वितरणे कल्पद्रुमः कल्पवृक्षः तस्मात्, रूपकम्, **अहित०**—अहितानां शत्रूणां यत् विक्रान्तेः विक्रमस्य यशः कीर्तिः तस्य निष्क्रान्तेः निर्गमनस्य द्वारस्य प्रतिहारस्य अर्गलदण्डः विष्कम्भः तस्मात् शत्रुपराक्रमयशः-प्रसररोधकादित्यर्थः, रूपकम्। **अशेष०**—अशेषं निखिलं भुवनं जगत् एव भवनं गृहं तस्य उत्तम्भने धारणे स्तम्भः स्थूणा तस्मात्, रूपकम्, स्वभुजात् निजबाहोः अवारोप्य उत्तार्य मयि मदुपरि एव राज्यस्य भारः राज्यधुरा

इस तरह कहते हुए उस केयूर को (चन्द्रापीड़ ने) विश्राम करनेकी आज्ञा दी। स्वयं वह जाने की चिन्तामें फँस गया। यदि (माता-पिता को) विना कहे, विना (उनके) चरण चरण छुए, (उनके द्वारा) विना सिर चूमे, विना उनकी आशीष लिये; माता-पिता द्वारा अज्ञात ही सहसा खिसककर चला जाता हूँ, तो गए हुए भी मुझे सुख कैसे ! मेरा क्या कल्याण मेरी क्या फल-प्राप्ति ! अथवा मेरे हृदय को कैसी शान्ति ! अथवा बाद को होने वाली चिन्ता की बात छोड़ो। मैं खिसककर (अभी) गया ही कहां हूँ ! पिताजीने दुर्लङ्घ्य रण-रूपी सागर पार करने हेतु पुल-स्वरूप, वान्छित फल देने हेतु अमोघ कल्पवृक्ष, शत्रुओंके शौर्यविषयक यश के निकलने के द्वार हेतु आगल तथा निखिल जगत-रूपी भवन को धारण करने हेतु स्तम्भरूपी अपने बाहुसे उतारकर राज्य भार मेरे ऊपर ही डाल रखा है। इसलिए (उन्हें) कहे विना मेरे

१. इव। २. अम्बयोक्तमपक्रम्य।

मय्यवश्यमपरिमितकरितुरगरथगमनसंक्षोभितधरातलैरालोलकदलिकाकाननाकुलीकृतभास्वद्गभस्तिभिरूर्ध्वंध्रियमाणधवलातपत्रमण्डलच्छायान्तरितवासरव्यतिकरैरतिबहलरेणूद्गमाविच्छेदापूरितभुवनकुहरैः पुरःप्रसृतजवनवाजिभिरनुसंतानलग्नवेतण्डप्रायसाधनैः श्रान्तैरपि बुभुक्षितैरप्यकृतगतिविलम्बैरा पयोधेरष्टाभ्योपि दिग्भ्यो राजभिरनुधावितव्यम्। तिष्ठन्तु तावत्सेवापरा राजानः। सुखपरिभुक्ताः प्रजा अपि तातस्नेहात्परित्यक्तपुत्रदाराः पृष्ठतो लगन्तीति मे चेतसि। अपि च तातस्यापि कोऽपरोस्ति यस्मिन्मदीयं स्नेहं संक्रमय्य मय्यपक्रान्ते यातु किमनेन गतेनागतेन वेत्यविनयकोपितोवष्टम्भं कृत्वा स्थास्यति। कस्य वापरस्य मुखमालोकयन्ती सुखायमानहृदया मत्प्रत्यानयनाय कृतार्त-

समारोपितः न्यस्तः, यौवराज्येऽभिषिच्य सकलराज्यभारः मय्यर्पित इत्यर्थः। तत् तस्मात् कारणात् अनाख्याय अनिवेद्य पित्रे पदमपि पादक्रममपि मयि निर्याते गते सति अवश्यं निश्चितम् **अपरि०**—अपरिमिताः असंख्याः ये करिणो हस्तिनश्च तुरगाः अश्वाश्च रथाः स्यन्दनाश्च तेषां गमनेन प्रचलनेन संक्षोभितं क्षोभं प्रापितं धरातलं भूतलं यैस्तथाभूतैः एतत् अन्यानि च तृतीयान्तानि राजभिः इत्येतस्य विशेषणानि, **आलोल०**—आलोलानि चञ्चलानि यानि कदलिकानां पताकानां वनानि समूहाः तैः आकुलीकृताः तिरोहिता भास्वतः सूर्यस्य गभस्तयः किरणाः यैस्तथाभूतैः, **ऊर्ध्वं०**—ऊर्ध्वम् उपरि ध्रियमाणानि धार्यमाणानि यानि धवलानि श्वेतानि आतपत्राणि छत्राणि तेषां मण्डलानां वृन्तानां छायया अनातपेन अन्तरितः तिरोहितः वासरस्य दिवसस्य व्यतिकरः सम्बन्धो यैस्तैः, **अति०**—अतिशयेन बहला घना ये रेणवः धूलयः तेषाम् उद्गमस्य प्रादुर्भावस्य अविच्छेदेन संतानेन आपूरितानि भरितानि भुवनस्य जगतः कुहराणि छिद्राणि यैस्तथाभूतैः, **पुरः०**—पुरः अग्र प्रसृताः गता जवनाः द्रुतगामिनः वाजिनः तुरगाः येषां तथाभूतैः, **अनु०**—अनुसन्तानम् क्रमानुसारेण लग्नाः सम्बद्धाः ये वेतण्डाः गजाः तेषां प्रायः बाहुल्येन साधनं सैन्यं येषां तथाभूतै-, श्रान्तैः अपि, बुभुक्षितैः क्षुधितैः अपि न कृतः विहितः गतौ गमनविषये विलम्बः मन्दता यैः तथाभूतैः, आपयोधेः समुद्रं मर्यादीकृत्य अष्टाभ्यः पूर्वादिभ्यः दिग्भ्यः दिशाभ्यः राजभिः नृपैः अनुधावितव्यम् मत्पृष्ठतः त्वरितं गन्तव्यम्। **तिष्ठ०**—सेवा सपर्या एव परं प्रधानं येषां तथाभूताः राजानः तिष्ठन्तु तावत् आसतां साम्प्रतम् अर्थात् तेषां प्रश्नः दूरे तिष्ठतु। सुखं सुखपूर्वकं परिभुक्तं भोजनावासादिभोगः भावे क्तः यासां तथाभूताः सुखेन जीवननिर्वाहं कुर्वत्यः इत्यर्थः प्रजाः प्रकृतयः अपि तातस्य पितुः तासु स्नेहात् प्रेम्णः कारणात् परित्यक्ताः उज्झिताः पुत्राः सुताः दाराः योषितश्च याभिस्ताः पृष्ठतः पृष्ठे (सप्तम्यां तसिल्) लगन्ति लगिष्यन्ति (भविष्यदर्थे लट्) इति मे चेतसि मे चिन्ता भवतीत्यर्थः। **अपि च**—तातस्य पितुः अपि अपरः अन्यः कः अस्ति न कोऽपीत्यर्थः यस्मिन् मदीयं मद्विषयकं स्नेहं प्रीतिं संक्रमय्य स्थानान्तरयित्वा मयि अपक्रान्ते गते सति यातु व्रजतु, अनेन चन्द्रापीडेन गतेन यातेन, अगतेन अयातेन वा किम् न किमप्यन्तरं भवतीति मनसि कृत्वा अविनयेन अकथयित्वा गमनरूपेण मम धाष्टर्येन

एक पग भी चलने पर असंख्य हाथी, घोड़े और रथों के चलने से धरातल को हिलाये फर्राती ध्वजाओं की झुरमुट से सूर्य-किरणों को रोके, ऊपर उठाये श्वेत छत्रों के घेरों की छायासे दिनकी सत्ता को छिपाये, उठती हुई घनी धूलियोंके समूहसे जगतके अन्तरालों को भरे, द्रुतगामी घोड़ों को आगे-आगे बढ़ाये, क्रमशः एक के पीछे एक लगे हाथियोंकी सेना को प्रायः साथ लिये, और थके-माँदे एवं भूखे होते हुए भी चलने में विलम्ब न किये, समुद्र से लेकर आठ दिशाओं के राजाओंने अवश्य मेरे पीछे-पीछे दौड़ पड़ना है। सेवा-परायण राजाओं की बात तो एक किनारे रही, सुखपूर्वक जीवनोपभोग कर रही प्रजा तक भी पिता के स्नेह के कारण पुत्रों और पत्नियों को छोड़े मेरे पीछे लग जाएँगे—यही सोच रहा हूँ। इसके अतिरिक्त पिताजी का भी दूसरा और कौन है, जिसपर मेरा स्नेह स्थानान्तरित करके मेरे (बिना पूछे) चले जानेपर वे 'जाने

प्रलापा न तातमेवाकुलीकरोत्यम्बा। ताते च पृष्ठतो लग्नेऽष्टादशद्वीपमालिनी मेदिन्येव लग्ना भवतीति। तदा मया क्व गतम्। क्व स्थितम्। क्व विश्रान्तम्। क्व यातम्। क्व भुक्तम्। क्वापसृतम्। क्वात्मा मया गोपायितव्यः। समासादितेन वात्र कथं मया वदनं दर्शयितव्यम्। पृष्टेन वा किमुत्तरं दातव्यम्। अथापि कथंचिद्दैवनियोगान्निःसृतोस्मि। तथाप्यनायासनीयं तातमेवं महीयस्यायासे तातप्रसादाददृष्टदुःखामम्बां वा निजापक्रमणशोकार्णवे पातयता किं कृतं भवत्यपुण्यवता। अपि च स बहुदिवसप्रवासोपतप्तः

कोपितः कोपं प्रापितः पितेति शेषः अवष्टम्भं स्थैर्यं धैर्यमिति यावत् कृत्वा स्थास्यति अवस्थानं करिष्यति। अथवा कस्य अपरस्य अन्यस्य सुखम् वदनम् आलोकयन्ती पश्यन्ती सुखायमानं सुखं=सुखयुक्तं भवतीति सुखायते ("सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते") हृदयं मनो यस्याः तथाभूता मम प्रत्यानयनाय प्रत्यावर्तनाय कृतः विहितः आर्तः पीडापूर्णः प्रलापः रोदनं यया सा अम्बा माता तातं पितरम् एव न आकुलीकरोति व्याकुलयिस्यति (भविष्यदर्थे लट्)। **ताते च**—ताते पितरि पृष्ठतः पृष्ठे (सप्तम्यर्थे तसिल्) लग्ने मदन्वेषणे प्रवृत्ते इत्यर्थः अष्टादशानां द्वीपानाम् अन्तरीपानां माला श्रेणी अस्याम् अस्तीति तथोक्ता मेदिनी पृथिवी एव लग्ना पित्रा सह मदन्वेषणपरा भवति भविष्यति (भविष्यदर्थे लट्) इति।

टिप्पणी—अष्टादश०—यदि महाद्वीपों को ले, तो पृथिवी 'सप्तद्वीपा' कही गई है। पुराणों के अनुसार सात महाद्वीप ये हैं—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक, और पुष्कर जिनके आधुनिक नाम एशिया, यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया उत्तरी अमेरीका दक्षिणी अमेरीका और ऐण्टार्कटिका हैं। छोटे-मोटे द्वीप ये बारह हैं—कुरु, चन्द्र, वरुण, सौम्य, कुमारिक, गभस्तिमान्, रमण्वान्, ताम्रपर्ण, कशेरू और इन्द्र इग्लैण्ड, न्यूजीलण्ड, लंका, फारमोसा, फिलिपाइन इण्डोनेशिया आदि इनके ही अन्तर्गत है। इस तरह 'अष्टादशद्वीपमालिनी मेदिनी' कही गई है।

तदा सकलजगति मदन्वेषणपरे सति तया क्व गतम् गन्तव्यम्, अत्र सर्वत्र निष्ठा विधिकृदन्तपरा बोध्या क्व स्थितम् स्थातव्यम्, विश्रान्तम् विश्रमितव्यम्, यातं गन्तव्यम्, भुक्तम् भोजनं कर्तव्यम्, अपसृतम् अपसर्तव्यम्, आत्मा गोपायितव्यः रक्षितव्यः निह्नोतव्य इत्यर्थः समासादितेन अन्विष्य प्राप्तेन वदनं मुखं दर्शयितव्यम् अन्येभ्यः प्रकाशयितव्यम् अथवा पृष्टेन पित्रा अनुयुक्तेन किम् उत्तरम् प्रतिवचनं दातव्यं देयम्। **अथापि**—कथंचिद् केनापि प्रकारेण दैवस्य भाग्यस्य नियोगात् वशात् निःसृतः आत्मानं गोपायित्वा निष्क्रान्तः अस्मि तथापि अनायासनीयम् आयासे (खेदे) न पातयितुं योग्यं तातं पितरम् एवं महीयसि अतिमहति आयासे खेदे, प्रसादात् अनुग्रहात् न दृष्टम् अवलोकितं दुःखं कष्टं यया तथाभूताम् अम्बां मातरं वा निजं स्वकीयं अपक्रमणं निर्गमनं तस्मात् यः शोकः दुःखं स एव अर्णवः समुद्रः तस्मिन् पातयता प्रक्षिपता अपुण्यवता पापिना मया किं कृतम् अनुष्ठितम् रूपकालङ्कारः। **अपि च—**बहवः अनेके च ते

दो, जाता है तो, उसके जाने अथवा न जानेसे क्या' इस तरह (सोच) मेरी धृष्टता से कुपित हुए स्थिर-चित्त रह सकें, अथवा ऐसा दूसरा कौन है, जिसका मुख देखती हुई प्रसन्न-चित्त हुई मां पिताजी को मुझे वापस लाने हेतु करुण क्रन्दन किये परेशान न करने पावे ? पिताजीके मेरी खोज हेतु निकलने पर अट्ठारह द्वीपों वाली पृथ्वी ही मेरे पीछे लग जाएगी। तब मैं कहाँ जाऊँ ! कहाँ ठहरूँ ? कहाँ विश्राम करूँ ? कहाँ खिसकूँ ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ भागूँ ? कहाँ अपने आपको छिपाऊँ ? यदि मैं ढूंढ लिया गया, तो कैसे मुँह दिखाऊँगा ? अथवा पूछे जाने पर क्या उत्तर दूँगा ? और यदि भाग्यवश किसी तरह बचकर निकल भी गया, तो दुःखित न किये जाने योग्य पिताजी को इस प्रकार महादुःखमें अथवा पिताजी की कृपा से कभी दुःख को न देखने वाली माता को मेरे भाग निकलने के कारण होनेवाले शोक-रूपी सागरमें डालते हुए मुझ पापी ने

स्कन्धावारोपि मेऽद्यापि न परापतति। तेनापरसंविधानादर्धपथादेव निवृत्य पुनर्धावितव्यम्। अथावेद्य तातस्याम्बायाश्च ताभ्यां च विसर्जितः संविधानेन गच्छामि। तत्रापि किं कथयामि। मम स्नेहेन दुःखिता गन्धर्वराजपुत्री कादम्बरी मामुद्दिश्य मकरकेतुनायास्यमाना दुःखं तिष्ठतीति। किं वा बलवान्मे तस्यामनुरागो नानया विनाहं प्राणान्संधारयामीति। किं तस्या मम च द्वयोरपि जीवितनिबन्धनहेतुभूतया महाश्वेतया तत्परिणयनाय मे संदिष्टमिति। किं वा तद्दुःखमपारयन्सोढुमयं केयूरकस्तद्भक्त्या मामानेतुमागत इति। अपरोपि वा कश्चिद् व्यपदेशो न शक्यत एव पुनर्गमनाय कर्तुम्। संप्रत्येव समधिकाद्वर्षत्रयात्प्रसाध्य वसुधां प्रत्यागतोस्मि। अद्यापि साधनमेव न परापतति। अकथयित्वा च गमनकारणं कथमात्मानं मोचयामि। कथं वा मुञ्चतु तातोऽम्बा वा। तत्सुहृत्साध्येस्मि-

दिवसाः दिनानि तान् यावत् यः प्रवासः देशान्तरावस्थानं तेन उपतप्तः खिन्नः स मे स्कन्धावारः सैन्य-समूहः अद्यापि न परापतति आगच्छति। तेन स्कन्धावारेण अपरम् अन्यत् यत् संविधानम् उपकल्पनं मदन्वषण-कार्यमित्यर्थः तस्मात् पथः अर्धम् इत्यर्धपथः तस्मात् एव निवृत्य प्रत्यावृत्य पुनः धावितव्यम् मदन्वेषाय त्वरितं गन्तव्यम्, निवर्तमाना मे सेनापि मदपक्रमणं श्रुत्वा मध्यमार्गादेव मदन्वेषणार्थं प्रधाविष्यतीत्यर्थः। **अथा०**—अथ विचारान्तरे यदि तातस्य पितुः अम्बायाः मातुश्च आवेद्य निवेद्य ताभ्यां विसर्जितः गमनाय अनुज्ञप्तः संविधानेन सम्यक् विधिना गच्छामि, तत्रापि किमिति कथयामि गमनस्य किं कारणं निगदिष्यामि? **मम**—स्नेहेन प्रीत्या दुःखिता दु खं प्राप्ता गन्धर्वराजस्य चित्ररथस्य पुत्री सुता कादम्बरी माम् उद्दिश्य लक्ष्यीकृत्य, मम कृते इत्यर्थः मकरः मत्स्यः केतुः ध्वजः यस्य तेन मदनेनेत्यर्थः आयास्यमाना पीडयमाना दुःखं दुःखेन यथा स्यात्तथा तिष्ठति स्थिताऽस्ति इति कथयामि इति सर्वत्रान्वयः अथवा तस्यां कादम्बर्यां मम बलवान् महान् अनुरागः प्रेम अस्ति, इति कथयामि। प्राणान् जीवितं संधारयामि रक्षामि इति। जीवितस्य निबन्धनं संधारणं तस्य हेतुभूतया कारणभूतया तथा कादम्बर्या सह परिणयनाय विवाहाय संदिष्टं संदेशः प्रहितः इति। तस्याः कादम्बर्याः दुखं सोढुं तितिक्षितुं अपारयन् अशक्नुवन् तस्याः कादम्बर्याः भक्त्या स्नेहेन आनेतुं तत्पार्श्वे प्रापयितुम् आगतः समायातः इति। अपरः अन्यः अपि व्यपदेशः व्याजः कर्तुं विधातुं न शक्यते पार्यते। सम्प्रति एव अधुनैव समधिकात् किञ्चिदधिकात् वर्षाणां त्रयात् त्रिभ्यः वर्षेभ्यः अनन्तरम् इत्यर्थः वसुधां महीं प्रसाध्य वशीकृत्य प्रत्यागतः प्रतिनिवृत्तः। **अद्यापि**—साधनं सैन्यम् एव न परापतति परागच्छति। गमनस्य हेमकूटे प्रस्थानस्य कारणं निदानम् अकथयित्वा अनिवेद्य आत्मानं कथं मोचयामि उन्मुक्तो भवामि तात-सकाशात् आत्मानं विसर्ज-

क्या किया? इसके अतिरिक्त, बहुत दिनों के प्रवास से खिन्न हुई मेरी सेना भी अभी नहीं पहुँची है। उसने भी (मेरा वृत्तान्त सुनकर) आधे रास्ते से ही मुड़कर फिर दूसरे कार्य (मेरी खोज) हेतु दौड़ पड़ना है। अथवा यदि पिताजी और माताजी को कहकर, उनसे विदा किया हुआ मैं जाने का प्रबन्ध करता हूँ, तो मैं उन्हें क्या कहकर जाऊँगा? क्या यह कहूँ कि मेरे प्रेम के कारण दुःखी गन्धर्वराज-पुत्री कादम्बरी मेरे खातिर काम-पीडित हुई कष्ट झेल रही है? अथवा यह कहूँ कि मेरा उसपर बड़ा अनुराग है (और) उसके बिना में जीवित नहीं रह सकता? अथवा क्या यह कहूँ कि उसके और मेरे—दोनों के प्राणोंकी रक्षा का कारण बनी हुई महाश्वेता ने उसके साथ विवाह हेतु संदेश भेजा है? अथवा यह कहूँ कि उस (कादम्बरी) का दुःख न सह सकता हुआ यह केयूरक उसके स्नेह से मुझे लेने आया है?" फिर वहाँ जाने हेतु दूसरा कोई बहाना भी तो नहीं बनाया जा सकता है। अभी-अभी मैं तीन वर्षोंसे कुछ अधिक समय बाद पृथिवी को जीतकर वापस आया हूँ। अभी तक सेना ही नहीं लौटी है। जानेका कारण कहे बिना मैं कैसे अपना छुटकारा पाऊँ? अथवा

ऽर्थेऽनर्थंपतितः किं करोम्येकाकी। वैशम्पायनोऽप्यसंनिहितः पार्श्वे मे। कं पृच्छामि। केन सह निरूपयामि। को मे समुपदिशतु। को वापरो मे निश्चयाधानं करोतु। कस्यापरस्य वा विवेकिनी प्रज्ञा। कस्य वान्यस्य श्रुतं श्रोतव्यम्। को वापरो वेत्ति वक्तुम्। कस्य वापरस्य मय्यसाधारणः स्नेहः। केन वापरेण सह समानदुःखो भवामि। को वापरो मयि दुःखिते दुःखी सुखिते सुखी। को वापरो रहस्यावेदनस्थानम्। कस्यापरस्योपरि कर्तव्यभारमवक्षिप्य निर्वृतात्मा तिष्ठामि। कस्य वापरस्य मत्कार्ये पर्याकुलता। को वापरो मयानुकोपितं तातमम्बां च परिबोध्य मां[1] नेतुं समर्थः।'

इत्येवं चिन्तयत एवास्य सा क्षपा दुःखदीर्घापि क्षयमगमत्। प्रातरेव च किंवदन्तीं शुश्राव यथा किल दशपुरं यावत्परागतः स्कन्धावार इति। तां च श्रुत्वा समुच्छ्व-

यामीत्यर्थः। मुञ्चतु मां त्यजतु। तत् तस्मात् कारणात् सुहृदा मित्रेण साध्ये निष्पाद्ये अस्मिन् अर्थे गमनरूपकार्ये अहम् अनर्थे कष्टे पतितः गतः एकाकी अद्वितीयः किं करोमि विदधामि? वैशम्पायनः शुकनास-पुत्रः ममाभिन्नहृदयः सुहृत् मे पार्श्वे असंनिहितः अनिकटस्थः। केन सह निरूपयामि विचारयामि? समुपदिशतु। निर्दिशतु। मे निश्चयस्य निर्णयस्य आधानं स्थापनां करोतु विदधातु कस्य वा अपरस्य अन्यस्य जनस्य विवेकिनी विवेकशालिनी प्रज्ञा मतिः अर्थात् मया गन्तव्यं, न वा गन्तव्यं, गन्तव्यं चेत् पित्रोरावेद्य गन्तव्यम्, अनावेद्य वा गन्तव्यमिति विविच्य कः प्राज्ञो मां निर्दिशेत्? कस्य वा जनस्य श्रुतं शास्त्रं ['श्रुतं शास्त्रावधृतयोः' इत्यमरः] श्रोतव्यम् आकर्णनीयम्? वेत्ति जानाति वक्तुम् भणितुम्। मयि असाधारणः अत्यधिक इत्यर्थः स्नेहः प्रीतिः। समानं दुःखं यस्य तथाभूतः केन सह दुःख-संविभागं कुर्यामित्यर्थः। रहस्यस्य गुह्यस्य आवेदनं कथनं तस्य स्थानं पात्रम्। कर्तव्यस्य कृत्यस्य भारं धुरम् अवक्षिप्य स्थापयित्वा निर्वृतः सुखित आत्मा यस्य तथाभूतः शान्तचित्त इति यावत्। पर्याकुलता व्याकुलता। अनुकोपितं कोपं प्रापितं परिबोध्य प्रतिबोधं दत्वा नेतुं प्रेयस्याः सविधे प्रापयितुम्। इति एवम् उक्तप्रकारेण चिन्तयतः चिन्तां कुर्वाणस्य एव अस्य चन्द्रापीडस्य सा क्षपा निशा दुःखेन दुःखकारणेन दीर्घा आयता अपि क्षयं समाप्तिम् अगमत् वीता इत्यर्थः।

प्रातरेव—प्रातः प्रभाते एव च किंवदन्तीं जनश्रुतिं शुश्राव श्रुतवान् चन्द्रापीड इति शेषः। यथा किलेति निश्चये स्कन्धावारः सेना दशपुरं यावत् पर्यन्तं परागतः समायातः। तां

पिताजी और माताजी कैसे मुझे छोड़ेंगे? इसलिए मित्र-साध्य इस मामले में मुसीबत में पड़ा हुआ मैं अकेला क्या करूँ? वैशम्पायन भी मेरे पास नहीं है। किसे पूछूँ? किसके साथ विचार करूँ? कौन मुझे उपदेश दे? कौन दूसरा ऐसा है जो मुझे निर्णय दे? अथवा दूसरा कौन है, जिसकी बुद्धि विवेक वाली हो? अथवा किस दूसरे का शास्त्रज्ञान मैं सुनूँ? अथवा कौन दूसरा (ऐसे मामले में) बोलना जानता है? अथवा ऐसा अन्य कौन है जिसका मुझपर असाधारण स्नेह हो? अथवा किस दूसरे को अपना दुःख बाँटूँ? अथवा कौन दूसरा मेरे दुःखी होने पर दुःखी और सुखी होने पर सुखी होने वाला है? अथवा कौन दूसरा व्यक्ति है जिसे रहस्य की बात कही जा सके? किस दूसरे के ऊपर अपना कर्तव्यभार सौंप कर मैं शान्तचित्त होऊँ? अथवा दूसरा ऐसा कौन है, जिसे मेरे कार्य के सम्बन्ध में व्याकुलता हो? अथवा ऐसा दूसरा कौन है जो मेरे द्वारा कुपित किये गए पिताजी और माताजी को समझा-बुझाकर मुझे ले जा सके?" इस तरह सोचते-सोचते ही उस (चन्द्रापीड) की दुःखके कारण लंबी बनी हुई भी रात बीत गई।

प्रातःकाल ही यह खबर उसके सुनने में आई कि सेना दशपुर तक आ गई है। और उसे सुनकर हृदयमें उल्लास भरे उसने सोचा—'ओह। मैं धन्य हूँ! ओह! मैं विधाता का कृपा-

१. मामानेतुं।

सितचेताश्चकार चेतसि । 'अहो धन्योस्मि । अहो विधेर्भगवतोनुग्राह्योस्मि । यस्य मेनुध्यानानन्तरमेव परागतो द्वितीयं हृदयं वैशम्पायनः' इति । प्रहर्षपरवशश्च प्रविशन्तमालोक्य दूरत एव कृतप्रणामं केयूरकमवादीत् । 'केयूरक, करतलवर्तिनीं सिद्धिमधुनावधारय । प्राप्तो वैशम्पायनः' इति ।

स तु तदाकर्ण्य गमनपरिलम्बकृतया चिन्तयान्तःशून्य एव भद्रकमापतितं महती हृदयनिर्वृतिर्देवस्य जातेत्यभिदधदेवोपसृत्योपविश्य पार्श्वे वैशम्पायनागमनालापमेवानुबध्य मुहूर्तमिव संज्ञोत्सारितसमस्तपरिजनं चन्द्रापीडं व्यज्ञपयत् । 'देव, सर्वतो विस्फुरन्ती तडिदिव बलाहकोन्नाहमुपारूढश्यामिका मेघलेखेव सलिलागमनमुपदर्शितपाण्डुच्छविः प्राचीव चन्द्रोदयं परिमलग्राहिणी मलयानिलागतिरिव वसन्तमासावतारमभ्यु[1]च्छ्रितमकरध्वजा मधुमासलक्ष्मीरिव पल्लवोद्भेदमुल्लसितराग[2]पल्लवोद्गतिरिव कुसुम-

किंवदन्तीं च श्रुत्वा समाकर्ण्य समुच्छ्वसितं समुल्लसितं चेतः स्वान्तं यस्य तथाभूतः सन् चेतसि चकार अचिन्तयत्—अहो इत्याश्चर्ये धन्यः कृतपुण्यः । भगवतः माहात्म्यवतः विधेः विधातुः अनुग्राह्यः कृपापात्रमित्यर्थः यस्य मे चन्द्रापीडस्य अनुध्यानात् अनुचिन्तनात् अनन्तरम् एव मम द्वितीयं हृदयं वैशम्पायनः मंत्रिपुत्रः परागतः प्राप्तः इति । प्रहर्षस्य प्रसन्नतायाः परवशः वशीभूतः प्रविशन्तम् प्रवेशं कुर्वन्तं दूरतः दूरात् एव कृतः प्रणामो येन तम् विहितनमस्कारं केयूरकम् आलोक्य दृष्ट्वा अवादीत् अकथयत्—"केयूरक ! करतले हस्ततले वर्तते इति वर्तिनीं गतां सिद्धिं कार्य-निष्पत्तिम् अधुना साम्प्रतम् अवधारय जानीहि । वैशम्पायनः प्राप्तः समागतः" **स तु**=स केयूरकस्तु तत् पूर्वोक्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा गमनं चन्द्रापीडस्य कादम्बर्याः समीपे प्रस्थाने विलम्बेन कालातिपातेन कृतया जनितया चिन्तया अन्तःशून्यः शून्यहृदय एव—'भद्रकं कल्याणम् आपतितं संजातम् । देवस्य भवतः महती विपुला हृदयस्य चित्तस्य निर्वृतिः शान्तिः संतुष्टिरिति यावत् जाता' इति अभिदधत् कथयन् एव उपसृत्य उपगम्य पार्श्वे चन्द्रापीडस्य समीपे उपविश्य स्थित्वा मुहूर्तमिव मुहूर्तमात्रं वैशम्पायनस्य यत् आगमनं तस्य आलापं संलापम् अनुबध्य सम्बध्य संज्ञया संकेतेन उत्सारितः दूरीकृतः समस्तः सकलः परिजनः भृत्यवर्गः येन तथाभूतं चन्द्रापीडं व्यज्ञपयत् विज्ञापितवान्— **देव**=हे देव, हे स्वामिन्, सर्वतः परितः स्फुरन्ती देदीप्यमाना तडित् विद्युत् बलाहकस्य मेघस्य उन्नाहम् वृद्धिम् इवेति सर्वेषामुपमानानाम् 'अवस्थैवेयमावेदयति निःसंशयं देवस्य गमनम्' इत्यनेन सम्बन्धः, उपारूढा प्रवृद्धा श्यामिका कालिमा यस्याः तथाभूता मेघस्य लेखा पंक्तिः सलिलस्य आगमनम् इव, उपदर्शिता प्रकटिता पाण्डुः श्वेत-पीता छविः कान्तिः यया तथाभूता प्राची पूर्वदिशा चन्द्रस्य उदयम् उद्गमन इव, परिमलं सौरभं गृह्णाति आदत्ते इति तथोक्ता मलयानिलस्य मलयाचलपवनस्य आगतिः आगमनं वसन्तस्य मधुमासस्य अवतारम् आगमनम् इव, अभ्युच्छ्रितः वृद्धिं प्रापितः मकरध्वजः कामः यया तथाभूता मधुमासस्य वसन्तस्य

पात्र हो गया हूँ (क्योंकि) मेरे याद करते ही मेरा दूसरा हृदय वैशम्पायन आ गया है !' हर्षमें फूला न समाता वह प्रवेश करते हुए और दूरसे ही प्रणाम किये केयूरक को देखकर बोला—'केयूरक ! बस, अब काम बना हुआ समझो । वैशम्पायन पहुँच गया है ।' यह सुनकर जाने में हो रहे विलम्ब के कारण उत्पन्न चिन्ता से शून्य-हृदय हुआ ही (केयूरक)—"बहुत अच्छा हुआ है । आपके हृदय को बड़ी शान्ति मिल गई है" यह कहता हुआ ही आकर, पास बैठ थोड़ी देर के लिए वैशम्पायन के आ जाने की बात छेड़ कर, इशारे से सभी नौकर-चाकरों को दूर किये चन्द्रापीड़ को बोला—'स्वामिन्, जिस प्रकार चारों ओर दमकती हुई बिजली मेघ के उभार की, कालिमा लिये मेघमाला जल के आगमन की, श्वेत छटा प्रकट किये पूर्व दिशा चन्द्रोदय की, सुगन्ध लिये मलयाचल-वायु का आना वसन्त-मास के आरम्भ की, काम को उद्दीपन किये

१. समुच्छ्वसितमकर । २. रागः पल्लवो- ।

निर्गमं विकसितकाशकुसुममञ्जरीव शरदारम्भावस्थैवेयमावेदयति निःसंशयं देवस्य गमनम्। अवश्यं च देवस्य देवीप्राप्तया भवितव्यम्। केन कदा वावलोकितो ज्योत्स्नारहितश्चन्द्रमाः। कमलाकरो वा मृणालिकया विना। उद्यानभागो वा लताशून्यः। अपि च न राजत एव सहकारकुसुमञ्जरीपरिग्रहमन्तरेण सर्वजनसुभगोपि कुसुममासः। असंभावितदानलेखालक्ष्मीकं वा वदनं यूथाधिपतेः। किं तु यावद्वैशम्पायनः परापतति यावच्च तेन सह गमनसंविधानं निरूपयति देवस्तावदवश्यं कालक्षेपेण भाव्यम्। यादृशी चाकालक्षमा देव्याः शरीरावस्था तादृशी निवेदितैव मया। सर्वोपि प्रत्याशया धार्यते। देव्यास्तु पुनर्देवदर्शनेद्य यावन्निष्प्रत्याशमेव हृदयं केनाश्वासनेन वर्तताम्। मद्वार्तोपलम्भादेत-

---

लक्ष्मीः श्रीः पल्लवानां किसलयानाम् उद्भेदम् उद्गमनम् इव, उल्लसितः उल्लासं प्राप्तः रागः रक्तिमा यस्यां तथाभूता पल्लवानां किसलयानाम् उद्गतिः उद्गमनं कुसुमानां पुष्पाणां निर्गमं निःसरणम् इव, विकसिता प्रफुल्लिता काशस्य इक्षुगन्धायाः कुसुमस्य पुष्पस्य मञ्जरी वल्लरी शरदः शरदृतोः आरम्भम् उपक्रमम् इव इयम् अवस्था स्थितिः एव निःसंशयं निःसन्देहं देवस्य भवतः गमनं कादम्बरीं प्रति यानम् आवेदयति सूचयति, सर्वत्रोपमा। देव्याः कादम्बर्याः प्राप्तिः समागमः तया भवितव्यम् भवान् कादम्बरीं प्राप्स्यतीत्यर्थः। केन=केन पुरुषेण कदा कस्मिन् काले वा चन्द्रमाः ज्योत्स्नया चन्द्रिकया रहितः विना अवलोकितः दृष्टः ? वा अथवा कमलाकरः सरोवरः मृणालिकया कमलिन्या विना (अवलोकितः ?) अथवा उद्यानस्य उपवनस्य भागः प्रदेशः लतया वल्ल्या शून्यः रहितः (अवलोकितः ?) नेति सर्वत्र काकुः। अपि च किंच, सहकारस्य आम्रस्य कुसुमस्य पुष्पस्य या मञ्जरी वल्लरी तस्याः परिग्रहम् स्वीकारम् अन्तरेण विना सर्वजनस्य सकललोकस्य सुभगः प्रियः अपि कुसुममासः वसन्तः न राजते शोभते एव,वा अथवा यूथस्य गजन्तसमूहस्य अधिपतिःइन्द्रःगजराज इत्यर्थःतस्य न संभाविता जनिता या दानस्य मदजल लेखा रेखा तस्याः लक्ष्मीः श्रीः यस्मिन् तथाभूतं वदनं मुखं न राजते एव इत्यस्य अन्वय उपरि सर्वत्र विनोक्तिसंकीर्णः दृष्टान्तः। किन्तु–किन्तु परन्तु यावत् यावताकालेन वैशम्पायनः परापतति आगच्छति, यावत् च तेन वैशम्पायनेन सह देवः भवान् गमनस्य यात्रायाः संविधानं प्रकारं व्यवस्थामित्यर्थः निरूपयति विचारयति, तावत् तावत्कालेन अवश्यं निश्चितं कालक्षेपेण विलंबेन भाव्यं भवितव्यम्। देव्याः कादम्बर्याः यादृशी च न कालं समयं क्षमते सहते इति तथोक्ता विलम्बासहेत्यर्थः शरीरस्य अवस्था दशा वर्तते इति शेषः तादृशी मया निवेदिता विज्ञापिता एव। सर्वः निखिलः जन अपि प्रत्याशया आशया धार्यते ध्रियते अर्थात् आशया एव सर्वजनो जीवति। देव्यास्तु—तु किन्तु देव्याः कादम्बर्याः पुनः देवस्य भवतः दर्शने अवलोकने मिलने इति यावत् अद्य यावत् एतद्दिनपर्यन्तं निर्गता प्रत्याशा दर्शनाशा यस्मात्तथाभूतम् निराशमिति यावत् एव हृदयं केन आश्वसनेन वर्तताम् कथं जीवेदित्यर्थ। मत्तः वार्तायाः समाचारस्य यत् भवान्

वसन्तमास की सुषमा किसलयों के फूट पड़ने की और लालिमा से उल्लसित पल्लवों का फूट पड़ना फूलों के निकलने की सूचना देते हैं, उसी तरह यह स्थिति भी निश्चय ही आपका जाना सूचित कर रही है। आपका अवश्य देवी कादम्बरी से मिलन हो जाना चाहिए। किसने कब चन्द्रमा को चाँदनी से रहित अथवा कमलाकर को कमलिनी से शून्य अथवा उद्यान-प्रदेश को लता से हीन देखा है ? इसके अतिरिक्त, सब लोगों को प्रिय लगता हुआ भी वसन्त आम्र-पुष्पकी मंजरी को अपनाए बिना शोभित होता ही नहीं, अथवा गजराज का मुख मद-जल की रेखा की शोभा लिये बिना चमकता ही नहीं। किन्तु जब तक वैशम्पायन आते हैं और जबतक उनके साथ आप जाने की व्यवस्था पर विचार करते हैं, तब तक अवश्य (कुछ) समय लग जाना है। और देवी कादम्बरी की विलम्ब न सहने योग्य जैसी दशा शरीर की है, वह मैं निवेदन कर ही चुका हूँ। सभी (लोग) आशा पर टिके रहते हैं। लेकिन आपके दर्शन के सम्बन्धमें आज तक निराश ही

दुत्प[1]त्स्यते चेतसि यथास्ति कार्यं मे जीवितेन दुःखान्यपि सहन्ती धारयाम्येतदिति। अतो विज्ञापयामि। चेतसा त्वग्रतो गत एव देवः शरीरेणाप्यनुपदमुच्चलित एव। किमपरं मयात्र स्थितेनापि साधनीयम्। तद्देवागमनोत्सवावेदनाय गमनानुज्ञया प्रसादं क्रियमाणमिच्छति मे प्रणयप्रसाददुर्ललितं हृदयमिदानीमेव।'

इति विज्ञापिते केयूरकेण अन्तःपरितोषविकसितया विकचनीलोत्पलपुञ्जमालिकयेव दृष्टया दर्शितप्रसादश्चन्द्रापीडः प्रत्युवाच। 'किमुच्यते। कस्यापरस्येदृशोस्मद्दुःखासहिष्णुरनपेक्षितस्वशरीरशक्तिरुत्साहः। कस्यापरस्येदृशी देशकालज्ञता। को वापरोस्मास्वेवं

आगच्छतीति उपलंभात् ज्ञानात् चेतसि तस्याः मनसि उत्पत्स्यते जनिष्यते विचार इतिशेषः यथा यत् मम जीवितेन कार्यं प्रयोजनम् अस्तीति अर्थात् मया जीवितव्यम् अस्ति, दुःखानि कष्टानि सहन्ती सहमाना (सह् धातोः आत्मनेपदत्वात् अत्र शतृ-प्रत्ययश्चिन्त्यः) धारयामि एतत् जीवितम् भ्रिये इत्यर्थः इति। अतः विज्ञापयामि निवेदयामि चेतसा हृदयेन तु देवः भवान् अग्रतः पुरतः गत एव अर्थात् हृदयं भवतः तत्र पूर्वमेव गतमस्ति, शरीरेण देहेन अपि अनुपदम् पश्चात् त्वरितमेव उच्चलितः गत एव शरीरमपि गमिष्यतीत्यर्थः। मया केयूरकेण अत्र भवत्समीपे स्थितेन अवस्थितेन अपि किम् अपरं पूर्वोक्तात् अन्यत् साधनीयं करणीयम् न किमपीति काकुः। तत् तस्मात् देवस्य भवतः यत् आगमनम् एव उत्सवः महः आनन्द इत्यर्थः तस्य आवेदनाय विज्ञापनाय प्रणयेन भवतः स्नेहेन यः प्रसादः प्रसन्नता तेन दुर्ललितं धृष्टं मे मम हृदयम् इदानीं संप्रति एव गमनस्य प्रयाणस्य अनुज्ञया अनुमत्या क्रियमाणं विधीयमानं प्रसादं कृपाम् इच्छति अभिलषति।

इति—केयूरकेण इति एवं विज्ञापिते आवेदिते अन्तः हृदये यः परितोषः सन्तुष्टिः तेन विकसितया विनिद्रया विकचानि विकसितानि यानि नीलोत्पलानि नीलकमलानि तेषां यः पुञ्जः समूहः तस्य माला एव मालिका स्रक् तया इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दृष्टया दृशा दर्शितः प्रकटितः प्रसादः प्रसन्नता येन तथाभूतः चन्द्रापीडः प्रत्युवाच प्रत्युत्तरमदात्—'किम् उच्यते कथ्यते। कस्य अपरस्य अन्यस्य जनस्य ईदृश एतादृशः अस्माकं यत् दुखं तस्य असहिष्णुः अस्माकं ता इष्टा स्वस्य निजस्य शरीरस्य शक्तिः सामर्थ्यं यस्मिन् तथाभूतः उत्साहः कार्यव्यापृतता अस्ति ? स्वशरीरबलमनपेक्ष्य कष्टसहिष्णुः उत्साहः त्वदतिरिक्ते जने नास्तीत्यर्थः। कस्य अपरस्य जनस्य ईदृशी एतादृशी देशः प्रदेशः कालः समयश्च तौ जानातीति ज्ञः तस्य भावः तत्ता ? न कस्यापीत्यर्थः। अपरः कः जनः अस्मासु मयीत्यर्थः निर्गतः व्याजः कपटं यस्मात् तथाभूता भक्तिः समासक्तिः यस्मिन् तथाभूतः अस्तीति शेषः। तत् तस्मात् कारणात् साधु सम्यक् यथा स्यात्तथा त्वया

हुआ देवी कादम्बरी का हृदय किस तरह जीए ? मुझसे (आपके आनेका) समाचार जानने से (उसके) मन में यह (विचार) हो जाएगा कि मेरे प्राणोंकी आवश्यकता है, दुःख झेलती हुई भी उन्हें रखूँगी। इसलिए निवेदन है कि हृदयसे तो आप पहले गए ही हुए हैं, शरीरसे भी पीछे शीघ्र चले ही आएंगे। मुझे यहाँ रहकर और क्या करना है ? इसलिए (आपके) स्नेह से ढीठ बना हुआ मेरा हृदय (आपके) आनेकी खुशी (का समाचार) सूचित करने हेतु अभी जानेकी आज्ञा द्वारा की जाने वाली कृपा चाह रहा है।

केयूरक के इस तरह निवेदन करनेपर, विकसित नीलोत्पल-समूह की माला-जैसी भीतरी सन्तोषके कारण विकसित दृष्टिसे प्रसन्नता दिखाये चन्द्रापीड़ ने उत्तर दिया—'क्या कहूँ, ऐसा दूसरा कौन है, जिसमें हमारे दुःखको सहन करने तथा अपने शरीरकी शक्ति की पर्वाह न करने वाला उत्साह हो ? ऐसी देश और कालकी परख और किस दूसरे में है ? अथवा ऐसा दूसरा कौन है, जिसमें हमारे प्रति निष्कपट भक्ति हो ? अतः तुमने ठीक ही सोचा है। देवी कादम्बरी

१. उपपत्स्यते।

निर्व्याजभक्तिः। तत्साधु चिन्तितम्। गम्यतां देव्याः प्राणसंधारणाय। मदागमनप्रत्ययार्थं च पत्रलेखाप्यग्रतस्त्वयैव सह यातु देवीपादमूलम्। इयमपि प्रसादभूमिरेव देव्याः। इमामप्यालोक्य कियत्यपि धृतिरवश्यमुत्पद्यत इति मे चेतसि। अपि चास्या अपि देव्यामस्त्येव स्नेहो भक्तिश्च। इत्यभिधाय पृष्ठतः समुपविष्टामेवं नेति पत्रलेखामप्राक्षीत्। सा तु किंचिदवनतमुखी 'निजाज्ञाक्षराणि प्रयच्छतु देवः' इति व्यज्ञपयत्। कृतप्रस्थितिनिश्चयायां च तस्यां मेघनादाह्वानाय प्रतीहारीमादिदेश। आदेशानन्तरमेवागतं च दूरतः प्रणतमाज्ञाप्रतीक्षं स्वयमेवाहूय सोपग्रहमादिदेश। 'मेघनाद यस्यां भूमौ पत्रलेखानयनाय पूर्वं मया त्वं स्थापितस्तां भूमिं यावत्पत्रलेखामादाय केयूरकेण सहाग्रतो गच्छ। अहमपि वैशम्पायनमालोक्यानुपदमेव ते तुरंगमैः परागतः।' इत्यादिश्य 'यदाज्ञापयति देव' इति कृतनमस्कृतौ त्वरितगमनसंविधानाय निष्क्रान्ते मेघनादे 'देव किमतः परं विलम्बेन'

चिन्तितं विचारितम्। देव्याः कादम्बर्याः प्राणानाम् जीवितस्य संधारणाय धृतये गम्यताम् व्रज्यताम्, मम तत्र आगमनस्य प्रत्ययायेति प्रत्ययार्थं विश्वासार्थं पत्रलेखा अपि त्वया एव सह देव्याः कादम्बर्याः पादयोः चरणयोः मूलं समीपमित्यर्थः अग्रतः पुरतः यातु गच्छतु, इयम् पत्रलेखा अपि देव्याः कादम्बर्याः प्रसादस्य कृपायाः भूमिः पात्रम् एवास्ति। इमाम् पत्रलेखाम् अपि आलोक्य दृष्ट्वा कियती कियन्मात्रा न तु समग्रा धृतिः धैर्यम् कादम्बर्या इति शेषः अवश्यं निश्चितम् उत्पद्यते उत्पत्स्यते (भविष्यदर्थे लट्) इति मे मम चेतसि, वर्तते इति शेषः मम विचारोऽस्तीत्यर्थः। **अपि च—**अपि च किंच अस्याः पत्रलेखायाः अपि देव्यां कादम्बर्यां स्नेहः प्रीतिः, भक्तिः आराध्यत्वेन समासक्तिः. च अस्ति एव' इति अभिधाय कथयित्वा पृष्ठतः पृष्ठभागे (सार्वविभक्तिकस्तसिल्) उपविष्टाम् आसीनाम् 'एवं न ? एतत् न सम्यक् किम्' इति अप्राक्षीत् पृष्टवान्। सा पत्रलेखा तु किञ्चित् किमपि यथा स्यात्तथा अवनतं नम्रं मुखं वदनं यस्याः तथाभूता सती 'निजा स्वकीया या आज्ञा आदेशः तस्या अक्षराणि वचनानि देवः स्वामी प्रयच्छत् ददातु' इति व्यज्ञपयत् निवेदितवती। तस्यां पत्रलेखायां च कृतः विहितः प्रस्थितेः प्रस्थानस्य निश्चयः निर्णयः यया तथाभूतायां सत्यां मेघनादस्य एतदाख्यस्य सेनापतिपुत्रस्य आह्वानाय आकारणाय प्रतीहारीं द्वारपालिकाम् आदिदेश आज्ञापयत्। आदेशस्य अनन्तरम् पश्चात् एव च आगतम् आयातं, दूरतः दूरात् कृतः विहितः प्रणामः नमस्कारः येन तथाभूतम् आज्ञायाः आदेशस्य प्रतीक्षा प्रतिपालनं यस्मिन् तथाभूतं स्वयम् आत्मना एव आहूय आकार्य उपग्रहः अनुग्रहः आदर इति यावत् तेन सहितं यथा स्यात्तथा आदिदेश आज्ञां ददौ—'मेघनाद, यस्यां भूमौ स्थाने पत्रलेखायाः आनयनाय ताम् आनेतुं मया त्वं स्थापितः न्यस्तः, तां भूमिं' यावत् पर्यन्तम् एव पत्रलेखाम् आदाय गृहीत्वा अग्रतः पुरस्तात् गच्छ व्रज। वैशम्पायनम् आलोक्य दृष्ट्वा ते तव अनुपदम् अनुपादन्यासम् पश्चात् एवेत्यर्थः तुरङ्गमैः अश्वैः परागतः आग-

के प्राणों की रक्षा हेतु जाइए और मेरे आने का विश्वास दिलाने के लिए तुम्हारे साथ ही पत्रलेखा भी देवी की चरण-सेवा में पहले चली जाय। यह भी देवी की कृपा-पात्र है। इसे देखकर भी अवश्य कुछ धैर्य उपजेगा—ऐसा मेरा विचार है। इसके अतिरिक्त इसकी भी देवी कादम्बरी के प्रति स्नेह और भक्ति है यह कहकर पीछे ही बैठी उस पत्रलेखाको (चन्द्रापीड) पूछ बैठा कि "यह ठीक नहीं क्या ?' वह कुछ मुख नीचे किये निवेदन कर बैठी—'स्वामी अपनी आज्ञा के शब्द दीजिएगा'। और उसके प्रस्थान का निश्चय कर लेनेपर मेघनाद को बुलाने हेतु प्रतीहारी को आदेश दिया। आदेश के बाद ही आये हुए, दूरसे प्रणाम किये, आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े उसे स्वयमेव बुलाकर सानुग्रह आज्ञा दी—'मेघनाद, जिस स्थान पर पत्रलेखा को लाने हेतु मैंने तुम्हें रख छोड़ा था, उसी स्थान तक पत्रलेखा को लेकर केयूरक के साथ तुम आगे-आगे जाओ, मैं भी वैशम्पायन से मिलकर तुम्हारे पीछे-पीछे ही घोड़ों से आया'। इस तरह आज्ञा देकर 'जैसी

इत्यभिधाय मेघनादनिर्गमनानन्तरं गमनप्रणामोत्थितं केयूरकं सस्नेहमाहूय दृष्ट्या पुनः पुनरालोक्य परिष्वज्य च सपुलकाभ्यां दोर्भ्यामात्मकर्णादपनीयानेकवर्णरुचिरं संदेशमिव कर्णाभरणमस्य कर्णे कृत्वा कण्ठागतबाष्पगद्गदिकागृह्यमाणाक्षरमवादीत्। 'केयूरक, त्वया तु मे देवीसंदेशो नानीत एव। तत्किं तव हस्ते तदनुरूपं प्रतिसंदिशाम्यपूर्वम्। विज्ञापयितव्या देवी। तत्रापि किमलीकलज्जाजालभारोद्वहनेन त्वामायासयामि। यात्येव पत्रलेखा देवीपादमूलम्। इयं विज्ञापयिष्यति।' इत्यभिदधदेवातर्कितोपनतात्मविरहपीडाम्, अमङ्गलशङ्कया कृतयत्नामपि बाष्पवेगमपारयन्तीं संधारयितुम्, उत्प्लुताबद्धलक्ष्यशून्यदृष्टिसचारणां चरणपाताभिमुखीं पत्रलेखां प्रणयेनाभिमुखो भूत्वा बद्धाञ्जलिरभाषत—

च्छामि इति आदिश्य आज्ञाप्य 'यत् आज्ञापयति आदिशति देवः स्वामी' इति कृता नमस्कृतिः नमस्कारः येन तथाभूते त्वरितं द्रुतं यत् गमनं प्रस्थानं तस्य संविधानाय प्रबन्धाय मेघनादे निष्क्रान्ते निर्गते सति, अतःपरम् अधिकमित्यर्थः विलम्बेन कालातिपातेन किम् विलम्बो न कर्त्तव्य इत्यर्थः इति अभिधाय कथयित्वा मेघनादस्य निर्गमनात् वहिर्गमनात् अनन्तरं पश्चात् गमनाय प्रस्थानाय यः प्रणामः नमस्कारः तस्मै उत्थितं केयूरकं सस्नेहं स्नेहपूर्वकम् आहूय आकार्य बाष्पेण अश्रुजलेन सहितया दृष्ट्या दृशा पुनःपुनः मुहुर्मुहुः आलोक्य वीक्ष्य सपुलकाभ्यां रोमाञ्चसहिताभ्यां दोर्भ्यां भुजाभ्याम् परिष्वज्य आश्लिष्य आत्मनः स्वस्य कर्णात् श्रोत्रात् अनेके ये वर्णाः अक्षराणि तैः रुचिरं मनोज्ञं संदेशं वाचिकमिव अनेकैः वर्णैः नीलपीतादिरूपैः रुचिरं कर्णाभरणं श्रोत्रभूषणम् अपनीय अवतार्य अस्य केयूरकस्य कर्णे श्रोत्रे कृत्वा न्यस्य कण्ठे गलप्रदेशे आगतः यः बाष्पः अश्रु तस्मात् गद्गदिका गद्गदेति ध्वनिः अश्रुभिः कण्ठावरोध इत्यर्थः तया गृह्यमाणानि उच्चार्यमाणानि अथवा रुध्यमानानि अक्षराणि वर्णाः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवादीत् अकथयत् **केयूरक**=त्वया तु देव्याः कादम्बर्याः सन्देशः वाचिकं न आनीतः प्रापितः एव। तत् तस्मात् कारणात् तव हस्ते पार्श्वे इत्यर्थः तस्याः कादम्बर्याः अनुरूपं योग्यम् अपूर्वं नवीनं किं प्रतिसंदिशामि प्रतिसंदेशं ददामि। देवी कादम्बरी विज्ञापयितव्या बोधयितव्या। तत्र अपि अपूर्वस्य प्रतिसंदेशस्य विज्ञापने अलीका मिथ्या या लज्जा त्रपा तस्याः यत् जालं समूहः तस्य भारस्य धुरः उद्वहनेन धारणेन त्वां किम् कस्तात् आयासयामि खेदं प्रापयामि। पत्रलेखा देव्याः पाद-मूलं समीपमित्यर्थः याति गच्छति एव। इयं पत्रलेखा विज्ञापयिष्यति कथयिष्यतीत्यर्थः इति अभिदधत् कथयन् चन्द्रापीडः न तर्कितं चिन्तितं यथा स्यात्तथा उपनतः प्राप्तः अकस्मादागत इत्यर्थः आत्मनः स्वस्य चन्द्रापीडस्येत्यर्थः यः विरह विच्छेदः तस्य पीडा व्यथा यस्याः तथाभूताम्, अमङ्गलस्य अशुभस्य शङ्कया भयेन अर्थात् रोदनं खलु अमङ्गलं भवतीति शङ्कित्वा कृतः प्रयत्नः यया तथाभूताम् अपि बाष्पस्य अश्रुजलस्य वेगं प्रवाहमित्यर्थः संधारयितुं रोद्धुम् अपारयन्तीम् अशक्नुवानाम् उत्प्लुता अश्रुपूर्णा च न बद्धं लक्षं लक्ष्यं विषय इति यावत् यया तथाभूता च अतएव शून्या रिक्ता या दृष्टिः दृक् तस्याः सञ्चारणं यस्याः तथाभूताम्, चरणयोः

स्वामी की आज्ञा' इस प्रकार नमस्कार किये, शीघ्र प्रस्थान की तय्यारी के लिए मेघनाद के बाहर चले जानेपर—'स्वामिन् अधिक विलम्ब से क्या' यह कहकर मेघनादके चले जानेके बाद प्रस्थान के लिए प्रणाम करने को खड़े उठे हुए केयूरक को स्नेह-पूर्वक बुलाकर, छलछलाती दृष्टि से बार-बार देखकर, रोमाञ्चित भुजाओं से गले लगाकर, अनेक वर्णों (अक्षरों) से रमणीय संदेश जैसे अनेक वर्णों (रंगों) से रमणीय कर्णाभरण अपने कानसे उतार उसके कानमें डालकर गलेमें आये हुए आँसुओंके कारण गद्गद और रुकते-रुकते अक्षरोंसे बोला—'केयूरक ? तुम देवी कादम्बरी का संदेश नहीं लाए अतः तुम्हारे हाथ में उसके अनुरूप नया प्रतिसंदेश क्या दूँ ? कादम्बरी को समझा देना। तिसपर भी योंही लज्जा की ढेर-सारी बातोंका बोझ ले जानेका कष्ट तुम्हें क्यों दूँ ? पत्रलेखा देवी को सेवामें जा ही रही है। यह (सब कुछ) बता देगी' इस तरह कहता हुआ चन्द्रापीड अचानक आ पड़े अपने विछोह से व्यथित, अमंगलकी शंकासे प्रयत्न

'पत्रलेखे, साञ्जलिबन्धेन शिरसा प्रणम्य मदीयेन विज्ञाप्या देवी कादम्बरी। येन सर्वखलानां धुरि लेखनीयेन तथा प्रथमदर्शनेपि वत्सलत्वात्स्वभावस्य दर्शितप्रसादातिशयां देवीं प्रणामेनाप्यसंभाव्य गच्छता प्रज्ञा जडतया ज्ञानं मौढ्येन धीरता तारल्येन स्नेहलता रौक्ष्येण गौरवं लघुतया प्रियंवदता पारुष्येण मृदुहृदयता नैष्ठुर्येण स्थैर्यं चञ्चलतया दयालुता नृशंसत्वेनार्जवं मायाजालेन सत्यवादितालीककाकुसंपादनेन दृढभक्तितावज्ञानेन पेशलता कौटिल्येन लज्जा धाष्टर्येनौदार्यं क्षुद्रतया दाक्षिण्यममहानुभावतया प्रश्रयोभिमानेन कृतज्ञता कृतघ्नतया शीलं पौरोभाग्येण सर्वगुणा एव दोषैः परिवर्तिताः[1] स कथमिवापरं गुणमवलम्ब्य पुनः परिग्रहाय विज्ञापयतु। केन चाङ्गीकरोतु देवी। किमुपदर्शि-

पादयोः चन्द्रापीडस्यति शेषः पातः पतनं प्रणमनमित्यर्थस्तंप्रति अभिमुखीं प्रवणाम्, पत्रलेखां प्रणयेन स्नेहेन अभिमुखः, संमुखः भूत्वा बद्धः अञ्जलिः करसंपुटः येन तथाभूतः सन् अभाषत अवदत्— पत्रलेखे—अञ्जलिबन्धेन सहितेन मदीयेन मम मूर्ध्ना प्रणम्य नमस्कृत्य विज्ञाप्या निवेदनीया— "सर्वे च ते खलाः दुर्जनाः तेषां धुरि अग्रे लेखनीयेन गणनीयेन तथा प्रथमं च तत् दर्शनं साक्षात्कारः तस्मिन् अपि स्वभावस्य प्रकृतेः वत्सलत्वात् वात्सल्यपूर्णत्वात् दर्शितः प्रकटितः प्रसादस्य प्रसन्नतायाः अतिशयः आधिक्यं यया तथाभूतां देवीं भवतीं प्रणामेन अभिवादनेन अपि असंभाव्य असंमान्य गच्छता व्रजता येन मया चन्द्रापीडेन प्रज्ञा प्रतिभा जडतया मूर्खतया परिवर्तिता इत्यन्वयः ज्ञानं मौढ्येन मूढतया धीरता धैर्यं तारल्येन तरलतया, स्नेहः अस्यातीति स्नेहलः (मतुबर्थीयो लच्) तस्य भावः तत्ता स्नेहशालितेत्यर्थः रौक्ष्येण सूक्ष्मतया, गौरवं गुरुता लघुतया लाघवेन, प्रियंवदता मधुरभाषिता पारुष्येण काठिन्येन मृदु कोमलं हृदयं यस्याः तस्याः भावः तत्ता कोमल-चित्ततेत्यर्थः नैष्ठुर्येण निष्ठुरतया कठोर-हृदयतयेत्यर्थः, स्थैर्यं स्थिरता चञ्चलतया चाञ्चल्येन, दयालुता दयाशीलता नृंशंसत्वेन हिंसकत्वेन, आर्जवं सरलता मायाजालेन छलप्रपञ्चेन, सत्यवादिता सत्यभाषित्वम् अलीका असत्या या काकुः कण्ठध्वनिविशेषः वक्रोक्तिरिति यावत् तस्याः संपादनेन निष्पादनेन; दृढा स्थिरा भक्तिः आराध्यत्वेन समासक्तिः यस्य तस्य भावः तत्ता अवज्ञानेन अवमाननेन, पेशलता कोमलता कोमलस्वभावतेत्यर्थः कौटिल्येन कुटिलस्वभावत्वेन, लज्जा त्रपा धाष्टर्येन धृष्टतया, औदार्यम् उदारता क्षुद्रतया तुच्छतया, दाक्षिण्यं सरलता ('दक्षिणे सरलोदारौ' इत्यमरः) अमहानुभावतया क्षुद्रहृदयतया, प्रश्रयः विनयः अभिमानेन अहंभावेन, कृतज्ञता कृतवेदिता कृतघ्नतया अकृतज्ञत्वेन, शीले सदाचारः पौरोभाग्येण दोषैकदृक्तया (दोषैकदृक् पुरोभागी' इत्यमरः) सर्वे च ते गुणाः एव दोषैः अवगुणैः, परिवर्तिताः रूपान्तरीकृताः गुणाः दोषत्वमापादिता इति यावत्, स चन्द्रापीडः अपरम् कम् गुणम् अवलम्ब्य

करने पर भी अश्रु-प्रवाह न रोक सकती हुई, छलछलाती, विना लक्ष्य के, सूनी दृष्टि को घुमाती चरणों पर गिरने को झुकी हुई पत्रलेखा की ओर मुंह करके अञ्जलि बाँधे बोला—'पत्रलेखा। मेरी ओर से अञ्जलि-बद्ध सिर से प्रणाम करके देवी कादम्बरी से निवेदन करना—'सभी दुर्जनों में आगे गिने जाने वाले, तथा स्नेहिल स्वभाव वाली होने के कारण पहले-पहल साक्षात्कार में ही अत्यधिक प्रसन्नता दिखाने वाली आप को प्रणाम करने की शिष्टता तक न दिखाकर जाते हुए जिस (चन्द्रापीड़) ने समझदारी को मूर्खता में, ज्ञान को मूढ़ता में, धीरता को चंचलता में, स्नेहशीलता को रूखेपन में, गौरव को तुच्छता में, मधुरभाषिता को कठोरता में, कोमल-हृदयता को निष्ठुरता में, स्थिरता को चापल्य में, दयालुता को निर्दयता में, सीधेपन को कपट-जाल में, सत्यवादिता को झूठी टेढ़ी-मेढ़ी बातों में, स्थिर भक्तिभाव को अपमान में, स्वभाव की कोमलता को कुटिलता में, लज्जा को धृष्टता में, उदारता को क्षुद्रता में, सरलता को हल्केपन में, विनय को अभिमान में, कृतज्ञता को कृतघ्नता में, तथा शील को छिद्रान्वेषिता में—सभी गुणों को

१. परिवृत्ताः।

तालीकात्मार्पणेन न प्रतारितं देव्या हृदयमिति। किं प्रकृतिपेशलं हृदयमपहृत्य नापक्रान्तोस्मीति। किमियं प्राणसंदेहकारिणी निष्करुणेन शरीरावस्था नोपेक्षितेति। किमहमस्या न कारणमिति। एतत्सर्वदोषाश्रयेणाप्यनुवृत्त्या चरणावाराधिताविति वा। तदेवमात्मना सर्वगुणहीनस्यापि मे देवीगुणा एवालम्बनम्। इयमेव ते स्वभावसरसा दूरस्थमपि मदनहुतभुजा दह्यमानं रक्षत्येव सरलता। मुहुर्मुहुराह्वयत्येव स्नेहलता। आनयत्येव स्थिरप्रतिज्ञता। ढौकयत्येव दक्षिणता। अभिपद्यत एव वत्सलता। चरणपतितं न निर्भर्त्सयत्येव मृदुहृदयता। उत्थाप्य संभावयत्येव महानुभावता। आलपत्येव प्रियवादिता। ददात्येव हृदयेऽवकाशमत्युदारता। यच्च तथापि गत्वा निर्लज्जहृदयः पुनर्वदनदर्शनदान-

---

आश्रित्य पुनः द्वितीयवारं परिग्रहाय स्वीकाराय आत्मीयीकरणायेति यावत् विज्ञापयतु निवेदयतु, केन गुणेन च देवी भवती अङ्गीकरोतु मां प्रियत्वेन स्वीकरोतु। **किमुप०**=उपदर्शितं प्रकटितम् अलीकं मिथ्या आत्मार्पणम् आत्मसमर्पणं येन तथाभूतेन मया देव्याः भवत्याः हृदयं हृत् न प्रतारितं वञ्चितं किम्? प्रकृत्या स्वभावतः पेशलं सुकुमारं देव्या हृदयम् अपहृत्य आकृष्य न अपक्रान्तः आगतः अस्मि किम्? इयम् प्राणानां जीवितस्य सन्देहं संशयं करोतीति तथोक्ता शरीरस्य अवस्था दशा निष्करुणेन निष्कृपेण निष्ठुरेणेति यावत् मया न उपेक्षिता अवगणिता किम्? अहम् अस्याः अवस्थायाः भवत्याः शरीरदशायाः कारणं निदानं नास्मि किम्? अपि तु अस्म्येवेति सर्वत्र काकुः। एते उपर्युक्ताः च ते सर्वे दोषाः अवगुणा तेषाम् आश्रयेण आधारभूतेन अपि मया अनुवृत्त्या आनुकूल्येन चरणौ भवत्याः पादौ आराधितौ सेवितौ। तत् तस्मात् एवम् आत्मना स्वयं सर्वे च ते गुणाः दयादाक्षिण्यादयः तैः हीनस्य रहितस्य मे मम चन्द्रापीडस्य देव्याः भवत्याः गुणा एव अवलम्बनम् आश्रयः अस्तीति शेषः। **इयमेव**—इयम् एषा एव ते भवत्याः स्वभावतः प्रकृत्या सरसा कोमला सरलता ऋजुला दूरस्थं सुदूरगतम् अपि मदनः कामः एव हुतभुक् वह्निः (रूपकम्) तेन दह्यमानं प्रज्वाल्यमानं मां रक्षति त्रायते एव ते स्नेहलता स्नेहशीलता मुहुर्मुहुः पुनःपुनः माम् आह्वयति निमन्त्रयति एव, स्थिरा दृढा प्रतिज्ञा निश्चयः यस्याः तस्याः भावः तत्ता माम् आनयति त्वत्समीपे प्रापयति, एव, ते दक्षिणता औदार्यं मां ढौकयति त्वत्पार्श्वे उपस्थापयति एव, ते वत्सलता स्निग्धता [स्निग्धस्तु वत्सलः' इत्यमरः] अभिपद्यते गृह्णाति अङ्गीकरोतीत्यर्थः, मृदु कोमलं हृदयं यस्याः तस्याः भावः तत्ता चरणयोः पादयोः पतितं प्रणतं मां न भर्त्सयति तिरस्करोति एव, महानुभावता महाशयता उत्थाप्य उत्थितं कृत्वा संभावयति संमानयति, प्रियवादिता मधुरभाषिता आलपति संभाषते एव, अत्युदारता अत्यधिकम् औदार्यं हृदये अवकाशं स्थानं ददाति प्रयच्छति एव। **यच्च**—यत् च तथा तेन प्रकारेण अपि गत्वा पूर्वं त्वत्समीपात् निष्क्रम्य निर्गता लज्जा त्रपा यस्मात् तथाभूतं हृदयं यस्य तथाभूतोऽहं

दोष-रूप में बदल दिया, वह (चन्द्रापीड़) अन्य किस गुण का आश्रय लेकर फिर (उसे) अपनाने का निवेदन करे और किस गुण से आप उसे अपनावें। झूठमूठ ही आत्म-समर्पण दिखाए क्या मैंने आप का हृदय नहीं ठगा ? क्या मैं आप का स्वभावतः कोमल हृदय हरकर नहीं खिसक गया हूँ ? क्या निर्दय मैंने प्राणों को सन्देह में डाल देने वाली आप के शरीर की इस दशा की उपेक्षा नहीं की ? क्या इस (दशा) का कारण मैं नहीं हूँ ? इस तरह सभी दोषों का घर होते हुए भी मैंने (कुछ देर) आप के चरणों की आराधना की, इसलिए स्वयं सभी गुणों से रहित होते हुए भी मेरा अवलम्ब एकमात्र आपके ही गुण हैं। आपकी यही स्वभावतः कोमल सरलता दूर पड़े हुए एवं कामाग्नि से जल रहे मेरी रक्षा ही कर रही है। आपकी स्नेहशीलता वार-वार मुझे आमंत्रित ही कर रही है, दृढ़निश्चयता अपने पास खींच ही रही हैं, उदारता बुला ही रही है, वत्सलता मुझे अपना ही रही है; हृदय की कोमलता चरणों में पड़े हुए मुझे ठुकरा नहीं रही हैं, (प्रत्युत) महानुभावता मुझे उठाकर मेरा आदर-सन्मान ही कर रही है, मधुर-भाषिता

साहसमङ्गीकरोम्यत्रापि सत्प्रकृतयो देवीप्रसादा एव कारणम्। एते हि विशदत्वादुदारभावात्संगतत्वाच्च क्षणपरिचिता अपि समारोपितजीवितप्रत्याशा न किंचिन्न कारयन्ति। स्मारयन्ति सेव्यतां देव्याः। चरणपरिचर्यायै समुत्साहयन्ति। शिक्षयन्ति सेवाचातुर्यम्। उपदिशन्त्याराधनोपायान्। चाटुकारो भवेत्यसकृदाज्ञापयन्ति। एवं स्थीयतामिति स्वयमेवोपदर्शयन्ति। मुखावलोकिनामकालोपसर्पणकोपेऽनुनयन्ति। परितोषावसरेनुगृह्णन्ति गुणानुवादेन। लज्जापसृतं हठादाकृष्योपसर्पयन्ति। नान्यत्र क्षणमपि ददत्यवस्थातुम्। अपि चैतेनुग्राहकत्वादेवापरित्याज्याः। गुरुत्वादेव कृतावष्टम्भाः। विस्तीर्णत्वादेवालङ्घनीयाः। प्रभूतत्वादेवापरिहार्याः। तदेभिरहं विनाप्यागमनाज्ञया सुदूरमपक्रान्तोपि बला-

---

पुनः द्वितीयवारं वदनस्य निजमुखस्य दर्शनस्य विलोकनस्य दानस्य वितरणस्य साहसम् अङ्गीकरोमि स्वीकरोमि त्वां स्वमुखं दर्शयामीति भावः, अत्रापि त्वत्समीपागमनेऽपि सती साध्वी प्रकृतिः स्वभावः येषां तथाभूताः देव्याः भवत्याः प्रसादाः अनुग्रहः एव कारणं निदानम् अस्तीति शेषः। हि यतः एते भवत्याः प्रसादाः विशदत्वात् निर्मलत्वात् उदारभावात् उदारत्वात् संगतत्वात् उचितत्वात् च क्षणं क्षणमात्रं परिचिताः परिचयं प्राप्ताः अपि समारोपिता स्थापिता जीवितस्य प्राणानां प्रत्याशा वाञ्छा यैः तथाभूताः किञ्चित् न कारयन्ति कर्तुं न प्रेरयन्ति इति न अपि तु सर्वमपि कारयन्ति, देव्याः भवत्याः सेव्यतां सेवा योग्यतां स्मारयन्ति स्मृति-विषयं प्रापयन्ति, चरणयोः पादयोः परिचर्यायै सेवायै समुत्साहयन्ति उत्साहं जनयन्ति, सेवायाः चातुर्यं नैपुण्यं शिक्षयन्ति पाठयन्ति, आराधनस्य उपासनायाः उपायान् साधनानि उपदिशन्ति उपदेशविषयीकुर्वन्ति, 'चाटुकारः प्रशंसकः भव' इति असकृत् वारं-वारम् आज्ञापयन्ति आदिशन्ति, 'एवम् स्थीयताम् आस्यताम्' इति स्वयम् एव आत्मना एव उपदर्शयन्ति ज्ञापयन्तीत्यर्थः, मुखम् वदनम् अवलोकयन्ति पश्यन्तीति तथोक्तानाम् अकाले असमये उपसर्पणम् आगमनं तस्मात् तज्जनित इत्यर्थः, यः कोपः क्रोधः तस्मिन् अपि अनुनयन्ति प्रसादयन्ति, परितोषस्य प्रसन्नतायाः अवसरे समये गुणानाम् अनुवादेन कथनेनेत्यर्थः अनुगृह्णन्ति अनुग्रहं कुर्वन्ति, लज्जया त्रपया अपसृतम् अपगतं पश्चाद्गतमित्यर्थः हठात् बलात् आकृष्य आकर्षणं कृत्वा उपसर्पयन्ति समीपे आगमनाय प्रेरयन्ति, अन्यत्र अन्यस्मिन् स्थाने क्षणम् अपि अवस्थातुम् अवस्थानं कर्तुं न ददति प्रयच्छन्ति। **अपि च**—एते प्रसादाः अनुग्राहकत्वात् अनुग्रहकारित्वात् एव अपरित्याज्याः न हातुं योग्याः। गुरुत्वात् गौरवात् एव कृतः विहितः अवष्टम्भः आधारः यैः तथाभूताः सन्तीति शेषः। विस्तीर्णत्वात् विशालत्वात् एव अलंघनीयाः अनतिक्रमणीयाः। प्रभूतत्वात् बहुलत्वात् एव अपरिहार्याः न त्यक्तुमर्हाः। तत् तस्मात् कारणात् एभिः भवत्याः एतैः प्रसादैः अहं चन्द्रापीडः आगनमस्य आज्ञा आदेशः तया विना अपि सुदूरम् अतिदूरम् अपक्रान्तः गतः अपि बलात् हठात् एव आकृष्य

संभाषण ही करती है, उदारता हृदय मे स्थान दे ही रही है। और यह जो उस तरह खिसककर निर्लज्ज-हृदय मैं फिर मुँह दिखाने का साहस कर रहा हूँ, उसका भी कारण शोभन स्वभाव वाले आपके अनुग्रह ही है, क्योंकि ये अनुग्रह निर्मल, उदार और संगत होने के कारण क्षणभर के लिए परिचित होते हुए भी जीवन की आशा उत्पन्न किये क्या कुछ नहीं करवाते हैं ? आपके सेवा-योग्य होने की की याद दिलाते हैं, आपकी चरण-सेवा हेतु उत्साहित करते हैं, सेवा-निपुणता की शिक्षा देते है, आराधना के उपायों का पाठ पढ़ाते हैं, 'प्रशंसक बनो' बार बार यह आज्ञा देते हैं, 'इस तरह बैठिए' स्वयं ही (करके) दिखाते हैं, असमय मिलने आए लोगों पर क्रोध के समय मना लेते हैं, प्रसन्नता के समय गुणगान की कृपा कर देते हैं, लज्जा से पीछे हटने पर बलात् खींचकर पास बुला लेते हैं, क्षण भर के लिए भी अन्यत्र नहीं बैठने देते हैं। इसके अतिरिक्त, अनुग्रह-कारक होने के कारण हो ये (अनुग्रह) छोड़े जाने योग्य नहीं हैं, गुरुत्व के कारण ही इन्होंने (अपना) दृढ़ आधार बना रखा है, विशाल होने के कारण ही इनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है, बहुत होने के कारण ही इनसे बचा नहीं जा सकता है।

देवाकृष्य देवीपादमूलमानीय इति। यया वानपेक्षितगमनाज्ञयानियंन्त्रणत्वाद्गतोऽहमिति विज्ञप्तं सैव वाणी विज्ञापयति। यथा च मे न निष्फलमागमनं भवति जगद्वा शून्यं तथा देव्यात्मसंधारणायात्मनैव यत्नः कार्यः।'

इति संदिश्य पुनराह—'पत्रलेखे, त्वयापि यान्त्याध्वनि न मद्विरहपीडा भावनीया। न शरीरसंस्कारेनादरः करणीयः। नाहारवेलातिक्रमणीया। न येन केनचिदज्ञातेन पथा यातव्यम्। न यत्र तत्रैवानिरूप्यावस्थातव्यमुषितव्यं वा। न यस्य कस्यचिदपरिज्ञायमानस्यान्तरं दातव्यम्। सर्वदा शरीरेऽप्रमादिन्या भाव्यम्। किं करोमि। त्वत्तोपि मे वल्लभतरा देवीप्राणाः। येनैवमेकाकिनी तेषां संधारणाय विसर्जितासि। अपि च मम जीवितमपि तवैव हस्ते वर्तते। तन्नियतं त्वयात्मा यत्नेन परिरक्षणीयः।' इत्युक्त्वा सस्नेहं

आकर्षणं कृत्वा देव्याः भवत्याः पादयोः चरणयोः मूलं समीपमित्यर्थः आनीये प्राप्ये इति। **यया**—न अपेक्षिता वाञ्छिता गमनस्य आज्ञा आदेशः यया तथाभूतया यया वाण्या निर्गतं यन्त्रणं नियम्नं यस्मात् तस्य भावः तत्त्वं तस्मात् स्वतन्त्रत्वादित्यर्थः, 'अहं गतः' इति विज्ञप्तं कथितम्, सा एव वाणी विज्ञापयति कथयति—'यथा येन प्रकारेण मम आगमनं भवत्याः समीपे इति शेषः निष्फलं विफलं न भवति जायते, वा अथवा जगत् (त्वयि मृतायां) शून्यं न भवति तथा तेन प्रकारेण देव्या भवत्या आत्मनः संधारणाय रक्षणाय स्वप्राणानां रक्षार्थं इति यावत् आत्मना एव स्वयमेव, यत्नः उद्यमः कार्यः करणीयः मदागमनं यावत् त्वं जीवेति भावः।

इति संदिश्य संदेशं दत्त्वा पुनः आह अवादीत्—**पत्रलेखे**—अध्वनि मार्गे यान्त्या गच्छन्त्या त्वया अपि मम विरहः वियोगः तस्य पीडा दुःखं न भावनीया करणीया। शरीरस्य निजदेहस्य यः संस्कारः स्नानभूषादि-व्यापारः तस्मिन् अनादरः उपेक्षा न करणीयः विधेयः। आहारस्य भोजनस्य वेला समयः न अतिक्रमणीया लंघनीया। न येन केनचित् अज्ञातेन अविदितेन पथा मार्गेण गन्तव्यम् यातव्यम्। अनिरूप्य अविचार्य यत्र तत्रैव यस्मिन् कस्मिन्नपि स्थाने न अवस्थातव्यं न स्थितिः कर्तव्या वा उषितव्यम् वासः करणीयः (अत्र 'उषितव्यम्' इति प्रयोगश्चिन्त्यः, 'वस्तव्यम्' इत्येव व्याकरण-सम्मतत्वात्)। अपरिज्ञायमानस्य अपरिचितस्येत्यर्थः यस्य कस्यचित् अपि जनस्य अन्तरं हृदयं हृदयरहस्यमित्यर्थः न दातव्यं देयम्। शरीरे शरीरविषये सर्वदा नित्यम् अप्रमादिन्या प्रमादरहितया सावधानयेति यावत् भाव्यं भवनीयम्। किं करोमि कुर्याम्। त्वत्तः त्वदपेक्षया अपि देव्याः कादम्बर्याः प्राणाः जीवितं मे मम वल्लभतराः प्रियतराः सन्तिः, येन कारणेन तेषां देवीप्राणानां संधारणाय संरक्षणाय त्वम् एकाकिनी एकली विसर्जिता प्रेषिता असि। अपि च किंच मम जीवितं प्राणा अपि तवैव हस्ते तवाधीनम् वर्तते अस्ति। तत् तस्मात् कारणात् त्वया आत्मा स्वशरीरमित्यर्थः यत्नेन उद्यमेन परिरक्षणीयः परितः रक्षितव्यः' इति उक्त्वा कथयित्वा सस्नेहं स्नेहपूर्वकं परिष्वज्य आश्लिष्य, केयूरकं पुनः

इसलिए आने की आज्ञा के विना ही, अतिदूर गया हुआ भी मैं इनके द्वारा बलात् खींचकर ही आपके पास लाया जा रहा हूँ। और स्वतन्त्र होने के कारण, जाने की आज्ञा माँगे विना, जिस वाणी ने यह कहा था कि 'मैं चला गया', वही (वाणी) निवेदन करती है—'जिस तरह मेरा आना बेकार न जाय, अथवा दुनिया (मेरे लिए) सूनी न हो बैठे, उस तरह स्वयं अपने प्राणों की रक्षा हेतु प्रयत्न कीजिएगा'।

इस प्रकार संदेश देकर (चन्द्रापीड) फिर बोला—'पत्रलेखा, मार्ग में जाते हुए तुमने भी मेरे विरह का दुःख न करना, शरीर-संस्कार की उपेक्षा न करना, भोजन ठीक समय में करना, जिस-किसी अज्ञात मार्ग से होकर न जाना, विना सोचे-विचारे हर कहीं न ठहर जाना, और न डेरा डालना, अनजाने जिस किसी को अपने हृदय का भेद न देना, सर्वदा अपने शरीर के विषय में प्रमाद न करना। क्या करूँ? कादम्बरी के प्राण मेरे लिए तुझसे भी अधिक प्रिय

परिष्वज्य केयूरकं पुनस्तदवधानदानाय संविधाय महाश्वेताश्रमं यावत्पुनस्त्वयैष सहानया मन्नयनायागन्तव्यमित्यादिश्य व्यसर्जयत्।

निर्गतायां च केयूरकेण सह पत्रलेखायां 'किं शीघ्रमेते यास्यन्ति च वेत्यन्तरा वा गच्छतां परिलम्ब[1] उत्पत्स्यते न वेति कियद्भिर्वा दिवसैः परापतिष्यन्ति', इत्यनयैव चिन्तया शून्यहृदयः क्षणमिव स्थित्वा स्कन्धावारवार्तास्फुटीकरणाय वार्ताहरं विसर्ज्य बहुदिवसान्तरितदर्शनस्य वैशम्पायनस्य प्रत्युद्गमनायात्मानं मोचयितुं पितुः पादमूलमगात्। तत्र चोभयतः ससंभ्रमापसृतप्रतीहारमण्डलवितीर्णविस्तीर्णालोकनमार्गो दूरादेवापसव्यजानुकरतलावलम्बितविमलमणिकुट्टिमोदरसंक्रान्तप्रतिमो द्विगुणायमानायतकुन्तलकलापः पितुः प्रणाममकरोत्।

च तस्यां पत्रलेखायाम् अवधानस्य ध्यानस्य दानाय वितरणाय संविधाय सावधानं कृत्वेत्यर्थः महाश्वेतायाः आश्रमं कुटीरं यावत् पर्यन्तं त्वया एव सह अनया पत्रलेखया मम आनयनं कादम्बर्याः समीपे प्रापणं तस्मै आगतव्यम्' इति आदिश्य आज्ञाप्य व्यसर्जयत् प्रेषितवान्।

निर्गतायां—केयूरकेण सह पत्रलेखायां निर्गतायां निष्क्रान्तायां सत्यां एते केयूरक-पत्रलेखा-मेघनादाः यास्यन्ति गमिष्यन्ति न वा, अथवा गच्छतां व्रजताम् अन्तरा मध्ये परिलम्बः विलम्बः उत्पत्स्यते जनिष्यते न वा, कियद्भिः कतिभिः दिवसैः दिनैः परापतिष्यन्ति आगमिष्यन्ति इति अनया एव चिन्तया चिन्तनेन शून्यं रिक्तं हृदयं यस्य तथाभूतः क्षणम् इव क्षणमात्रं स्थित्वा स्कन्धावारस्य सैन्यस्य वार्तायाः वृत्तान्तस्य स्फुटीकरणाय स्पष्टीकरणाय सत्यापनायेति यावत् वार्ताहरं सन्देशवाहकं विसर्ज्य सम्प्रेष्य बहुभिः दिवसैः दिनैः अन्तरितं व्यवहितं दर्शनं विलोकनं यस्य तथाभूतस्य वैशम्पायनस्य प्रत्युद्गमनाय अभिमुखप्रयाणाय आत्मानं मोचयितुम् उन्मुक्तीकरणार्थं पितुः तारापीडस्य पादयोः चरणयोः मूलं समीपम् अगात् गतवान्। **तत्र**—उभयतः अभितः संभ्रमः त्वरा तेन सहितं यथा स्यात्तथा अपसृतं किमपि पश्चाद् गतं प्रतीहाराणां द्वारपालानां यत् मण्डलं समूहः तेन वितीर्णः दत्तः विस्तीर्णः विस्तृतः आलोकनस्य राज्ञः दर्शनस्य मार्गः पन्थाः यस्मै तथाभूतः, **दूरादेव**—दूरात् आरात् एव अपसव्यं दक्षिणं जानु ऊरुपर्वन् करतलं हस्ततलं च अवलम्बितम् आश्रितं मणिकुट्टिमं मणिमयबद्धभूमिः तस्य उदरे मध्ये संक्रान्ता प्रतिबिम्बिता प्रतिमा मूर्तिः यस्य तथाभूतः अतएव द्विगुणायमानः द्विगुणवत् आचरन् आयतः विस्तृतः कुन्तलानां केशानां कलापः समूहः यस्य तथाभूतः पितुः जनकस्य प्रणामम् अभिवादनम् अकरोत् कृतवान्।

हैं जिस कारण उनके रक्षा हेतु मैं तुम्हें अकेला भेज रहा हूँ। इसके अतिरिक्त, मेरे प्राण भी तेरे ही हाथ में हैं। इसलिए तुझे निश्चय ही यत्न-पूर्वक अपनी रक्षा करनी है'—यह कहकर स्नेह के साथ केयूरक को गले लगा फिर पत्रलेखा के सम्बन्ध में उसे सावधान करके 'महाश्वेता के आश्रम तक फिर तुम्हारे ही साथ इसे मुझे लिवा लाने आ जाना चाहिए' यह आदेश देकर विदा कर दिया।

केयूरक के साथ पत्रलेखा के चले जाने पर, 'क्या ये लोग शीघ्र ही चले जाएँगे या नहीं ? अथवा जाते-जाते इन्हें रास्ते में विलम्ब तो नहीं होगा ? अथवा कितने दिनों में ये वापस आ जाएँगे ?' इसी चिन्ता में अनमना हुआ क्षण भर ठहरकर सेना का समाचार स्पष्ट करने हेतु सन्देशवाहक भेजकर चन्द्रापीड इस विचार से पिता के चरण-समीप चल दिया कि बहुत दिनों से न देखे हुए वैशम्पायन की अगवानी के निमित्त जाने को उनसे अपनी उन्मुक्ति (अनुमति) पा ले। वहाँ दोनों ओर से जल्दी-जल्दी पीछे हटे द्वारपालों के समूह द्वारा (राजा के) दर्शनार्थ विस्तृत मार्ग दिए हुए, दूर से ही दायें घुटने और हाथ से छुए मणिमय फर्श में अपना प्रतिबिम्ब डाले तथा केशकलाप को दुगुना-जैसे किए उसने पिता को प्रणाम किया।

१. विलम्बः।

अथ तारापीडस्तथा दूरत एव कृतप्रणामं चन्द्रापीडमालोक्य निर्भरस्नेहगर्भेण सलिलभरमंथरेणेव जलधरध्वनिना स्वरेण सधीरमेह्येहीत्याहूय ससंभ्रमप्रधावितमपि संभावितशुकनासप्रणाममुपसृत्य पार्श्वे भूमावुपविशन्तमाकृष्य हठात्पादपीठे समुपवेश्यापरिसमाप्तावलोकस्पृहेण चक्षुषा सुचिरमालोक्यास्योपारूढयौवनभराभिरामतराण्यङ्गप्रत्यङ्गानि पाणिना स्पृष्ट्वा दर्शयन्शुकनासमवादीत्। 'शुकनास, पश्येयमायुष्मतश्चन्द्रापीडस्योत्सर्पिणी महानीलमणिप्रभेव कनकशिखरिणः, गण्डमण्डलोद्भासिनी मदलेखेव गन्धद्विपस्य, उपहितकान्तिपतिपरभागा लक्ष्मच्छायेव चन्द्रमसः, विकासशोभापेक्षिणो

अथ—अथ प्रणामानन्तरं तारापीडः तथा तेन प्रकारेण दूरतः दूरात् एव कृतः विहितः प्रणामः अभिवादनं येन तथाभूतं चन्द्रापीडम् आलोक्य वीक्ष्य निर्भरः अत्यधिकः स्नेहः प्रीतिः गर्भे मध्ये यस्य तथाभूतेन, सलिलस्य जलस्य भरेण भारेण आधिक्येनेति यावत् मन्थरेण मन्देन जलधरस्य मेघस्य ध्वनिना शब्देन इवेत्युपमायाम् स्वरेण कण्ठध्वनिना सधीरं गम्भीरं यथा स्यात् तथा (अत्र 'धीरम्' इत्येव सुवचम्) 'एहि, एहि आगच्छ, आगच्छ' इति आहूय आह्वानं कृत्वा संभ्रमः आदरः तेन सहितं यथा स्यात्तथा प्रधावितं चलितम् अपि संभावितः कृतः शुकनासस्य प्रणामः नमस्कारः येन तम् उपसृत्य समीपे आगत्य पार्श्वे पितुः समीपे भूमौ पृथिव्याम् उपविशन्तं निषीदन्तं हठात् बलात् आकृष्य आकर्षणं कृत्वा पादपीठे पदासने समुपवेश्य उपस्थाप्य अपरिसमाप्ता नावसिता अवलोकस्य दर्शनस्य स्पृहा अभिलाषः यस्य तथाभूतेन चक्षुषा नेत्रेण सुचिरं चिरकालं यावत् आलोक्य दृष्ट्वा अस्य चन्द्रापीडस्य उपारूढम् आगतम् यत् यौवनं तारुण्यं तस्य भरेण उपचयेन अभिरामतराणि रमणीयतराणि अङ्गानि अवयवान् प्रत्यङ्गानि प्रत्यवयवान् च पाणिना करेण स्पृष्ट्वा अभिमृश्य शुकनासम् दर्शयन् द्रष्टुं प्रेरयन् अवादीत् अकथयत्। **शुकनास—** पश्य अवलोकय आयुष्मतः चिरजीविनः चन्द्रापीडस्य इयम् एषा उत्सर्पिणी उद्गच्छन्ती, कनकशिखरिणः सुवर्णपर्वतस्य सुमेरोरित्यर्थः महानीलश्चासौ मणिः तस्य प्रभा कान्तिः इवेत्यत् अन्यानि च 'श्मश्रुराजिलेखा' इत्यस्य विशेषणानि, अत्र सुवर्णकान्तिमत् शरीरं सुमेरुणा उत्सर्पिणी श्यामवर्णा श्मश्रुराजिलेखा च महानीलमणिप्रभया उपमीयते, गन्धद्विपस्य गन्धगजस्य, गन्धगजो हि गज-विशेषो भवति यस्य देहात् सततम् उत्कटः मदगन्धो निःसरति, सुदूरं च व्याप्नोति, यमाघ्राय गजान्तराणि दूरादेव पलायन्ते, गण्डमण्डले कुम्भस्थले उद्भासितुं द्योतितुं शीलमस्या इति तथोक्ता मदस्य दानस्य दानजलस्येत्यर्थः (श्यामवर्णा) रेखा राजिः इव, उपहितः जनितः कान्तिपतेः सूर्यस्य परभागः गुणोत्कर्षः ('परभागो गुणोत्कर्षः' इत्यमरः) प्रकाशातिशयः इत्यर्थः यस्यां तथाभूता चन्द्रमसः चन्द्रस्य लक्ष्मणः कलंकस्य छाया कान्तिः इव, 'आदित्यादेष दीप्यते' इत्युक्त्यनुसारेण चन्द्रो हि सूर्यात् गुणोत्कर्षं प्रकाशमिति यावत् लभते, सूर्यलब्धप्रकाशस्य चन्द्रमसः कलंकः यथा भ्राजते, तथैव चन्द्रापीडस्य तेजसा देदीप्यमाने मुखे श्मश्रुराजिः भ्राजते स्म, श्वेते हि श्यामः समधिकं दीप्यते, कमलाकरस्य कमलराशेः विकासस्य विकसनस्य शोभां सुषमाम् अपेक्षितुं

इसके बाद दूर से ही उस तरह प्रणाम किये हुए चन्द्रापीड़ को देखकर तारापीड़ अति-स्नेह-भरे, जल-भार से मन्थर बने मेघ-ध्वनि के-से गंभीर स्वर में 'आओ, आओ' यों बुलाकर, दौड़े-दौड़े सादर शुकनास को प्रणाम किये और आकर पास में ही भूमि पर बैठते हुए उसे खींचकर बलात् चरण-पीठपर बिठा, अपूर्ण हुई पड़ी दर्शनेच्छावाली आँख से खूब देर तक देखकर, पूर्ण यौवन को प्राप्त हुए उसके अभिराम अङ्ग-प्रत्यङ्गों को हाथ से छूकर शुकनास को दिखाते हुए बोले—'शुकनास, देखो चिरजीवी चन्द्रापीड़ की सुमेरु पर्वत की उठती हुई महानीलमणि की छटा-जैसी, गन्धगज के कुम्भस्थल पर चमकती हुई मदजल-रेखा-जैसी, सूर्य से गुणोत्कर्ष (प्रकाश) प्राप्त किये चन्द्रमा के कलंक की कान्ति-जैसी, कमल-समूह पर विकास-सुषमा की इच्छुक भ्रमर-पंक्ति-जैसी सौन्दर्य के चित्र पर निखार लानेवाली अंजन की सलाई-जैसी, पूर्ण

मधुकरावलीव कमलाकरस्य, रूपालेख्योन्मीलनकालाञ्जनवर्तिका, तारुण्यभरजलधरोत्तानश्यामिका, उज्ज्वलत्कन्दर्पप्रदीपकज्जलशिखा, स्फुरत्प्रतापानलधूमराजी, मकरध्वजोपवनतमालवल्ली, मनोभ[1]वविकारदोषारम्भबालतिमिरोद्गतिः, उद्वाहमङ्गलभ्रूसंज्ञा श्मश्रुराजिलेखा समंतात्समुद्भिन्ना। विवाहमङ्गलयोग्यां दशामारूढोयम्। विलासवत्या सह संमन्त्र्याभिजनरूपा निरूप्यतां काचिज्जगति राजकन्यका। दृष्टं हि दुर्लभदर्शनं वत्सस्य वदनम्। संप्रति वधूमुखकमलदर्शनेनानन्दयाम आत्मानम्।' इत्युक्तवति तारापीडे शुकनासः प्रत्युवाच।

'साधु चिन्तितं देवेन। अनेन तु सहृदयेन हृदये समारोपिता एव सर्वविद्याः। संभाविता एव सर्वाः कलाः। स्वीकृता एव सर्वाः प्रजाः। गृहीता एव सर्वदिग्वधूनां कराः।

वाञ्छितुं शीलमस्या इति तथोक्ता विकसित-कमलस्थितेत्यर्थः मधुकराणां भ्रमराणाम् आवली पंक्तिः इव, अत्र मालोपमा समाप्नोति, रूपकं च प्रारभ्यते, रूपस्य सौन्दर्यस्य यत् आलेख्यं चित्रं तस्य यत् उन्मीलनं तस्मिन् प्रकर्षाधानं तस्मै काली श्यामवर्णा अञ्जनस्य कज्जलस्य वर्तिका तूलिका लेखिनीति यावत्, तारुण्यस्य यौवनस्य भरः अतिशयः एव जलधरः मेघः तस्य उत्ताना अतिशयिता श्यामिका कालिमा, उज्ज्वलन् उद्दीप्यमानः कन्दर्पः कामः एव दीपकः प्रदीपः तस्य कज्जलस्य अञ्जनस्य शिखा चूडा, स्फुरन् उल्लसन् प्रतापः तेजः एव अनलः वह्निः तस्य धूमराजी धूमपंक्तिः, मकरध्वजः काम एव उपवनम् उद्यानं तस्य तमालस्य वृक्षविशेषस्य वल्ली शाखा, मनोभवः कामः तस्य विकारः विकृतिः एव दोषायाः रात्र्याः आरम्भः तस्मिन् बालस्य स्तोकस्येत्यर्थः तिमिरस्य अन्धकारस्य उद्गतिः उदयः, उद्वाहः विवाहः एव मंगलं शुभकार्यं तस्य भ्रुवोः संज्ञा संकेतः श्मश्रुणः कूर्चस्य मुखरोम्णामिति यावत् राजिः पंक्तिः तस्याः लेखा रेखा समन्तात् परितः समुद्भिन्ना प्रकटिता। **विवाह०**—विवाह-मंगलस्य विवाहशुभकार्यस्य समुचितां दशाम् अवस्थाम् अयम् चन्द्रापीड आरूढः प्राप्त इत्यर्थः। तत् तस्मात् कारणात् देव्या महिष्या विलासवत्या सह संमन्त्र्य मन्त्रणां कृत्वा अभिजनः कुलं रूपं सौन्दर्यं च अस्याः स्तः इति तथोक्ताम् (मतुवर्थीयोऽच्) काचित् राजकन्या राजकुमारी जगति लोके निरूप्यताम् दृश्यताम्। दुर्लभं दुष्प्रापं दर्शनं विलोकनं यस्य तत्रोक्तं वत्सस्य पुत्रस्य वदनं मुखं हि निश्चयेन दृष्टम् अवलोकितम्। संप्रति इदानीं वध्वाः स्नुषायाः मुखं कमलमिव पद्ममिवेति लुप्तोपमा तस्य दर्शनेन विलोकनेन आत्मानं स्वम् आनन्दयामः प्रीणयामः' इति तारापीडे उक्तवति कथितवति सति शुकनासः प्रत्युवाच उत्तरितवान्—**साधु**—'देवेन भवता साधु सम्यक् यथा स्यात्तथा चिन्तितं विचारितम्। सहृदयेन सज्जनेन अनेन चन्द्रापीडेन सर्वाश्च ताः विद्याः चतुर्दशसंख्यकाः हृदये समारोपिताः हृदयंगमीकृताः। सर्वाश्च चतुःषष्टिसंख्यका इत्यर्थः कलाः संगीताद्याः संभाविताः परिशीलिताः एव सर्वाः प्रजाः स्वीकृताः अङ्गीकृताः आत्मवशीकृता इति यावत् एव। सर्वाश्च ताः दिशः एव

यौवन रूपी जलधर की गहरी कालिमा, उद्दीप्यमान कन्दर्प-रूप प्रदीप की कज्जल-शिखा, चमकते हुए प्रताप-रूपी अग्नि की धूम-पंक्ति, कामदेव-रूपी उद्यान के तमाल वृक्ष की टहनी, मदन-विकार रूपी निशारम्भ के हल्के अन्धकार की उत्थानिका, विवाह-मंगल हेतु भौंओं की संज्ञा (संकेत) यह दाढ़ी-मूँछों की पंक्ति चारों ओर उग गई है। यह विवाह-योग्य अवस्था को प्राप्त हो गया है। इसलिए महारानी विलासवती के साथ बातचीत करके जगत में कोई कुल और रूपवाली राजकुमारी देखिए। दुर्लभ दर्शन वाले पुत्र का मुख तो हमने देख ही लिया है। अब पुत्रवधू का मुख-कमल देखने से अपने को प्रसन्न करना चाहते हैं' तारापीड के यह कहने पर शुकनास ने उत्तर दिया—

"महाराज ने ठीक सोचा है। इस सहृदय ने सभी विद्यायें हृदयंगम कर ली है। सभी

१. मनोभवदोषारम्भः।

स्थापितैव निश्चलकुटुम्बिनीपदे राजलक्ष्मीः। ऊढैव चतुरुदधिमेखलाकलापभूषणा भूः किमपरमवशिष्यते येन न परिणीयते।' इत्यभिहितवति शुकनासे लज्जावनम्रवदनश्चन्द्रापीडश्चकार चेतसि—'अहो संवादो येन मे कादम्बरीसमागमोपायचिन्तासमकालमेवेदृशी तातस्य बुद्धिरुत्पन्ना। तद्यदुच्यते अन्धकारे प्रविष्टस्यालोको वनगहनप्रविष्टस्य देशिकदर्शनं महार्णवपतितस्य यानपात्राभ्यागमो म्रियमाणस्योपर्यमृतवृष्टिरिति। तदेतदापतितं मयि। सर्वथा वैशम्पायनदर्शनमात्रकान्तरिता वर्तते मे कादम्बरीप्राप्तिः।' इत्येवं चिन्तयत्येव चन्द्रापीडे क्षितिपतिरुत्तस्थौ। उत्थाय च तमेव विनयावनम्रपूर्वकायं समवलम्ब्यांसदेशे सकलमेदिनीभारोद्वहनगुरुणा दोर्दण्डेन शनैः शनैः संचरञ्शुकनासेनानुगम्य-

---

वध्वः स्त्रियः तासां कराः पाणयः गृहीताः ग्रहणविषयीकृता एव, दिग्विजयः कृत इति भावः। निश्चला स्थिरा राजलक्ष्मीः राजश्रीः कुटुम्बिनी जाया तस्याः पदे स्थाने स्थापिता न्यस्ता एव। चत्वारः उदधयः समुद्राः एव मेखला-कलापः रशनाकलापः भूषणम् आभरणं यस्याः तथाभूता भूः पृथिवी ऊढा परिणीता एव। परम् अन्यत् किम् अवशिष्यते अवशिष्टं वर्तते येन कारणेन (चन्द्रापीडः) न परिणीयते अस्य विवाहः न क्रियेत' इति शुकनासे अभिहितवति कथितवति सति लज्जया त्रपया अवनम्रं नतं वदनं मुखं यस्य तथाभूतः चन्द्रापीडः चेतसि मनसि चकार अचिन्तयदित्यर्थः। **अहो**—अहो इत्याश्चर्ये संवादः समानरूपता विचाराणाम् येन कारणेन मे मम कादम्बर्याः समागमः मिलनं तस्य उपायस्य साधनस्य चिन्तायाः समः समानः कालः समयः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा एव तातस्य पितुः ईदृशी एतादृशी बुद्धिः विचारः उत्पन्ना जाता अर्थात् यस्मिन् काले अहं कादम्बर्या समागमोपायं चिन्तयामि, तस्मिन्नेव काले पिताऽपि मम विवाहं चिन्तयतीति आवयोः विचार-साम्यं विलोक्य विस्मयो मे जायते। तत् यत् उच्यते कथ्यते लोकैरिति शेषः "अन्धकारे तमसि प्रविष्टस्य गतस्य जनस्य आलोकः प्राकाशः प्रकाशप्राप्तिरित्यर्थः वनस्य विपिनस्य गहने गह्वरे प्रविष्टस्य जनस्य देशिकस्य मार्गदर्शकस्य दर्शनम् अवलोकनम्, महान् चासौ अर्णवः समुद्रः तस्मिन् पतितस्य जनस्य यानपात्रस्य पोतस्य अभ्यागमः प्राप्तिः म्रियमाणस्य मुमूर्षोः मरणासन्नस्येति यावत् उपरि अमृतस्य सुधायाः वृष्टिः वर्षापातः" तत् एतत् मयि आपतितं घटितम्। सर्वथा सर्वप्रकारेण वैशम्पायनस्य दर्शनम् एव दर्शनमात्रकं तेन अन्तरिता व्यवहिता मे मम कादम्बर्याः प्राप्तिः लाभः वर्तते अस्ति, इति एवं चिन्तयति विचारयति एव चन्द्रापीडे क्षितिपतिः राजा तारापीडः उत्तस्थौ उदतिष्ठत्। **उत्थाय**—विनयेन नम्रतया अवनम्रः नतः पूर्वः कायः शरीरस्याग्रभागः यस्य तथाभूतम् तम् चन्द्रापीडम् एव सकलायाः मेदिन्याः पृथिव्याः भारस्य धुरः उद्वहनेन धारणेन गुरुणा भारिणा दोर्दण्डेन भुजदण्डेन अंस-देशे स्कन्धप्रदेशे समवलम्ब्य समाश्रित्य गृहीत्वेत्यर्थः शनैः शनैः मन्दं मन्दं सञ्चरन् शुकनासेन अनुगम्य-

---

कलाओं का अनुशीलन कर लिया है। सारी प्रजा वश में कर ली है। सभी दिशा-रूपी स्त्रियों का कर-ग्रहण कर लिया है। स्थिर राजलक्ष्मी को गृहिणी के पद पर बिठा ही दिया है। भूषण-रूप में चार समुद्रों की करधनी पहने पृथिवी ब्याह ली है। और क्या रह रहा है, जिससे इसका पाणिग्रहण न किया जाय?" यों शुकनास के कह चुकने पर लज्जा से मुँह नीचा किये चन्द्रापीड़ ने मन में सोचा—"आश्चर्य है कि विचारों की यह एकता कैसी! कादम्बरी से मिलने का उपाय सोचते समय ही पिता जी का ऐसा विचार हुआ है। यह जो कहा जाता है कि—'अन्धकार में प्रविष्ट हुए (जन) को प्रकाश मिलना, घने वन में घुसे हुए (जन) को मार्गदर्शक का देख पड़ना, महासागर में गिरे हुए (जन) को जहाज मिल जाना और मर रहे (जन) के ऊपर अमृत वृष्टि होना' यह मुझ पर घट गया है। मुझे कादम्बरी की प्राप्ति में सर्वथा वैशम्पायन के दर्शनमात्र का व्यवधान है" इस प्रकार चन्द्रापीड़ के सोचते ही राजा (तारापीड़) उठ खड़े हुए। और उठकर नम्रता से शरीर का अग्रभाग झुकाए उसे (चन्द्रापीड़) को सारी पृथिवी का भार वहन करने से भारी बने अपने भुज-दण्ड द्वारा कन्धे से पकड़कर, पीछे-

मानो विलासवतीभवनमगमत्। गत्वा च ससंभ्रमकृताभ्युत्थानामिन्दूदयावलोकनविलोलामिव समुद्रवेलां विलासवतीमूर्ध्वस्थित एवावादीत्। 'देवि, पश्यैषा त्वमपि वधूमुखावलोकनसुखस्य कृते नोत्ताम्यसीत्युपालभमानेव देवीं वत्सस्य यौवनभरारम्भसूत्रपातरेखा, आवयोस्तारुण्यदुर्विलसितेच्छाविनिवर्तनाज्ञा विजृम्भमाणा श्मश्रुराजिशोभा विवाहमङ्गलसंपादनायादिशति। त्वमपरं किमादिशसीति प्रष्टव्या तदादिशतु देवी। कथ्यमानेपि किमपरमद्यापहरसि वदनमन्यतो व्रीडया। पृष्टा वा कर्तव्यं नाज्ञापयसि। वरमातासि संवृत्ता। जानामि चन्द्रापीडस्योपर्यप्रीतिरेषा यदेवमेतत्कार्येष्वनादरोव-

---

मानः अनुस्रियमाणः विलासवत्याः स्वमहिष्याः भवनं सदनम् अगमत् अगच्छत्। गत्वा च सम्भ्रमः आदरः तेन सहितं यथा स्यात्तथा कृतम् अनुष्ठितम् अभ्युत्थानम् स्वागतरूपेण उत्थानं यया तथाभूताम् इन्दोः चन्द्रमसः यः उदयः उद्गमनं तस्य विलोकनेन दर्शनेन विलोलां चञ्चलां समुद्रस्य सागरस्य वेलां लहरीम् इवेत्युपमायाम् विलासवतीम् ऊर्ध्वस्थितः उत्थितः एव अवादीत् अकथयत् तारापीडः—'देवि, महिषि, पश्य, त्वम् अपि वधूमुखस्य पुत्रवधूमुखस्य अवलोकनेन दर्शनेन यत् सुखम् आनन्दः तस्य कृते तन्निमित्तमित्यर्थः न ताम्यसि न खिद्यसे' इति देवीं भवतीम् उपालभमाना उपालम्भं ददाना इवेत्युत्प्रेक्षायाम् वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य यौवनस्य तारुण्यस्य आरम्भस्य सूत्रस्य पातस्य रेखा, आवयोः तव मम च तारुण्यस्य यौवनस्य यानि दुर्विलसितानि दुश्चेष्टितानि तेषाम् इच्छातो निवर्तनं निवृत्तिः तस्य आज्ञा, आदेशरूपा 'पुत्रः तारुण्यं प्राप्त इति माता-पितरौ इतः परं तारुण्यविलासान् त्यजन्तु' इत्यात्मक आदेशः इति भावः, उभयत्र रूपकम् विजृम्भमाणा वर्धमाना श्मश्रूणां मुखरोम्णां राजेः पंक्तेः शोभा विवाह-मङ्गलं विवाहस्य शुभकार्यं तस्य संपादनाय करणाय आदिशति आज्ञां ददाति चन्द्रापीडस्य श्मश्रूणि निःसृतानीति युवत्वात् तस्य विवाहः कर्तव्य इति भावः।

टिप्पणी—सूत्रपातरेखा—सूत्रपात का प्रधान अर्थ है सूत डालकर रेखा खींचना। जब कोई शिल्पी किसी भवन-आदि का निर्माण आरम्भ करता है, तो नक्शे के अनुसार जमीन पर डोरी डालकर रेखा खींच लेता है, तब निर्माण आरम्भ होता है, किन्तु सूत्रपात शब्द अब किसी भी कार्य के आरम्भ में लाक्षणिक हो गया है, इसलिए प्रकृत में आरम्भ और सूत्रपात में पुनरुक्ति-सी हो गई है।

त्वम् विलासवती अपरम् अन्यत् किम् आदिशसि आज्ञापयसि इति मया प्रष्टव्या अनुयोक्तव्या। तत् तस्मात् देवी भवती आदिशतु। कथ्यमाने प्रोच्यमाने अपि मयि अपरम् किम् कस्मात् अद्य व्रीडया लज्जया वदनं मुखम् अन्यतः अपहरसि, मुखं परावर्तयसीत्यर्थः। पृष्टा अनुयुक्ता सती कर्तव्यं कृत्यं न आज्ञापयसि आदिशसि। वरस्य पाणिग्राहकस्य माता संवृत्ता जाता असि। जानामि वेद्मि चन्द्रापीडस्य उपरि एषा इयम् अप्रीतिः प्रीत्यभावः भवत्याः अस्तीति शेषः यत् यस्मान् एवम् एतत्प्रकारेण एतस्य चन्द्रापीडस्य कार्येषु विवाहादि-रूपेषु अनादरः

पीछे आ रहे शुकनास के साथ धीरे धीरे चलते हुए विलासवती के सदन को चले गए। और जाकर चन्द्रोदय के दर्शन से चंचल हुई समुद्र की वीचि-जैसी, सादर स्वागतार्थ खड़ी हो उठी विलासवती को खड़े-खड़े ही बोले—"रानी, देखो पुत्रवधू के मुख के दर्शन के आनन्द हेतु तुम अकुला नहीं रही हो—इस तरह तुम्हें उलहना देती हुई-जैसी, यौवनारम्भ के सूत्रपात की रेखा, हम दोनों को यौवन की कुचेष्टाओं से इच्छा-निवृत्ति हेतु आज्ञा रूप पुत्र की बढ़ती हुई दाढ़ी-मूँछ की पंक्ति की शोभा विवाह-मंगल संपादन हेतु आज्ञा दे रही है। तुम और क्या आज्ञा देती हो—यह मैं तुम्हें पूछता हूँ, देवी आज्ञा करें। कहने पर भी तुम लज्जा से मुँह क्यों दूसरी तरफ मोड़ रही हो? अथवा पूछने पर कर्तव्य की आज्ञा नहीं दे रही हो? तुम वर की माता बन गई हो। जानता हूँ कि चन्द्रापीड़ पर तुम्हारा प्रेम नहीं है जो तुम्हें इस तरह उसके कामों

धीरणा च ।' इत्येवंविधैर्नर्मप्रायैरालापैः सुखायमानचेताश्चिरमिव स्थित्वा शरीरस्थिति-संपादनाय निरगात् ।

चन्द्रापीडोपि शुकनासमुखेनैव वैशम्पायनप्रत्युद्गमनायात्मानं मोचयित्वा जननीभवन एव निर्वर्तितशरीरस्थितिर्वैशम्पायनप्रत्युद्गमनसंविधानविनोदेनैव तं दिवसमनयत् ।

अवतीर्णायां च तस्यां यामिन्यां सुहृद्दर्शनौत्सुक्येन शयनगतोपि जाग्रदेव समधिकमिव यामद्वयं स्थित्वा परिवर्तयद्भिरिव स्वकान्त्या नीलिमानमम्बरतलस्य, अपहरद्भिरिव हरिततां तरुगहनानाम्, अधस्तादपि, छिद्रयित्वेव प्रविशद्भिर्निर्वासयद्भिरिव तरुतलच्छायाम्, दरीकुहरकुञ्जोदरेष्वपि निलीनं तिमिरमक्षान्त्येव प्रविश्योत्पाटयद्भिः, विवरप्रवेशव्याजेन च रसातलमिव प्रवेष्टुमारब्धैः, अन्यथा पुनर्धवलयद्भिरिव धवलतां

आदराभावः अनुत्साहः इति यावत् अवधीरणा अवज्ञा उपेक्षेति यावत् च भवत्या अस्तीति शेषः ।' इति एवंविधैः एतादृशैः नर्म परिहासः प्रायः बाहुल्येन येषु तथाभूतैः आलापैः संभाषणैः सुखं सुखयुक्तं भवतीति सुखायते ("सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते") सुखायमानं चेतः मनः यस्य तथाभूतः सन् राजा चिरम् दीर्घकालम् इवेति वाक्यालंकारे स्थित्वा अवस्थाय शरीरस्य स्थितिः निर्वाहः स्नानभोजनादिकार्यजातमिति यावत् तस्याः सम्पादनाय कारणाय निरगात् निरगमत् ।

चन्द्रापीडः अपि शुकनासस्य मुखेन द्वारा माध्यमेनेत्यर्थः न तु स्वमुखेन, वैशम्पायनस्य प्रत्युद्गमनं स्वागतार्थं किमप्यग्रे गमनं तस्मै आत्मानम् स्वम् मोचयित्वा उन्मुक्तं कारयित्वा लब्धपित्रनुमतिरित्यर्थः जनन्याः मातुः भवने सदने एव निर्वर्तिता संपादिता शरीर-स्थितिः स्नानभोजनादिकृत्यं येन तथाभूतः वैशम्पायनस्य यत् प्रत्युद्गनं तस्य संविधानं प्रबन्ध एव विनोदः मनोरञ्जनं तेन तं दिवसम् अहः अनयत् अतियापितवान् ।

अवतीर्णायाम् आगतायां च तस्यां तद्दिवसीयायां यामिन्यां निशायां सुहृदः मित्रस्य वैशम्पायनस्य यत् दर्शनम् अवलोकनं तस्मिन् औत्सुक्येन उत्कण्ठया शयने शय्यायां गतः स्थितः अपि जाग्रत् अप्राप्तनिद्रः एव समधिकमिव किमप्यधिकं यामयोः प्रहरयोः द्वयं युगलम् (कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया) स्थित्वा स्वैः कान्त्या छटया अम्बरतलस्य गगनतलस्य नीलिमानं नीलत्वं परिवर्तयद्भिः नीलिमानं श्वेतत्वे परिणमयद्भिः श्वेतीकुर्वद्भिरिति यावत् एतत् अन्यानि च 'चन्द्रपादैः' इत्येतस्य विशेषणानि, वाक्यं च 'चन्द्रपादैर्द्विगुणीकृतमन्मथोत्साहो गमनसंज्ञाशङ्खनादायादिदेश' इत्यस्ति, तरूणां वृक्षाणां गहनानि वनानि ('गहनं काननं वनम्' इत्यमरः) तेषां हरिततां हरितवर्णम् अपहरद्भिः दूरीकुर्वद्भिः इव, **अधस्ता०**—छिद्रयित्वा छिद्रं कृत्वा इव अधस्तात् अधोभागम् अपि प्रविशद्भिः प्रवेशं कुर्वद्भिः तरूणां वृक्षाणां तलेषु या छाया अनातपः ताम् निर्वासद्भिः बहिष्कुर्वद्भिः इव, दरीणां गुहानां कुहराणि अभ्यन्तराणीति यावत् च कुञ्जानां लतागृहाणाम् उदराणि गर्भाः च तेपु अपि निलीनं प्रच्छन्नं तिमिरम् अन्धकारम् अक्षान्त्या क्रोधेन इव प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा उत्पाटयद्भिः उन्मूलयद्भिः इव, विवरेषु छिद्रेषु यः प्रवेशः अन्तर्गमनं

में उत्साह नहीं, (प्रत्युत) उपेक्षा है"—इस तरह परिहासपूर्ण वार्तालापों से प्रसन्न-चित्त हुए राजा काफी देर ठहर कर (स्नान-भोजनादि) शारीरिक कृत्य करने चल दिए।

चन्द्रापीड़ ने भी शुकनास के माध्यम से वैशम्पायन की अगवानी करने हेतु अपने को उन्मुक्त कराके माता के घर में (स्नान-भोजनादि) शारीरिक कृत्य किये वैशम्पायन की अगवानी की तय्यारी के विनोद में ही वह दिन काटा।

उस दिन रात पड़ने पर मित्र के देखने की उत्कण्ठा से, शय्या पर पड़ा हुआ भी, जागता ही छः घंटों से कुछ अधिक देर लेटकर, अपनी कान्ति से आकाश की नीलिमा को (सफेदी में) बदलते हुए-जैसे, वृक्षों के झुरमुटों की हरियाली का अपहरण करते हुए-जैसे, छेद करके-जैसे नीचे घुसते हुए वृक्षों के नीचे की छाया निकालते हुए-जैसे, गुफाओं और लता-कुञ्जों के भीतर भी छिपे अन्धकार को घुसकर क्रोध में उखाड़ फेंकते हुए-जैसे, गर्तों में प्रवेश के बहाने पाताल-प्रवेश

सौधानाम्, उद्धूलयद्भिरिव कर्पूररेणुना दिङ्मुखानि, लिम्पद्भिरिव सान्द्रचन्दनद्रवेण यामिनीम्, उन्नामयद्भिरिव मेदिनीम्, उपनयद्भिरिव द्याम्, संक्षिपद्भिरिव तारकाग्रहनक्षत्रमण्डलानि, विस्तारयद्भिरिव सरित्पुलिनानि, पृथक्पृथक्कमलवनान्युत्पीड्येव धारयद्भिः, उद्दलितदलविकासानेकीकुर्वद्भिरिव कुमुदाकरान्, अपि च पर्यस्तैरिव शिखरिशिखरेषु, आवर्जितैरिव प्रासादमूर्धसु, पिण्डीभूय वहद्भिरिव रथ्यामुखेषु, त¹रद्भिरिव जलतरंगेषु प्रसारितैरिव सैकतस्थलेषु, हंससार्थैः सहैकीभूतैरिव, संविभक्तैरिव चन्द्रा-

तस्य व्याजेन कैतवेन रसातलं पातालं पातालकम् इव प्रवेष्टुं प्रवेशं कर्तुम् आरब्धैः कृतोपक्रमैः, अन्यथा अन्येनैव प्रकारेण सौधानां हर्म्याणां धवलतां श्वेतत्वं पुनः द्वितीयवारं धवलद्भिः श्वेतीकुर्वद्भिः इव, **उद्धूल०**—कर्पूरस्य घनसारस्य रेणुना रजसा दिशां दिशानां मुखानि भागान् उद्धूलयद्भिः धूलियुक्तानि कुर्वद्भिः इव, **लिम्प०**—यामिनीं रात्रिं सान्द्रः घनः यः चन्दनस्य द्रवः रसः पंक इति यावत् तेन लिम्पद्भिः लिप्तां कुर्वद्भिः इव, मेदिनीं महीम् उन्नामयद्भिः उच्चैः कुर्वद्भिः इव, द्यां द्युलोकम् उपनयद्भिः समीपम् आनयद्भिः इव, तारकाः ताराश्च ग्रहाः शनिशुक्रादयश्च नक्षत्राणि अश्विन्यादीनि च तेषां मण्डलानि वृत्तानि संक्षिपद्भिः संक्षेपं नयद्भिः इव कृष्णपक्षे हि ग्रहनक्षत्राणि गगने बहुशः दृश्यन्ते, शुक्लपक्षे तु चन्द्रप्रकाशाभिभवात् न्यूनीभवन्तीत्यर्थः, सरिताम् नदीनां पुलिनानि सैकततलानि विस्तारयद्भिः विस्तारं नयद्भिः इव चन्द्रस्य श्वेतकिरणप्रकाशेन श्वेतसैकत-प्रदेशाः विस्तृताः इव दृश्यन्ते इति भावः, पृथक् पृथक् तानि तानि कमलानां पङ्कजानां वनानि समूहान् उत्पीड्य संमर्दं धारयद्भिः वहद्भिः इव चन्द्रप्रकाशे हि कमलानि म्लानानि निमीलितानि च जायन्ते, तदुपरि पतिताः चन्द्रकिरणाः तानि संमर्दं धारयन्त इव दृश्यन्ते स्मेति भावः। **उद्दलित०**—उद्दलितानाम् उद्घटितानां दलानां पत्राणां विकासः विकसनं येषां तथाभूतान् कुमुदाकरान् कैरवसमूहान् एकीकुर्वद्भिः एकतां नयद्भिः इव तत्तत्स्थानेषु विकसितकुमुदवनानि परस्परं पृथग्भूतानि अपि चन्द्रप्रकाशधवलिमानमवाप्य एकीभूतानि इव दृश्यन्ते स्मेति भावः, अपि च—शिखरिणां पर्वतानां शिखरेषु श्रृङ्गेषु पर्यस्तैः विकीर्णैः इव, प्रासादानां हर्म्याणां मूर्धसु शिखरेषु आवर्जितैः पातितैः इव पिण्डीभूय पिण्डतां प्राप्य संघातरूपेणेति यावत् रथ्यानां चतुष्पथानां मुखेषु अग्रेषु वहद्भिः प्रवाहरूपेण गच्छद्भिः इव, जलस्य तरङ्गेषु वीचिषु तरद्भिः तरणं कुर्वद्भिः इव, सैकतेषु बालुकामयेषु स्थलेषु स्थानेषु प्रसारितैः विस्तारितैः इव, हंसानां सार्थैः समूहैः सह एकीभूतैः तादात्म्यं गतैः इव उभयेषां श्वेतत्वेन भेदाग्रहणात्, चन्द्राश्रयेषु चन्द्रशालासु, शिरोगृहेषु अट्टालिकासु इति यावत् (चन्द्रशाला शिरोगृहम्

आरम्भ किये-जैसे, (सफेदी हुए) महलों की सफेदी को फिर और ही तरह से सफेद करते हुए-जैसे, दिग् विभागों को कपूर के चूर्ण से धूलि-युक्त करते हुए-जैसे, रात्रि को गाढ़े चन्दन-द्रव से लिपते हुए-जैसे, पृथिवी को ऊपर उठाते हुए-जैसे, द्युलोक को समीप लाते हुए जैसे, तारे, ग्रह और नक्षत्रमंडलों को कम करते हुए-जैसे, नदियों के रेतीले तीरों का विस्तार करते हुए-जैसे, पृथक्-पृथक् स्थित कमल-वनों को कुचल कर रखते हुए-जैसे, खिली पंखुड़ियों का विकास किये कैरव-वनों का एकीकरण करते हुए-जैसे, तथा पर्वतों के शिखरों पर बिखरे-जैसे, महलों के ऊपर गिराये हुए-जैसे, चौराहों के आगे ठोस बनकर बहते हुए-जैसे, जल के तरङ्गों ऊपर तैरते हुए-जैसे, रेतीले मदानों में फैलाए हुए-जैसे, हंस-समूहों के साथ एकाकार हुए-जैसे, अटारियों में सोई कामिनियों के कपोलों के लावण्य के साथ बँटवारा किये हुए-जैसे, चन्द्रकान्त मणियों से बहती हजारों जल-धाराओं द्वारा धोये हुए-जैसे तथा घरों के भीतर भी बेरोक-टोक प्रवेश किये हुए, हाथी-दाँत की बनी ढलवाँ छतों से भी गुणोत्कर्ष (सफेदी) प्राप्त किये, कमलिनियों के पत्र-समूहों में भी सफेदी अक्षुण्ण बनाए रखे, पुष्प-वाटिकाओं में भी

१. 'तरद्भिरिव जलतरङ्गेषु' इति नास्ति।

श्रयप्रसुप्तकामिनीकपोललावण्येन, क्षालितैरिव चन्द्रकान्तच्युतजलधारासहस्रैः, तथा च गर्भगृहेष्वप्यविहतप्रवेशैः, दन्तवलभीभ्योऽपि लब्धपरभागैः, पद्मिनीपत्रखण्डेष्वप्यखण्डितधवलिमभिः, आरामेष्वपि दिवसबुद्धिमुत्पादयद्भिः, परस्परोद्भिन्नक्रमेणोद्गिरद्भिरिवावर्जयद्भिरिव विक्षिपद्भिरिव विस्तारयद्भिरिव प्रवर्तयद्भिरिव वर्षद्भिरिव सर्वतो ज्योत्स्नाप्रवाहम्, कादम्बरीसमागमत्वरादानाय स्मरसर्वास्त्रमोक्षमिव कुर्वद्भिश्चन्द्रपादैर्द्विगुणीकृतम[1]न्मथोत्साहो गमनसंज्ञाशङ्खनादायादिदेश।

अथ गगनतललब्धविस्तारः, विजृम्भमाण इव दिक्कुञ्जेषु, आवर्तमान इवाभ्रंलिह-

---

इत्यमरः) अथवा चन्द्राश्रये चन्द्रातपे चन्द्रिकायामिति यावत् प्रसुप्ताः निद्रिताः याः कामिन्यः कामुक्यः तासां कपोलेषु गण्डस्थलेषु यत् लावण्यं सौन्दर्यं तेन सह संविभक्तैः कृतसंविभागैः इव, चन्द्रकिरणानां छविः पाण्डुः, कपोलानां लावण्यमपि च पाण्डु—इति उभयैः पाण्डुत्वस्य परस्परम् आवण्टनं कृतमिवेति भावः, चन्द्रकान्ताः चन्द्रकान्तमणयः तेभ्यः च्युताः प्रद्रुताः याः जलस्य धाराः तासां सहस्रैः सहस्रसंख्याभिः क्षालितैः धौतैः इव उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षा, **तथा च**—गर्भगृहेषु गृहाभ्यन्तर-कक्षेषु न विहतः रुद्धः प्रवेशः येषां तथा भूतैः दन्तवलभीभ्यः गजदन्तनिर्मित-गोपानसीभ्यः ['गोपानसी तु वलभी' इत्यमरः] क्रमशः निम्नाभ्यः छदिभ्यः इति यावत् लब्धः परभागः गुणोत्कर्षः श्वेतिमा इत्यर्थः यैः तथाभूतैः, पद्मिनीनां कमलिनीनां यानि पत्राणि दलानि तेषां खण्डेषु कदम्बेषु समूहेषु इति यावत् अपि ('अञ्जादि-कदम्बे खण्डमस्त्रियाम्' इत्यमरः) न खण्डितः क्षतः धवलिमा श्वेतिमा येषां तैः, आरामेषु उपवनेषु अपि दिवसस्य दिनस्य बुद्धि ज्ञानं भ्रान्तिमिति यावत् उत्पादयद्भिः जनयद्भिः, परस्परस्य अन्योन्यस्य यद् उद्भिन्नम् उद्भेदनम् (भावे क्तः) तस्य क्रमेण सर्वतः परितः ज्योत्स्नायाः चन्द्रिकायाः प्रवाहं स्रोतः उद्गिरद्भिः उद्वमद्भिः इव, आवर्जयद्भिः पातयद्भिः इव, विक्षिपद्भिः भ्रंशयद्भिः इव, विस्तारयद्भिः प्रसारयद्भिः इव वर्षद्भिः वृष्टिं कुर्वद्भिः इव, कादम्बर्या समागमः मिलनं तस्मिन् त्वरा-दानाय शीघ्रतामापादयितुं स्मरस्य कामस्य सर्वाणि निखिलानि च तानि अस्त्राणि आयुधानि तेषां मोक्षं पातनम् इव कुर्वद्भिः, सर्वत्रोत्प्रेक्षा, चन्द्रस्य पादैः किरणैः द्विगुणीकृतः द्विगुणतां प्रापितः मन्मथस्य कामस्य उत्साहः औत्सुक्यं यस्य तथाभूतः चन्द्रापीडः गमनस्य प्रस्थानस्य या संज्ञा संकेतः सूचना इति यावत् तदर्थं यः शङ्खनादः शङ्खध्वनिः तस्मै आदिदेश, सूचनारूपेण शङ्खाध्मानमाज्ञापयदित्यर्थः।

अथ—अथ शंखाध्मानाज्ञानन्तरम् गगनतले नभस्तले लब्धः प्राप्तः विस्तारः प्रसारः येन तथाभूतः एतत् अन्यानि च प्रथमान्तानि 'शङ्खध्वनिः' इत्यस्य विशेषणानि, वाक्यं च शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत् इति, दिशः दिशाः एव कुञ्जाः निकुञ्जाः तेषु विजृम्भमाणः प्रवर्धमान इत्यर्थः इव, अभ्रंलिहः

दिन का भ्रम उत्पन्न करते हुए, एक दूसरे का क्रमशः भेदन करके चारों ओर चाँदनी का प्रवाह उगलते हुए-जैसे, गिराते हुए-जैसे, फेंकते हुए-जैसे, फैलाते हुए-जैसे, बरसाते हुए जैसे एवं कादम्बरी से मिलने में शीघ्रता करने हेतु कामदेव के सभी अस्त्रों को छोड़ते हुए जैसे, चन्द्रमा की किरणों द्वारा उत्पन्न किये गए काम-सम्बन्धी उत्साह से भरा चन्द्रापीड प्रस्थान के संकेत रूप में शंखध्वनि की आज्ञा दे बैठा।

इसके बाद गगन-तल में विस्तार किये, दिशा-रूपी कुञ्जों में बढ़ती जाती हुई जैसी, नगर के गगन-चुम्बी परकोटे के घेरे के भीतर घूमती हुई-जैसी, नगर-द्वार की ऊँची अटारियों के शिखरों पर चढ़ती हुई-जैसी, महलों के भीतर जाती हुई-जैसी, चौकोर आँगनों तथा चौराहों में विकसित होती हुई-जैसी, राजपथों में फैलती हुई-जैसी, भवनों के संकीर्ण

---

१. गमनोत्साहः।

नगरीप्राकारमण्डलाभ्यन्तरे, समारोहन्निवोत्तुङ्गगोपुराट्टालकशिखराणि, चलन्निव हर्म्यान्तरालेषु, विकसन्निव चतुष्कचत्वरेषु प्रसरन्निव राजमार्गेषु, परिभ्रमन्निव भवनसंकटेषु, प्रविशन्निवो[1]द्यानगह्वरेषु, संमूर्च्छन्निव प्रासादकुक्षिषु, तत्क्षणप्रतिबोधितानां गृहसरोजिनीसारसानामनुवर्त्यमान इव तारतरदीर्घेण रणितेन, विच्छिद्यमान इव मुहुर्मुहुः स्वभावगद्गदेन भवनकलहंसानां कलरवेण, निर्धार्यमाण इव श्रोत्रप्रवेशिना गमनवेलाप्रणामसंभ्रान्तस्य वाराङ्गनाजनस्य चलवलयनूपुररशनाकलकलेन तारदीर्घतरः शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत्। अनन्तरं चोत्थाप्यमानैश्चोत्थितैश्चाकृष्यमाणैश्चाकृष्टैश्चारोप्यमाणपर्याणैश्च पर्याणितैश्च नीयमानैश्चानीयमानैश्च विलभ्यमानैश्चाच्छिद्यमानैश्चागच्छद्भिश्चागतैश्च पूज्यमानैश्च

गगनचुम्बी नगर्याः पुर्याः यः प्राकारः प्राचीरं तस्य यत् मण्डलं परिधिः तस्य अभ्यन्तरे मध्ये आवर्तमानः भ्रमन् इव, उत्तुङ्गं अत्युच्चं गोपुरस्य पुरद्वारस्य यत् अट्टालकम् अट्टालिका तदुपरि वर्तमानं सदनमिति यावत् तस्य शिखराणि शृङ्गाणि समारोहन् तेषु आरोहणं कुर्वन् इव, हर्म्याणां भवनानाम् अन्तरालेषु अभ्यन्तरेषु चलन् गच्छन् इव चतुष्काणि चतुष्कोणानि प्राङ्गणानि च चत्वराणि चतुष्पथानि च तेषु विकसन् विकासं प्राप्नुवन् , इव, राजमार्गेषु राजपथेषु प्रसरन् विस्तीर्यमाण इव, भवनानां गृहाणां संकटेषु संकीर्णस्थानेषु परिभ्रमन् परितः भ्रमणं कुर्वन् इव, उद्यानानाम् गह्वरेषु निकुञ्जेषु प्रविशन् प्रवेशं कुर्वन् इव, प्रासादानां हर्म्याणां कुक्षिषु अभ्यन्तर-प्रदेशेषु संमूर्च्छन् उपचीयमान इव, तस्मिन् क्षणे प्रतिबोधितानाम् जागरितानां गृहस्य भवनस्य सरोजिनीषु कमलिनीषु कमलपूर्ण-सरसीषु इति यावत् ये सारसाः एतदाख्य-पक्षिविशेषाः तेषां अतिशयेन तारम् उच्चं दीर्घम् आयतं च तेन रणितेन शब्देन अनुवर्त्यमानः अनुगम्यमानः इव, स्वभावतः प्रकृत्या गद्गदेन गद्गदरूपेण अव्यक्तेनेत्यर्थः भवनस्य हंसानां सितच्छदानां कलेन अव्यक्त-मधुरेण रवेण शब्देन मुहुः मुहुः पुनः पुनः विच्छिद्यमानः व्याहन्यमानः त्रोटयमान इति यावत् इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षायाम्, श्रोत्र-प्रवेशिना कर्णप्रविष्टेन गमनस्य प्रस्थानस्य या वेला समयः तस्यां प्रणामे चन्द्रापीडं प्रति क्रियमाणे अभिवादने सम्भ्रान्तस्य त्वरितस्य वाराङ्गनाजनस्य वेश्यानां चलानि चंचलानि वलयानि कटकानि च नूपुराणि मञ्जीराणि च रसनाः मेखलाश्च तासां कलकलेन कोलाहलेन निर्धार्यमाणः निश्चीयमानः शंखध्वनिना सह नमस्यितुं सत्वरं गच्छन्तीनां वेश्यानाम् अलंकाराणां झणत्कारं श्रुत्वा लोकाः राजकुमारः प्रतिष्ठते इति निश्चयम् अकुर्वन् इति भावः, तारः उच्चः दीर्घतरः आयततरः शङ्खस्य ध्वनिः नादः उदतिष्ठत् उत्थितः। **अनन्तरं**–शङ्खध्वनेः उत्थानान्तरम् च उत्थाप्यमानैः उत्थातुं प्रेर्यमाणैः एतत् अन्यानि च द्वितीयान्तानि 'तुरङ्गम–सहस्रैः' इत्यस्य विशेषणानि, उत्थितैः कृतोत्थानैः च आकृष्यमाणैः आकर्षणविषयीक्रियमाणैः आकृष्टैः कृताकर्षणैः च, आरोप्यमाणं स्थाप्यमानं पर्याणं पल्ययनं येषु तैः पर्याणि तैः पर्याणं सञ्जातम् एषाम् इति तथोक्तैः (पर्याण+इतच्) धृतपर्याणैः आनीयमानैः इत्यर्थः, च नीयमानैः नयनविषयीक्रियमाणैः

स्थानों में चारों ओर घूमती जैसी, उद्यानों के निकुञ्जों में प्रवेश करती हुई-जैसी, महलों के भीतर बढ़ती हुई जैसी, तत्क्षण जगाये गए गृह-कमलिनियों के सारस-पक्षियों का खूब ऊँचा और दीर्घ शब्द अपने पीछे लिये हुई-जैसी, भवन के राजहंसों के स्वभावतः अव्यक्त और मधुर शब्द से बार-बार तोड़ी जाती हुई-जैसी, कानों में पड़ी प्रस्थान के समय प्रणाम करने हेतु शीघ्रता से आती हुई वाराङ्गनाओं के कड़े नूपुर और करधनी की झनझनाहट से (यात्रार्थ) निश्चित की जाती हुई-जैसी, ऊँची और खूब लम्बी शंख-ध्वनि उठी। तदनन्तर उठाए जा रहे और उठे हुए, खींचे जा रहे और खींचे हुए, काठी पहनाए जा रहे और काठी पहने, ले जा रहे और लाए जा रहे, (दूसरों को) सौंपे जा रहे और (दूसरों से) छीने जा रहे, आ

---

१. नगवनगह्वरेषु।

पूजितैश्च पङ्क्तिस्थितैश्च वाह्यमानैश्च तिष्ठद्भिश्च प्रतिपालयद्भिश्चाप[२]र्याप्तराजद्वाराङ्गणरप्रभूत-चत्वरैर्निस्तुच्छितसकलरथ्यान्तरतयान्तर्बहिश्च संकटायमाननगरीविस्तारैस्तुरंगमसहस्रै-स्तत्क्षणं कुन्तवनमयमिवान्तरिक्षं खुररवमयीव मेदिनी हेषारवमयानीव श्रोत्रविवराणि फेनपिण्डस्तबकमयमिव युवराजभवनद्वाराङ्गणं खलीनरवमय्य इव दश दिशः, अश्वा-लंकाररत्नप्रभामया इवाभवञ्छशाङ्करश्मयः। अचिराच्च गृहीतसमायोगोऽङ्गणगतमिन्द्रा-युधमारुह्य पुरस्ताच्चलितेनालोकहेतोर्द्वितीयचन्द्रमण्डलेनेव हंसधाम्ना मङ्गलातपत्रेणा-वेद्यमाननिर्गमो यथादर्शनमितस्ततस्तुरंगगतैरेव प्रणम्यमानो राजपुत्रसहस्रैः प्रसुप्त-

आनयनविषयीक्रियमाणैः च विलम्ब्यमानैः (अन्येषां हस्तेषु) दीयमानैः, (विलम्भस्त्वतिसर्जनम्" इत्यमरः) गृह्यमाणैः च, आगच्छद्भिः आगमनं कुर्वद्भिः आगतैः समागतैः च पूज्यमानैः पूजाविषयीक्रियमाणैः पूजितैः अर्चितैः च पङ्क्तिस्थितैः श्रेणिबद्धैः च वाह्यमानैः चाल्यमानैः च तिष्ठद्भिः स्थितिं कुर्वद्भिः च, प्रतिपालयद्भिः प्रतीक्षमाणैः न पर्याप्तं यथेष्टं राजद्वारस्य अङ्गणं प्राङ्गणं येभ्य तथाभूतैः राजद्वारे असीमित संख्यायां स्थितैः इत्यर्थः न प्रभूतं विपुलं विशालमिति यावत् चत्वरं चतुष्पथं येषां तैः अर्थात् तेषां कृते चत्वरं लघूभूतमासीत् निःशेषेण तुच्छितानि तुच्छीकृतानि सकलानां समस्तानां रथ्यानां वीथीनाम् अन्तराणि मध्यानि यैः, तेषां भावः तत्ता तया लंघितुं रथ्याः तेषां कृते तुच्छाः आसन्निति भावः, एतत्कारणात् अन्तः मध्ये बहिश्च संकटायमानः संकीर्णीभवन् इव नगर्याः उज्जयिन्याः विस्तारः प्रसारः येभ्यः तैः तुरङ्गमाणां तुरगाणां सहस्रैः सहस्रशः तुरगैरित्यर्थः स चासौ क्षणः तम् (कालाध्वनो-रत्यन्तसंयोगे द्विः) अन्तरिक्षं गगनं कुन्तानां मल्लानां वनम् अरण्यम् एवेति० मयम् अश्वारोहिसैनिकहस्तस्थितानां कुन्तानां बाहुल्यात् आकाशं कुन्तवनमिव दृश्यते स्मेति भावः, मेदिनी पृथिवी खुराणां शफानां रवः शब्दः तन्मयी इव, श्रोत्राणां कर्णानां विवराणि छिद्राणि हेषा हेषा अश्वशब्द इति यावत् तासां रवः एवेति तन्मयानि इव, युवराजस्य चन्द्रा-पीडस्य भवनद्वारस्य गृहद्वारस्य अङ्गणं प्राङ्गणं फेनस्य हिण्डीरस्य अश्वमुखपतितकफस्येति यावत् ये पिण्डाः गोलकानि तेषां स्तबकानि गुच्छानि एवेति तन्मयम् इव, दश दिशः दिशाः खलीनानां कविकानां यः रवः शब्दः एवेति तन्मयाः इव, शशाङ्कस्य चन्द्रमसः रश्मयः किरणाः अश्वानां तुरङ्गमाणाम् अलंकारेषु यानि रत्नानि मणयः तेषां प्रभाः कान्तयः एवेति तन्मया इव अभवन् जाताः। उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा। **अचिराच्च**-अचिरात् शीघ्रमेव गृहीतः अस्तः समायोगः संविधानं येन तथाभूतः कृतयात्राप्रबन्धः इत्यर्थः चन्द्रापीडः अङ्गणे प्राङ्गणे गतं स्थितम् इन्द्रायुधम् आरुह्य तस्मिन् आरोहणं कृत्वा पुरतः अग्रतः चलितेन गतेन आलोकस्य प्रकाशस्य हेतोः कारणात् द्वितीयं चन्द्रमण्डलं शशिमण्डलं तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् हंसवत् धाम कान्तिः यस्य तेन, (लुप्तोपमा) मङ्गलेन शुभसूचकेन आतपत्रेण छत्रेण आवेद्यमानः संसूच्यमानः निर्गमः प्रस्थानं

रहे और आए हुए, पूजे जा रहे और पूजे हुए पंक्ति में खड़े, हाँके जा रहे, खड़े हुए, प्रतीक्षा कर रहे, राजद्वार के प्रांगण में न समाते हुए, चौराहों को छोटा बनाते हुए, सभी गलियों के मध्यभागों को तुच्छ बना देने के कारण नगरी के भीतर-बाहर (सब कुछ) सँकरा बनाते हुए हजारों घोड़ों से उस समय आकाश भालों का वन बना हुआ जैसा, पृथिवी खुरों की चाप-ध्वनि से तन्मय बनी जैसी, कानों के छिद्र हिनहिनाहट से तन्मय हुए जैसे, युवराज के गृहद्वार का आँगन झाग के गोलों के गुच्छों से तन्मय हुआ-जैसा, दशों दिशायें लगामों की खटखटाहट से तन्मय बनी जैसी और चन्द्रमा की किरणें घोड़ों के भूषणों में लगे रत्नों की छटा से तन्मय जैसी हो उठीं। थोड़ी ही देर में तैयारी किये, आँगन में स्थित इन्द्रायुध पर सवार होकर आगे आगे चल रहे, चमकते रहने से दूसरा चन्द्रमण्डल-जैसा प्रतीत हो रहे, हंस की-सी कान्ति वाले, मांगलिक छत्र द्वारा गमन की सूचना दिया जाता हुआ, घोड़ों पर सवार हजारों राजपुत्रों द्वारा

२. पर्याप्त।

पुरजनतयासंबाधेनापि राजवर्त्मना बहुत्वात्तुरंगमबलस्य कृच्छ्रलब्धसंचारः कथं कथमपि निर्जगाम नगर्याः। निर्गत्य चादूरत एव निर्भरत्वाज्ज्योत्स्नापूरस्याच्छतया च दुर्विभाव्यपानीयामुपरि कलकूजितानुमीयमानोत्त्रस्तहंससार्थोत्पतनव्यतिकरां पुलिनायमानामिव सर्वतो जडतरतरंगानिलस्पर्शमात्रोपलक्ष्यसलिलसंनिधिमुत्तीर्य सिप्रामतिप्रहतत्वादसंकटत्वाच्च वर्धयतेव गमनोत्साहमतिविस्तीर्णेनापि पुनर्विस्तारितेनेव चन्द्रपादैर्दशपुरगामिना मार्गेण प्रावर्तत गन्तुम्।

अथोह्यमानैरिव रयवाहिना सकलदिङ्मुखप्रसृतेन ज्योत्स्नाजलस्रोतसा वैशम्पायनालोकनत्वरितस्य चन्द्रापीडमानसस्यैव तुल्यं वहता जङ्घानिलेनेन्द्रायुधस्याकृष्यमाणै-

---

यस्य तथाभूतः यथा दर्शनं यथा युवराजस्य दर्शनं स्यात् तथेत्यर्थः इतस्ततः तुरङ्गगतैः अश्वारूढैः एव राजपुत्राणां सहस्रैः सहस्र-संख्याभिः प्रणम्यमानः क्रियमाण—प्रणामः, प्रसुप्तः निद्रितः पुरजनः पौराः यत्र तस्य भावः तत्ता तया असंबाधेन असंकटेन जन-शून्येनेत्यर्थः अपि राजवर्त्मना राजपथेन तुरङ्गम-बलस्य अश्व-सैन्यस्य बहुत्वात् विशालत्वात् कृच्छ्रेण कठिनतया लब्धः प्राप्तः सञ्चारः सञ्चरणं येन तथाभूतः कथंकथमपि केनापि प्रकारेण नगर्याः नगरीतः निर्जगाम निर्गतः। **निर्गत्य—**निर्गत्य निष्क्रम्य ज्योत्स्नायाः चन्द्रातपस्य पूरस्य प्रवाहस्य निर्भरत्वात् बाहुल्यात् अच्छतया स्वच्छतया च दुः दुःखेन विभाव्यमानं ज्ञायमानं पानीयं जलं यस्याः तथाभूतां 'शिप्राम्' इत्यस्य विशेषणानि, उपरि उपरिष्ठात् कलम् अस्पष्टं मधुरं यत् कूजितं विरावः तेन अनुमीयमानः अनुमितिविषयीक्रियमाणः उत्त्रस्तस्य भीतस्य हंसानां सार्थस्य समूहस्य उत्पतनस्य उड्डयनस्य व्यतिकरः घटना यत्र तथाभूताम्, पुलिनायमानाम् पुलिनवत् सैकततीरवत् आचरन्तीम् इव चन्द्रिकाप्रकाशे जल-पुलिनयोः भेदाग्रहात् सर्वापि शिप्रानदी विशाल-पुलिनवत् दृश्यते स्मेतिभावः, सर्वतः परितः जडतरः अतिशयेन शीतः यः तरङ्गः कल्लोलः तस्य अनिलस्य पवनस्य स्पर्शमात्रेण संयोगमात्रेण उपलक्ष्यः ज्ञातुं शक्यः सलिलस्य जलस्य संनिधिः सांनिध्यं यस्याः तथाभूतां शिप्रां एतन्नाम्नीं नदीम् उत्तीर्य लंघयित्वा अतिशयेन प्रहतत्वात् क्षुण्णत्वात्, असंकटत्वात् असंकीर्णत्वात् विस्तृतत्वादिति यावत् गमनस्य यात्रायाः उत्साहम् उद्योगं वर्धयता वृद्धिं प्रापयता इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अतिविस्तीर्णेन अतिविस्तृतेन अपि सता चन्द्रस्य पादैः किरणैः पुनः विस्तारितेन विस्तारं प्रापितेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दशपुरम् एतदाख्यनगरीं गच्छति यातीति तथोक्तेन वर्त्मना मार्गेण गन्तुं यातुं प्रावर्तत प्रवृत्तोऽभवत्। **अथो०—**रयेण वेगेन वहतीति तथोक्तेन सकलानि च तानि दिङ्मुखानि दिग्भागा इत्यर्थः तेषु प्रसृतेन विस्तृतेन ज्योत्स्ना चन्द्रिका एव जलं सलिलम् [रूपकालङ्कारः] तस्य स्रोतसा प्रवाहेण उह्यमानैः नीयमानैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् 'वाजिभिः' इत्यस्य विशेषणम्, वैशम्पायनस्य आलोकनं दर्शनं तदर्थं त्वरितस्य त्वरां कृतवतः उत्सुकस्येत्यर्थः चन्द्रापीडस्य मानसस्य मनसः तुल्यं सदृशं वहतः चलतः

इधर-उधर से दर्शन पाकर प्रणाम किया जाता हुआ चन्द्रापीड पुरवासियों के सोए हुए रहने के कारण राजपथ के भीड़भाड़-रहित होने पर भी अश्वारोही सेना के बड़ी भारी होने के कारण कठिनाई से चलते हुए किसी तरह नगरी से बाहर निकल गया। और निकलकर सिप्रा नदी को, जिसके पास में होने पर भी चाँदनी की बाढ़ की अधिकता और स्वच्छता के कारण जल का पता नहीं चल रहा था, जिसके उपर भयभीत हंस-समूह के उड़ने की घटना का अनुमान उनकी मधुर शब्द से ही किया जा रहा था, जो रेतीले तीर-जैसी लग रही थी और जिसमें जल के सांनिध्य का ज्ञान ठंडी-ठंडी तरंगों की हवा के स्पर्शमात्र से हो रहा था, पार करके अधिक यातायात वाला तथा खुला होने के कारण यात्रा हेतु उत्साह बढ़ाते हुए-जैसे, खूब विस्तृत होने पर भी चन्द्रकिरणों द्वारा फिर (और) विस्तृत किये गए जैसे दशपुर को जाने वाले मार्ग से चन्द्रापीड़ चलने लगा।

इसके बाद वेग से बहने वाले, सभी दिग्भागों में फैले, चन्द्रिका-रूपी जल के प्रवाह

रिव वाजिभिस्तावत्यैवापररात्रवेलया योजनत्रितयमेवालङ्घ्यत। अथाध्वश्रमापहरणायेव प्रवृत्त वातुमाह्लादकारिणि निर्भरज्योत्स्नाजलावगाहादार्द्रार्द्रस्पर्शेऽवश्यायसीकरवर्षिणि[1] रजोलुलितविविधवनपल्लवानिलवीजिते विनिद्रकुमुदिनीपरिमललग्नपरिमले परिमलाहितजडिम्नि रजनिविरामपिशुने मातरिश्वनि, क्रमेण चापरदिग्वधूवदनचुम्बिनि तदा कल्पकाले च दुर्विषहशर्वरीविरहचिन्तयेवासन्नदिनकरोदयविषादेनेवाप्रदोषादुत्तानितमुखैः कुमुदराशिभिरापीयमानस्य धाम्नः परिक्षयेणेव सर्वाम्बरसरःपयःपायिपयोदविभ्रमाश्वरजःसंघातोपघातेनेव पाण्डुतामुपगतवति चन्द्रबिम्बे, प्रत्यग्रगगनलक्ष्मीवियोग-

---

इन्द्रायुधस्य जंघानां प्रसृतानाम् अनिलेन वायुना आकृष्यमाणैः बलात् नीयमानैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् त्वरित-गामिना हि मन्दगामी आकृष्यते एव, वाजिभिः अश्वैः तावत्या तावन्मात्रया एव अपरस्य रात्रिपरभागस्य वेलया समयेन योजनानां त्रितयं त्रयम् अर्थात् त्रीणि योजनानि द्वादश 'मीलानी'त्यर्थः एव अलंघयन् लंघितवान्। **अथाध्व०**—अध्वनः मार्गस्य श्रमः क्लमः तस्य अपहरणाय दूरीकरणाय इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आह्लादम् आनन्दं करोतीति तथोक्ते 'मातरिश्वनि' इत्यस्य विशेषणानि, निर्भरम् अत्यन्तं यथा स्यात्तथा ज्योत्स्ना एव जलं सलिलं (रूपकम्) तस्मिन् अवगाहात् स्नानात् आर्द्रः आर्द्रः (अतिशये द्वित्वम्) अत्यार्द्रः अतिक्लिन्नः स्पर्शः यस्य तस्मिन्, अवश्यायः तुषारः तस्य सीकरान् कणान् वर्षतीति तथोक्ते, रजोभिः पुष्पधूलिभिः लुलितानि स्पृष्टानि यानि विविधानां वनानाम् अरण्यानां पल्लवानि किसलयानि तेषाम् अनिलेन पवनेन वीजिते प्रेरिते इत्यर्थः, विनिद्राः विकसिताः याः कुमुदिन्यः कैरविण्यः तासां परिमलः परिमलनं परिमर्दनमिति यावत् तेन लग्नः संसक्तः परिमलः सौरभं यस्मिन् तस्मिन् (यमकम्), परिमलेन सौगन्ध्येन आहितः जनितः जडिमा शैत्यं यस्मिन् तस्मिन्, रजनेः रात्र्याः यः विरामः अवसानं तस्य पिशुने सूचके मातरिश्विनि वायौ वातुं चलितुं प्रवृत्ते प्रारब्धे सत्सप्तमी, **क्रमेण**—क्रमेण शनैः-शनैः अपरा या दिक् पश्चिमदिशेत्यर्थः एव वधूः नायिका तस्याः वदनं मुखं चुम्बतीति तथोक्ते, तदा तस्मिन् काले प्रभाते इत्यर्थः कल्पकाले प्रलयकाले च दुःखेन विषोढुं शक्य इति दुर्विषहः यः शर्वर्याः निशायाः विरहः वियोगः तस्य चिन्तया दुःखेन इव, आसन्नः सन्निहितः यः दिनकरस्य सूर्यस्य उदयः उद्गमः तेन यः विषादः खेदः तेन इव, आप्रदोषात् प्रदोषः सायंकालः तस्मात् आरभ्य उत्तानितानि ऊर्ध्वीकृतानि मुखानि आननानि यैः तथाभूतैः कुमुदराशिभिः कुमुदाकरैः आपीयमानस्य समन्तात् पानविषयीक्रियमाणस्य धाम्नः तेजसः परिक्षयेण विनाशेन इव, सर्वं निखिलम् अम्बरम् आकाशम् एव सरः तडागः तस्य पयः जलं पिवन्तीति तथोक्ताः, मेघा इत्यर्थः तेषां विभ्रमः भ्रमणम् इव विभ्रमः यस्य तथाभूतः य अश्वानां तुरगाणां रजसां, संघातः समूहः तेन उपघातेन आक्रमणेन सम्पर्केणेत्यर्थः इव चन्द्रस्य बिम्बे मण्डले पाण्डुतां

द्वारा ले जाए जाते हुए-जैसे, वैशम्पायनको देखने हेतु त्वरा किये चन्द्रापीड के मन की तरह जा रहे, इन्द्रायुध की जंघाओं की हवा से खींचे जा रहे-जैसे घोड़ों से रात्रि-परभाग के उतने ही समय के भीतर चन्द्रापीड़ बारह मील ही पार कर पाया। फिर आनन्द-दायक, चन्द्रिका-रूपी जल में खूब अवगाहन करने से स्पर्श में अत्यन्त गीले नीहार-कणिकाओं को बरसाने वाले, विविध वनों के पराग-मिश्रित पल्लवों की हवा से प्रेरित, विकसित कुमुदिनियों को कुचल डालने से (उनकी) सुगन्ध लिये, सुगन्ध द्वारा अपने भीतर ठंडक रखे (और) रात्रि-समाप्ति की सूचक वायु बहने लगी। पश्चिम दिशा-रूपी वधू का मुँह चूमने वाला, उस समय (प्रातः) तथा प्रलय-काल में निशा होने वाले दुःसह वियोग के दुःख से मानो (अथवा) संनिहित सूर्योदय के विषाद से मानो (अथवा) सायंकाल से लेकर ऊपर के विषाद से मानो (अथवा) सायंकाल से लेकर ऊपर मुँह किये कुमुद-समूहों द्वारा खूब पीए जा रहे तेज के क्षीण हो

---

१. सीकरवर्षिणि।

संतापोज्झिते धवलोत्तरीयांशुक इव शशाङ्कलग्ने गलति चन्द्रिकालोके, अपरजलधिपातिना ज्योत्स्नाजलप्रवाहेणेव सहसा फेनबुद्बुदावलीष्विव नश्यन्तीषु तारकापंक्तिषु. गलदवश्यायसलिलक्षालनादिव शनैः शनैर्दलितमुक्तागौरज्योत्स्नानुभावमुत्सृजन्तीष्वाशासु, पुनर्विभाव्यमानसहजश्यामकान्तिषु सलिलादिवोन्मज्जत्सु तरुलताविटपेषु, समुल्लसति पूर्वदिग्वधूकर्णपूररक्ताशोकपल्लवेऽम्बरसरस्तामरसे दिवसमुखकरिकुम्भसिन्दूररेणौ तरणिरथरक्तध्वजांशुके सन्ध्यारागे, सन्ध्यातपचरितान्तेष्वालग्नदावानलेष्विव वय सङ्घातैर्जनितारावमुत्सृज्यमानेषु निवासपादपेषु, सशेषनिद्रालसैश्चिरप्रसारणाविशदजङ्घाङ्घ्रिभिर्हं-

पीतताम् उपगतवति प्राप्तवति सति, **प्रत्यग्र**—प्रत्यग्रः नवीनः सद्य एव जायमानः इत्यर्थः यः गगनलक्ष्म्याः आकाशश्रिया वियोगः विरहः तेन यः सन्तापः ज्वरः, तस्मात् कारणात् उज्झिते त्यक्ते धवलं शुक्लं यत् उत्तरीयांशुकम् उपरिवस्त्रं तस्मिन् इव ज्वराक्रान्तो हि वस्त्रम् उष्मकारणात् असहमानः परिक्षिपति, शशाङ्के चन्द्रमसि लग्ने सम्बद्धे चन्द्रिकालोके ज्योत्स्ना-प्रकाशे गलति क्षरति, **अपर**—अपरः पश्चिमः यः जलधिः समुद्रः तस्मिन् पततीति तथोक्तेन ज्योत्स्ना एव जलं तस्य प्रवाहेण इव सहसा त्वरितमेव फेनस्य ये बुद्बुदाः डिंबिकाः तेषाम् आवलीषु पंक्तिषु इव तारकाणां नक्षत्राणां पङ्क्तिषु श्रेणीषु नश्यन्तीषु विलयं गच्छन्तीषु सतीषु, **गलद०**—गलन् क्षरन् यः अवश्यायः तुषारः तेन क्षालनात् धावनात् इव शनैः शनैः क्रमेण दलिताः चूर्णीकृताः याः मुक्ताः मौक्तितानि तद्वत् गौरा गौरवर्णा या ज्योत्स्ना चन्द्रिका तस्याः अनुभावं प्रभावम् आशासु दिशासु उत्सृजन्तीषु त्यजन्तीषु सतीषु, **पुनर्वि०**—पुनः विभाव्यमाना ज्ञायमाना सहजा स्वाभाविकी श्यामा कृष्णवर्णा कान्तिः शोभा येषां तथाभूतेषु तरवः वृक्षाश्च लताः वल्ल्यश्च विटपाः शाखाश्चेति तेषु सलिलात् जलात् उन्मज्जत्सु उपरि आगच्छत्सु सत्सु इव, **पूर्व०**—पूर्वदिक् पूर्वदिशा एव वधूः नायिका तस्याः कर्णपूररूपः कर्णाभरणरूपः रक्ताशोकस्य पल्लवः किसलयः तस्मिन्, अम्बरम् गगनम् एव सरः सरोवरः तस्मिन् तामरसे रक्तोत्पले, दिवसस्य मुखम् अग्रम् एव करिणः गजस्य कुम्भः गण्डस्थलं तस्मिन् सिन्दूरस्य रेणुः रजः तस्मिन्, तरणिः सूर्यः तस्य रक्तध्वजस्य रक्तवर्णवैजन्त्याः अंशुके वस्त्रे, (उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षानन्तरम् अत्र रूपकमाला एव) सन्ध्यारागे प्रातःसन्ध्या-रक्तिम्नि समुल्लसति रोचमाने सति, सन्ध्यातपेन सन्ध्यारागेण चरिताः व्याप्ताः अन्ताः अग्राणि येषां तथाभूतेषु अतएव आलग्नः समन्तात् सम्बद्धः दावानलः वनाग्निः येषु तेषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् निवासपादपेषु नीडाश्रयवृक्षेषु वयसां पक्षिणां संघातैः समूहैः जनितः कृतः आरावः शब्दः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा उत्सृज्यमानेषु त्यज्यमानेषु सत्सु, **सशेष०**—शेषेण सहिता सावशेषा अपूर्णा इत्यर्थः या निद्रा स्वापः तया अलसैः आलस्यपूर्णैः चिरात्

जाने से मानो (अथवा) निखिल गगन-रूपी सरोवर का जल पीने वाले मेघों की तरह घूम रहे घोड़ों के धूलि-समूहों के सम्पर्क से मानो चन्द्रमण्डल धीरे-धीरे पीला पड़ने लग गया; गगनलक्ष्मी के ताजा वियोग से हो रहे ज्वर के कारण फेंक दी गई श्वेत चादर की तरह चन्द्रमा की ज्योत्स्ना-छटा गिरने लगी; पश्चिम समुद्र में गिर रहे जोत्स्ना-रूपी जल के प्रवाह से मानों फेन के बुलबुलों की श्रेणियाँ-सी तारों की पंक्तियाँ विलुप्त होने लगीं; गिरते हुए ओस-जल द्वारा धो दिए जाने के कारण मानों दिशायें एकाएक मोतियों के चूरे की तरह श्वेत ज्योत्स्ना का प्रभाव छोड़ने लगीं; फिर दिखाई दे रहे स्वाभाविक काली छटा वाले वृक्ष, लतायें और शाखायें पानी के भीतर से जैसे ऊपर आने लगीं; पूर्व दिशारूपी नायिका का कर्णभूषण बना रक्ताशोक का पल्लव, आकाशरूपी सरोवर का रक्त कमल, दिनोदयरूपी हाथी के गण्डस्थल का सिन्दूर-रज और सूर्य के ध्वज का वस्त्र-रूप प्रातः सन्ध्या का लाल रंग दमकने लगा; सन्ध्या की लाली से व्याप्त अग्रभागों वाले (अपने) निवास-वृक्षों को पक्षि गण कोलाहल मचाकर छोड़ने लगे मानो उनमें वनाग्नि लग गई हो; नींद पूरी न होने के कारण अलसाये, देर तक पसारे रहने से अकड़े हुए

ठादाकृष्टदीर्घपदसञ्चारिभिर्मृगकदम्बकैरुन्मुच्यमानासूषरशय्यासु, इच्छावखण्डितोत्खातपल्वलोपान्तप्ररूढमुस्ताग्रन्थिष्वरण्यगह्वराभिमुखेषु, वराहयूथेषु, निशावसानप्रचारनिर्गतैर्गोधनैरितस्ततो धवलायमानासु ग्रामसीमान्तारण्यस्थलीषु, आलोक्यमानजनपदविनिर्गमेषु प्रसूयमानेष्विव ग्रामेषु, यथार्ककिरणावलोकोद्गमं चोन्नाम्यमान इव पूर्वदिग्भागे, समुत्सार्यमाणास्विवाशासु, अपसर्पत्स्विवारण्येषु, विस्तार्यमाणास्विव ग्रामसीमासु, उत्तानीभवत्स्विव सलिलाशयेषु, अवच्छिद्यमानेष्विव शिखरिषु; उद्ध्रियमाणायामिव मेदिन्याम्, अदृश्यतामिवोपयान्तीषु कुमुदिनीषु, तिरोधानकारिणीं नीलतिरस्करिणीमिव करैरुत्सार्य तिमिरमालां विरहविधुरां कमलिनीमिवालोकयितुमुदयगिरिशिखरमारूढे

प्रसारणेन विस्तारणेन अविशदाः अनिर्वृताः जङ्घाः प्रसृताः च अङ्घ्रयः पादाः च येषां तैः, हठात् बलात् आकृष्टः यः दीर्घपदः दीर्घपादक्रमः तेन सञ्चरन्तीति तथोक्तैः, मृगाणां हरिणानां कदम्बैः समूहैः ऊषरा ऊषवती कठिनमृण्मयीति यावत् या शय्या शयनीयं तासु उन्मुच्यमानासु त्यज्यमानासु सतीषु, **इच्छा०**—इच्छया यथेच्छम् अवखण्डिताः विदारिताः उत्खाता उत्पाटिताश्च पल्वलानां तडागानाम् उपान्ते समीपे प्ररूढानाम् उत्पन्नानां मुस्ताकानां ग्रन्थयः पर्वाणि यैः तेषु वराहाणां शूकराणां यूथेषु समूहेषु अरण्यानां वनानां गह्वराणां गहनानाम् अभिमुखेषु संमुखेषु गहनवनान्तःप्रवेशोन्मुखेषु इति यावत् सत्सु, **निशा०**—निशायाः रात्रेः यत् अवसानं समाप्तिः तस्मिन् यः प्रचारः विचरणं तदर्थं निर्गतैः निष्क्रान्तैः, गोधनैः गोयूथैः इतस्ततः यत्र तत्र ग्रामाणां सीमायाः अन्ते प्रान्ते यानि अरण्यानि वनानि तेषां स्थलीषु प्रदेशेषु धवलायमानासु श्वेतायमानासु सतीषु, आलोक्यमानः दृश्यमानः जनानां लोकानां पदानां पादानां विनिर्गमः निर्गमनं येभ्यः तथाभूतेषु ग्रामेषु प्रसूयमानेषु प्रसवं कुर्वत्सु, इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रसवेऽपि प्रथमं बालस्य पादविनिर्गम एव भवति, अर्कस्य सूर्यस्य किरणानां रश्मीनां यः अवलोकः आलोकः तस्य उद्गमम् उदयनम् अनतिक्रम्य इति यथा तथा पूर्वदिशः मुखे अग्रे च उन्नाम्यमाने उच्चैः क्रियमाणे इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आशासु दिशासु समुत्सार्यमाणासु दूरीक्रियमाणासु इव, अरण्येषु काननेषु अपसर्पत्सु दूरं गच्छत्सु इव, ग्रामाणां सीमासु विस्तार्यमाणासु विस्तारं प्राप्यमाणासु सतीषु, सलिलस्य जलस्य आशयेषु आश्रयेषु उत्तानीभवत्सु ऊर्ध्वीभवत्सु इव, शिखरिषु पर्वतेषु अवच्छिद्यमानेषु पृथक् पृथक् क्रियमाणेषु रात्रौ तेषाम् एकीभूतत्वात् इव, मेदिन्यां पृथिव्याम् उद्ध्रियमाणायाम् उपरि आनीयमानायां रात्रौ तस्या विलोपात् इव, कुमुदिनीषु कैरविणीषु अदृश्यतां चक्षुर्विषयत्वाभावं उपयान्तीषु गच्छन्तीषु दिने तासां निमीलनात् इवेति, सर्वत्रोत्प्रेक्षा, **तिरोधान०**—तिरोधानं व्यवधानम् अन्तर्धानमिति यावत् करोतीति तथोक्तां नीलां श्यामवर्णां तिरस्करणीं जवनिकाम ['प्रतीक्षीरा जवनिका स्यात् तिरस्करिणी च सा' इत्यमरः] इवेत्युपमायाम्, तिमिरमालाम् तमःश्रेणीं करैः किरणैः एव करैः हस्तैः उत्सार्य दूरीकृत्य विरहेण

घुटनों और पैरों वाले, बलात् लंबे-लंबे पैर खींच कर चलते हुए मृगों के झुण्ड बंजड़ भूमि की शय्याओं को छोड़ने लगे, जोहड़ों के निकट उगे मोथे की गाँठों को इच्छानुसार तोड़ते-उखाड़ते हुए सूअर जंगलों के झुरमुटों की ओर जाने लगे; रात बीतने पर विचरण हेतु निकले गायों के झुंडों से ग्राम-सीमान्तों की वनस्थलियाँ यत्र-तत्र सफेद होने लगीं; गाँवों से बाहर लोगों के पैर निकलते देख ऐसा लगता था मानो वे (गाँव) प्रसव कर रहे हों। ज्यों-ज्यों सूर्य की किरणों का प्रकाश निकलता, त्यों-त्यों ऐसा प्रतीत होने लगता मानो पूर्व-दिशा का भाग ऊपर उठाया जा रहा हो, दिशायें मानो दूर-दूर हटाई जाने लगीं; वन दूर जैसे जाने लगे, गाँवों की सीमायें विस्तृत जैसी की जाने लगीं; जलाशय ऊपर जैसे उठने लगे; पर्वत पृथक्-पृथक् किये जाने लगे, कुमुदनियाँ गायब जैसी होने लगीं; काले परदे की तरह ढक देने वाली अन्धकार-श्रेणी कर (किरण) रूपी करों (हाथों) से हटाकर विरहाकुल कमलिनी को देखने हेतु-जैसे

भगवति सप्तलोकचक्षुषि सप्तवाहे, विहायस्तलमुद्भास्य दिगन्तराण्युद्भासयन्तीषु सकलजगद्दीपिकासु दिवसकरदीधितिषु, दृष्टिप्रसरक्षमायां वेलायां सहसैवाग्रतोर्धगव्यूतिमात्र इव रात्रिप्रयाणकायातम्, अन्तःक्षोभभीतेन रसातलेनेवोद्गीर्यमाणम्, असोढसङ्घातभरया मेदिन्येव विक्षिप्यमाणम्, अपर्याप्तप्रमाणाभिर्दिग्भिरिव संह्रियमाणम्, अपरिमाणरजोनिरोधाशङ्कितेन गीर्वाणवर्त्मनेवावकीर्यमाणम्, अर्कावलोकेनेव सह विस्तीर्यमाणम्, आयासितायततरदृष्टिभिरप्यदृष्टपर्यन्तम्, अनुजीविभूभृच्छतसहस्रकल्पितावष्टम्भं सञ्चारिणं

वियोगेन विधुरां विह्वलां कमलिनीं पद्मिनीम् आलोकयितुं द्रष्टुम् इव भगवति माहात्म्यवति सप्त च ते लोकाः भूः, भुवः, स्वः, जनः, महः, तपः, सत्यमित्यात्मकाः तेषां चक्षुषि नयने चक्षुर्वत् सर्वेषामपि लोकानां प्रकाशके इत्यर्थः सप्त च ते वाहाः तुरगाः यस्य तथाभूते सूर्ये इत्यर्थः ['भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्व०' इत्यमरः] उदयगिरे उदयाचलस्य पूर्वाद्रेः इत्यर्थः शिखरं शृङ्गम् आरूढे प्राप्ते सति, अत्र रूपकश्लेषोत्प्रेक्षासंकरः, विहायसः आकाशस्य तलम् उद्भास्य प्रकाश्य सकलानि च तानि जगन्ति लोकाः त्रिलोकीत्यर्थः तेषां दीपिकासु प्रकाशिकासु दिवसकरस्य दीधितिषु किरणेषु दिशाम् अन्तराणि अभ्यन्तराणि उद्भासयन्तीषु प्रकाशयन्तीषु सतीषु, अत्र रूपकम्, दृष्टेः चक्षुषः प्रसरः स्वविषयग्रहणं तस्मिन् क्षमायां समर्थायां वेलायां समये, **सहसैव**— सहसा एकपदे एव अग्रतः पुरतः अर्धगव्यूतिमात्रे एकक्रोशमात्रे ['गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्' इत्यमरः] इव रात्रौ निशायां प्रयाणं यात्रा एव प्रयाणकं तेन आयातम्, एतत् अन्यानि च द्वितीयान्तपदानि 'स्कन्धावारम्' इत्यस्य विशेषणानि सन्ति, वाक्यं च 'स्कन्धावारमद्राक्षीत्' इत्यस्ति, अन्तः मध्ये यः क्षोभः प्रकम्पः तस्मात् भीतेन त्रस्तेन रसातलेन पातालेन उद्गीर्यमाणम् उद्गीर्णीक्रियमाणम् इव, न सोढः क्षमितः संघातस्य सैन्य-समूहस्य भरः भारः यया तथाभूतया मेदिन्या पृथिव्या विक्षिप्यमाणम् इतस्ततः क्रियमाणम् इव, न पर्याप्तं यथेष्टं प्रचुरमिति यावत् प्रमाणम् इयत्ता यासां तथाभूताभिः दिग्भिः दिशाभिः संह्रियमाणं संक्षिप्यमाणम् इव, विशालसैन्यं स्वसीमायां न मातुं समर्थमिति विचार्य दिशाभिः तत् संक्षिप्तीकृतमिवेति भावः, अपरिमाणम् अपरिमितं यत् रजः धूलिः तेन निरोधः रोधनं तेन आशङ्कितेन कृतशङ्केन गीर्वाणानां देवानां वर्त्म मार्गः आकाशमित्यर्थः तेन अवकीर्यमाणं विक्षिप्यमाणम् ममावकाशो मा रुध्येतेति शंकया आकाशेन विद्राव्यमाणमिवेति भावः, अर्कस्य सूर्यस्य अवलोकः आलोकः तेन सह विस्तीर्यमाणं विस्तारं प्राप्नुवन्तम् इव अर्थात् यथा यथा अर्कालोकः वर्धते तथा तथा सैन्यमपि विस्तृतं दृश्यते अर्कप्रकाशाभावे पूर्णसैन्यस्य दर्शनायोगात्, उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा, आयासिताः आयासं प्रापिताः कारित-प्रयत्ना इति यावत् च आयततराः विस्तृततराः च या दृष्टयः नेत्राणि ताभिः अपि न दृष्टः विलोकितः पर्यन्तः प्रान्तः यस्य तथाभूतम्, **अनुजी०**—अनुजीविनः आश्रिताः अधीनाः इति यावत् ये भूभृतः राजानः एव भूभृतः पर्वताः तेषां शतानां सहस्रैः लक्षैरित्यर्थः कल्पितः कृतः

सप्तलोकों के चक्षु भगवान् सूर्य उदयाचल के शिखर पर चढ़ आए, गगन-तल को विभासित करके सकल जगत् की मशाल-रूप सूर्य-किरणें दिशाओं के अन्तरालों को विभासित करने लगीं; ऐसे समय में जब आँख [सब कुछ] देखने को सक्षम हो गई, चन्द्रापीड़ ने सहसा डेढ़ मील दूर पड़ाव डालते हुए सैन्यसमूह को देख लिया—जो रातों रात चलकर आया था और ऐसा लग रहा था मानो भीतरी क्षोभ से डरे हुए पाताल द्वारा उगला जा रहा हो, समूह का भार न सह सकती हुई पृथिवी द्वारा फेंका जा रहा हो, अपने भीतर न समा सकती हुई दिशाओं द्वारा संक्षिप्त किया जा रहा हो, अपरिमित धूलि द्वारा अवरुद्ध हो जाने की शंका से गगन द्वारा बिखेरा जा रहा हो, सूर्य-प्रकाश के साथ-साथ ही विस्तृत होता जा रहा हो, जिसका अन्त आँखें फाड़ प्रयत्न-पूर्वक देखने पर भी नहीं दीखता था, जो लाखों आश्रित भूभृतों (राजों) रूपी भूभृतों (पर्वतों) द्वारा धारण किया जाता हुआ, चलता-फिरता पृथिवी का

द्वितीयमिव मेदिनीसन्निवेशम्, अजलवाहिनीप्रवेशगम्भीरं प्राणिमयमपरपारमष्टममिव महासमुद्रम्, उद्रिक्तरजःसन्ततेः पूरतया[1] चापरिस्फुटविभाव्यसर्ववृत्तान्तमपीतस्ततो वलितधवलकदलिकोद्भासितानेककरिघटासहस्रसंकुलमविरलबलाकावलीविभ्राजिताम्भोदसंघातं मूर्तिमन्तमिव मेघसमयारम्भम्, आवासभूमिग्रहणसंभ्रमाभिप्रधावितासंख्यकरितुरगनरपरम्परोर्मिसंबाधतयाऽमन्दमन्दरास्फालनलुलितकल्लोलजालाकुलस्य महाजलधेर्लीलया निविशमानं स्कन्धावारमद्राक्षीत्।

दृष्ट्वा चाकरोच्चेतसि—'अहो भद्रकं भवति यद्यचिन्तितागमन एव प्रविश्य वैश-

---

अवष्टम्भः धारणं यस्य तथाभूतं सञ्चारिणं सञ्चरणशीलं द्वितीयम् अपरम् इव मेदिन्याः पृथिव्याः सन्निवेशं रचना-विशेषं रूपमिति यावत् प्रतीयते स्म, **अजल०**—अजला जल-रहिता वाहिनी सेना एव वाहिनी तस्याः प्रवेशेन आगमनेन गम्भीरं गहनं प्राणिमयं प्राणिभिः पूर्णम् सेनापक्षे प्राणिनः अश्वहस्त्यादयः नदी-पक्षे मत्स्यकूर्मनक्रादयः, न परः पारः परवर्ति तटं यस्य तथाभूतम् अष्टमम् सप्तभ्योऽतिरिक्तं महासमुद्रम् महासागरम् इव, अत्रापि श्लिष्ट-रूपकोत्थिता उत्प्रेक्षा, उद्रिक्ता अत्यधिका या रजसां धूलीनां सन्ततिः सन्तानः समूह इति यावत् तस्याः पूरतया प्रवाहतया च (अत्र 'उद्रिक्त-रजःसन्ततिपूरतया' इत्येव सुवचम्), अपरिस्फुटम् अस्पष्टं यथा स्यात्तथा, विभाव्य ज्ञेयः सर्वः सकलः वृत्तान्तः घटनाचक्रं यस्य तम् अपि इतस्ततः यत्र तत्र वलिताः चलिताः फर्फरायिताः इत्यर्थः याः धवलाः श्वेतवर्णाः कदलिकाः वैजयन्त्यः धवजा इति यावत् ['कदली वैजयन्त्यां च रम्भायां हरिणान्तरे' इति विश्वः] ताभिः उद्भासिताः शोभिता इत्यर्थः याः करिणां हस्तिनां घटाः समूहाः तासां सहस्रेण संकुलं पूर्णम् अतएव अविरला घना या बलाकानां वकानाम् आवली पंक्तिः तया विभ्राजितः शोभितः अम्भोदानां मेघानां संघातः समूहः यस्मिन् तथाभूतं मूर्तिमान्तं साकारं मेघसमयस्य वर्षर्तोः आरम्भं प्रारम्भम् इव, अत्र श्वेतत्वात् पताकानां वकपंक्त्या, श्यामत्वाच्च गजानां मेघैः सादृश्यम्, आवासाय निवासाय यत् भूमेः स्थानस्य ग्रहणम् आयत्तीकरणं तस्मिन् संभ्रमेण त्वरया अभिप्रधाविताः चलिताः असंख्याः संख्यातुमशक्याः ये करिणः गजाश्च तुरगाः अश्वाश्च नराः मनुष्याश्चेति तेषां परम्पराणाम् ऊर्मीणां तरङ्गाणामिव संबाधः संमर्दः यस्मिन् तस्य भावः तत्ता तया अमन्दं त्वरितं यत् मन्दरस्य मन्दराचलस्य आस्फालनं मन्थनं तेन लुलितं प्रकम्पितं यत् कल्लोलानां वीचीनां जालं समूहः तेन आकुलस्य पूर्णस्य महाजलधेः महासागरस्य लीलया क्रीडया सादृश्येनेत्यर्थः उपलक्षितः (उपलक्षणे तृ०] निदर्शना, निविशमानं शिविरं स्थापयन्तं स्कन्धावारम् सैन्य-समूहम् अद्राक्षीत् अपश्यत्।

दृष्ट्वा—दृष्ट्वा आलोक्य च चेतसि मनसि अकरोत् अचिन्तयदित्यर्थः चन्द्रापीड इति शेषः—'अहो इति आश्चर्ये भद्रक कल्याणं भवति यदि न चिन्तितम् तर्कितम् आगमनं यस्य

दूसरा रूप-जैसा, बिना जल वाली वाहिनी [सेना] रूपी वाहिनी [नदी] के प्रवेश से गम्भीर बना हुआ बिना परले पार का, आठवाँ महासागर-जैसा, अत्यधिक धूलि-समूह भर जाने कारण सभी वृत्तान्त अच्छी तरह स्पष्ट न दीखने पर भी इधर-उधर चल रहे सफेद ध्वजाओं से विभासित अनेक हाथियों के हजारों समुदायों से पूर्ण, घनी बकपंक्ति से विभासित मेघघटा वाली साकार वर्षाऋतु का प्रारम्भ–जैसा प्रतीत हो रहा था एवं रहने का स्थान बनाने की त्वरा में दौड़े जा रहे असंख्य हाथी घोड़े और मनुष्यों की तरंगों जैसी कतारों से खचाखच भरे रहने के कारण जोर से मन्दराचल के मन्थन से उठी तरंग-समूहों से व्याप्त महासागर की लीला अपना रहा था।

(स्कन्धावार को) देखकर चन्द्रापीड़ के मन में आया कि 'ओह, क्या ही अच्छा हो

---

१. न–सन्ततिदूरतया चापरिस्फुटः।

रूपायमं पश्यामि।' इत्येवं चिन्तयित्वा छत्रचामरादिभिः स्वचिह्नैः सह निवारिताशेषराजपुत्रलोको जवविशेषग्राहिभिस्त्रिचतुरैस्तुरंगमैरनुगम्यमानो मूर्धानमावृत्योत्तरीयेण रयविशेषग्राहिणेन्द्रायुधेन नानाव्यापारव्यग्रसकललोकमचिन्तित एव स्कन्धावारमाससाद। प्रविशंश्च प्रत्यावासकं वहन्नेव 'कस्मिन्प्रदेशे वैशम्पायनावासः' इति पप्रच्छ। ततस्तत्संनिहिताभिः स्त्रीभिरितरत्वादप्रत्यभिज्ञाय यथारब्धकर्मव्यग्राभिरेवोद्बाष्पशून्यवदनाभिः 'भद्र किं पृच्छसि, कुतोऽत्र वैशम्पायनः' इत्यावेद्यमाने 'आः पापाः, किमेवमसंबद्धं प्रलपथ' इति शून्यहृदय इव ताः प्रतारयन्नन्तर्भिन्नहृदयत्वाच्चापराः पृच्छन्नेवमेवोत्त्रस्त इव हरिणशावको यूथपरिभ्रंशविलोलइव करिकलभको धेनुविरहादुत्कर्णं इव तर्णको न

तथाभूत एव अहं प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा वैशम्पायनं पश्यामि अवलोकयामि अर्थात् अज्ञातरूपेण सहसा तं पश्यामि' इति एवं चिन्तयित्वा विचार्य छत्रं चामरम् आदि येषां तथाभूतैः स्वचिह्नैः निजराजत्व-चिह्नैः सह निवारितः प्रतिषिद्धः अशेषः सकलः राजपुत्र-लोकः राजपुत्रजनः येन सः, जवस्य वेगस्य विशेषः अतिशयः तं गृह्णन्तीति तथोक्तैः त्रयश्च चत्वारश्च त्रिचतुराः तैः तुरंगमैः अश्वैः अनुगम्यमानः अनुस्रियमाणः मूर्धानं शिरः उत्तरीयेण संव्यानेन उपरिवस्त्रेणेत्यर्थं आवृत्य आच्छाद्य रयविशेषग्राहिणा अत्यधिकत्वरागामिना इन्द्रायुधेन नाना विविधाः ये व्यापाराः कार्याणि तेषु व्यग्राः व्यासक्ताः सकलाः सर्वे लोकाः जनाः यत्र तथाभूतम् अचिन्तितः अतर्कितः एव स्कन्धावारम् आससाद प्राप। प्रविशन् प्रवेशं कुर्वन् च आवासः एव आवासकः आवासकम् आवासकं प्रति इति प्रत्यावासकम् प्रत्येकावासे इत्यर्थः वहन् गच्छन् एव 'कस्मिन् प्रदेशे स्थाने वैशम्पायनस्य आवासः' इति पप्रच्छ पृष्टवान्। ततः तदनन्तरम् तस्य वैशम्पायनस्य सन्निहिताभिः समीपवर्तिनीभिः तत्सहगामिनीभिरित्यर्थः स्त्रीभिः इतरत्वात् भिन्नत्वात् आगन्तुकस्य स्वपरिचितव्यक्तिभ्यः व्यतिरिक्तत्वादित्यर्थः अप्रत्यभिज्ञाय अप्रतिसन्धाय यथा आरब्धं प्रक्रान्तं कर्म कार्यं तस्मिन् व्यग्राभिः व्यापृताभिः एव उद्गतः वाष्पः अश्रु यस्मात् इति उद्बाष्पं च तत् शून्यं च वदनं यासां ताभिः--'भद्र कल्याणिन्! किं पृच्छसि प्रश्नं करोषि? अत्र स्कन्धावारे वैशम्पायनः कुतः? नास्तीत्यर्थः' इति आवेद्यमाने विज्ञाप्यमाने 'आः इति क्रोधे पापाः पापिन्यः किम् एवं असम्बद्धम् असंगतं प्रलपथ प्रलापं कुरुथ' इति शून्यं हृदयं यस्य सः एव ताः स्त्रीः प्रतारयन् भर्त्सयन् अन्तः मध्ये भिन्नं स्फुटितं हृदयं यस्य तस्य भावः तत्त्वं तस्मात् न अपराः अन्याः स्त्रीः पृच्छन् अनुयुञ्जानः एवम् एव उत्त्रस्तः भीतः हरिणस्य शावकः बाल इव, यूथात् समुदायात् यः परिभ्रंशः पृथग्भावः तेन विलोलः चञ्चलकरिणः गजस्य कलभः पोतः इव, धेनुः गौः तस्याः विरहः वियोगस्तस्मात् स्वमातुर्विच्छेदादिति यावत् उत् ऊर्ध्वं कर्णौ श्रोत्रे यस्य

कि यदि मैं अज्ञात रूप में प्रविष्ट हो वैशम्पायन को देखूँ' यह विचार कर छत्र, चामर आदि अपने (राज-) चिह्नों सहित सभी राजा लोगों को रोक कर, तेज दौड़ने वाले तीन-चार घोड़ों को अपने पीछे लिये, सिर को दुपट्टे से ढककर तेज दौड़ने वाले इन्द्रायुध से चन्द्रापीड नाना काम-धन्धों में लगे लोगों वाले स्कन्धावार में अत्याशित रूप में ही जा पहुँचा। और प्रवेश करता हुआ प्रत्येक आवास-स्थान में जाते-जाते ही पूछता गया कि 'वैशम्पायन का आवास कहाँ है? तदनन्तर वैशम्पायन के साथ की स्त्रियों द्वारा (चन्द्रापीड को) न पहचान कर ऐरा-गैरा होने के कारण अपने छेड़े हुए काम-धन्धों में यथावत् व्यस्त रहते-रहते ही चेहरा आँसू-भरा और सूना बनाये यह सूचना दी जाने पर कि 'भले मानुष, क्या पूछते हो? वैशम्पायन यहाँ कहाँ?' 'ओह! पापिनियों, यह क्या अनाप-शनाप बकती हो?' इस तरह अनमना-जैसा उनको फटकारता हुआ, भीतर हृदय फट जाने के कारण अन्य स्त्रियों को न पूछता हुआ यों ही डरा हुआ मृगछौना-सा यूथ से छुट जाने के कारण चञ्चल बना गजशिशु-सा, माँ के विरह से कान ऊँचे किये गाय का बछड़ा-सा, न कुछ बोलता हुआ, न कुछ सुनता हुआ, न कुछ देखता हुआ,

किंचित्पश्यन्न किंचिद्वदन्न किंचिदालपन्न किंचिदाकर्णयन्न किंचिन्निरूपयन्न क्वचित्तिष्ठन्न कंचिदाह्वयन् क्वागतोस्मि किमर्थमागतोस्मि क्व चलितोस्मि क्व गच्छामि किं पश्यामि किमारब्धं मया किं वा करोमीति सर्वमेवाचेतयमानोऽन्ध इव बधिर इव मूक इव जड इवाविष्ट इव कटकमध्यदेशं यावत्तादृशेनैव वेगेनावहत्।

अथेन्द्रायुधप्रत्यभिज्ञानाद्वार्तयैवानुप्रधावितराजपुत्रदर्शनाच्च देवश्चन्द्रापीड इति समन्तात् ससंभ्रमप्रधावितानामचेतितोत्तरीयस्खलनानामुद्बाष्पशून्यदृष्टीनां दूरादेव लज्जया प्रणामक्रियया च सममेवावनमतां राजन्यसहस्राणां मुखान्यवलोक्य 'क्व वैशम्पायनः' इत्यपृच्छत्। ततस्ते सर्वे सममेव विचार्य 'अस्मिंस्तरुतलेऽवतरतु तावद् देवस्ततो यथावस्थितं विज्ञापयामः' इति न्यवेदयन्। चन्द्रापीडस्य तेन तेषां स्फुटाख्यानादपि कष्टतरेण वचसान्तःशल्यगर्भं स्फुटितमिव हृदयमासीत्। केवलं तत्कालप्रणयिनी मूर्च्छा

तथाभूतः तर्णकः वत्सः इव सर्वत्रोपमा न किञ्चित् वदन् भाषमाणः, आकर्णयन् शृण्वन्, निरूपयन् पश्यन्, तिष्ठन् स्थितिं कुर्वन्, आह्वयन् आह्वानं कुर्वन्, 'कुत्र आगतः आयातः अस्मि, किमर्थं किन्निमित्तम् चलितः प्रस्थितः अस्मि, किम् आरब्धम् प्रक्रान्तं मया', इति सर्वम् एव अचेतयमानः अजानन् अन्धः चक्षूरहित इव, बधिरः विनष्टश्रवणशक्तिकः इव, मूकः अवाक् इव, जड़ः चेतनारहितः इव, आविष्टः भूतग्रस्तः इवः, कटकस्य शिविरस्य मध्यदेशं मध्यवर्ति स्थानं यावत् तादृशेन तथाविधेन एव वेगेन रंहसा अवहत् अगच्छत्। सर्वत्रोत्प्रेक्षा। **अथ**—अथ कटकप्रवेशानन्तरम् इन्द्रायुधस्य प्रत्यभिज्ञानात् प्रतिसन्धानात् वार्त्तया चन्द्रापीडागमनोदन्तेन एव, अनुप्रधाविताः चन्द्रापीडम् अनु द्रुतं चलिताः ये राजपुत्रा-नृपसुताः तेषां दर्शनात् आलोकनात् च 'देवः चन्द्रापीडः अस्ती'ति कृत्वा समन्तात् परितः ससंभ्रमं सत्वरं सादरं वा प्रधावितानां प्रद्रुतानाम् अचेतितम् अज्ञानम् उत्तरीयस्य उपरिवस्त्रस्य स्खलनं पतनं यैः तथाभूतानाम्, उद्बाष्पाः उद्गतवाष्पा अश्रुपूर्णा इत्यर्थः, शून्या रिक्ताः च दृष्टयः नयनानि येषां तेषाम् दूरात् दूरप्रदेशात् एव लज्जया त्रपया प्रणामक्रियया नमस्क्रियया च समम् युगपत् एव अवनमतां नमनं कुर्वतां राज्ञाम् अपत्यानि पुमांसः इति राजन्याः तेषां सहस्राणां मुखानि वदनानि अवलोक्य च 'क्व कुत्र वैशम्पायनः' इति अपृच्छत् अन्वयुंक्त। ततः तदनन्तरं च ते सर्वे राजन्याः समम् युगपत् एव, 'अस्मिन् तरोः वृक्षस्य तले अधोभागे तावत् सम्प्रति देवः भवान् अवतरतु अश्वात् अवरोहणं करोतु, ततः यथावस्थितं यथाभूतं विज्ञापयामः निवेदयामः' इति न्यवेदयन् निवेदितवन्तः। चन्द्रापीडस्य हृदयं स्फुटं स्पष्टं यत् आख्यानं वृत्तान्तकथनं तस्मात् अपि तदपेक्षया अपि कष्टतरेण अधिकदुःखदायकेन तेषां राजन्यानां वचसा वचनेन अन्तः मध्ये शल्यं बाणाग्रं यस्य तथाभूतः गर्भः यस्य तथाभूतं सत् स्फुटितं विदीर्णम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आसीत्। केवलम् एकमात्रं तस्मिन् काले

न कहीं खड़ा होता हुआ, न किसी को बुलाता हुआ, 'कहाँ आ गया हूँ? क्यों आ गया हूँ! कहाँ चला हूँ? कहाँ जाऊँ? क्या देखूँ? मैंने क्या किया? अथवा क्या करूँ?' इस तरह कुछ न जानता हुआ, अन्धा-जैसा, बहिरा-जैसा, गूँगा-जैसा, जड़ जैसा, भूत-ग्रस्त-जैसा चन्द्रापीड़ शिविर के मध्य तक उसी वेग से चला गया।

इसके बाद इन्द्रायुध के पहचान लिये जाने के समाचार से ही तथा पीछे दौड़े चले आ रहे राजपुत्रों के दर्शन से 'महाराज चन्द्रापीड़ [आए] है' इसलिए चारों ओर से जल्दी-जल्दी दौड़े आए, दुपट्टा गिरने की पर्वाह न किये, छलछलाती और सूनी दृष्टि से दूर से ही लज्जा के साथ प्रणाम करने के रूप में सिर झुकाए हजारों राजपुत्रों के मुख देखकर चन्द्रापीड़ यह पूछ बैठा—'वैशम्पायन कहाँ है?' तदनन्तर वे सब एक साथ ही विचार करके बोले—'आप पहले इस पेड़ के नीचे उतर जाइए, तब जैसा हुआ है, हम निवेदन करेंगे'। स्पष्ट कथन से भी अधिक कष्टकर उनकी वाणी से चन्द्रापीड़ का भीतर शल्य रखे हुए हृदय फट-सा गया। उस समय स्नेह

सा धारणमकरोत्। तुरगादवतारितं च कुथोपविष्टं पितुः समवयोभिरनतिक्रमणीयैर्मूर्धाभिषिक्तपार्थिवैर्धृतमात्मानं तदानीं न वेदितवान्। उपलब्धसंज्ञोपि च वैशम्पायनस्यादर्शनादात्मतत्त्वदर्शनात् किमेतत् क्वाहं वर्ते किं वा मयैतच्चरितमिति भ्रमारूढ इव मुह्यद्भिरिवेन्द्रियैः सर्वमेवानुत्प्रे¹क्षमाणः केवलं स्कन्धावारागमनेनैव तस्याभावादन्यदसंभावयन् दुर्विषहपीडाभिहतेन चेतसा किमारटामि किं हृदयमवष्टभ्य तूष्णीमासे किमात्मानमाहत्य हृदयात् प्राणैर्वियोजयामि किमेकाकी कांचिद्दिशं गृहीत्वा प्रव्रजामीति कर्तव्यमेव नाध्यगच्छत्। अन्तर्द्रवन्निव दह्यमान इव स्फुटन्निव सहस्रधा दुःखेन चकार चेतसि। 'अहो मे रम्योप्यरमणीयः संवृत्तो जीवलोकः। वसन्त्यपि शून्यीभूता पृथिवी। सचक्षुषोप्यन्धाः ककुभो जाताः। सुनिष्पन्नमपि हतं जन्म। सुरक्षितमपि मुषितं जीवित-

समये प्रणयः स्नेहः अस्या अस्तीति तथोक्ता मूर्छा मोहः धारणम् अकरोत् तं धृतवती। तुरगात् अश्वात् अवतारितं, कुथे आस्तरणे (प्रवेण्यास्तरणं वर्णः परिस्तोमः कुथो द्वयोः इत्यमरः) उपविष्टम् आसीनं पितुः तारापीडस्य समं समानं वयः अवस्था येषां तथाभूतैः न अतिक्रमणीयैः न उल्लंघनीयोपदेशैरित्यर्थः मूर्ध्नि अभिषिक्ताः कृतराज्याभिषेकाः पार्थिवाः राजानः तैः धृतं धारितम् आत्मानं स्वं तदानीं तत्काले न वेदितवान् ज्ञातवान् चन्द्रापीड इति शेषः। उपलब्धा प्राप्ता संज्ञा चेतना येन तथाभूतः अपि वैशम्पायनस्य अदर्शनात् अनवलोकनात् आत्मनः स्वस्य तत्त्वस्य स्वरूपस्य दर्शनात् 'किमेतत्, क्व कुत्र अहं वर्ते अस्मि, मया एतत् किं चरितं कृतम्' इति भ्रमे भ्रान्तौ संशये वा आरूढः स्थितः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आत्मतत्त्वज्ञानेऽपि न किमपि बाह्यज्ञानं भवति, मुह्यद्भिः मोहं प्राप्नुवद्भिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् इन्द्रियैः करणैः सर्वम् एव अनुत्प्रेक्षमाणः न वीक्षमाणः केवलम् एकमात्रं स्कन्धावारस्य एव सैन्य-समुदायस्य आगमनेन तस्य वैशम्पायनस्य अभावात् अनागमनादित्यर्थः अन्यत् वैशम्पायनात् भिन्नम् असंभावयन् न कल्पयन् अर्थात् यदि आगते स्कन्धावारे तेन सह वैशम्पायनो न आगतः, तर्हि न किमपि आगतम् इति मनसा कल्पयन्, दुर्विषहा सोढुमशक्या या पीडा वेदना तया अभिहतेन आहतेन चेतसा मनसा 'किम् आरटामि उत्क्रोशामि ? किं हृदयम् अवष्टभ्य रुद्ध्वा तूष्णीम् आसे मौनेन तिष्ठामि ? किम् आत्मानम् आहत्य आत्मघातं कृत्वा हृदयात् आत्मानं प्राणैः असुभिः वियोजयामि वियुक्तं करोमि ? किम् एकाकी एकलः काञ्चित् दिशं दिशाम् गृहीत्वा अवलम्ब्य प्रव्रजामि गच्छामि ?' इति कर्तव्यं कृत्यम् एव न अध्यगच्छत् न ज्ञातवान्। अन्तः हृदये द्रवन् द्रवीभवन् इव, दह्यमानः प्लुष्यमाणः इव सहस्रधा सहस्रप्रकारेण दुःखेन स्फुटन् विदीर्यमाणः इव, चेतसि मनसि चकार कृतवान् अचिन्तयत् इत्यर्थः (उत्प्रेक्षा)—'अहो रम्यः रमणीयः अपि जीवलोकः संसारः अरमणीयः संवृत्तः संजातः। वसन्ती जनैः कृताधिवासा अपि पृथिवी मही शून्यीभूता रिक्तीभूता। सचक्षुषः सनेत्राः

प्रकट करने वाली मूर्छा ही केवल मात्र उसे धारण कर सकी। घोड़े से उतरे और दरी पर बैठे पिता के समवयस्क (उपदेश में) अलंघनीय, राज्याभिषिक्त राजाओं द्वारा थामे हुए उसे उस समय अपना कुछ भी भान न रहा। होश आने पर वैशम्पायन को न देखने और आत्म-स्वरूप के दर्शन के कारण 'यह क्या ? मैं कहाँ हूँ ? मैंने यह क्या किया ?' इस तरह संशयारूढ़-जैसा मोह को प्राप्त हुई इन्द्रियों से-जैसे सभी कुछ न देखता हुआ, वैशम्पायन के बिना केवल स्कन्धावार के आने से ही अन्य (कुछ भी आया) न समझता हुआ, असह्य वेदना से पीड़ित मन से 'क्या चीखें मारूँ ?, क्या हृदय को रोककर चुप रहूँ ?, क्या आत्मघात करके हृदय से प्राणों को निकाल फेंक दूँ ?, क्या अकेला किसी दिशा को पकड़ कर चल पड़ूँ ?'-इस तरह कुछ भी उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। भीतर पिघलता हुआ-जैसा, जलता हुआ-जैसा, दुःख से सहस्रधा फटता हुआ जैसा सोचने लगा—"ओह, सुन्दर होता हुआ भी संसार मेरे लिए बुरा हो बैठा। आबाद पृथ्वी भी सूनी हो गई। आँखों वाली दिशायें भी अन्धी बन गईं। अच्छा

१. अनुत्प्रेक्ष्यमाणः।

फलम्। कं पश्यामि। कमालपामि। कस्मै विश्रम्भं कथयामि। केन सह सुखमासे। किमद्यापि मे जीवितेन कादम्बर्यापि। वैशम्पायनस्य कृते क गच्छामि। कं पृच्छामि। कमभ्यर्थये। को मे ददातु पुनस्तादृशं मित्ररत्नम्। कथं मया तातस्य शुकनासस्य चात्मा वैशम्पायनेन विना दर्शयितव्यः। किमभिधाय च तनयशोकविह्वलाम्बा मनोरमा वा संस्थापयितव्या। किं भूमिः काचिदसिद्धा तां साधयितुं पश्चात्स्थितः। उत नरपतिः कश्चिदसंघटितः तत्संघटनाय पश्चात्परिलम्बितः कच्चिद्विद्या काचिदगृहीता। तां ग्रहीतुं मयोत्संकलितः।' इत्येतानि चान्यानि चान्तरात्मना चिरमधोमुख एव विकल्प्य हृदयास्फुटनाद्विलक्ष्यमिवापराधिनमिव महापातकिनमिवात्मानं मन्यमानो वदनमदर्शयञ्छनैः कृच्छ्रादिव तानप्राक्षीत्।

'मय्यागते किं कश्चिदेवंविधोऽन्तरे संग्राम उत्पन्नः। व्याधिर्वा कश्चिदाशुकार्यसाध्य-

---

अपि ककुभः दिशाः अन्धाः नेत्ररहिताः जाताः भूताः सु सुष्ठु निष्पन्नं जातम् अपि जन्म हतं मृतं व्यर्थं जातमित्यर्थः। सुरक्षितं सम्यक्प्रकारेण परित्रातम् अपि जीवितस्य जीवनस्य फलं प्रयोजनं मुषितं लुण्ठितम्। कं पश्यामि अवलोकयामि? कम् आलपामि संभाषे? कस्मै विश्रम्भं हृदय-रहस्यं कथयामि वदामि? केन सह सुखं सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा आसे उपविशामि? अद्यापि मे जीवितेन प्राणैः कादम्बर्या अपि किम् न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः वैशम्पायनस्य कृते अर्थे, अभ्यर्थये प्रार्थये? तादृशं वैशम्पायनसदृशं मित्रम् एव रत्नं ददातु प्रयच्छतु? (अत्र रूपकम्)। तातस्य पितुः आत्मा दर्शयितव्यः दर्शनीयः? किम् अभिधाय कथयित्वा तनयस्य पुत्रस्य शोकेन दुःखेन विह्वला व्याकुला अम्बा माता मनोरमा वैशम्पायनस्य माता वा संस्थापयितव्या समाश्वासनीया। किं काचित् भूमिः मही असिद्धा अजिता? तां साधयितुं जेतुम् आत्माधीनीकर्तुमिति यावत् पश्चात् स्थितः? उत अथवा कश्चित् नरपतिः राजा असंघटितः अस्मत्साम्राज्ये न मिलितः, तस्य संघटनाय मेलनाय पश्चात् परिलम्बितः विलम्बितः विलम्बं कृतवानित्यर्थः। कच्चित् किम् काचित् विद्या शास्त्रमित्यर्थः अगृहीता अनधिगता अस्ति तां ग्रहीतुम् अधिगन्तुं मया उत्संकलितः संप्रेरितः?' इति एतानि अन्यानि एतदतिरिक्तानि च अन्तरा मध्ये आत्मना मनसा चिरं दीर्घकालम् अधः नीचैः मुखं यस्य तथाभूतः एव विकल्प्य विकल्पान् कृत्वा हृदयस्य अस्फुटनात् अविदलनात् आत्मानं स्वं विलक्षम् लज्जितम् इव अपराधिनं सागसम् इव महापातकिनम् महापापिनम् इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षा मन्यमानः अवगच्छन् वदनं मुखम् अदर्शयन् दृष्टिविषयं न प्रापयन् शनैः मन्दं मन्दं कृच्छ्रात् कठिनतया इव तान् राजन्यान् अप्राक्षीत् अपृच्छत्। **मयि—**मयि आगते अत्र आयाते अन्तरे मध्ये कश्चित् कोऽपि एवंविधः संग्रामः युद्धम् उत्पन्नः जातः वा अथवा आशु शीघ्रं करोति मृत्युमिति शेष इति तथोक्तश्च असाध्यं प्रतिकर्तुमशक्यं रूपं स्वरूपं यस्य

जन्म भी बुरा हो गया। जीवन का सुरक्षित फल भी लुट गया। किसे देखूँ? किससे बोलूँ? किसको रहस्य बताऊँ? किसके साथ सुख से बैठूँ? क्या अब भी मेरे जीवन और कादम्बरी से (कोई) प्रयोजन है? वैशम्पायन के खातिर कहाँ जाऊँ? किसे पूछूँ? किससे प्रार्थना करूँ? कौन मुझे वैसा मित्ररत्न देवे? वैशम्पायन के विना किस तरह मैं पिता जी तथा शुकनास जी को अपने को दिखाऊँ? क्या कहकर मैं पुत्र-शोक से व्याकुल माता जी तथा मनोरमा जी को धीरज बँधाऊँ? क्या कोई अजीती भूमि रह गई थी जिसे जीतने वह पीछे रह गया? क्या हमसे न मिला हुआ ऐसा कोई राजा तो नहीं रह गया था, जिसे मिलाने वह पीछे से विलम्ब कर बैठा? क्या अनजानी कोई ऐसी विद्या थी, जिसे जानने के लिये मैंने उसे प्रेरित किया हो?" इस तरह तथा अन्य विकल्पों को देर तक नीचा मुँह किये मन में उठाता हुआ चन्द्रापीड हृदय के विदीर्ण न होने के कारण लज्जित-सा, अपराधी-सा महापापी-सा, अपने को समझता और मुख न दिखाता हुआ कठिनाई से प्रश्न कर पाया—

'मेरे आ जाने पर बीच में कोई ऐसा संग्राम हुआ क्या? अथवा तुरत-फुरत अन्त कर

रूपः समुपजातः। येनैतदतर्कितमेव महावज्रपतनमुपनतम्' इति। ते त्वेवं पृष्टाः सर्वे सममेव करद्वयापिहितश्रुतयो व्यज्ञपयन्। 'देव, शान्तं पापम्। देवशरीरमिव साग्रं वर्षशतं ध्रियते वैशम्पायनः' इति। एतदाकर्ण्य चोज्जीवित इवानन्दवाष्पनिर्भरः संभाव्य तान् सर्वानेव कण्ठग्रहेणावादीत्। 'जीवतो वैशम्पायनस्यान्यत्र क्षणमप्यवस्थानमसंभावयता मयैवं पृष्टा भवन्तः। तज्जीवतीत्येतानि तु तावत्कर्णे कृतान्यक्षराणि। अधुना किं वृत्तमस्य येनासौ नागतः। क्व वा स्थितः। केन वा प्रसङ्गेन स्थितः। कथं वा तमेकाकिनमुत्सृज्यायाता भवन्तः। कथं वा भवद्भिर्बलादपि नानीतोऽसावित्येतदवगन्तुमुत्ताम्यति मे हृदयम्' इति। ते चैवं पृष्टा व्यज्ञपयन्। 'देव श्रूयतां यथावृत्तम्।

पृष्ठतः स्कन्धावारमनुपालयद्भिः शनैः शनैर्वैशम्पायनेन सह भवद्भिरागन्तव्यमित्यादिश्य गतवति देवे तस्मिन्दिवसे सुगृहीतत्वाद् घासेन्धनादिकस्योपकरणजातस्य

तथाभूतश्च व्याधिः रोगः समुपजातः समुत्पन्नः? येन अतर्कितम् अचिन्तितम् एव महान् चासौ अशनिः वज्रं तस्य पतनम् उपनत प्राप्तम्'' इति ते राजपुत्राः तु एवं पृष्टाः अनुयुक्ताः सर्वे समम् एव युगपत् एव करयोः द्वयं पाणियुगलं तेन पिहिताः आच्छादिताः श्रुतयः कर्णाः यैः तथाभूतैः सद्भिः व्यज्ञपयन् विज्ञापितवन्तः—'देव महाराज, शान्तं पापम्! अपहतमस्तु अमङ्गलम्! वैशम्पायनः देवानां देवतानां शरीरम् इव अग्रेण अधिकेन आधिक्येनेति यावत् सहितम् इति साग्रम् ('पुरोऽधिकमुपर्यग्राणि' इत्यमरः) वर्षाणां हायनानां शतम् ध्रियते जीवति, देववत् वैशम्पायनः वर्षशतादप्यधिकं जीविष्यतीत्यर्थः'। एतत् इदम् आकर्ण्य श्रुत्वा च चन्द्रापीडः उज्जीवितः उत्प्राणितः इवेत्प्रेक्षायाम् आनन्दस्य हर्षस्य वाष्पः अश्रुतेन निर्भरः पूर्णः तान् सर्वान् राजन्यान् एव कण्ठस्य ग्रहेण गलालिङ्गनेन संभाव्य सत्कृत्य अवादीत् अब्रवीत्—जीवतः ध्रियमाणस्य वैशम्पायनस्य अन्यत्र मां विहाय अन्यस्मिन् स्थाने क्षणम् अपि अवस्थानं स्थितिम् असंभावयता संभावनाम् अकुर्वता मया एवं पृष्टाः अनुयुक्ताः। तत् वैशम्पायनः जीवति जीवितोऽस्ति इति एतानि अक्षराणि तावत् आदौ मया कर्णे कृतानि श्रुतानीत्यर्थः। अधुना इदानीम् अस्य वैशम्पायनस्य किं वृत्तं संजातं येन कारणेन असौ एष न आगतः। क्व कुत्र स्थितः स्थितिम् अकरोत् प्रसङ्गेन विषयेण, कथं केन हेतुना एकाकिनम् एकलम् उत्सृज्य परित्यज्य आयाताः आगतवन्तः भवन्तः। बलात् हठात् अपि असौ वैशम्पायनः न आनीतः प्रापितः इति एतत् अवगन्तुं ज्ञातुं मे हृदयम् उत्ताम्यति आकुलीभवति' इति पृष्टाः प्रश्नविषयीकृता व्यज्ञपयन् विज्ञापितवन्तः—'देव, महाराज यथावृत्तं यथाघटितं श्रूयताम् आकर्ण्यताम्'।

पृष्ठतः—'पृष्ठतः पश्चाद्भागे स्कन्धावारं सैन्यसमूहम् अनुपालयद्भिः शनैः शनैः मन्दं मन्दं भवद्भिः आगन्तव्यम् आगमनीयम्' इति आदिश्य आज्ञाप्य देवे भवति गतवति चलितवति सति तस्मिन् दिने भवद्गमनदिवसे घासः तृणम् इन्धनम् एधः आदि यस्य तथाभूतस्य उपकरणस्य

देने वाला कोई असाध्य रोग हो गया जिससे ऐसा अचिन्तितपूर्व वज्रपात हुआ?" इस तरह पूछे जाने पर वे सब के सब हाथों से कान ढके एक साथ बोल पड़े—'महाराज! अमङ्गल का नाश हो वैशम्पायन देवशरीर के समान सौ वर्ष से भी अधिक जीएँगे' यह सुनकर उज्जीवित-सा हो आनन्दाश्रु-भरा उन सभी को आलिंगन द्वारा सम्मानित करके चन्द्रापीड़ बोला—"वैशम्पायन के जीते रहते (उसके) अन्यत्र रहने की सम्भावना न करते हुए मैंने आप लोगों को पूछा। तो वह जीवित है, ये शब्द तो मैंने सुन लिए। अब यह बताओ कि उसे क्या हो गया जो वह नहीं आया? वह कहाँ ठहर गया? किस मामले में ठहरा है? आप बलात् भी उसे क्यों नहीं लाए?—यह जानने को मेरा हृदय बेचैन हो रहा है" इस प्रकार पूछे जाते हुए वे बोले—'महाराज सुनिये जैसे हुआ है।'

'पीछे से सैन्यसमूह की रक्षा करते हुए आप लोग धीरे-धीरे वैशम्पायन के साथ साथ आवें' यह आज्ञा देकर आपके चले जाने पर उसी दिन घास, इन्धन आदि सामग्री-समूह के

न दत्तमेव प्रयाणं स्कन्धावारेण। अन्यस्मिन्नहन्याहतायां प्रयाणभेर्यां सज्जीक्रियमाणे साधने प्रातरेवास्मान् वैशम्पायनोऽभ्यधात्। 'अतिपुण्यं ह्यच्छोदाख्यं सरः पुराणे श्रूयते। तदस्मिन् स्नात्वा प्रणम्य चास्यैव तीरभाजि सिद्धायतने भगवन्तं भवानीप्रभुं महेश्वरं शशाङ्कशकलशेखरं व्रजामः। दिव्यजनसेविता केन कदा पुनः स्वप्नेपि भूमिरियमालोकिता।' इत्यभिधाय चरणाभ्यामेवाच्छोदसरस्तीरमयासीत्। तत्र चातिरम्यतयैव सर्वतो दत्तदृष्टिः संचरन्नमरकामिनीश्रोत्रशिखरारोहणप्रणयोचितैस्तरंगानिलाहतिविलोलवृत्तिभिः किसलयैरविरलकुसुममकरन्दलोभपुञ्जितानां च मत्तमधुलिहां मञ्जुना शिञ्जितरवेण दूरादाह्वयन्तमिव, मरकतमणिश्यामया प्रभयानुलिम्पन्तमिव समं दशदिग्भागान्, अदत्त-

सामग्र्याः जातस्य समूहस्य सुगृहीतत्वात् सम्यक् संचितत्वात् स्कन्धावारेण प्रयाणं चलनं न दत्तम् एव न कृतमित्यर्थः। अन्यस्मिन् आगामिनि अहनि दिने प्रयाणस्य प्रस्थानस्य भेर्यां दुन्दुभौ आहतायां ताडितायां साधने अश्वादिके सज्जीक्रियमाणे सन्नद्धीक्रियमाणे सति प्रातः प्रातःकाले एव वैशम्पायनः अस्मान् अभ्यधात् अकथयत्—'अतिशयेन पुण्यं पवित्रम् हि निश्चयेन 'अच्छोदम्' आख्या नाम यस्य तथाभूतं सरः सरोवरः पुराणे पुराणग्रन्थे श्रूयते श्रुतिविषयं याति। तत् तस्मात् अस्मिन् सरसि स्नात्वा अवगाह्य तीरं तट भजतीति तथोक्ते तीरस्थिते इत्यर्थः सिद्धायतने चैत्ये देवमन्दिरे इत्यर्थः भवान्याः पार्वत्याः प्रभुं स्वामिनं शशाङ्क चन्द्रः तस्य कला शकलमित्यर्थः एव शेखरं चूडामणिः यस्य तम् भगवन्तम् महेश्वरं शिवं प्रणम्य नमस्कृत्य व्रजामः गच्छामः। दिव्याश्च ते जनाः लोकाः तैः सेविता अधिष्ठिता केन अस्मद्गतजनेन कदा कस्मिन् काले स्वप्ने स्वापदशायाम् अपि किं पुनः जाग्रदवस्थायाम् इयं भूमिः पृथिवी स्थानमिति यावत् पुनः आलोकिता दृष्टा स्यात्?' इति अभिधाय कथयित्वा चरणाभ्याम् एव पादचारिणेत्यर्थः अच्छोदसरसः तीरं तटम् अयासीत् अगच्छत्। तत्र च अतिशयेन रम्यः मनोज्ञः तस्य भावः तत्ता तया एव सर्वतः परितः दत्ता प्रक्षिप्तेत्यर्थः दृष्टिः दृक् येन तथाभूतः सन् संचरन् विचरन् वैशम्पायनः 'तटलतामण्डपमद्राक्षीत्' इत्यस्ति वाक्यम्। **अमर०**—अमराणां देवानां याः कामिन्यः अङ्गनाः तासां श्रोत्राणां कर्णानां शिखरेषु अग्रभागेषु यत् आरोहणम् अवस्थानमित्यर्थः तस्मिन् यः प्रणयः स्नेहः तस्मिन् उचितैः अभ्यस्तैः, तरङ्गाणां वीचीनाम् अनिलस्य पवनस्य या आहतिः आघातः संघट्ट इत्यर्थः तया विलोला चञ्चला वृत्तिः स्थितिरित्यर्थः येषां तैः किसलयैः पल्लवैः अविरलः निविडः यः कुसुमानां मकरन्दः रसः तस्य लोभः तृष्णा तेन पुञ्जितानाम् एकत्रस्थितानां च मत्ताः क्षीवाश्च ते मधुलिहः भ्रमराः तेषां मञ्जुना मधुरेण शिञ्जित-रवेण झङ्कार-शब्देन [अत्र झङ्कार-रवेण' इत्येव सुवचम् शिञ्जितशब्दस्य 'भूषणानां तु शिञ्जितम्' इत्यमरानुसारेण भूषण-रवे एव प्रयुज्यमानत्वात्] दूरात् विप्रकर्षात् आह्वयन्तम् आकारयन्तम् इव, अन्योऽपि अंगुलिसंकेतेन तारस्वरेण च आह्वयते, एतत् अन्यानि च द्वितीयान्तानि 'तटलतामण्डपम्' इत्यस्य विशेषणानि, मरकतमणेः इव श्यामया

खूब इकट्ठा किये हुए रहने के कारण स्कन्धावार चला ही नहीं। दूसरे दिन प्रमाण हेतु धौंसा बजा दिए जाने तथा [घोड़े आदि] साधन तय्यार किये जाने पर प्रातःकाल ही वैशम्पायन हम से बोले—'पुराणों में अच्छोद-नामक सरोवर बड़ा पवित्र सुना जाता है, इसलिए इसमें स्नान करके, इसी के तीर पर स्थित देवमन्दिर में पार्वती-पति, चन्द्रकला को चूड़ामणि बनाये शंकर भगवान् को प्रणाम करके चलें। दिव्यजनों द्वारा सेवित इस भूमि पर स्वप्न में भी फिर कब किसे आना है'—यह कहकर पैदल ही अच्छोद सर के तीर चल पड़े। और वहाँ अत्यधिक रमणीयता के कारण चारों तरफ दृष्टि डाले घूमते हुए उन्होंने देवाङ्गनाओं के कानों के अग्रभाग पर आरोहण के शौकीन, तरंगों की हवा के आघात से हिल रहे किसलयों द्वारा तथा कुसुमों के घने मकरन्द के लोभ से एकत्रित हुए मदमत्त मधुकरों की मीठी झंकार द्वारा दूर से ही बुलाता हुआ-जैसा, मरकत मणि की-सी श्याम छटा से एक साथ ही दस दिग्विभागों को लिपता हुआ-

दिवसकरकिरणप्रवेशतया दिवाप्यन्तर्निशीथिनीमिव बिभ्राणम्, चिरपरिचितैरपि मेघो-द्गमाशङ्कया मुहुर्मुहुरुन्मुक्तमधुरकेकारवैर्वनशिखण्डिभिरुत्कन्धरैरवलोक्यमानम्,पदमिव जलदकालस्य, प्रतिपक्षमिव सर्वसंतापानाम्, निजावासमिव जडिम्नः, निर्गममार्गमिव सुरभिमासस्य, आश्रयमिव मकरध्वजस्य, उत्कण्ठाविनोदस्थानमिव रतेः, आस्पदमिव सर्वरमणीयानाम्, अनवरतवलितसुरभिशीतलाच्छोदसरस्तरंगमारुताभिर्वीजिताभ्यन्तर-शिलातलमन्यतमं तटलतामण्डपमद्राक्षीत्।

दृष्ट्वा च तमतिचिरान्तरितदर्शनं भ्रातरमिव तनयमिव सुहृदमिव चानन्यदृष्टि-विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा विलोकयन् स्तम्भित इव [1]लिखित इवोत्कीर्ण इव पुस्तमय इव सुचिरमूर्ध्व एव स्थित्वापारयन्निवाङ्गानि धारयितुमाक्रम्यमाण इव मूर्च्छयोन्मुच्यमान

कृष्णवर्णया प्रभया छटया दश दिशां दिशानां भागान् प्रदेशान् अनुलिम्पन्तं लिप्तान् कुर्वन्तम् इव, न दत्तः दिवसकरस्य सूर्यस्य किरणेभ्यः रश्मिभ्यः प्रवेशः येन तस्य भावः तत्ता तया दिवा दिने अपि अन्तः मध्ये निशीथिनीं निशां बिभ्राणं उद्वहन्तम् इव, चिरात् परिचितैः संस्तुतैः अपि मेघस्य जलदस्य उद्गमस्य उदयस्य शङ्कया भ्रान्त्या मुहुर्मुहुः वारं-वारम् उन्मुक्तः कृत इत्यर्थः मधुरः मिष्टः केका-रवः केका-शब्दः ['केका वाणी मयूरस्य' इत्यमरः] यैः तथाभूतैः वनस्य अरण्यस्य शिखण्डिभिः मयूरैः उत् ऊर्ध्वं कन्धरा ग्रीवा येषां तथाभूतैः सद्भिः अवलोक्यमानम्, मेघ-भ्रान्त्या केकां कुर्वाणा मयूराः लतामण्डपं पश्यन्तिस्मेत्यर्थः, जलद-कालस्य वर्षासमयस्य पदं स्थानम् इव, सर्वे च ते संतापाः ऊष्णिमाणः तेषां प्रतिपक्षम् शत्रुम् इव, जडस्य भाव इति जडिमा तस्य शैत्यस्य निजः स्वकीयः आवासः निवासस्थानम् इव, सुरभिमासस्य वसन्तस्य निर्गमस्य निर्गमनस्य मार्गम् पन्थानम् इव, मकरध्वजस्य कामस्य आश्रयम् निवासम् इव, रतेः कामपत्न्याः, उत्कण्ठायाः औत्सुक्यस्य विनोदः अपनयनं तस्य स्थानं पदम् इव, सर्वाणि च तानि रमणीयानि (वस्तूनि) तेषाम् आस्पदम् स्थानम् आधारमित्यर्थः इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षा, अनवरतं सततं वलिताः चलिताः ये सुरभयः सुगन्धयश्च शीतलाः शिशिराश्च अच्छोदसरसः तरङ्गा वीचयः तेषां मारुतैः पवनैः अभिवीजितं कृतवीजनं अभ्यन्तरस्य मध्यस्य शिलातलं यस्य तथाभूतम् अन्यतमं बहुषु एकं तटे तीरे लतामण्डपं लताकुञ्जम् अद्राक्षीत् अपश्यत्।

दृष्ट्वा—तं लतामण्डपं दृष्ट्वा विलोक्य अतिचिरात् अन्तरितं व्यवहितं दर्शनं यस्य तथाभूतं भ्रातरं सहोदरम् इव, तनयं पुत्रम् इव, सुहृदम् मित्रम् इव (सर्वत्रोत्प्रेक्षा), न अन्यस्मिन् दृष्टिः यस्य तथाभूतः (वैशम्पायनः) विस्मृतः विस्मृतिं नीतः निमेषः निमीलनं येन तथाभूतेन निर्निमेषेणेत्यर्थः चक्षुषा विलोकयन् पश्यन् स्तम्भितः स्तब्धीभूतः इव, उत्कीर्णः प्रस्तरः काष्ठादि तष्ट्वा चित्रितः इव, पुस्तं मृदा, प्रस्तरेण धातुना वा निर्मिता विविधवर्णलिप्ता मूर्तिः एवेति पुस्तमयः इव, (पुस्तं लेप्यादिकर्मणि' इत्यमरः) सुचिरं दीर्घकालपर्यन्तम् ऊर्ध्वम् उपरि एव

जैसा, सूर्य-किरणों को प्रवेश न देने के कारण दिन में भी अपने भीतर रात रखता हुआ-जैसा, मेघोदय की शंका से बार बार मीठी वाणी बोले और गर्दन ऊँची किये चिर-परिचित वन मयूरों द्वारा देखा जाता हुआ, वर्षाऋतु का स्थान-जैसा, सभी तापों का शत्रु-जैसा, शीतलता का अपना घर-जैसा, वसन्त के निकलने का मार्ग-जैसा, कामदेव का आश्रय-जैसा, रति का उत्कण्ठा मिटाने का स्थान-जैसा, सभी रमणीय पदार्थों का आधार-जैसा, निरन्तर चल रही अच्छोद सर की सुगन्धित और शीतल तरंगों की हवाओं से शीतल बना दिए गए भीतरी शिलातल वाला कोई एक लतामण्डप देख लिया।

और उसे देखकर चिरकाल पहले देखे हुए भाई-जैसे, पुत्र-जैसे, मित्र-जैसे एक-टक निगाह से देखते जाते हुए, स्तब्ध-जैसे, चित्रित-जैसे, उकेरे-जैसे, मूर्तिमय-जैसे, देर तक ऊपर ही ठहर

१. 'लिखित इव…आक्रम्यमाण इव' इति नास्ति।

इवेन्द्रियैर्झटित्युन्मुक्ताङ्गः समुपविश्य भूमौ किमप्यन्तरात्मना स्मरन्निवानुध्यायन्निव निर्विकारवदनो गलितलोचनपयोधारासंतानस्तूष्णीमधोमुखस्तस्थौ। तथावस्थितं च तमवलोक्यास्माकमुदपादि चेतसि चिन्ता। 'येन केनचिदपह्रियन्त एव रसिकहृदयाः परिणामधीरमतयोपि, किं पुनः कुतूहलास्पदे प्रथमे वयसि वर्तमानः। तस्मान्नियतमियमस्येमामतिमनोहरां भूमिमालोक्य भावयतो हृदयविकृतिरीदृशी जाता' इति। न चिराच्च तमेवमवदाम वयम्। 'दृष्टा दर्शनीयानामवधिरेषा। तदुत्तिष्ठ। संप्रति निर्वर्तयामः स्नानविधिम्। अतिमहती वेला। सज्जीभूतं साधनम्। प्रयाणाभिमुखः सकलः स्कन्धावारस्त्वां प्रतिपालयन्नास्ते। किमद्यापि विलम्बितेन' इति। स त्वेवमुक्तोप्यस्माभिरश्रुतास्मदीयालाप इव जड इव मूक इवाशिक्षित इव वक्तु न किंचिदपि प्रत्युत्तरम-

---

स्थित्वा अङ्गानि अवयवान् धारयितुं न पारयन् शक्नुवन् इव, मूर्च्छया आक्रम्यमाणः अभिभूयमान इव, इन्द्रियैः करणैः उन्मुच्यमानः परित्यज्यमान इव, झटिति शीघ्रम् उन्मुक्तानि त्यक्तानि अङ्गानि येन तथाभूतः शिथिलाङ्गः इत्यर्थः भूमौ समुपविश्य स्थित्वा अन्तरात्मना मनसा किमपि स्मरन् स्मृतिविषयीकुर्वन् इव, अनुध्यायन् चिन्तयन् इव, निर्विकारं विकृतिरहितं वदनं मुखं यस्य तथाभूतः, गलितः पतितः लोचनयोः नयनयोः पयसः जलस्य अश्रूण इति यावत् धारायाः प्रवाहस्य संतानः सातत्यं यस्य तथाभूतश्च सन् तूष्णीं जोषम् अधः नीचैः मुखं यस्य सः तस्थौ स्थितवान्। तथा तेन प्रकारेण अवस्थितम् आसीनं तम् वैशम्पायनम् आलोक्य दृष्ट्वा अस्माकं चेतसि मनसि चिन्ता विचारः उदपादि उत्पन्ना—'परिणामे अवसाने धीरा स्थिरा मतिः बुद्धिः येषां तथाभूता अपि रसिकहृदयाः कामुकाः येन केनचित् वस्तुनेति शेषः अपह्रियन्ते आकृष्यन्ते एव किं पुनः कुतूहलस्य कौतुकस्य आस्पदे स्थाने प्रथमे वयसि यौवने वर्तमानः स्थितः अर्थात् तरुणानां तु वार्तैव का। तस्मात् कारणात् नियतम् अवश्यम् अतिशयेन मनोहराम् इमाम् भूमिं पृथिवीम् आलोक्य भावयतः चिन्तयतः अस्य वैशम्पायनस्य ईदृशी एवंविधा हृदयस्य विकृतिः विकारः जाता समुत्पन्ना' इति। न चिरात् च शीघ्रं च वयं तम् अवदाम कथितवन्तः—'दर्शनीयानां दर्शनयोग्यानाम् अवधिः सीमा एषा भूमिः दृष्टा अवलोकिता अर्थात् सर्वोत्कृष्टदर्शनीयस्थानं दृष्टम्। तत् तस्मात् उत्तिष्ठ उत्थितो भव। सम्प्रति इदानीं स्नानस्य विधिं क्रियां निर्वर्तयामः कुर्मः। अतिशयेन महती दीर्घा वेला समयः सञ्जाता। साधनम् अश्वादिकं सज्जीभूतं सन्नद्धम्। प्रयाणस्य गमनस्य अभिमुखः उन्मुखः सकलः समस्तः स्कन्धवारः सैन्य-समूहः त्वां प्रतिपालयन् प्रतीक्षमाणः आस्ते तिष्ठति। अद्यापि अधुनापि किं विलम्बितेन विलम्बेन' इति। स तु एवम् अस्माभिः उक्तः कथितः न श्रुतः आकर्णितः अस्मदीयः अस्माकम् आलापः कथनं येन तथाभूत इव, जडः अचेतनः इव, मूकः अवाक् इव वक्तुं कथयितुम् अशिक्षितः अपठित इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षा, न

कर, अंगों को धारण न कर सकते हुए-जैसे, मूर्छा से दबाए जा रहे-जैसे, इन्द्रियों द्वारा छोड़े जा रहे-जैसे, शीघ्र अङ्गों को ढीला छोड़े हुए, भूमि पर बैठकर, मन में कुछ याद करते हुए-जैसे, सोचते हुए जैसे, मुख से निर्विकार, आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बहाए, चुपचाप मुँह नीचे किये बैठे रहे। उन्हें इस तरह बैठा देखकर हमारे मन में विचार उठा कि 'अन्त में धीर-मति एवं रसिक हृदय के लोग भी किसी न किसी वस्तु पर आकृष्ट हो ही जाया करते हैं, तो फिर कूतूहल से भरी युवावस्था में स्थित (व्यक्ति) की बात ही क्या! इस कारण इस अतिमनोहर भूमि को देखकर (कुछ) सोचते हुए इन के हृदय में अवश्य कोई विकार हो गया है' और शीघ्र ही हमने उनको कहा—'सब से उत्कृष्ट दर्शनीय यह भूमि देख ली है। तो उठिए, अब स्नान-क्रिया करें। समय बहुत हो गया है। [अश्वादि] साधन सज्जित है। चल पड़ने को तय्यार हुआ सारा सैन्य-समूह आपकी प्रतीक्षा में खड़ा है। अब भी देरी क्यों?' हमारे इस प्रकार कहने पर हमारी बात अनसुनी करके-जैसे, जड़-जैसे, गूँगे-जैसे, बोलना न सिखाए हुए-जैसे

दात्। तमेव केवलमनिमेषपक्ष्मणा निश्चलस्तब्धतारकेण संततोश्रुस्रोतसा लिखितेनेव चक्षुषा लतामण्डपमालोकितवान्।

पुनःपुनश्चास्माभिरागमनायानुरुध्यमानस्तद्ग्रथितदृष्टिरेवास्मान् परिच्छेदनिष्ठुरमाह स्म। 'मया तु न यातव्यमस्मात्प्रदेशात्। गच्छन्तु भवन्तः स्कन्धावारमादाय। न युक्तं भवतां चन्द्रापीडभुजबलपरिरक्षितं गते तस्मिन् महासाधनं गृहीत्वास्यां भूमौ क्षणमप्यवस्थानं कर्तुम्।' इत्युक्तवन्तं तमकस्मान्नाम किंचिदस्य दैवादेव वैराग्यकारणमुत्पन्नमित्याशङ्क्य सानुनयमागमनाय पुनः पुन प्रतिबोध्य तादृशासंबद्धानुष्ठानेन जातपीडा निष्ठुरमप्यभिहितवन्तो वयम्। 'एवं न युक्तमस्माकं स्थातुम्। भवतः पुनर्देवस्य तारापीडस्यानन्तरादार्यशुकनासाल्लब्धजन्मनो देव्या विलासवत्याङ्कलालितस्य देवेन चन्द्रापीडेन सहैकत्र संवृद्धस्य तथा विद्यागृहे महता यत्नेनैव शिक्षितस्य युक्तमिदं

किञ्चित् प्रत्युत्तरं प्रतिवचनम् अदात् दत्तवान्। केवलम् एकमात्रम् न निमेषः निमीलनं यस्मिन् तथाभूतं पक्ष्म नेत्र-रोम यस्मिन् तेन, निश्चला स्थिरा अतएव स्तब्धा जडा तारका कनीनिका यस्मिन् तथाभूतेन, संततं निरन्तरम् अश्रूणां स्रोतः प्रवाहः यस्मिन् तेन लिखितेन चित्रितेन इवेत्युपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षा, चक्षुषा दृष्ट्या तम् एव लतामण्डपम् आलोकितवान् अपश्यत्। पुनः— पुनः पुनश्च वारंवारं च अस्माभिः आगमनाय आगन्तुम् अनुरुध्यमानः साग्रहं कथ्यमानः तस्मिन् लता-मण्डपे ग्रथिता बद्धा दृष्टिः दृक् यस्य तथाभूतः एव अस्मान् परिच्छेदः दृढनिश्चयः तेन निष्ठुरं कठोरं यथा स्यात्तथा आह स्म अवदत्—'मया तु अस्मात् प्रदेशात् स्थानात् न यातव्यं गन्तव्यम्। स्कन्धावारं सैन्यसमूहम् आदाय गृहीत्वा भवन्तः यूयम् गच्छन्तु व्रजन्तु। तस्मिन् चन्द्रापीडे गते याते सति चन्द्रापीडस्य भुजयोः बाह्वोः बलेन वीर्येणेत्यर्थः परितः सर्वतः रक्षितं महासाधनं महासैन्यं गृहीत्वा आदाय अस्यां भूमौ स्थाने क्षणम् अपि अवस्थानं स्थितिं कर्तुं भवतां युष्माकं न युक्तं नोचितम्' इति उक्तवन्तं कथितवन्तं तं वैशम्पायनम् 'अकस्मात् सहसा कस्मात् कारणात् नामेति सम्भावनायाम् अस्य वैशम्पायनस्य दैवात् भाग्यवशात् एव किञ्चित् वैराग्यस्य विरक्तेः कारणं हेतुः उत्पन्नं जातम्' इति। आशङ्क्य शङ्कां कृत्वा अनुनयेन सहितं यथा स्यात्तथा आगमनाय आगन्तुं पुनःपुनः वारं वारं प्रतिबोध्य प्रतिबोधं प्रदाय तादृशं तथाविधम् असम्बद्धम् अनुष्ठानं कार्यं तेन जाता समुत्पन्ना पीडा दुःखं येषां तथाभूताः वयं निष्ठुरं कठोरम् यथा स्यात्तथा अपि अभिहितवन्तः कथितवन्तः—'एवम् आम् युक्तमेवैतदित्यर्थः अस्माकम् अत्र अस्या भूमौ स्थातुं न युक्तं नोचितम्। पुनः किन्तु देवस्य महाराजस्य तारापीडस्य अन्तरात् अदूरात् अभिन्नात् तत्समानादिति यावत् आर्यात् आदरणीयात् शुकनासात् लब्धं प्राप्तं जन्म जनिः येन तथाभूतः देव्याः महिष्याः विलासवत्याः अङ्के क्रोडे लालितस्य पालितस्य देवेन महाराजेन चन्द्रापीडेन सह एकत्र एकस्मिन्नेव स्थाने संवृद्धस्य वृद्धिं प्राप्तस्य तथा विद्यागृहे विद्यामन्दिरे महता विपुलेन प्रयत्नेन आयासेन एव शिक्षितस्य शिक्षां प्रापितस्य भवतः किम् इदं युक्तम् उचितम्

उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। निर्निमेष बरौनी तथा निश्चल-जड़ पुतली वाली, चित्रित-जैसी, निरन्तर आँसुओं की झड़ी लग ए दृष्टि से केवल उसी लतामण्डप को देखते रहे।

हमारे वार-वार चलने का अनुरोध करने पर दृढ़ निश्चय के साथ हमें निष्ठुरभाव से बोले—'चन्द्रापीड़ के चले जाने पर उनके भुज-बल से परिरक्षित महासेना को लेकर तुम लोगों का पलभर के लिए भी इस भूमि में ठहरना ठीक नहीं।' इस प्रकार कहते हुए उन्हें हमने इस शंका से कि दैव-वश अकस्मात् इन्हें कोई वैराग्य का कारण हो गया हो, आने के लिए अनुनय के साथ वार-वार समझा-बुझाकर, वैसी वेतुकी काम करने से दुःखित हुए हम कठोरता से भी बोल पड़े—'हाँ, हमारा यहाँ रहना ठीक नहीं है। किन्तु महाराज तारापीड़ से अभिन्न आर्य शुकनास से जन्म लिये, महारानी विलासवती की गोद में पले, महाराज चन्द्रापीड़ के साथ-साथ एक ही जगह पढ़े, तथा विद्यालय में बड़े प्रयत्न से शिक्षा दिलाये, आपके लिए

यज्ज्येष्ठे भ्रातरि सुहृदि वत्सले भर्तरि जगन्नाथे च गुणवति च भवति सर्वमर्पयित्वा गते तत्परित्यागेनात्रावस्थानम्। कस्यापरस्येदृशो युक्तायुक्तपरिच्छेदः। तिष्ठतु तावदस्माकं तवोपरि स्नेहो भक्तिर्वा। अस्मिंस्तु शून्यारण्ये भवन्तमेकाकिनमुत्सृज्य गताः सन्तो देवेन चन्द्रशीतलप्रकृतिना चन्द्रापीडेनैव किं वक्तव्या वयम्। किमन्यो देवश्चन्द्रापीडोऽन्यो वा भवान्। तदुन्मुच्यतामयं संमोहः। गमनाय धीराधीयताम्।' इत्यभिहितोऽस्माभिरीषदिव विलक्षहासेन वचनेनास्मानवादीत्। 'किमहमेतावदपि न वेद्मि यद्गमनाय मां भवन्तः प्रबोधयन्ति। अपि च चन्द्रापीडेन विना क्षणमप्यहमन्यत्र न पारयामि स्थातुम्। एषैव मे गरीयसी परिबोधना। तथापि किं करोमि। अनेनैव क्षणेन सर्वत्र विगलितं मे प्रभुत्वम्। तथा हि स्मरदिव किमपि मनो नान्यत्र प्रवर्तते। पश्यन्तीव किमपि न दृष्टिरन्यतो वलति। आसक्तमिव क्वापि हृदयं किमपि न जानाति। निगडिताविव पदमपि

यत् ज्येष्ठे वृद्धे भ्रातरि सुहृद मित्रे वत्सले प्रिये भर्तरि स्वामिनि जगतः नाथे शासके च गुणवति गुणसम्पन्ने भवति त्वयि सर्वं सैन्यादि-भारम् अर्पयित्वा समर्प्य गते चन्द्रापीडे तस्य परित्यागेन तं परित्यज्येत्यर्थः अत्र अच्छोदसरसि अवस्थानं स्थितिः। कस्य अपरस्य त्वद्भिन्नस्य ईदृशः एवंविधः युक्तं च अयुक्तं च तयोः परिच्छेदः विवेचनम् अर्थात् त्वद्भिन्नः उचितानुचित-विवेकः कः कुर्यात्। अस्माकं तव उपरि त्वयि स्नेहः अनुरागः, भक्तिः आराध्यता वा तिष्ठतु आस्ताम् तावत् शून्ये निर्जने अरण्ये वने एकाकिनम् एकलम् उत्सृज्य त्यक्त्वा गताः सन्तः वयम् चन्द्रवत् शशिवत् शीतला शिशिरा कोमलेत्यर्थः प्रकृतिः स्वभावः यस्य तथाभूतेन चन्द्रापीडेन एव वयं किं वक्तव्याः अर्थात् भवन्तमुत्सृज्य समागतान् अस्मान् स किं कथयिष्यति ? किं चन्द्रापीडः अन्यः भिन्नः भवान् वा अन्यः ? द्वयोः नास्ति कोऽपि भिन्न इत्यर्थः। तत् तस्मात् अयं संमोहः अज्ञानम् उन्मुच्यताम् त्यज्यताम्। गमनाय गन्तुं धीः बुद्धिः आधीयतां क्रियताम् गमनविचारः विधीयतामित्यर्थः' इति एवम् अस्माभिः अभिहितः व्याहृतः ईषत् इव किमपि विलक्षः लज्जायुक्तः हासः हसनं यस्मिन् तथाभूतेन वचनेन वाण्या अस्मान् अवादीत् अवदत्— 'किम् अहम् एतावत् एतावन्मात्रम् अपि न वेद्मि जानामि यत् भवन्तः मां गमनात् न प्रबोधयन्ति अपि तु प्रबोधयन्त्येवेति काकुः। अपि च एतदतिरिक्तं चन्द्रापीडेन विना क्षणं क्षणमात्रमपि अन्यत्र अन्यस्मिन् प्रदेशे स्थातुं न पारयामि शक्नोमि। एषा एव मे मम गरीयसी महीयसी परिबोधना प्रतिबोधनम्। तथापि किं करोमि अहम् अवशोऽस्मीत्यर्थः। अनेन एव क्षणेन समयेन सर्वत्र सर्वस्मिन् स्थाने मे प्रभुत्वं सामर्थ्यं विगलितं नष्टम्। मनः मानसं किमपि अनिर्वचनीयं वस्तु स्मरत् स्मृतिविषयं कुर्वत् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् न अन्यत्र प्रवर्तते लगति। किमपि पश्यन्ती विलोकयन्ती इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मे दृष्टिः अन्यतः अन्यत्र [सार्वविभक्तिकस्तसिल्] वलति गच्छति। क्वापि कस्मिन् अपि आसक्तम् अनुरक्तं हृदयं किमपि न जानाति वेत्ति, निगडितौ श्रृंखलितौ बद्धौ

क्या यह उचित है कि बड़े भाई, मित्र, प्रिय, स्वामी, जगत्-शासक और गुणवान् आप को सब कुछ सौंप कर चले जाने पर उन्हें छोड़ आप यहाँ रहें ? दूसरा ऐसा कौन है जो ऐसा उचितानुचित का विवेक करे ? हमारी आपके प्रति प्रीति और भक्ति की बात छोड़ो किन्तु इस निर्जन वन में आपको अकेला छोड़ कर गए हुए हमें चन्द्रमा के से शीतल स्वभाव के महाराज चन्द्रापीड ही क्या कहेंगे ? महाराज चन्द्रापीड़ और आप क्या भिन्न २ हैं ? इसलिए अज्ञान छोड़िए। चलने का विचार कीजिए' इस तरह हमारे कहने पर कुछ लज्जा-युक्त हँसी-भरी वाणी से हमें बोले—'क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि आप लोग मुझे जाने के लिए नहीं समझा रहे हैं ? इसके अतिरिक्त चन्द्रापीड़ के बिना मैं पल भर भी दूसरी जगह नहीं टिक सकता—यही मेरा सबसे बड़ा प्रबोधन है। तथापि मैं क्या करूँ ? इसी क्षण सभी जगह मेरा प्रभुत्व समाप्त जैसे हो गया है, मन कुछ याद करता हुआ-सा दूसरी जगह नहीं

दातुं न चरणावुत्सहेते। कीलितेव चास्मिन्नेव स्थाने तनुः। तदात्मना त्वहमसमर्थो यातुम्। अथ बलान्नयन्तो मां निनीषवः। तत्रापि चलितस्यास्मात्प्रदेशादात्मनो जीवित-धारणं न संभावयामि। अत्र तु पुनस्तिष्ठतो यदेतदन्तर्हृदये किमप्यनवसीयमानं परि-वर्तते मे येनैव विष्टतोऽस्मि तेनैवावश्यं धार्यन्ते प्राणा इति चेतसि मे। तदलं निर्बन्धेन। गच्छन्तु भवन्तः। भवतु यावज्जीवमा तृप्तेश्चन्द्रापीडदर्शनसुखम्। अल्पपुण्यस्य तु तन्मे प्राप्तमपि करतलादेवमाच्छिद्य दैवेन नीतम्।' इत्यभिदधानश्च कौतुकात् 'किमेतद्येनैवं भाषसे, नायासि देवस्य चन्द्रापीडस्य समीपम्।' इत्यस्माभिः पुनः पुनः पृष्टोऽभ्यधात्— 'लज्जेऽहमेवं वक्तुम्। तथापि शपामि वयस्यचन्द्रापीडस्यैव जीवितेन यदि किंचिदपि जानामि यत्केन कारणेन न शक्नोम्यतो गन्तुमिति। अपि च भवतामपि प्रत्यक्ष एवायं वृत्तान्तः। तद् व्रजन्तु भवन्तः।' इत्युक्त्वा तूष्णीमभूत्।

इत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् चरणौ पादौ पदम् पादक्रमम् अपि दातुं न उत्सहेते क्षमेते। तनुः शरीरम् अस्मिन् एव स्थाने कीलिता कीलेन नियंत्रिता इवेत्युत्प्रेक्षा वर्तते इति शेषः। तत् तस्मात् आत्मना स्वयं तु अहं यातुं गन्तुम् असमर्थः अशक्तः अस्मि। अथ यदि भवन्तः मां बलात् बल-पूर्वकं निनीषवः नेतुमिच्छवः सन्ति तत्रापि अस्मात् प्रदेशात् स्थानात् चलितस्य गतस्य आत्मनः स्वस्य जीवितस्य प्राणानां धारणं संरक्षणम् अहं न सम्भावयामि कल्पयामि विगत-जीवितो भविष्यामीत्यर्थः। तु पुनः किन्तु अत्र तिष्ठतः स्थितिं कुर्वतः मे अन्तः हृदये हृदयाभ्यन्तरे यत् एतत् किमपि अनिर्वचनीयम् अनवसीयमानम् अज्ञायमानं परिवर्तते परिभ्रमति, येन एव अवश्यं प्राणाः धार्यन्ते धारयिष्यन्ते इति मे मनसि मम विचारोऽस्तीत्यर्थः। तत् तस्मात् निर्बन्धेन आग्रहेण अलम् कृतम् आग्रहो न क्रियतामित्यर्थ। यावज्जीवं जीवन-पर्यन्तम् आतृप्तेः तृप्तिपर्यन्तं चन्द्रापीडस्य दर्शनं तस्मात् सुखम् आनन्दः भवतां भवतु जायताम्। अल्पं लघु पुण्यं यस्य तथाभूतस्य मे मम प्राप्तं लब्धम् अपि तत् चन्द्रापीडदर्शनसुखं करतलात् एवम् आच्छिद्य बलात् गृहीत्वा दैवेन भाग्येन नीतं गृहीतम्' इति अभिधाय कथयित्वा च कौतुकात् कुतूहलात् किम् एतत् येन एवं भाषसे वदसि, देवस्य समीपं न आयासि आगच्छसि?' इति अस्माभिः पुनः पुनः पृष्टः अभ्यधात् जगाद—'एवं वक्तुं गदितुं लज्जे लज्जाम् अनुभवामि, तथापि वयस्यस्य मित्रस्य एव जीवितेन प्राणैः शपामि शपथं करोमि यत् किञ्चित् जानामि वेद्मि येन कारणेन हेतुना अतः अस्मात् स्थानात् गन्तुं न शक्नोमि पारयामि भवताम् युष्माकम् अपि अयं वृत्तान्तः उदन्तः प्रत्यक्षः अनुभवसिद्ध एव। तत् तस्मात् कारणात् भवन्तः यूयं व्रजन्तु गच्छन्तु' इति उक्त्वा निगद्य तूष्णीम् अभूत् मौनम् आकलयामास।

जाता, दृष्टि कुछ देखती हुई-सी अन्यत्र नहीं जाती, पैर बेड़ी से बँधे हुए-जैसे एक कदम नहीं चलने देते, शरीर इस स्थान में कील से गाड़ दिया हो जैसे, इसलिए स्वयं तो मैं जाने में असमर्थ हूँ। यदि आप लोग मुझे बलात् ले जाना चाहते हैं तो इस स्थान से चले जाते हुए मुझे अपने प्राण-धारणा की संभावना नहीं। किन्तु यहाँ ठहरते हुए मेरे हृदय के भीतर जानने में न आ रहा यह जो कुछ चक्कर काट रहा है और जिससे ही मैं टिका हुआ हूँ, उससे ही मैं प्राण-धारण कर लूँगा—ऐसा मेरा विचार है। इसलिए आग्रह न कीजिए। आप लोगों को जीवनभर तृप्ति-पर्यन्त चन्द्रापीड़ के दर्शन का आनन्द होता रहे। किन्तु मुझ अल्प पुण्य वाले को प्राप्त हुआ भी वह हाथ से ही छीनकर इस तरह भाग्य ले गया है" इस तरह कहते हुए उनसे हमने कौतुक के साथ 'यह क्या जो आप ऐसा बोल रहे हैं? क्या महाराज चन्द्रापीड़ के पास नहीं आवोगे?' बार-बार पूछा, तो बोले—ऐसा कहते मुझे लाज आ रही है, तथापि मित्र चन्द्रापीड़ के प्राणों की शपथ लेता हूँ कि यदि मैं कुछ भी जानता हूँ कि किस कारण मैं यहाँ से नहीं जा सकता। आप लोगों को भी यह हाल प्रत्यक्ष ही है'।

मुहूर्तादिव चोत्थाय तेषु'तेषु रम्यतरेषु तरुतलेषु लतागृहेषु सरस्तीरेषु तस्मिंश्च देवायतने किमपि नष्टमिवान्विष्यन्ननन्यदृष्टिर्बभ्राम। भ्रान्त्वा च चिरमिव खिन्नतरात्मा सनिर्वेदमूर्ध्वं निःश्वस्य तस्मिँल्लतागहने पुनरुपविश्य तस्थौ। वयमपि कृतवीरुत्संनिधानास्तत्प्रतिबोधनप्रत्याशया स्थिता एव। गतवति समधिक इव यामद्वये शरीरस्थितिकरणायास्माभिरभ्यर्थितः प्रत्युवाच। 'वयस्यचन्द्रापीडस्य खल्वमीं स्वजीवितादपि वल्लभतराः प्राणाः। तद्यदि बलादपि परित्यज्य मां गच्छन्ति तथाप्येषां संधारणे मया प्रयत्नः कार्यः। किं पुनरगच्छतामेव। चन्द्रापीडदर्शनेनैव चाहमर्थी न मृत्युना। तदभ्यर्थनैवात्र निष्फला। इत्यभिधायोत्थाय स्नात्वा कन्दमूलफलैर्वनवासोचितां शरीरस्थितिमकरोत्। निर्वर्तितशरीरस्थितौ तस्मिन्वयमपि कृतवन्तः। अनेनैव च क्रमेण विस्मृतान्तरात्मानो रात्रौ च दिवं च किमेतदिति तद्वृत्तान्तमेवानुभावयन्तो दिनत्रयं स्थित्वा निष्प्रत्याशा-

---

मुहूर्तात् किञ्चित्कालानन्तरम् इवेति वाक्यालंकारे उत्थाय तेषु तेषु अतिशयेन रम्येषु रमणीयेषु तरूणां वृक्षाणां तलेषु अधोभागेषु लतागृहेषु लताकुञ्जेषु, सरसः अच्छादसरोवरस्य तीरेषु तटेषु, तस्मिन् च देवायतने देवालये किमपि अनिर्वचनीयं वस्तु नष्टं गतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अन्विष्यन् मृगयमाणः न अन्यत्र दृष्टिः यस्य तथाभूतः कुत्रापि अन्यत्र नावलोकयन्नित्यर्थः बभ्राम अभ्रमत्। भ्रान्त्वा भ्रमणं कृत्वा चिरं दीर्घकालम् इवेति वाक्यालंकारे खिन्नः दुःखितः अन्तरात्मा मनः यस्य स निर्वेदेन वैराग्येण सहितं यथा स्यात्तथा ऊर्ध्वम् उपरि निश्वस्य निश्वासं मुक्त्वा तस्मिन् लतागहने लताकुञ्जे पुनः उपविश्य निषद्य तस्थौ स्थितवान्। कृतम् अनुष्ठितं वीरुधाम् लतानां संनिधानं सामीप्यं यैः तथाभूताः वयम् अपि तस्य वैशम्पायनस्य प्रतिबोधनस्य प्रत्याशया इच्छया स्थिता एव। समधिके इव याभयोः प्रहरयोः द्वये युग्मे प्रहरद्वयादपि अधिके समये इत्यर्थः गतवति वीते सति शरीरस्य स्थितिः निर्वाहः तदुचितस्नानभोजनादिकम् इत्यर्थः तस्य करणाय संपादनाय अस्माभिः अभ्यर्थितः प्रार्थितः सन् प्रत्युवाच उत्तरं ददौ—'वयस्यस्य मित्रस्य चन्द्रापीडस्य कृते स्वस्य जीवितात् जीवनात् अपि खलु निश्चयेन अमी एते मे प्राणाः वल्लभतराः अतिशयेन प्रियाः सन्ति। तत् तस्मात् यदि बलात् हठात् अपि मां परित्यज्य त्यक्त्वा प्राणा गच्छन्ति, तथापि एषां प्राणानां संधारणे रक्षणे मया प्रयत्नः प्रयासः कार्यः कर्तव्यः, किं पुनः अगच्छताम्, तेषाम् अगमने तु वार्तैव केत्यर्थः। चन्द्रापीडस्य दर्शनेन अवलोकनेन एव च अहम् अर्थी प्रयोजनवान् अर्थात् तद्दर्शनेच्छुकोऽस्मि; न मृत्युना मरणेन अर्थी। तत् तस्मात् अत्र शरीरस्थितिविषये अभ्यर्थना प्रार्थना एव निष्फला व्यर्था इत्थम् एवम् अभिधाय कथयित्वा उत्थाय उत्थितो भूत्वा स्नात्वा स्नानं कृत्वा कन्दानि च मूलानि च फलानि च तैः वने वासः निवासः तस्य उचितां योग्यां शरीर-स्थितिं जीवनधारणार्थं भोजनमित्यर्थः अकरोत् संपादितवान्। अनेन एव क्रमेण परिपाट्या विस्मृतः विस्मयविषयीकृतः अन्तरात्मा यैः तथाभूतः वयम् रात्रौ निशि

और थोड़ी देर बाद उठकर उन-उन अतिरम्य वृक्षतलों, लतागृहों, सरोवर के तीरों और उस देवालय में कुछ खोया हुआ-सा ढूँढ़ते हुए और अन्यत्र कहीं न देखते हुए घूमते रहे। और घूमकर देरतक अन्तरात्मा में खिन्न हुए, वैराग्य के साथ ऊपर (लंबी) साँस छोड़कर फिर उस लताकुञ्ज के भीतर प्रविष्ट होकर बैठ गए। लता के समीप हम भी उन्हें समझाने की आशा से बैठे रहे। दो प्रहर से कुछ अधिक समय बीतने पर जब शारीरिक क्रिया करने हेतु हमने उनसे प्रार्थना की तो बोले—'मित्र चन्द्रापीड़ को ये (मेरे) प्राण सचमुच अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, इसलिये यदि हठ-पूर्वक भी मुझे छोड़कर जाते हैं, तो मुझे इनकी रक्षा हेतु प्रयत्न करना ही है, न जाने पर तो बात ही क्या। मैं चन्द्रापीड़ के दर्शनों का इच्छुक हूँ, मृत्यु का नहीं, इसलिये इस विषय में प्रार्थना ही बेकार है' यह कहकर उन्होंने खड़े हो, स्नान करके कन्द, मूल और फलों से वनवासोचित भोजन किया। उनके स्नान भोजनादि कर चुकने पर हमने भी किया। इसी क्रम से, अपने आपको भूले हुये हम रात और दिन 'यह क्या है' इस तरह उसी

स्तदागमनानयनयोः सुकृतशम्बलसंविधानं तत्परिकरं तत्र स्थापयित्वा चागता वयम्। यच्चाग्रतो न प्रेषितः संवादकस्तदेकं तावदन्तरा गच्छतो देवस्यासौ न परापतत्येव। अपरमपि चिरात्प्रविष्टमात्रस्यैव देवस्य मा पुनरागमनक्लेशो भूदिति।

चन्द्रापीडस्य तु तं स्वप्नेप्यनुत्प्रेक्षणीयं वैशम्पायनवृत्तान्तमाकर्ण्य युगपदुद्वेगविस्मयाभ्यामाक्रान्तहृदयस्योदपादि चेतसि। 'किं पुनरीदृशस्य सर्वपरित्यागकारिणो वनवासैकशरणस्य वैराग्यस्य कारणं भवेत्। स्वीयं च न पश्यामि किंचित्स्खलितम्। तातप्रसादात्तु मामिव तमपि चरणतललु[1]ठितचूडामणयोऽर्चयन्त्येव राजानः। ममेव तस्यापि चेच्छाधिकेषु सर्वोपभोगेषु न किंचिदपि हीयते। ममेव तस्याप्याज्ञा न विहन्यत एव। अहमिव सोपि प्रसादान्करोत्येव। मत्त इव तस्मादपि बिभेत्येवापराधिजनः। मयीव तस्मिन्नपि सर्वाः संपदः। तमप्यालोक्य मामिवोत्पद्यते स्पृहा लोकस्य। अप्या-

---

दिवा दिने च 'एतत् किम्' स चासौ वृत्तान्त उदन्तः तम् एव अनुभावयन्तः अनुचिन्तयन्तः दिनयोः त्रयम् त्रीणि दिनानीत्यर्थः (कालात्यन्तसंयोगे द्वि०) स्थित्वा स्थितिं कृत्वा तस्य वैशम्पायनस्य आगमनं च आनयनं च तयोः निर्गता प्रत्याशा येषां तथाभूताः निराशीभूताः इत्यर्थः सुकृतं पुण्यम् एव शम्बलं पाथेयं तस्य संविधानं प्रबन्धं तत् एव च तस्य वैशम्पायनस्य परिकरं भृत्यवर्गं तत्र तस्मिन् स्थाने स्थापयित्वा न्यस्य आगताः आयाताः। यत् च संवादकः सन्देशवाहकः अग्रतः पूर्वं न प्रेषितः प्रहितः तस्य एकं कारणं तावत् गच्छतः व्रजतः देवस्य भवतः अन्तरा मध्ये मार्गम् असौ संवादकः न परापतति एव मिलितुं न पारयत्येव। अपरम् अन्यत् अपि कारणम् इदमस्तीति शेषः यत् चिरात् दीर्घकालानन्तरं प्रविष्टमात्रस्य राजधानीं प्राप्तस्यैव देवस्य भवतः पुनः आगमनस्य वैशम्पायनं प्रति प्रत्यावर्तनस्य क्लेशः कष्टं मा भूत् न भवेत्।

चन्द्रापीडस्य तु स्वप्नेऽपि अनुत्प्रेक्ष्यम् असंभावनीयं तं वैशम्पायनस्य वृत्तान्तम् उदन्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा युगपत् एकदैव उद्वेगः खेदश्च विस्मय आश्चर्यं चेति ताभ्याम् आक्रान्तं व्याप्तं हृदयं यस्य तथाभूतस्य चेतसि मनसि उदपादि विचार उद्भूत इत्यर्थः—'ईदृशस्य एवंविधस्य सर्वस्य परित्यागं करोतीति तथोक्तस्य, वनवास एव एकं शरणम् आश्रयो यस्य तस्य वैरागस्य विरक्तभावस्य किं पुनः कारणं भवेत्! स्वीयं निजं न किञ्चित् स्खलितम् अपराधम् अहं पश्यामि। तातस्य पितुः प्रसादात् कृपया माम् चन्द्रापीडम् इवेत्युपमायाम् तम् वैशम्पायनम् अपि चरणयोः तले लुठिताः लुलिताः चूडामणयः शेखराः येषां तथाभूता राजानः अर्चयन्ति पूजयन्ति एव। मम इवेत्युपमायाम् तस्यापि च इच्छातः अधिकेषु यावदिष्यते तावतोऽप्यधिकेषु सर्वे च ते उपभोगाः विषयानुभवाः तेषु न किञ्चित् हीयते न्यूनमस्ति। मम इव तस्यापि आज्ञा न विहन्यते प्रतिहन्यते उल्लंघ्यते इत्यर्थः। अहम् इव सोऽपि प्रसादान् द्रव्यादिदानेषु अनुग्रहान् करोति। मत्तः मत् इव अपराधिजनः अपराधिनो लोकाः तस्मात् अपि बिभेति त्रस्यति। मयि इव तस्मिन् अपि सर्वाः सकलाः

बात को सोचते-सोचते तीन दिन रहकर उनके आने अथवा ले जाने की ओर से निराश हुये, (उनके हेतु) पाथेय-रूप में पुण्य का प्रबन्ध करके और उसी को उनके भृत्यवर्ग के रूप में रखकर आ गये। और जो हमने पहले सन्देशवाहक नहीं भेजा, उसका एक (कारण) तो यह है कि आपके जाते-जाते उसका मार्ग के बीच में आपको नहीं मिल सकना था। दूसरे, बहुत समय बाद (घर) पहुँचते ही आपको फिर आने का कष्ट न हो (यह हमने सोचा)।

स्वप्न में भी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है, ऐसे वैशम्पायन के उस वृत्तान्त को सुनकर एक-साथ दुःख और आश्चर्य भरे चन्द्रापीड़ के मन में विचार उठा—'सब कुछ छोड़-छाड़ देने वाले, वनवास की शरण लेने वाले ऐसे वैराग्य का क्या कारण होगा? मैं अपनी भी कोई गलती नहीं देख रहा हूँ। पिताजी की कृपा से मेरी तरह उसकी भी राजा लोग चरणतल पर चूड़ामणि लुढकाये अर्चना करते हैं। मेरी तरह उसको भी इच्छा से भी अधिक सभी भोगों में

---

1. लुलित।

गच्छंस्तातेनाम्बया चार्यशुकनासेन, मनोरमया च तनयस्नेहोचितेन सौहार्देन न संभावितः। विनयाधिक्येच्छुना तातेन शुकनासेन वा किंचित्पीडाकरमभिहितम्, ताडितो वा। तत्रापि नैवासावेवमस्नेहलः पिशुनस्वभावो वा गुरुजनाभक्तो वा गुणोपादानविमुखो वा तरलचित्तो वा यत्किंचनकारी यः कश्चिदिव क्षुद्रप्रकृतिराद्यपुत्रतागर्वितो दुःशिक्षितो दुर्विनीतो वा पुत्रैकतादुर्ललितो वा यो जन्मनः प्रभृति सर्वप्रकारोपकारिणो गुरुजनस्योपरि खेदमेवं कुर्यादनुबन्धाद्विरमेद्वा। प्रशमस्यापीदृशस्य नैष कालः। अद्याप्यसौ विद्वज्जनोचिते गार्हस्थ्य एव न निवेशितो देवपितृमनुष्याणामानृण्यमेव नोपगतः। अगत्वा चानृ-

---

सम्पदः वैभवानि सन्तीति शेषः। माम् इव तम् वैशम्पायनम् अपि आलोक्य दृष्ट्वा लोकस्य जनस्य स्पृहा इच्छा उत्पद्यते जायते (उपरि सर्वत्रोपमा)। अपि इति संभावनायाम् आगच्छन् वैशम्पायनः तातेन पित्रा अम्बया मात्रा विलासवत्या च आर्येण मान्येन शुकनासेन मनोरमया च तनये पुत्रे यः स्नेहः प्रीतिः तस्य उचितेन योग्येन सौहार्देन सौहृद्येन न संभावितः संभानितः स्यात विनयस्य नम्रतायाः आधिक्यम् अधिकताम् इच्छतीति तथोक्तेन तातेन मे पित्रा, शुकनासेन वा पीडाकरं पीडाजनकं किञ्चित् अभिहितं कथितम् ? वा अथवा ताडितः प्रहृतः? तत्रापि ताडनादिषु क्रियमाणेष्वपि असौ वैशम्पायनः न एवम् अस्नेहलः स्नेहरहितः रूक्ष इति यावत् पिशुनः खलः स्वभावः प्रकृतिः यस्य तथाभूतः अथवा गुरुजनस्य मातापित्रादिकस्य अभक्तः भक्तिरहितः अथवा गुणानां दयादाक्षिण्यादीनाम् उपादाने ग्रहणे विमुखः पराङ्मुखः अथवा तरलं चञ्चलं चित्तं यस्य तथाभूतः अथवा यत् किञ्चित् शीलमस्येति तथोक्तः यथेच्छकारी, यः कश्चित् साधारणजनः इवेत्युपमायाम् क्षुद्रा तुच्छा प्रकृतिः स्वभावो यस्य सः आद्यः प्रथमश्चासौ पुत्रः तनयः तस्य भावः तत्ता तया गर्वितः संजातगर्वः, दुः दुष्टं शिक्षितः अध्यापितः, दुर्विनीतः विनयशून्यः अथवा पुत्रस्य एकता तया दुर्ललितः एकपुत्रत्वकारणात् अतिलालितः अतिलालनेन दूषित इति यावत् यः जन्मतः प्रभृति प्रारभ्य सर्वे च प्रकाराः तैः उपकरोतीति तथोक्तस्य अत्युपकारकस्येत्यर्थः गुरुजनस्य माता-पित्रादीनाम् उपरि एवं खेदं दुःखं कुर्यात्, गुरुजनखेदापादक इत्यर्थः, अनुबन्धात् सम्बन्धात् प्रेमतः इति यावत् विरमेत् निवर्तेत, गुरुजने न स्निह्येत् इत्यर्थः। ईदृशस्य एतादृशस्य प्रशमस्य विरक्तेः न एष कालः समयः। अद्य अपि अद्ययावत् विद्वांसश्चते जनाः पण्डितलोकाः तेषाम् उचिते योग्ये गार्हस्थ्ये गृहस्थाश्रये एव न निवेशितः स्थापितः, देवाश्च पितरश्च मनुष्याश्चेति तेषाम् आनृण्यम् नास्ति ऋणं यस्येति अनृणः तस्य भावः तत् एव न उपगतः प्राप्तः नानृणीभूत इत्यर्थः।

टिप्पणी—आनृण्यम्—वेदों में लिखा है--'जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैः ऋणवान् जायते, ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः, यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः'। जन्म से ही ब्राह्मण पर तीन

कोई भी कमी नहीं। मेरी तरह उसकी आज्ञा भी अकाट्य है। मेरी तरह वह भी (दानादि-रूप में) लोगों पर अनुग्रह करता ही है। मेरी तरह उससे भी अपराधी लोग डरते ही हैं। मेरी तरह उसके पास भी सभी सम्पत्तियाँ हैं। मेरी तरह उसको भी देखकर लोगों को स्पृहा होती है। हो सकता है कि आते हुये उसे पिताजी और माताजी ने एवं शुकनासजी और मनोरमाजी ने वात्सल्योचित सौहार्द से संमानित न किया हो। अधिक विनय के इच्छुक पिताजी अथवा शुकनासजी ने कुछ पीड़ा-जनक बात कह दी हो, अथवा ताड़ना की हो। तिस पर भी वह ऐसा स्नेह रहित दुष्ट-स्वभाव का अथवा गुरुजन का अभक्त अथवा गुण-ग्रहण से विमुख, अथवा चंचलचित्त अथवा जो मन में आवे वैसा करने वाला भी नहीं है, वह उस साधारण व्यक्ति की तरह भी नहीं जो क्षुद्र प्रकृति वाला, पहला पुत्र होने के कारण गर्वीला, बुरी शिक्षा प्राप्त, दुर्विनीत, अथवा इकलौता होने से लाड-प्यार में बिगड़ा होता है, अथवा जो जन्म से लेकर सभी तरह का उपकार करने वाले माता-पिता आदि को दुःख दे अथवा उनसे प्रेम न करे। ऐसी विरक्ति का भी तो अभी समय नहीं है। अभी वह विद्वानों के योग्य गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट

ण्यमृणत्रयेण बद्धः क्व गतः। न तेन पुत्रपौत्रसन्तत्या वंशः प्रतिष्ठां नीतः। नानन्तदक्षिणैर्महाक्रतुभिरिष्टम्। न सेतुकूपप्रपाप्रासादतडागारामादिभिः कीर्तनैरलंकृता मेदिनी। नाकल्पस्थायि दिशोयायि यशो विप्रकीर्णम्। न गुरवोऽनुवृत्त्या सुखं स्थापिताः। न स्निग्धबन्धूनामुपकृतम्। न प्रणयिनो निर्विशेषविभवतां नीताः। न साधवः परिवर्धिताः। नानुजीविनः संविभक्ताः। नाभ्यागताः कृता निस्तृषः। न दृष्टाः श्रुता वाङ्गनाः। न जातेन जीवलोकसुखान्यनुभूतानि। न तेन पुरुषार्थसाधनानां धर्मार्थकामानामेकोपि हि प्राप्तः। किमेतत्तेन कृतम्।'

ऋण चढ़े रहते हैं—ऋषि-ऋण, देव-ऋण, और पितृ-ऋण। ऋषि-ऋण ऋषि-प्रोक्त वेदादि शास्त्रों का विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यावस्था में अध्ययन, देव-ऋण देवताओं के प्रति यज्ञादि का अनुष्ठान और पितृ ऋण गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो कुल-रक्षार्थ पुत्रोत्पादन। किन्तु कवि ने यहाँ ऋषि-ऋण के स्थान में मनुष्य-ऋण गिना है।

आनृण्यम् ऋणराहित्यम् अगत्वा अप्राप्य ऋणानां त्रयेण बद्धः नियंत्रितः क्व गतः वैशम्पायन इति शेषः। तेन पुत्र-पौत्रादीनां संतत्या सातत्येन अविच्छेदेनेत्यर्थः वंशः कुलं प्रतिष्ठां स्थितिं न नीतः प्रापितः। अनन्ता अपरिमिता दक्षिणा यज्ञेषु ब्राह्मणेभ्यो दीयमानद्रव्यं येषु तथाभूतैः महाक्रतुभिः महायज्ञैः न इष्टम् यज्ञः कृतः। मनुष्यर्णरूपे सेतवः आलयः ('सेतुरालौ स्त्रियाँ पुमान्' इत्यमरः) च कूपाः उदपानाश्च प्रपाः पानीयशालिकाः (प्रपा पानीयशालिका' इत्यमरः) प्रासादाः देवानां नृपाणां च गृहाणि च तडागाः कासाराश्च आरामाः उपवनानि चेत्यादौ येषां तैः कीर्तनैः नामभिः मेदिनी मही न अलङ्कृता भूषिता। आकल्पं कल्पपर्यन्तं तिष्ठतीति तथोक्तम्, दिक्षु दिशासु याति गच्छतीति दिशोयायि (अत्र 'दिग्यायि' इत्येव सुवचम्) यशः कीर्तिः न विप्रकीर्णं प्रसारितम्। गुरवः मातापित्रादि-श्रेष्ठपुरुषा अनुवृत्त्या अनुकूलाचरणेन सुखं यथा स्यात्तथा न स्थापिताः न सुखं प्रापिता इत्यर्थः। स्निग्धाः स्नेहवन्तः ये बन्धवः बान्धवाः तेषां न उपकृतम् उपकारः न कृतः (अत्र सम्बन्ध-विवक्षायां षष्ठी)। प्रणयिनः प्रियमित्राणि निर्गतः विशेषः भेदः यस्मात् तथाभूतः समान इत्यर्थः विभवः सम्पत् यस्य तस्य भावः तत्ता ताम् न नीतः प्रापितः स्वविभवसमानः तेषां विभवः न कृतः इत्यर्थः। साधवः सज्जनाः न परिवर्धिताः परितः वृद्धिं प्रापिताः। अनुजीविनः भृत्याः न संविभक्ताः धनस्य भागं न ग्राहिताः। अभ्यागताः अतिथयः निर्गता तृट् इच्छा येषां तथाभूताः न कृताः सफलमनोरथा न कृता इत्यर्थः। अङ्गनाः स्त्रियः न दृष्टाः। विलोकिताः अथवा श्रुताः आकर्णिताः। जातेन जन्म गृह्णता जीवलोकस्य संसारस्य सुखानि आनन्दाः न अनुभूतानि उपभुक्तानि। पुरुषार्थस्य जीवनध्येयस्य साधनानां धर्मश्च अर्थः द्रव्यं च कामः भोगश्चेति तेषां मध्ये एकः अन्यतोऽपि हि निश्चयेन न प्राप्तः अधिगतः। किम् एतत् तेन वैशम्पायनेन कृतम् विहितम् न किमपीत्यर्थः।

टिप्पणी—पुरुषार्थ—वैसे तो शास्त्रों ने मानव-जीवन के चार ध्येय मान रखे हैं, जिन्हें

ही नहीं हुआ, न उसे देव-ऋण, पितृ-ऋण और मनुष्य-ऋण से ही मुक्ति मिली है। तीन ऋणों को चुकाए बिना बँधा हुआ वह कहाँ गया? पुत्र पौत्रादि संतति द्वारा वंश नहीं चलाया। अपरिमित दक्षिणा वाले महायज्ञ नहीं किये। न पुल, कुआँ, प्याऊ, देवभवन, तड़ाग, उपवन आदि द्वारा अपने नाम का पृथिवी में डंका नहीं बजाया। न कल्पपर्यन्त स्थायी दिग्व्याप्त यश फैलाया। न गुरु लोगों का अनुवर्तन करके उन्हें सुख पहुँचाया। न स्नेही बन्धु बान्धवों का उपकार किया। न अपने समान मित्रगण को वैभव-सम्पन्न बनाया। न नौकर चाकरों में सम्पत्ति बाँटी। न अतिथियों की इच्छा पूरी की। न स्त्रियों को देखा व सुना। न जन्म ग्रहण किये उसने संसार के सुख भोगे हैं। पुरुषार्थ (जीवन-ध्येय) के साधन धर्म और काम में से उसने एक को भी तो नहीं प्राप्त किया है। यह उसने क्या किया है?"

इत्याक्षिप्तचेताश्चिन्तयंश्चिरमिव तस्मिन्नेव तरुतले स्थित्वा शून्यहृदयोपि यथाक्रियमाणप्रसादसंभावनासंभावितं विसर्ज्य सकलमेव राजकमुत्थाय तत्क्षणकृतम्, उत्तम्भिततुङ्गतरतोरणाबद्धचन्दनमालम्, उभयपार्श्वस्थापितोत्पल्लवमुखपूर्णहेमकलशम्, द्वारात्प्रभृति सिक्तसंसृष्टभूमिभागम्, अन्तर्बहिश्च प्रकीर्णसुरभिकुसुमप्रकरम्, इतस्ततः संचरता कर्मान्तिकलोकेन गृहीतविविधभृङ्गारम्, मणिचामरतालवृन्तरत्नपादुकाद्युपकरणपाणिभिर्वारवनिताभिश्चाकीर्णम्, वितानतलवर्तिना मदामोदाधिवासितदिगाननेन राजहस्तिना गन्धमादनेन सनाथीकृतैकपार्श्वम्, अपरपार्श्वेपि कल्पितेन्द्रायुधावस्थानम्, उपवाह्य-

---

'चतुर्वर्ग' भी कहते हैं। वह चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूप है। किन्तु यहाँ मोक्ष को छोड़कर 'त्रिवर्ग' ही गिनाया है। इसका कारण यह है कि चौथा ध्येय मोक्ष संन्यासियों के लिए ही होता है, अतः उसे छोड़ गृहस्थ के लिये धर्म, अर्थ और काम ही उपादेय है।

इति एवं प्रकारेण आक्षिप्तम् आकुलं चेतः मनो यस्य तथाभूतः चन्द्रापीडः चिन्तयन् विचारयन् चिरम् दीर्घकालं इवेति वाक्यालंकारे तस्मिन् एव तरोः वृक्षस्य तले अधः स्थित्वा निषद्य शून्यं रिक्तं हृदयं यस्य तथाभूतोऽपि यथा यथोचितं यथा स्यात्तथा क्रियमाणः प्रसादः उपहारदान-द्वारा अनुग्रहः च संभावना संमानश्च ताभ्यां संभावितं सत्कृतं सकलं समग्रम् एव राजकं राज्ञां समूहं विसर्ज्य गन्तुम् आज्ञाप्य स क्षणः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा कृतं विनिर्मितम् एतत् अन्यानि च द्वितीयान्तानि कायमानम् इत्यस्य विशेषणानि, वाक्यं च कायमानमयासीत्, इत्यस्ति। **उत्तम्भि०**—उत्तम्भितम् उत्थापितं यत् तुङ्गतरम् अत्युच्चं तोरणं वहिर्द्वारं तस्मिन् बद्धा असक्ता चन्दन-माला चन्दनचर्चितमाला यस्मिन् तथाभूतम् (अत्र वन्दनमालेति सुवचम्) **उभय०**—उभयोः द्वयोः पार्श्वयोः वामदक्षिणभागयोरित्यर्थः स्थापितः न्यस्तः, उत् ऊर्ध्वं पल्लवं किसलयं मुखे अग्रभागे यस्य तथाभूतश्च पूर्णः जलभरितश्च हेम्नः सुवर्णस्य कलशः घटो यस्मिन् तथाभूतम्, द्वारात् प्रभृति आरभ्य सिक्तः जलप्रोक्षितः संमृष्टः शोधितश्च भूमिमार्गः भूप्रदेशो यस्य तम्, अन्तः मध्ये वहिः बाह्येन च प्रकीर्णः विकीर्णः सुरभीणां सुगन्धीनां कुसुमानां पुष्पाणां प्रकरः समूहः यस्मिन् तम्, इतस्ततः यत्र तत्र संचरता भ्रमता कर्मान्तिकः कर्मव्यापृतसेवकश्चासौ लोकश्च तेन गृहीताः धृताः विविधाः नानाप्रकाराः भृङ्गाराः कनकालुकाः यस्मिन् तम् ['भृङ्गाराः कनकालुका' इत्यमरः] **मणि०**—मणिखचितानि चामराणि मणिचामराणि च तालवृन्तानि व्यजनानि च रत्नानां मणीनां पादुकानि उपानहश्चैतानि आदौ यस्य तथाभूतम् उपकरणं सामग्री पाणौ हस्ते यासां तथाभूताभिः वारवनिताभिः वेश्याभिः आकीर्णं पूर्णम्, **वितान०**—वितानस्य उल्लोचस्य तले अधोभागे वर्तते इति तथोक्तेन, मदस्य दान-जलस्य आमोदेन सौरभेण अधिवासितानि सुरभितानि दिशाम् दिशानाम् आननानि मुखानि येन तथाभूतेन, राज-हस्तिना नृपकरिणा गन्धमादनेन एतदाख्येन सनाथीकृतं युक्तं सहितमित्यर्थः एकं पार्श्वं पार्श्वभागो यस्य तम्, अपरस्मिन् द्वितीये पार्श्वे अपि कल्पितं रचितम् इन्द्रायुधस्य अव-

---

इस प्रकार आकुल हुआ चन्द्रापीड़ सोचता-सोचता देर तक उसी पेड़ के नीचे बैठकर हृदय से शून्य होता हुआ भी यथायोग्य किये जाने वाले अनुग्रह और सत्कार से सम्मानित किये हुए सारे राज-समूह को विदा करके, उठ कर धीरे-धीरे पटमण्डप में चल दिया, जो उसी समय तय्यार कर दिया गया था, जिसके खड़े किये बड़े ऊँचे तोरण पर चन्दन-माला बँधी थी, दोनों तरफ मुख पर पल्लव रखे, जलपूर्ण सुवर्ण-कलश धरे हुए थे, द्वार से लेकर भूमि-भाग सींचा तथा साफ-सुथरा बना हुआ था, भीतर और बाहर सुगन्धित पुष्प-समूह बिखेरा हुआ था, इधर-उधर घूम रहे कर्मकारों ने नाना प्रकार के स्वर्ण-पात्र (हाथों में) पकड़े हुए थे, जो मणि-जड़े चामर, पंखे तथा रत्नजड़ित सामग्री हाथ में पकड़े वेश्याओं से भरा हुआ था, जिसके एक तरफ चाँदनी के नीचे मद-जल के सौरभ से दिङ्-मुखों को सुगन्धित किये राजगज गन्धमादन खड़ा

करेणुकाक्रान्तबाह्याङ्गणम्, अशेषद्वारावहितबहुवेत्रिलोकं महत्त्वाद्गम्भीरतयानेकसत्त्वशरणतया च महाजलनिधिमनुकुर्वाणम्। तथा हि सवेलावनमिव यामावस्थितानेककरिघटापरिकरेण, अन्तःप्रविष्टमहाशैलमिव गन्धमादनेन, सकल्लोलमिव संचरत्संभ्रान्तकर्मान्तिकलोकोर्मिपरंपराभिः, सावर्तमिव प्राहरिकजनमण्डलावस्थानैः, सलक्ष्मीकमिव वाराङ्गनाभिः, सरत्नमिव महापुरुषैः, सहंसमालमिव सितपताकाभिः, सफेनपटलमिव कुसुमप्रकरैः, हरिमिवानन्तभोगपरिकरं कायमानमविशत्।

प्रविश्य चागृहीतप्रतिकर्मतया मलिनवेषाभिरुद्विग्नदीनमुखीभिरितस्ततो वाराङ्ग-

---

स्थानम् उपवेशन-स्थानं यस्मिन् तम्, उपवाह्याः उपवाहयितुं योग्याः याः करेणुकाः हस्तिन्यः ताभिः आक्रान्तम् अधिष्ठितं बाह्यं बहिर्भवम् अङ्गणं प्राङ्गणं यस्य तम्, **अशेष०**—अशेषाणि अखिलानि यानि द्वाराणि तेषु अवहितः सावधानः बहुः प्रचुरः वेत्रिलोकः वेत्रधारिराजपुरुषसमूहः यस्मिन् तम्, महत्त्वात् आयतत्वात् गम्भीरतया गाम्भीर्येण च अनेके ये सत्त्वाः प्राणिनः हस्ति-तुरग-मनुष्यात्मकाः तेषां शरणतया आश्रयतया च महाजलधिं महासागरम् अनुकुर्वाणं विडम्बयमानम्, तथा हि यथा—यामे-यामे प्रतिप्रहरम् अवस्थिताः ये अनेके करिणः तेषां घटायाः समूहस्य परिकरेण उपस्करेण उपकरणेनेति यावत् वेलायां तटे यत् वनं तेन सह वर्तमानम् इव तटीयवनस्य महोच्च-श्यामवर्ण-वृक्षैः गजघटायाः साम्यमुक्तम्, गन्धमादनेन राज-करिणा अन्तः मध्ये प्रविष्टः स्थितः महान् शैलः पर्वतः मैनाक इति यावत् यत्र तम् इव, जलगतमहाशैलेन उच्चत्वात् गन्धमादनस्य साम्यम्, सञ्चरन् इतस्ततः भ्रमन् संभ्रान्तः त्वरायुक्तः कर्मान्तिक-लोकः कर्मकरजन एव ऊर्मयः तरङ्गाः तेषां परम्पराभिः श्रेणिभिः कल्लोलैः तरङ्गैः सह वर्तमानम् इव, इतस्ततः सञ्चरत्कर्मकरसमूहो भ्रमद्-वीचिभिः उपमितः, प्राहरिकाः प्रहरिणो ये जनाः व्यक्तयः तेषां मण्डलेन मण्डलाकारेण अवस्थानैः उपवेशनैः आवर्तः जलभ्रमिः तैः सह वर्तमानमिव, अत्र जलवर्तैः भ्रमत्प्रहरिमण्डल-साम्यम्, वाराङ्गनाभिः वारवनिताभिः सलक्ष्मीकं लक्ष्मीसहितम् इव, लक्ष्म्या वाराङ्गना-साम्यम्, अनेन वाराङ्गनानां लक्ष्मीवत् सौन्दर्यातिशयो व्यज्यते, महापुरुषैः सत्पुरुषैः सरत्नं रत्नसहितम् इव एतेन महापुरुषाणां रत्न-सादृश्यमुक्तम्, सिताः श्वेताः याः पताकाः ध्वजाः ताभिः हंसानां माला श्रेणी तया सहितम् इव अत्र पताकानां हंसानाञ्च श्वेतत्वं सादृश्यम् कुसुमानां पुष्पाणां प्रकरैः समूहैः फेनस्य पटलेन राशिना सह वर्तमानम् इव, अनन्तः अपरिमितः यो भोगः सुखोपभोगः तस्य परिकरः समूहः यस्मिन् तथाभूतम् अथ च अनन्तः शेषनागः तस्य भोगः शरीरम् एव परिकरः पर्यङ्कः यस्य तथाभूतम् ('परिकरः पर्यङ्क-परिवारयोः' इत्यमरः) हरिं विष्णुम् इव कायमानं पटमण्डपम् अविशत् प्रविष्टवान्, सर्वत्रोपमा।

प्रविश्य—न गृहीतं स्वीकृतं प्रतिकर्म शरीरप्रसाधनं याभिः तासां भावः तत्ता तया मलिनः श्यामः वेषः नेपथ्यं यासां तथाभूताभिः, उद्विग्नम् आकुलं दीनं दैन्यपूर्णं मुखं यासां

था और दूसरी तरफ इन्द्रायुध के लिये भी स्थान बना हुआ था, बाहर के आँगन में सवारी की हथिनियाँ खड़ी थीं, सभी द्वारों पर बेंत हाथ में लिये बहुत से सिपाही लोग चौकस खड़े थे, जो विशाल, गंभीर और अनेक प्राणियों का आश्रय होने कारण महासागर का अनुकरण कर रहा था, जैसे—पहरे पर स्थित अनेक गज-घटा के उपकरण से तीर-स्थित वन-सहित-सा, गन्धमादन (नृपगज) से भीतर स्थित महापर्वत (मैनाक) वाला-सा, त्वरा-पूर्वक इधर-उधर घूमते कर्मकर-समूह से तरंगों वाला-सा, प्रहरियों की मंडलाकार स्थितियों से जल-भौंरों वाला-सा वाराङ्गनाओं से लक्ष्मी सहित-सा, महापुरुषों से रत्नोंभरा–सा, सफेद पताकाओं से हंस-पंक्तियों वाला-सा पुष्प-समूहों से फेन-राशियों वाला-सा, अनन्त (अपरिमित) भोग-निचय वाला होने से अनन्त (शेषनाग) के भोग (शरीर) की शय्या वाला विष्णु-सा मण्डप-भवन चल दिया।

और प्रवेश करके, शरीर का श्रृंगार न करने के कारण मलिन वेष एवं उद्विग्न और

नाभिर्यामिकलोकेन कर्मान्तिकैश्च प्रणम्यमानस्तूष्णीमिवालोककारकेणेव मदामोदेनावेदिते निसृष्टदृष्टिर्गन्धमादने शनैः शनैर्वासभवनमयासीत्। तत्र चापनीतसमायोगो विमुच्याङ्गानि शयनीये तरुतालवृन्तानिलेन संवीज्यमानोऽङ्गसंवाहकारिभिश्च शनैः शनैरपनीयमानागमनखेदः सकलरजनीप्रजागरखिन्नोऽपि चाप्राप्तनिद्रासुखो दुःखासिकया पुनरपि दुःखान्तरहेतुं चिन्तामेवाविशत्। 'यदि तावदप्रतिमुक्तस्तातेनाम्बया वा महति शोकार्णवे निक्षिप्य तौ तनयविरहशोकविक्लवं तातं शुकनासमम्बां च मनोरमामनाश्वस्यास्मादेव प्रदेशाद्गच्छामि तदा मयापि वैशम्पायनस्यानुकृतं भवति। निवृत्य पुनर्गमने चामुक्तिपक्षमाशङ्कते मे हृदयम्। तत्किं करोमि। अथवास्थान एवाप्रतिमुक्तिशङ्का मे।

तथाभूताभिः इतस्ततः सञ्चरन्तीभिः इति शेषः वाराङ्गनाभिः वेश्याभिः, यामिकलोकेन प्रहरिभिः, कर्मान्तिकैः कर्मकरैः भृत्यैरिति यावत् प्रणम्यमानः नमस्क्रियमाणः तूष्णीम् जोषम् इव आलोकः जय जयेतिस्तुतिनादः तं करोतीति तथोक्तेन जनेन इव अर्थात् यथा 'जय-जय'-कर्त्रा आगच्छन् राजा आवेद्यते तद्वत् मदस्य दान-जलस्य आमोदेन सौरभेण आवेदिते सूचिते गन्धमादने निसृष्टा प्रक्षिप्ता दृष्टिः येन तथाभूतः चन्द्रापीडः शनैः शनैः मन्दं मन्दं वासभवनं पटभवनगतं स्वनिवास-कक्षम् अयासीत् अगमत्, तत्र च अपनीतः दूरीकृतः समायोगः सम्बन्धः बाह्यजनसम्पर्क इत्यर्थः येन तथाभूतः सः अङ्गानि विमुच्य त्यक्त्वा अङ्गानि शिथिलीकृत्येत्यर्थः शयनीये शय्यायां तरूणां वृक्षाणां यानि तालवृन्तानि व्यजनानि तेषाम् अनिलेन पवनेन संवीज्यमानः क्रियमाण-बीजनः अङ्गानां संवाहः संमर्दनं तं कुर्वन्तीति तथोक्तैः च अपनीयमानः दूरीक्रियमाणः आग-मनस्य खेदः क्लमः यस्य तथाभूतः सकला समस्ता या रजनी रात्रिः तस्यां यः प्रजागरः जागरणं तेन खिन्नः खेदं प्राप्तोऽपि च दुःखेन आस्यते स्थीयते अत्रेति दुःखासिका दुःखेनावस्थानमित्यर्थः तया अथवा असिः खड्गः एव असिका दुःखम् असिका इवेति दुःखासिका तया तीक्ष्णदुःखेनेत्यर्थः न प्राप्तः निद्रायाः स्वापस्य सुखं येन सः पुनः अपि द्वितीयवारं अन्यत् दुःखमिति दुःखान्तरं तस्य हेतुं कारणं दुःखजनिकामित्यर्थः चिन्ताम् एव अविशत् प्रविष्टोऽभवत्, 'यदि तावत् तातेन पित्रा तारापीडेन अथवा अम्बया विलासवत्या अप्रतिमुक्तः अविसर्जितः अननुमत इत्यर्थः तौ माता-पितरौ महति विशाले शोकः दुःखमेव अर्णवः सागरः तस्मिन् [रूपकम्] निक्षिप्य विनिपात्य, तनयस्य पुत्रस्य वैशम्पायनस्य विरहेण वियोगेन यः शोकः दुःखं तेन विक्लवं विह्वलं तातं पितरं शुकनासं अम्बां मातरं मनोरमाम् च अनाश्वस्य आश्वासनम् अदत्त्वा अस्मात् एव प्रदेशात् स्थानात् गच्छामि अच्छोदसरः इति शेषः, तदा मयापि वैशम्पायनस्य अनुकृतम् अनु-करणं कृतं भवति (अत्र वैशम्पायनोऽनुकृतः इति सुवचम्)। **निवृत्य**—निवृत्य उज्जयिनीं प्रत्यावृत्य पुनः द्वितीयवारं गमने वैशम्पायनान्वेषणार्थमिति शेषः च मे हृदयं स्वान्तं अमुक्तः पित्रोः सकाशात् अननुमतेरित्यर्थः पक्षं विकल्पम् आशङ्कते आशङ्काविषयीकरोति। तत्

उदास चेहरों वाली इधर-उधर (घूम रही) वाराङ्गनाओं, पहरेदारों तथा नौकर-चाकरों द्वारा प्रणाम किया जाता हुआ चन्द्रापीड चुपचाप जय-जयकार करने वाले से-जैसे मद-सौरभ से सूचित किये गए गन्धमादन पर सूनी दृष्टि डाले धीरे-धीरे वास-भवन में चला गया और वहाँ (राजा लोगों के) सम्पर्क से पृथक् हुआ, शय्या पर अंगों को ढीलाढाला छोड़कर वृक्षों के (पत्तों के) बने पंखों की हवा दिया जाता हुआ, अङ्ग दबाने वाले नौकरों द्वारा धीरे-धीरे चलने की थकान से रहित किया जाता हुआ, सारी रात जागते रहने से खिन्न होता हुआ भी तीव्र दुःख के कारण निद्रा-सुख न प्राप्त किये फिर दूसरे ही दुःख की कारण-भूत चिन्ता में जा फँसा—'यदि तो मैं पिता जी और माता जी की अनुमति लिये बिना ही उन दोनों को बड़े भारी शोक सागर में डालकर तथा शुकनास जी एवं मनोरमा जी को आश्वासन न देकर इसी स्थान से (वैशम्पायन के पास) चल पड़ता हूँ, तो मैंने भी वैशम्पायन का अनुकरण किया। (घर) लौटकर फिर जाने में मेरे हृदय में (माता-पिताजी से) अनुमति न मिलने की शंका

प्रियसुहृदात्मानं मां च परित्यजताप्यपरेण प्रकारेण गमनमुत्पादयता कादम्बरीसमीपगमनोपायचिन्तापर्याकुलमतेरुपकृतमेव। तदधुना वैशम्पायनप्रत्यानयनाय यान्तं न तातो नाम्बापि नार्यशुकनासोपि निवारयितुं शक्नोति माम्। गतश्च वैशम्पायनसहितस्तेनैव पार्श्वेन पुरस्ताद्गमिष्यामि।' इति निश्चित्य तत्कालकृतं वैशम्पायनवियोगदुःखं परिणामसुखमौषधमिव बहु मन्यमानो मुहूर्तमिव स्थित्वा विश्रान्तः सुखितैरङ्गैरापूरिते तृतीयार्धयामशंखे शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत्।

उत्थाय च यत्रैव कादम्बरी तत्रैव वैशम्पायन इति स्वधैर्यावष्टम्भेनैव संस्तभ्य हृदयं शून्यान्तरात्मा पुनरेव संवर्गिताशेषराजलोकः शरीरस्थितिमकरोत्। कृताहारश्चा-

---

तस्मात् किं करोमि अनुतिष्ठामि। अथवा पक्षान्तरे मे अप्रतिमुक्तेः अननुमतेः शङ्का अस्थाने (अव्ययम्) अयुक्ता अनुचितेति यावत् ('युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः) प्रियेण सुहृदा मित्रेण वैशम्पायनेन आत्मानं स्वम् मां च परित्यजता परित्यागं कुर्वता सतापि, वैशम्पायनेन आत्मा स्कन्धावारेण सह न गृहमानीतः प्रत्युत तत्रैव अच्छोदसरसि त्यक्तः, चन्द्रापीडोऽपि त्यक्त इति भावः, अपरेण अन्येन प्रकारेण गमनं यात्राम् उत्पादयता जनयता कादम्बर्याः समीपे गमनस्य उपायस्य साधनस्य चिन्तया पर्याकुला व्याकुला मतिः बुद्धिः यस्य तथाभूतस्य मे उपकृतम् उपकारः कृतः एव अर्थात् आत्मानम् अच्छोद-सरस्तटे त्यक्तवतः वैशम्पायनस्य आनयनाय तत्र गतोऽहं कादम्बरीमपि द्रक्ष्यामीति तेन ममोपकार एव कृतः। तत् तस्मात् अधुना वैशम्पायनस्य प्रत्यानयनाय तं गृहमानेतुं यान्तं गच्छन्तं मां न तातः पिताः न अम्बा माता अपि न आर्य-शुकनासोऽपि निवारयितुं निषेद्धं शक्नोति पारयति। गतः तत्र प्राप्तश्च वैशम्पायनसहितोऽहं तेन एव पूर्वपरिचितेन पार्श्वेन दिशया मार्गेणेत्यर्थः पुरस्तात् अग्रे इति हेमकूटे गमिष्यामि प्रयास्यामि' इति निश्चित्य अवधार्य तस्मिन् काले समये कृतं जनितं वैशम्पायनस्य वियोगस्य विरहस्य दुःखं कष्टं परिणामे पर्यवसाने सुखं सुखकरम् औषधम् अगदम् इव बहु यथा स्यात्तथा मन्यमानः बुध्यन् मुहूर्तं किञ्चित्कालम् इवेति वाक्यालंकारे स्थित्वा विश्रान्तः कृतविश्रमः सुखितैः सुखं प्राप्तैः अङ्गैः उपलक्षितः (अत्रोपलक्षणे तृ०) यामस्य अर्धम् इति अर्धयामः तृतीयः अर्धयामः तस्य, रात्रिः त्रियामेत्युच्यते, तस्य यामद्वयस्य समाप्त्यनन्तरं तृतीयस्य यामस्य अर्धभागस्य इत्यर्थः शङ्खे आपूरिते आध्माते सति शरीरस्थितिः शारीरिक-कृत्यं स्नानादिकं तस्य करणाय निर्वर्तनाय उदतिष्ठत् उत्थितवान्।

उत्थाय—'यत्र एवं यस्मिन् स्थाने एव कादम्बरी तत्र एव वैशम्पायनः 'इति स्व' स्वकीयं धैर्यं तस्य अवष्टम्भेन अवलम्बनेन एव हृदयं संस्तभ्य समाश्वास्येत्यर्थः शून्यः रिक्तः अन्तरात्मा मनः यस्य तथाभूतः पुनः मुहुः एव संवर्गितः एकत्रीभूतः अशेषः निखिलः राजलोकः

हो रही है। इसलिए क्या करूँ? अथवा अनुमति न मिलने की मेरी शङ्का अनुचित ही है। प्रिय मित्र (वैशम्पायन) ने अपने आपको और मुझे छोड़कर भी दूसरे प्रकार से गमन का निमित्त बनते हुए, कादम्बरी के पास जाने के उपाय की चिन्ता से मन में विह्वल बने मेरा उपकार ही किया है। तो अब वैशम्पायन को लौटा लाने के लिए जाते हुए मुझे न पिता जी और न माँ जी भी, न ही शुकनास जी भी रोक सकते हैं और (वहाँ) पहुँचा हुआ मैं वैशम्पायन सहित उसी दिशा से आगे चल पड़ूँगा' इस प्रकार निश्चय करके उस समय हुए वैशम्पायन के वियोग के दुःख को (कटु होती हुई भी) परिणाम में सुख पहुँचानेवाली औषधिकी तरह बहुत मानता हुआ चन्द्रापीड थोड़ी देर ठहकर, थकान मिटाये, प्रसन्न अंगों के साथ, तीसरे आधे पहर का शंख बजने पर शारीरिक कृत्य हेतु उठ गया।

और उठकर 'जहाँ कादम्बरी है, वहीं वैशम्पायन है' यह सोचकर अपने धैर्य के सहारे हृदय को मजबूत बना कर, अनमने बने, फिर राजा लोगों को इकट्ठे किये चन्द्रापीड ने शारी-

न्तर्ज्वलतो मदनानलस्य वैशम्पायनविरहशोकाग्नेश्च बहिरपि संतापदानाय साहायकमिव कर्तुमुपरि स्थितश्चातिकष्टमष्टास्वपि दिक्षु युगपत्प्रसारितकरः करोम्ययत्नेनैव संतापमित्याकलय्येव गगनतलमध्यमारूढे सवितरि, आतपव्याजेन रजतद्रवमिवोत्तप्तमुद्गिरति रश्मिजाले, निर्भिद्य विशन्तीष्विव शरीरमातपकणिकासु, पुञ्ज्यमानप्राणिसंघातासु तलप्रवेशात्संकटायमानासु पादपच्छायासु, बहिरालोकयितुं चाप्यपारयन्तीषु दृष्टिषु, दिङ्मुखेषु ज्वलत्स्विव, दुःस्पर्शासु भूमिषु, निःसंचारेषु पथिषु, संकटप्रपाकुटीरोदरोदपीतिपुञ्जितेष्वध्वन्येषु, नाडिंधमश्वासातुरेषु स्वनीडावस्थायिषु पत्ररथेषु, पल्वलान्तर्जलवेशितेषु महिषवृन्देषु, अरविन्ददलशकलकिञ्जल्कविच्छुरितमिच्छाविलोडितोत्त्रुटितबिसकाण्ड-

राजसमूहः यस्य तथाभूतः शरीरस्थितिं स्नानादिकम् अकरोत्। कृतः विहितः आहारः भोजनं येन तथाभूतश्च अन्तः हृदये ज्वलतः दीप्यमानस्य मदनानलस्य कामाग्नेः वैशम्पायनस्य विरहस्य वियोगस्य यः शोकः स एवाग्निः तस्य च बहिः अपि बाह्येनापि संतापस्य उत्तापस्य दानाय वितरणाय साहायकम् साहाय्यम् इव कर्तुं विधातुम् उपरि आकाशे स्थितः अतिकष्टम् अतिकृच्छ्रेण यथा स्यात्तथा अष्टासु अष्टसंख्यकासु अपि दिक्षु दिशासु युगपत् एकदैव प्रसारिताः कराः किरणाः येन तथाभूतः सन् अयत्नेन अप्रयासेन एव संतापं करोमि' इति आकलय्य विचार्य एव सवितरि सूर्ये गगनतलस्य आकाशतलस्य मध्यं मध्यभागम् आरूढे प्राप्ते सति 'जलमण्डपमयासीत् इत्यस्ति वाक्यम्, मध्ये च सर्वाः सत्सप्तम्यः। **आतप०**—आतपः धर्मः तस्य व्याजेन मिषेण रश्मीनां किरणानां जाले समूहे रजतस्य रौप्यस्य द्रवं रसम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उद्गिरति उद्वमति सति, आतपस्य धर्मस्य कणिकासु सूक्ष्मकणेषु निर्भिद्य भित्त्वा शरीरं देहं विशन्तीषु प्रवेशं कुर्वतीषु सतीषु, पुञ्जयमानः एकत्र भवन् प्राणिनां जीवानां संघातः समूहः यासु तथाभूतासु पादपानां वृक्षाणां छायासु अनातपेषु तले पादपाधोभागे प्रवेशात् गमनात् संकटायमानासु संकीर्णीभवन्तीषु सतीषु, **बहिरा०**—दृष्टिषु नयनेषु च बहिः अपि आलोकयितुं द्रष्टुम् अपारयन्तीषु अशक्नुवतीषु सतीषु, दिशां मुखानि अग्राणि तेषु ज्वलत्सु प्रदीप्यमानेषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् भूमिषु स्थानेषु दुः दुःखेन स्प्रष्टुं योग्याः तासु सतीषु, पथिषु मार्गेषु निः निर्गतः संचारः प्राणिनां संचरणं येषु तेषु सत्सु, अध्वन्येषु पथिकेषु, संकटं संकीर्णं यत् प्रपाणां पानीयशालानाम् उदरं मध्यं तस्मिन् उदकस्य पीतिः पानम् [समासे उदकस्य उदादेशो भवति] तदर्थं पुञ्जितेषु एकत्र भूतेषु सत्सु, स्वानि निजानि यानि नीडानि कुलायाः तेषु अवतिष्ठन्ते इति तथोक्तेषु पत्ररथेषु पक्षिषु नाडिं धमतीति नाडिंधमः यः श्वासः निश्वासः तेन आतुरेषु विह्वलेषु सत्सु, महिषाणां सैरिभाणां वृन्देषु समूहेषु पल्वलानाम् अल्पसरसां जलस्य अन्तः इति अन्तर्जलं प्रवेशितेषु प्रवेष्टुं प्रेरितेषु सत्सु, **अरविन्द०**—करिणां हस्तिनां यूथेषु दलेषु अरविन्दानां कमलानां दलानां पत्राणां शकलानि खण्डानि च किञ्जल्कानि केसराणि च तैः विच्छुरितं व्याप्तम् इच्छया यथेच्छं यत् विलोडितं

रिक कृत्य किए। और भोजन कर चुकने पर भीतर जल रही कामाग्नि तथा वैशम्पायन की विरहाग्नि दोनों को बाहर से भी ताप देने के लिए सहायता करने हेतु जैसे ऊपर (आकाश) स्थित सूर्य यह सोच कर कि आठों ही दिशाओं में एक-साथ किरणों को फैलाए मैं बिना प्रयत्न के ही अति तीव्र ताप पैदा करूँ' गगनतल के मध्य में चढ़ गया, धूप के बहाने किरण-समूह गर्म-गर्म पिघली हुई चाँदी को जैसे उगलने लगा, धूप की कणिकायें भेदन करके-जैसे शरीर के भीतर प्रवेश करने लगी, (किरणों के) नीचे प्रवेश कर लेने के कारण वृक्षों की छायायें, जहाँ प्राणि-समूह इकट्ठा हो रहा था, सिकुड़ने लगी, आँखें बाहर तक भी न देख सकने लगी; दिशाओं के भाग जलने-जैसे लगने लगे, जमीन छूनी मुश्किल हो बैठी, मार्गों में (प्राणियों का) यातायात रुक गया, पथिक प्याउओं के कुटीरों के भीतरी भाग के तंग होने के कारण पानी पीने हेतु जमा होने लगे, अपने घोसलों में बैठे पक्षी नसों को फुला देने वाले श्वास से अकुलाने लगे, भैंसों के झुंड जोहड़ों के जल के भीतर प्रवेशार्थ प्रेरित कर दिए गए, हाथियों के दल कमलों के

च्छेददन्तुरं निपानसरःपङ्कमारोहत्सु करियूथेषु, रक्ततामरसकान्तिषु ललनाकपोलोपान्तेषु, दलितमुक्ताक्षोदानुकारिणीषु विराजमानासु घर्मजलकणिकावलीषु, स्मर्यमाणायां ज्योत्स्नायाम्, गृह्यमाणेषु तुषारगुणेषु, वाञ्छ्यमाने पयोदकालाभ्यागमे, अभ्यर्थ्यमाने दिवसपरिणामे, प्रदोषदर्शनाकाङ्क्षिषु हृदयेषु, उत्थाय सरस्तीरकल्पितम्, अनवरतापतज्जलासारसेकनिवारितोष्णकरकिरणसंतापम्, एकसंतानावलीधारावर्षवेगवाहिन्या निर्झरिण्येव कुल्यया परिक्षिप्तम्, अन्तरालम्बितजलजम्बूप्रवालाहितान्धकारम्, आमुक्तकुसुमपल्लवलतावृताखिलस्तम्भसंचयम्, अत[१]नुहरिचन्दनचर्चार्द्रम्, मरकतश्यामपद्मिनीपलाशास्तीर्ण-

विलोडनं [भावे क्तः] तेन उत्त्रुटितानि खण्डितानि यानि बिसकाण्डानि मृणालदण्डाः तेषां छेदैः खण्डैः दन्तुरम् उन्नतदन्तम् उन्नतावनतं व्याप्तमित्यर्थः निपानम् उपकूप-जलाशय-रूपं यत् सरः आहावः ['आहावस्तु निपानं स्यादुपकूपजलाशये' इत्यमरः] तस्य पङ्कं कर्दमम् आरोहत्सु प्रविशत्सु, ललनानां स्त्रीणां कपोलयोः गण्डस्थलयोः उपान्तेषु प्रान्तेषु रक्तं यत् तामरसं कमलं तस्य कान्तिः प्रभा इवेति लुप्तोपमा कान्तिः येषां तथाभूतेषु सत्सु, घर्मजलस्य स्वेदस्य कणिकानां सूक्ष्मकणानाम् आवलीषु श्रेणीषु दलिताः चूर्णिताः याः मुक्ताः मौक्तिकानि तासां क्षोदं चूर्णम् अनुकुर्वन्ति विडम्बयन्तीति तथाक्तासु (उपमा) विराजमानासु भ्राजन्तीषु, सतीषु, ज्योत्स्नायां चन्द्रिकायां स्मर्यमाणायां स्मृतिविषयीक्रियमाणायां सत्याम्, तुषारः हिमं तस्य गुणेषु गृह्यमाणेषु गीयमानेष्वित्यर्थः, पयोदानां मेघानां कालः समयः वर्षर्तुरितियावत् तस्य अभ्यागमे आगमने वाञ्छ्यमाने अभिलष्यमाणे सति, दिवसस्य दिनस्य परिणामे अवसाने अभ्यर्थमाने प्रार्थ्यमाने सति, हृदयेषु मनस्सु प्रदोषस्य निशामुखस्य दर्शनम् अवलोकनम् आकाङ्क्षन्ति इच्छन्तीति तथोक्तेषु सत्सु उत्थाय उत्थितो भूत्वा [चन्द्रापीडः] जलमण्डपमयासीत् इत्यत्रान्वयः, सरसः तडागस्य तीरे तटे कल्पितं निर्मितम् एतत् अन्यानि च द्वितीयान्तानि 'जलमण्डपम्' इत्यस्य विशेषणानि। **अनवरत०**—अनवरतं निरन्तरं यथा स्यात्तथा आपतन् प्रस्रवन् यः जलस्य आसारः धारासारः तीव्रवृष्टिरिति यावत् तेन यः सेकः सिञ्चनं तेन निवारितः दूरीकृतः उष्णकरस्य सूर्यस्य किरणानां रश्मीनां संतापः उष्णिमा येन तथाभूतम्, एकः यः सन्तानः सततप्रवाह इत्यर्थः तस्य आवल्या श्रेण्या यः धारावर्षः धारारूपेण वृष्टिः तस्य वेगं वहतीति तथोक्तया निर्झरिण्या नद्या इवेत्युपमायाम् कुल्यया अल्पया कृत्रिमया सरिता ['कुल्याल्या कृत्रिमा सरित्' इत्यमरः] परिक्षिप्तम् परिगतम्, अन्तरा मध्ये आलम्बितानि उपरि बद्धानि यानि जल-जम्बूनां जम्बूविशेषाणां प्रवालानि पत्राणि तैः आहितः कृतः अन्धकारो यत्र तथाभूतम्, **आमुक्त०**—आमुक्तानि धृतानि कुसुमानि पुष्पाणि च पल्लवानि किसलयानि च याभिः तथाभूताः याः लताः ताभिः आवृतः आच्छादितः अखिलः समग्रः स्तम्भानां स्थूणानां संचयः समूहः यत्र तथाभूतम्, अतन्वी महती गाढेत्यर्थः या हरिचन्दनेन पीतवर्णचन्दनेन चर्चा लेपः तया आर्द्रं क्लिन्नम्, **मरकत०**—मरकतवत् मरकत-

पँखुड़ियों के टुकड़ों और केसरों से भरे तथा इच्छानुसार विलोडन करने से टूटे पड़े मृणाल-दंडों के टुकड़ों और केसरों से उन्नतावनत बने कुओं के पास पोखरों के कीचड़ में धुसने लगे, ललनाओं के गालों के प्रान्त भाग लाल कमल की-सी कान्ति रखने लगे पसीने की कणियों की पक्तियाँ तोड़े हुए मोतियों के चूर्ण का अनुकरण करने लगीं, चाँदनी की याद आने लगी, बर्फ का गुणगान होने लगा, वर्षा ऋतु के आगमन की इच्छा होने लगी, दिन की समाप्ति के लिए प्रार्थना होने लगी, हृदयों में सायंकाल देखने की इच्छा होने लगी, (तब ऐसे समय में) चन्द्रापीड़ उठकर जलमण्डप को चल दिया—जो झील के किनारे बनाया हुआ था, जहाँ निरन्तर पड़ रही जल-वृष्टि के सिंचन से सूर्य की किरणों का ताप मिटा दिया गया था, जो लगातार वह रहे जल की धारा-रूप में तीव्र वृष्टि का वेग रखे, नदी-तुल्य नहर से चारों ओर घिरा हुआ था, जहाँ, बीच में लटकाए जल-जम्बू के पत्तों से अन्धकार कर दिया गया था, सारा

१. न–'अतनु···भूतलम्' नास्ति।

समस्तभूतलम्, आमोदमानसरसस्फुटितारविन्दराशिदत्तप्रकरम्, आकीर्णसरसबिसकाण्डम्, अकाण्डकल्पितप्रावृट्कालमितस्ततो वर्षन्तीभिः शैवलप्रवालमञ्जरीभिः, जलदेवताभिरिव सद्यः स्नानार्द्रविकुरहस्ताभिरुपगृहीतसुरभिकोमलजलार्द्रिकाभिरनाश्यानचन्दनाङ्गरागहारिणीभिर्हारवलयमात्राभरणाभिरवतंसितबालशैवलप्रवालाभिर्मृणालतालवृन्तकर्पूरपटवासहरिचन्दनचन्द्रकान्तमणिदर्पणाद्युपकरणपाणिभिरबह्वीभिर्वाराङ्गनाभिरुपेतम्, परिभवस्थानमिव निदाघसमयस्य, निदानमिव शीतकालस्य, निवेशमिव वारिवाहानाम्, तिरस्कारमिव रविकराणाम्, हृदयमिव सरसः, सहोदरमिव हिमगिरेः, स्वरूपमिव जडिम्नः, आवासमिव विभावरीणाम्, प्रत्याघातमिव दिवसस्य जलमण्डपमयासीत् ।

मणिवत् यानि पद्मिनीनां कमलिनीनां पलाशानि पत्राणि तैः आस्तीर्णम् आच्छादितं समस्तं सकलं भूतलं महीतलं यस्मिन् तथाभूतम्, आमोदमानानि आमोदं (परिमलं) उद्गिरन्ति यानि सरसानि आर्द्राणि स्फुटितानि विकसितानि अरविन्दानि तेषां राशीनां समूहानां दत्तः प्रकरः समूहः यस्मै तथाभूतम् आकीर्णानि प्रसारितानि सरसानि आर्द्राणि बिस-काण्डानि मृणाल दण्डाः यत्र तथाभूतम्, **अकाण्ड०**—इतस्ततः यत्र तत्र वर्षन्तीभिः जलं मुञ्चन्तीभिः शैवलस्य शैवालस्य जलघासस्येत्यर्थः प्रवालानाम् अङ्कुराणां मञ्जरीभिः वल्लरीभिः अकाण्डे असमये कल्पितः कृतः प्रावृषः वर्षर्तोः कालः समयः यस्मिन् तम्, जलदेवताभिः जलाधिष्ठात्रीभिः देवीभिः इवेत्युपमायाम् सद्यः तत्कालं स्नानेन आर्द्रः क्लिन्नः चिकुराणां केशानां हस्तः कलापः यासां तथाभिः, उपगृहीताः धृताः सुरभयः सुगन्धिताः कोमलाः मृद्व्यः मसृणाः इत्यर्थः जलार्द्रिकाः जलक्लिन्नवसनानि याभिः ताभिः, अनाश्यमानः अशुष्कः सरस इति यावत् यः चन्दनस्य अङ्गरागः विलेपः तेन हारिणीभिः मनोहराभिः, हारः स्रक् च वलये कंकणे च एवेति हार-वलयमात्रम् आभरणं भूषणं यासां ताभिः अवतंसितं कर्णाभरणीकृतं बालं नवीनं सद्यः त्रोटितमित्यर्थः शैवलस्य शैवालस्य प्रवालम् अङ्कुरः याभिः ताभिः, मृणालानि कमलदण्डाश्च तालवृन्तानि बीजनानि च कर्पूरः धनसारश्च पटवासः सुगन्धिद्रव्यचूर्णश्च हरिचन्दनं पीतचन्दनं च चन्द्रकान्तमणेः दर्पणः मुकुरश्च आदौ यस्य तथाभूतम् उपकरणं सामग्री पाणौ हस्ते यासां तथाभूताभिः बह्वीभिः अनेकाभिः वाराङ्गनाभिः वेश्याभिः उपेतं युक्तम्, निदाघः ग्रीष्मः तस्य समयस्य स परिभवस्य पराभवस्य पराजयस्येति यावत् स्थानं प्रदेश इव, शीतकालस्य शिशिरसमयस्य निदानं कारणम् इव, वारिवाहानां मेघानां निवेशं शिविरम् इव, रवेः सूर्यस्य कराणां किरणानां तिरस्कारम् अवमानम् इव, सरसः सरोवरस्य हृदयं स्वान्तम् इव, हिमगिरेः हिमालयस्य सहोदरं भ्रातरम् इव, जडिम्नः शैत्यस्य स्वरूपम् आत्मानम् इव, विभावरीणां रात्रीणाम् आवासं निवासस्थानम् इव, दिवसस्य दिनस्य प्रत्याघातं प्रहारम् इव, जलमण्डपं जलयुक्तं मण्डपम् अयासीत् अगमत् [उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा] ।

स्तम्भ-समूह फूल और पत्तों को रख रही लताओं से ढका हुआ था, जो गाढ़े हरिचन्दन के लेप से गीला बना हुआ था, जहाँ सारा भूतल कमलिनियों के मरकत-मणि जैसे पत्तों से आच्छादित था, सुगन्ध छोड़ते हुए गीले और खिले हुए अरविन्दों का ढेर पड़ा हुआ था, गीले मृणाल दण्ड बिखरे हुए थे, इधर-उधर जल बरसाती हुई शैवाल के पत्तों की मंजरियाँ बे-मौसमी वर्षा-ऋतु का निर्माण किये हुए थीं, जल देवियां-जैसी ताजा-ताजा स्नान से गीले हुए पड़े केश-कलापों वाली, सुगन्धित और महीन जलार्द्र वसनों को पहने, गीले चन्दन के अंगराग से मनोहर बनीं, हार और कड़े मात्र आभूषण पहने, छोटे से शैवाल के अंकुरको कानों का गहना बनाये, मृणाल, तालवृन्त (पंखा) कपूर, सुगन्धित चूर्ण, हरिचन्दन, चन्द्रकान्त मणि का दर्पण, इत्यादि सामग्री हाथ में रखे, बहुत सी वाराङ्गनायें विद्यमान थीं और जो ऐसा लग रहा था मानो ग्रीष्म-काल का पराजय-स्थान हो, शीतकाल का मूल-कारण हो, मेघों का शिविर हो, सूर्य-किरणों का तिरस्कार हो, सरोवर का हृदय हो, हिमालय पर्वत का भाई हो, ठंडक की आत्मा हो, रातों का निवास-स्थान हो और दिन पर प्रहार हो ।

तत्र चातिरम्यतया क्षुभितमकरध्वजोत्कलिकासहस्रविषमं जलासारशिशिरतया संधुक्षितसुहृद्वियोगानलं महासमुद्रमिव गम्भीरं तं दिवसमेकाकी कथं कथमपि स्वधैर्ययानपात्रेणालङ्घयत्। लोहितायमानातपे सायाह्ने निर्गत्य बहुलगोमयोपलेपहरिते मन्दमन्दमारुताहतोत्तरलायमानधवलकुसुमप्रकरशोभिनि वासभवनाङ्गणे क्षणमिवास्थाने समासन्नपार्थिवैः सह वैशम्पायनालापेनैव स्थित्वा द्वितीय एव यामे चलितव्यं सज्जीकुरुत साधनमित्यादिश्य बलाध्यक्षमृक्षोदय एव विसर्जिताशेषराजलोको वासभवनमध्यवसत्। अथातिचिरान्तरितोज्जयिनीदर्शनोत्सुको विनापि प्रयाणनान्द्या सकल एव कटकलोकः संवृत्य प्रावर्तत गन्तुम्। आत्मनाप्यलब्धनिद्राविनोदोऽवतरत्येव तृतीये यामे

तत्र—तत्र जलमण्डपे च अतिशयेन रम्यः रमणीयः तस्य भावः तत्ता तया, क्षुभितं क्षुब्धं मकरध्वजस्य मदनस्य उत्कलिकानां उत्कण्ठानां अथ च तरंगाणां सहस्रं तेन विषमं विकटम्, जलस्य आसारेण धारापातेन शिशिरः शीतलः तस्य भावः तत्ता तया संधुक्षितः समुद्दीपितः सुहृदः मित्रस्य वैशम्पायनस्य वियोगस्य विरहस्य अनलः वह्निः तथाभूतं महासमुद्रम् महासागरम् इवेत्युपमायाम् गम्भीरं गम्भीरम् तं दिवसं दिनम् एकाकी अद्वितीयः कथं कथमपि केनापि प्रकारेण अतिकृच्छ्रेणेत्यर्थः स्वं स्वकीयं धैर्य धीरता यानपात्रं जलपोतम् इवेत्युपमायाम् तेन अलंघयत् लंघितवान् यथा उत्कलिकाविषमः, जलेन शिशिरः, अग्निगर्भः गम्भीरश्च महासमुद्रः यानेन लङ्घ्यते तथैव चन्द्रापीडोऽपि उत्कलिकाविषमं, जलेन शिशिरं, वियोगाग्नि-पूर्णं गम्भीरं दिवस धैर्येण लंघितवान् अतियापितवान् इति साङ्गोपमा, उत्कलिका-शब्दः श्लिष्टः। सायाह्ने सन्ध्याकाले लोहितायमानः रक्तवर्णीभवन् आतपः घर्मः यस्मिन् तथाभूते सति निर्गत्य जलमण्डपात् निःसृत्य बहुलः प्रचुरः यः गोमयेन गोविशा उपलेपः लेपनं तेन हरिते हरिद्वर्णे, मन्दं मन्दं यथा स्यात्तथा मारुतेन वायुना आहतः ताडितः अतएव उत्तरलायमानः उत्कम्पमानः यः धवलानां श्वेतानां कुसुमानां पुष्पाणां प्रकरः समूहः तेन शोभते इति तथोक्ते वास-भवनस्य अङ्गणे प्राङ्गणे क्षणम् इवेति वाक्यालंकारे किञ्चित्कालम् आस्थाने आस्थान सभायां सभामण्डपे इति यावत् समासन्नाः समीपस्थाः ये पार्थिवाः राजानः तैः सह सार्धं वैशम्पायनस्य वैशम्पायन-सम्बन्धी यः आलापः वार्तालापः तेन एव स्थित्वा अवस्थाय 'द्वितीये एव यामे प्रहरे चलितव्यं प्रस्थातव्यम्, साधनं सैन्यं सज्जीकुरुत सन्नद्धं कुरुत' बलाध्यक्षं सेनापतिम् आदिश्य आज्ञाप्य ऋक्षाणां तारकाणाम् उदये उद्गमने एव विसर्जितः गन्तुमादिष्टः अशेषः निखिलः राजकोलः राज समूहः येन तथाभूतः चन्द्रापीडः वासभवनम् अध्यवसत् प्रविष्टवानित्यर्थः। **अथाति०**—अतिचिरेण दीर्घकालेन अन्तरितं व्यवहितं यत् उज्जयिन्याः दर्शनम् अवलोकनं तेन उत्सुकः उत्कण्ठितः सकलः समस्त एव कटक-लोकः सैन्यजनः प्रयाणस्य प्रस्थानस्य नान्द्या माङ्गलिकपटहनादेन विना अपि संवृत्य संभूय सज्जीभूयेत्यर्थः गन्तुं प्रावर्तत प्रवृत्तोऽभवत्। आत्मना स्वयम् अपि न लब्धः प्राप्तः निद्रायाः स्वापस्य विनोदः सुखं

और वहाँ अतिरमणीयता के कारण क्षुब्ध हुई काम-विषयक हजारों उत्कलिकाओं (उत्कण्ठाओं, वीचियों) से विकट बना, जल-वृष्टि के कारण ठंढक होने से मित्र (वैशम्पायन) का भड़का हुआ विरहानल वाला, महासागर-सा गम्भीर वह दिन चन्द्रापीड़ अकेला किसी न किसी तरह जल-पोत जैसे अपने धैर्य से लाँघ बैठा। सायंकालीन धूप के लाल पड़ जाने पर बाहर निकलकर, प्रचुर गोबर लेप से हरे बने, मन्द-मन्द वायु द्वारा थपेड़े और हिलाए जा रहे सफेद पुष्प-समूह से शोभित वास-गृह के प्राङ्गण में थोड़ी देर बैठक में समीपवर्ती राजाओं के साथ वैशम्पायन-सम्बन्धी वार्तालाप के सिलसिले में ही बैठकर 'दूसरे ही प्रहर में हमें चल पड़ना है सेना तय्यार करो' सेनाध्यक्ष को यह आज्ञा देकर तारों के उदय होते ही सभी राजा लोगों को विदा किये वह वासभवन को चल दिया। इसके बाद काफी लम्बे समय से उज्जयिनी देखने को उत्सुक हुआ सारा ही सैन्य-समूह प्रस्थान-पटह बजे बिना ही इकट्ठा होकर चलने

तुरगकरिणीप्रायवाहनेनानतिबहुना राजलोकेन सह विरलकटकसंमर्देन वर्त्मनावहत्। अथाध्वनैव सह क्षीणायां यामवत्याम्, रसातलादिवोन्मज्जत्सु सर्वभावेषु, उन्मीलन्तीष्विव दृष्टिषु, पुनरिवान्यथा सृज्यमाने जीवलोके, विभज्यमानेषु निम्नोन्नतेषु, विरलायमानेष्विव वनगहनेषु, संकुचत्स्विव तरुलतागुल्मेषु, गगनतलमारोहन्त्याः पदे इव बहुललाक्षारसालोहिते दिवसश्रियोवश्यायसेकान्नवपल्लव इवोद्भिद्यमाने पूर्वाशालतायाः कमलिनीरागदायिनि दिवसकरबिम्बे, विस्पष्टे प्रभातसमये, कटकलोकेनैव सह परापतितवानुज्जयिनीम्।

अथ दूरत एव प्रसृतिद्वन्द्वसंस्थितैश्च पुञ्ज्यमानैश्च पुञ्जितैश्चाबद्धमण्डलैश्चोपविष्टैः

येन तथाभूतः तृतीये यामे प्रहरे अवतरति आगच्छति सति तुरगा अश्वाश्च करिण्यः हस्तिन्यश्च प्रायः बाहुल्येन वाहनं यस्य तेन न अति बहुना स्वापेनेत्यर्थः राज-लोकेन नृपजनेन सह विरलः अल्पः कटकस्य सैन्यस्य संमर्दः संबाधः यत्र तथाभूतेन वर्त्मना मार्गेण अवहत् अगच्छत्। अथ अध्वना वर्त्मना एव सह यामवत्यां रात्र्यां क्षीणाया समाप्तायाम् सत्याम्, सर्वे च ते भावाः पदार्थाः तेषु रसातलात् पातालात् उन्मज्जत्सु उपरि आगच्छन्तु इव दृष्टिषु नेत्रेषु उन्मीलन्तीषु विकसन्तीषु इव दर्शनसमर्थासु भवन्तीष्वित्यर्थः, जीवलोके संसारे पुनरिव द्वितीयवारमिव अन्यथा प्रकारान्तरेण सृज्यमाने निर्मीयमाणे, निम्नानि नीचैःस्थितानि उन्नतानि उपरिस्थितानि यानि स्थानादीनि तेषु विभज्यमानेषु पृथक् क्रियमाणेषु रात्र्यन्धकारेण सर्वाण्यपि निम्नोन्नतानि समीकृतान्यासन् दिनोदये पुनः तानि पृथक् पृथक् भूतानीत्यर्थः, वनानाम् अरण्यानां गहनेषु गह्वरेषु विरलायमानेषु विरलतां प्राप्नुवत्सु इव, अन्धकारे सर्वाण्येव वनानि अविरलानि गह्वरमयानीति यावत् प्रतीयन्ते स्म, दिनोदये विरल-विरलस्थानेषु एव गह्वराणि दृश्यन्ते स्मेति भावः, तरवः वृक्षाश्च लताः वल्ल्यश्च गुल्माः स्तंबाश्च तेषु संकुचत्सु संकोचं प्राप्नुवत्सु इवेति उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा। गगनतलं व्योमतलम् आरोहणं कुर्वत्याः दिवस्य श्रियः लक्ष्म्याः बहुलः गाढः यः लाक्षारसः अलक्त-द्रवः तेन आलोहिते ईषत् रक्ते पदे पादे इवेत्युपमायाम् पूर्वा आशा प्राची दिशा एव लता वल्ली (रूपकम्) तस्याः अवश्यायः तुषारः तेन सेकात् सिञ्चनात् उद्भिद्यमाने स्फुटति नवपल्लवे नूतनकिसलयं इव दिवसकरस्य सूर्यस्य बिम्बे मण्डले कमलिनीभ्यः पद्मिनीरागं (रक्तिमानम्) प्रीतिम् ददातीति तथोक्ते सति, प्रभातस्य समये प्रातःकाले विस्पष्टे स्फुटे सति, उपरि सर्वत्र सत्सप्तमी, कटकलोकेन सैन्यसमूहेन सह चन्द्रापीडः उज्जयिनीं स्वराजधानीं परापतितवान् प्राप्तवान्।

अथ—प्रसृतिः प्रसृतः निकुब्जः पाणिः ('पाणिर्निकुब्जः प्रसृतिः' इत्यमरः) तस्य द्वन्द्वेन युग्मेन अञ्जलिनेत्यर्थः संस्थितैः बद्धाञ्जलिभिरित्यर्थः, पुञ्ज्यमानैः एकत्रीभवद्भिः, पुञ्जितैः एकत्री-

---

लगा। स्वयमपि (चन्द्रापीड) निद्रा-सुख प्राप्त किए बिना तीसरे पहर के आरम्भ होते ही प्रायः घोड़े और हथिनियों के वाहन वाले, थोड़े से राजा लोगों के साथ सैन्य की थोड़ी-सी ही भीड़ वाले मार्ग से चल पड़ा। इसके बाद मार्ग में ही जब रात समाप्त हो गई, सभी पदार्थ पाताल से-जैसे ऊपर आने लगे, आँखें विकसित जैसी होने लगी, संसार का दूसरी बार-जैसे और ही तरह से सृजन होने लगा, नीचे-ऊँचे (स्थान) पृथक्-पृथक् होने लगे, वनों के झुरमुटों में कमी-जैसी आने लगी, वृक्ष, लता और झाड़-झंकाड़ सिकुड़ने-से लगे, गगनतल पर उतरती हुई दिनश्री के गाढ़े महावर से कुछ लाल-लाल बने पैरों के समान, पूर्व दिशारूपी लता के पाला पड़ने से फूटता हुआ नया कोपल-जैसा सूर्यमण्डल कमलिनियों को राग (लाली प्रेम) देने लगा और प्रातःकाल का समय स्पष्ट हो गया, (चन्द्रापीड ऐसे समय) सैन्य-समूह के साथ उज्जयिनी पहुँच गया।

इसके बाद दूर से ही अंजलि बाँधे खड़े हुए, समूह बना रहे, समूह बनाये, बैठे और

वलितैश्च दत्तकतिपयशून्यपदैश्च निवर्त्यमानैश्चागच्छद्भिश्चोन्मुखैश्चाधोमुखैश्चोद्बाष्पदृष्टिभिश्च विवर्णदीनवदनैश्च महाकष्टशब्दमुखरैश्च दुःखाधिक्याहितमौनैश्च मुनिभिरपि मुमुक्षुभिरपि वीतरागैरपि निःस्पृहैरप्युदासीनैरपि दुर्जनैरपि स्नेहपरवशैः पितृभिरिव सुहृद्भिरिव स्निग्धबन्धुभिरिव च नगरीनिर्गतैरार्त्या पृच्छ्यमानं कथ्यमानं च विचार्यमाणं चानुभाव्यमानं च वैशम्पायनवृत्तान्तमेव समन्ताच्छुश्राव।

शृण्वंश्च चकार चेतसि। 'बाह्यस्य तावज्जनस्येयमीदृशी समवस्था। किं पुनर्येनासावङ्केन लालितः संवर्धितो वा बालचाटवोऽस्यानुभूताः। तदतिकष्टं मे वैशम्पायनेन विना तातस्य शुकनासस्याम्बाया मनोरमाया वा दर्शनम्।' इत्येवं चिन्तयन्नासानिहितोद्बाष्प-

---

भूतैश्च आवद्धं कृतं मण्डलं वृत्तं यैः तथाभूतैश्च, उपविष्टैः निषण्णैः वलितैः गतैश्च, दत्तानि कतिपयानि कानिचित् शून्यानि निरुद्देश्यानि व्यर्थानीत्यर्थः पदानि पादप्रक्षेपाः यैः तथाभूतैः अग्रे गमनाय स्थानालाभात् पदानां शून्यत्वमुक्तम् अतएव निवर्त्यमानैः प्रत्यावर्तमानैः अत्र निवर्तमानैः इत्येव सुवचम्) आगच्छद्भिः, उन्मुखैः ऊर्ध्वकृताननैश्च, अधोमुखैः नीचैर्मुखैश्च, उत् उद्गतः वाष्पः अश्रु यासु तथाभूताः दृष्टयो नयनानि येषां तेषु च विवर्णानि विगतवर्णानि दीनानि विषण्णानि वदनानि मुखानि येषां तैः महतः विपुलस्य कष्टस्य दुःखस्य ये शब्दाः 'हा, हा,' इत्यादयः तैः मुखरैः वाचालैश्च दुःखस्य कष्टस्य यत् आधिक्यम् अतिशयः तेन आहितं जनितं मौनं तूष्णीभावः येषु तैश्च मुनिभिः ऋषिभिः अपि, मुमुक्षुभिः मोक्षं कामयमानैः अपि, वीतरागैः विगतरागैः रागरहितैरित्यर्थः, निःस्पृहैः निरीहैः अपि उदासीनैः तटस्थैरपि, दुर्जनैः खलैरपि स्नेहस्य प्रीतेः परवशैः आयत्तैः सद्भिः पितृभिः जनकैः इव, सुहृद्भिः मित्रैः इव स्निग्धाः प्रणयिनः ये बन्धु-बान्धवाः तैः इवेति सर्वत्रोपमा नगर्याः उज्जयिनीतः निर्गतैः वहिरागतैः आर्त्या वेदनया पृच्छ्यमानम् अनुयुज्यमानं, कथ्यमानम् उच्यमानं, विचार्यमाणं चिन्त्यमानम् अनुभाव्यमानं भावनाविषयीक्रियमाणं च वैशम्पायनस्य वृत्तान्तम् उदन्तम् एव समन्तात् परितः शुश्राव श्रुतवान् चन्द्रापीड इति शेषः।

शृण्वंश्च—शृण्वन् आकर्णयन् च वैशम्पायन-वृत्तान्तमिति शेषः चन्द्रापीडः चेतसि चकार अचिन्तयत्—'बाह्यस्य आत्मीयेभ्यः भिन्नस्य जयस्य लोकानां चेत् इयम् एषा ईदृशी एवंविधा समवस्था दशा अस्तीति शेषः किं पुनः तस्य येन जनेन असौ वैशम्पायनः: अङ्केन क्रोडेन लालितः पालितः, संवर्धितः वृद्धिं प्रापितः अथवा अस्य बालावस्थाचाटवः बालचाटवः बाल्ये उच्चारितानि प्रिय-मधुर-वचनानि ('चटु चाटुः प्रियप्रायम्' इति हैमः) अनुभूतानि अनुभवविषयीकृतानि श्रुतानीत्यर्थः। तत् तस्मात् वैशम्पायनेन विना तातस्य पितुः शुकनासस्य अथवा अम्बायाः मातुः विलासवत्याः अथवा मनोरमायाः वैशम्पायनमातुः दर्शनम् अवलोकनम् मे अतिकष्टम् अतिकष्टकरम् अस्तीति शेषः' इति एवं चिन्तयन् विचारयन् नासायां घ्राणे निहिता न्यस्ता उद्बाष्पा

चलते, कुछ खाली पग रखे, लौटे जा रहे, आ रहे, ऊपर मुँह किये, नीचे मुँह किये, आँखों से आँसू टपकाये, मुँह फीका और उदास बनाये, दुःख अधिक होने के कारण मुख से 'हाय-हाय' करते और मौन अपनाते हुए मुनियों, मुमुक्षुओं, विरक्तों, निरीहों, उदासीनों और दुर्जनों तक द्वारा भी स्नेहवश हुए पिताओं, मित्रों और स्नेही बन्धुओं की तरह नगरी से बाहर निकले, दुःखपूर्वक पूछे जा रहे, कहे जा रहे, सोचे जा रहे और अनुभव कराये जा रहे वैशम्पायन-सम्बन्धी वृत्तान्त को ही चारों ओर चन्द्रापीड ने सुना।

और सुनते हुए उसके मनमें विचार उठा—'जब बाहर के लोगों तक की यह ऐसी दशा है, तो उनका क्या कहना जिन्होंने उसे गोद में पाला और बढ़ाया है अथवा उसके बचपन के मीठे-मीठे बोल सुने हैं। इसलिए वैशम्पायन के बिना मेरा पिता जी, शुकनास जी, माता जी अथवा मनोरमा जी का दर्शन करना बड़ा दुःखदायक है। इस प्रकार सोचता हुआ,

दृष्टिरदृष्टसर्ववृत्तान्त एव विवेशोज्जयिनीम्। अवतीर्य च स राजकुलद्वारि विशन्नेवार्यशुकनासभवनं सह देव्या विलासवत्या गतो राजेति शुश्राव। श्रुत्वा च निवर्त्य तत्रैव जगाम। गच्छंश्च समीपवर्ती 'हा वत्स वैशम्पायन, अद्यापि मदङ्कलालनोचितो बाल एवासि, कथं त्वमेकाकी व्यालशतसहस्रभीषणे निर्मानुषे तस्मिन्शून्यारण्ये स्थितः। केन ते तत्रापि सर्वसत्त्वव्याघातकारिणी शरीररक्षा कृता। केन वैषम्यप्रतिपन्थिनी शरीरस्थितिः संपादिता। केन निद्रासुखदायि शयनीयमुपकल्पितम्। कस्त्वयि बुभुक्षिते तृषिते सुषुप्सति वा दुःखितः। ममोत्सङ्गमुत्सृज्य समानसुखदुःखा वधूरपि न पुत्रक त्वयोपात्ता। आगतमात्रस्यैव ते पितरमनुज्ञाप्यात्यर्थं वधूमुखमवलोकयिष्यामीति यन्मया चिन्तितं केवलं तन्मे मन्दपुण्याया न सम्पन्नम्। परं तवापि वदनदर्शनं दुर्लभं भूतम्। वत्स यत्र तेऽवस्थातुम-

---

उद्गतवाष्पा अश्रुपूर्णेत्यर्थः दृष्टिः येन तथाभूतः, न दृष्टः अवलोकितः सर्वः सकलः वृत्तान्तः येन तथाभूतः एव उज्जयिनीम् राजधानीं विवेश प्रविष्टवान्। अवतीर्य इन्द्रायुधात् अवतीर्णः च स राजकुलस्य राजगृहस्य द्वारि द्वारे विशन् प्रवेशं कुर्वन् एव देव्या महिष्या विलासवत्या सह राजा तारापीडः आर्य-शुकनासस्य भवनं गृहं गतः इति शुश्राव श्रुतवान्। श्रुत्वा आकर्ण्य च निवर्त्य प्रत्यावृत्य [अत्र 'निवृत्य' इत्येव सुवचम्] तत्र शुकनास-भवने जगाम गतः। गच्छन् व्रजन् च समीपे वर्तते इति तथोक्तः सन्निहितः सन्—'हा वत्स ! पुत्र ! वैशम्पायन ! अद्यपि अधुनापि त्वं मम अङ्कः क्रोडः तस्मिन् लालनं पालनं तस्य उचितः योग्यः बालः बालकः एव असि वर्तसे। कथं त्वम् एकाकी एकलः व्यालानां श्वापदानां ['व्यालः श्वापद-सर्पयोः' इत्यमरः] शतानि सहस्राणि च तैः भीषणे भयङ्करे निर्गताः मानुषाः मनुष्याः यस्मात् तथाभूते निर्जने इत्यर्थः तस्मिन् शून्यं ग्रामादि-रहितं च तत् अरण्यं वनं तस्मिन् स्थितः स्थितिम् अकरोः। केन ते तव तत्रापि अरण्येऽपि सर्वे च ते सत्त्वाः जीवाः तेषां व्याघातं निरोधं करोतीति तथोक्ता शरीरस्य देहस्य रक्षा संरक्षणं कृता विहिता ? केन वैषम्यस्य धातूनां विषमतायाः प्रतिपन्थिनी प्रतिघातिनी शरीर-स्थितिः भोजनादिकं संपादिता कृता, भोजनादिना विना शरीरे वैषम्यमुत्पद्येत एव, निद्रायाः सुखं ददातीति तथोक्तं निद्रानन्दकरं शयनीयं शय्या उपकल्पितं निर्मितम्। कः त्वयि बुभुक्षिते क्षुधिते, तृषिते पिपासिते, सुषुप्सति निनिद्रासति वा दुःखितः दुःखी भवतीति शेषः। मम उत्सङ्गम् अङ्कम् उत्सृज्य त्यक्त्वा समानं सुखं दुःखं च यस्याः तथाभूता वधूः पत्नी अपि न पुत्रक ! हे पुत्र ! त्वया उपात्ता गृहीता; आगतः एव आगतमात्रकः तस्य एव ते तव पितरं जनकम् अनुज्ञाप्य अनुमत्य अत्यर्थं भृशं वध्वाः स्नुषायाः मुखम् आननम् अवलोकयिष्यामि द्रक्ष्यामि' इति यत् मया चिन्तितं केवलं एकमात्रं तत् मे मम मन्दं स्वल्पं पुण्यं यस्याः तथाभूतायाः न सम्पन्नं संवृत्तम्। परं किन्तु तवापि वदनस्य मुखस्य दर्शनम् अवलोकनं दुर्लभं दुष्प्रापं भूतं जातम्। वत्स पुत्र !

डबडबाई दृष्टि नाक पर टिकाये, सारा वृत्तान्त न देखे हुए ही उज्जयिनी में प्रविष्ट हो गया। और घोड़े से उतर कर वह राजगृह के द्वार पर घुसते ही यह सुन बैठा कि राजा देवी विलासवती के साथ शुकनास के घर पर गये हुए हैं। और सुनकर वापस हो वहीं चल पड़ा। जाता हुआ, समीप में स्थित—'हा बेटा वैशम्पायन, अभी तो तू मेरी गोद में पालने योग्य बच्चा ही है। किस तरह तू अकेला सैकड़ों-हजारों जंगली जानवरों से भीषण वने उस निर्जन, सुन-सान जंगल में ठहर गया ? वहाँ भी सभी जीवों को वैषम्य-प्रतिबन्धक तेरी शरीर-रक्षा किसने की ? किसने तेरी वैषम्य-प्रतिबन्धक शरीर-स्थिति कायम रखी ? किसने तेरा निद्रा सुखदायक बिस्तरा बनाया ? तेरे भूखे, प्यासे, उनींदे रहते कौन दुःखी हुआ होगा ? हे पुत्र ! मेरी गोद छोड़कर समान-रूप से सुख-दुःख की भागिनी पत्नी भी तो तूने नहीं अपनाई। 'घर आते ही मेरे पिता को अनुमति देकर बहू खब का मुख देखूँगी' उतना मात्र भी मुझ मन्दभागिनी को नहीं मिला। प्रत्युत तेरा भी मुखदर्शन दुर्लभ हो गया है। बेटा,

भिरुचितं नयस्व तत्रैव मामपि पितरं विज्ञाप्य। त्वामपश्यन्ती न जीवामि। तात त्वयाहं शैशवेऽपि नावमानिता। कुतस्तवेयमेकपद एवेदृशी निष्ठुरता जाता। आ जन्मनः प्रभृति न दृष्टमेव यस्य कुपितमाननं तस्य ते कुत्रोयमेवंविधो मय्यकस्मादेव कोपः। यदेवं परित्यज्य स्थितोसि। गतोप्यागच्छ शिरसा प्रसादयामि त्वाम्। कोऽपरोस्ति मे। देशान्तरपरिचयान्मुक्तो नामास्मासु स्नेहः। क्षणमप्यनन्तरितदर्शनस्य चन्द्रापीडस्योपरि कथं तवेदृशी निःस्नेहता जाता। तात न भद्रकं ते समापतितम्। सर्वं एव सुखं स्थापनीयो गुरुजनो दुःखं स्थापितः। जानाम्येवं कृत्वा किं त्वया प्राप्तव्यम्।' एतानि चान्यानि चान्तर्भवनगतां प्रत्यग्रतनयविरहशोकविह्वलां स्वयं देव्या विलासवत्या संस्थाप्यमानामपि मनोरमां विप्रलपन्तीमश्रौषीत्।

तेन चातिकरुणेन तत्प्रलापविषेण विह्वल इव निद्रागमेनेव घूर्णमानो निश्चेतनता-

---

यत्र तस्मिन् स्थाने अवस्थातुं निवस्तुं ते तव अभिरुचितं रुच्यनुकूलीभूतं तत्रैव पितरं जनकं विज्ञाप्य निवेद्य माम् अपि नय प्रापय। त्वाम् अपश्यन्ती अनवलोकयन्ती न जीवामि प्राणिमि। त्वया अहं शैशवे शैशवावस्थायाम् अपि न अवमानिता तिरस्कृता। कुतः कस्मात् तव इदम् एषा एकपदे सहसा एव ईदृशी एवंविधा निष्ठुरता कठोरता जाता। आ जन्मनः प्रभृति जन्मतः आरभ्य [अत्र 'आ जन्मनः' अथवा 'जन्मनः प्रभृति' इति द्वयोः एकमेव अन्वयं पर्याप्तम्] यस्य वैशम्पायनस्य कुपितं कोपयुतम् आननं मुखं दृष्टम् अवलोकितम् एव न आसीदिति शेषः तस्य ते तव मयि अकस्मात् सहसा एव एवंविधः ईदृशः कोपः क्रोधः कुतः कस्मात् जात इति शेषः यत् यस्मात् परित्यज्य मां स्थितः असि। गतः अपि अन्यत्र यातोऽपि आगच्छ आयाहि इति शिरसा मूर्ध्ना प्रसादयामि अनुनयामि, अपरः त्वद्-भिन्नः मे कः अस्ति न कोऽपीत्यर्थः। अन्यः देश इति देशान्तरं तस्य परिचयः संस्तवः तस्मात् कारणात् नामेति कोमलामन्त्रणे अस्मासु स्नेहः प्रीतिः मुक्तः त्यक्तः। क्षणम् अपि अन्तरितं व्यवहितं दर्शनं यस्य तथाभूतस्य चन्द्रापीडस्य उपरि तव ईदृशी एवंविधा निःस्नेहता स्नेहराहित्यं कथं जाता उत्पन्ना। तात पुत्र! ते तव भद्रं कल्याणं न समापतितं जातम्। सुखं यथा स्यात्तथा स्थापनीयः स्थापयितुं योग्यः गुरुजनः मातापित्रादिः त्वया दुःखं यथा स्यात्तथा स्थापितः, यस्मै गुरुजनाय त्वया सुखं दातव्यम् आसीत् तस्मै त्वं दुःखं ददासीत्यर्थः। जानामि जाने, न जाने इत्यर्थः एवं कृत्वा विधाय त्वया किं प्राप्तव्यं लब्धव्यम्' एतानि अन्यानि च भवनस्य अन्तः इत्यन्तर्भवनं गतां स्थितां, प्रत्यग्रः अभिनवः यः तनयस्य पुत्रस्य विरहः वियोगः तेन यः शोकः दुःखं तेन विह्वलां व्याकुलां, स्वयम् आत्मना देव्या महिष्या विलासवत्या संस्थाप्यमानाम् समाश्वास्यमानाम् अपि मनोरमां विप्रलपन्तीं विलापं कुर्वतीम् अश्रौषीत् आकर्णयत्।

तेन—अतिशयेन करुणेन कारुण्यभरितेन तस्याः मनोरमायाः प्रलापः विलपनम् एव विषं

जहाँ रहना तुझे अच्छा लगे, पिता जी से निवेदन करके मुझे भी वहीं ले जा। तुझे देखे विना मैं नहीं जीवित रहती। पुत्र! तू ने बचपन में भी मेरा अपमान नहीं किया। एक दम ही तेरी यह ऐसी कठोरता क्यों हो गई है? जन्म से लेकर जिसका मुख कुपित हुआ देखा ही नहीं था, ऐसा तेरा सहसा ही इस तरह का कोप मुझ पर क्यों हो गया जो मुझे इस प्रकार छोड़कर जा बैठा? चला भी गया, तो शिर से तुझे मनाती हूँ कि आ जा। दूसरा मेरा कौन है? दूसरे देश से परिचय होने के कारण हमारे प्रति स्नेह छोड़ा—भला यह क्या? क्षण भर भी तुझे देखे विना न रहने वाले चन्द्रापीड के ऊपर तेरा यह स्नेह का अभाव कैसे हो गया? बेटा, तेरे लिए यह अच्छी बात नहीं। जिन सभी गुरु-जनों को तुझे सुख पहुँचाना था, उन्हें तू ने दुःख में डाल दिया है। न जाने ऐसा करके तुझे क्या मिल जाना है"। यों एवं अन्य तरह से भी, भीतर बैठी, ताजा-ताजा पुत्र-विरह के शोक से विह्वल बनी, स्वयं रानी विलासवती द्वारा आश्वासन दी जाती हुई भी मनोरमा को वह विलाप करते सुन बैठा।

उसके इस तरह के अतिदीनता-भरे विलाप-रूपी विष से व्याकुल हुआ-जैसा, नींद आ

मनीयत। कथं कथमपि सहजसत्त्वावष्टम्भेनैव संस्तम्भितात्मा प्रविश्य पितुरपि लज्जमानो वदनमुपदर्शयितुमधोमुख एव निस्पन्दसर्वाङ्गेण मन्दराद्रिणेव शुकनासेन सह मथनावसानस्तिमितमिव महार्णवं प्रणम्य पितरं दूरत इवोपाविशत्। उपविष्टं च तं क्षणमिव दृष्ट्वा राजान्तर्बाष्पभरगद्गदेन ध्वनिनाभ्यर्णवर्ष इव जलधरोऽभ्यधात्। 'वत्स चन्द्रापीड जानामि ते स्वजीवितादपि समभ्यधिकां भ्रातुरुपरि प्रीतिम्। पीडा च सुखैकहेतोर्वल्लभजनादेवासंभाव्या या समुत्पद्यते [1]तयैव हि न किंचिन्न क्रियते। तज्जन्मन स्नेहस्य वयसः शीलस्य श्रुतस्य गुरुजनानुशासनस्य विनयाधानस्य च सर्वस्यैवानुचितमिमं भ्रातुः

तेन विह्वलः व्याकुलः इव निद्रायाः आगमेन आगमनेन इव पूर्णमानः प्रस्खलन् निश्चेतनतां जडत्वं मूर्छामिति यावत् अनीयत प्रापितवान्। (अत्र रूपकोत्थापितोपमा) कथं कथमपि केनापि प्रकारेण कृच्छ्रादित्यर्थः सहजं स्वाभाविकं यत् सत्त्वं धैर्य तस्य अवष्टम्भेन आश्रयेण एव संस्तम्भितः धारितः आत्मा येन तथाभूतः चन्द्रापीडः प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा पितुः जनकस्य तारापीडस्य अपि वदनं स्वमुखम् उपदर्शयितुं दर्शनविषयीकारयितुं लज्जमानः त्रपमाणः अधोमुखः नतमुखः एव निस्पन्दानि निश्चलानि सर्वाणि अङ्गानि यस्य तथाभूतेन मन्दरश्चासौ अद्रिः पर्वतः तेन मन्दराचलेन इव शुकनासेन सह सार्धं मथनस्य समुद्रमन्थनस्य अवसाने समाप्तौ स्तिमितं निश्चलं महार्णवं महासमुद्रम् इवेत्युपमायाम् पितरं प्रणम्य नत्वा दूरतः दूरे इव उपाविशत् न्यषीदत्। ईदृशे महादुःखेऽपि राजा मन्त्री च अविचलभावेन स्थितौ आस्तामिति भावः, एतेन तयोः स्वभावस्य गाम्भीर्यं व्यज्यते, उभयत्रोपमालंकारः। उपविष्टं निषण्णं च तं चन्द्रापीडं क्षणम् इवेति वाक्यालंकारे दृष्ट्वा अवलोक्य राजा तारापीडः अन्तः मध्ये यः बाष्पस्य अश्रुणः भरः भारः आधिक्यमित्यर्थः तेन गद्गदेन अस्पष्टेन ध्वनिना शब्देन अभ्यर्णः सन्निहितः वर्षः वर्षणं यस्य तथाभूतः जलधरः मेघः इव अभ्यधात् अकथयत्, अत्रोपमा। **वत्स०**—ते तव भ्रातुः वैशम्पायनस्य उपरि स्वस्य जीवितात् प्राणेभ्यः समभ्यधिकां प्रचुरतरां प्रीतिं प्रेम अहं जानामि वेद्मि। सुखस्य आनन्दस्य एकः अद्वितीयः हेतुः कारणं तस्मात् वल्लभात् प्रियात् जनात् व्यक्तेः एव असंभाव्या संभावयितुमशक्या अतर्किता इत्यर्थः या पीडा दुःखं समुत्पद्यते जायते, तया पीडया एव हि निश्चयेन न किञ्चित् न क्रियते अपितु सर्वमपि क्रियते, अर्थात् 'प्रेम्णः कुटिलगामित्वात्' इत्यनुसारेण वल्लभो यदि किमप्यनुचित्तं कथयति, अप्रत्याशितम् अपमानं वा करोति, आक्षेपगर्भं वा परिहसति, तेन आत्मानम् अपमानितं मन्यमानस्य बहु-पीडा जायते, पीड़ाभिभूतश्च सुहृत् सर्वमेव कर्तुं शक्नोति। 'त्वया एव वैशम्पायनस्य किमपि पीडाकरम् कथितं वा कृतं स्यात् येन सर्वं परित्यज्यासौ वने स्थितः इति पितुराशयः। तत् तस्मात् जन्मनः उत्पत्तेः कुलस्येत्यर्थः, स्नेहस्य प्रीतेः वयसः अवस्थायाः, शीलस्य स्वभावस्य, श्रुतस्य शास्त्रज्ञानस्य, गुरुजनस्य मातापित्रादेः अनुशासनस्य नियन्त्रणस्य, विनयस्य नम्रतायाः आधानस्य स्थापनस्य,

जाने से-जैसे चकराता हुआ चन्द्रापीड़ बेहोश हो गया। किसी तरह अपने स्वाभाविक धैर्य के सहारे ही अपने को सँभाले वह पिता को भी अपना मुँह दिखाने से लजाता हुआ, प्रविष्ट होकर नीचे मुँह किये ही, निश्चल सर्वाङ्गोंवाले मन्दराचल-जैसे शुकनास के साथ-साथ मन्थन की समाप्ति पर निश्चल बने महासागर-से पिता को प्रणाम करके कुछ दूर बैठ गया। उसे क्षणभर बैठा देखकर राजा तारापीड़ भीतर ही भीतर अत्यधिक आँसुओं से गद्गद बनी वाणी से शीघ्र बरसने वाले बादल की तरह बोल उठे—'बेटा चन्द्रापीड! मैं जानता हूँ कि तुम्हारा अपने भाई (वैशम्पायन) पर प्राणों से भी अधिक प्रेम है। (किन्तु) सुख के एकमात्र कारणभूत प्रिय जन के (किसी कार्य) से ही जो अतर्कित पीड़ा पहुँचती है, उसी से सचमुच सब कुछ किया जा सकता है, इसलिए कुल, स्नेह, वय, शील, शास्त्र-ज्ञान, गुरुजन का अनुशासन, विनय की

१. क—यथैव।

सुहृदश्च ते वृत्तान्तमाकर्ण्य त्वद्दोषमाशङ्कते मे हृदयम्।' इत्येवंवादिनो नरपतेर्वचनमाक्षिप्य युगपच्छोकामर्षाभ्यामन्धकारितानन: प्रावृडारम्भ इव तडिल्लतादुष्प्रेक्ष्यो विस्फूर्जितेनेव स्फुरिताधरेण शुकनासोऽब्रवीत्।

'देव, यदि चन्द्रमस्यूष्मा, दहने चातिशीतलत्वम्, अंशुमालिनि वा तम:, तमस्विन्यां वा दिवस:, महोदधौ वा शोष:, क्षितेरधारणं वा शेषे, परार्थानुद्यमो वा साधो:, अप्रियवचननिर्गमो वा स्वजनमुखात्संभाव्यते ततो युवराजेऽपि दोष:। तत्किमेवमेवानिरूप्य तस्यानात्मज्ञस्य मूढप्रकृतेर्दुर्जातस्य राजापथ्यकारिणो मातृपितृघातिनो मित्रद्रुह: कृतघ्नस्य कर्मचाण्डालस्य महापातकिन: कृते कृतयुगावतारयोग्यमात्मनोपि गुणवन्तमत्युदारचरितं चन्द्रापीडमेवं संभावयति देव:। न ह्यत:परमपरं कष्टतरं किंचिदपि पीडा-

सर्वस्य सकलस्य एव अनुचितम् अयोग्यम् इमं ते तव भ्रातु: सुहृद: मित्रस्य च वृत्तान्तम् उदन्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा मे मम हृदयं मन: तव दोषम् अपराधमित्यर्थ: आशङ्कते आशङ्कां करोति' इति एवं वदति कथयतीति तथोक्तस्य नरपते: राज्ञ: तारापीडस्य वचनं कथनम् आक्षिप्य निराकृत्य युगपत् एकदैव शोक: दु:खम् अमर्ष: क्रोधश्चेति ताभ्याम् अन्धकारितम् अन्धकारयुक्तम् इव आननं मुखं यस्य तथाभूत: तडित् विद्युत् लता इवेति लुप्तोपमा तया दुष्प्रेक्ष्य: दु:खेन प्रेक्षितुं शक्य: प्रावृष: वर्षर्तो: आरम्भ: उपक्रम इवेत्युपमायाम् विस्फूर्जितेन गर्जितेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् स्फुरित: कम्पित: य: अधर: ओष्ठ: तेन शुकनास: अब्रवीत् अवदत्। देव—देव महाराज! यदि चेत् चन्द्रमसि चन्द्रे ऊष्मा औष्ण्यम्, दहने अग्नौ अतिशयेन शीतलत्वं शैत्यम् अंशुमालिनि सूर्ये वा तम: अन्धकार:, तमस्विन्यां रात्रौ वा दिवस: दिनम्, महोदधौ महासागरे वा शोष: शुष्कता जलाभाव इत्यर्थ:, क्षिते: पृथिव्या: वा शेषे शेषनागे अधारणम् अवहनम्, साधो: सज्जनस्य वा परस्य अन्यस्य अर्थे कार्ये अनुद्यम: उद्यमाभाव:, स्वजनस्य आत्मीयजनस्य मुखात् आननात् अप्रियस्य अनिष्टस्य वचनस्य वाक्यस्य निर्गम: निर्गमनं वा संभाव्यते कल्प्यते, तत: तदा युवराजे चन्द्रापीडेऽपि दोष: संभाव्यते इति शेष:। तत् तस्मात् किम् कथम् एवम् एव अनिरूप्य अविचार्य तस्य आत्मानं न जानातीति तथोक्तस्य मूढप्रकृते: मूढस्वभावस्य, दुर्जातस्य कुत्सितजन्मन:, राज्ञ: अपथ्यम् अहितं करोतीति तथोक्तस्य राजद्रोहिण: इत्यर्थ:, माता च पिता च तौ हन्तीति तथोक्तस्य, मित्रं सुहृदं द्रुह्यतीति तथोक्तस्य, कृतं कृतोपकारं हन्ति ध्वंसयतीति तथोक्तस्य अकृतज्ञस्येत्यर्थ:, कर्मणा (न तु जन्मना) चाण्डालस्य नीचजनस्य, महापातकिन: महापापिन: कृते तत्पक्षमवलम्ब्येत्यर्थ: कृतयुगे सत्ययुगे अवतार: अवतरणं तस्य योग्यम्, आत्मन: स्वत: अपि आत्मापेक्षया अपि गुणवन्तं गुणशालिनम्, अतिशयेन उदारम् औदार्य-गुणं चरितं चरित्रं यस्य तथाभूतं चन्द्रापीडम् एवम् एतादृशं देव: भवान् संभावयति अवगच्छति।

स्थापना तथा अन्य सभी के अनुचित तेरे भाई और मित्र (वैशम्पायन) का यह हाल सुनकर मेरे हृदय में शंका हो रही है कि तू ने ही कुछ खराबी की होगी'—यह कहते हुए राजा का कथन काट कर एक साथ ही शोक और क्रोध के कारण अँधेरा-सा मुँह किए, विद्युत् लेखा के कारण दुर्दर्श बने वर्षा काल के आरम्भ के समान-गर्जते हुए-जैसे फड़-फड़ाते ओंठ से शुकनास बोले—

'महाराज, यदि चाँद में गरमी, आग में अतिशीतलता, सूर्य में अन्धेरा, रात में दिन, महासागर में जलशोष, शेषनाग का पृथिवी को धारण न करना, सज्जन का परार्थ उद्यम न करना, अथवा आत्मीय जन के मुख से अप्रिय वचन निकलना—ये संभव हो सकते है, तो युवराज में भी दोष संभव है। इसलिए क्यों आप यों ही बिना सोचे-समझे उस अनात्मज्ञ, दुष्ट-स्वभाव, कुजात, राजद्रोही, माता-पिता के घातक, मित्रद्रोही, कृतघ्न, क्रिया-रूप में चाण्डाल, महापापी (वैशम्पायन) का पक्ष लेकर सत्ययुग में अवतार धारण करने योग्य आप से अधिक गुणी, अत्यन्त उदार चरित्र वाले चन्द्रापीड़ को ऐसा समझ रहे हो? इससे अधिक बुरा दु:ख का कारण दूसरा

कारणं यद्गुणेषु वर्तमानो दोषेषु संभाव्यत इतरजनेनापि। किं पुनर्गुरुजनेन। यो गुणी गुणैरेवाराधनीयः। कस्यापरस्यात्मा गुणवाननेन ज्ञापनीयः। अपि च जन्मनः प्रभृति देवस्य देव्या विलासवत्याश्चाङ्कलालनया यो गृहीतस्तस्य मरुत इव दुर्ग्रहप्रकृतेश्चन्द्रापीडोपि किं करोतु ! स्वयमेवोत्पद्यन्त एवंविधाः शरीरसंभवा महाकृमयः, सर्वदोषाश्रया महाव्याधयः, अन्तर्विषा महाव्यालाः, विनाशहेतवो महोत्पाताः, भुजङ्गवृत्तयो महावातिकाः, वक्रचारिणो महाग्रहाः, तमोमया प्रदोषाः, मलिनात्मकाः कुलपांशवः, निःस्नेहाः खलाः, निर्लज्जाः क्षपणकाः, निःसंज्ञाः पशवः, अपि चाकाष्ठा दहनाः, निर्गुणा जालिनः, अतीर्था जलाशयाः, निर्गौरवाः खरप्रकृतयः, अशिवमूर्तयो महाविनायकाधिष्ठिताः। ये

अतः अस्मात् परम् अधिकं कष्टतरं दुःखतरं पीडयाः कारणं हेतुः अपरम् अन्यत् न किञ्चित् अस्तीति शेषः यत् गुणेषु वर्तमानः जनः इतरः नीचश्चासौ जनः तेन अपि ('इतरस्त्वन्य-नीचयोः' इत्यमरः) दोषेषु दुर्गुणेषु संभाव्यते उत्प्रेक्ष्यते । किं पुनः गुरुजनेन माता-पित्रादिना, गुरुजनस्य वार्तैव केत्यर्थः। अनेन गुणिना कस्य अपरस्य अन्यस्य समक्षमिति शेषः आत्मा स्वः गुणवान् गुणी ज्ञापनीयः प्रकाशनीयः अर्थात् गुणी पुरुषो हि कस्याप्यग्रे आत्मानम् गुणी अस्म्यहम् इति न प्रकाशयति। अपि च एतदतिरिक्तम्, जन्मनः प्रभृति आदाय देवस्य भवतः देव्याः विलासवत्याश्च अङ्के क्रोडे लालनया पालनेन यो जनः (वैशम्पायनः) न गृहीतः वशीभूतः तस्य मरुतः वायोः इवेत्युपमायाम् दुर्ग्रहा दुःखेन ग्रहीतुं योग्या प्रकृतिः स्वभावः यस्य तथाभूतस्य चन्द्रापीडोऽपि किं करोतु न किमपीति काकुः। एवंविधाः एतादृशाः शरीरात् संभवः उत्पत्तिः येषां तथाभूताः कृमयः कीटाः, महान्तश्च ते दोषाः तेषाम् आश्रयाः आधारभूताः महाव्याधयः महारोगाः, अन्तः मध्ये विषं येषां तथाभूताः महाव्यालाः महासर्पाः, विनाशस्य विध्वंसस्य महोत्पाताः महोपसर्गाः भूकम्पादयः, भुजङ्गः सर्पः तद्वत् वृत्तिः वर्तनं येषां तथाभूताः महावाताः एव महावातिकाः झञ्झावाता इत्यर्थः भुजङ्गवत् महावाताः चङ्क्रम्यन्ते इति सादृश्यम्, वक्रं कुटिलं यथा स्यात्तथा चरन्तीति तथोक्ताः कुटिलगामिनः इत्यर्थः महाग्रहाः शनैश्चरादयः तमः अन्धकारः अथ च तमोगुणः एव तन्मयाः प्रदोषाः सायंसमयाः, मलिनः मलिनवर्णः अथ च रागद्वेषादिमलयुक्त आत्मा येषां तथाभूताः कुलस्य वंशस्य पांसवः रेणवः, निर्गतः स्नेहः तैलतत्त्वम् अथ च प्रीतिः येभ्यः तथाभूताः खलाः तिलादि-बीजानां मलाः अथ च पिशुनाः, निर्लज्जाः लज्जारहिताः क्षपणकाः दिगम्बरजैन-साधका निः निर्गता संज्ञा उचितानुचितधीः येषां तथाभूताः पशवः तिर्यञ्चः अपि, उपरि सर्वत्र रूपकम्, क्वचित् श्लिष्टं, क्वचित् साधारणम्; न काष्ठम् एधः येषु तथाभूताः दहना अनलाः, निः न गुणाः सूत्राणि सूत्ररचितजालानीत्यर्थः अथ च गुणाः दया-दाक्षिण्यादयः येषां तथाभूताः जालिनः वागुरिकाः उपजापकाश्च, न तीर्थम् ऋषिमुनिजुष्टं स्थानं यत्र, अथ च तीर्थं गुरुः येषां तथाभूताः ('तीर्थमृषिजुष्टे जले गुरौ' इत्यमरः) जलाशयाः जलस्थानानि अथ च जलः जडः (डलयोरभेदात्) आशयः हृदयं येषां तथाभूताः निर्गतं गौरवं भारवत्त्वम् अथ महत्त्वं येभ्यः

क्या हो सकता है कि नीच जन भी गुणी में दोष की सम्भावना करें, गुरुजन की तो बात दूर रही। जो गुणी है, उसकी आराधना गुणों से ही होनी चाहिए। गुणी को किसी दूसरे के आगे अपने आप को गुणवान् प्रख्यात करना है? इसके अतिरिक्त, जन्म से लेकर आप और देवी विलासवती द्वारा अपनी गोद में पालने पर भी जो वश में नहीं हुआ, वायु की तरह स्वभावतः वश में न आने वाले उसका चन्द्रापीड भी क्या करे? शरीर से होने वाले ऐसे बड़े-बड़े कीड़े, सब दोषों के आधार-भूत महारोग, भीतर विष रखने वाले महासर्प, विनाश के कारण महान् उत्पात, साँप की तरह आचरण करने वाले झंझावात, टेढ़ी चाल चलने वाले महाग्रह, अन्धकारमय सायंकाल, मैली कुल-धूलियाँ, विना स्नेह के खल, निर्लज्ज दिगम्बर साधु, संज्ञा-शून्य पशु, अपि च, विना काष्ठ की अग्नि, निर्गुण (जाल रहित; दयादाक्षिण्यादि-शून्य) जाली (वागुरिक; षड्यन्त्रकारी), विना तीर्थ (पवित्र स्थान; गुरु) के जलाशय (जल-स्थान, जड़-हृदय), विना

सकलङ्काः कृपाणा इव स्नेहेनैव पारुष्यं भजन्ते। मलिनस्वभावाः करिकपोला इव दानेनैव मलिनतरतामापद्यन्ते। निर्वर्तयो मणिप्रदीपा इव प्रसादेनैव ज्वलन्ति। अङ्गलग्ना भुजङ्गा इव दाक्षिण्यपरिग्रहेणैवेतरे वामाः संजायन्ते। गुणमुक्ताः सायका इव सपक्षाश्रयेण फलेनैव

तथाभूताः खराः कठिना अथ कठोरा प्रकृतिः स्वभावः येषां ते गौरवाभावे कथं कठिनप्रकृतित्वम् इति विरोधः अर्थान्तरेण च परिहारः, न शिवस्य शङ्करस्य मूर्तयः प्रतिमाः किन्तु महाविनायकेन महागणेशेन अधिष्ठिताः युक्ताः अशिवमूर्तयः कथं गणेशाधिष्ठिताः शिवमूर्तिभिः सह एव गणेशाधिष्ठानात् इति विरोधः, तत्परिहारस्तु न शिवा भद्रा आकृतिः मुखं येषां ते अभद्रमुखा इत्यर्थः, अथ च महाविनायकैः महाविघ्नैः अधिष्ठिताः महाविघ्नकारका इति यावत्, सन्तीति शेषः अत्र 'अकाष्ठा दहनाः' इत्यारभ्य 'अचतुर्वदनो ब्रह्मा' इत्यादिवत् न्यूनारूढवैशिष्ट्यं नाम रूपकम् तच्च श्लिष्टम् विरोधाभासेन च सङ्कीर्णम्। ये कलङ्केन अंकेन अथ च अपवादेन ('कलङ्कोऽङ्कापवादयोः इत्यमरः) सहिताः कृपाणा इव स्नेहेन तैलेन अथ च प्रीत्या एव पारुष्यं तैक्ष्ण्यम् अथ च कठोरतां भजन्ते प्राप्नुवन्ति, यथा रक्ताक्तः कृपाणः तैलादिना स्नेहेन तीक्ष्णी क्रियते तथैव कलंकिताः तेऽपि स्नेहेन (प्रीत्या) अधिकाधिककठोरा भवन्तीति भावः। मलिनः श्यामः अथ च रागद्वेषादिमलपूर्णः स्वभावः प्रकृतिः येषां ते करिणः गजस्य कपोलाः गण्डस्थलानि इव दानेन मद-जलेन अथ च द्रव्यादि-वितरणेन ('दानं गजमदे त्यागे' इतिविश्वः) एव मलिनतरताम् अत्यधिकमलिनत्वम् आपद्यन्ते प्राप्नुवन्ति स्वतः मलिनवर्णाः करिकपोलाः मदजलेन यथा अत्यधिकमलिनवर्णा भवन्ति तथैव तेऽपि द्रव्यादिदानं प्राप्य अत्यधिकरागादिदोषपूर्णाः जायन्ते इति भावः। निर्वर्तयः निः न वर्तिः दशा वर्तिकेति यावत् अथ च वर्तनं वर्तिः वृत्तिः आजीविकेत्यर्थः (अस्मिन्नर्थे 'वृत्तिः' इत्येवोचितम्, किन्तु श्लेषकारणात् क्षम्यम्) येषां तथाभूताः मणिप्रदीपा रत्नरूपदीपकाः इव प्रसादेन औज्ज्वल्येन अथ च अनुग्रहेण ज्वलन्ति प्रदीप्यन्ते अथ च ईर्ष्यन्ति। खलेषु यथा यथा अनुग्रहः क्रियते, तथा तथा ते हृदये ईर्ष्याकुलाः भवन्तीत्यर्थः, अङ्ग शरीरे लग्नाः संसक्ताः भुजङ्गाः सर्पा इव दाक्षिण्यस्य उदारतायाः दयालुताया इति यावत् अथ च शिष्टतायाः विनयस्येति यावत् परिग्रहेण स्वीकारेण एव इतरे नीचपुरुषाः वामाः प्रतिकूलाः संजायन्ते अर्थात् यथा दयाग्रहणेन शरीर-लग्नाः सर्पाः प्रतिकूलीभूय दंशन्ति, तथैव नीचेषु शिष्टता प्रदर्श्यते चेत् तेऽपि प्रतिकूलीभवन्ति, अनिष्टं चाचरन्ति। गुणः प्रत्यञ्चा तेन मुक्ताः प्रक्षिप्ताः सायकाः बाणा इव (खलाः) गुणः दयादाक्षिण्यादिरूपः तेन मुक्ताः रहिताः, पक्षः तेन सह वर्तमानः सपक्षः बाण इत्यर्थः स आश्रयः यस्य तथाभूतेन सपुंखबाणाग्रभागस्थितेनेत्यर्थः फलेन लोहभवेन फालेन एव अथ च सपक्षः स्वजनवर्गः आश्रयः यस्य तथाभूतेन फलेन साध्येन

गौरव (भारीपन, महत्त्व) रखे कठोर प्रकृति वाले, महाविनायक (महाविघ्न; महागणेश) साथ रखे अशिव-मूर्ति (भद्दी शक्ल के; शिव-प्रतिमा से भिन्न) स्वयं ही पैदा हो जाया करते हैं, जो स्नेह (तेल) से तीक्ष्ण (तेज) होने वाले, कलंक (धब्बा) लगे कृपाणों की तरह कलंक (बदनामी) लिये, स्नेह (प्रेम) से ही तीक्ष्ण (कठोर) बन जाते हैं, दान (मदजल) से ही और अधिक मलिन (काले) बन जाने वाले हाथी के स्वतः मलिन गण्डस्थलों की तरह मलिन (रागद्वेषादिपूर्ण) स्वभाव के दान (द्रव्यादि-प्रदान) से ही और अधिक मलिन (रागद्वेषादिपूर्ण) बन जाते हैं। प्रसाद (स्वच्छता) से ही जलने वाले बिना वर्ति (बत्ती) के मणिदीपों की तरह बिना वर्ति (वृत्ति) के जो प्रसाद (अनुग्रह) से ही जल उठते हैं, दया दिखाने के कारण प्रतिकूल हो जाने वाले शरीर से चिपटे साँपों की तरह शिष्टता अपनाने पर प्रतिकूल हो उठते हैं; पक्ष (पुंख) पर लगे फल (लौह-नोक) द्वारा दूर फेंके जाने वाले, गुणमुक्त (धनुष की डोर से छूटे) बाणों की तरह गुणमुक्त (गुणों से रहित) हो सपक्ष

१. भुजा।

दूरं विक्षिप्यन्ते। सरागाः पल्लवा इव दिवसारूढ्यैवापरज्यन्ते। भूतिपरामृष्टा दर्पणा इवाभिमुख्येन सर्वं प्रतीपं गृह्णन्ति। अन्तरस्वच्छवृत्तयः सलिलाशया इव गाढावगाहनेनैव कालुष्यमुपयान्ति। ये च स्निग्धेष्वपि रूक्षाः, ऋजुष्वपि वक्राः, साधुष्वप्यसाधवः, गुणवत्स्वपि दुष्टप्रकृतयः, भर्तर्यप्यभृत्यात्मानः, रागिष्वपि क्रुद्धाः, निरीहादप्यादित्सवः, मित्रेष्वपि द्रोहिणः, विश्वस्तानामपि घातकाः, भीतेष्वपि प्रहारिणः, प्रीतिपरेष्वपि द्वेषिणः, विनीतेष्वप्युद्धताः, दयापरेष्वपि निर्दयाः, स्त्रीष्वपि शूराः, भृत्येष्वपि क्रूराः, दीनेष्वपि

प्राप्तव्यसहायतादिनेति यावत् एव दूरं विक्षिप्यन्ते प्रक्षिप्यन्ते अथ च स्वसकाशात् दूरीक्रियन्ते। अयं भावः यथा गुणमुक्ताः (प्रत्यञ्चाप्रक्षिप्ताः) बाणाः स्वाश्रितेन सपुङ्ख-फलेन दूरं गच्छन्ति तथैव गुणमुक्ताः (गुणरहिताः) जनाः स्वजनप्राप्तव्य-सहायतया वञ्चिताः भवन्ति, गुणरहितेभ्यः न कोऽपि बन्धुजनः आश्रयं ददाति, ते वहिष्क्रियन्ते इति यावत्। रागः लौहित्यं अथ च अनुरागः तेन सहिताः सरागाः पल्लवाः किसलया इव ते दिवसस्य दिनस्य आरूढ्या वृद्ध्या एव अपरज्यन्ते लौहित्येन विना क्रियन्ते, अथ च स्वजनवर्गस्य प्रेम्णा वियुज्यन्ते। दिनोदये लौहित्यरञ्जिताः पल्लवाः यथा दिन-वृद्ध्या सूर्यातपप्रभावात् लौहित्येन त्यज्यन्ते, तथैव ते बाल्यकाले स्वजनवर्गप्रेमभाजनानि भवन्तोऽपि आयुर्वृद्ध्या सह तेषामवगुणेषु प्रकटीभवत्सु बन्धुजनप्रेम्णा वियुज्यन्ते, न कोऽपि तेषु स्निह्यतीति भावः। भूतिः भस्म अथ च ऐश्वर्यं तेन परामृष्टा निर्मलीकृताः अथ च आलिङ्गिताः दर्पणाः मुकुरा इव आभिमुख्येन संमुखत्वेन सर्वम् निखिलम् अपि प्रतीपं विपरीतं गृह्णन्ति। निर्मलदर्पणेषु यथा संमुखस्थं सर्वमपि प्रतीपं दृश्यते, तथा धन-सम्पदा परिगृहीतैः तैः स्वाग्रे सर्वमपि प्रतीपं गृह्यते ते सर्वानपि स्वविरुद्धान् मन्यन्ते इति भावः। अन्तः मध्ये अथ च हृदि अस्वच्छा अनिर्मला वृत्तिः सत्ता अथ च मनोवृत्तिः येषां तथाभूताः जलाशयाः सलिलधाराः इव गाढम् अत्यर्थं यथा स्यात् तथा अवगाहनेन आलोडनेन अथ च अध्ययनेन परिचयेनेति यावत् कालुष्यं मलिनत्वम् अथ च रागद्वेषादिमलपूर्णत्वम् उपयान्ति प्राप्नुवन्ति। जलं हि तलभागे पङ्कपूर्णं भवत् उपरिष्टात् स्वच्छं दृश्यते, किन्तु यदा महिषादिभिः तत् गहनमालोड्यते तदा तस्य पंकिलत्वं यथा प्रादुर्भवति, तथैव बहिरेव सुन्दराणां तेषां स्वभावस्य यदा गहनाध्ययनं क्रियते, तदा ते कलुषाः रागद्वेषादिभरिताः सिद्ध्यन्ति। उपरि सर्वत्र मालारूपः श्लिष्टोपमालङ्कारः। ये च स्निग्धेषु स्नेहिषु अपि रूक्षाः अस्निग्धाः, ऋजुषु सरलेषु अपि वक्राः कुटिलाः, साधुषु सज्जनेषु अपि असाधवः दुर्जनाः, गुणवत्सु गुणिषु अपि दुष्टा प्रकृतिः स्वभावो येषां तथाभूताः, भर्तरि स्वामिनि अपि अभृत्यः भृत्यजनानुचितः आत्मा येषां तथाभूताः भृत्यवत् न आचरन्त इत्यर्थः, रागिषु अनुरक्तेषु अपि क्रुद्धाः कुपिताः, निरीहात् निःस्पृहात् अपि आदित्सवः आदातुमिच्छवः, मित्रेषु सुहृत्सु अपि द्रोहिणः द्रोहकर्तारः, 'विश्वस्तानां विश्वासं प्राप्तानाम् अपि घातकाः मारकाः, भीतेषु त्रस्तेषु अपि प्रहारिणः प्रहारकर्तारः, प्रीतिपरेषु स्नेहिषु अपि द्वेषिणः द्वेषकर्तारः, विनीतेषु विनम्रेषु अपि उद्धताः अविनीताः दयापरेषु दयातत्परेषु अपि निर्दयाः निष्ठुराः स्त्रीषु अबलासु कठोराः, दीनेषु दुःखिषु अपि दारुणाः भीषणाः, सन्तीति शेषः।

(स्वजन) से मिलने वाले फल (सहायता आदि) से दूर कर दिए जाते हैं; राग (लाली) लिये, (किन्तु) दिन की चढ़ती पर अपरक्त (लाली खोये) पल्लवों की तरह राग (स्वजनों का प्रेम) लिये हुए दिन की चढ़ती (उम्र की बढ़ती) पर अपरक्त (स्वजन-प्रेम से वञ्चित) हो जाते हैं; सामने सबको प्रतीप (उल्टा) ग्रहण करने वाले, भूमि (भस्म) से साफ किये दर्पणोंकी तरह भूति (धन-सम्पद्) द्वारा अपनाए, (अपने) सामने सबको प्रतीप (प्रतिकूल) समझते हैं; अच्छी तरह आलोडन (अवगाहन) करने से ही कालुष्य (मैलापन) प्रकट करने वाले, भीतर कीचड़ रखे जलाशयों की तरह भीतर मलिन वृत्तियों वाले, अच्छी तरह आलोडन (अध्ययन) करने से ही कालुष्य (मन का मैलापन) प्रकट करते है और जो स्नेहियों के प्रति भी रूखे, सीधे-सादों के प्रति भी कुटिल, साधुओं के प्रति भी असाधु, गुणवानों के प्रति

दारुणाः। येषां च विपरीतानां गुरव एव लघवः, नीचा एवोच्चः, अगम्या एव गम्याः, कुदृष्टिरेव सद्दर्शनम्, अकार्यमेव कार्यम्, अन्याय एव न्यायः, अस्थितिरेव स्थितिः, अनाचार एवाचारः, अयुक्तमेव युक्तम्, अविद्यैव विद्या, अविनय एव विनयः, दौःशील्यमेव सुशीलता, अधर्म एव धर्मः, अनृतमेव सत्यम्। येषां च क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिसंधानाय न ज्ञानाय, श्रुतं मायाजालाय नोपशमाय, पराक्रमः प्राणिनामुपघाताय नोपकाराय, उत्साहो धनार्जनाय न यशसे, स्थैर्यं व्यसनासङ्गाय न चिरसंगताय, धनपरित्यागः कामाय न धर्माय। किं बहुना। सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय। तदसावपीदृश एव कोऽप्यपुण्यवानुत्पन्नो यस्यैवं कुर्वतो मित्रमहं चन्द्रापीडस्य कथं तस्य द्रोहमाचरामीति नोत्पन्नं चेतसि। एवं कृते चलितवृत्तानां शासितावश्यं तारापीडो देवः पीडितान्तरात्मा

अन्येषां तु वार्तैव केति उपरि सर्वत्र अपिशब्दबलात् अन्यस्य अर्थस्य आपत्त्या मालारूपः अर्थापत्तिरलंकारः। विपरीतानां विपरीतमतीनामित्यर्थः येषां च गुरवः उपदेष्टारः अथवा मातापित्रादयः एव लघवः तुच्छभूताः, नीचाः एव उच्चैः उच्चाः, आगम्याः असेव्याः एव गम्याः सेव्याः, कुदृष्टिः कुदर्शनम् एव सद्दर्शनम् सम्यक् दर्शनम्, अकार्यम् अकृत्यम् एव कार्यं कृत्यम्, अन्यायः अनीतिः एव न्यायः नीतिः, अस्थितिः अमर्यादा एव स्थितिः मर्यादा, अनाचारः अनाचरणम् एव आचारः आचरणम्, अयुक्तम् अनुचितम् एव युक्तम् उचितम्, अविद्या अज्ञानम् एव विद्या ज्ञानम्, अविनयः धृष्टता एव विनयः, दुःशीलस्य भावः दौशील्यं दुःस्वभावता एव सुशीलता सुस्वभावता, अधर्म एव धर्मः, अनृतम् असत्यम् एव सत्यम्, अस्तीति शेषः। **येषां च**—क्षुद्राणां नीचानां प्रज्ञा बुद्धिः परेषाम् अन्येषाम् अभिसन्धानाय वञ्चनाय, न ज्ञानाय तत्त्वज्ञानायेत्यर्थः, श्रुतं शास्त्रज्ञानं मायाजालाय कपटजालरचनाय न उपशमाय शान्तये, पराक्रमः शौर्यं प्राणिनाम् जीवनाम् उपघाताय वधाय न उपकाराय उपकृतये, उत्साहः अध्यवसायः धनस्य द्रव्यस्य अर्जनाय उपार्जनाय न यशसे कीर्तये, स्थैर्यं स्थिरता व्यसनेषु द्यूतमद्यादिषु आसङ्गाय आसक्तये न चिर-सङ्गताय चिरमैत्र्यै, धनस्य परित्यागः विसर्जनं कामाय इन्द्रियोपभोगाय न धर्माय सुकृताय, भवतीतिशेषः, उपरि सर्वत्र परिसंख्यालंकारः। किं बहुना विस्तरेण, येषां सर्वम् एव दोषाय अवगुणाय भवति न गुणाय। तत् तस्मात् असौ वैशम्पायनः अपि ईदृशः एवंविधः कोऽपि अपुण्यवान् पापात्मा उत्पन्नः जन्म गृहीतवान् यस्य एवं कुर्वतः चन्द्रापीडं त्यजतः इत्यर्थः—"अहं चन्द्रापीडस्य मित्रं सुहृत् अस्मि, कथं तस्य चन्द्रापीडस्य द्रोहं द्वेषम् आचरामि" इति चेतसि मनसि नोत्पन्नं न जातम् एतत् न विचारितवानित्यर्थः। 'एवं कृते

भी दुष्ट प्रकृति वाले, स्वामी के प्रति भी अभृत्यरूप, प्रेमियों के प्रति भी कुपित, निरीहों से भी खसोटने वाले, मित्रों के प्रति भी द्रोह करने वाले, विश्वास करने वालों के भी घातक, भयभीतों पर भी प्रहार करने वाले, प्रीति रखने वालों से भी द्वेष करने वाले, विनीतों के प्रति भी उद्धत, दयावानों के प्रति भी निर्दय, स्त्रियों के प्रति भी शूर, नौकरों के प्रति भी क्रूर और दीनों के प्रति भी दारुण होते हैं; और जिन विपरीत मति वालों के लिए गुरु ही लघु हैं, नीचे ही ऊँचे हैं, अगम्य ही गम्य हैं, कुदृष्टि ही सुदृष्टि है, अकार्य ही कार्य है, अन्याय ही न्याय है, अमर्यादा ही मर्यादा है, अनाचार ही आचार है, अयुक्त ही युक्त है, अविद्या ही विद्या है, अविनय ही विनय हैं, कुशीलता ही सुशीलता हैं, अधर्म ही धर्म है और झूठ ही सत्य है, और जिन क्षुद्रों की बुद्धि दूसरों को ठगने के लिए है, ज्ञान के लिए नहीं, शास्त्रज्ञान माया-जाल रचने हेतु है, शान्ति हेतु नहीं, पराक्रम प्राणियों के वधार्थ है, उपकारार्थ नहीं, उत्साह धन कमाने का है, यश का नहीं, स्थिरता व्यसनों में फँसने के लिए है, चिर-मैत्री के लिए नहीं और धन-त्याग कामोपभोग के लिए है, धर्म के लिए नहीं; अधिक क्या कहें, जिनका सभी कुछ दोष के लिए है, गुण के लिए नहीं। इसलिए वह कोई ऐसा ही पापी उत्पन्न हुआ है, जिसने ऐसा करते हुए यह नहीं मन में सोचा कि 'मैं चन्द्रापीड़ का मित्र हूँ, उसके साथ क्यों द्रोह करूँ। ऐसा करने

मयि कोपं करिष्यतीत्येवमपि नाशङ्कितं मनसा। मातुरहमेवैको जीवितनिबन्धनं, कथं मया विना वर्तिष्यत इत्येतस्य नृशंसस्य हृदये नापतितम्। पिण्डप्रदो वंशसंतानार्थमहमुत्पादितः पित्रा, कथमननुज्ञातस्तेन सर्वपरित्यागं करोमीत्येतदपि यथाजातस्य न बुद्धौ संजातम्। तदेवमसत्पथप्रवृत्तेन नष्टात्मना सुदूरमुद्भ्रान्तेन दुर्दशमदृष्टं[1] तावन्न नाम कुदृष्टिना दृष्टम्। दृष्टमपि येन न दृष्टं तस्याज्ञानतिमिरान्धस्य किं क्रियताम्। अपरमसौ तिर्यङ्महता यत्नेन शुक इव पाठितः पुष्टश्च देवेन। अथवा विनोददानात्तिरश्चामपि सफल एव शिक्षणायासो भवति। तेपि पोषिताः पितरि स्नेहमाबध्नन्ति। तेपि कृतं जानन्ति।

द्रोहे आचरिते इत्यर्थः चलितम् भ्रष्टं वृत्तं चरितं यस्य तथाभूतानां शासिता दमनकर्ता तारापीडः देवः महाराजः पीडितः दुःखितः अन्तरात्मा स्वान्तं यस्य तथाभूतः सन् मयि वैशम्पायने कोपं क्रोधं करिष्यति विधास्यति' इति एवम् अपि मनसा चेतसा न आशङ्कितम् शङ्कां कृतवान्। 'मातुः अम्बायाः मनोरमायाः अहम् एव एकः जीवितस्य प्राणानां निबन्धनं कारणम् अस्मीति शेषः, मया विना अन्तरेण कथं सा वर्तिष्यते स्थास्यतीत्यर्थः' इति एतस्य निर्दयस्य निष्ठुरस्य वैशम्पायनस्य हृदये मनसि न आपतितम् आगतम्। पिण्डं प्रददातीति तथोक्तः मरणान्तरं श्राद्धे पितृभ्यः पिण्डदाता वंशस्य कुलस्य संतानाय परम्परारक्षायै इत्यर्थः पित्रा उत्पादितः जानितः, कथं तेन पित्रा अननुज्ञातः अननुमतः सर्वेषां परित्यागं हानं करोमि—इति एतत् अपि यथाजातस्य मूर्खस्य बुद्धौ मनसि न सञ्जातम् उत्पन्नम् (अज्ञे मढ-यथाजात-मूर्ख-वैधेय-बालिशाः' इत्यमरः)। तत् तस्मात् असन् असम्यक् पन्थाः मार्गः तस्मिन् प्रवृत्तेन कुमार्गगामिनेत्यर्थः नष्टः मृतः आत्मा यस्य तथाभूतेन सुदूरम् अतिदूरम् उद्भ्रान्तेन प्राप्त-भ्रमेण, कु कुत्सिता दृष्टिः यस्य तेन वैशम्पायनेन दुः दृष्टा दशा अवस्था यस्मिन् तथाभूतम् अदृष्टम् वह्नितोयादि (अदृष्टं वह्नितोयादि दृष्टं स्वपरचक्रजम्' इत्यभियुक्ताः) तावत् आदौ न नामेति कोमलमंत्रणं दृष्टम्। दृष्टम् विलोकितम् अपि येन वैशम्पायनेन न दृष्टम् तस्य अज्ञानम् एव तिमिरम् तमः तेन अन्धस्य चक्षुरहितस्य किं क्रियतां विधीयताम् न किमपीति काकुः स खलु महामूर्खः येन शास्त्रेषु 'तपस्विनी (महाश्वेता) अगम्या भवती'ति दृष्टमपि न दृष्टमित्याशयः। अपरम् अपि च, असौ तिर्यक् पशुरूपः देवेन भवता शुकः कीर इव यत्नेन उद्यमेन पाठितः अध्यापितः पुष्टः पोषितश्च। अथवा विनोदस्य मनोरञ्जनस्य दानात् वितरणाम् करणादिति यावत् तिरश्चाम् पशुपक्षिणाम् अपि शिक्षिणस्य पाठनस्य आयासः प्रयत्नः सफलः सार्थकः एव भवति। ते तिर्यञ्चः अपि पोषिताः पालिताः पोषितरि पोषणकर्तरि स्नेहं प्रेम आबध्नन्ति कुर्वन्तीत्यर्थः ते अपि कृतम् आत्मानं प्रति विहितम् उपकारमित्यर्थः जानन्ति विदन्ति, तेऽपि कृतज्ञाः भवन्तीति यावत्। तेऽपि परिचयं संस्तवम् अनुवर्तन्ते अनुसरन्ति परिचयं

पर दुश्चरित्रों का दमन करने वाले महाराज तारापीड़ मन में दुःखित हुए मुझ पर क्रोध करेंगे'—यह भी मन में शंका नहीं की। माता के प्राणों का सहारा एकमात्र मैं ही हूँ, मेरे बिना वह कैसे रहेगी—यह उस निर्दयी के हृदय में नहीं आया। पिता ने मुझे पिण्डदान तथा कुलपरम्परा बनाये रखने हेतु जन्म दिया है उनकी आज्ञा लिए बिना मैं क्यों सब त्याग दूँ—यह बात भी उस मूर्ख की बुद्धि में नहीं आई। इस तरह कुपथगामी, नष्टात्मा, अति दूर भटक पड़े, कुदृष्टि वाले ने पहले भला यह नहीं देखा कि (जंगल के) जल और अग्नि आदि से क्या दुर्दशा हो जाती है। जिसने देखकर भी नहीं देखा—ऐसे अज्ञान-तिमिर के अन्धे का क्या किया जाय। इसके अतिरिक्त, आपने उस पशु को तोते की तरह प्रयत्नपूर्व पढ़ाया और पाला-पोषा। अथवा मनोरंजन करनेके कारण पशु-पक्षियों को भी पढ़ाने का प्रयत्न सफल ही होता है। पाले-पोषे हुए वे भी पोषण करनेवाले पर स्नेह करते हैं। वे भी किये हुए (उपकार) को समझते हैं। वे भी पहचानते

---

१. दुर्दशम्।

तेपि परिचयमनुवर्तन्ते। तेषामपि [1]सहजन्मस्नेहो मातापित्रोरुपरि दृश्यत एव। न पुनरस्य नष्टोभयलोकस्य पापकारिणो दुर्जातस्य, यस्य सर्वमेवाधस्ताद्गतम्। अपि चेदृशाचरितेन तेनाप्यवश्यमेव कस्यांचित्तिर्यग्योनौ पतितव्यं येन तावद् दुरात्मना जातेन केवलं सुखं न स्थापिताः सर्वं एव वयम्। अपरमेवं दुःखार्णवे निपातिताः। सर्वं एव ह्यनाक्षिप्तचेताः प्रवर्तते स्वहिताय परहिताय च। तस्य तु पुनरस्मानेवं दुःखं स्थापयतो न स्वहितं नापि च परहितम्। किमनेनैवमात्मद्रुहा कृतमिति मतिरेतावन्न बोधपदवीमवतरति। सर्वथा दुःखायैवास्माकं तस्य पापकर्मणो ग्रहोपसृष्टस्य जन्म।' इत्युक्त्वा हेमन्तकालोत्पलिनीमिवोद्बाष्पां दृष्टिमुद्वहन्नुद्वेपिताधरश्च बहिरलब्धनिर्गमेण स्फुटन्निवान्तर्मन्युपूरेण निश्वसन्नेवावतस्थे।

रक्षन्तीत्यर्थः। तेषां पशुपक्षिणाम् अपि माता-पित्रोः उपरि सहजन्म सहजातः सहज इति यावत् स्नेहः प्रीतिः दृश्यते एव विलोक्यते एव। **न पुनः**—नष्टौ गतौ उभयलोकौ इहलोकपरलोकौ यस्य तथा भूतस्य, पापं करोतीति तथोक्तस्य पापचारिणः दुर्जातस्य कुजातस्य अस्य वैशम्पायनस्य न पुनः मातापित्रोरुपरि सहजस्नेहः यस्य वैशम्पायनस्य सर्वम् उपर्युक्तम् एव अधस्तात् गतम् अधोगतम् नष्टमित्यर्थः। अपि च तथा च ईदृशम् एवंविधम् आचरितम् आचरणं (भावे क्तः) यस्य तेन अवश्यम् एव निश्चयेन कस्यांचित् तिर्यग्योनौ पशुपक्ष्यादि-योनौ पतितव्यं येन तावत् दुरात्मना दुष्टेन जातेन उत्पन्नेन सर्वे एव वयं न सुखं यथा स्यात्तथा स्थापिताः अस्मभ्यं न किमपि सुखं दत्तमित्यर्थः अपरं प्रत्युत दुःखम् एव अर्णवः समुद्रः तस्मिन् एवं पातिताः प्रक्षिप्ताः (रूपकम्) सर्वे एव न आक्षिप्तम् आकुलं चेतः मनः येषां तथाभूताः जना इति शेषः स्वस्य आत्मनः हितं शुभं तस्मै परेषां हिताय च प्रवर्तते प्रवृत्तो भवति, तु किन्तु तस्य वैशम्पायनस्य अस्मान् एवं दुःखं यथा स्यात्तथा स्थापयतः दुःखं ददतः इत्यर्थः न स्वं हितम् न च परहितं भवतीति शेषः। अनेन आत्मद्रोहिणा आत्मविरोधिना आत्मनः अहितम् आचरतेत्यर्थः किं कृतम् विहितम् इति तस्य मतिः बुद्धिः अस्माकं बोधस्य ज्ञानस्य पदवीं मार्गं न अवतरति आगच्छति। सर्वथा सर्वप्रकारेण पापकर्मणः पापकारिणः ग्रहैः शनैश्चरादिभिः उपसृष्टस्य गृहीतस्य तस्य वैशम्पायनस्य जन्म उत्पत्तिः अस्माकं माता-पित्रादीनां दुःखाय एव जातमिति शेष इति उक्त्वा कथयित्वा हेमन्तकालस्य हेमन्तर्तोः उत्पलिनीं कमलिनीम् इव उद्बाष्पाम् उद्गतवाष्पाम् अश्रुपूर्णां उद्गतधूमाम् अथ च दृष्टिं दृशम् उद्वहन् धारयन् (श्लिष्टोपमा), उद्वेपितः उत्कम्पितः अधरः अधरोष्ठो यस्य तथाभूतश्च बहिः बाह्येन न लब्धः प्राप्तः निर्गमः निर्गमनं येन तथाभूतेन मन्योः दुःखस्य पूरः अतिशयः तेन निश्वसन् निश्वासान् मुञ्चन् एव अवतस्थे स्थितवान्।

हैं। उनमें भी माता–पिता पर स्वाभाविक स्नेह देखा ही जाता है। किन्तु दोनों लोकों (इहलोक और परलोक) को नष्ट कर देनेवाले इस पापी, कुजात में यह भी नहीं। उसने सब कुछ भाड़ में डाल दिया है। अपि च, इस तरह का आचरण करने वाले इसको अवश्य ही किसी पशु–पक्षियों की योनि में पड़ना है, जिस दुरात्मा ने पैदा होकर हम सभी को सुख नहीं पहुँचाया, प्रत्युत इस तरह दुःख-सागरमें डाला है। स्वस्थ मन वाले सभी (लोग) अपने और दूसरों के हितके लिए प्रवृत्त होते हैं। इस आत्म-द्रोहीने इस प्रकार यह क्या किया–यह उसकी बुद्धि हमारी समझमें नहीं आती। पाप-कर्मों, ग्रहों के मारे हुए उसका जन्म हमारे दुःखके लिए ही हुआ है" इस तरह कहकर बाष्प (भाप) छोड़ती हुई हेमन्त-कालकी कमलिनी-सी बाष्प (आँसू) गिराती हुई दृष्टि और फड़फड़ाते ओठ धारण करते हुए शुकनास बाहर न निकलेने के कारण भीतरी दुःख-भारसे फटते हुए-जैसे साँसें ही खींचते रहे।

---

१. सहजस्नेहः।

तदवस्थं च तं तारापीडः प्रत्युवाच । 'एतत्खलु प्रदीपेनाग्नेः प्रकाशनं वासरालोकेन भास्वतः समुद्भासनमवश्यायलेशैराह्लादनममृतांशोर्मेघाम्बुबिन्दुभिरापूरणं पयोधेर्व्यजनानिलैरतिवर्धनं प्रभञ्जनस्य यदस्मद्विधैः परिबोधनमार्यस्य । तथापि प्राज्ञस्यापि बहुश्रुतस्यापि विवेकिनोऽपि धीरस्यापि सत्त्ववतोऽप्यवश्यं दुःखातिपातेन विशुद्धमपि वर्षसलिलेन सर इव मानसं कलुषीक्रियते सर्वस्य । कलुषीकृते च मानसे किमिदमिति सर्वमेव दर्शनं नश्यति । न चित्तमालोचयति न बुद्धिर्बुध्यते । न विवेकोऽपि विविनक्ति । येन ब्रवीमि । अन्यदस्मत्तो लोकवृत्तमार्य एव सुतरां वेत्ति ।

किमस्ति कश्चिदसावियति लोके यस्य निर्विकारं यौवनमतिक्रान्तम् । यौवनावतारे हि शैशवेनैव सह गलति गुरुजनस्नेहः । वयसैव सहारोहत्यभिनवा प्रीतिः । वक्षसैव सह विस्तीर्यते वाञ्छा । बलेनैव सहोपचीयते मदः । दोर्द्वयेनैव सह स्थूलतामापद्यते धीः ।

तदव०—सा अवस्था दशा यस्य तथाभूतं तं वैशम्पायनं तारापीडः प्रत्युवाच प्रतिवचनं ददौ—'यत् यस्मात् वयं विधा येषां तथाभूतैः अस्मत्सदृशैः जनैः आर्यस्य भवतः परिबोधनं प्रति बोधदानम्, एतत् खलु निश्चयेन प्रदीपेन क्षुद्रगृहदीपेन अग्नेः वह्नेः प्रकाशनं प्रकाशदानम्, वासरस्य दिनस्य आलोकेन प्रकाशेन भास्वतः सूर्यस्य समुद्भासनम् उद्दीपनम्, अवश्यायः तुषारः तस्य लेशैः कणैः अमृतांशोः चन्द्रमसः आह्लादनम् आनन्द-प्रदानम् मेघस्य अम्बुनः जलस्य बिन्दुभिः पृषद्भिः पयोधेः सागरस्य आपूरणं भरणम्, व्यजनस्य तालवृन्तस्य अनिलैः पवनैः प्रभञ्जनस्य झंझावातस्य अतिवर्धनम् अतिवृद्धिदानम् । उपरि सर्वत्र निदर्शनालंकारः । तथापि प्राज्ञस्य बुद्धिमतः अपि, बहु विपुलं श्रुतं शास्त्रज्ञानं यस्य अपि, विवेकिनः विवेकशीलस्य अपि, धीरस्य धैर्यवतः अपि, सत्त्वं बलम् अस्यास्तीति तथोक्तस्य अपि अन्यस्य तु वार्तैव केति सर्वत्र अर्थापत्तिः, अवश्यं निश्चयेन दुःखस्य अतिपातेन आपातेन विशुद्धं निर्मलम् अपि सर्वस्य मानसं मनः वर्षस्य वृष्टेः सलिलेन जलेन सरः सरोवर इव कलुषीक्रियते कालुष्यं प्राप्यते । मानसे मनसि च कलुषीकृते कालुष्यं प्रापिते सति 'इदं किम्' इति सर्वम् एव दर्शनं ज्ञानं नश्यति नाशं गच्छति चित्तं मनः न आलोचयति विवेचयति । बुद्धिः मतिः न बुध्यते बोधं प्राप्नोति विवेकः सदसद्-ज्ञानं न विविनक्ति न विवेचयति । येन कारणेन ब्रवीमि वदामि अस्मत्तः अस्मदपेक्षया आर्यः भवान् एव अन्यत् अपरं लोकवृत्तं संसार-वृत्तान्तं सुतरां सम्यक्तरं वेत्ति जानाति ।

किमस्ति—कश्चित् कोऽपि इयति एतावति विशाले इत्यर्थः लोके जगति असौ एतादृशः इत्यर्थः अस्ति किम् यस्य यौवनं युवावस्था निर्विकारं विकाररहितं कामादिविकाररहितमिति यावत् अतिक्रान्तं व्यतीतम् ? यौवनस्य तारुण्यस्य अवतारे आरम्भे हि निश्चयेन शैशवेन शैशवावस्थया सह गुरुजने मातापित्रादिषु स्नेहः प्रीतिः गलति क्षरति, वयसा युवावस्थया सह एव अभिनवा नवीना स्त्रीविषयिणीत्यर्थः प्रीतिः प्रेम आरोहति आरूढा भवति, वक्षःस्थलेन सह वाञ्छा

वैसी हालत वाले वैशम्पायन को तारापीड़ बोले—'यदि हम-सरीखे आपको समझावें, यह सचमुच ऐसा होगा जैसे दीप से आग को प्रकाशित करना, दिनके प्रकाशसे सूर्यको विभासित करना, पाले के कणोंसे चन्द्रमाको आह्लादित करना, मेघके जल-बिन्दुओंसे समुद्रको भरना, और पंखेकी हवासे तूफानको बढ़ाना । तथापि, कोई कितना ही समझदार, बडा शास्त्रज्ञ, विवेकी धीर और बलवान् भी क्यों न हो, दुःख आ पड़ने पर सभी का शुद्ध मन भी अवश्य इस प्रकार मलिन हो जाता है जैसे वर्षा-जलसे सरोवर । मनके मलिन कर दिए जानेपर 'यह क्या है ?' यह सारा ही ज्ञान काफूर हो जाता है । मन विचार नहीं कर पाता । बुद्धि समझ नहीं पाती । विवेक विवेचन करना छोड़ देता है । इसी लिए मैं बोल रहा हूँ । बाकी अन्य संसार की बातें हमारी अपेक्षा आप ही अधिक जानते हैं ।

क्या इतने बड़े संसारमें ऐसा कोई है जिसका यौवन निर्दोष बीता हो ? क्योंकि यौवन चढ़ने पर शैशवके साथ-साथ गुरु-जनों के प्रति प्रेम भी चला जाता है । यौवनके साथ-साथ

मध्येनैव सह कार्श्यमुपयाति श्रुतम्। ऊरुयुगलेनैव सहोपचीयते[1] हृदयमविनयैः। श्मश्रुभिरेव सहोज्जृम्भते मलिनताहेतुर्मोहः। आकारेणैव सहाविर्भवन्ति हृदयाद्विकाराः। तद्यथा धवलमपि सरागं सर्वथा दीर्घीभवदपि न दीर्घं पश्यति चक्षुः। अनुपहतेपि न प्रविशति गुरूपदेशः श्रोत्रे। स्त्रीरागिण्यपि न विद्यान्तरं विन्दति हृदये। स्थैर्यमस्थिर-प्रकृतौ तरलतायाम्। परित्याज्येषु व्यसनेष्वासङ्गः।

विकाराणां च कारणं प्रायः सरसता। सा च सर्वमेव जलप्रायं कुर्वाणा वर्षाति-

---

इच्छा विस्तीर्यते विस्तीर्णा भवति, बलेन शौर्येण एव सह मदः दर्पः उपचीयते वर्धते। दोर्द्वयेन भुजद्वयेन एव सह धीः बुद्धिः स्थूलतां स्थूलत्वम् आपद्यते प्राप्नोति। मध्येन कटिभागेन एव सह श्रुतं शास्त्र-ज्ञानं कार्श्यं कृशताम् उपयाति प्राप्नोति। ऊर्वोः सक्थ्नोः युगलेन द्वयेन एव सह हृदयम् अविनयैः धाष्टर्यैः उपचीयते वर्धते। श्मश्रुभिः कूर्चैः एव सह मलिनतायाः श्यामतायाः अथ च कालुष्यस्य हेतुः निदानं मोहः मूर्खतेति यावत् उज्जृम्भते विकसति। आकारेण आकृत्या एव सह हृदयात् हृदः विकाराः कामक्रोधादयः आविर्भवन्ति प्रकटीभवन्ति। अत्र कूर्चस्य मलिनता (श्यामत्वम्) अन्यत्, हृदयमलिनता (कालुष्यम्) च अन्यत्, एवमेव भुजद्वयादीनां स्थूलत्वादि अन्यत् बुद्ध्यादीनां च स्थूलत्वादि अन्यत् इति द्वयोः भेदे अभेदात्। उपरि सर्वत्र भेदे अभेदातिशयोक्तिमूलका सहोक्तिरलंकारः। **तत् यथा**—धवलं श्वेतमपि सरागं रागः लौहित्यं तेन सहितं सर्वथा सर्वप्रकारेण दीर्घीभवन् दीर्घं भवन् अपि चक्षुः नेत्रं दीर्घं न पश्यति वीक्षते। अत्र यत् श्वेतं तत् कथं लोहितम्, यच्च दीर्घं तत्कथं न दीर्घं पश्यति इति विरोधः तत्परिहारश्च सरागं प्रेम सहितम् दीर्घं न पश्यति दूरं न पश्यति अदूरदर्शि इत्यर्थः। अत्र विरोधाभासालंकारः, अन्तिमे च सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिश्चापि। अनुपहते अप्रतिहते सर्वथा सुस्थे इति यावत् श्रोत्रे कर्णे गुरूणाम् आचार्याणाम् उपदेशः हितवचनं न प्रविशति न प्रवेशं लभते। स्त्रियाः रागः प्रेम अस्यास्तीति तथोक्ते अपि हृदये अन्या विद्या इति विद्यान्तरं न विन्दति प्राप्नोति, युवा इति शेषः अर्थात् कामशास्त्रातिरिक्तम् सर्वशास्त्रजातम् असौ विस्मरति, अस्थिरा चञ्चला प्रकृतिः स्वभावः यस्यां तथाभूतायां तरलतायां चपलतायां स्थैर्यं स्थिरता जायते इति शेषः अस्थिर-प्रकृतौ तरलतायां स्थैर्यम् इति विरोधः, तत्परिहारः स्थैर्यं दृढतेति, युवा हि चंचलतायां दृढीभवतीति भावः। परित्याज्येषु परित्यक्तुं योग्येषु अर्थात् हेयेषु व्यसनेषु दुर्व्यसनेषु आसङ्गः आसक्तिः भवतीति शेषः।

विकारा०—विकाराणाम् मानस-विकृतीनां पदार्थविकृतीनां च कारणं हेतुः प्रायः बाहुल्येन सरसता रसिकत्वम् अथ च क्लिन्नता सर्वम् एव पदार्थजातम् अथ च यूनः कर्मजातम् जलं पानीयं अथ च डलयोरभेदात् जडं मूर्खतापूर्णमित्यर्थः प्रायः बाहुल्येन यस्मिन् तथाभूतं

नया ही प्रेम उभर आता है। वक्षके साथ-साथ इच्छा का भी विस्तार हो जाता है। बल के ही साथ-साथ मद बढ़ जाता है। दो भुजाओं के ही साथ साथ बुद्धि मोटी हो जाती है। कमर के ही साथ-साथ पढ़ा-लिया ज्ञान कृश बन जाता है। जाँघों के ही साथ-साथ हृदय अविनयोंसे बढ़ जाता है। दाढ़ी-मूछोंके ही साथ मलिनता (कालापन, कालुष्य) का कारण मोह जमुहाने लगता है। चेहरेके ही साथ-साथ हृदयसे विकारों का प्रादुर्भाव हो जाता है; जैसे—श्वेत होता हुआ भी सराग (लाल, प्रेमपूर्ण) चक्षु दीर्घ होते भी दीर्घ (लंबा, दूर) नहीं देख पाता। कानके ठीक-ठाक रहते भी उसमें गुरुजनों का उपदेश प्रवेश नहीं करता, स्त्रीविषयक प्रेम-भरे हृदयमें दूसरी विद्या को स्थान नहीं मिलता। अस्थिरता ही जिसका रूप है, ऐसी तरलता में स्थिरता आ जाती है। हेय दुर्व्यसनों में आसक्ति हो जाती हूँ।

और विकारों का कारण प्रायः सरसता (क्लिन्नता; रसिकता) होती है। जिस तरह सरसता (क्लिन्नता) सब कुछ को जलप्रायः (जलवाली) बनाती हुई वर्षा की अतिवृद्धिसे बढ़

---

१. उपचीयतेऽविनयैः।

वृद्धयैवोपजायते। अपि च दिवसो दोषागमाय, दोषागमोऽनालोकाय, अनालोकोऽसद्दर्शनार्थम्, असद्दर्शनमविवेकाय, अविवेकोऽसन्मार्गप्रवृत्तये, असन्मार्गप्रवृत्तं च मोहान्धं चेतो भ्राम्यदवश्यमेव स्खलति। स्खलिते चेतसि तल्लग्ना पतत्येव लज्जा। त्रपावरणशून्ये च हृदि प्रविश्य पदं कुर्वन् केन वा निवारितो दुर्निवारः सर्वाविनयहेतुः

कुर्वाणा विदधता वर्षाणाम् आयुषः हायनानाम् अथ च वर्षस्य वृष्टिः अतिवृष्ट्या अतिवर्धनेन एव उपचीयते वर्धते, अयं भावः यथा सरसता (रसः जलं तद्वत्ता क्लिन्नतेत्यर्थः) पदार्थेषु विकार मुत्पाद्य सर्वमपि जलप्रायं कुर्वती वृष्ट्या वर्धते तथैव सरसता (यौवनकृता रसिकता) अपि विकारं (मनसि कामादि-भावान्) उत्पाद्य यूनः सर्वमपि कार्यजातं जलप्रायं (जाड्यपूर्णं) कुर्वती आयुषः वर्षाणां वृद्धया वर्धते। अत्र श्लेषः, प्रस्तुताप्रस्तुतार्थयोश्च परस्परम् औपम्यभावे उपमाध्वनिः। अपि च किंच दिवसः दिनम् अथ च जीवनस्य उज्ज्वलसमयत्वात् यौवनम् दोषा रात्रिः अथ च कामादिदोषाः तस्याः तेषां च आगमाय आगमनाय, दोषागमः न आलोकः प्रकाशः अथ च ज्ञानं तस्मै, अनालोकः असतः अविद्यमानस्य वस्तुनः दर्शनार्थम्, अन्धकारे हि अविद्यमानमपि दृश्यते अथ च असतः अशुभस्य गर्ह्यस्येति यावत् दर्शनार्थम्, कामान्धो हि अशुभमेव पश्यति न शुभम्, असद्दर्शनम् अविवेकाय विवेकराहित्याय रात्रौ अविद्यमानदर्शनं विवेको न भवति इदमस्ति नास्ति वेति कामविकारेऽपि सदसद्-विवेकोऽपगच्छति, अविवेकः न सन् विद्यमानः यः मार्गः पन्थाः तस्मिन् प्रवृत्तये उन्मुखीभवनाय अर्थात् विवेकाभावे रात्रौ मनुष्यः अविद्यमानमार्गम् आश्रयति, अथ च कामोद्वेगे। असन् अशुभो यः मार्गः जीवनप्रकारः तस्मिन् प्रवृत्तये परिग्रहणाय भवति असन्मार्गप्रवृत्तं मोहेन दिग्भ्रमेण अथ च अज्ञानेन अन्धम् अवलोकनासमर्थम् अथ च हतबुद्धि च चेतः चेतोवान् जन इत्यर्थः भ्राम्यत् अन्धकारावृतं प्रदेशे मार्गभ्रष्टं सन् इतस्ततः रात्रौ पर्यटत् अथ च, त्रिविधभ्रान्तिषु पतत् अवश्यम् निश्चयेन एव स्खलानि पतति अथ च भ्रष्टं भवति। अत्रापि श्लेषद्वारा प्रतिपाद्यमानेन अन्येनाप्रस्तुतार्थेन सह प्रस्तुतार्थस्य साम्यात् पूर्ववत् उपमाध्वनिरेव, उत्तरोत्तरोक्तान् पदार्थान् प्रति पूर्वपूर्वोक्तानां कारणत्वे कारणमालालङ्कारः। चेतसि मनसि स्खलिते पतिते सति तस्मिन् चेतसि लग्ना सम्बद्धा लज्जा पतति एव आधार-पतने आधेयस्यापि पतनं स्वाभाविकमेव। त्रपा लज्जा एव आवरणं पिधानं, कपाटं तेन शून्ये रहिते अनावृतकपाटे इत्यर्थः हृदि हृदये प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा पदं स्थानं कुर्वन् स्वनिवासाय स्थानं गृह्णन्नित्यर्थः दुःखेन निवारयितुं शक्यः दुर्निवारः, सर्वे च ते अविनयाः धाष्ट्र्याणि तेषां हेतुः कारणभूतः कुसुमधन्वा कामः केन जनेन निवारितः निषिद्धः न केनापीति काकुः। हृदि त्रपारूपकपाट अनावृत्ते सति काम-प्रवेशः को निवारयेत् इत्याशयः।

जाया करती है, उसी तरह सरसता (रसिकता) सब कुछ (कार्य) जलप्रायः (जडप्राय, मूर्खतापूर्ण) बनाती हुई (आयुके) वर्षोंमें अतिवृद्धि से बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त, जिस प्रकार दिन दोषा (रात)के आगमन के लिए, दोषागमन अनालोक (प्रकाशाभाव, अन्धकार) के लिए, अनालोक असत् (अविद्यमान पदार्थ) को देखनेके लिए, असद्दर्शन, अविवेक असत् (अविद्यमान) मार्ग की ओर जानेके लिए होता है, एवं असत् मार्गकी ओर गया हुआ तथा मोह (दिग्भ्रम) से अन्धा बना हुआ मन (वाला व्यक्ति) अवश्य ही गिर पड़ता है, उसी प्रकार (जीवनका) दिन (=यौवन) दोषों (कामादि विकारों) के आने के लिये, दोषों का आगमन अनालोक (अज्ञान) के लिए, अनालोक असत् (बुरा) देखने के लिए, असत्-दर्शन अविवेक के लिए, और अविवेक असत् मार्ग (जीवन की हेय पद्धति) में चलने के लिए होता है, और असत् मार्ग में चलते हुए तथा मोह (अज्ञान) से अन्धा बने एवं इधर-उधर भ्रान्तियों में पड़ते हुए मन का अवश्य ही पतन होता है। मन के पतित हो जाने पर उसमें रहने वाली लज्जा का पतन ही होता है। लज्जा का आवरण (कपाट) हटने पर हृदय में प्रविष्ट हो, वहाँ (अपने लिए) स्थान बनाते हुए, रोके न जा सकने वाले, सभी अविनयों के कारणभूत काम को भला किसने

कुसुमधन्वा। विलसति च कुसुममार्गणे केन कार्येण छिद्रसहस्राणि न भवन्ति यैः सत्त्वमेवाधस्ताद् व्रजति। सत्त्वे चाधो गते किमाश्रित्य न गलति शीलम्। क्वावलम्बनं विनयस्य। किं करोत्वनाधारं धैर्यम्। क्व पदमाधत्तां धीः। क्व समाधानमाबध्नात्ववष्टम्भः। केन वावष्टभ्य बलान्निश्चलीकृतं मनः। विप्रतिपद्यमानानि केन नियन्त्रितानीन्द्रियाणि। जगन्निन्द्यानि केन निवारितानि दुश्चरितानि केन वाऽऽलोकभूतेन तमोभिवृद्धिहेतुरुत्सारितो दोषाभिषङ्गो दृष्टेरुपहन्ता। किं वा दृश्यतामसति बहुदर्शित्वे। बहुदर्शित्वं च तावतः कालस्यैवासंभवात् कुतः भवतु प्रथमे वयसि। येनान्वयव्यतिरेकाभ्यां [1]वर्ज्यतां

कुसुममार्गणे कामे विलसति हृदि विलासं कुर्वति सति केन कार्येण छिद्राणां विवराणां सहस्राणि सहस्रशः छिद्राणीत्यर्थः न भवन्ति जायन्ते यैः छिद्रैः सत्त्वं मनोबलं जीवनीशक्तिरिति यावत् एव अधस्तात् नीचैः व्रजति गच्छति, हृदि प्रविष्टस्य कामस्य बाणैः छिद्राणि भवन्ति, छिद्रेभ्यश्च सर्वापि जीवनी-शक्तिः नीचैर्गलति इति भावः। सत्त्वे जीवन-शक्त्यां च अधः नीचैः गते सति किम् आश्रित्य अवलम्ब्य शीलं चरित्रं न गलति क्षरति। विनयस्य नम्रतायाः अवलम्बनम् आश्रयः किम्? अवष्टम्भः दृढनिश्चयः क्व कुत्र समाधानं स्थिरताम् आबध्नातु आश्रयतु। केन जनेन वा बलात् बलपूर्वकम् अवष्टभ्य निरुध्य मनः चित्तं निश्चलीकृतं स्थिरीकृतम्? विप्रतिपद्यमानानि परस्परं संघर्षं कुर्वाणानि, विरुध्यमानानीति यावत् इन्द्रियाणि केन नियन्त्रितानि वशीकृतानि? जगति संसारे निन्द्यानि निन्द्यमानानि दुश्चरितानि दुश्चेष्टितानि केन निवारितानि? तमसः अन्धकारस्य अथ च अज्ञानस्य अभिवृद्धिः उपचयः तस्य हेतुः कारणं, दृष्टेः दृशः अथ च ज्ञानस्य उपहन्ता उपघातकः दोषायाः रात्रेः अथ च दोषाणां कामादिविकाराणाम् अभिषङ्गः सम्बन्धः अथ च आसक्तिः आलोकः प्रकाशः तद्भूतेन तत्सदृशेन ('भूतं प्राण्यतीते समे त्रिषु' इत्यमरः) केन जनेन उत्सारितः दूरीकृतः? अर्थात् यथा आलोकः (प्रकाशः) अन्धकार-वर्धकं दृष्टिरोधकं रात्रिप्रभावम् उत्सारयति तथा कोऽस्ति एवंविधः जनः योऽज्ञानवर्धकं ज्ञानरोधकं च कामादिविकारम् उत्सारयेत्। अत्र श्लेषमूलका यास्कानुसारेण भूतोपमा। बहु पश्यतीति बहुदर्शी तस्य भावः तत्त्वं तस्मिन् असति अविद्यमाने किं दृश्यताम् अवलोक्यताम्? बहुदर्शित्वं च तावतः तावन्मात्रस्य कालस्य समयस्य एव असम्भवात् प्रथमे वयसि यौवने कुतः कस्मात् भवतु जायताम् अर्थात् जीवनस्य बहुवर्षाणाम् अनुभवे एव बहुदर्शित्वमुपजायते, प्रथमे वयसि एव तदभावात् युवके कथं बहुदर्शित्वम्? येन यस्मात् अन्वयः 'तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम्' इत्यात्मकः, व्यतिरेकः 'तदसत्त्वे तदसत्त्वम्' इत्यात्मकः, तर्कः ताभ्यां निश्चित्य निर्णीय मलिनता कालुष्यं वर्ज्यतां त्यज्यताम् अर्थात् हृदय-

रोका? काम के विलास करने पर (उसके) किस कार्य से (बाणों द्वारा) हजारों छिद्र नहीं होते, जिनसे होकर सत्त्व—मनोबल—नीचे गिर जाता है। मनोबल के नीचे गिर जाने पर किसके आश्रय से चरित्र न गिरे? विनय कहाँ टिके? बिना आधार के धैर्य क्या करे? बुद्धि को कहाँ स्थान मिले? दृढ़ निश्चय कहाँ स्थिर होवे? अथवा कौन बलपूर्वक रोककर मनको निश्चल कर पाया? परस्पर संघर्ष करती हुई इन्द्रियाँ किसने वश में की? जगत् में निन्दनीय दुश्चरितों को कौन रोक सका है? जिस तरह प्रकाश तम (अन्धकार) की वृद्धि का कारणभूत, दृष्टि (आँख) का प्रतिरोधक दोषाभिषङ्ग (रात्रि का प्रभाव) दूर कर देता हैं, वैसे ही ऐसा कौन है, जिसने तम (अज्ञान) की वृद्धि का कारणभूत, दृष्टि (ज्ञान) का प्रतिरोधक दोषाभिषङ्ग (कामादि दोषों की आसक्ति) दूर कर दिया हो? बहुदर्शिता के अभाव में क्या देखा जाय? उतना मात्र समय ही न होने के कारण यौवन में बहुदर्शिता कहाँ से आए, जिससे कि अन्वय और व्यतिरेक अर्थात् ऐसा करें, तो ऐसा हो और ऐसा न करें तो ऐसा न हो—इस प्रकार के

१. वर्जयति मलिनताम्।

मलिनता। अपि च परिणामेऽपि पुण्यवतां केषांचिदेव हि केशैः सह धवलिमानमापद्यन्ते चरितानि। तन्मोहविषयमहाहौ[1] मदविकारगन्धमातङ्गे दुर्विलसितैकराज्ये रतिनिद्राविलासवेश्मनि नवरागपल्लवोद्गमलीलान्तविशेषदुश्चरितचक्रवर्तिनि तारुण्यावतारे सर्वस्यैव विषमतरविषयमार्गपतितस्य स्खलितमापतति। किमेवमार्येण लालनीयस्य पालनीयस्य शिशुजनस्योपर्यावेशो गरीयान् गृहीतो यदनुचितमपत्यस्नेहस्याक्रोशगर्भमेवमुक्तम्। स्वप्नायमानानामपि यद् गुरूणां मुखेभ्यो निष्क्रामति शुभमशुभं वा शिशुषु तदवश्यं फलति। गुरवो हि दैवतं बालानाम्। यथैवाशिषो गुरुजनवितीर्णा वरतामाप-

---

मलिनता-सत्त्वे कामक्रोधादिदोषाणां सत्त्वम्, तदसत्त्वे च उक्तदोषाणाम् असत्त्वम् इति विविच्य पदार्थानां हेयोपादेयतानिर्णयः कर्तुं शक्यते। **अपि च**—किं च परिणामे वृद्धावस्थायाम् अपि केषांचित् पुण्यवतां सुकृतीनां धन्यानामिति यावत् एव हि निश्चयेन चरितानि चरित्राणि केशैः कचैः सह धवलिमानं श्वेतत्वम् आपद्यन्ते प्राप्नुवन्ति अर्थात् ईदृशाः पुण्यवन्तः विरला एव येषां वृद्धावस्थायामपि यथा केशाः श्वेताः भवन्ति तथैव चरित्राणि अपि श्वेतानि (समुज्ज्वलानि, निर्दोषाणि) स्युः। तत् तस्मात् मोहः अज्ञानं, विषयाः रूपस्पर्शादयश्च एव महान्तः अहयः सर्पाः यस्मिन् तथाभूते, मदः दर्पः तस्य विकाराः विकृतयः एव गन्धमातङ्गाः गन्धगजाः यस्मिन् तथाभूते, दुर्विलसितं कामस्य दुश्चेष्टितम् एव एकम् अद्वितीयं राज्यं यस्मिन् तथाभूते, रतिः कामः एव निद्रा तस्याः विलासस्य आमोद-प्रमोदस्य वेश्मनि भवने, नवः नूतनः रागः अनुरागः प्रेमेति यावत् एव पल्लवः किसलयः तस्य उद्गमस्य उद्गमनस्य लीलायाः क्रियायाः अन्ते समाप्तौ अर्थात् अभिनवरागपल्लवस्य उद्गमनक्रियायां समाप्तायां, प्रेमाङ्कुरस्य पूर्णतया स्फुटनानन्तरमिति यावत् यानि विशेषाणि विशिष्टानि दुश्चरितानि दुश्चरित्रतायाः कार्याणि तेषां चक्रवर्तिनि सार्वभौमे तारुण्यस्य अवतारे उदये अतिशयेन विषम् इति विषमतरः भीषणतरः विषयाणाम् उपभोग्यवस्तूनां मदिरा-मदिरेक्षणादीनां मार्गः पन्थाः तस्मिन् पतितस्य सर्वस्य एव लोकस्य स्खलितं स्खलनम् आपतति जायते इत्यर्थः। उपरि सर्वत्र रूपकम्। आर्येण भवता लालनीयस्य लालयितुं योग्यस्य लालनार्हस्येति यावत्, पालनीयस्य पोषणीयस्य शिशु-जनस्य बालजनस्य उपरि गरीयान् प्रबलतरः आवेशः क्रोधावेगः किम् एव गृहीतः कृत इत्यर्थः यत् अपत्य-स्नेहस्य वात्सल्यस्य अनुचितम् अयोग्यः आक्रोशः गालिः गर्भे मध्ये यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा एवम् उक्तं कथितम्? स्वप्नायमानानां स्वप्नान् अनुभवताम् अपि गुरूणां माता-पित्रादीनां मुखेभ्यः यत् शुभम् भद्रम् अशुभम् अभद्रं वा निष्क्रामति निर्गच्छति तत् शिशुषु बालकेषु अवश्यं फलति फलीभूतं भवति। गुरवः बालानां शिशूनां दैवतं देवता भवन्ति यतः। यथा गुरुजनैः वितीर्णाः दत्ताः आशिषः

तर्क से निर्णय करके मन की मलिमता त्यागी जाय? इसके अतिरिक्त, वृद्धावस्था में भी किन्हीं भागवानों के चरित्र बालों के साथ-साथ धवल होते हैं। इसलिए मोह और विषय-रूपी महासर्पों से भरे, मद-विकार-रूपी गन्ध-गजों वाले, एकमात्र बुरे कर्मों का राज्य रखे, रति-रूपी निद्रा के विलास-गृह रूप, नये-नये अनुराग-रूपी पल्लव के पूरी तरह फूट निकल आने पर विशेष दुश्चरित्रों के सार्वभौम सम्राट् यौवनोदय में अतिविषम विषय-भोग के मार्ग में पड़े सभी का स्खलन हो जाया करता है, इसलिए लालन-पालन किये जाने योग्य शिशुजन के ऊपर बड़े भारी क्रोधावेशमें आकर आपने पुत्रस्नेह के अनुचित गाली-भरे शब्दों में इस प्रकार क्या कह डाला? स्वप्न देखते हुए भी गुरुजनों के मुख से भला या बुरा जो कुछ निकलता है, वह अवश्य बच्चों में फलीभूत होता है, क्योंकि गुरुजन ही बच्चों के देवता हैं। जिस प्रकार गुरुजनों द्वारा दिए हुए आशीर्वाद वर बन जाते हैं, उसी तरह गालियाँ शाप बन

---

१. मोहविषमहाहौ।

द्यन्ते तथैवाक्रोशाः शापताम् । तद्वैशम्पायनमुद्दिश्य कोपावेशादेवमतिपरुषमभिदधत्यार्ये महती मे चेतसः पीडा समुत्पन्ना । स्वयमारोपितेषु तरुषु तावदुत्पद्यते स्नेहः । किं पुनरङ्गसंभवेष्वपत्येषु । तदुत्सृज्यतामयममर्षवेगो वैशम्पायनस्योपरि । विरूपकं तु तेन न किंचिदप्याचरितम् । सर्वपरित्यागं कृत्वा स्थित इत्येतदपि कारणमविज्ञाय किमेवं दोषपक्षे निक्षिपामः । कदाचिद् गुणीभवत्येवमयमविनयनिष्पन्नो दोष एव । आनीयतां तावदसौ । बुध्यामहे किमर्थमयमेवंविधस्तस्य वयसोऽनुचितोऽपि संवेग उत्पन्नः । ततो यथा युक्तं विधास्यामः ।'

इत्युक्तवति तारापीडे पुनः शुकनासोऽभ्यधात् । 'अत्युदारतया वत्सलत्वाच्चैवमादिशति देवः । अन्यदतः परं भवदपि किमिवास्य विरूपकं भवेद्यद्युवराजमुत्सृज्य क्षणमन्यत्रावस्थानमात्मेच्छया चेष्टितम् ।' इत्युक्तवति शुकनासे कशयेवान्तस्ताडितो

आशीर्वादाः वरताम् आपद्यन्ते वररूपाः भवन्ति, तथैव आक्रोशाः गालयः शापताम् आपद्यन्ते इतिशेषः, शाप-रूपाः भवन्तीत्यर्थः । तत् तस्मात् वैशम्पायनम् उद्दिश्य लक्ष्यीकृत्य कोपस्य क्रोधस्य आवेशात् आवेगात् एवं अतिपरुषम् अतिकठोरं यथा स्यात्तथा आर्ये भवति अभिदधति कथयति सति मे मम चेतसः मनसः महती विपुला पीडा वेदना समुत्पन्ना जाता । स्वयम् आत्मना आरोपितेषु कृतारोपणेषु तरुषु वृक्षेषु तावत् प्रथमं स्नेहः प्रीतिः उत्पद्यते जायते किं पुनः अङ्गात् शरीरात् संभवः जन्म येषां तथाभूतेषु अपत्येषु पुत्र-पुत्रीषु । तत् तस्मात् वैशम्पायनस्य उपरि अयम् एष अमर्षस्य क्रोधस्य वेगः आवेशः उत्सृज्यतां त्यज्यताम् । विरूपं प्रतिकूलं तु न किञ्चित् अपि आचरितं कृतम् । सर्वेषां परित्यागं हानं कृत्वा स्थितः इति एतत् अपि कारणं हेतुम् अविज्ञाय अज्ञात्वा किम् कस्मात् कारणात् दोष-पक्षे दोषकोटौ निक्षिपामः धरामः ? एवम् अविनयात् निष्पन्नः जातः अयम् दोषः एव कदाचित् सम्भवतः गुणीभवति गुणरूपे परिणमते । असौ वैशम्पायनः तावत् आदौ आनीयताम् अत्र गृहे प्राप्यताम् । बुध्यामहे जानीमः किमर्थं किंनिमित्तम् अयम् एव एवंविध एतादृशो वयसः अवस्थाया अनुचितोऽपि अयोग्योऽपि संवेगः सर्वत्याग-प्रयोजकः क्षोभः तस्य उत्पन्नः जातः । ततः तदनन्तरं यथायोग्यं यथोचितं विधास्यामः करिष्यामः ।"

इत्युक्त०—इति तारापीडे उक्तवति कथितवति सति शुकनासः पुनः अभ्यधात् अकथयत् अतिशयेन उदारता औदार्यं तया वत्सलत्वात् अपत्यस्नेहात् च देवः भवान् एवम् आदिशति आज्ञापयति । अतः परम् अस्मात् अधिकम् भवन् जायमानम् अन्यत् तस्य किम् इवेति वाक्यालंकारे विरूपकं विरुद्धं भवेत् यत् युवराजं वैशम्पायनम् उत्सृज्य परित्यज्य क्षणं क्षणमात्रमपि अन्यत्र अन्यस्मिन् स्थाने अवस्थानं स्थितिम् आत्मेच्छया स्वेच्छया अनेन चेष्टितं

जाती है । इसलिए वैशम्पायन को लक्ष्य करके क्रोधावेश में आपने जो इस तरह अति कठोर कहा है, उस से मेरे मन को बड़ी चोट पहुँची है । पहले तो स्वयं लगाए हुए वृक्षों पर स्नेह हो जाता है, फिर (अपने ही) शरीर से उत्पन्न हुए बच्चों की तो बात ही क्या ? इसलिए वशम्पायन के ऊपर वह क्रोधावेश छोड़ दें । उसने प्रतिकूल तो कुछ भी नहीं किया । सब कुछ छोड़कर वह बैठ गया है—इसका भी कारण जाने बिना उसके इस काम को क्या दोष-पक्ष में रखें ? इस तरह अविनय से उत्पन्न यह दोष ही कदाचित् गुण बन जाय । पहले उसे बुला लें । हम जानें तो सही कि अवस्था के विरुद्ध इस तरह का (सब कुछ त्याग देने का) यह क्षोभ उसे क्यों हुआ । तदनन्तर यथायुक्त करेंगे" ।

तारापीड के यह कह चुकने पर, शुकनास फिर बोले—'अत्यधिक उदारता एवं स्नेह के कारण आप ऐसी आज्ञा दे रहे हैं । इससे अधिक विरुद्ध होने वाली अन्य बात उसकी क्या हो सकती है कि युवराज को छोड़कर उसने क्षण भर भी अन्यत्र ठहरने की चेष्टा की' । शुकनास के

दोषसंभावनयानया पितुरुद्बाष्पदृष्टिरुपविष्ट एवोपसृत्य चन्द्रापीडः शनैः शनैः शुकनासमवादीत्। 'आर्य, यद्यपि निरुक्तितो वेद्मि न मदीयेन दोषेण नागतो वैशम्पायन इति तथापि तातेन सम्भावितमेव कस्य वापरस्य सम्भावना नोत्पन्ना। मिथ्यासि तत्तथा यथा गृहीतं लोकेन विशेषतो गुरुणा। प्रसिद्धिरत्रायशसे यशसे वा दोषगुणाश्रया वा फलवती। परत्र फलदायी कुत्रोपयुज्यते परमार्थः। तदस्या दोषसम्भावनायाः प्रायश्चित्तमार्यो दापयतु मे वैशम्पायनानयनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन। नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति। किं कारणम्। अनागते तु वैशम्पायने तातस्यानया संभावनया नापगन्तव्यम्। अगते च मयि वैशम्पायनेन नागन्तव्यम्। यद्यसावन्येनानेतुमेव पार्येत तदा तातस्याप्यनुल्लङ्घनीयवचनैरेभिरवनिपतिसहस्रैरानीत एव स्यात्। तदार्यः कारयतु मे गमनाभ्यनुज्ञा प्रसादम्। न च तुरङ्गमैर्गच्छतो मे दृष्टायां भूमौ स्वल्पोपि गमनपरिक्लेशः। वैशम्पायन-

---

कृतम् इति शुकनासे उक्तवति कथयति सति कशया वेत्रेण अन्तः हृदये ताडितः प्रहृतः इव पितुः तारापीडस्य अनया दोषस्य संभावनया कल्पनया यत् चन्द्रापीडेन वैशम्पायनं प्रति किमपि अनुचितं कथितं वा कृतमिति, उद्गतः बाष्पः यस्याः तथाभूता, दृष्टिः दृग् यस्य तथाभूतः चन्द्रापीडः उपविष्टः निषण्ण एव उपसृत्य उपगम्य शनैःशनैः शुकनासम् अवादीत् अब्रवीत्—'आर्य, आदरणीय, यद्यपि निरुक्तितः भवतः उक्तितः भवत्कथनादिति यावत् वेद्मि जानामि यत् न मदीयेन मम दोषेण अपराधेन वैशम्पायनः नागतः अर्थात् यदसौ गृहं नागतः तत्र नाहं दोषी इत्यस्ति भवतः विचारः, तथापि तातेन पित्रा सम्भावितम् एव मम दोषस्य संभावना कृता एव। कस्य वा अपरस्य अन्यस्य संभावना मद्दोषवियकविचारः न उत्पन्ना जाता अर्थात् अन्योऽपि एवं संभावयेत्। मिथ्या असत्या अपि सम्भावना तथा सत्या स्यात् यथा लोकेन जनैः विशेषतः गुरुणा पित्रा गृहीतम् बुद्धम्। दोषाः गुणाश्च आश्रयः आधारो यस्याः तथाभूता प्रसिद्धिः लोकप्रवादः अत्र अस्मिन् जगति अयशसे अकीर्तये अथवा यशसे कीर्तये फलवती, दोषगुणाधारित-जनरवः अयशोरूपेण यशोरूपेण वा फलति। **परत्र**—परत्र परलोके फलदायी फलदायकः परमार्थः सत्यम् कुत्र उपयुज्यते न कुत्रापीति काकुः, तत् तस्मात् अस्याः दोषसम्भावनायाः प्रायश्चित्तं प्रमार्जनं निष्कृतिस्वरूपमित्यर्थः तातेन पित्रा वैशम्पायनस्य आनयनाय गृहे प्रापणाय अभ्यनुज्ञाम् आज्ञाम् आर्यः भवान् मे मह्यं दापयतु दातुं प्रेरयतु, अन्यथा एतदभावे मे दोषस्य शुद्धिः मार्जनं न भवति। अत्र च कारणम् मयि अगते तदानयनार्थं अप्रयाते वैशम्पायनेन न आगन्तव्यम्। यदि असौ वैशम्पायनः अन्येन मदभिन्नेन केनापि आनेतुं प्रापयितुम् एव पार्येत शक्येत, तदा तातस्य पितुः अपि न लंघनीयम् अतिक्रमणीयं वचनं येषां तथाभूतैः अवनिपतीनां राज्ञां सहस्रैः अपि आनीतः एव स्यात् किन्तु तैः नानीतः। तत् तस्मात् आर्यः भवान् मे मम गमनस्य अभ्यनुज्ञया आज्ञया पितुः प्रसादम् अनुग्रहं मे कारयतु कर्तुं प्रेरयतु। तुरङ्गमैः अश्वैः गच्छतः प्रतिष्ठमानस्य मे दृष्टायां विलोकितायां

यह कहते ही चन्द्रापीड पिता की इस संभावना से हृदय में कोड़ों से मारा हुआ—जैसा बैठे बैठे ही शुकनास के समीप जाकर उन्हें बोला—'आर्य, यद्यपि आपके कथन से मैं जानता हूँ कि वैशम्पायन जो नहीं आया है, वह मेरे दोष से नहीं, तथापि पिता जी को ऐसी संभावना है। अथवा (यह) सम्भावना और किस को नहीं हुई? झूठी होने पर भी वह वैसी ही (सच्ची) है जैसे लोगों ने विशेषतः पिता जी ने समझा है। दुनिया में दोष-गुणों पर आधारित लोकप्रवाद का फल अयश अथवा यश होता है। परलोक में फल देनेवाली सचाई का (इहलोक में) क्या उपयोग? इसलिए इस दोष-संभावना के प्रायश्चित्त-स्वरूप आप पिता जी से वैशम्पायन को लिवा लाने हेतु मुझे आज्ञा दिलवा दें। नहीं तो मेरा दोष नहीं धुलता। कारण यह है कि यदि वैशम्पायन नहीं आता तो मेरी दोषसंभावना नहीं जाएगी और मेरे न जाने पर वैशम्पायन को नहीं आना है। यदि दूसरे किसी से लाया जा सकता, तो पिता जी के वचनों का कभी भी उल्लंघन न करने वाले इन हजारों राजाओं द्वारा वह कभी का लाया जा चुका होता। इसलिए

सादायागतमेव मामवधारयत्वार्यः। अपि च बाह्यखेदादसह्योऽन्तःखेद एव मे तद्वियोगजन्मा। अनुपदमेव स्कन्धावारमादाय गच्छतीत्यमुना हेतुना विना तेनागतोऽहम्। अन्यदा जन्मनः प्रभृति कदा मया गतं स्थितं क्रीडितं हसितं पीतमशितं सुप्तं प्रबुद्धमुच्छ्वसितं वा विना वैशम्पायनेन। यच्च श्रुत्वा तस्मादेव प्रदेशान्न गतोऽस्मि तन्मां तेनैव तुल्योऽभूवमिति। तदप्रतिगमनदोषाद्रक्षतु मामार्यः।'

इत्यभिहितवति चन्द्रापीडेऽन्तःपीडोपरागरक्ते रक्ततामरसानुकारिणि मुखे सपक्षपातां षट्पदावलीमिव दृष्टिं निवेश्यैव 'गमनाय विज्ञापयति युवराजः, किमाज्ञापयति देवः,' इति शनैः शनैः शुकनासो राजानमप्राक्षीत्। तथा पृष्टश्च शुकनासेन किंचिदिव ध्यात्वा तारा-

भूमौ स्वल्पः लघुः अपि गमनस्य परिक्लेशः कष्टं न भविष्यतीति शेषः। आर्यः भवान् वैशम्पायनम् आदाय गृहीत्वा आगतम् अत्र प्राप्तम् एव माम् अवधारयतु निश्चयेन जानातु। अपि च किञ्च, बाह्यं बहिर्भवः शारीरिक इत्यर्थः यः खेदः कष्टं तस्मात् तदपेक्षयेत्यर्थः तस्य वियोगः विरहः तस्मात् जन्म उत्पत्तिः यस्य तथाभूतः अन्तःखेदः मानसिककष्टं मे असह्यः अस्तीति शेषः। अनुपदम् अनुचरणन्यासम् एव स्कन्धावारं सैन्य-समूहम् आदाय गृहीत्वा गच्छति वैशम्पायनः इति अमुना एतेन हेतुना कारणेन तेन वैशम्पायनेन विना अहम् आगतः, अन्यदा अन्यस्मिन् समये जन्मनः प्रभृति प्रारभ्य कदा मया वैशम्पायनेन विना गतम्, यातम्, स्थितम् अवस्थितम्, क्रीडितं खेलितम्, हसितं हास्यं कृतम्, पीतं पानविषयीकृतम्, अशितं भुक्तम्, सुप्तं शयितम्, प्रबुद्धं जागरितम्, उच्छ्वसितम् श्वसितम्? यत् च श्रुत्वा स्कन्धावारात् वैशम्पायनस्यानागमनवृत्तान्तम् आकर्ण्य अहं तस्मात् एव सैन्यशिविरात् न गतः वैशम्पायन-पार्श्वे इति शेषः तत् तस्य कारणमेतत् 'अहं तेन वैशम्पायनेन एव तुल्यः सदृशः मा भूवम् न स्याम्' इति, तत् तस्मात् अप्रतिगमनं वैशम्पायनं प्रति न गमनम् एव दोषः अपराधः तस्मात् आर्यः भवान् मां रक्षतु।

इत्यभि०—इति एवं अभिहितवति कथितवति चन्द्रापीडे अन्तः हृदये या पीडा वेदना एव उपरागः विपत्तिः तेन रक्ते लोहितवर्णे अतएव रक्तं लोहितं तामरसं कमलम् अनुकरोति विडम्बयतीति तथोक्ते मुखे चन्द्रापीडस्य आनने [उपमा] पक्षाणां पतत्राणां यः पातः पतनं तेन सह वर्तमानां सपक्षपातां षट्पदानां भ्रमराणाम् आवलीं पंक्तिम् इव, पक्षपातः आनुकूल्यं प्रीतिरिति यावत् तेन सहिताम् दृष्टिं दृशम् निवेश्य न्यस्य एव [श्लिष्टोपमा] 'युवराजः चन्द्रापीडः गमनाय वैशम्पायनं प्रति गन्तुम् विज्ञापयति निवेदयति, देवः भवान् किम् आज्ञापयति आदिशति' इति शनैः शनैः मन्दं-मन्दं शुकनासः राजानं तारापीडम् अप्राक्षीत् अपृच्छत्। तथा पृष्टः अनुयुक्तश्च

आप (पिता जी से) जाने की आज्ञा की कृपा करवा दें। मुझे घोड़ों से परिचित (उस) भूमि पर जाने में जरा भी जाने का कष्ट नहीं होगा। वैशम्पायन को लेकर आया हुआ ही आप मुझे समझें। इसके अतिरिक्त, बाहरी कष्ट की अपेक्षा उसके वियोग से उत्पन्न भीतरी कष्ट ही मुझे अधिक असह्य है। "सैन्य-समूह लेकर मेरे पीछे-पीछे ही आ रहा है" इस कारण उसके विना मैं चला आया। और समय जन्म से लेकर कब मैं वैशम्पायन के विना गया, ठहरा, खेला, हँसा और मैंने खाया व पीया, अथवा कब मैं सोया जागा अथवा मैंने साँस लिया? और जो मैं (उसका वृत्तान्त) सुनकर उसी स्थान से (उसके पास) नहीं गया, उसका कारण यह है कि (मैंने सोचा कि) मैं भी उस-जैसा न होऊँ। सो आप (उसके पास) न जाने के दोष से मुझे बचाइए।

इस तरह चन्द्रापीड़ के कहने पर, भीतरी पीड़ा के कष्ट से लाल-लाल बने रक्त कमल-जैसे उसके मुख पर पक्षपात-पूर्ण (फड़फड़ाते परों वाली) भ्रमर पंक्ति-जैसी पक्षपात-पूर्ण (अनुकूल) दृष्टि डाल कर ही शुकनास ने धीरे-धीरे राजा को पूछा—'युवराज जाने की आज्ञा-हेतु निवेदन कर रहे हैं। आप की क्या आज्ञा है?' शुकनास द्वारा उस तरह पूछे हुए तारापीड़ ने

पीडः प्रत्यवादीत्। 'आर्यं मया ज्ञातमेतेष्वेव दिवसेषु संपूर्णमण्डलस्येन्दोर्ज्योत्स्नामिव करावलम्बिनीं वत्सस्य वधूं द्रक्ष्यामीति यावदयमपरोऽन्तर्हिताशापथो जलदकाल इव प्रत्यूहकारी वैशम्पायनवृत्तान्तो विलोमप्रकृतिना विधात्रान्तरा पातितः। यथा चायुष्मताभिहितमेवैतत्। न तमन्यः शक्नोत्यानेतुम्। न च तेन विनायमत्र स्थातुम्। तदवश्यमेव तावन्निस्तरितव्यो व्यसनार्णवोऽमुना पोतेन। वैशम्पायनप्रत्यानयनाय चावश्यं देव्यपि विलासवती विसर्जयिष्यत्येवैनमिति निश्चयो मे। तद्यातु। किंत्वतिदूरं वत्सेन गन्तव्यम्। तद्गणकैः सहादरादार्यो दिवसं लग्नं च गमनायास्य निरूपयतु संविधानं च कारयतु' इति। एतदभिधाय शुकनासमुद्बाष्पलोचनश्चिरमिव चन्द्रापीडमालोक्याहूय च विनयावनम्रमंसदेशे शिरसि बाह्वोश्च पाणिना स्पृशन्नादिशत्। 'वत्स, गच्छ त्वमेव

किञ्चित् इव ध्यात्वा विचार्य तारापीडः प्रत्यवादीत् प्रत्युक्तवान्—'आर्य—आर्य मान्य! मया ज्ञातं बुद्धम् यत् एतेषु वर्तमानेषु एव दिवसेषु दिनेषु सम्पूर्णं परिपूर्णं मण्डलं वृत्तं यस्य तथाभूतस्य इन्दोः चन्द्रस्य ज्योत्स्नां चन्द्रिकाम् इव वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य करं हस्तम् अवलम्बते गृह्णातीति तथोक्तां वधूं स्नुषां द्रक्ष्यामि अवलोकयिष्यामि इति, यावत् अत्रान्तरे अयम् एषः अपरः अन्तर्हितः व्यवहितः आशायाः दिशायाः पन्थाः मार्गः येन तथाभूतः जलदकालः वर्षाकालः इव अन्तर्हितः आशायाः वाञ्छायाः पन्थाः येन तथाभूतः प्रत्यूहं विघ्नं करोति तथोक्तः वैशम्पायनस्य वृत्तान्त उदन्तः विलोमा विपरीता प्रकृतिः स्वभावो यस्य तथाभूतेन विधात्रा विधिना अन्तरा मध्ये पातितः आनीत इत्यर्थः। यथा आयुष्मता चिरंजीविना चन्द्रापीडेनेत्यर्थः अभिहितम् उक्तम् एव एतत् यत् अन्यः चन्द्रापीडात् भिन्नः तं वैशम्पायनम् आनेतुम् अत्र प्रापयितुं न शक्नोति पारयति। न च तेन वैशम्पायनेन विना अयं चन्द्रापीडः अत्र स्थातुं शक्नोतीति पूर्वेणान्वयः। तत् तस्मात् अमुना चन्द्रापीडगमनरूपेण पोतेन जलयानेन नौकयेति यावत्, अवश्यम् एव तावत् आदौ व्यसनं दुःखम् एव अर्णवः समुद्रः निस्तरितव्यः लंघनीयः। वैशम्पायनस्य प्रत्यानयनाय तं प्रत्यानेतुं च देवी महिषी विलासवती अपि विसर्जयिष्यति प्रेषयिष्यति एव इति मे निश्चयः निर्णयः। तत्, तस्मात्, यातु गच्छतु, चन्द्रापीड इति शेषः। किन्तु वत्सेन पुत्रेण अतिदूरम्, अत्यन्तविप्रकृष्टप्रदेशं गन्तव्यम्, गमनीयम्, तत्, तस्मात्, कारणात्, गणकैः ज्योतिषिकैः सह आदरात्, ससंमानम्, आर्यः भवान् अस्य चन्द्रापीडस्य गमनाय यात्रायै आर्यः भवान् दिवसं दिनं लग्नं मेषवृषादिकं निरूपयतु विचारयतु, संविधानं यात्रा-सामग्रीं कारयतु कर्तुं प्रेरयतु इति। एतत् शुकनासम् अभिधाय कथयित्वा उद्गतः वाष्पः अश्रु यस्मात् तथाभूतं लोचनं नयनं यस्य सः तारापीडः चिरम् इव चन्द्रापीडम् आलोक्य दृष्ट्वा आहूय आकार्य च विनयेन नम्रं नतं अंशदेशे स्कन्ध-प्रदेशे, शिरसि मस्तके बाह्वोः भुजयोश्च पाणिना करेण

कुछ सोचकर उत्तर दिया—'आर्य, मैंने तो जाना था कि इन्हीं दिनों पूर्ण चन्द्रमण्डल को पकड़े ज्योत्सना की तरह पुत्र का हाथ पकड़े बहू का मुँह देखूँगा। इसी बीच आशा (दिशा) का मार्ग आच्छादित किये वर्षाकाल की तरह आशा (इच्छा) के मार्ग में बाधा डालने वाला, विघ्न-विधायक यह वैशम्पायन वाला वृत्तान्त विपरीत स्वभाव का विधाता मध्य में ले आया। जैसा कि आयुष्मान् (चन्द्रापीड) ने कहा है, दूसरा कोई उसे (वैशम्पायन को) नहीं ला सकता है और नहीं उसके विना यह (चन्द्रापीड) यहाँ रह सकता है, इसलिए पहले इस (चन्द्रापीड-गमनरूपी) नाव से अवश्य ही दुःखसागर पार करना है। वैशम्पायन को लिवा लाने रानी विलासवती अवश्य इसे (चन्द्रपीड़ को) भेज देगी—ऐसा मुझे निश्चय है, अतः वह जावे। किन्तु पुत्र को बहुत दूर जाना है, इसलिए आप ससम्मान ज्योतिर्विदों के साथ विचार-विमर्श करके इसके जाने का दिन और लग्न ठीक कर लें और जाने की तय्यारी करवा ले" शुकनास को यह कहकर डबडबाई आँखों से देर तक चन्द्रापीड़ को देख और बुलाकर विनय से नम्र बने उसके कन्धे, सिर और भुजाओं पर हाथ फेरते हुए आज्ञा दी—'बेटा; तुम ही

प्रविश्याभ्यन्तरं मनोरमासहिताया मातुरावेदयात्मगमनवृत्तान्तम् ।' इत्यादिश्य चन्द्रापीडमात्मना शुकनासमादाय स्वभवनमयासीत् । चन्द्रापीडस्तु तामक्लिष्टवर्णां कादम्बरीवरणस्रजमिव गमनाभ्यनुज्ञां हृदयेनोद्वहन्प्रहृष्टान्तरात्माप्यपहर्षदृष्टिः प्रविश्य कृतनमस्कारो मातुः समीपे समुपविश्यात्मदर्शनद्विगुणीभूतवैशम्पायनविरहशोकविह्वलां मनोरमामाश्वास्याब्रवीत् ।

'अम्ब समाश्वसिहि । वैशम्पायनानयनाय तातेन मे गमनमादिष्टम् । तत्कतिपय-दिवसान्तरितं वैशम्पायनानन[1]दर्शनोत्सुकं मामविकल्पं विसर्जय त्वम् ।' सा त्वेवमभिहिता प्रत्युवाच । 'तात, किमात्मगमनवचसा मां समाश्वासयसि । कः खलु मे त्वयि तस्मिंश्च विशेषः । तदेकधा तमेकं न पश्यामि [2]कठिनहृदयम् । त्वयि पुनर्गते यदपि [3]तस्यादर्शने

स्पृशन् परामृशन् आदिशत् आज्ञापितवान्—'वत्स, पुत्र, गच्छ याहि त्वम् एव अभ्यन्तरं गृहमध्यं प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा मनोरमया सहितायाः मातुः विलासवत्याः आत्मनः स्वस्य गमनस्य वृत्तान्तम् उदन्तम् आवेदय सूचय' इति । इत्या०—इति एवम् चन्द्रापीडम् आदिश्य आज्ञाप्य आत्मना स्वयं शुकनासम् आदाय गृहीत्वा स्वभवनं स्वगृहम् आयासीत् अगमत् । चन्द्रापीडः तु अक्लिष्टाः शोभना वर्णाः पीत-रक्तादयः अथ च अक्षराणि यस्यां तथाभूताम् कादम्बर्या वरणं पत्नीत्वेन स्वीकरणं तदर्थं स्रजम् मालाम् स्वयंवरमालामित्यर्थः इव गमनस्य अभ्यनुज्ञाम् आज्ञाम् हृदयेन वक्षसा अथ च स्वान्तेन उद्वहन् धारयन् (श्लिष्टोपमा) प्रहृष्टः प्रसन्नः अन्तरात्मा मनः यस्य तथाभूतोऽपि सन् अपगतः हर्षः मोहः यस्याः तथाभूना दृष्टिः दृग् यस्य तथाभूतः प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा कृतः विहितः नमस्कारः प्रणामो येन सः मातुः विलासवत्याः समीपे समुपविश्य निषद्य आत्मनः स्वस्य चन्द्रापीडस्येति यावत् दर्शनेन विलोकनेन द्विगुणीभूतः द्वैगुण्यं प्राप्तः वैशम्पाय-नस्य विरहस्य वियोगस्य शोकेन दुःखेन विह्वलां व्याकुलां मनोरमाम् आश्वास्य आश्वासनं दत्त्वा अवादीत् अकथयत् ।

"अम्ब, मातः ! समाश्वसिहि धैर्यं धर । तातेन पित्रा वैशम्पायनस्य आनयनाय आनेतुं मे गमनम् आदिष्टम् आज्ञप्तम् । तत् तस्मात् कतिपये केचित् ये दिवसाः दिनानि तैः अन्तरितं व्यवहितं वैशम्पायनस्य आननस्य मुखस्य दर्शनम् अवलोकनं तस्मिन् उत्सुकम् उत्कण्ठितं माम् चन्द्रापीडम् न विकल्पाः शङ्का संकोचादयः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा त्वम् मां विसर्जय गन्तुम् आदिश'—सा मनोरमा एवम् अभिहिता कथिता प्रत्युवाच प्रतिवचनं ददौ—'तात पुत्र ! आत्मनः स्वस्य गमनस्य वचसा वचनेन मां समाश्वासयसि सांत्वयसि ? त्वयि तस्मिन् वैशम्पायने च कः खलु निश्चयेन—विशेषः भेदः न कोऽपीति काकुः । तत् तस्मात् एकधा एक-वारम् एकम् केवलं तं कठिनं हृदयं यस्य तथाभूतः तं वैशम्पायनं न पश्यामि विलोकये पुनः

भीतर जाकर मनोरमा सहित माता को अपने जाने के वृत्तान्त की सूचना दे दो।" चन्द्रापीड़ को यह आज्ञा देकर स्वयं वे शुकनास को साथ लिये अपने भवन चल दिए। चन्द्रापीड़ तो सुन्दर वर्णों (रंगों) वाली कादम्बरी की स्वयंवर-माला की तरह सुन्दर वर्णों (अक्षरों) वाली जाने की आज्ञा को हृदय (वक्ष, मन) में धारण करता हुआ, भीतर ही भीतर प्रसन्न हुआ भी आँखों में उदासी भरे, प्रविष्ट होकर प्रणाम किये, माता के पास बैठकर अपने (चन्द्रापीड़) को देखने से वैशम्पायन के विरह के दुगने बने शोक से विह्वल हुई मनोरमा को आश्वासन देकर बोला—'माता जी, थोड़े ही दिनों के लिए आप से पृथक् हो रहे, वैशम्पायन का मुख देखने के लिए उत्कण्ठित हुए मुझे बिना किसी हिचकिचाहट के विदा दें'। इस तरह कहने पर उसने उत्तर दिया—'बेटा ! अपने गमन की बात से मुझे क्या आश्वासन देते हो ? तुम में और उसमें सचमुच क्या अन्तर हैं ? अतः एक वार तो केवल उस कठोर-हृदय को देख लूँ, किन्तु तुम्हारे चले जाने

---

१. दत्तये दर्शनोत्सवम् । २. कठिनहृदया । ३. दयितस्या ।

जीवितप्रतिबन्धहेतुभूतं त्वद्दर्शनं तदपि दूरीभवति। तन्न गन्तव्यं वत्सेन। एकेनापि हि युवयोरावां पुत्रवत्यौ। अपि नागतो नामासौ निष्ठुरात्मा।' इत्युक्तवत्यां मनोरमायां विलासवती धीरमुवाच। 'प्रियसखि, तव मम चैवमेतद्यथा त्वयोक्तम्। अयं पुनर्वैशम्पायनेन विना कं पश्यतु। तदास्ताम्। किमेतन्निवारयसि। वारितेनाप्यनेन नैव स्थातव्यम्। मन्ये च पित्राप्ययमेतदेवाकलय्य गमनायानुमोदितः। वरमावाभ्यां कतिपयदिवसाननयोरप्यदर्शनकृतान्क्लेशाननुभूतान्न पुनरस्य वैशम्पायनाननानवलोकनदुःखदीनं दिने दिने वदनमीक्षितुम्। तदुत्तिष्ठ गच्छावो गमनसंविधानाय वत्सस्य चन्द्रापीडस्य।'

इत्यभिदधत्येव मनोरमां हस्ते गृहीत्वोत्थाय चन्द्रापीडेनानुगम्यमाना निजावास-

---

किंतु त्वयि गते याते सति तस्य वैशम्पायनस्य अदर्शने अनवलोकने जीवितस्य प्राणानां यः प्रतिबन्धः गमने विघ्नः तद्—हेतुभूतं कारणभूतं त्वद्-दर्शनं तवावलोकनं, तदपि दूरीभवति अपैति, अयं भावः—वैशम्पायनस्य अदर्शनेन मे प्राणाः गन्तुमिच्छन्ति किन्तु तद्गमने विघ्नभूतं त्वद्दर्शनमेवास्ति, त्वां दृष्ट्वैव तददर्शनेन प्राणान् त्यक्तुमिच्छन्त्यपि अहं ध्रियेत इति यावत्। तत् अतः वत्सेन त्वया न गन्तव्यम् यातव्यम्, युवयोः तव वैशम्पायनस्य च मध्ये एकेन एकतरेणापि आवां अहं मनोरमा च पुत्रवत्यौ पुत्रयुक्ते स्वः। अपीति सम्भावनायां, सम्भवतः इत्यर्थः निष्ठुरः कठोर आत्मा मनः यस्य तथाभूतः असौ वैशम्पायनः नामेति कोमलामंत्रणे न आगतः स्यात्'— इति मनोरमायाम् उक्तवत्यां कथितवत्यां सत्यां विलासवती धीरं धैर्यपूर्वकं यथा स्यात्तथा उवाच जगाद—'प्रियसखि ! तव मम च एतत् एवं यथा त्वया उक्तं कथितम्। पुनः किन्तु अयं चन्द्रापीडः वैशम्पायनेन विना कं पश्यतु विलोकयतु न कमपीति काकुः। तत् तस्मात् आस्ताम् तिष्ठतु एषोऽर्थः। एतम् चन्द्रापीडं किं कस्मात् निवारयसि निरुणत्सि। वारितेन निरुद्धेन अपि अनेन चन्द्रापीडेन न एव स्थातव्यम् स्थेयम्, मन्ये विचारये एतत् एव आकलय्य विचिन्त्य पित्रा तारापीडेन अपि गमनाय प्रयाणाय अनुमोदितः आज्ञातः। तत् तस्मात् यातु गच्छतु। आवाभ्यां मया त्वया च कतिपयान् कतिचित् दिवसान् दिनानि [कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया] अनयोः द्वयोः वैशम्पायन-चन्द्रापीडयोरपि अदर्शनेन अनवलोकनेन कृतान् जनितान् क्लेशान् कष्टानि अनुभूतान् वरम्, (अत्र द्वितीया चिन्त्या, कृताः क्लेशा अनुभूताः' इत्यस्यैव कर्मणि व्याकरणसम्मतत्वात्) न पुनः किन्तु न अस्य चन्द्रापीडस्य वैशम्पायनस्य आननस्य मुखस्य अनवलोकनेन यत् दुःखं कष्टं तेन दीनं विषण्णं दिने-दिने प्रतिदिनं वदनं मुखम् ईक्षितुं द्रष्टुम् वरम् अर्थात् वैशम्पायनविरहकष्टानुभवनं वरम्, न पुनः अत्रस्थितस्य चन्द्रापीडस्य वैशम्पायनवियोगदुःखविषण्णमुखावलोकनम् वरम्। तत् तस्मात् उत्तिष्ठ, वत्सस्य चन्द्रापीडस्य गमनस्य यात्रायाः संविधानाय सामग्री-सज्जीकरणाय गच्छावः इति अभिदधती कथयन्ती एव विलासवती मनोरमां

पर उसके न देखने से प्राणों के जाने में रुकावट का कारण-भूत यह जो तुम्हारा दर्शन है, वह भी चला जाएगा। इसलिए पुत्र, तुम्हें नहीं जाना चाहिए, क्योंकि तुम दोनों में से किसी एक के भी रहने से हम दोनों पुत्रवतियाँ हैं। सम्भव है वह निष्ठुर-हृदय नहीं आवे'—मनोरमा के ऐसा कहने पर विलासवती धैर्य-पूर्वक बोली—'प्रिय सखी ! तुम्हारा और मेरा यही हाल है, जो तुमने कहा है। किन्तु वैशम्पायन के विना यह (चन्द्रापीड़) किसे देखे ? इसलिए छोड़ो इस बात को। इसे तुम क्यों रोक रही हो ? रोकने पर भी यह यहाँ नहीं रहेगा। मैं समझती हूँ कि यही सोचकर पिता ने भी इसी के जाने का अनुमोदन किया है। अतः वह जावे। हम दोनों के लिए कुछ दिनों तक इन दोनों को न देखने से होने वाले क्लेशों का झेलना अच्छा है न कि वैशम्पायन का मुख न देखने के दुःख से उदास बने इस (चन्द्रापीड़) के मुख को प्रति दिन देखते रहना। इसलिए उठो, वत्स चन्द्रापीड़ की यात्रा की तय्यारी करने के लिए चलें'।

यह कहते ही रानी मनोरमा को हाथ से पकड़ कर उठके चन्द्रापीड़ को अपने पीछे लिये

मयासीत् । चन्द्रापीडोऽपि मातुः समीपे गमनालापेनैव क्षणमिव स्थित्वा गृहमगात् । तत्र चापनीतसमायोगो गमनायोत्ताम्यता हृदयेन गणकानाहूय रहस्याज्ञापितवान् । 'यथा विना परिलम्बेन मे गमनं भवति तथा भवद्भिरार्यशुकनासाय पृच्छते ताताय वा दिनमावेदनीयम् ।' इत्येवमादिष्टास्ते व्यज्ञापयन् । 'देव, यथा सर्वं एव ग्रहाः स्थितास्तथास्मन्मतेन देवस्य गमनमेव वर्तमाने न शस्यते । अपरमपि कर्मानुरोधाद्राजेच्छैव कालः तत्रापि न कार्यमेवाहर्निरूपणया । राजा कालस्य कारणम् । यस्यामेव वेलायां चित्तवृत्तिः सैव वेला सर्वकार्येषु ।' इति विज्ञापिते मौहूर्तिकैः पुनस्तानब्रवीत् । 'तातेनैवमादिष्टमिति ब्रवीमि । [1]अन्यदात्ययिकेषु कार्येषु कार्यपराणां प्रतिक्षणोत्पादिषु च दिवसनिरूपणैव कीदृशी । तत्तथा कथयिष्यथ यथा श्व एव गमनं भवेत्' इति । 'देव प्रमाणमि'त्यभिधाय

हस्ते करे गृहीत्वा, उत्थाय उत्थानं कृत्वा चन्द्रापीडेन अनुगम्यमाना अनुस्रियमाणा निजं स्वीयम् आवासं भवनम् अयासीत् अगच्छत् । चन्द्रापीडः अपि मातुः विलासवत्याः समीपे गमनस्य आलापेन गमनसम्बन्धिवार्तालापेन एव क्षणम् इव स्थित्वा निषद्य गृहं निजनिवासस्थानम् अगात् अगच्छत् । तत्र च अपनीतः दूरीकृतः समायोगः अन्यजनसम्बन्धः येन तथाभूतः गमनाय प्रयाणाय उत्तम्यता आकुलीभवता हृदयेन मनसा गणकान् ज्योतिषिणः आहूय आकार्य रहसि एकान्ते आज्ञापितवान् आदिष्टवान्—'यथा येन प्रकारेण परिलम्बेन विलम्बेन विना अन्तरेण मे मम गमनं भवति जायते, तथा तेन प्रकारेण भवद्भिः युष्माभिः पृच्छते प्रश्नकुर्वते आर्यशुकनासाय ताताय पित्रे वा दिनं गमनदिवसः आवेदनीयम् विज्ञापनीयम्' इति एवम् आदिष्टाः दत्ताज्ञाः ते व्यज्ञापयन् न्यवेदयन्—'देव महाराज, यथा सर्व एव ग्रहा सूर्यशन्यादयः स्थिताः सन्ति तथा अस्माकं मतेन विचारेण वर्तमाने अस्मिन् समये देवस्य भवतः गमनं यात्रा एव न शस्यते श्लाघ्यते न प्रशस्तमित्यर्थः । अपरम् अपि कर्मणः किन्तु कार्यस्य अनुरोधात् आग्रहात्, कार्यस्य महत्त्वपूर्णत्वादित्यर्थः राज्ञः इच्छा वाञ्छा एव कालः समयः, तत्र अपि इच्छानुसारेण मुहूर्तें अह्नः दिनस्य निरूपणया विचारेण न कार्यं न प्रयोजनम् शुभाशुभदिनस्य विचार एव न कर्तव्यः इत्यर्थः, राजा नृपः कालस्य समयस्य कारणं हेतुः भवतीति शेषः । यस्याम् एव वेलायां समये चित्तवृत्तिः मनोवृत्तिः सर्वेषु कालेषु सा एव वेला समयः, मौहूर्तिकैः ज्योतिर्विद्भिः विज्ञापिते निवेदिते सति पुनः तान् मौहूर्तिकान् अब्रवीत् अवदत् चन्द्रापीडः इति शेषः, 'तातेन पित्रा एवम् आदिष्टम् आज्ञा दत्ता इति हेतोः ब्रवीमि कथयामि । अन्यदा अन्य-समये आत्ययिकेषु विलम्बासहेषु अतिमहत्त्वपूर्णेषु प्रतिक्षणं क्षण-क्षणे उत्पद्यन्ते इति तथोक्तेष कार्येषु च कार्यम् एव परं प्रधानं येषां तथाभूतानां जनानां दिवसस्य मुहूर्तस्येत्यर्थः निरूपणा विचारणा एव कीदृशी ? शुभाशुभदिनविचारः नैव कर्तव्य इत्यर्थः, तत् तस्मात् तथा तेन प्रकारेण कथयिष्यथ वदिष्यथ यथा श्वः आगामिदिने एव मम गमनं स्यात्'

अपने निवास को चल दी । चन्द्रापीड भी माता के समीप यात्रा-सम्बन्धी वार्तालाप के सिलसिले में ही थोड़ी देर ठहर कर घर चला गया । वहाँ (अन्य लोगों से) सम्पर्क तोड़े, जाने हेतु तड़पते हुए हृदय से ज्योतिषियों को बुलाकर उसने आज्ञा दी—'जिस तरह विना विलम्ब के मेरा जाना हो जाय, उसी तरह आर्य शुकनास अथवा पिता जी के पूछने पर दिन बता देना' । इस तरह आज्ञा पाकर उन्होंने निवेदन किया—'महाराज, जैसी कि इस समय ग्रहों की स्थिति है, तदनुसार हमारे विचार से इस समय आप का जाना ही ठीक नहीं है । किन्तु कार्य के अनुरोध से राजा की इच्छा ही मुहूर्त है । तिस पर भी दिन देखने से क्या प्रयोजन ? राजा काल का कारण होता है । जिस समय मनोवृत्ति बने, वही सब कामों में समय है—इस तरह ज्योतिषियों के कहने पर फिर वह उन्हें बोला—'पिता जी की ऐसी ही आज्ञा है । अतः इस तरह कहना जिससे कल ही मेरा जाना हो जाय' । 'जैसी महाराज की आज्ञा' यह कहकर उनके चले जाने पर शारीरिक कृत्य के लिए उठ खड़ा हुआ । शारीरिक कृत्य किये उसे आकर फिर ज्योतिषियों ने

१. अत्यन्तुकेषु ।

गतेषु च तेषु शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत्। निवर्तितशरीरस्थितिं च मौहूर्तिकास्ते पुनः प्रविश्य शनैर्न्यवेदयन्। 'कृतोऽस्माभिर्देवादेशः। सिद्धश्च तनयविरहविक्लवतयार्यशुकनासस्य। तदतिक्रान्ते श्वस्तनेऽहनि रात्रावितः प्रस्थातव्यं देवेन।' इत्यावेदिते तैः साधु कृतमिति मुदितचेतास्तानभिष्टुत्य दृष्टिविषयवर्तिनीमेव कादम्बरीं वैशम्पायनं च मन्यमानोऽप्रविष्टायामेव पत्रलेखायां परापतामीत्यग्रप्रधावितेनावधारयँश्चेतसा चतुःसमुद्रसारभूतानिन्द्रायुधरयानुगामिनस्तुरंगमानगणेयानविगणिततुरंगगमनखेदानुत्साहिनो राजपुत्रांश्च निरूपयन्ननन्यकर्मा तं दिवसमेकां च यामिनीं कथं कथमप्यस्थात्।

अथानुरक्तकमलिनीसमागमाप्राप्तिसंतापादिव समं दिवसेनास्तमुपगतवति

इति। 'देवः भवान् एव प्रमाणम्' अर्थात् यथा देवस्याज्ञा इति अभिधाय कथयित्वा तेषु ज्योतिर्वित्सु गतेषु यातेषु शरीर-स्थितेः स्नानभोजनादिकस्य करणाय उदतिष्ठत् उत्थितोऽभवत्। निर्वर्तिता अनुष्ठिता शरीर-स्थितिः येन तथाभूतं तं ते मौहूर्तिकाः ज्योतिर्विदः पुनः प्रविश्य प्रविष्टा भूत्वा शनैः मन्दं यथा स्यात्तथा न्यवेदयन् व्यज्ञापयन्—'अस्माभिः देवस्य महाराजस्य भवतः इत्यर्थः आदेशः आज्ञा कृतः अनुष्ठितः। तनयस्य पुत्रस्य वैशम्पायनस्य विरहेण वियोगेन विक्लवतया विह्वलतया आर्यस्य आदरणीयस्य शुकनासस्य आदेशश्च सिद्धः सफलीभूतः। यदि शुकनासः पुत्रवियोगविह्वलः नाभविष्यत् तर्हि स्वयं ग्रहस्थितिं लग्नं च दृष्ट्वा अस्मदुक्तं मुहूर्तम् अशुभमित्यनादृत्य भवद्-गमनम् अरोत्स्यत् इति भावः। तत् तस्मात् श्वः भवं श्वस्तनं तस्मिन् अहनि दिने अतिक्रान्ते व्यतीते आगामिदिनातिक्रमणानन्तरमिति यावत् रात्रौ निशि इतः अस्मात् स्थानात् देवेन भवता प्रस्थातव्यं प्रस्थानं कर्तव्यम्'—इति तैः मौहूर्तिकैः आवेदिते विज्ञापिते 'साधु सम्यक् यथा स्यात्तथा कृतं युष्माभिः इति मुदितं प्रसन्नं चेतः मनः यस्य तथाभूतः चन्द्रापीडः तान् मौहूर्तिकान् अभिष्टुत्य प्रशस्य दृष्टेः दर्शनस्य विषयः गोचरः तस्मिन् वर्तते विद्यते इति तथोक्ताम् एवं कादम्बरीं वैशम्पायनं च मन्यमानः अवगच्छन्, 'पत्रलेखायाम् अप्रविष्टायां मत्स्वागतार्थं अच्छोदसरसि अनागतायाम् एव सत्यां परापताभि अहं तत्र प्राप्तो भवामि' इति अग्रतः प्रधावितेन त्वरितं गतेन चेतसा मनसा अवधारयन् निश्चयं कुर्वन् चतुः०—चत्वारश्च ते समुद्राः सागराः तेषु सारभूतान् श्रेष्ठान्, इन्द्रायुधस्य यः रवः वेगः तस्य अनुगामिनः अनुसारिणः अगणेयान् गणयितुमशक्यान् असंख्यानित्यर्थः तुरङ्गमान् अश्वान्, अविगणितः अगणितः उपेक्षित इति यावत् तुरङ्गैः अश्वैः गमनस्य खेदः क्लमः यैः तथाभूतान् उत्साहितः उत्साहवत् राजपुत्रान् राजन्यान् च निरूपयन् पश्यन्, न अन्यत् कर्म कार्यं यस्य तथाभूतः चन्द्रापीडः तं दिवसं दिनं एकां यामिनीं रात्रिं च कथंकथमपि अतिकृच्छ्रेणेत्यर्थः अस्थात् स्थितवान् [कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया]।

अथानु०—अनुरक्ता (रक्तवर्णा अथ च प्रेमपूर्णा) या कमलिनी पद्मिनी तस्याः

निवेदन किया—'आप की आज्ञा का पालन हमने कर लिया है और पुत्र-विरह के कारण व्याकुल होने से आर्य शुकनास का आदेश भी सिद्ध हो गया है। अतः कल का दिन वीतने पर रात्रि में आप प्रस्थान कर लें' इस तरह ज्योतिषियों के कहने पर—'तुम लोगों ने ठीक किया' यों प्रसन्नचित हुआ, उनकी प्रशंसा करके, कादम्बरी और वैशम्पायन को (अपनी) आँखों के सामने स्थित हुआ समझता हुआ, 'पत्रलेखा के (वापस) आने से पहले ही मैं पहुँच जाता हूँ' इस तरह आगे-आगे दौड़े जा रहे मन से निश्चय करआ हुआ, चारों समुद्रों के सारभूत (श्रेष्ठ), इन्द्रायुध के वेग के पीछे चलने वाले, असंख्य घोड़ों तथा घोड़ों से चलने की थकान की पर्वाह न किये हुए, उत्साही राजपुत्रों को देखता हुआ, अन्य कामों को छोड़े चन्द्रापीड उस दिन और एक रात किसी न किसी तरह रुका रहा।

इसके बाद अनुरक्त (लाल, प्रेमासक्त) कमलिनी से समागम न होने के संताप से मानो

तेजसां पत्यौ, तेजःपतिपतनाच्चितानलमिव संध्यारागमपराशया सह विशति पश्चिमे गगनभागे, संध्यानलस्फुलिङ्गनिकर इव स्फुरति तारागणे, दिवसविरामान्मूर्च्छागमेनेव तमसा निमीलयमानेषु दिङ्मुखेषु, निवासाभिमुखरेषु वियद्वियोगदुःखादिव कृतार्तप्रलापेषु वयःसमूहेषु, जनितप्रकाशं जन्मेव समालोक्य दोषागमं निरालोकं गर्भमिव तमःप्रविष्टे पुनर्जीवलोके, निजालोकाद्विकासितपूर्वदिग्वधूवदने जन्मान्तरागत इवोदयगिरिवर्तिनि नक्षत्रसमागमसुखमनुभवति भगवति भूयो भूयःस्वकान्तिनिर्भराद्निष्कलङ्क इव नक्षत्रनाथे, विस्पष्टायां निशीथिन्याम्, प्रस्थानमङ्गले प्रणामायोपगतं चन्द्रापीडं पीडयान्तर्विलीयमा-

---

समागमः मिलनं तस्य या अप्राप्तिः अलाभः तस्य संतापात् क्लेशात् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दिवसेन समं सह तेजसां पत्यौ सूर्ये अस्तम् उपगतवति प्राप्तवति सति अत्र तेजसां पत्यौ कमलिन्यां च नायक-नायिका व्यवहार-समारोपात् समासोक्तिः सा चोत्प्रेक्षोत्थापिता। तेजःपतेः सूर्यस्य नायकभूतस्य पतनात् अस्तंगमना। अपरा पश्चिमा या आशा दिशा नायिका भूता तया सह पश्चिमे गगनभागे आकाशैकदेशे चितायाः चित्यायाः अनलम् अग्निम् इव सन्ध्यारागं सायंकालीन-लालिमानम् विशति प्रविशति सति अत्रापि पूर्ववदेव अलंकारः, सन्ध्यानलस्य सन्ध्याग्नेः स्फुलिङ्गानाम् अग्निकणानां निकरे समूहे इवेत्युत्प्रक्षायां तारागणे तारासमूहे स्फुरति दीप्यमाने सति दिवसस्य दिनस्य विरामात् समाप्तेः मूर्छायाः मोहस्य आगमेन आगमनेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दिङ्मुखेषु दिशाम् आननेषु अग्रेष्विति यावत् तमसा अन्धकारेण निमीलयमानेषु संकुचत्सु, वियतः आकाशस्य यः वियोगः विरहः तस्य दुःखात् क्लेशात् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कृतः आर्तः करुणः प्रलापः विलापः यैः तथाभूतेषु वयसां पक्षिणां समूहेषु निवासस्य अभिमुखाः सम्मुखाश्च ते मुखराः वाचालाश्च तेषु सत्सु उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षोत्थापित समासोक्तिः। जनितः दिनकृतः प्रकाशः आलोकः जन्म इवेत्युत्प्रेक्षायाम् समालोक्य विलोक्य जीवलोके संसारे दोषायाः रात्र्याः आगम आगमनं यस्य तथाभूतं रात्रि-जनितमित्यर्थः निरालोकं आलोकः प्रकाशः तेन रहितं गर्भम् कुक्षिम् इव (कुक्षि-भ्रूणार्भकाः गर्भाः इत्यमरः) तमः अन्धकारं पुनः प्रविष्टे कृतप्रवेशे सति, जीवलोकस्य कृते प्रकाशः जन्मग्रहणमिव रात्रिकृततमसि प्रवेशः गर्भे गमनमिव प्रतीयते स्मेति भावः, निजः आत्मीयः यः आलोकः प्रकाशः तस्मात् विकासितं पूर्व दिक् पूर्वदिशा एव वधूः स्त्री (रूपकम्) तस्याः वदनं मुखम् आननं येन तथाभूते अन्यत् जन्म इति जन्मान्तरं तस्मात् आगते आयाते इवेति उत्प्रेक्षायाम् उदयगिरौ उदयाचले वर्तते विद्यते इति तथोक्ते भूयः भूयः पुनः पुनः स्वा निजा या कान्तिः दीप्तिः तस्याः निर्भरात् अतिशयात् कारणात् निष्कलङ्के कलङ्क-रहिते इवेत्युत्प्रेक्षायाम् नक्षत्राणां ताराणां नाथे स्वामिनि चन्द्रे इत्यर्थः नक्षत्राणां ताराणां समागमः मिलनं तस्य सुखम् आनन्दम् अनुभवति उपभुञ्जाने सति निशीथिन्यां निशायां विस्पष्टायां स्पष्टीभूतायाम्, प्रस्थानस्य यात्रायाः मङ्गले मङ्गलाचरणे (जाते) सति प्रणामाय नमस्काराय उपगतं समीपे आगतं चन्द्रापीडं पीडया वेदनया अन्तः मध्ये विलीयमाना विलयं

दिन के साथ सूर्य अस्त हो चला, सूर्य के चले जाने के कारण पश्चिम दिशा के साथ पश्चिम गगनभाग चिताग्नि जैसे सन्ध्या-राग में प्रवेश करने लगा, सन्ध्याग्नि के स्फुलिङ्गों-जैसा तारागण चमकने लगा, दिवस की समाप्ति के कारण आई मूर्छा-जैसे अन्धकार से दिशोन्मुख पलकें बन्द करने लगे [संकुचित होने लगे], आकाशके वियोग के दुःखके कारण-जैसे करुण विलाप किये पक्षि-गण घरोंकी ओर जाते हुए मुखरित हो उठे; जन्म-जैसे प्रकट हुए प्रकाश को देखकर संसार रात आ जानेसे उत्पन्न, प्रकाशरहित, गर्भ-जैसे अन्धकार में फिर प्रविष्ट हो गया, अपने प्रकाश से पूर्व दिशा रूपी वधू के मुखको विकसित किये, जन्मान्तरसे आए हुए-जैसे, उदयाचलस्थित, बार-बार अपनी अत्यधिक कान्तिसे निष्कलंक-जैसे भगवान चन्द्रमा तारों के मिलन का आनन्द अनुभव करने लगे, रात स्पष्ट हो गई और प्रस्थानहेतु मंगलकृत्य सम्पन्न हो गया, तो प्रणाम करनेके लिए पास आए चन्द्रापीड को वेदना के मारे भीतर ही भीतर घुली-सी जा-रही,

नेव बाष्पोत्पीडमपारयन्ती [1]पातुमत्यायताभ्यामपि नेत्राभ्यां कृतप्रयत्नाप्यमङ्गलशङ्कया विलासवती मन्युरागावेगगद्गदिकोपरुध्यमानाक्षरमवादीत्।

'तात, युज्यते ह्यङ्कलालितस्य गर्भरूपस्य प्रथमगमने गरीयसी हृदयपीडा यस्मिन्प्रथममेवाङ्कादपैति। मम पुनर्नेदृशी प्रथमगमनेपि ते पीडा समुत्पन्ना यादृशी तव गमनेनाधुना। दीर्यत इव मे हृदयम्। समुत्पाट्यन्त इव मर्माणि। उत्क्वथ्यत इव शरीरम्। उत्प्लवत इव चेतः। विघटन्त इव संधिबन्धनानि। निर्यान्तीव प्राणाः। न किंचित्समादधाति धीः सर्वमेव शून्यं पश्यामि। न पारयाम्यात्मानमिव हृदयं धारयितुम्। धृतोपि बलादागच्छति मे बाष्पोत्पीडः। मुहुर्मुहुः समाहितापि मङ्गलसंपादनाय ते चलति मतिः। न जानाम्येव किमुत्पश्यामीति। किंनिमित्तं चेयमीदृशी मे हृदय-

प्राप्नुवती इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अमङ्गलस्य अशुभस्य शङ्कया भयेन कृतः प्रयत्नो यया तथाभूतापि अतिशयेन आयताभ्यां दीर्घाभ्याम् अपि नेत्राभ्यां बाष्पस्य अश्रूणाम् उत्पीडं प्रवाहं पातुम् पानविषयीकर्तुं निवारयितुमित्यर्थः (अत्र पानकारणसत्त्वेऽपि पानकार्याभावाद् विशेषोक्तिः) विलासवती मन्युः दुःखं च रागः प्रेमा च तयोः आवेगः आवेशः तेन या गद्गदिका गद्गद-ध्वनिः तया उपरुध्यमानानि रोधं प्राप्नुवन्ति अक्षराणि वर्णाः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवादीत् अकथयत्।

तात—तात पुत्र! अङ्के क्रोडे लालितस्य पालितस्य गर्भ-रूपस्य बालकरूपस्य ('कुक्षिभ्रूणार्भका गर्भाः' इत्यमरः) प्रथमे गमने यात्रायामित्यर्थः यस्मिन् प्रथमम् एव बालः अङ्कात् अपैति पृथक् भवति, गरीयसी अतिमहती हृदयस्य पीडा वेदना युज्यते युक्ता अर्थात् अर्भकस्य मातुरङ्कात् वियुज्य प्रथमगमनसमये तस्या हृदयवेदनातिशय उचित एव, पुनः किन्तु ते तव प्रथमगमने विजययात्रायामित्यर्थः मम ईदृशी पीडा न समुत्पन्ना जाता यादृशी अधुना इदानीं द्वितीयवारमित्यर्थः तव गमने जायते इति शेषः। मे हृदयं दीयते स्फुटति इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मर्माणि प्राणावहानि शरीर-स्थानानि समुत्पाट्यन्ते समुन्मूल्यन्ते इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। शरीरं देह उत्क्वथ्यते अन्तस्तप्यते इव चेतः मनः उत्प्लवते उत्प्लुत्य गच्छति इव सन्धि-बन्धनानि शरीरस्य सन्धिस्थानानि विघटन्ते पृथग् भवन्ति इव। प्राणाः असवः निर्यान्ति निर्गच्छन्ति इवेति पूर्ववत् सर्वत्रोत्प्रेक्षा। धीः बुद्धिः न किञ्चित् समादधाति समाधानं करोति। सर्वम् एव शून्यं रिक्तं पश्यामि विलोकये। आत्मानं स्वम् इवेत्युपमायाम् हृदयं धारयितुं न पारयामि शक्नोमि मम बाष्पस्य अश्रूणाम् उत्पीडः प्रवाहः धृतः रुद्धः अपि बलात् हठात् आगच्छति बहिः आयाति। मुहुः मुहुः वार-वारं ते तव मङ्गलस्य शुभस्य संपादनाय अनुष्ठानाय समाहिता संस्थापिता स्थिरीकृतेति यावत् अपि मे मतिः धीः चलति भ्रमति। न जानामि वेद्मि एव किम् अहम् उत्पश्यामि उद्वीक्षे इति। किं निमित्तं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा किंकारणमित्यर्थः च इयं मे ईदृशी एतादृशी

अमंगल की शंकासे प्रयत्न किये हुए भी बड़ी-बड़ी आँखोंसे भी अश्रु-प्रवाह को [भीतर ही भीतर] न पी सकती हुई विलासवती दुःख और स्नेह के कारण बंधी घिग्घी से रुकते-रुकते शब्दोंमे बोली—'बेटा गोदसे पहली बार पृथक् हो गोद-पले बच्चेकी पहले-पहले यात्रा में हृदय को बड़ी भारी पीड़ा पहुंचना उचित ही है, किन्तु तेरी पहली यात्रा में भी मुझे ऐसी पीड़ा नहीं हुई जैसी अब हो रही है। हृदय फटा-सा जा रहा है। मर्म-स्थान उखड़े-जैसे जा रहे हैं। शरीर उबला-सा जा रहा हैं। मन (भागने हेतु) उछला-सा जा रहा हैं। (शरीर के) सन्धि-स्थान टूटते से जा रहे हैं। प्राण निकलते-जैसे जा रहे हैं। बुद्धि कुछ भी समाधान नहीं कर पा रही है। सब कुछ सुनसान देख रही हूँ। अपने आपकी तरह हृदय को नहीं सँभाल पा सक रही हूँ। रोके-रोके भी मेरा अश्रु-प्रवाह बलात् बाहर आ रहा है। तेरे मङ्गलसम्पादन हेतु स्थिर की हुई भी बुद्धि बार-बार भटकी जा रही है। मैं नहीं जानती कि मैं क्या देख रही हूं। मैं यह भी नहीं

१. निवारयितुम्।

पीडेत्येतदपि न वेद्मि। किं बहुभ्यो दिवसेभ्यः कथमप्यागतो मे वत्सो झटित्येव पुनर्गच्छति। किं वैशम्पायनवियोगादुद्विग्नस्य गमनमेकाकिनस्ते समुत्प्रेक्ष्येति। न पुनर्वैशम्पायनवृत्तान्तादात्मन एव दुःखिततयेति। न चैवंविधया पीडया वैशम्पायनानयनाय गच्छतस्ते गमनं निवारयितुं पारयति वाणी। हृदयं पुनर्नेच्छत्येव त्वदीयं गमनम्। तदीदृशीं मे पीडां विज्ञाय यथा पुरा स्थितं न तथा क्वचिदासङ्गमावध्यातिदीर्घकालमायुष्मता स्थातव्यम्। अस्य चार्थस्य कृते साञ्जलिबन्धेन शिरसाभ्यर्थये वत्सम्।' इत्यादिशन्तीं स्वमातरं सुदूरं प्रसारितावनम्रमूर्तिश्चन्द्रापीडो व्यजिज्ञपत्। 'अम्ब तदा दिग्विजयप्रसङ्गात् स्थितम्। अधुना पुनरयमेव कालक्षेपो यावत्तमुद्देशं परापतामि। तत्पुनश्चिरानमनकृता न भावनीया मनागपि हृदये पीडा त्वया।' इत्येवं विज्ञप्ता चन्द्रापीडेन संनिरुध्य बाष्पवेगान्कथं कथमपि संस्तभ्यात्मानं निर्वर्तितगमन-

---

हृदयस्य पीडा वेदना अस्ति इति एतत् अपि न वेद्मि न जाने। बहुभ्यः दिवसेभ्यः बहुदिनानन्तरमित्यर्थः कथम् अपि केनापि प्रकारेण आगतः गृहमायातः मे वत्सः बालकः झटिति एव शीघ्रमेव पुनः गच्छति एतेन मे हृदय पीडा। किं वैशम्पायनस्य वियोगात् विरहात् कारणात् उद्विग्नस्य विह्वलस्य एकाकिनः अद्वितीयस्य ते तव गमनं समुत्प्रेक्ष्य दृष्ट्वा हृदयपीडा? न पुनः वैशम्पायनस्य वृत्तान्तात् उदन्तात् कारणात् आत्मनः स्वस्याः एव दुःखिताया भावः दुःखितता तया हृदयपीडेति अनुवर्तते? न च एवंविधया एतादृश्या पीडया वैशम्पायनस्य आनयनाय गृहमानेतुं गच्छतः ते गमनं यात्रां निवारयितुं निरोद्धुं वाणी वाक् पारयति शक्नोति। पुनः किन्तु हृदयं त्वदीयं तावकीनं गमनं न इच्छति अभिलषति एव। तत् तस्मात् ईदृशीम् एवंविधां मे पीडां विज्ञाय विदित्वा यथा पुरा पूर्वं पूर्वयात्रायामित्यर्थः त्वया स्थितम् दीर्घकालपर्यन्तमिति शेषः, क्वचित् कस्मिन्नपि स्थाने आसङ्गम् आसक्तिम् आबध्य विधाय अतिशयेन दीर्घः कालः समयः (कालात्यन्त संयोगे द्वि०) आयुष्मता चिरजीविना त्वया न स्थातव्यम् स्थितिः कार्या। अस्य च अर्थस्य वस्तुनः कृते अञ्जलि-बन्धेन सह साञ्जलिनेत्यर्थः शिरसा मस्तकेन वत्सं त्वाम् अभ्यर्थये प्रार्थये। इति आदिशन्तीम् आज्ञापयन्तीं स्वां मातरं सुदूरम् अतिदूरतः प्रसारिता अग्रेकृता अवनम्रा अवनता मूर्तिः शरीरं यस्य तथाभूतः चन्द्रापीडः व्यजिज्ञपत् न्यवेदयत्—'अम्ब मातः, तदा तस्मिन् काले दिग्विजयस्य दिशाम् आत्मवशीकरणस्य प्रसङ्गासम्बन्धात् स्थितं विलम्बितमित्यर्थः, पुनः किन्तु अधुना इदानीम् अयम् एव कालक्षेपः समय-विलम्बः यावत् यावता कालेन तम् उद्देशं स्थानं वैशम्पायनाधिष्ठितप्रदेशमिति यावत् परापतामि गच्छामि। तत् तस्मात् पुनः चिरेण विलम्बेन आगमनेन कृता जनिता पीडा त्वया हृदये स्वान्ते मनाक् अपि ईषदपि न भावनीया करणीया इति एवं चन्द्रापीडेन विज्ञप्ता निवेदिता माता विलासवती बाष्पवेगान् अश्रुप्रवाहान् संनिरुध्य

जानती कि ऐसी हृदय-पीड़ा मुझे क्यों हो रही है। क्या इसलिए हो रही है कि मेरा बच्चा किसी तरह बहुत दिनों बाद आया और शीघ्र ही फिर जा रहा है? क्या वैशम्पायनके वियोगसे विह्वल हुए तेरा अकेला जाना देखकर (हृदय पीड़ा हो रही है,) न कि वैशम्पायन-सम्बन्धी वृत्तान्तके कारण अपने ही दुःखी होनेसे? ऐसी पीड़ा के कारण वैशम्पायनको लाने हेतु तेरी यात्रा को मेरी बाणी रोक नहीं सकती, किन्तु मेरा हृदय तेरा जाना चाहता ही नहीं। इसलिए मेरी ऐसी पीड़ा जानकर कहीं (बीचमें) मन लगाकर बहुत देर तक न रुक जाना जैसे कि तूने पहले किया था। इस बात के लिए अंजलि-सहित सिरसे तुझसे प्रार्थना करती हूँ। इस तरह आज्ञा देती हुई अपनी माँ से बहुत दूर से शरीर को पसारे और झुकाए चन्द्रापीड ने निवेदन किया—'माता जी, उस समय दिग्विजय के प्रसंगसे देरी हो गई थी, किन्तु अब यह देरी बस उस (वैशम्पायन) के स्थान तक पहुँचने की ही है, इसलिए देरसे आनेसे हुई हृदय-पीड़ाको आप जरा भी मनमें न लाइए' इस प्रकार चन्द्रापीड के निवेदन करनेपर अश्रु-वेग को रोक, किसी

मङ्गला गलता प्रस्रवेण सिञ्चन्ती शिरसि चोपाघ्राय गाढं सुचिरमालिङ्ग्य गच्छद्भिरिव प्राणैः कृच्छ्रान्मुमोच तं माता।

मुक्तश्च मात्रा पितुः प्रणतये वासभवनमगमत्। तत्र च 'देव गमनाय नमस्करोति युवराजः' इत्यावेदिते द्वाररक्षिणा प्रविश्य क्षोणीतलनिवेशितशिरसा शयनवर्तिनो ननाम दूरस्थित एव पितुः पादौ। अथ तथा प्रणतमालोक्य किंचिदुन्नमितपूर्वकायः शयनगत एवाहूय तं पिता चक्षुषा पिबन्निव प्रेम्णा परिष्वज्य [1]गाढमप्रौढ इव सहसोद्गताविरलबाष्परयपर्याकुलाक्षोऽन्तःक्षोभावेगविक्षिप्ताक्षरमवादीत्। 'वत्स, पित्राऽहं दोषेषु संभावित इत्येषा मनागपि मनसि वत्सेन दुःखासिका न कार्या। विनयाधानात् प्रभृति सम्यक्परी-

रुध्वा कथं कथम् अपि कृच्छ्रादित्यर्थः आत्मानं संस्तभ्य स्थिरीकृत्य निर्वर्तितं विहितं गमनस्य गमनसम्बधि मङ्गलं मङ्गलाचारो यया तथाभूता सती गलता क्षरता प्रस्रवेण स्तन्येन स्तनोद्गतदुग्धेनेति यावत् सिञ्चन्ती सेचनं कुर्वती शिरसि च उपाघ्राय घ्रात्वा गाढं निविडं यथा स्यात्तथा सुचिरं दीर्घकालम् आलिङ्ग्य आश्लिष्य गच्छद्भिः निःसरद्भिः इव प्राणैः कृच्छ्रान् कथं कथमपि तं चन्द्रापीडं मुमोच व्यसर्जयत्।

मात्रा अम्बया विलासवत्या मुक्तः विसर्जितः च पितुः जनकस्य तारापीडस्य प्रणतये प्रणामाय वास-भवनं वास-गृहम् अगमत् अगच्छत् चन्द्रापीडइति शेषः। तत्र भवने च 'देव महाराज युवराजः चन्द्रापीडः गमनाय प्रस्थानाय नमस्करोति प्रणमति' इति द्वाररक्षिणा द्वारपालेन आवेदिते निवेदिते सति प्रविश्य प्रविष्टो भूत्वा चन्द्रापीडः क्षोण्याः पृथिव्याः तले पृष्ठे निवेशितं स्थापितं शिरः मस्तकं तेन शयने शय्यायां वर्तते इति तथोक्तस्य शय्यास्थितस्य पितुः जनकस्य पादौ दूरे स्थितः एव ननाम प्रणतवान्। अथ तथा तेन प्रकारेण प्रणतं नमस्कुर्वन्तं तम् आलोक्य दृष्ट्वा किञ्चित् ईषत् यथा स्यात् तथा उन्नमितः उत्थापितः पूर्वकायः शरीरागभागः येन तथाभूतः, शयने शय्यायां गतः स्थितः एव आहूय आकार्य पिता तारापीडः चक्षुषा दृष्ट्या पिबन् पानविषयीकुर्वन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रेम्णा स्नेहेन गाढं निविडं यथा स्यात् तथा परिष्वज्य आलिङ्ग्य अप्रौढः अप्राप्तप्रौढावस्थः बाल इवेत्यर्थः सहसा अकस्मात् उद्गतः उद्भूतः यः अविरलः निविडः बाष्पः अश्रु तस्य रयेण वेगेन पर्याकुले भरिते अक्षिणी यस्य तथाभूतः सन् अन्तः हृदये यः क्षोभः क्षुब्धता तस्य आवेगेन आवेशेन विक्षिप्तानि त्रुटितानि अक्षराणि वर्णाः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवादीत् अकथयत्—'वत्स, पुत्र! 'पित्रा मयेत्यर्थः त्वं दोषेषु अपराधेषु संभावितः संभावना-विषयीकृतः अर्थात् मयि दोषस्य शङ्का कृता' इति एषा इयं दुःखासिका दुःखे आस्यते स्थीयते अनयेति दुःखस्थितिरिति यावत् मनसि मनाक् ईषत् अपि न कार्या कर्तव्या। विनयस्य गुरूणामभ्यर्थां नम्रतादि-गुणगण-शिक्षायाः आधानं स्थापनं तस्मात् प्रभृति आरभ्य अस्माभिः त्वं सम्यक् साधु यथा

तरह अपने आपको सँभाल, यात्रा-सम्बन्धी मंगल किये, चूते हुए स्तन-दुग्धसे सींचती हुई, सिर सूँघ, देर तक गाढ़ आलिंगन किये माता ने जाते हुए प्राणों से जैसे उसको छोड़ा।

मातासे निबटा वह प्रणाम करने हेतु पिताके वास-गृह में गया और वहाँ 'महाराज! युवराज जानेके लिए प्रणाम करते हैं'—इस तरह द्वारपाल के निवेदन करनेपर प्रविष्ट हो भूतल को छूए सिर से शय्यापर लेटे पिताके चरणों को दूरसे खड़े-खड़े ही प्रणाम किया। इसके बाद उसे झुके देखकर शरीर का अगला हिस्सा कुछ ऊपर किये, बिस्तर पर लेटे-लेटे ही बुलाकर, आँखोंसे पीते हुए-जैसे, स्नेह-पूर्वक कसके आलिंगन करके बालक की तरह सहसा उमड़े, घने अश्रु-वेगसे आकुल हुए पिताने हृदय-गत क्षोभ के आवेग, के कारण टूटे-फूटे अक्षरोंमें कहा—'बेटा! 'पिताने मुझपर दोष सम्भावना की है' यह दुःखकी बात जरा भी मनमें न लाना। शिक्षा-ग्रहणसे लेकर हमने तुम्हारी खूब परीक्षा ली है। परीक्षा लेकर ही गुण-समूहोंसे प्राप्त होने वाला राज्यभार

१. 'अप्रौढ इव' नास्ति।

क्षितोऽस्यस्माभिः। परीक्ष्य च गुणगणैरेवाधिगम्यो राज्यभारस्त्वय्यारोपितो न तनयस्नेहादेव। राज्यं हि नामैतत् पृथ्वीभारेणैवातिदुरुद्वहम्, महीभृत्संबाधतयैवातिसंकटम्, कुटिलनीतिप्रचारेणैवातिदुःसंचरम्, चतुःसमुद्रपर्यन्तभुवनव्याप्त्यैवातिमहत्, महासाधनप्रसाध्यतयैवातिदुः[1]साधनम्, अपर्यवसानकार्यतन्त्रजालेनैवातिगहनम्, उत्तुङ्गवंशप्रतिष्ठिततयैवातिदुरारोहम्, अहितसहस्रोद्धरणेनैवातिदुर्धरम्। अपि च समवृत्तितयैवातिविषममनेकतीर्थकल्पनयैव दुरवतारं कण्टकशोधनेनैव दुर्ग्रहमखिलप्रजापालनव्यवहारेणैव दु[2]ष्पारं [3]सर्वाशाप्राप्त्यैव च दुष्प्रापम्, नामहासत्त्वे नास्थिरप्रकृतौ नादातरि नास्थूल-

स्यात्तथा परीक्षितः परीक्षाविषयीकृतोऽसि। परीक्ष्य परीक्षां कृत्वा च गुणानां गणैः समूहैः एव अधिगम्यः प्राप्यः राज्यभारः राज्यधूः त्वयि आरोपितः स्थापितः न तु तनये पुत्रे स्नेहात् प्रेम्णः कारणात् एव। **राज्यं०**—एतत् राज्यं हि निश्चयेन नामेति कोमलामंत्रणे पृथ्व्याः पृथिव्याः भारेण भरेण एव अतिशयेन दुरुद्वहम् दुःखेन उद्वोढुं शक्यम् कठिनतया धारणीयमिति यावत्, महीभृतः राजानः तैः संबाधतया भरिततया एव अतिशयेन संकटम् आकीर्णम्, कुटिला वक्रा या नीतिः नयः तस्याः प्रचारेण प्रसारेण एव अतिशयेन दुःसंचरम् दुःखेन संचरितुं शक्यम्, चत्वारश्च ते समुद्राः पर्यन्तः सीमा यस्य तथाभूतं यत् भुवनं जगत् तस्मिन् व्याप्त्या व्यापनेन अतिशयेन महत् विशालम्, महत् यत् सैन्यं सेना तेन प्रसाध्यतया वशीकर्तुं शक्यतया एव अतिशयेन दुःसाधनं दुःखेन रक्षितुं शक्यम्, न पर्यवसानम् अन्तः येषां तथाभूतानि अनन्तानीत्यर्थः यानि कार्याणि कृत्यानि यत्र तथाभूतं तन्त्रं स्वराष्ट्रचिन्ताजालमिवेत्युपमायाम् तेन एव अतिगहनम् अतिगम्भीरम् ('निबिडं **तन्त्रं स्वराष्ट्रचिन्ता** स्यात्' इति हैमः), उत्तुङ्गः उच्चः यः वंशः कुलम् एव वंशः वेणुः तस्मिन् प्रतिष्ठितया स्थिततया एव अतिशयेन दुरारोहं दुःखेन आरोढुं शक्यं अथ च दुष्प्रापम् [श्लिष्ट रूपकम्] अहितानां शत्रूणां दुष्टानां वा तस्य उद्धरणेन उन्मूलनेन एव अतिशयेन दुर्धरं धारयितुमशक्यम्। **अपि च** समा समाना वृत्तिः व्यवहारो यस्मिन् तस्य भावः तत्ता तया एव अतिशयेन विषमं कठिनम् सर्वेषु समानव्यवहारस्य कर्तुमशक्यत्वात्, अनेकानि यानि तीर्थानि उपायाः (तीर्थं शास्त्राध्वर क्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु इति हलायुधः) तेषां कल्पनया विधानेन प्रयोगेणत्यर्थः दुःखेन अवतरितुं शक्यम्, कण्टकानां शत्रूणां शोधनेन प्रध्वंसनेन एव दुःखेन ग्रहीतुं शक्यम्, अखिलाः समस्ताः याः प्रजाः तासां पालनं रक्षणम् एव व्यवहारः व्यवसायः तेन एव दुष्पारम् दुः दुःखं कठिनमिति यावत् पारं परवर्ति तरं यस्य तथा भूतम्, सर्वाः निखिलाश्च ताः आशाः दिशः तासां प्राप्त्या लाभेन एव च दुष्प्रापम् दुःखेन प्राप्तुं शक्यम्।

टिप्पणी—अनेकतीर्थ०, सर्वाशा०—यहाँ कविने तीर्थ और आशा शब्दोंमें श्लेष रखकर विरोधाभास को अभिव्यक्ति दी है। तीर्थ नदी के घाट को भी कहते हैं। उतरनेके अनेक

तुम्हारे ऊपर सौंपा है, न कि पुत्र-प्रेम के कारण ही, क्योंकि यह राज्य जो पृथ्वीके भार से ही अति दुर्वह है, राजाओंको जमघट लगा रहने से ही खूब खचाखच भरा रहता है, जहाँ कुटिल नीति का प्रयोग होते रहने से ही चलना-फिरना बड़ा कठिन बना रहता है, चारों समुद्रों पर्यन्त व्याप्त होनेसे ही अतिविशाल हैं, बड़ी भारी सेना द्वारा अधीन किये जाने के कारण ही बड़ी कठिनाई से वशमें रखा जा सकता है, राष्ट्रचिन्तन सम्बन्धी अनन्त कार्यों के जाल से ही बड़ा गहन है, जहाँ ऊँचे वंश (कुल) रूपी वंश (बाँस) पर प्रतिष्ठित होने के कारण ही चढ़ना कठिन है, और जो हजारों विरोधियों को उखाड़ फेंक दिये जानेके कारण ही धारण करनेमें कठिन बना रहता है; इसके अतिरिक्त जो (सबके साथ) समान व्यवहार करनेके कारण ही बड़ा विषम है जहाँ तीर्थों अनेक (सामादि उपायों) के प्रयोग से ही उतरना कठिन हैं, जो कण्टकों—शत्रुओं—को उखाड़ फेंक देने से ही कठिनता से हाथ आता है, सारी प्रजा की रक्षाके

१. दुःसाध्यम्। २. दुःपालम्। ३. 'सर्वाशा…नाशुचौ' इति नास्ति।

लक्ष्ये नाशुचौ नाविक्रान्ते नामहोत्साहे नाप्रियवादिनि नासत्यसंधे नाप्राज्ञे नाविवेकिनि नाकृतज्ञे नानुदारव्यवहृतौ नासंविभागशीले नान्यायवर्तिनि नाधर्मरुचौ नाशास्त्रव्यवहारिणि नाशरण्ये नाब्रह्मण्ये नाकृपालौ नामित्रवत्सले नावश्यात्मनि नाजितेन्द्रिये नासेवके पदमेवादधाति। यः खलु समग्रैर्गुणैराकृष्य बलात् प्रतिबन्धमस्य चञ्चलप्रकृतेः कर्तुं समर्थस्तत्रास्ते। गुरवोऽप्यपगतस्खलितभीतयस्तत्रैव समारोपयन्त्येदालोचितपरा-

---

घाटों के होते हुए भी दुरवतार कैसे हो सकता है, इसी तरह आशा इच्छा को भी बोलते हैं। सभी आशायें जब प्राप्त हो जाती हैं तो दुष्प्राप कैसे? तीर्थ और आशा का दूसरा अर्थ करके समाधान हो जाता है। विरोधाभास के साथ कारण के होते भी कार्यके न होनेपर विशेषोक्ति भी है।

नामहो०—न अमहासत्त्वे सत्त्वं बलम् महत् च तत् सत्त्वं महासत्त्वम् न महासत्त्वं यस्मिन् तथाभूते जने, राज्यं पदमेवादधातीति वाक्यम्, न अस्थिरा चञ्चला प्रकृतिः स्वभावो यस्य अदातरि अदानिने, कृपणे इति यावत्, न अस्थूलम् अविशालं लघु इति यावत् लक्ष्यं ध्येयं यस्य तस्मिन्, न अशुचौ अपवित्रे शरीरमनोमालिन्यसहिते इत्यर्थः न अविक्रान्ते अशूरे पराक्रम-रहिते इत्यर्थः, न अमहोत्साहे महोत्साह-रहिते, न अप्रियवादिनि कठोरभाषिणीत्यर्थः न न सत्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य तस्मिन् अदृढप्रतिज्ञे न अप्राज्ञे अबुद्धिमति मूर्खे इत्यर्थः, न अविवेकिनि विवेकशून्ये, न अकृतज्ञे कृतज्ञतारहिते निर्गुणे इति यावत्, न न उदारा औदार्यपूर्णा व्यवहृतिः व्यवहारो यस्य तस्मिन् कुत्सितव्यवहारवतीत्यर्थः, न न संविभागः सम्यक् विभजनं द्रव्यादिकस्येति शेषः शीलं स्वभावो यस्य तस्मिन्, न अन्यायः अनीतिः तस्मिन् वर्त्तितुं शीलमस्येति तथोक्ते अन्याय-कारिणीत्यर्थः, न अधर्मे रुचिः यस्य तस्मिन् पापाचारिणीत्यर्थः, न शास्त्रेण राजनीति-शास्त्रेण व्यवहर्तुं शीलमस्येति तथोक्ते शरणे साधुः शरण्यः न शरण्यः इत्यशरण्यः तस्मिन् शरणागतस्य न रक्षके इत्यर्थः, न ब्राह्मणानां त्राता इति अब्रह्मण्यः तस्मिन्, अकृपालौ अदयावति, न मित्राणां वत्सले स्नेहिनि, न जितानि वशीकृतानि इन्द्रियाणि यैः तस्मिन् इन्द्रियलोलुपे इत्यर्थः न सेवकः लोकानां सेवाकर्ता इत्यसेवकः तस्मिन् पदम् स्थानम् एव आदधाति करोति अर्थादुपर्युक्तेषु जनेषु राज्यं न तिष्ठति। **यः खलु**—खलु इति निश्चये समग्रैः समस्तैः (उपर्युक्तैः) गुणैः आकृष्टं कृत्वा बलात् हठात् चञ्चला प्रकृतिः स्वभावो यस्य तथाभूतस्य अस्य राज्यस्य राजलक्ष्म्याः इति यावत् प्रतिबन्धं रोधं कर्तुं विधातुं समर्थः तत्र तस्मिन् जने आस्ते तिष्ठति। आलोचितं विचारितं परं च अवरं च पदार्थजातस्येति शेषः यैः तथाभूताः अपगता दूरीभूता स्खलितात् भ्रंशात् भीतिः भयं येषां तथाभूताः गुरवः मातापित्रादि-श्रेष्ठपुरुषाः अपि एतत् राज्यं तत्र तस्मिन् पुरुषे एव समा-

---

कार्यसे ही जिसका पार पाना मुश्किल है होता है, जा सभी दिशाओं तक व्याप्त हुए रहनेके कारण हा दुष्प्राप्य है और जो न दुर्बल को न चंचल प्रकृति वाले को, न कृपण को, न तुच्छ लक्ष्य वाले को, न अपवित्र को, न कायर को, न उत्साह-हीन को, न कटुभाषी को, न झूठी प्रतिज्ञा वाले को, न मूर्ख को न अविवेकी को, न कृतघ्न को, न संकीर्ण व्यवहार रखने वाले को, न यथोचित (द्रव्यादि) बाँटने वाले को, न अन्याय पर चलने वाले को, न अधर्म में रुचि रखने वाले को, न शास्त्र-विरुद्ध व्यवहार करने वाले को, न शरणागत की रक्षा न करने वाले को, न ब्राह्मणों का हित न करने वाले को, न दयारहित को, न मित्रों से प्रेम न करने वाले को, न असंयतात्मा को, न अजितेन्द्रिय को और न ही (प्रजा की) सेवा न करने वाले को पास फटने देता है और जो वस्तुतः सभी गुणों द्वारा आकृष्ट करके बल-पूर्वक चञ्चल-स्वभाव इस राज्य (लक्ष्मी) को रोके रख सकता है, उसी पर यह टिकता है। आगे-पीछे का विचार रखे, दोष-भय (संभावना) से परे गुरुजन भी उसी को यह (राज्यभार) सौंपते हैं। इसलिए

वराः। तदनेनैव बोद्धव्यमिदं वत्सेन नास्ति मयि दोष इति। अपि च संप्रति कस्मिन् भारमवक्षिप्याणुमपि दोषमाचरसि। त्वयैव सकललोकानुरञ्जने यतितव्यम्। गतः खलु कालोऽस्माकम्। अस्माभिरस्खलितैश्चिरं पदे स्थितम्। न पीडिताः प्रजा लोभेन। नोद्वेजिता गुरवो मानेन। न विमुखिताः सन्तो मदेन। नोत्त्रासिताः प्राणिनः क्रोधेन। न हासित आत्मा हर्षेण। न हतः परलोकः कामेन। राजधर्मोऽनुरुद्धो न [1]स्वरुचिः। वृद्धाः समासेविता न व्यसनानि। सतां चरितान्यनुवर्तितानि नेन्द्रियाणि। [2]धनुरुन्नमितं न मनः। वृत्तं रक्षितं न शरीरम्। वाच्याद्भीतं न मरणात्। उपभुक्तानि सुरलोकदुर्लभानि सर्वविषयोपभोगसुखानि। यौवनेच्छया पर्याप्तमकार्यपरिहारात्। कार्यानुष्ठानाच्चोपार्जितः

रोपयन्ति प्रतिष्ठापयन्ति। तत् तस्मात् अनेन एव हेतुना इति शेषः वत्सेन त्वया इदं बोद्धव्यं ज्ञातव्यं 'मयि दोषः नास्ति किम्' इति। दोष-सद्भावे न राज्यप्रदानसंभव इति भावः।

अपि च—सम्प्रति इदानीं कस्मिन् भारं राज्यधुरम् अवक्षिप्य संस्थाप्य अणुम् लघुम् अपि दोषम् आचरसि करोषि। त्वया एव सकलाश्च ते लोकाः प्रजाः तेषाम् अनुरञ्जने आराधने यतितव्यम् प्रयत्नः करणीयः, अस्माकं कालःप्रजारञ्जनसमयः खलु निश्चयेन गतः वीतः अस्माभिः अस्खलितैः स्खलनरहितैः निर्दोषैरित्यर्थः सद्भिः चिरं पदे राज्ये स्थितम्। लोभेन लिप्सया प्रजाःलोकाः न पीडिताः पीडां न प्रापिताः। मानेन अभिमानेन गुरवः पित्रादि-श्रेष्ठजनाः न उद्वेजिताः उद्वेगं न प्रापिताः। मदेन दर्पेण साधवः सज्जनाः न विमुखिताः न विमुखीकृताः। क्रोधेन कोपेन प्राणिनः जीवाः न उत्त्रासिताः त्रासं न प्रापिताः। हर्षेण मोदेन आत्मा स्वः न हासितः हास्यं न प्रापितः। कामेन मदनेन परलोकः आगामिजन्म न हतः न विनाशितः। राज्ञः धर्मः राजधर्मः राजकर्तव्यमिति यावत् अनुरुद्धः अनुसृतः, न स्वा रुचिः इच्छा अनुरुद्धा स्वेच्छाचारो न कृत इति भावः वृद्धाः हिताहितोपदेष्टारः वृद्धजनाः समासेविताः पर्युपासिताः, न व्यसनानि मदिरापानद्यूतादीनि। सताम् साधूनां चरितानि आचरणानि अनुवर्तितानि अनुसृतानि न इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि। धनुः चापः उन्नमितम् उत्थापितं शत्रुविनाशायेति शेषः न मनः उन्नमितं दर्पेण भरितम् [अत्र 'धनुरवनामितम्' इति पाठः साधीयान्]। वृत्तं चरित्रं रक्षितं त्रातं न शरीरम् शरीरापेक्षया चरित्राय महत्त्वं दत्तमित्यर्थः, वाच्यात् जनापवादात् भीतं त्रस्तं न मरणात् मृत्योः। उपरि सर्वत्र परिसंख्यालंकारः। सुराणां देवानां लोके स्वर्गे इत्यर्थः दुर्लभानि दुष्प्रापाणि सर्वे च ते विषयाः भोग-साधनानि रूपरसादयः तेषां भोगस्य अनुभवस्य सुखानि आनन्दाः उपभुक्तानि आस्वादितानि। अकार्याणां कर्तुमयोग्यानां कृत्यानां परिहारात् परिवर्जनात् यौवनस्य तारुण्यस्य इच्छया अभिलाषेण पर्याप्तम् पूर्णीभूतमित्यर्थः। कार्याणां कर्तव्यानाम् अनुष्ठानेन विधानेन परः

बेटे ! तुम्हें जानना है कि मुझ में कोई दोष तो नहीं ? इसके अतिरिक्त, अब किस पर (राज्य) भार डालकर थोड़ी सी भी गलती करते हो ? सारी प्रजा को प्रसन्न करने के लिए तुम्हें ही प्रयत्न करना है। हमारा समय तो सचमुच गया। दोषों से परे रहकर हम चिरकाल तक राज्यपद पर बने रहे। लोभ में आकर प्रजा का उत्पीड़न नहीं किया। न अभिमान से गुरुजनों को उद्विग्न किया। न दर्प से सज्जन लोगों को अपने से विमुख होने दिया। न क्रोध से प्राणियों को भयभीत किया। न हर्ष से फूलकर अपने को उपहासास्पद बनाया। न काम से परलोक बिगाड़ा। राजधर्म का अनुसरण किया, स्वेच्छा का नहीं। वृद्ध जनों की सेवा की, व्यसनों की नहीं। सज्जन लोगों के चरित्रों के पीछे-पीछे चले, इन्द्रियों के पीछे-पीछे नहीं। धनुष चढ़ाया, मन नहीं। सदाचार की रक्षा की, शरीर की नहीं। लोकापवाद से डरे, मृत्यु से नहीं। स्वर्ग में दुर्लभ, सभी विषयों के उपभोग के आनन्द लूटे। बुरे कामों को छोड़कर यौवन

---

१. स्वरुच्या। २, धनुरवनामितम्।

परोपि लोकः। इति चेतसि मे। त्वज्जन्मना च कृतार्थ एवास्मि। तदयमेव मे मनोरथः, दारपरिग्रहात् प्रतिष्ठिते त्वयि सकलमेव मे राज्यभारमारोप्य जन्मनिर्वाहलघुना हृदयेन पूर्वराजर्षिगतं पन्थानमनुयास्यामीति। अस्य च मेऽतर्कित एवायमग्रतः प्रतिरोधको वैशम्पायनवृत्तान्तः स्थितः। मन्ये च न संपत्तव्यमेवानेन। अन्यथा क्व वैशम्पायनः। क्व चैवंविधमस्य स्वप्नेप्यसंभावनीयं समाचेष्टितम्। तद्गतेनापि तथा कर्तव्यं वत्सेन यथा न चिरकालमेष मे मनोरथोन्तर्हृदय एव विपरिवर्तते।' इत्यभिधाय किंचिदुत्तानितेन मुखेनैव संपीडितं हृदयमिव ताम्बूलमर्पयित्वा व्यसर्जयत्।

चन्द्रापीडस्तु तया पितुः संभावनया सुदूरमुन्नमितोप्यवनम्रतरमूर्तिरुपसृत्य पुनः प्रणामेनोन्नमितात्मा निर्ययौ। निर्गत्य च शुकनासभवनमयासीत्। तत्र च तनय-

---

अन्यः लोकः अपि उपार्जितः आत्मसात्कृत इत्यर्थः। इति एतत् मे चेतसि मनसि वर्तते इति शेषः, इतीति किम्, तव जन्मना च अहं कृतार्थः कृतकृत्यः एव अस्मि। तत् तस्मात् अयम् एष एव मे मम मनोरथः अभिलाषः यत् दाराणां पत्न्याः परिग्रहात् स्वीकारात् प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठां प्राप्ते सति त्वयि सकलं सर्वम् एव राज्यभारं राज्यधुरम् आरोप्य न्यस्य जन्मनः जीवनस्येत्यर्थः यः निर्वाहः पालनं तेन लघुना भार-रहितेन हृदयेन मनसा अर्थात् महतो राज्यभारस्य त्वदुपरि स्थापनात् केवलं स्वजीवननिर्वाहमात्रभारेण मम हृदयं लघूभविष्यतीत्यर्थः, पूर्वे च ते राजर्षयः ऋषितुल्याः राजानः तैः गतं यातं पन्थानं मार्गम् अनुयास्यामि अनुगमिष्यामि वानप्रस्थो भविष्यामीत्यर्थं इति। अस्य एतस्य मे मनोरथस्य अतर्कितः अचिन्तितः एव अयम् अग्रतः पुरतः वैशम्पायनस्य वृत्तान्तः उदन्तः प्रतिरोधकः प्रतिबन्धकः जातः इति शेषः। मन्ये अवगच्छामि अनेन मनोरथेन न सम्पत्तव्यं न पूर्णेन भवनीयम् एव। अन्यथा वैपरीत्ये क्व वैशम्पायनः तादृशविनयादिगुणसम्पन्नः इत्यर्थः, क्व च अस्य वैशम्पायनस्य एवंविधम् एतादृशं स्वप्ने स्वप्नावस्थायाम् अपि असंभावनीयं संभावयितुमशक्यं समाचेष्टितं कार्यम्, अत्र विरुद्धयोः संघटनात् विषमालंकारः। तत् अतः गतेन प्रस्थितेन अपि वत्सेन त्वयेत्यर्थः तथा तेन प्रकारेण कर्तव्यं यथा एष मे मनोरथः कामना चिरकालम् चिरम् एव अन्तः हृदये हृदयमध्ये एव न विपरिवर्तते विलीनो भवतीत्यर्थः' इति अभिधाय व्याहृत्य किञ्चित् यथा स्यात्तथा उत्तानितेन उच्चैः कृतेन मुखेन एव संपीडितं संपिण्डितं हृदयम् इवेत्युत्प्रेक्षायां ताम्बूलं नागवल्लीदलम् अर्पयित्वा दत्त्वा चन्द्रापीडं व्यसर्जयत् विसर्जितवान् प्रेषितवानित्यर्थः।

चन्द्रापीडः—पितुः जनकस्य पितृकर्तृकयेत्यर्थः सम्भावनया संमानेन, पुरा ताम्बूलप्रदानं संमानाङ्गं भवति स्मेति, ध्येयम्, सुदूरम् अत्यन्तम् उन्नमितः उच्चैः कृतः प्रतिष्ठां प्रापितः इति यावत् अपि अतिशयेन नम्रा विनता मूर्तिः शरीरं यस्य तथाभूतः उपसृत्य उपगम्य पुनः द्वितीयवारं प्रणामेन नमनेन उन्नमितः उत्थापितः आत्मा येन तथाभूतः सन् पुरा पितृकृतदोषसंभावनया

की इच्छा पूरी की। कर्तव्यानुष्ठान से परलोक भी कमा लिया। एक बात मेरे मन में रही हुई है। तुम्हारे जन्म से मैं कृतार्थ तो हो ही गया हूँ। इसलिए यही एक मेरी कामना है कि विवाह करने से प्रतिष्ठित हुए तुम्हारे ऊपर सारा ही राज्यभार रखकर जीवन-निर्वाह (मात्र के भार) से हल्के हुए मन से मैं उस मार्ग पर चल पड़ूँ, जिसपर प्राचीन राजर्षि चले। और इस (कामना) के आगे पहले कभी न सोचा हुआ वैशम्पायन वाला यह वृत्तान्त रोड़ा बनकर खड़ा हो गया है। मैं समझता हूँ कि इस (कामना) को पूरा होना ही नहीं, नहीं तो कहाँ वैशम्पायन और कहाँ उसका यह कार्य, जिसकी स्वप्न में भी संभावना नहीं थी। इसलिए बेटा, जाते हुए तुम ऐसा करना कि जिससे चिरकाल के लिए मेरी यह कामना हृदय में ही विलीन न हो जाय'—यह कहकर कुछ मुख ऊपर किये ही तारापीड़ ने मोड़ा हुआ हृदय-जैसा पान का बीड़ा चन्द्रापीड़ को देकर विदा किया। पिता द्वारा किये गए उस संमान द्वारा ऊपर उठाया गया भी शरीरतः और विनम्र हुआ चन्द्रापीड़ (पिता के) समीप जाकर फिर प्रणाम द्वारा अपनी आत्मा को

चिन्तापरीतमुन्मुक्तमिवेन्द्रियैः शून्यशरीरं शुकनासमविरताश्रुपातोपहतमुखीं च मनोरमां प्रणम्य तादृशाभ्यामेव ताभ्यां संभाव्याशिषा समारोपयद्भ्यामिव स्वदुःखभारमनुगतो निवर्तनाय तयोर्निवर्तिताननो मुहुरा द्वारनिर्गतेर्गत्वाग्रतो ढौकितमपि कृतापसर्पण[1]मप्रकृतहेषारवमनुत्कर्णकोशमसुखस्वनममनस्कमनाविष्कृतगमनोत्साहं दीनमिन्द्रायुधमालोक्यापि पुनर्निवारणाशङ्कया वैशम्पायनावलोकनत्वरया कादम्बरीसमागमौत्सुक्येन चाकृतपरिलम्बो मनागप्यारुह्य रयेणैव निरगान्नगर्याः।

चन्द्रापीडः आत्मानम् अवनतं मन्यते स्म, सम्प्रति तु पितृकृतसंमानेन आत्मानम् उत्थितमवागच्छदिति भावः, निर्ययौ बहिर्निर्गतवान्। निर्गत्य निःसृत्य च शुकनासस्य भवनं गृहम् अयासीत् अगच्छत् तत्र च तनयस्य पुत्रस्य वैशम्पायनस्य चिन्ता आर्तिः तया परीतं परिगतं व्याप्तमिति यावत्, इन्द्रियैः करणैः परिमुक्तं परित्यक्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अतएव शून्यं इन्द्रियपरित्यक्तत्वकारणात् रिक्तं शरीरं यस्य तथाभूतम्, शुकनासम् मन्त्रिणम्, अविरतः अविच्छिन्नः यः अश्रूणां बाष्पस्य पातः प्रवाह इत्यर्थः तेन उपहतं मलिनीकृतं मुखम् आननं यस्याः तथाभूतां च मनोरमां वैशम्पायनमातरं प्रणम्य नत्वा तादृशाभ्यां तथाविधाभ्यां दुःखाकुलिताभ्यामित्यर्थः एव ताभ्यां शुकनास-मनोरमाभ्याम् आशिषा आशीर्वादेन संभाव्य संमान्य स्वस्य दुःखस्य भारं भरं चन्द्रापीडे समारोपयद्भ्यां स्थापयद्भ्याम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् निवर्तनाय पुनर्गमनाय अनुगतः [अत्र 'अनुमतः' इति भवितव्यमासीत्] अनुज्ञप्तः, तयोः शुकनास-मनोरमयोः तौ प्रतीत्यर्थः मुहुः पुनःपुनः आ द्वार-निर्गतेः द्वारनिर्गमन-पर्यन्तं निवर्तितं परावर्तितं मुखम् आननं येन तथाभूतः गत्वा चन्द्रापीडः अग्रतः पुरतः ढौकितम् उपस्थापितं समीपे आनीतमिति यावत् अपि एतत् अन्यानि च 'इन्द्रायुधम्' इत्यस्य विशेषणानि, कृतम् अपसरणं पश्चात् गमनं येन तथाभूतम्, न प्रकृतः कृतः (प्रमोदे) हेषारवः हेषा-ध्वनिः येन तम्, न उत्कर्णः उत्थापितकर्णः कोशः (कर्ण-) विवरं येन तम्, अनुत्थापितकर्णमित्यर्थः गमनोत्साहे अश्वाः कर्णौ ऊर्ध्वीकुर्वन्तीति तेषां स्वभावः, असुखः न सुखकारकः स्वनः शब्दो यस्य तम्, न मनः गमनविषये विचारः यस्य तम् गन्तुमनिच्छन्तमित्यर्थः, न आविष्कृतः प्रकटितः गमनस्य उत्साह औत्सुक्यमित्यर्थः, येन तम्, दीनं विषण्णम् इन्द्रायुधम् आलोक्य दृष्ट्वा अपि पुनः निवारणस्य पित्रादिकृतनिषेधस्य आशङ्कया पिता पुनः गमन-प्रतिषेधं मा कार्षीत् इत्याशङ्कयेत्यर्थः, वैशम्पायनस्य अवलोकनं दर्शनं तस्य त्वरया रभसेन, कादम्बर्याः समागमः मिलनं तस्मिन् औत्सुक्येन उत्कण्ठया च मनाक् ईषत् अपि न कृतः परिलम्बः विलम्बः येन तथाभूतः आरुह्य (इन्द्रायुधम्) रयेण वेगेन एव नगर्याः उज्जयिन्याः निरगात् निरगच्छत्।

ऊपर उठाये बाहर निकल आया। और बाहर निकलकर वह शुकनास के घर गया। वहाँ पुत्र की चिन्ता से घिरे, इन्द्रियों द्वारा त्याग दिये गए—जैसे खाली खाली शरीर रखे शुकनास को तथा लगातार अश्रुपात से मलिन मुख बनाए मनोरमा को प्रणाम करके, अपना दुःख-भार उस (चन्द्रापीड) के ऊपर डालते हुए-जैसे वैसे अवस्था वाले उन दोनों का आशीष रूप से दिया समान तथा जाने की अनुमति प्राप्त किये, द्वार-पर्यन्त जाने तक उन दोनों की ओर बार-बार मुख फेरे चन्द्रापीड़ चलकर आगे लाए हुए भी पीछे हटे, (हर्ष की) हिनहिनाहट न किये, कान ऊपर न उठाये, बुरी-सी आवाज निकाले, अनमने, जाने हेतु उत्साह न दिखाये, और उदास बने इन्द्रायुध को देखकर भी 'मेरा जाना कहीं फिर रोक न दिया जाय'—इस शंका से, वैशम्पायन को देखने की हड़बड़ी से तथा कादम्बरी से मिलने की उत्कण्ठा मे जरा भी देरी न करते हुए सवार हो वेग से नगरी से बाहर निकल गया।

---

१. अकृतहर्षहेषारवं; अकृतहेषारवम्।

निर्गत्य च सिप्रातटे तत्प्रस्थानमङ्गलावस्थानायोपकल्पितं कायमानमप्रविश्य बहिरेव गतो युवराज इति जनितकलकलेनातर्किततत्कालगमनसंभ्रान्तेन परिजनेन राजपुत्रालोकेन चेतस्ततो धावतानुगम्यमानो गव्यूतित्रितयमिव गत्वा सुलभपयोयवसे प्रदेशे निवासमकल्पयत्। उत्ताम्यता हृदयेनाप्रभातायामेव यामिन्यामुत्थाय पुनरवहत्। वहंश्च तस्मादेव वासरादारभ्यैवमचेतित एव परापत्य कृतापक्रान्तेस्त्रपया पृष्ठतोनुगम्य बलाद् दत्तकण्ठग्रहः क्व परं पलाय्यत इति वैशम्पायनस्य वैलक्ष्यमपनयामि; एवं तत्समागमसुखमनुभूय निष्कारणप्रसन्नामनघामतर्कितोपनतमदवलोकनोपजातहर्षविशेषां पुरस्ताद्गमनसिद्धये पुनर्महाश्वेतां पश्यामि' एवं महाश्वेताश्रमसमीपे पुनः स्थापिताशेषतुरग-

---

निर्गत्य—निर्गत्य निष्क्रम्य च सिप्रायाः एतन्नाम्न्याः नद्याः तटे तीरे तस्य चन्द्रापीडस्य प्रस्थानाय प्रयाणाय यत् मङ्गलं तदर्थम् यत् अवस्थानं स्थितिः तस्मै उपकल्पितं रचितं कायमानं पटवासम् अप्रविश्य प्रवेशं न कृत्वा अर्थात् गृहे मंगले जातेऽपि प्रस्थानसमये सिप्रायाः पूजनरूपं मंगलमपि कर्तव्यमासीत् कृत्वा, 'युवराजः चन्द्रापीडः बहिः एव गतः' इति जनितः कृतः कलकलः कोलाहलः येन तथाभूतेन, अतर्कितम् अचिन्तितं अकस्मादित्यर्थः तत्कालं यत् गमनं प्रस्थानं तेन संभ्रान्तेन चकितेन परिजनेन भृत्यवर्गेण इतस्ततः धावता प्रद्रवता राजपुत्र-लोकेन राजन्यसमूहेन अनुगम्यमानः अनुस्रियमाणः गव्यूतीनां क्रोशयुगानां त्रितयं त्रयम् षट्-क्रोशान् इत्यर्थः इव गत्वा चलित्वा सुलभं सुप्रापं पयः जलं यवसं तृणं च [अश्वादीनां कृते] यस्मिन् तथाभूते प्रदेशे स्थाने निवासं वसतिम् अकल्पयत् अकरोत्। उत्ताम्यता व्याकुलीभवता हृदयेन यामिन्यां राज्याम् अप्रभातायाम् अविभातायाम् शेषायामिति यावत् अपि उत्थाय उत्थानं कृत्वा पुनः अवहत् अचलत्। **वहंश्च**—वहन् चलन् च तस्मात् एव वासरात् दिवसात् आरभ्य प्रभृति एवमित्येतानि च अन्यानि च चिन्तयन् 'दिवा रात्रौ चावहत्' इति दूरान्वितमस्ति वाक्यम्, एवम् अचेतितः अज्ञातः एव परापत्य गत्वा त्रपया लज्जया कृता अपक्रान्तिः अपक्रमणं येन तथाभूतस्य पृष्ठतः पश्चात् अनुगम्य अनुसृत्य बलात् हठात् दत्तः कृत इत्यर्थः कण्ठग्रहः आश्लेषः यस्मै तथाभूतोऽहम्—'परं दूरं क्व कुत्र पलाय्यते पलायनं क्रियते' इति वैशम्पायनस्य वैलक्ष्यं विस्मयमिश्रितलज्जाम् अपनयामि दूरीकरोमि दूरीकरिष्यामि अत्र अग्रे च भविष्यदर्थे लट् ['वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा'], एवं सामीप्ये तस्य वैशम्पायनस्य समागमः संगमः मिलनमिति यावत् तस्य सुखम् आनन्दम् अनुभूय आस्वाद्य, निष्कारणं निर्हेतुकं यथा स्यात्तथा प्रसन्नाम् मुदिताम्, अनघां पापरहितां पवित्रामिति यावत्, अतर्कितम् अचिन्तितं यथा स्यात्तथा उपनतं प्राप्तं यत् मम आलोकनं दर्शनं तेन उपजातः उत्पन्नः हर्षस्य मोदस्य विशेषः अतिशयः यस्याः तथाभूताम् महाश्वेतां पुरस्तात् अग्रे हेमकूटपर्यन्तमित्यर्थः यत् गमनं चलनं तस्य सिद्धये निष्पत्तये पुनः

और निकलकर सिप्रा नदी के तीर पर उसके प्रस्थानकालीन मंगल के लिए ठहरने हेतु बनाए तम्बू में प्रविष्ट न होकर, 'युवराज बाहर ही बाहर चल दिए' इस तरह कोलाहल मचाए, अकस्मात् ही तत्काल चल पड़ने से हड़बड़ाए नौकर-चाकरों तथा इधर-उधर दौड़ते हुए राजपुत्रों को अपने पीछे लिये चन्द्रापीड़ नौ मील करीब चलकर ऐसे स्थान में पड़ाव डाल बैठा जहाँ जल और घास सुलभ थे। अकुलाते हुए मन से वह रात के शेष रहते-रहते ही उठकर फिर चल दिया। चलते-चलते उसी दिन से लेकर (उसके मन में विचार उठने लगे कि)—"अज्ञात-रूप ही चलकर, लाज के मारे खिसकते हुए वैशम्पायन के पीछे लगकर जबरन उसे बाहों में लिये—'दूर कहाँ भागे जा रहे हो ?' कहके उसे हैरान कर दूँगा" इस तरह उसके मिलने का आनन्द लेकर, फिर बिना कारण ही प्रसन्न रहने वाली, निष्पाप, अचानक ही मुझे देख आनन्द में फूली न समाती, आगे जाने का काम सिद्ध कर देने वाली महाश्वेता को देखूँगा; इस तरह फिर महाश्वेता के आश्रम के निकट सारी अश्व-सेना को रखे मैं उसके साथ ही हेमकूट जाऊँगा; इस

सैन्यस्तया सहैव हेमकूटं गच्छामि; एवं तत्र मत्प्रत्यभिज्ञानसंभ्रमप्रधावितेनेतस्ततः कादम्बरीपरिजनेन प्रणम्यमानः प्रविश्य मदागमननिवेदनोत्फुल्लनयनेन सखीजनेनापह्रियमाणपूर्णपात्राम्, क्वासौ केन कथितं कियद्दूरे वर्तते इति तत्प्रश्नोन्मुखीम्, तत्क्षणोत्पन्नया तापोपशान्त्या त्रपया च युगपदुरसि निहितं पद्मिनीपत्रमपनीयोत्तरीयांशुकाञ्चलं कुचावरणतामुपनयन्तीम्, आभरणतां नीतानि मृणालान्यपास्य भूषणेभ्योधिकां स्वशरीरशोभामेव सर्वाभरणस्थानेषु धारयन्तीम्, तापोपशमार्पितहारमात्राभरणाम्,

---

पश्यामि द्रक्ष्यामि' एवम् महाश्वेतायाः आश्रमस्य समीपे निकटे पुनः स्थापितं न्यस्तम् अशेषं निखिलं तुरग-सैन्यं अश्वसेना येन तथाभूतः अहं तया महाश्वेतया सह एव हेमकूटं गच्छामि गमिष्यामि। **एवं**—तत्र हेमकूटे मम यत् प्रत्यभिज्ञानं प्रतिसन्धानं येन यः संभ्रमः संवेगः ['समौ संवेग-संभ्रमौ' इत्यमरः] तेन इतस्ततः यत्र तत्र प्रधावितेन त्वरया गतेन कादम्बर्याः परिजनेन भृत्यवर्गेण प्रणम्यमानः नमस्क्रियमाणः अहं प्रविश्य मम आगमनस्य निवेदनेन सूचनेन उत्फुल्ले विकसिते नयने यस्य तथाभूतेन सखीजनेन सखीभिः अपह्रियमाणं बलात् आकृष्यमाणं पूर्णपात्रं यस्याः तथाभूताम् (कादम्बरीम्)।

टिप्पणी-पूर्णपात्र—इस शब्द का अर्थ है भरा हुआ पात्र। प्राचीन कालमें यह प्रथा थी कि विवाहादि मंगल-कार्यों, उत्सवों तथा किसी खुशी के अवसर पर भाई-बन्धुओं, रिश्ते की स्त्रियों अथवा नौकर-चाकरों को मिष्टान्न, वस्त्र-भूषण आदि से भरकर टोकरी या सन्दूक दिया जाता था। वे जबरन छीन कर भी ले लेते थे। यह एक प्रकार का उपहार या पारितोषिक होता था। हारावली में इसका लक्षण यह किया हुआ है:—'वर्धापकं यदानन्दादलंकारादिकं पुनः। आकृष्य गृह्यते पूर्णपात्रं पूर्णानकं च तत्'। बाण ने भी पूर्वार्ध में कितने ही स्थानों—जैसे "कदा मे तनयजन्ममहोत्सवानन्दनिर्भरो हरिष्यति पूर्णपात्रं परिजनः" में इस पूर्णपात्र का उल्लेख कर रखा है। प्रकृतमें सखियाँ कादम्बरी से उसके प्रियतम के आने की खुशी में पूर्णपात्र ले रही हैं। यह प्रथा आजकल भी प्रचलित है। बहनें भाइयों के विवाह आदिमें लड़कर-झगड़कर कपड़े-लत्ते, गहने आदि ले लेती ही है।

'क कुत्र असौ चन्द्रापीडः? केन कथितम् उक्तम्? कियद्—दूरे विप्रकर्षे वर्तते?' इति तस्य सखीजनस्य प्रश्नेषु उन्मुखीम् ऊर्ध्वाननाम्, **तत्क्षण०**—स क्षणः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथेति तत्क्षणम् उत्पन्नया संजातया तापस्य कामकृतसंतापस्य उपशान्त्या उपशमनेन त्रपया लज्जया च युगपत् एकदैव उरसि वक्षसि निहितं पद्मिन्याः कमलिन्याः पत्रं दलम् अपनीय दूरीकृत्य उत्तरीयं च तत् अंशुकं न्यस्ते वस्त्रं तस्य अञ्चलं प्रान्तभागं कुचयोः स्तनयोः आवरणस्य आच्छादनस्य भावः ताम् उपनयन्तीम् प्रापयन्तीम् उत्तरीयस्याञ्चलेन आच्छादयन्तीमित्यर्थः, आभरणतां भूषणतां नीतानि प्रापितानि हस्तयोः कण्ठे च भूषणीकृतानीत्यर्थः मृणालानि कमलनालानि अपास्य दूरीकृत्य भूषणेभ्यः अधिकां भूषणातिशायिनीं स्वशरीस्य आत्मदेहस्य शोभां सुषमां सर्वाणि च तानि आभरणानां भूषणानां स्थानानि हस्तपादादीनि तेषु धारयन्तीं वहन्तीम् तापस्य काम-ज्वरस्य उपशमाय

तरह वहाँ मुझे पहचान कर हड़बड़ी में इधर-उधर दौड़े कादम्बरी के नौकर-चाकरों द्वारा प्रणाम किया जाता हुआ मैं भीतर जाकर कादम्बरी को देखता हुआ, दर्शनीय को देख लेने से अपनी आँखों को धन्य-धन्य बना दूँगा—उस कादम्बरी को जिससे मेरी आने की सूचना पर प्रफुल्लित नयनों वाली सखियाँ पूर्णपात्र खसोटने लग पड़ेंगी, 'कहाँ हैं वह? किसने कहा? कितनी दूर हैं? इस तरह उनके प्रश्नों की ओर मुँह किये उसी क्षण हुए ताप-शमन और लज्जा के कारण एकदम छाती पर रखे कमलिनी-पत्र को हटाकर रेशमी चादर के आँचल को कुचों का आवरण बनाने लगेगी, आभरण-रूप में धारण किये मृणालों को हटाकर भूषणों की अपेक्षा और भी अधिक अपने शरीर की सुषमा को ही आभरणों के सभी स्थानों पर धारण कर लेगी ताप-शमन हेतु

अत्युल्बणहरिचन्दनचर्चान्तरितलावण्यशोभान्यङ्गानि करपरामर्शप्रयत्नेन दर्शनीयतरतां नयन्तीम्, अङ्गलग्नानि शयनीकृतकमलकुमुदकुवलयदलकिञ्जल्कशकलानि पुलकोद्गमेनैवापास्यन्तीम्, कपोलसङ्गिनीं च मणिदर्पणे विलोक्यायथास्थितां करेण कबरीमंसदेशे विनिवेशयन्तीम्, आनन्दजन्मना नेत्रपुटावर्जितेन बाष्पसलिलेनैव मकरध्वजानलसंतापाय जलाञ्जलिमिव प्रयच्छन्तीम्, उत्सृष्टशेषेणाश्यानमलयजरसेनैवाङ्गलग्नेन भस्मनेव मदनहुतभुजो निवृत्तिमावेदयन्तीम्, अभ्युत्थानप्रसङ्गेनैव कुसुमशय्यां दूरीकुर्वतीं कादम्बरीमालोकयन्दर्शनीयावलोकनफलेन चक्षुषी कृतार्थतां नयामि; एवं मदलेखां साञ्जलिप्रणामेन कण्ठग्रहेण संभाव्य चरणपतितां पत्रलेखामुत्थाप्य केयूरकं पुनः पुनः

निवारणाय अर्पितं स्थापितमित्यर्थः हारः मौक्तिकस्रक् एव हारमात्रम् आभरणं भूषणं यस्याः तथाभूताम्। **अत्युल्बण०**—अतिशयेन उल्बणाम् उत्कटा गाढेत्यर्थः या हरिचन्दनेन गोशीर्षचन्दनेन चर्चा लेपः तया अन्तरिता व्यवहिता लावण्यस्य सौन्दर्यस्य शोभा छटा येषां तथाभूतानि अङ्गानि अवयवान् करेण हस्तेन यः परामर्शः तस्य प्रयत्नेन प्रयासेन अतिशयेन द्रष्टुं योग्यानि इति दर्शनीयतराणि तेषां भावः तत्ता तां नयन्तीं प्रापयन्तीम्, अङ्गे शरीरे लग्नानि सक्तानि शयनीकृतानि तल्पीकृतानि शय्यारूपेण प्रयुक्तानीत्यर्थः यानि कमलानां च कुमुदानां च कुवलयानां च दलानि पत्राणि किञ्जल्काः केसराश्च तेषां शकलानि खण्डानि पुलकस्य रोमाञ्चस्य उद्गमेन उद्भवेन अपास्यन्तीम् दूरीकुर्वतीम् चन्द्रापीडागमनोदन्तेन तस्याः रोमाञ्चाख्यसात्त्विकभावे जायमाने कमलादीनां कुसुमदलानि स्वयं पतिष्यन्तीति भावः, मणिदर्पणे मणिमयमुकुरे विलोक्य दृष्ट्वा कपोलयोः सङ्गिनीं संसक्ताम् अत एव अयथास्थितां समुचितस्थाने न स्थितां कबरीं वेणीम् अंसदेशे स्कन्धस्थाने निवेशयन्तीं स्थापयन्तीम्, आनन्दात् प्रियतमागमनकृतहर्षात् जन्म उत्पत्तिः यस्य तथाभूतेन नेत्रपुटाभ्यां नयनपुटाभ्याम् आवर्जितेन पतितेनेत्यर्थः बाष्पसलिलेन अश्रुजलेन एव मकरध्वजः काम एव अनलः वह्निः (रूपकम्) तस्य संतापाय कामकृतज्वराय ज्वरमपनेतुमित्यर्थः जलाञ्जलिं सलिलाञ्जलिम् इवेत्युत्प्रेक्षाम् प्रयच्छन्तीं ददानाम् जलप्रदानेन तापोपशमो जायते इति भावः उत्सृष्टात् दूरीकृतात् शेषेण अवशिष्टेन आश्यानः शुष्कः यः मलयजस्य चन्दनस्य रसः द्रवः तेन अङ्गेषु अवयवेषु लग्नेन संसक्तेन भस्मना विभूत्या इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मदनः काम एव हुतभुक् वह्निः (रूपकम्) तस्य निवृत्तिम् उपशमम् आवेदयन्तीं सूचयन्तीम् अग्न्युपशमे भस्मैव शिष्यत इति भावः, अभ्युत्थानस्य स्वागतार्थम् उत्थानस्य प्रसङ्गेन सम्बन्धेन एव कुसुमानां शय्यां तल्पं दूरीकुर्वन्तीम् अपनयन्तीम् कादम्बरीम् आलोकयन् पश्यन् दर्शनीयानां दर्शनयोग्यानाम् अवलोकनं दर्शनम् एव फलं तेन चक्षुषी नयने कृतार्थतां कृतकृत्यतां नयामि प्रापयामि द्रष्टव्यदर्शनेन सफलीकरोमीति यावत्; **एवं**—मदलेखां कादम्बरीसखीं साञ्जलिः बद्धकरः प्रणामः नमस्कारः यस्मिन् तथाभूतेन कण्ठग्रहेण कण्ठालिंगनेन संभाव्य संमान्य, चरणयोः मे पादयोः पतितां मच्चरणस्पर्शं कुर्वतीमित्यर्थः पत्रलेखाम् एतदाख्यस्वसेविकाम् उत्थाप्य उत्थितां कृत्वा केयूरकं कादम्बरीसेवकविशेषं निर्भरं भृशं यथा स्यात्तथा पुनः

केवल मोतियों की लड़ ही रख लेगी, हरिचन्दन के गाढ़े लेप से ढके लावण्य छटावाले अंगों को हाथ द्वारा छूने के प्रयत्न से और भी अधिक दर्शनीय बनाने लगेगी, शरीर पर चपटे, शय्यारूप में उपर्युक्त कमल, कुमुद और कुवलयों के पंखुड़ियों तथा केसरों के टुकड़ों को रोमाञ्च से ही हटाने लग जाएगी, मणि दर्पण में देख कर गालों पर चिपटी और अनुचित स्थान पर गई बालों की गुत को हाथ से कन्धे पर धर देगी, आनन्द के कारण उत्पन्न, नेत्र-पुट द्वारा गिराये अश्रुजल से ही कामानल के संताप हेतु जलाञ्जलि—जैसे देने लगेगी, मिटाने से बचे-खुचे सूखे चन्दनलेप से ही अंगों में लगी कामाग्नि की भस्म से-जैसे उसके बुझ जाने की सूचना देने लग जायगी और (मेरे स्वागत हेतु) खड़ी होने के प्रसङ्ग से ही कुसुम-शय्या को हटाने लग जाएगी। इसी तरह अंजलि-बद्ध नमस्कार सहित मदलेखा का आलिङ्गन द्वारा सत्कार करके चरणों में गिरी

परिष्वज्य निर्भरमेवं महाश्वेतोपपादितोद्वाहमङ्गलस्त्वरितसखीवृन्दनिर्वर्तितवैवाहिक-स्नान[1]मङ्गलविधेर्भुव इव वर्षाभिषिक्तायाः करग्रहणं देव्या निर्वर्तयामि; एवमतिबहल-कुङ्कुमकुसुमधूपानुलेपनामोदोद्दीपितहृदयजन्मनि वासभवने शयनवर्तिनो मम समीप-मुपविश्य क्षणमपि कृतनर्मालापायां निर्गतायां मदलेखायां त्रपावनम्रमुखीमनिच्छन्तीं किल बलाद्दोर्भ्यामादाय शयनीयं शयनीयादङ्कमङ्काच्च हृदयं देवीं कादम्बरीमारोपयामि; एवमुद्गाढनीवीग्रन्थिदृढतरार्पितपाणिद्वयायास्त्रपानिमीलितलोचने चुम्बन्नवञ्चितात्मा चिराद्भ-वामि; एवं सुरैरपि दुर्लभं तदधरामृतमा तृप्तेर्निपीय सुजीवितमात्मानं करोमि; एवमति-कोमलतयान्तर्विलीय विशन्त्या इवाङ्गं गाढालिङ्गनसुखरसभरेण मकरध्वजानलदग्धशेषं

पुनः परिष्वज्य आलिङ्ग्य, एवं महाश्वेतया उपपादितं सम्पादितम् उद्वाहस्य विवाहस्य मङ्गलं स्नानगणेशादिपूजनात्मकं पूर्वाङ्गं यस्य तथाभूतोऽहम् त्वरितं यथा स्यात्तथा सखीनाम् आलीनां वृन्देन गणेन निर्वर्तितम् अनुष्ठितं वैवाहिकं विवाहसम्बन्धि यत् स्नानमङ्गलं मङ्गलस्नानमित्यर्थः तस्य विधिः विधानं यस्याः तथाभूतायाः वर्षेण वृष्ट्या अभिषिक्तायाः कृतसेवनायाः भुवः पृथिव्या इवेत्युपमायाम् , देव्याः कादम्बर्याः कर-ग्रहणं पाणिग्रहणं निर्वर्तयामि करोमि, एवम् अतिशयेन बहलानि बहूनि यानि कुङ्कुमानि काश्मीरजानि च कुसुमानि पुष्पाणि च धूपाः तुरुष्काश्च अनुलेपनानि विलेपनानि च तेषाम् आमोदेन परिमलेन उद्दीपितः उत्तेजितः हृदयजन्मा मनसिजः काम इति यावत् यत्र तथाभूते वासभवने वासगृहे शयने शय्यायां वर्तते इति तथोक्तस्य शय्यास्थितस्येत्यर्थः मम समीपं निकटम् उपविश्य निषद्य क्षणमपि क्षणमात्रम् कृतः नर्मालापः हास्यगर्भवार्तालापः यया तथाभूतायां मदलेखायां निर्गतायां निष्क्रान्तायां सत्याम् , त्रपया लज्जया अवनम्रं नतं मुखं यस्याः तथाभूताम् अनिच्छतीम् अनभिलषन्तीम् किल वस्तुतः बलात् बलपूर्वकं दोर्भ्यां बाहुभ्याम् शयनीयं शय्याम् आदाय आनीय, शयनीयात् अङ्कं क्रोडम् अङ्कात् च हृदयं वक्षः देवीं कादम्बरीम् आरोपयामि स्थापयामि; **एवम्**—उद्गाढा निविडा या नीव्याः कटिवस्त्रबन्धनस्य ग्रन्थिः ग्रन्थिका गंड इति यावत् तस्यां दृढं यथा स्यात्तथा अर्पितं स्थापितं पाणिद्वयं हस्तयुगलं यया तथाभूतायाः तस्या त्रपया लज्जया निमीलिते लोचने नयने चुम्बन् चुम्बनं कुर्वन् चिरात् बहुकालपर्यन्तम् न वञ्चितः आत्मा यस्य तथाभूतः कृतकृत्यात्मा भवामि, एवं सुरैः देवैः अपि दुर्लभं दुष्प्रापं तस्या अधरम् अधरोष्ठम् अमृतमिवेत्युपमायाम् आ तृप्तेः तृप्ति-पर्यन्तं निपीय पात्वा आत्मानं स्वं सुजीवितं सुजीवनं करोमि स्वजीवनं सार्थकतां नयामीत्यर्थः, एवम् अतिशयेन कोमलतया मृदुतया अन्तः मध्ये विलीना भूत्वा अङ्गं शरीरं विशन्त्या प्रवेशं कुर्वत्या इवेत्युत्प्रेक्षायाम् गाढं घनं यत् आलिङ्गनं परिष्वङ्गः तस्य सुखस्य आनन्दस्य रसस्य आस्वा-

पत्रलेखा को उठाकर, केयूरक को वार-वार अच्छी तरह गले लगाकर एवं महाश्वेता द्वारा मेरा विवाह-सम्बन्धी स्नानादि मंगल-कृत्य किये जाने पर सखी-गण द्वारा कराये विवाह-सम्बन्धी मंगल-स्नान वाली, अतएव वर्षा के कारण भीगी पृथिवी-सी देवी का मैं पाणिग्रहण कर लूँगा; तदनन्तर बहुत-से केसर, फूल, धूप और विलेपन द्रव्यों की सुगन्ध से उद्दीप्त हुए कामानल वाले वास-भवन में शय्या पर स्थित मेरे समीप बैठ थोड़ी देर हँसी-मखौल की बातें किये मदलेखा के चले जाने पर लाज के मारे नीचा मुँह किये, न चाहती हुई भी देवी कादम्बरी को बलपूर्वक बाहों में लेकर सेज पर, सेज से गोद पर और गोद से हृदय पर बिठा लूँगा; फिर कसकर बंधी नीवी की गाँठ पर मजबूती से दोनों हाथ रखे उसके लाज के मारे बंद किये आँखों को चूमता हुआ मैं चिरकाल तक कृतकृत्य हो बैठूँगा, इसके बाद देवताओं को भी दुर्लभ उसके अधरामृत का छककर पान करके अपना जीवन धन्य बना दूँगा; फिर अति सुकुमार होने के कारण भीतर पिघलकर मेरे शरीर में प्रवेश करती हुई—जैसी इसके गाढ़ालिंगन के आस्वाद के अतिशय

१. स्नानविधिः ?

निर्वापयामि शरीरम्; एवं परवत्यापि स्वेच्छाप्रवृत्तयेव निष्प्रयत्नयाप्यभियुञ्जानयेवापसर्पन्त्यापि कृतापसर्पणयेव संगोपितसर्वाङ्गयाप्युपदर्शितभावयेव देव्या कादम्बर्या सह तत्किमपि सर्वजनसुलभमपि योगैकगम्यं स्पर्शविषयमपि हृदयग्राहि मोहनमपि प्रसादनमिन्द्रियाणामुद्दीपनमपि मदनहुतभुजो निर्वृतिकरमुपाहितसर्वाङ्गखेदमप्याह्लादकरमुपजनितविषमोच्छ्वासश्रमस्वेदमपि ससीत्कारपुलकजननमनुभूयमानमप्युत्पादितानुभवनस्पृहं सहस्रवारानुभूतमप्यपुनरुक्तमतिस्पष्टमप्यनिर्देश्यस्वरूपमचिन्त्यसमासङ्गमतुल-

दस्य भरेण अतिशयेन मकरध्वजः काम एव अनलः वह्निः (रूपकम्) तेन दग्धात् प्लुष्टात् शेषम् अवशिष्टं शरीरं निर्वापयामि उपशमयामि शीतलीकरोमीति यावत्, **एवम्**—एवम् अथ च परवत्या पराधीनया अपि स्वेच्छया स्वकीयेच्छया प्रवृत्तया प्रवृत्तिं कुर्वत्या, इव, निष्प्रयत्नया अकृतप्रयासया अपि अभियुञ्जानया उद्युञ्जन्त्या उद्योगं कुर्वत्येति यावत् इव, अपसर्पन्त्या पश्चात् सरन्त्या अपि कृतम् उसर्पणं समीपे आगमनं यया तथाभूतया इव संगोपितानि पिहितानि आच्छादितानीति यावत् सर्वाणि समस्तानि अङ्गानि अवयवाः यया तथाभूतया उपदर्शितः प्रकटीकृतः भावः अभिप्रायः इच्छेति यावत् यया तथाभूतया इवेति उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा, देव्या कादम्बर्या सह सार्धं तत् किमपि अनिर्वचनीयं सर्वैः जनैः सुलभं सुप्रापम् अपि योगेन योगशास्त्रप्रतिपादितचित्तवृत्तिनिरोधेन एव एकेन केवलेन गम्यं प्राप्यम् सर्वजनसुलभं योगैकगम्यमिति विरोधः तत्परिहारश्च योगः शरीरयोः परस्पर-संयोगः इति, स्पर्शस्य स्पर्शनेन्द्रियस्य त्वचः इति यावत् विषयम् अपि हृदयग्राहि मनोविषयम् इति विरोधः तत्परिहारश्च हृदयग्राहि मनोहरम् इति, मोहयति मूर्छा जनयतीति मोहनम् अपि इन्द्रियाणां प्रसादनं प्रीतिकरम् इति विरोधः, मोहनम् मनोमोहकं मुग्धकारीति तत्परिहारः, उद्दीपकम् उत्तेजकम् अपि मदनहुतभुजः कामानलस्य निर्वृतिकारं शमकम्, उद्दीपकं शमकम् इति विरोधः, निर्वृतिम् आनन्दं करोतीति समाधानम्, उपाहितः उपजनितः सर्वाङ्गेषु निखिलावयवेषु विषमः दुःसहः उच्छ्वासः निश्वसितम् च श्रमः खेदश्च स्वेदः घर्मजलं च येन तथाभूतमपि ससीत्कारं सीत्कारसहितं यत् पुलकं रोमाञ्चः तस्य जनकम् उत्पादकम् उच्छ्वासश्रमस्वेदजनकस्य ससीत्कारपुलकजनकत्वेन विरोधः सुरते उभयसात्त्विकभावोदयेन परिहारः, अनुभूयमानम् प्रत्यक्षानुभूतिविषयीक्रियमाणम् अपि उत्पादिता अनुभवनस्य प्रत्यक्षानुभूतेः स्पृहा इच्छा येन तथाभूतम्, अनुभूयमानम् अपि अनुभवनेच्छाकरम् अननुभूतस्यैव इच्छाविषयत्वात् इति विरोधः, अनुभवनम् उपभोग इति तत्परिहारः, सहस्राणि वारा यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथेति सहस्रवारम् अनुभूतं सेवितम् अपि अपुनरुक्तं न पुनरावर्तितम् इति विरोधः अपुनरुक्तम् अद्वितीयम् इति परिहारः, अतिशयेन स्पष्टं प्रकटम् अपि अनिर्देश्यं निर्देष्टुमशक्यं स्वरूपं लक्षणं यस्य तथाभूतम् इति विरोधः अनिर्वचनीयमिति परिहारः,

आनन्द द्वारा कामानल से जलकर बचे-खुचे अपने शरीर को ठंडा कर लूँगा; इसी तरह, वश में आती हुई भी स्वेच्छा से आ रही–जैसी, (आने का) प्रयत्न न करती हुई भी प्रयत्न करती-जैसी, पीछे पीछे खिसकती हुई भी निकट आती हुई-जैसी, सभी अंगों को ढकाये हुए भी अपना अभिप्राय दिखाए-जैसे देवी कादम्बरी के साथ सभी लोगों को सुलभ होता हुआ भी केवल योग (चित्त-वृत्ति-निरोध; शरीर-मिलन) द्वारा प्राप्य, स्पर्श का विषय होता हुआ भी हृदयग्राही (मनोग्राह्य, मनोहर), मोह लेने वाला (मूर्छा लाने वाला, मुग्धकारी) होता हुआ भी इन्द्रियों को प्रसन्न कर देने वाला, उद्दीपन होता हुआ भी कामाग्नि की निर्वृति (उपशम, आनन्द) कर देने वाला, सभी अंगों में खेद (दुःख, थकान) लाये हुए भी आह्लाद देने वाला, दीर्घ साँस, थकाम और पसीना उत्पन्न किये हुए भी सिसकारी से भरा रोमाञ्च उत्पन्न कर देने वाला, अनुभव किया जाता हुआ भी अनुभव (ज्ञान, भोग) की इच्छा उत्पन्न किये, हजारों वार भोगा हुआ भी नया-नया, अति स्पष्ट होता हुआ अनिर्वच-

स्पर्शमनुपमरसमनाख्येयप्रीतिकरं [परमध्यानसहस्राधिगतं निर्वाणमिवापरप्रकारं सुरताख्यं सुखान्तरमनुभूय निमेषमप्यकृतविरहस्तया सह तेषु तेषु रम्येषूद्देशेषु रममाणः स्वभावरम्यमपि रमणीयतरतां यौवनमुपनयामि; एवमुत्पन्नविश्रम्भां देवीमेवाभ्यर्थ्य वैशम्पायनस्यापि मदलेखया सह घटनां कारयामीत्येतानि चान्यानि च चिन्तयन्नचेतितक्षुत्पिपासातपश्रमोज्जागरव्यथो दिवा रात्रौ चावहत्।

एवं च वहतोऽप्यस्य दवीयस्तयाध्वनोऽर्धपथ एव कालसर्पो वर्त्मनः, प्रबलपङ्को ग्रीष्मस्य, निशागमो गभस्तिमतः, स्वर्भानुरमृतदीधितेः, धूमोद्गमो वज्रानलस्फुरितानाम्,

---

उपरि सर्वत्र विरोधाभासालंकारः, न चिन्त्यः चिन्तयितुमशक्यः समासङ्गः समागमः यस्य तत्, अतुलः तुलयितुमशक्यः स्पर्शः स्पर्शनं यस्य तत्, अनुपमः उपमारहितः रसः आस्वादो यस्य तत्, अनाख्येयायाः आख्यातुमशक्यायाः प्रीतेः आनन्दस्य करम्, परमं उत्कृष्टं यत् ध्यानं मनसः एकाग्रता कामस्य मनसिजत्वात् तस्य सहस्रैः अधिगतं प्राप्तं निर्वाणं इवेत्युपमायाम् अपरः मोक्षात् भिन्नः प्रकारो यस्य तथाभूतम्, सुरतं संभोग-आख्या नाम यस्य तथाभूतम् अन्यत् सुखमिति सुखान्तरम् अनुभूय अनुभवविषयीकृत्य निमेषं नेत्रनिमीलनम् अपि न कृतः विरहः वियोगः येन तथाभूतोऽहम् तया कादम्बर्या सह तेषु तेषु प्रसिद्धेषु रम्येषु रमणीयेषु उद्देशेषु प्रदेशेषु रममाणः विहरन् स्वभावतः निसर्गेण रम्यं रमणीयम् अपि यौवनं तारुण्यं अतिशयेन रमणीयस्य भावः रमणीयतरता ताम् रम्यतरताम् उपनयामि प्रापयामि रमणीयतरीकरोमीत्यर्थः, एवं पुनः उत्पन्नः संजातः विश्रम्भः विश्वासो यस्याः तथाभूतां देवीं कादम्बरीम् अभ्यर्थ्य प्रार्थ्य वैशम्पायनस्यापि मदलेखया सह घटनां संयोजनं विवाहसम्बन्धमिति यावत् कारयामि कर्तुं प्रेरयिष्यामि इत्येतानि अन्यानि च चिन्तयन् मनसि कुर्वन् न चेतिता ज्ञाता विस्मृता इत्यर्थः क्षुत् क्षुधा च पिपासा तृट् च आतपः धर्मश्च श्रमः क्लमश्च उज्जागरः जागरणञ्चेति तेषां व्यथा पीड़ा येन तथाभूतः चन्द्रापीडः दिवा दिने रात्रौ निशि च अवहत् अचलत्।

एवं च०—वहतः गच्छतः अपि अस्य चन्द्रापीडस्य अध्वनः मार्गस्य दवीयस्तया अतिशयेन दूर इति दवीयान् तस्य भावः तत्ता तया पथः मार्गस्य अर्धम् इति अर्धपथः तस्मिन् मार्गमध्य एव वर्त्मनः मार्गस्य कालसर्पः कृष्णसर्पः नागः इति यावत् मार्गरोधकत्वात्साम्यम् ग्रीष्मस्य निदाघस्य प्रबलः बलवान् प्रचुर इति यावत् पङ्कः कर्दमः गभस्तिमतः अंशुमालिनः सूर्यस्येत्यर्थः निशायाः रात्र्याः आगमः उद्गमः प्रावृषि सूर्यादर्शनात्, अमृतदीधितेः अमृतांशोः चन्द्रस्येत्यर्थः स्वर्भानुः राहुः यथा राहुकृतचन्द्रग्रहणे चन्द्रो न दृश्यते तथैव वर्षतौं मेघाच्छन्नत्वात् चन्द्रदर्शनं न भवतीति सादृश्यम्, वज्रं कुलिशं तस्य अनलः वह्निः तस्य फुरितानां विस्फूर्जितानां धूमस्य उद्गमः उद्भवः धूमोद्गमानन्तरं यथा वह्निः स्फुरति तद्वत् धूमस्य मेघस्योदयान्तरं वज्रानलःविद्युदग्निरिति यावत् स्फुरति, धूमो हि मेघरूपो भवति यथोक्तं कालिदासेन—'धूमज्योतिस्सलि-

---

नीय स्वरूप वाला, अचिन्त्य समागम वाला, अनुपम स्पर्श और अनुपम अस्वाद वाला, वर्णनातीत आनन्द देने वाला, बड़ी भारी हजारों मानसिक एकाग्रताओं द्वारा प्राप्त, मोक्ष-जैसा और ही प्रकार का सुरत नामक कुछ दूसरा ही वाचामगोचर सुख भोगकर पल भर के लिए भी उससे वियुक्त न हुआ उसके साथ उन-उन रमणीय स्थानों में रमता हुआ मैं स्वभावतः रमणीय होते हुए भी यौवन को और अधिक रमणीय बनाऊँगा; इसके बाद देवी कादम्बरी का विश्वास प्राप्त किया मैं उससे प्रार्थना करके मदलेखा के साथ वैशम्पायन का भी विवाह करा दूँगा' ये तथा अन्यान्य बातें सोचता हुआ चन्द्रापीड़ भूख-प्यास, धूप, थकावट और (रात भर) जागे रहनेकी व्यथा को भूले हुए दिन-रात चलता ही रहा। इस तरह चलते-चलते रास्ता अतिदूर होने के कारण आधे-रास्ते में ही, रास्तेके लिए काला नाग-रूप, ग्रीष्म काल के लिए बड़ा भारी कीचड़, सूर्य हेतु रात्रि का आगमन, चन्द्रहेतु राहु-स्वरूप, विद्युदग्नि के कौंधने हेतु धूम (धुआँ,

मदागमो मकरध्वजकुञ्जरस्य, मरणान्धतमसप्रवेशो विरहातुराणाम्, अमोघकालपाशवागुरोत्कण्ठितकामिहरिणानाम्, अभेद्यलोहार्गलदण्डो दिग्वारणानाम्, अच्छेद्यहिञ्जीरश्रृङ्खला वाहानाम्, अनुन्मोच्यनिगडबन्धोऽध्वगानाम्, अलङ्घ्यकान्तारलेखा प्रोषितानाम्, कालायसपञ्जरोपरोधो जीवलोकस्य, उद्गर्जन्नलिकुलगवलमलिनघनघटाभोगभीषणो विषमविस्फूर्जितध्वनिर्विषमतरतडिद्गुणाकर्षी मण्डलितविकटशक्रकार्मुकोनवरतधाराशरा-

---

लमरुतां सन्निपातः क्व मेघः' इति; मकरध्वजः मदनः एव कुञ्जरः हस्ती तस्य मदस्य दर्पस्य अथ च दानजलस्य आगमः उद्भवः, वर्षाकाले मदनः समदो [दृप्तो] जायते कुञ्जरोऽपि समदो (मदजलयुक्तो) भवतीति साम्यम्, विरहेण वियोगेन आतुराणाम् आकुलानां जनानां मरणे मृत्यौ यत् अन्धतमसं घनान्धकारः तस्मिन् प्रवेशः वर्षर्तौः तेषां प्राणघातकत्वात्, उत्कण्ठिताः सञ्जातोत्कण्ठाः उत्सुका इति यावत् कामिनः कामिनश्च कामिन्यश्चेति (एकशेषद्वन्द्वः) एव हरिणाः मृगाः तेषाम् अमोघा अन्यर्थः काला कृष्णवर्णा पाशस्य बन्धनस्य वागुरा रज्जुः वागुराबद्धो हि हरिणः यथा क्वचिदपि गन्तुं न पारयति, तथैव कामिजनः वर्षाकालनिरुद्धः सन् प्रियतमपार्श्वे गन्तुमशक्तो भवतीति सादृश्यम्, दिशः—दिशः एव वारणा गजाः तेषां कृते अभेद्यः भेत्तुमशक्यः लोहस्य अयसः अर्गलस्य परिघस्य दण्डः यष्टिः, गजो हि लोहपरिघं न भेत्तुं शक्नोति, वर्षागमो दिशां कृते लोहदण्डसदृशः मेघान्धकारकारणात् नक्तमिव दिशो न भिद्यन्ते, तासां पृथक् पृथक् आभासो न भवतीत्यर्थः, वाहानाम् अश्वानाम् अच्छेद्यः छेत्तुमशक्यः यः हिञ्जीरः पादपाशः तस्य श्रृंखला श्रृंखलम् वर्षाकारणात् मार्गस्य पंकिलत्वाच्च अश्वाः न गन्तुं शक्नुवन्तीति भावः, अध्वनि मार्गे गच्छन्तीति अध्वगाः पान्थाः तेषां न उन्मोच्यः उन्मोक्तुमशक्यः निगडस्य श्रृखलायाः बन्धः बन्धनम् सततवर्षाकारणात् पान्थाः अग्रे गन्तुं न शक्नुवन्तीति भावः प्रोषितानाम् विदेशगतपतीनां स्त्रीणाम् अलंघ्या लंघयितुमशक्या कान्तारस्य वनस्य लेखा राजिः यथा खलु जनैः कान्तारं लंघयितुमशक्यं तथैव प्रोषितभर्तृकाः वर्षाकालं लंघयितुम् अतियापयितुमिति यावत् न शक्नुवन्तीत्यर्थः, जीवलोकस्य संसारस्य कालायसस्य लोहस्य यत् पञ्जरं पिंजरं तस्मिन् उपरोधः गमनप्रतिबन्ध इत्यर्थः यथा पञ्जरबद्धः जीवः कुत्रापि गन्तुं न शक्नोति, तथैव चराचरात्मकं जगत् वर्षासु स्व-स्व-स्थानेषु एव रुद्धस्तिष्ठतीति भावः। उपरि सर्वत्र परम्परितरूपकं क्वचित् श्लिष्टमपि।
उद्गर्ज०—उद्गर्जन्ती उत् अतिशयेन गर्जन्ती गर्जनं कुर्वन्ती या अलीनां भ्रमराणां कुलानि पंक्तयश्च गवलाः वन-महिषाश्चेति तद्वत् मलिना श्यामवर्णा या घनानां मेघानां घटा श्रेणी तस्याः आभोगेन विस्तारेण भीषणः भयंकरः, विषयः महान् विस्फूर्जितस्य गर्जनस्य ध्वनिः शब्दः यस्य तथाभूतः अतिशयेन विषमः विषमतरः तडित् विद्युत् एव गुण मौर्वी तम् आकर्षतीति तथोक्तः, मण्डलितम् सञ्जातमण्डलम् यत् विकटं विशालं शक्रस्य इन्द्रस्य धनुः चापः यस्मिन् तथाभूतः, अनवरतं निरन्तरं यथा स्यात् तथा धारा जलधारा एव शराः बाणाः (रूपकम्) तेषाम् आसार-

---

मेघ) का उमड़ाव, मदन-रूपी गज के लिये मद (दर्प; मदजल) का आगमन, विरह-व्यथितों के निमित्त मृत्यु के समय आने वाले अन्धकार में प्रवेश-रूप, उत्कण्ठित कामी-कामिनियों रूपी हरिणों के लिए काले रंग की अमोघ बन्धन-रज्जु घोड़ों के लिये न तोड़ सके जाने वाली पैरों की जंजीर, पथिकों हेतु न छुडाई जा सकने वाली बेड़ी, विदेश गए पतियों वाली स्त्रियों के निमित्त न पार किये जा सकने वाली वन-पंक्ति, चराचर जगत् का लोहे के पिंजरे के भीतर बन्धन, भ्रमर-समूह तथा जंगली भैंसों जैसी काली गड़गड़ाती हुई घन-घटा के विस्तार से भीषण बना हुआ, अत्यधिक गर्जन करने वाला, बिजली की बड़ी भारी रेखा के रूप में प्रत्यञ्चा खींचने वाला, गोलाकार विशाल इन्द्र-धनुष रखे, निरन्तर जलधारा के रूप में बाणों की मूसलाधार

सारवर्षप्रहारी पुरोमागमवरुन्धन्विरुद्ध इवान्धकारितमुखो निस्त्रिंशशतसहस्रसंपातदुष्प्रेक्ष्योक्षिणी प्रतिघ्नन्निवाशुगमनविघ्नकारी बभूव जलदकालः।

तत्र च प्रथममस्य चेतोहारिभिर्मूर्च्छावेगैरन्धकारतामनीयन्त दशदिशस्ततो जलधरैः। अग्रतः समुत्प्लुतेन चेतसा क्वाप्यगम्यत पृष्ठतो हंसैः। पुरस्तात्परिमलिनोस्य निश्वासमरुतः प्रावर्तन्त पश्चात्कदम्बवाताः। पूर्वं तुलितनीलोत्पलवनकान्ति नयनयुगलमस्य सलिलं समुत्ससर्ज चरममम्भोमुचां वृन्दम्। आदावापूर्यमाणमुद्वेगेनोत्कलिकासहस्रपर्याकुलं मनोस्याभवदवसाने स्रोतस्विनीनां पात्रम् अपि च दुस्तरैर्नदीरैरेव

वर्षः वेगवती वृष्टिः तेन प्रहर्तुं प्रहारं कर्तुं शीलमस्येति तथोक्तः पुरः अग्रतः मार्गं पन्थानम् अवरुन्धन् प्रतिवध्नन् मार्गे अग्रे गमनस्य प्रतिरोधं कुर्वन्निति यावत्, विरुद्धः शत्रुः इवेत्युपमायाम् अन्धकारितं सञ्जातान्धकारं मुखम् आननं यस्य तथाभूतः, निर्गताः त्रिंशद्भ्यः अङ्गुलिभ्यः इति निस्त्रिंशाः त्रिंशदङ्गुलिपरिमाणतोऽप्यधिकदीर्घाः खड्गाः तेषां सहस्राणां संपातः पतनं तद्वत् (लुप्तोपमा) दुष्प्रेक्ष्यः प्रेक्षितुमशक्यः अक्षिणी चक्षुषी प्रतिघ्नन् प्रतिघातं कुर्वन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् द्रष्टुं न ददान इत्यर्थः आशुगमनस्य शीघ्रगतेः विघ्नकारी रोधकः जलदानां मेघानां कालः समयः वर्षर्तुरित्यर्थः बभूव जातः।

तत्र च—तत्र जलद-काले च प्रथमं पूर्वम् अस्य चन्द्रापीडस्य चेतः मनः हरन्तीत्येवंशीलैः चेतनापहारिभिः मूर्छायाः मोहस्य वेगैः संवेगैः दश दिशः अन्धकारस्य भावः अन्धकारता ताम् अनीयन्त प्राप्यन्त, ततः जलधरैः मेघैः अर्थाद् विरहवेदनातिशय्याद् आगतया मूर्छया आदौ चन्द्रापीडस्य कृते दशदिक्षु अन्धकारः कृतः तत्पश्चाद् मेघैः अन्धकारः कृतः। मेघाः दिक्षु अन्धकारं कुर्वन्तु इत्यस्माद् पूर्वमेव चन्द्रापीडो मूर्छित इति भावः। अग्रतः पूर्वं समुत्प्लुतेन सम्यक् उत्पतितेन चेतसा चन्द्रापीडस्य चित्तेन क्वापि अनिर्दिष्टस्थले हेमकूटे इति यावद् अगम्यत गमनं कृतम्, पृष्ठतः पश्चाद् हंसैः, हंसा हि वर्षाकाले मानस- सरोवरं गच्छन्तीति कवि-ख्यातिः। अस्य चन्द्रापीडस्य परिमलः सौरभम् एषामस्तीति परिमलिनः निश्वास-मरुतः निःश्वसित-वायवः पुरस्तात् पूर्वं प्रावर्तन्त प्रवृत्ताः, पश्चात् परिमलिनः कदम्बाख्य-पुष्पवृक्षाणां वाताः वायवः प्रावर्तन्त। तुलिता उपमिता सदृशीकृतेति यावत् नीलस्य नीलवर्णस्य उत्पलवनस्य कुवलय-समूहस्य कान्तिः शोभा येन तथाभूतम् अस्य चन्द्रापीडस्य नयनयुगलं नेत्रद्वयं पूर्वं सलिलम् अश्रुजलमित्यर्थः समुत्ससर्ज मुमोच, चरमं पश्चात् अम्भः जलं मुञ्चन्तीति तथोक्तानां वृन्दं समूहः सलिलं समुत्ससर्ज। उद्वेगेन अनिर्वृत्या आपूर्यमाणं भ्रियमाणम् उत्कलिका उत्कण्ठा तासां सहस्रेण पर्याकुलं व्याप्तम् अस्य चन्द्रापीडस्य मनः आदौ पूर्वम् अभवत् जातम्, अवसाने पश्चात् उद्वेगेन वाहुलकेन ['उद्वेगोप्युद्वाहुलकोद्वेजनोद्गमनेषु च' इति विश्वः] आपूर्यमाणम् उत्कलिका वीचिः तासां सहस्रेण पर्याकुलं स्रोतस्विनीनां नदीनां पात्रं तटद्वयमध्यवर्ति स्थानम् [पात्रं च भाजने योग्ये पात्रं तीरद्वयान्तरे' इति विश्वः]

वृष्टि से प्रहार करने वाला आगे जाने का मार्ग रोकता हुआ, शत्रु की तरह अँधेरा मुँह किये, हजारों तलवारों के पतन-जैसा दुर्दर्श, और आंखों का प्रतिघात करता हुआ—जैसा वर्षाकाल उस (चन्द्रापीड) के शीघ्र जाने में रोड़ा अटका बैठा।

और उस वर्षा-काल में चन्द्रापीड के लिए चेतना का अपहरण कर देने वाली मूर्छा के वेगों ने दश दिशाओं को अन्धकारमय पहले किया, मेघों ने पीछे। उछलकर कहीं उसका मन पहले गया, हंस पीछे। उसके सुगन्धित निश्वास वायु पहले चले, कदम्ब के सुगन्धित वायु पीछे। नील कमलों के वन से तुलना करने वाले उसके दो नेत्रों ने पहले पानी छोड़ा, मेघसमूह ने पीछे। (उद्वेग बेचैनी) से भरा जा रहा उसका मन हजारों उत्कलिकाओं (उत्कण्ठाओं) से पहले व्याप्त हुआ, उद्वेग (बहुतायत) से भरा जा रहा नदियों का स्थान उत्कलिकाओं (वीचियों)

सहावर्धन्त मन्मथोन्माथाः। वर्षजलविलुलितैः कमलाकरैरेव सह निममज्ज कादम्बरी-समागमप्रत्याशा। धारारयासहैः कन्दलैरेव सहाभिद्यत हृदयम्। अम्भोदवाताहतैः कदम्बकुड्मलैरेव सहाकम्पतोत्कण्टकिता तनुः। अनवरतजलपतनजर्जरितपक्ष्मभिः शिलीन्ध्रैरेव सह ताम्रतामधत्त नयनयुगलम्। उत्कूलसलिलोत्खन्यमानमूलैः सरित्तटैरेव सहापतन्प्राणाः। परिमलमयैर्मालतीकुसुमैरेव सहाजृम्भत रणरकः। तथातिगुरुनिर्घातै-रेवाभज्यन्त मनोरथाः। तीक्ष्णतरकोटिभिः केतकीसूचिभिरेवात्रुट्यन्त मर्माणि। उच्छ्रितैः

टिप्पणी—ब्रह्मा के जगत में कारण और कार्य का पौर्वापर्य क्रम नियत है अर्थात् कारण पहले होता है और कार्य पीछे, लेकिन कवि-जगत में इस नियम के विपरीत कभी कभी कार्य पहले हो जाता है, कारण बाद को, जैसे—मूर्छा ने चन्द्रापीड के लिए दिशायें पहले अन्धकारमय बना दीं, मेघों ने पीछे। वास्तव में दिशाओं में मेघ पहले छाए, तब उन्हें देख कर उसे मूर्छा आई, इसी तरह अन्यत्र भी समझ लें। अन्तिम वाक्य में श्लेष है। इसको कार्यकारण-पौर्वापर्यविपर्ययातिशयोक्ति कहते हैं।

अपि च किं च दुस्तरैः दुःखेन तर्तुं शक्यैः नदीनां स्रोतस्विनीनां पूरैः ओघैः एव सह सार्धं चन्द्रापीडस्य मन्मथस्य कामस्य उन्माथाः उन्मथनानि अवर्धन्त वृद्धिं गताः। वर्षस्य वृष्टेः जलेन लुलितैः इतस्ततः पर्यस्तैः कमलाकरैः कमलवनैः एव सह चन्द्रापीडस्य कादम्बर्याः समागमः मिलनं तस्य प्रत्याशा आशा ममज्ज मग्नाऽभवत् अर्थात् वर्षागमे यथा जलपूरे कमलानि मज्जन्ति तथैव तस्य कादम्बरीमिलनाशा ममज्ज विनष्टेत्यर्थः। धाराणां वृष्टिधारासाराणां यः रयः वेगः तस्य असहाः न सहनकर्तारः तैः धारावेगमसहमानैरिति यावत् कन्दलैः कदलीवृक्षैः तत्पत्रैरित्यर्थः; एव सह चन्द्रापीडस्य हृदयम् स्वान्तं अभिद्यत भिन्नमभूत्, यथा धारासारवर्षापातेन कदली-दलानि भिद्यन्ते तथा तस्य हृदयमपीति भावः। अम्भोदानां मेघानां वातेन वायुना आहतैः ताडितैः कदम्बस्य कदम्बवृक्षस्य कुड्मलैः मुकुलैः एव सह तस्य उत्कण्टिता संजातकण्टा रोमाञ्चि-तेति यावत् तनुः शरीरम् अकम्पत अवेपत। अनवरतं निरन्तरं यत् जलपतनं सलिलपातः तेन जर्जरितानि छिन्न-भिन्नीकृतानि पक्ष्माणि उपरितन-रोमतुल्यभागाः येषां तथाभूतैः शिलीन्ध्रैः छत्रकैः भूस्फोटैरिति यावत् एव सह तस्य श्लेषे विभक्तिव्यत्ययेन अनवरतजलपतनजर्जरितानि पक्ष्माणि नेत्ररोमाणि यस्य तथाभूतं नयनयोः युगलं द्वयं ताम्रतां ताम्रवर्णताम् अधत्त अधारयत्। उत्कूलानि कूलमुद्रुजानि यानि सलिलानि जलानि तैः उत्खन्यमानानि उत्पाट्यमानि मूलानि अधोभागाः येषां तथाभूतैः सरिताम् नदीनां तटैः तीरैः एव सह तस्य प्राणाः अपतन् अभ्रंशन्त। परिमलः सौरभम् प्रचुरः एषामस्तीति परिमलमयाः तैः (प्राचुर्यार्थे मयट्) मालत्याः कुसुमैः पुष्पैः एव सह रणरणकः मनसः सोत्कण्ठा व्याकुलता अजृम्भत वृद्धिमवाप। उपरि सर्वत्र कार्य-कारणपौर्वापर्यविपर्ययातिशयोक्तिमूलका सहोक्तिरलंकारः स च क्वचित् श्लिष्टोऽपि। तथा अति-शयेन गुरुभिः प्रबलैः निर्घातैः वर्षाझञ्झावातैः एव निर्घातैः प्रहारैः मनोरथाः अभिलाषाः चन्द्रा-

से पीछे व्याप्त हुआ। किं च, तरने में कठिन बनी नदियों की बाढ़ों के ही साथ-साथ उसकी काम-व्यथायें बढ़ीं। वर्षा-जल से अस्त–व्यस्त हुए कमलवनों के ही साथ–साथ उसकी कादम्बरी से मिलने की आशा डूब गई। वर्षा का वेग न सह सकने वाले केले के पत्तों के ही साथ–साथ उसका हृदय फट गया। मेघों के तूफानों द्वारा आहत कदम्ब–मुकुलों के ही साथ–साथ उसकी रोमांचित देह काँप उठी। लगातार पानी गिरने से छिन्न–भिन्न हुए पक्ष्मों (रोम-जैसे अग्र भागों) वाले खुम्भों के ही साथ–साथ उसके लगातार पानी गिरने से अस्त–व्यस्त हुए पक्ष्मों (बरौनियों) वाली दोनों आँखों में लाली आ गई। तीर से ऊपर जा रहे जल द्वारा उखाड़े निचले भाग वाले नदियों के तटों के ही साथ–साथ उसके प्राण गिर पड़े। सुगन्धि से खूब भरे चमेली के फूलों के ही साथ–साथ मानसिक बेचैनी बढ़ गई। और बड़े भारी झञ्झावातों के प्रहारों से ही उसके मनोरथ टूट गए। खूब नुकीली केवड़े की सुइयों से ही मर्मस्थल बिंध गए।

शिखिभिरेवादह्यन्त गात्राणि। अन्धकारितदिशा मेघतमसैवावर्धत मोहान्धकारः। तिरस्कृतध्वान्तेन तडिदातपेनैवातन्यत संतापः। भरेणैव गम्भीरगर्जितैकसंतानोत्कम्पित-धरापीठबन्धैर्नभसि नवघनैः घनजलधारातिपातवाचालितचञ्चुभिरन्तराले चातकैः, उद्दाममहारावराविभिरवनिमूले दर्दुरैः, अनवरतझांकाररवजर्जरितधाराम्बुभिराशासु जलदानिलैः, उन्मुक्तमदकलकेकाकोलाहलैः काननेषु कलापिभिः असमशिखरोपलस्खलनकलकलमुखरैर्गिरिषु निर्झरैः, उल्लोलकल्लोलास्फारितविषमनिर्घोषझाङ्कारिभिः सरित्सु पूरैः, सर्वतश्च विततेन स्थलीषु संहतेन कन्दरेषूचण्डेन शिखरिषु कलकलेनाम्बुषु पटुना

पीडस्येति शेषः अभज्यन्त भग्ना बभूवुः। अतिशयेन तीक्ष्णा तीक्ष्णतरा निशितरा कोटिः अग्र-भागो यासां तथाभूताभिः केतक्याः पुष्पलताविशेषस्व सूचिभिः कण्टकैरित्यर्थः एव मर्माणि मर्म-स्थानानि अत्रुट्यन्त छिन्नानि। उत् ऊर्ध्वं शिखा चूडा येषां तथाभूतैः शिखिभिः मयूरैः एव शिखिभिः वह्निभिः गात्राणि अङ्गानि अदह्यन्त दग्धान्याभूवन्। अत्र श्लिष्टयोः निर्घात-शिखि-शब्दयोः भेदेऽप्यभेदादतिशयोक्तिः। अन्धकारिता सञ्जातान्धकारा दिशः यस्मिन् तथाभूतेन मेघानां जलदानां तमसा अन्धकारेण एव तस्य मोहस्य मूर्छायाः अन्धकारः अवर्धत वृद्धिमवाप। तिरस्कृतं दूरीकृतमित्यर्थः ध्वान्तं तमः येन तथाभूतेन तडितः विद्युतः आतपेन आलोकेन संतापः कामज्वरः अतन्यत विस्तारं गतः वृद्ध इति यावत्। **भरेण—**नभसि गगनभरेण भारणैव गम्भीरं गभीरं यत् गर्जितं गर्जनम् एव एकः केवलः यः संतानः अविच्छिन्न-परम्परा तेन उत्कम्पितः चालितः धरायाः पृथिव्याः पीठबन्धः आसनबन्धः यैः तथाभूतैः नवघनैः नव-जलधरैः इत्यस्य अन्येषां तृतीयान्तानां च 'उत्कलिकाकलितः' (चन्द्रापीडः) इत्यनेन अन्वयः, अन्तराले द्यावा-पृथिव्योः मध्ये घना निबिडा या जलस्य धारा तस्याः अतिशयेन पातः पतनं तेन वाचालिताः मुखरिताः चञ्चवः येषां तथाभूतैः चातकैः, अवनेः पृथिव्याः मूले तले उद्दामः उत्कटः यः महान् रावः ध्वनिः तेन रुवन्ति शब्दायन्ते इत्येवंशीलैः दर्दुरैः भेकैः (अत्र रावशब्दोऽधिकः), आशासु दिशासु अनवरतः निरन्तरः यः झांकार-रवः झां-झां-ध्वनिः तेन जर्जरितानि जर्जरीकृतानि छिन्न-भिन्नीकृतानीति यावत् धाराणां अम्बूनि जलानि यैः तथाभूतैः जलदानां मेघानां अनिलैः वातैः, काननेषु वनेषु उन्मुक्तः कृतः मदेन अतिहर्षेण केकायाः स्वध्वनेः कोलाहलः कलकलः यैः तथा-भूतैः कलापिभिः मयूरैः, गिरिषु पर्वतेषु असमाः विषमाः ये शिखराणां शृङ्गाणाम् उपलाः प्रस्तराः तेषु स्खलनात् पतनात् यः कलकलः कोलाहलः तेन मुखरैः वाचालैः निर्झरैः प्रसवणैः, **उल्लोल—**सरित्सु नदीषु उल्लोलाः अतिचंचलाः ये कल्लोलाः तरङ्गाः तेषां यः आस्फालः परस्पर-संघट्टः तेन विस्फारितः विस्तारं नीतः दीर्घीकृत इति यावत् यः विषमः भीषणः निर्घोषः ध्वनिः तेन झाङ्का-रिभिः झाङ्कुर्वद्भिः पूरैः ओघैः, सर्वतः परितश्च स्थलीषु अकृत्रिमभूमिषु स्थानेष्विति यावत् वित-तेन प्रसृतेन एतत् अन्यानि च तृतीयान्तानि 'धारारवेण' इत्यस्य विशेषणानि, कन्दरेषु गुहासु संहतेन राशीभूतेन, शिखरिषु गिरिषु उच्चण्डेन अत्युग्रेण, अम्बुषु जलेषु कलकलेन अतिमधुरेण,

---

कलंगी उठाये शिखियों (मयूरों) रूपी शिखियों (अग्नियों) से ही अंग जल बैठे। दिशाओं में अँधेरा किये मेघों के अन्धकार से ही मूर्छान्धकार बढ़ गया। अन्धकार मिटाये बिजली के आलोक से ही संताप फैल गया। गगन में (जल–) भार से ही (की हुई) केवल गहरी गर्जनाओं के सिलसिले द्वारा पृथिवी का आसन डुलाये नये मेघों से, धरा और आकाश के मध्य भागमें जल-धार के खूब गिरते रहने कारण चोचों से शब्द किये मयूरों से, भूतल पर जोर का शब्द करते हुए मेंढकों से, दिशाओं में निरन्तर सर्सराहट के शब्द द्वारा धारा-जल को छिन्न-भिन्न किये हुए मेघों की हवाओं से, जंगलों में मस्ती से मीठी केकाओं का कोलाहल किये हुए मयूरों से, पहाड़ों में शिखरों के ऊँचे-नीचे पत्थरों पर गिरने के कारण अतिमधुर शब्द से मुखरित हुए निर्झरों से, नदियों में ऊँची उठ रही तरगों के परस्पर टकराने के कारण बढ़ी हुई भयंकर ध्वनि से झंकृत बाढ़ोंसे, और सब स्थानोंमें पैले जलधारा-पातके अनुसार गुफाओं में संहत

पर्वततटेषु मृदुना शाद्वलेषु चारुणा पल्वलेषु सान्द्रेण शाखिषु तनुना तृणोलपेषूल्बणेन तालीवनेषु यथा[1]धारापतनमाकर्ण्यमानेन सर्वप्रकारमधुरेण हृदयप्रवेशिना धारारवेणोत्कलिकाकलितो न रात्रौ न दिवा न ग्रामे नारण्ये नान्तर्न बहिर्न वने नोपवने न वर्त्मनि नावासे न वहन्न तिष्ठन्न वैशम्पायनस्मरणे न कादम्बरीसमागमानुध्याने न कथंचिदपि न क्वचिदपि निर्वृतिमेवाध्यगच्छत् ।

अनधिगतनिर्वृतिश्चातिकष्टतया वज्रानलस्येव जलदसमयेन्धनस्य मदनहुतभुजो भस्मसात्कर्तुमिवोद्यतस्य धीरस्वभावोपि प्रकृतिमेवोत्ससर्ज । प्लावितसकलधरातलैर्धाराजलैरप्यशोष्यत । द्योतितदशदिशा शतह्रदालोकेनापि मूर्च्छान्धकारेक्षिप्यत । आह्लादितजीवलोकैर्जलदानिलैरप्यदह्यत । पयोभारमेदुरैर्घनैरपि तनुतामनीयत । पाटलितशाद्वलैः

पर्वतानां गिरीणां तटेषु प्रान्तेषु पटुना तीव्रेण, शाद्वलेषु हरितघासमयप्रदेशेषु मृदुना कोमलेन, पल्वलेषु कासारेषु चारुणा मनोहरेण, शाखिषु वृक्षेषु सान्द्रेण निविडेन, तृणानि घासाश्च उलपाः लताश्च तेषु ['लता प्रतानिनी वीरुद् गुल्मिन्युलप इत्यपि' इत्यमरः] तनुना लघुना, तालीनां तालवृक्षाणां वनेषु विपिनेषु उल्बणेन उग्रेण, धाराणां जलधाराणां पतनमनतिक्रम्येति यथाधारापतनं तत्र-तत्र धारापतनानुसारेणेत्यर्थः आकर्ण्यमानेन श्रूयमाणेन सर्वैः प्रकारैः मधुरेण मिष्टेन, हृदये प्रवेष्टुं शीलमस्येति तथोक्तेन धाराणां रवेण शब्देन उत्कलिकाभिः उत्कण्ठाभिः कलितः गृहीतः व्याप्त इत्यर्थः चन्द्रापीडः न रात्रौ निशि, न दिवा दिने, न ग्रामे अवसथे, न अरण्ये वने; न अन्तः अभ्यन्तरे, न बहिः, न वने विपिने, न उपवने उद्याने, न वर्त्मनि पथि, न आवासे गृहे, न वहन् चलन्, न तिष्ठन् स्थितिं कुर्वन्, न वैशम्पायनस्य स्मरणे स्मृतौ, न कादम्बर्याः समागमस्य मिलनस्य अनुध्याने अनुचिन्तने, न कथञ्चित् न केनापि प्रकारेण, न क्वचित् न कुत्रापि निर्वृतिं शान्तिम् एव अध्यगच्छत् प्राप्तवान् ।

अनधि०—न अधिगता निर्वृतिः शान्तिः येन तथाभूतः चन्द्रापीडः वज्रानलस्य अशनिवह्नेः इवेत्युपमायाम्, जलदसमयः वर्षाकाल एव इन्धनम् एधः यस्य तथाभूतस्य मदनहुतभुजः कामाग्नेः [परम्परित-रूपकम्] भस्मसात्कर्तुं भस्मीकर्तुम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उद्यतस्य सज्जस्य अतिकष्टतया अतिकष्टकारकत्वेन धीरः स्वभावो यस्य तथाभूतोऽपि सन् प्रकृतिं स्वभावम् एव उत्ससर्ज अत्यजत् । प्लावितं जलसात्कृतं सकलं समस्तं धरातलं भूतलं यैः तथाभूतैः धारा-जलैः अपि अशोष्यत शुष्कतां प्राप्तवान् इति विरोधः अशुष्यत कृशोऽभवत् इति तत्परिहारः । द्योतिताः दश दिशा येन तथाभूतेन शतह्रादायाः विद्युतः आलोकेन प्रकाशेन अपि मूर्छा मोह एव अन्धकारः तमः तस्मिन् अक्षिप्यत क्षिप्तोऽभवत्; प्रकाशः अन्धकारे क्षिपतीति विरोधः अन्धकारः चैतन्यापगमः इति तत्परिहारः । आह्लादितः प्रसादितः जीवलोकः प्राणिसमूहः यैः तथाभूतैः जलदानां

(इकट्ठे हुए), पहाड़ोंमें अत्युग्र, जलोंमें अतिमधुर, पहाड़ों के किनारोंपर तीव्र, घास-भरे प्रदेशोंमें कोमल, तालाबों में मनोहर, वृक्षोंमें घने, घास और लताओं मे पतले, और ताड़-वृक्षों के वनों में उग्र सुनाई देरहे सभी प्रकार से मधुर, हृदय में प्रविष्ट होने वाले जलधारा के शब्द से उत्कण्ठा-भरे चन्द्रापीड़ को न दिन, न रात, न गाँव में, न अरण्यमें, न भीतर, न बाहर, न वन में न उपवन में, न मार्ग में, न घरमें, न चलते, न बैठते, न वैशम्पायनकी याद में, न कादम्बरी से मिलने के ध्यान में, न किसी तरह, कहीं भी शान्ति न मिली ।

शान्ति प्राप्त न किये, धीर-स्वभावका हुआ भी चन्द्रापीड़ वर्षा-काल को (अपना) इन्धन बनाये वज्राग्निके-समान उसे भस्म करने को तय्यार हुए-जैसे कामानल के अति कष्टकारक होने के कारण अपना स्वभाव ही छोड़ बैठा । सकल धरातल को आप्लावित कर देने वाले वृष्टिधाराजल से वह सूखता गया । दस दिशाओं को प्रकाशित किये विजली के प्रकाश से भी वह मूर्च्छा

१. धाराश्मपतनम् ।

शक्रगोपकैरपि पाण्डुतां प्रत्यपद्यत। कुसुमधवलैः कुटजैरपि रागपरवशोऽक्रियत। तथापि सकलजगज्जीवनहेतुनापि जीवितसन्देहदोलामारोपितो जलदकालेन उत्कूलगामिषु विधिविलसितेषु सरित्पूरेषु चोत्प्लवमानः, अनवरतवर्षाजलजनितेषु मूर्च्छागमेषु पङ्कपटलेषु च निमज्जन्, जलभरस्थगिते वर्त्मनि विलोचने च स्खलन्, विकासिनीषु कादम्बरीप्राप्तिचिन्तासु धाराकदम्बरजोवृष्टिषु चामीलयन्, अनुबन्धिषु गमनविघ्नेषु जलधरध्वनितेषु च

वारिदानाम् अनिलैः वायुभिः अपि अदह्यत दग्धोऽभवत्; अनिलो दहतीति विरोधः, दहति कष्टं ददाति वर्षानिलस्य वियोगिनां कष्टकारकत्वात् इति तत्परिहारः। पयसः जलस्य भारेण आधिक्येन मेदुरैः मेदोयुक्तैः घनैः मेघैः अपि तनुताम् तनिमानम् कृशतामित्यर्थः अनीयत प्राप्यत। मेदोयुक्त-पदार्थैः पुष्टता जायते न तु तनुता इति विरोधः, 'मेदुरैः' सान्द्रैः इत्यर्थान्तरे तत्परिहारः, सान्द्रमेघदर्शनात् कामिनः अधिकाधिकं कृशीभवन्ति। पाटलितानि पाटलवर्णीकृतानि शाद्वलानि तृणभूमयः हरितघासमयाः प्रदेशा इति यावत् यैः तथाभूतैः शक्रगोपकैः इन्द्रगोपैः वर्षाकालीन-रक्तकीटविशेषैरिति यावत् पाण्डुतां श्वेतत्वम् अनीयत प्राप्यत। यः खलु इन्द्रगोपकः पाटलीकरोति स कथं पाण्डूकुर्यात् इति विरोधः, पाण्डुता 'वैवर्ण्यम्' इति परिहारः। कुसुमैः पुष्पैः धवलैः श्वेतैः कुटजैः वनमल्लिकावृक्षैः रागस्य रक्तवर्णस्य परवशः अधीनः अक्रियत कृतोऽभवत्। श्वेतकुटजैः रक्तवर्णीकृतः इति विरोधः, 'रागस्य' प्रेम्णः इत्यर्थान्तरे तत्परिहारः। उपरि सर्वत्र विरोधाभासालङ्कारः। तथापि—सकलं समस्तं च तत् जगत् लोकः तस्य जीवितस्य प्राणानां हेतुना कारणीभूतेन अपि जलदकालेन वर्षासमयेन जीवितस्य प्राणानां सन्देहः संशयः एव दोला (रूपकम्) प्रेङ्खा तस्याम् आरोपितः स्थापितः एतत् अन्यानि च प्रथमान्तानि चन्द्रापीडस्य विशेषणानि, वाक्यं च 'अनीयत तं पन्थानम्' इति। कूलस्य तटस्य अथ सीमायाः ऊर्ध्वम् इति उत्कूलं यथा स्यात्तथा गच्छन्तीत्येवंशीलेषु, विधेः भाग्यस्य विलसितेषु चेष्टितेषु सरितां नदीनां पूरेषु ओघेषु च उत्प्लवमानः तरन् अर्थात् यथा स सीमामतीतेषु भाग्यचेष्टितेषु यातिस्म तथैव कूलमतीतेषु नदीपूरेष्वपि। अनवरतं, निरन्तरं यत् वर्षाजलं वृष्टिसलिलं तेन जनितेषु उत्पादितेषु मूर्च्छाणां मोहानाम् आगमेषु आगमनेषु पङ्कस्य कर्दमस्य पटलेषु समूहेषु च निमज्जन् ब्रुडन्, जलस्य वर्षाजलस्य भरेण अतिशयेन स्थगिते व्यवहिते वर्त्मनि मार्गे, जलभरेण अश्रुजलातिशयेन स्थगिते आच्छन्ने इत्यर्थः विलोचने नयने च स्खलति स्खलितोऽभवत् जलभरितमार्गे अश्रुभरितनयने च स्खलनं स्वाभाविकम्। विकासिनीषु उद्भवन्तीषु कादम्बर्याः प्राप्त्याः लाभस्य चिन्तासु विकासिनीषु विकसनशीलासु धारया धारारूपेण पतितस्येत्यर्थः कदम्बानां कदम्बपुष्पाणां वृष्टिषु वर्षासु च अमीलयन् चिन्तापक्षे न निद्राणः सततं जाग्रदित्यर्थः वृष्टिपक्षे न नेत्रे मीलयन् अन्यथा मार्गादर्शने स्खलदप्रसङ्गात्, अनुबन्धिषु सततम् आगच्छत्सु गमने विघ्नेषु प्रत्यूहेषु जलधराणां मेघानां ध्वनि-

---

के अन्धकारमें पड़ता गया। सकल प्राणिवर्ग को आनन्द दिये मेघों की पवनों से भी वह जलता रहा। जल भारसे चर्बीले बने मेघों से भी वह कृश होता गया। तृण-भूमि को लाल बनाये वीरबहूटियोंसे भी वह पाण्डुवर्ण होने लगा। फूलों से सफेद बने कुटजों से भी वह रागाधीन (लाल; प्रेमाधीन) किया जाने लगा। तथापि सारे जगके प्राणों का कारण होते हुए भी वर्षाकाल द्वारा जीवन की संदेहरूपी झूले पर चढ़ाया हुआ वह उत्कूलगामी (सीमा लाँध के चलने वाले) नदी की बाढ़ों में तैरता हुआ, लगातार की वर्षा के जल से उत्पन्न मूर्छा के आगमनों तथा कीचड़ के समूहों में निमग्न होता हुआ, जल (पानी; आँसू) की अधिकता से ढके मार्ग तथा नेत्रमें स्खलित होता हुआ, बढ़ती जाती हुई कादम्बरी की प्राप्ति की चिन्ताओं तथा धारा-रूपसे गिरती कदम्बपुष्पोंकी पराग-वृष्टियों में मीलन (उपेक्षा, नेत्रनिमीलन) न करता हुआ, लगातार हो रहे गमनविघ्नों तथा मेघ-गर्जनों में मुग्ध (हक्काबक्का, मूर्छित) होता हुआ, अति दुर्लङ्घ्य (न पार किये

मुह्यन्, सुदुर्लङ्घ्यवेगान्युत्कण्ठितानि सहस्रशः स्रोतांसि चोल्लङ्घयन्, घनोपाहितवृद्धिना कादम्बरीसमागमौत्सुक्येन पयःप्लवरयेण चोह्यमानः, जीवितप्रत्याशामनिर्वहतो जनांस्तुरंगमांश्च परित्यजन्, तर्ज्यमान इव तडिद्भिः, अवष्टभ्यमान इव जलधरैः, निर्भर्त्स्यमान इव विस्फूर्जितैः, शकलीक्रियमाण इव शतशो निस्त्रिंशवृत्तिभिर्धारासारैः, निरुद्धास्वपि जलदकालेनैवाशुगमनविघ्नभूतास्वाशासु कादम्बरीसमागमाशा सुतरां नारुध्यतास्य यथा तादृशेपि यथास्थाननिगडितसमस्तप्राणिनि प्रावृट्काले कलामप्यकृतपरिलम्बोऽनीयत तं पन्थानम्। धाराहतिविकूणिताक्षेण च मुहुर्मुहुर्वलितानमितताननेन श्च्योतदासक्तिसम्पि-

---

तेषु गर्जितेषु च मुह्यन् कर्तव्याकर्तव्यज्ञानं न कुर्वन् अथ च मूर्छन्, सु सुतरां दुर्लङ्घ्यः दुस्सहः अथ च लङ्घयितुमशक्यः वेगः येषां तथाभूतानि उत्कण्ठितानि औत्सुक्यानि सहस्रशः स्रोतांसि जलप्रवाहान् च उल्लङ्घयन् अतिक्रमन् अथ च सहमानः, घनैः मेघैः उपहिता जनिता वृद्धिः उपचयः यस्य तथाभूतेन कादम्बर्या समागमः मिलनं तस्मिन् औत्सुक्येन उत्कण्ठया पयसां जलानां प्लवः प्रवाहः तस्य रयेण वेगेन च उह्यमानः नीयमानः अथ च प्रेर्यमाणः, जीवितस्य प्राणानां प्रत्याशाम् आशाम् अनिर्वहतः न धारयतः जनान् लोकान् तुरङ्गमान् अश्वान् च परित्यजन् मुञ्चन्, उपरि यथा वर्षाकाले निमज्जन-स्खलितादीनि प्रस्तुतानि (उपमेयानि) सन्ति तथैव कादम्बरी-विरहे जायमानानि चिन्तानिमज्जनादीनि अपि प्रस्तुतानि सन्ति अतः उभयेषां प्रस्तुतानां प्रस्तुतानाम् एकधर्माभिसम्बन्धात् तुल्ययोगितालङ्कारः स च श्लेषानुप्राणितः, तडिद्भिः विद्युद्भिः तर्ज्यमानः तर्जनां प्राप्यमाणः इव, जलधरैः मेघैः अवष्टभ्यमानः उपरुध्यमानः इव, विस्फूर्जितैः घनगर्जितैः निर्भर्त्स्यमानः भर्त्सनां दीयमान इव, निस्त्रिंशाः त्रिंशदधिकाङ्गुलिपरिमाणतोऽपि प्रलम्बाः खड्गाः तद्वत् वृत्तिः वर्तनं येषां तथाभूतैः निस्त्रिंशसदृशैः इत्यर्थः धारासारैः वेगवतीभिः वर्षाभिः शतशः शकलीक्रियमाणः खण्डखण्डीक्रियमाणः इव, उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, जलद-कालेन वर्षासमयेन एव आशु शीघ्रं गमने विघ्नभूतासु प्रत्यवाय भूतासु आशासु दिशासु निरुद्धासु संजातरोधासु अपि सतीषु यथा अस्य चन्द्रापीडस्य कादम्बर्या समागमः मिलनं तस्य आशा सुतरां सम्यक् न अरुध्यत निरुद्धाऽभवत् तादृशे तथाविधे अपि यथास्थानं स्थानमनतिक्रम्य तत्तत्स्थाने इत्यर्थः निगडिताः निगडबद्धाः रुद्धा इत्यर्थः समस्ताः सकलाः प्राणिनः जीवाः यस्मिन् तथाभूते प्रावृषः वर्षर्तोः काले समये कलाम् क्षणम् अपि न कृतः परिलम्बः विलम्बो येन तथाभूतः चन्द्रापीडः तं पन्थानम् मार्गम् अनीयत प्राप्यत। वर्षाकालेन सर्वा आशाः [दिशः] निरुद्धाः किन्तु चन्द्रापीडस्य कादम्बरीमिलनस्य आशा न निरुद्धा इति भावः। अत्र सर्वा आशा निरुद्धाः तस्य आशा न निरुद्धेति विरोधः आशा वाञ्छेति तत्परिहारः। **धारा०**—धारायाः जलधारायाः आहत्या आघातेन विकूणिते अर्धनिमीलिते अक्षिणी नयने यस्य तेन मुहुः मुहुः वार-वारं वलितानि परावर्तितानि आनमितानि नीचैः कृतानि च आननानि मुखानि येन तेन, श्च्योतन् स्रवन् यः स्वेदः इति शेषः तेन या आसक्तिः

जा सकने वाले) वेगके हजारों जलप्रवाहों को पार करता हुआ, मेघों द्वारा बढ़ाये कादम्बरी से मिलने के औत्सुक्य तथा जलप्रवाह के वेग द्वारा ले जाया जाता हुआ, जीवन की आशा न रखे हुए लोगों तथा घोड़ों को छोड़ता जाता हुआ, बिजलियों द्वारा ललकारा जाता हुआ-जैसा, मेघों द्वारा रोका जाता हुआ-जैसा, मेघोंकी गड़गड़गड़ाहटों द्वारा फटकारा जाता हुआ जैसा, लंबी तलवारों-सी मूसलाधारों द्वारा शतशः खण्ड-खण्ड किया जाता हुआ-जैसा, वर्षाकाल द्वारा शीघ्र गमन में विघ्नभूत आशाओं (दिशाओं) के रोक दिए जाने पर भी जिस तरह उसकी आशा (इच्छा) नहीं रुकी, वैसे तत्तत् स्थानों में सभी प्राणियों को रोके रखे वर्षाकालमें पल भर का भी विलम्बन किये चन्द्रापीड़ उस रास्ते में ले जाया गया। अश्व-सेनाको अपने पीछे लिये-जिसने जलधारा टकराने से आँखे आधा बन्द कर रखी थीं और बार-बार मुख मोड़े एवं नीचे कर रखे थे, जिसके कन्धे के बालों की नोकें चूते हुये पसीने से चिपक कर आपस में मिल गई थीं

ण्डितकेसराग्रैणैकसन्तानकर्दमानुमग्नखुरेणादृश्यनिम्नोन्नतस्खलद्गतिना विशीर्यमाण-पर्याणसमायोगेनोपर्युपरिवाहिनीतीरोत्तारसंतानावानपृष्ठेनापचीयमानबलयजवोत्साहेन वाजिसैन्येनानुगम्यमानो जीवितसंधारणाय यथा तथा निर्वर्तिताशनमात्रकोऽभ्यर्हितराज-लोकवचसाप्यप्रतिपन्नशरीरसंस्कारो दिवसमेव केवलमवहत्।

वहंश्च त्रिभागमात्रावशिष्टेऽध्वनि निवर्तमानं मेघनादमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा च दूरत एव कृतनमस्कारं तमप्राक्षीत्। तिष्ठतु तावत्पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तान्तप्रश्नः। वैशम्पायन-वृत्तान्तमेव तावत्पृच्छामि। अयि दृष्टस्त्वयाच्छोदसरसि वैशम्पायनः। पृष्टो वावस्था-नकारणम्। पृष्टेन वा किंचित्कथितं न वा। पश्चात्तापी वास्मत्परित्यागेन। स्मरति

सम्पर्कः तेन संपिण्डितानि एकीभूतानि केसराणां स्कन्धकेशानाम् अग्राणि अग्रभागाः यस्य तथाभूतेन, एकः सन्तानः परम्परा सातत्यमिति यावत् यस्य तथाभूतः यः कर्दमः पङ्कः तस्मिन् अनुमग्नाः निमग्नाः खुराः शफाः यस्य तथाभूतेन सततकर्दमलिप्तखुरेणेति यावत्, अदृश्यम् द्रष्टुमशक्यं निम्नम् नीचम् उन्नतम् उच्चं च यत् स्थलमिति शेषः तस्मिन् स्खलन्ती स्खलनं प्राप्नुवती गतिः गमनं यस्य तथाभूतेन, विशीर्यमाणः स्वस्थानतः भ्रंशन् पर्याणस्य पल्ययनस्य समायोगः सम्बन्धः यस्य तथाभूतेन, उपरि उपरि उत्तरोत्तरं यथा स्यात् तथा वाहिनीनां नदीनां तीराणाम् यः उत्तारः तरणं तस्य संतानेन सातत्येन अवानम् अशुष्कं क्लिन्नमित्यर्थः पृष्ठं पृष्ठदेशो यस्य तेन, अपचीयमानं ह्रसत् बलं सामर्थ्यं च जवः वेगश्च उत्साहः साहसं च यस्य तथाभूतेन वाजिनां तुरगाणां सैन्येन सेनया अनुगम्यमानः अनुस्रियमाणः, जीवितस्य प्राणानां संधारणाय संरक्षणाय यथा तथा येन केन प्रकारेण निर्वर्तितं कृतम् अशनम् एव अशनमात्रं केवलं भोजनं येन तथाभूतः अभ्यर्हितः पूजितः आप्तः इति यावत् यः राजलोकः नृपसमूहः तस्य वचसा कथनेन अपि न प्रतिपन्नः अप्रतिपन्नः अस्वीकृतः शरीरस्य देहस्य संस्कारः प्रसाधनं येन तथाभूतः चन्द्रापीडः केवलं दिवसम् दिने (कालात्यन्त-संयोगे द्वि०) एव अवहत् अचलत्।

वहंश्च—वहन् चलन् च त्रिभागः (त्रिशब्दोऽत्र पूरणार्थकः) तृतीयभाग एव त्रिभागमात्रम् अवशिष्टम् अवशेषो यस्य तथाभूते अध्वनि मार्गे निवर्तमानं प्रत्यागच्छन्तं मेघनादम् एतदाख्यं स्वसेनापति-पुत्रम् अद्राक्षीत् अपश्यत्, दृष्ट्वा आलोक्य च दूरतः दूरात् एव कृतः विहितः नमस्कारः प्रणामः येन तथाभूतं तं मेघनादम् अप्राक्षीत् अपृच्छत्—'तिष्ठतु आस्ताम् तावत् पुरस्तात् पूर्वं पत्रलेखायाः चन्द्रापीडसेविकायाः गमनस्य वृत्तान्तस्य वृत्तस्य प्रश्नः। पत्रलेखया सह मेघनादः गत आसीत्; तद्गनविषयकप्रश्नं न करोमीत्यर्थः तावत् प्रथमं त्वामहं वैशम्पायनस्य वृत्तान्तम् एव पृच्छामि प्रश्नविषयीकरोमि। अयि इति विषादे ('अयि क्रोधे विषादे च' इति विश्वः) अच्छोदसरसि अच्छोदाख्य-सरोवरे त्वया वैशम्पायनः दृष्टः विलोकितः किम्? अवस्थानस्य तस्य तत्र स्थितेः कारणं हेतुः त्वया स पृष्टः किम्? पृष्टेन वैशम्पायनेन किञ्चित् किमपि कथितम् उक्तं वा न वा? अस्माकं परित्यागेन हानेन पश्चात्तापः अनुतापः अस्यास्तीति तथोक्तः। अस्माकम्

और लगातार खुर कीचड़ में डूबे रहते थे, जो दीखने में न आ रही ऊँची-नीची जमीन पर ठोकर खा रही थी, जिसकी जमी हुई काठियाँ इधर-उधर खिसकती जा रही थीं और पीठें एक के बाद एक नदी तीरों को पार करते रहने से गीली बनी रहती थीं और जो बल, वेग तथा उत्साह में क्षीण होती जा रही थी—चन्द्रापीड प्राणधारण हेतु येन केन प्रकारेण भोजन-मात्र किये, मान्य राजाओं के कहने पर भी शरीरसंस्कार न किये केवल दिन ही दिन में चलता गया।

और चलते-चलते जब मार्ग का तीसरा भाग ही शेष रह गया, तो चन्द्रापीड ने वापस आते हुये मेघनाद को देख लिया और देखकर दूर से ही नमस्कार किये हुए उसे पूछा—'पत्र-लेखा के जाने का वृत्तान्त तो पहले एक तरफ रखो, पहले मैं तुमसे वैशम्पायन का ही समाचार पूछता हूँ। क्या तुमने अच्छोद सरोवर पर वैशम्पायन को देखा? अथवा उसे वहाँ रुक जाने का

वास्माकम्। पृष्टोसि वानेन किंचिन्मदीयम्। उपलब्धो वाभिप्रायः। उत्पन्नो वालापो युवयोः। मातापित्रोर्वा संदिष्टं किंचित्। परिबोधितो वा त्वयागमनाय। आवेदितं वास्मदीयमागमनम्। नापयास्यति वा तस्मात्प्रदेशात्। दास्यति वा दर्शनम्। ग्रहीष्यति वास्मदनुनयम्। आगमिष्यति वा पुनर्मया सह। किं कुर्वन्दिवसमास्ते। को वा विनोदोस्य तिष्ठति" इति।

स त्वेवं पृष्टो व्यज्ञपयत्। "देव, देवेन तु वैशम्पायनमालोक्यानुपदमेव तुरङ्गैरागत एवाहमित्यादिश्य विसर्जितोहम्। अच्छोदसरसः प्रतीपं वैशम्पायनो गत इत्येषान्तरा वार्तैव नोपजाता। चिरयति च देवे जलदसमयारम्भमालोक्य कदाचिदेतेषु दिवसेषु देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन च कृतप्रयत्नोपि न मुच्यत एवागन्तुं देवश्चन्द्रापीडस्त्वया चैकाकिना न स्थातव्यमेवास्यां भूमौ। परागतप्रायाश्च

अस्मान् (कर्मणि षष्ठी) वा स्मरति स्मृतिविषयं नयति ? मदीयं मत्सम्बन्धि किमपि वा अनेन वैशम्पायनेन त्वं पृष्टः अनुयुक्तः किम् ? वा तस्य अभिप्रायः आशयः उपलब्धः ज्ञातः किम् ? युवयोः तव वैशम्पायनस्य आलापः वार्तालापः उत्पन्नः जातः किम् ? माता जननी पिता जनकश्च तयोः कृते किञ्चित् सन्दिष्टम् सन्देशः प्रहितः किम् ? त्वया आगमनाय गृहमागन्तुं परिबोधितः प्रतिबोधं प्रापितः किम् ? अस्मदीयम् अस्मत्सम्बन्धि आगमनम् आवेदितं कथितं किम् ? तस्मात् प्रदेशात् अच्छोदसरस्तीरात् न अपयास्यति अपगमिष्यति किम् ? दर्शनं दास्यति अस्माकमिति शेषः। अस्माकम् अनुनयम् अभ्यर्थनमित्यर्थः ग्रहीष्यति स्वीकरिष्यति किम् ? पुनः मया सह सार्धम् आगमिष्यति गृहमिति शेषः। किं कुर्वन् अनुतिष्ठन् दिवसं दिनपर्यन्तम् आस्ते तिष्ठति ? कः अस्य विनोदः मनोरञ्जनं तिष्ठति अस्तीत्यर्थ इति।

स त्वेवं—स मेघनादः एवं चन्द्रापीडेन पृष्टः अनुयुक्तः व्यज्ञपयत् निवेदितवान्—'देव, महाराज, देवेन भवता तु वैशम्पायनम् आलोक्य सेनया सह गृहमागतं दृष्ट्वा अनुपदम् तत्पश्चादेव तुरङ्गैः तुरगैः आयातः आगतः एव अहम् इति आदिश्य आज्ञाप्य अहं विसर्जितः गन्तुं प्रेरित इत्यर्थः। वैशम्पायनः अच्छोदसरसः प्रतीपं वामं प्रदेशम् ('वामप्रसव्य-प्रतीपं प्रतिलोममपष्ठु च' इति हेमः) गतः इति एषा वार्ता वृत्तान्तः एव अन्तरा मार्गमध्ये न उपजाता उत्पन्ना अर्थात् मार्गमध्ये वैशम्पायनस्य सेनां त्यक्त्वा अच्छोदसरसि गमन-वृत्तान्तो मया लब्ध एव नासीत्। 'देवे भवति च चिरयति विलम्बं कुर्वति सति जलदसमयस्य वर्षर्तोः आरम्भम् उपक्रमम् आलोक्य दृष्ट्वा कदाचित् संभवतः एतेषु दिवसेषु दिनेषु देवेन महाराजेन तारापीडेन, देव्या महिष्या विलासवत्या, आर्येण शुकनासेन च कृतः प्रयत्नतः आगन्तुं प्रयासः येन तथाभूतोऽपि देव चन्द्रापीडः आगन्तुं न मुच्यते न अनुज्ञायते इत्यर्थ एव। त्वया मेघनादेन एकाकिना एकलेन सता

कारण पूछा ? अथवा पूछने पर उसने कुछ कहा या नहीं ? अथवा हमें छोडने से उसे पश्चात्ताप हो रहा है क्या ? अथवा उसे हमारी याद आती है क्या ? अथवा क्या उसने हमारे विषय में कुछ पूछा ? अथवा क्या उसका आशय तुम समझे ? तुम दोनों का वार्तालाप हुआ है क्या ? अथवा माता-पिता के लिये उसने कुछ संदेश दिया है क्या ? अथवा आने के लिए तुमने उसे समझाया है क्या ? अथवा हमारे आने की सूचना तुमने उसे दी है क्या ? अथवा वह उस स्थान से हटेगा क्या ? अथवा हमें दर्शन देगा क्या ? अथवा हमारा अनुनय मान लेगा क्या ? अथवा फिर मेरे साथ आएगा क्या ? वह दिनभर क्या करतारहता है ? उसका क्या मनोरंजन रहता है ?"

इस तरह पूछा जाता हुआ मेघनाद बोला—'महाराज आपने तो वैशम्पायन को देखकर पीछे-पीछे ही घोड़ों से मैं आया ही (समझो)' इस प्रकार आज्ञा देकर आपने मुझे विदा कर दिया था। 'वैशम्पायन अच्छोद सरोवर के बायीं ओर गया है' यह समाचार तो मुझे बीच में मिला ही नहीं। 'आपके देरी करने पर वर्षाकाल आरम्भ देखकर सम्भवतः इन वर्षा के दिनों में महाराज तारापीड़, देवी विलासवती तथा आर्य शुकनास ने प्रयत्न करने पर भी चन्द्रापीड़ को

वयम्। तन्निवर्तस्वास्मादेव प्रदेशादित्यभिधाय पत्रलेखया केयूरकेण च त्रिचतुरैः प्रयाणकैरप्राप्त एवाच्छोदं यावद्बलान्निवर्तितोऽस्मि।" इत्येवमावेद्य विरराम। विरतवचनं च तं पुनरपृच्छत्। "किमाकलयस्यद्यतनेनाह्ना यावत्परापतिता पत्रलेखा न" इति। स तु व्यज्ञपयत्। 'देव, यद्यन्तरा कश्चिदन्तरायो न भवति विलम्बकारी तदा विना सन्देहेन परापतत्येवमवगच्छति मे हृदयम्'।

इत्युक्तवति मेघनादे घनसमयवर्धिताभोगमकरध्वजार्णवमध्यपातिनीं स्वानुमानात् कादम्बरीमुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य विक्लवीभवतः पर्यावर्तन्त इवास्य जलधराः कालपुरुषैः, तडितो मदनानलशिखाभिः, अवस्फूर्जितं प्रेतपतिपटहस्वनेन, आसारधाराः स्मरेषुभि, आमन्द्रगर्जितं मकरध्वजधनुर्ज्यागुञ्जिताभोगेन, कलापिकेकाः कालदूतालापैः, केतकामोदो विष-

अस्यां भूमौ स्थाने न स्थातव्यं स्थेयम्। परागतप्रायाः प्रायः आगताः च वयम् पत्रलेखा केयूरश्च। तत् तस्मात् त्वम् अस्मात् एव प्रदेशात् स्थानात् निवर्तस्व पश्चात् गच्छ' इति अभिधाय कथयित्वा पत्रलेखया केयूरेण च त्रीणि चत्वारि वेति त्रिचतुराणि तैः प्रयाणैः एव प्रयाणकैः प्रस्थानकैः अच्छोदं सरोवरम् यावत् पर्यन्तम् अप्राप्तः प्राप्तं न कृतवान् अहं बलात् हठात् निवर्तितः प्रत्यावर्तितः अस्मि' इति एवम् आवेद्य विज्ञाप्य विरराम विरतोऽभवत्। विरतं समाप्तं वचनं कथनं यस्य तथाभूतं च तं मेघनादं पुनः द्वितीयवारम् अपृच्छत् प्रश्नं कृतवान्—'किम् आकलयसि विचारयसि यत् अद्य भवम् अद्यतनं तेन अह्ना दिवसेन यावत् पत्रलेखा परापतिता आगता न'? इति, स मेघनादस्तु व्यज्ञपयत् निवेदितवान्—'देव महाराज, यदि अन्तरा मध्ये कश्चित् विलम्बं करोतीति तथोक्तः अन्तरायः विघ्नः न भवति, तदा सन्देहेन विना निःसन्देहमित्यर्थः परापतति आगच्छति एव इति मे हृदयम् अवगच्छति जानाति'।

इत्युक्त०—मेघनादे इति एवम् उक्तवति कथितवति सति स्वस्य अनुमानात् अनुमितेः घनानां मेघानां समयेन कालेन वर्धितः वृद्धिं प्रापितः आभोगः विस्तारो यस्य तथाभूतः मकरध्वजः कामः एव अर्णवः समुद्रः तस्य मध्ये पततीत्येवंशीलां कादम्बरीम् उत्प्रेक्ष्य उत्प्रेक्ष्य अनुनीय अनुनीय ('कादम्बरी मकरध्वजार्णवं पतिता घन-समयात् यत्र यत्र घन-समयः तत्र तत्र मकरध्वजार्णव-पातः मम मकरध्वजार्णव-पातवत्' इत्यनुमान-प्रक्रियाऽत्र बोध्या।) विक्लवीभवतः विह्वलीभवतः अस्य चन्द्रापीडस्य जलधराः मेघाः काल-पुरुषैः यमदूतैः यमदूतरूपेणेत्यर्थः पर्यावर्तन्त (अत्र 'पर्यवर्तन्त' इत्येव सुवचम्) परिणता अभवन्, 'पर्यावर्तन्त' इति क्रियाया अग्रे सर्वत्रान्वयः कार्यः, तडितः विद्युतः मदनानलस्य कामाग्नेः शिखाभिः चूडाभिः (पर्यवर्तन्त), अवस्फूर्जितं भीषणगर्जनं प्रेतपतेः यमस्य पटहस्य दुन्दुभेः स्वनेन शब्देन, आसारधाराः वेगेन पतन्त्यो वृष्टिधाराः स्मरस्य कामस्य इषुभिः बाणैः, आमन्द्रं गम्भीरं गर्जितं स्तनितं मकरध्वजस्य कामस्य धनुषः चापस्य या ज्या मौर्वी तस्याः गुञ्जितस्य टङ्कारस्य आभोगेन विस्तारेण, कलापिनां

आने नहीं दिया हो। तुम्हें अकेले इस स्थान में नहीं रहना चाहिये। हम भी आये ही समझो, इसलिये तुम वापस ही जाओ' यह कहकर पत्रलेखा और केयूरक ने तीन चार पड़ावों से अच्छोद तक पहुँचने से पूर्व ही बलात् मुझे वापस कर दिया' यह कहकर वह चुप हो गया। चुप हुए उसे चन्द्रापीड ने फिर पूछा—'तुम्हारा क्या खयाल है? क्या पत्रलेखा आज के दिन तक तो पहुँच नहीं जायेगी?' उसने निवेदन किया—'महाराज, यदि बीच में कोई विलम्बकारी विघ्न न आ पड़े, तो निःसन्देह वह आ ही जायेगी'—ऐसा मेरा हृदय समझ रहा है।'

मेघनाद के इस तरह कह चुकने पर, आप-बीती के अनुमान से वर्षाकाल द्वारा बढ़ाये हुए विस्तार वाले काम-रूपी समुद्र के मध्य गिर रही कादम्बरी की बार-बार संभावना करके विह्वल होते हुए चन्द्रापीड़ के लिये बादल यम-दूतों के रूप में जैसे, बिजलियाँ कामाग्नि की लपटों के रूप में जैसे, गड़गड़ाहट यम के नगाड़े के शब्द के रूप में जैसे, मूसलाधार वर्षा कामदेव के बाणों के रूप में जैसे, जोर की गर्जना कामदेव के धनुष की प्रत्यञ्चा की विस्तृत टंकार के

परिमलेन, खद्योताः प्रलयानलस्फुलिङ्गराशिभिः, अलिवलयानि कालपाशैः, बलाकाश्रेणयः प्रेतपतिपताकाभिः, आपगाः सर्वक्षयमहापूरप्लवैः, दुर्दिनानि कालरात्र्या, कुटजतरवः कृतान्तहासैः। अपि च शरीरेपि सत्त्वं कातरतया, बलं क्षामतया, कान्तिर्वैवर्ण्येन, मतिर्मोहेन, धैर्यं विषादेन, हसितं शुचा, नयनमश्रुणा, आलपनं मौनेन, अङ्गान्यसहतया, करणान्यपाटवेन सर्वमेवारत्या। दिवसैश्चोल्लिख्यमानमिव, अनवरतवाहिनाश्रुपूरप्रवाहेणावभज्यमानमिव, सततैर्निश्वासप्रभञ्जनैरुत्खन्यमानमिव, संततैर्मदनदुःखोत्कलिकासहस्रै रजस्रपातिभिरितस्ततो जर्जरीक्रियमाणमिव, अपि च सहस्रैर्मकरध्वजशरासारैर्वपुषेव च सह क्षीयमाणमिव स्वल्पावशेषं संकल्पलिखितेन निर्विशेषवृत्तिना कादम्बरी-

---

मयूराणां केकाः शब्दाः कालदूतस्य यमदूतस्य आलापैः संभाषणैः (पर्यावर्तन्त इव इत्यनुवर्तते), केतकस्य केतक्याः पुष्पस्य आमोदः परिमलः विषयस्य गरलस्य परिमलेन गन्धेन, खद्योताः ज्योतिरिङ्गणाः प्रलयस्य प्रलयकालस्य यः अनलः अग्निः तस्य स्फुलिङ्गानाम् कणानां राशिभिः समूहैः, अलीनां मधुकराणां बलयानि मण्डलानि कालस्य यमस्य पाशैः बन्धनैः (पर्यावर्तन्त इवेत्यनुवर्तते), बलाकानां बकानां श्रेणयः पङ्क्तयः प्रेतपतेः यमस्य पताकाभिः वैजन्तीभिः उभयोः श्वेतत्वम्, आपगाः नद्यः सर्वेषां क्षयः विनाशः येभ्यः तथाभूतः यः महान् पूरः ओघः तस्य प्लवैः प्रवाहैः, दुर्दिनानि मेघाच्छन्नानि अहानि ('मेघच्छन्नेह्नि दुर्दिनम्' इत्यमरः) कालरात्र्या मृत्युप्रदनिशया, कुटजस्य एतदाख्य-पुष्पविशेषस्य तरवः वृक्षाः कृतान्तस्य यमस्य हासैः हसितैः उभयेषां श्वेतत्वात्, उपरि पर्यावर्तन्त इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षा। अपि च शरीरे अपि सत्त्वं साहसं कातरतया कापुरुषतया भीरुतयेति यावत् अत्र सर्वत्र पर्यावर्तन्त इत्येवान्वेति वास्तवत्वात् बलं सामर्थ्यं क्षामतया दुर्बलतया, कान्तिः शारीरिकी शोभा वैवर्ण्ये विगतः वर्णो यस्येति विवर्णः तस्य भावः वैवर्ण्यं तेन मुखस्य कालिम्ना, मतिः बुद्धिः मोहेन अज्ञानेन, धैर्यं धृतिः विषादेन खेदेन हसितं हासः शुचा शोकेन, नयनं चक्षुः अश्रुणा वाष्पेण आलपनं संभाषणं मौनेन तूष्णीम्भावेन, अङ्गानि अवयवाः असहायतया अक्षमतया, करणानि चक्षुरादीनि इन्द्रियाणि अपाटवेन पटुत्वाभावेन सर्वम् अरत्या उद्वेगेन पर्यावर्तन्त इत्येव अनुवर्तते।

दिवसैः—दिवसैः दिनैः अनेकदिवसचलनैरित्यर्थः उल्लिख्यमानम् उत्कीर्यमाणम् इव एतत् अन्यानि च 'जीवितम्' इत्यस्य विशेषणानि। अनवरतं निरन्तरं वहतीत्येवंशीलेन अश्रुपूरस्य अश्रुजलौघस्य प्रवाहेण प्रवहनेन अवभज्यमानं मर्द्यमानम् इव, सततैः निरन्तरैः निश्वासस्य निश्वसितस्य प्रभञ्जनैः वायुभिः उत्खन्यमानम् उन्मूल्यमानम् इव, संततैः अविरतैः अजस्रं निरन्तरं पतन्तीत्येवंशीलैः मदनस्य कामस्य यद् दुःखं तस्य उत्कलिकानाम् उत्कण्ठानाम् अथवा अरतीनां सहस्रैः इतस्ततः जर्जरीक्रियमाणम् जीर्णशीर्णीक्रियमाणम् इव, अपि च किंच सहस्रैः सहस्रसंख्यकैः मकरध्वजस्य कामस्य शराणां बाणानाम् आसारैः धारासारवृष्टिभिः वपुषा शरीरेण एव च सह सार्धं क्षीयमाणं क्षयं नीयमानम् इवेत्युपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा, स्वल्पः स्तोकः अवशेषो यस्य तथाभूतम्

रूप में जैसे, केवड़े का सौरभ विष के गन्ध के रूप में जैसे, जुगनू प्रलयाग्नि के स्फुलिंगों के समूहों के रूप में जैसे, भ्रमर-मण्डलियाँ यम-पाशों के रूप में जैसे, बक-पंक्तियाँ यमराज की पताकाओं के रूप में जैसे, नदियाँ सर्व-नाशक महान् जल-प्रलय के प्रवाहों के रूप में जैसे, मेघ-घिरे दिन कालरात्रि के रूप में जैसे और कुटज फूल के वृक्ष यम के अट्टहासों के रूप में जैसे बदल गये। अपि च, शरीर का बल कायरता में, सामर्थ्य कृशता में, कान्ति कालिमा में, बुद्धि अज्ञान में, धैर्य विषाद में, हँसी शोक में, नयन अश्रु में, बोल-चाल मौन में, अङ्ग अक्षमता में, इन्द्रियाँ शिथिलता में और सभी कुछ बेचैनी में बदल गया। दिनों (की लंबी यात्राओं) से उकेरा जाता हुआ जैसा, निरन्तर बहती जाने वाली आँसुओं की बाढ़ के प्रवाह से टूटता-फूटता जाता हुआ जैसा, निरन्तर निश्वास वायुओंसे उखाड़ा जाता हुआ जैसा, लगातार आ पड़ने वाली काम-जनित दुःख की हजारों बेचैनियों से इधर-उधर जर्जर किया जाता हुआ-जैसा

शरीरेणैव सह कण्ठलग्नं कथंकथमपि जीवितं धारयन्, धाराध[1]रक्लिन्नतरुतलम्, आप्लावितोपान्तहरितशाद्वलम्, असेव्य[2]तटलतावनम्, अनवरतरोधोजलप्रवेशकलुषितप्रान्तम्, अवशीर्यमाणोद्दण्डकुमुददलगहनम्, आमग्नकमलखण्डम्, उत्प्लवमानाश्यानकिञ्जल्कदलशक[3]लम्, आजर्जरितकह्लारकुवलयम्, उद्भ्रान्तभ्रमदलिवलयम्, उड्डीनहंससार्थम्, अनवस्थानसारसारसितकरुणम्, अवशिष्टदलतलनिलीयमानोच्चकितचक्रवाकयुगलम्, उत्कम्पितकादम्बककदम्बकाश्रीयमाणोपकूलनड्वलम्, उत्कलविरुतकलापि-

भूतम् किमप्यवशिष्टमित्यर्थः संकल्पेन मनःकल्पनया लिखितेन स्वाग्रे चित्रितेन निर्विशेषा सदृशी वृत्तिः वर्तनं यस्य तेन समानावस्थेन कादम्बर्याः शरीरेण देहेन एव सह कण्ठे गले लग्नम् आगतमित्यर्थः कथं कथमपि यथा कथमपि जीवितं प्राणान् धारयन् चन्द्रापीडः, **धारा०**—धाराधरः मेघः तेन क्लिन्नम् आर्द्रं तरूणां वृक्षाणां तलम् अधोभागः यस्य तथाभूतम् इदम् अन्यानि च 'अच्छोदकम्' इत्यस्य विशेषणानि, आप्लावितं जलपूर्णीकृतम् उपान्तस्य प्रान्तभागस्य हरितं हरिद्वर्णं शाद्वलं तृणभूमिः यस्य तत्, असेव्यं सेवितुमयोग्यं तटस्य तीरस्य लतानां वल्लीनां वनं विपिनं यस्मिन् तत्, अनवरतं निरन्तरं यथा स्यात् तथा यः रोधसि तीरे जलस्य प्रवेशः आगमनं तेन कलुषितः मलिनीकृतः प्रान्तः प्रान्तभागो यस्य तत्, अवशीर्यमाणानि शीर्णीभवन्ति इतस्ततः विकीर्यमाणानीति यावत् यानि उन्नालानि उद्दण्डानि नालसहितानीत्यर्थः यानि कुमुदानां कैरवाणां दलानि पत्राणि तैः गहनं निविडम्, आमग्नं समन्तात् जले निमग्नं कमलानां पद्मानां खण्डः समूहो यस्मिन् तत् ('अब्जादि कदम्बे खण्डमस्त्रियाम्' इत्यमरः), **उत्प्लव०**—उत्प्लवमानि उपरि तरन्ति आश्यानानि अशुष्काणि किञ्जल्कानां केसराणां दलानां शकलानि खण्डानि यस्मिन् तत्, आजर्जितानि समन्तात् जर्जरीभूतानि कह्लाराणि सौगन्धिकानि ('सौगन्धिकं तु कह्लारम्' इत्यमरः) श्वेतकमलानीति यावत् च कुवलयानि नीलकमलानि च यस्मिन् तत्, उद्भ्रान्तम् चकितं भ्रमत् भ्रमणं कुर्वत् च अलीनां भ्रमराणां वलयं कुलं यस्मिन् तत्, उड्डीनः कृतोड्डयनः हंसानां सार्थः समूहः यस्मात् तत्, न अवस्थानं वर्षाकारणेन स्थितिः येषां तथाभूताः ये सारसाः लक्ष्मणाः तेषाम् आरसितेन शब्देन करुणं दयाजनकम्, **अवशिष्ट०**—अवशिष्टानि शेषाणि यानि दलानि कमलपत्राणि तेषां तले नीचैः नीलीयमानानि निभृतम् आश्रयं गृह्णद्भिः उच्चकितानाम् उत्त्रस्तानां चक्रवाकाणां रथाङ्गनाम्नां युगलानि द्वन्द्वानि यस्मिन् तत्, उत्कम्पिताः भयत्रस्ताः ये कादम्बकाः हंसाः तेषां कदम्बकैः समूहैः आश्रियमाणः निवासत्वेन सेव्यमानः उपकूलं कूलस्य तटस्य समीपे यथा स्यात्तथा नड्वलः नडप्रायः प्रदेशो यस्य तत् ('नडप्रायो नाडकीयोऽनड्वान् नड्वलश्च सः' इति हैमः), **उत्कल०**-- उत् प्रावल्येन कलम् अस्पष्टमधुरं विरुतं

और कामदेव की हजारों बाणवृष्टियों से शरीर के ही साथ-साथ क्षीण होता हुआ-जैसा, थोड़ा ही बचा-खुचा, कल्पना से चित्रित अपनी-सी ही दशा वाले कादम्बरी के शरीर के ही साथ गले में आया हुआ प्राण किसी न किसी तरह रखता हुआ चन्द्रापीड़ उसी अच्छोद सरोवर पर पहुँच गया, जिसके वृक्षों के तल-भाग मेघों से गीले हुए पड़े थे, आसपास के हरे-भरे प्रदेश पानी में डूबे हुए थे, तीर के लता-वन रहने योग्य नहीं थे, प्रान्त-भाग लगातार तीर के जल के आ जाने से काले हुए पड़े थे, जो टूटे जा रहे डंडियों सहित कुमुदों के पत्तों से भरा हुआ था, जिसमें कमल-समूह डूबे हुए थे, पुष्पों के किञ्जल्कों (केसरों) के दलों के टुकड़े पानी में तैर रहे थे, कल्हार और कुवलय टूटे पड़े हुए थे, चौंकी हुई भ्रमर-पंक्ति मँडराये हुई थी, हंसों का समूह उड़ चुका था, जो (वर्षा के कारण) न बैठ सकने वाले सारसों के शब्दों से करुणाजनक बना हुआ था, जहाँ डरे हुए चकवा-चकवियों के जोड़े बचे-खुचे कमल के पत्तों के नीचे छिपे बैठ रहे थे, भय-कंपित हंसों के दल तीर के निकट नड़वाले प्रदेशों का आश्रय ले रहे थे, पास वाले

१. धाराधरजलक्लिन्न। २. अशेषतट। ३. दलकमलम्।

बकबलाककलापाध्यासितोपान्तपादपम्, उपहतं प्रावृषान्यदिव, दृष्टपूर्वमप्यदृष्टपूर्वमिव, अदत्तदृष्टिसुखम्, अनुत्पादितहृदयाह्लादम्, अनुपजनितमानसप्रीति तदेवाच्छोदमुपाहितद्विगुणदुःखमाससाद ।

आसाद्य चोपसर्पन्नेव सर्वाश्ववारानादिदेश । 'कदाचिदसौ वैलक्ष्यादस्मानालोक्यापसर्पत्येव । तच्चतुर्ष्वपि पार्श्वेष्ववहिता भवन्तु भवन्तः" इति । आत्मनापि तुरगगत एव खिन्नोऽप्यखिन्न इव विचिन्वल्लँतागहनानि तरुमूलानि शिलातलानि लसन्मण्डपांश्च समन्ताद् बभ्राम । भ्राम्यंश्च यदा न क्वचिदपि किञ्चिदवस्थानचिह्नमप्यद्राक्षीत्तदा चकार चेतसि । 'नियतमसौ पत्रलेखासकाशान्मदागमनमुपलभ्य प्रथममेवापक्रान्तो येनावस्थानचिह्नमात्रं कथमपि नोपलक्ष्यते । निरुद्धोद्देशं गतश्च क्वाप्यस्माभिरसावेवमन्विष्टोपि

विरावः येषां तथाभूताः ये कलापिनः मयूराश्च बकाः बकोटाश्च बलाकाः बिसकण्ठिकाश्च तासां कलापैः समूहैः अध्यासिताः अधिष्ठिताः उपान्तस्य समीपस्य पादपाः वृक्षाः यस्य तत्, प्रावृषा वर्षाकालेन उपहतम् आहतम् अत एव अन्यत् पूर्वापेक्षया इतरत् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् (दृश्यमानम्) पूर्वं दृष्टम् इति दृष्टपूर्वम् अपि पूर्वं न दृष्टम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, न दत्तः दृष्टेः चक्षुषः सुखम् आनन्दो येन तत्, न उत्पादितः जनितः हृदयस्य चेतस्य आह्लादः हर्षः येन तत् न उपजनिता उत्पादिता मानसस्य मनसः प्रीतिः प्रसन्नता येन तत्, उपाहितं स्थपितं कृतमित्यर्थः द्विगुणं द्विगुणितं दुःखं खेदः येन तत्, तत् पूर्वदृष्टम् एव अच्छोदम् एतन्नामकं सरोवरम् आससाद प्राप्तवान् ।

आसाद्य—आसाद्य प्राप्य च उपसर्पन् उपगच्छन् एव सर्वान् सकलान् अश्ववारान् सादिनः अश्वारोहिणः इति यावत् आदिदेश आज्ञां ददौ—"कदाचित् सम्भवतः असौ वैशम्पायनः वैलक्ष्यात् विस्मयमिश्रितलज्जाकारणात् अस्मान् आलोक्य दृष्ट्वा अपसर्पति अपगच्छति एव । तत् तस्मात् चतुर्षु अपि पार्श्वेषु भागेषु भवन्तः यूयं अवहिताः सावधानाः भवन्तु" इति । आत्मना स्वयम् अपि च तुरगे अश्वे गतः स्थितः अश्वारूढ इत्यर्थः एव खिन्नः अश्रान्तः इव विचिन्वन् अन्विष्यन् लतानां वल्लीनां गहनानि अन्तरालानि, तरूणां वृक्षाणां मूलानि बुध्नान् शिलानां तलानि पृष्ठानि लसतः पत्रपुष्पादिभिः भ्राजतः मण्डपान् लतामण्डपान् बभ्राम अभ्रमत् । भ्राम्यन् भ्रमद् च यदा न क्वचित् कुत्रापि अवस्थानस्य वासस्य चिह्नं लक्षणम् अपि न अद्राक्षीत् अपश्यत्, तदा चन्द्रापीडः चेतसि मनसि चकार अचिन्तयदित्यर्थः—'नियतम्, अवश्यम् असौ वैशम्पायनः पत्रलेखायाः सकाशात् पार्श्वात् मम आगमनम् मदागमनम् उपलभ्य ज्ञात्वा प्रथमं अस्मदागमनात् पूर्वम् एव अपक्रान्तः अपसृतः येन कारणेन अवस्थानस्य वासस्य चिह्नम् एव चिह्नमात्रं कथमपि केनापि प्रकारेण न उपलक्ष्यते । निरुद्धः शिलादिना अवरुद्धः प्रवेष्टुमशक्य इति यावत् उद्देशं स्थानं गतः प्रयातः । अस्माभिः असौ वैशम्पायनः अन्विष्टः विचितः क्वापि

वृक्षों में खूब मीठा शब्द करते हुये मोरों, बकों और बलाकाओं की पंक्तियाँ बैठी हुई थीं, जो वर्षा का मारा हुआ और-जैसा ही लग रहा था, पहले देखा हुआ भी पहले अनदेखा-जैसा प्रतीत हो रहा था, आँखों को सुख नहीं दे रहा था, हृदय को कुछ भी आह्लाद नहीं पैदा किये हुए था, मन को प्रसन्नता नहीं बल्कि दुगुना दुःख ही लाये हुए था ।

और पहुँच कर पास जाते ही चन्द्रापीड़ ने सब घुड़सवारों को आज्ञा दी—"सम्भवतः वैशम्पायन हमें देख लज्जा के मारे खिसक ही जाए, इसलिए चारों तरफ सावधान होकर रहो"। स्वयं भी वह घोड़े पर चढ़े हुए ही थका होता हुआ भी अनथका जैसा ढूँढता हुआ लताओं के झाड़ों, वृक्षों की जड़ों, शिलातलों, चमक रहे लता-मण्डपों में चारों ओर घूमा और घूमते हुए उसने जब कहीं वैशम्पायन के ठहरने का कोई भी चिह्न नहीं देखा, तो उसने सोचा—'निश्चय ही वह पत्रलेखा से मेरा आना मालूम करके पहले ही खिसक गया हो जिससे उसके ठहरने का चिह्न तक किसी तरह भी देखने में नहीं आ रहा है। (कहीं) अगम्य स्थान में चला गया है। ढूँढा हुआ भी वह हमारे देखने में नहीं आया है। इसलिये बड़ा

न दृष्टः। तत्कष्टतरमापतितम्। वैशम्पायनमदृष्ट्वास्मात्प्रदेशात्पदमपि गन्तुं पादावेव नोत्सहेते मे। मन्मथशरविक्षिप्ताश्च कादम्बरीदर्शनमात्रकावलम्बनाः क्षणमपि विलम्बमन्तरीकर्तुमक्षमा क्षामतया मा यासिषुः प्राणाः। सर्वथा विनष्टोऽस्मि। न दृष्टा देवी कादम्बरी। नापि वैशम्पायनः।' इत्येवमुत्पन्ननिश्चयोऽप्यपरिच्छेद्यस्वभावत्वात् प्रत्याशायाः 'कदाचिदस्य वृत्तान्तस्याभिज्ञा महाश्वेतापि भवत्येव तत्तां तावत्पश्यामि ततो यथायुक्तं प्रतिपत्स्ये' इत्यारोप्य हृदये तदाश्रमस्यैव नातिदूरे निवेशिततुरगसैन्यः सैन्यसमायोगमपनीय सर्पनिर्मोकपरिलघुनी घनोज्झितज्योत्स्नाभिरामे परिधाय वाससी तथास्थितपर्याणमेवेन्द्रायुधमारुह्य महाश्वेताश्रममुपजगाम। तत्र च प्रविशन्नेवावतीर्य महाश्वेतावलोकनकुतूहलात्पश्चादाकृष्टेनेन्द्रायुधपरिजनेनानुगम्यमानो विवेश। प्रविश्य च गुहाद्वार

कुत्रापि न दृष्टः विलोकितः। तत् तस्मात् अतिशयेन कष्टं कष्टतरं कृच्छ्रतरम् आपतितम् आगतम्। वैशम्पायनम् अदृष्ट्वा अनवलोक्य अस्मात् प्रदेशात् स्थानात् पदम् पाद-प्रक्षेपम् अपि गन्तुं चलितुं मे मम पादौ चरणौ एव न उत्सहेते शक्नुतः मन्मथस्य कामस्य शरैः बाणैः विक्षिप्ताः क्षुब्धाः कादम्बर्याः दर्शनम् अवलोकनम् एवेति दर्शनमात्रकम् अवलम्बनम् आश्रयः येषां तथाभूताः केवलं कादम्बरीं द्रष्टुमेव स्थिताः इत्यर्थः क्षणम् अपि विलम्बं कालातिपातम् अन्तरीकर्तुं मध्ये आनेतुम् अक्षमाः असमर्थाः प्राणाः क्षामतया क्षीणतया मा यासिषुः गच्छन्तु। सर्वथा सर्वप्रकारेण अहं विनष्टः हतः अस्मि। न देवी कादम्बरी दृष्टा विलोकिता नापि वैशम्पायनः दृष्ट इति शेषः।''

इत्येव०—इति एवं उत्पन्नः संजातः निश्चयः निर्णयः यस्य तथाभूतः अपि चन्द्रापीडः प्रत्याशायाः अपरिच्छेद्यः न परिच्छेत्तुं 'इदम् एवम्, इदं नैवम्' इत्यात्मकरूपेण निश्चेतुम् अशक्यः स्वभावः प्रकृतिः यस्याः तथाभूतायाः भावः तत्त्वं तस्मात् आशायां निश्चायककोटेरभावादिति यावत्, 'कदाचित् संभवतः महाश्वेता अपि अस्य वैशम्पायनसम्बन्धिनः वृत्तान्तस्य वृत्तस्य अभिज्ञा ज्ञात्री भवति एव, तत् तस्मात् तावत् आदौ तां महाश्वेतां पश्यामि, ततः तदनन्तरम्, युक्तम् अनतिक्रम्य इति यथोक्तं यथोचितं प्रतिपत्स्ये करिष्ये' इति हृदये स्वान्ते आरोप्य स्थापयित्वा तस्याः महाश्वेतायाः आश्रमस्य एव नातिदूरे नातिविप्रकर्षे निवेशितं स्थापितं तुरग-सैन्यम् अश्वसेना येन तथाभूतः चन्द्रापीडः सैन्यस्य सैन्यसम्बन्धिनमित्यर्थः समायोगं सम्बन्धम् अथवा वेषभूषादिकम् अपनीय दूरीकृत्य सर्पस्य यः निर्मोकः कञ्चुकः तद्वत् परिलघुनी सूक्ष्मे, घनेन मेघेन उज्झिता त्यक्ता या ज्योत्स्ना चन्द्रिका तद्वत् अभिरामे रम्ये (उभयत्र लुप्तोपमा) वाससी वस्त्रद्वयं परिधाय धृत्वा तथा तेन प्रकारेण एव स्थितं पर्याणं पल्ययनं यस्य तथाभूतम् इन्द्रायुधम् आरुह्य आरोहणं कृत्वा महाश्वेतायाः आश्रमं निवासस्थानम् उपजगाम उपागच्छत्। तत्र च प्रविशन् प्रवेशं कुर्वन् एव अवतीर्य अवतीर्णो भूत्वा महाश्वेतायाः यत् अवलोकनं दर्शनं तस्मिन् कुतूहलात् कौतुकात् पश्चात् आकृष्टेन आकर्षणविषयीकृतेन इन्द्रायुधस्य परिजनेन भृत्यवर्गेण अश्वपालैरित्यर्थः

मुश्किल हो गया है। वैशम्पायन को देखे बिना इस स्थान से मेरे पैर एक कदम भी जा नहीं सकते। कामदेव के बाणों से आहत, केवल कादम्बरी के दर्शन-मात्र का अवलम्ब रखे और बीच में पल भर का भी विलम्ब न सह सकते हुए मेरे प्राण कहीं दुर्बलता के कारण निकल न जायँ। मैं सब तरह से मारा गया। न देवी कादम्बरी देखी, न ही वैशम्पायन देखा'—यह निश्चय किये हुए भी आशा का स्वभाव निर्णयात्मक न होने के कारण—'हो सकता है कि महाश्वेता भी वैशम्पायन के वृत्तान्त से अभिज्ञ ही हो, अतः पहले उसे देखूँ, तब जो उचित होगा, वह करूँगा' यह (विचार) मन में रखकर महाश्वेता के आश्रम के थोड़े ही दूर सैनिक वेष-भूषा उतारकर, साँप की केंचुली के समान महीन, बादलों से परिमुक्त चाँदनी-जैसे रमणीय दो वस्त्र पहनकर उसी तरह जीन-कसे इन्द्रायुध पर सवार हो चन्द्रापीड महाश्वेता के आश्रम को चल दिया। प्रविष्ट होते ही उतरकर, महाश्वेता को देखने के कौतूहल से पीछे-पीछे खींचे आ रहे इन्द्रायुध के साईसों को साथ लिये चन्द्रापीड वहाँ पहुँच गया। पहुँचकर गुफा-द्वार

एव धवलशिलातले समुपविष्टामधोमुखीमसह्यमन्युवेगोत्कम्पितसर्वावयवामनवरतनयनजलवर्षिणीमुच्चण्डवर्षवाताहतां लतामिवोद्बाष्पदीनदृष्ट्या कथंकथमपि तरलिकया विधृतशरीरां महाश्वेतामपश्यत्। दृष्ट्वा च तां तादृशीमस्योदपादि हृदये। 'मा नाम देव्याः कादम्बर्या एव किमप्यनिष्टमुत्पन्नं भवेत्। येनेयमीदृश्यवस्था हर्षहेतावपि मदागमनेनुभूयते महाश्वेतया।' इत्याशङ्काभिन्नहृदयोयमुड्डीनैरेव प्राणैः पदे पदे स्खलन्निव मुह्यन्निवोपसृत्योपविश्य च तस्यैव शिलातलस्यैकदेशे प्रोद्बाष्पविषण्णवदनः किमेतदिति तरलिकामपृच्छत्। सा तु तदवस्थाया अपि महाश्वेताया एव मुखमवलोकितवती।

अथानुपसंहृतमन्युवेगापि गद्गदिकावगृह्यमाणकण्ठा महाश्वेतैव प्रत्यवादीत्।

अनुगम्यमानः अनुस्त्रियमाणः विवेश प्राविशत्। प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा च गुहायाः गह्वरस्य द्वारे द्वारि एव धवला श्वेतवर्णा या शिला तस्याः तले पृष्ठे समुपविष्टां स्थिताम्, अधः नीचैः मुखम् आननं यस्याः तथाभूताम् इदम् अन्यानि च महाश्वेताम् इत्यस्य विशेषणानि, **असह्य०**—असह्यः सोढुमशक्यः यो मन्योः दुःखस्य क्रोधस्य वा वेगः आवेशः ('मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः) तेन उत्कम्पिताः उद्वेपिताः सर्वे अवयवाः अङ्गानि यस्याः तथाभूताम्, अनवरतं निरन्तरं स्यात्तथा नयनयोः जलम् अश्रु वर्षतीत्येवंशीलाम्, उच्चण्डः अतितीव्रः यः वर्षावातः वृष्टिसहितो वायुः तेन आहताम् ताडिताम्, लताम् वल्लीम् इवेत्युपमायाम्, उत् उद्गतः वाष्पः अश्रु यस्याः तथाभूता च दीना दैन्य-पूर्णा च दृष्टिः दृक् यस्याः तथा कथं कथमपि केनापि प्रकारेण तरलिकया एतदाख्य-सख्या विधृतं धारितं शरीरं देहः यस्याः ताम् महाश्वेताम् अपश्यत् अद्राक्षीत्। दृष्ट्वा विलोक्य च ताम् तादृशीं तथाविधावस्थाम् अस्य चन्द्रापीडस्य हृदये स्वान्ते उदपादि उत्पन्नम् मनसि अचिन्तयदित्यर्थः। 'मा न नामेति कोमलामन्त्रणे देव्याः कादम्बर्याः एव किमपि अनिर्देश्यं अनिष्टम् अशुभम् उत्पन्नं संजातं भवेत् स्यात् येन कारणभूतेन हर्षस्य मोदस्य हेतौ कारणे मम आगमने अपि महाश्वेतया इयम् एषा, ईदृशी एवंविधा अवस्था दशा अनुभूयते अनुभवविषयीक्रियते'—इति आशङ्का भयं तया भिन्नं दीर्णं हृदयं यस्य तथाभूतः अयं चन्द्रापीडः उड्डीनैः कृतोड्डयनैः एव प्राणैः पदे-पदे प्रतिपादक्षेपम् स्खलन् स्खलनं कुर्वन् इव पतत् पतनं कुर्वन् इव मुह्यन् मूर्छन् इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षा, उपसृत्य उपगम्य, तस्य महाश्वेताधिष्ठितस्य एव शिलातलस्य एकस्मिन् देशे भागे उपविश्य निषद्य च, प्रकर्षेण उद्गतः इति प्रोद्गतः यः वाष्पः अश्रु तेन विषण्णं विषादं प्राप्त वदनं मुखं यस्य तथाविधः चन्द्रापीडः 'एतत् किम्' इति तरलिकाम् अपृच्छत् पप्रच्छ। सा तरलिका तु सा अवस्था दशा यस्याः तथाभूताया अपि महाश्वेतायाः एव मुखं वदनम् अवलोकितवती दृष्टवती।

अथा०—अथ तत्पश्चात् न उपसंहृतः समापितः मन्योः क्रोधस्य शोकस्य वा वेगः आवेशः यया तथाभूता अपि गद्गदिकया गद्गदवाचा अवगृह्यमाणः रुध्यमानः कण्ठः गलो यस्याः सा

पर ही उसने श्वेत शिलातल पर बैठी महाश्वेता देखी, जिसने मुँह नीचे कर रखा था, जिसके सभी अंग असह्य क्रोधावेश में थरथर काँप रहे थे, जो नयनों से निरन्तर अश्रुजल बरसा रही थी, वर्षा के प्रचण्ड झंझावात से मारी लता के समान बनी हुई थी और जिसकी देह डबडबाई, उदास दृष्टि वाली तरलिका द्वारा थामी हुई थी। उसे उस अवस्था में देखकर, चन्द्रापीड़ के मन में विचार उठा—'देवी कादम्बरी को ही कहीं कोई अनिष्ट न हो गया हो जिससे हर्ष का के कारणभूत मेरे आगमन से भी यह ऐसी हालत भोग रही है' इस आशंका से हृदय में विदीर्ण हुआ वह उड़े हुए प्राणों से ही पद-पद पर लड़खड़ाता हुआ-जैसा, गिरता हुआ-जैसा, मूर्छा खाता हुआ-जसा पास जाकर, उसी शिला तल के एक कोने में बैठकर, मुख से उदास और आँसू बहाता हुआ तरलिका को पूछ बैठा—'यह क्या (मामला) है?' किन्तु वह ऐसी हालत में भी महाश्वेता का ही मुँह देखती रही।

तदनन्तर क्रोधावेश को न समाप्त किये भी गले में घिग्घी बाँधे महाश्वेता ही बोल

"महाभाग किमियमावेदयति वराकी। यया दुःखाभिघातैककठिनहृदयया पुनरप्यदुःखश्रवणार्हेपि दुःखमात्मीयं श्रावितं सैवाहं मन्दभाग्या महाभाग जीवितव्यसनिनी निर्लज्जा निर्घृणा च दुःश्रवणमपि श्रावयामि दुःखमिदम्। श्रूयताम्। केयूरकाद्भवद्गमनमाकर्ण्य विदीर्णमानसा न मया चित्ररथस्य मनोरथः पूरितो न मदिरायाः प्रार्थना कृतार्थिता नात्मनः समीहितं संपादितं न गृहाभ्यागतस्य चन्द्रापीडस्य प्रियमनष्ठितं न चापि हृदयवल्लभसमागमनिर्वृता प्रियसखी कादम्बरी वीक्षितेत्युत्पन्नानेकगुणवैराग्या गाढबन्धान्कादम्बरीस्नेहपाशानपि छित्त्वा पुनः कष्टतरतपश्चरणायात्रैवायाता यावदत्र महाभागस्यैव तुल्याकृतिमुन्मुक्तमिवान्तःकरणेन शून्यशरीरमुत्तरलमुखमुत्प्लुताबद्धलक्ष्य-

---

महाश्वेता एव प्रत्यवादीत् प्रत्युक्तवती—'हे महाभाग ! इयं वराकी दीना तरलिका किम् आवेदयति कथयति ? दुःखस्य यः अभिघातः प्रहारः तेन एकम् अद्वितीयं कठिनं हृदयं यस्याः तथाभूतया यया मया महाश्वेतयेत्यर्थः न दुःखस्य श्रवणस्य आकर्णनस्य अर्हे योग्ये अपि भवति आत्मीयं स्वकीयं दुःखं श्रावितं श्रोतुं प्रेरितम्, सा एव अहं मन्दं स्वल्पं भाग्यं यस्याः तथाभूता भाग्यहीनेत्यर्थः हे महाभाग, जीविते प्राणेषु व्यसनम् आसक्तिः यस्याः सा प्राणधारणमात्रानुरागिणीत्यर्थः, निर्लज्जा निष्त्रपा, निर्घृणा निर्दया, च दुः दुःखेन श्रवणम् यस्य तत् दुःश्रवमित्यर्थः अपि इदं दुःखं श्रावयामि श्रोतुं प्रेरयामि। श्रूयताम् आकर्ण्यताम्। केयूरकात् केयूरकसकाशात् भवतः गमनं हेमकूटात् प्रयाणम् आकर्ण्य श्रुत्वा विदीर्णं भिन्नं मानसं मनो यस्याः तया मया चित्ररथस्य कादम्बर्याः पितुः मनोरथः अभिलाषः न पूरितः अनुष्ठितः अर्थात् तत्पुत्र्याः कादम्बर्याः चन्द्रापीडेन सह विवाहो न कारितः मदिरायाः कादम्बरी-जनन्याः प्रार्थना अभ्यर्थना अपि न कृतार्थिता कृतार्थीकृता अर्थात् कादम्बरी प्रतिज्ञां कृतवती यत् यावत् मे सखी महाश्वेता विवाहं न करोति तावत् अहमपि विवाहं न करिष्ये, इति। मदिरया महाश्वेता विवाहार्थं तथा प्रार्थिता यथा तद्-विवाहानन्तरं तत्पुत्री अपि विवाहं करिष्यति, किन्तु महाश्वेता विवाहं न करोति, मदिराया प्रार्थनापि तया न सफलिता। न आत्मनः स्वस्याः समीहितम् अभीष्टं संपादितम् अनुष्ठितम् न गृहे अभ्यागतस्य अतिथि-रूपेण समायातस्य चन्द्रापीडस्य (अत्र 'भवतः' इति सुवचम्) प्रियम् इष्टम् अनुष्ठितं विहितम्, न चापि हृदय-वल्लभस्य हृदयप्रियस्य भवत इत्यर्थः समागमेन आगमनेन निर्वृता प्रसन्ना प्रियसखी कादम्बरी वीक्षिता दृष्टा इति कारणेन उत्पन्नं सञ्जातम् अनेकगुणम् अनेकैः गुणितम् अतिमहदित्यर्थः वैराग्यं विरक्तिः यस्याः तथाभूता गाढः दृढः बन्धः ग्रन्थिरिति यावत् येषां तथाभूतान् कादम्बर्यां यः स्नेहः अनुरागः तस्य पाशान् बन्धनानि अपि छित्त्वा त्रोटयित्वा पुनः कष्टतरम् अतिशयेन कष्टकरं यत् तपः तपस्या तस्य चरणाय अनुष्ठानाय यावत् अत्रैव आयाता आगता (अत्र यावद्-योगे आयामीत्येव सुवचम्), तावत् महाभागस्य भवतः एव तुल्या सदृशी आकृतिः आकारो यस्य तम्, अन्तःकरणेन चेतसा उन्मुक्तं परित्यक्तम् इव अत एव शून्यं रिक्तं शरीरं यस्य तम्, उत्तरलम् अतिचञ्चलं मुखं वदनं यस्य तम्, उत्प्लुता

पड़ी—"महाभाग ! यह बेचारी क्या बोलेगी। दुःख की चोटों से असाधारण कठोर बने हृदय वाली जिसने फिर दुःख न सुनने योग्य आपको अपना दुःख सुनाया था, हे महाभाग ! वही मन्दभागिनी, प्राणों से अनुराग रखने वाली, निर्लज्ज, निर्दय मैं सुनने में कठिन यह दुःख सुनाती हूँ। सुनिए। केयूरक से आपका जाना सुनकर हृदय में विदीर्ण हुए मैंने न चित्ररथ की इच्छा पूरी की, न मदिरा की प्रार्थना सफल होने दी, न अपना ही भला किया, न अतिथि-रूप में घर आये चन्द्रापीड का प्रिय किया और न ही प्राणप्रिय के आगमन से प्रसन्न हुई प्रिय सखी कादम्बरी देखी' इस कारण कितना ही गुना वैराग्य हो जाने से मजबूत गाँठ देकर बँधे कादम्बरी के स्नेह-पाशों को भी तोड़कर और भी अधिक कष्टकर तप करने हेतु ज्यों ही यहाँ आयी थी कि यहाँ मैंने आपकी-सी आकृति का, अन्तःकरण द्वारा परित्यक्त-जैसा, सूने शरीर और चंचल मुख

शून्यया दृष्ट्या प्रनष्टमिव किमपीतस्ततो विलोकयन्तं ब्राह्मणयुवानमपश्यम्। स तु मामुपसृत्यानन्यदृष्टिः, अदृष्टपूर्वोपि प्रत्यभिजानन्निव, असंस्तुतोपि चिरपरिचित इव, असंभावितोप्युपारूढप्रौढप्रणय इव, अस्निग्धोपि परवानिव प्रेम्णा, शून्योपि किमप्यनुस्मरन्निव, दुःखिताकारोपि सुखायमान इव, तूष्णीमपि स्थितः प्रार्थयमान इव, अपृष्टोप्यावेदयन्निवात्मीयामेवावस्थाम्, अभिनन्दन्निवानुशोचन्निव हृष्यन्निव विषीदन्निव बिभ्यदिवाभिभवन्निव हृत इवाकाङ्क्षन्निवानुस्मरन्निव विस्मृतनिमेषेण निश्चलस्तब्धपक्ष्मणान्तर्बाष्पपूरार्द्रेण कर्णान्तचुम्बिना विकसितेनेवामुकुलिततारकेण चक्षुषा मत्त इवाविष्ट इव वियुक्त इव पिबन्निवाकर्षन्निवान्तर्विशन्निव च सुचिरमालोक्याब्रवीत्। 'वरतनु, सर्व एव हि जगति जन्मनो वयस आकृतेर्वा सदृशमाचरन्न वचनीयतामेति।

उपरिगता आबद्धेन नियतेन लक्ष्येण शून्या च या दृष्टिः तया प्रनष्टं गतं किमपि (वस्तु), इस्ततः यत्र-तत्र विलोकयन्तं विक्षमाणं ब्राह्मणश्चासौ युवा तरुणः तम् अपश्यम् दृष्टवती। स च युवा माम् उपसृत्य उपगम्य न अन्यस्मिन् दृष्टिः दृक् यस्य सः, न पूर्वं दृष्टः इति अदृष्टपूर्वः अपि प्रत्यभिजानन् प्रतिसंदधानः 'स एवायं देवदत्तः यो मया पूर्वं वाराणस्यां दृष्टः' इत्यात्मकप्रत्यक्षस्मृत्योः सम्मिश्रणात्मकज्ञानविषयीकुर्वन् इति यावत् इव, असंस्तुतः अपरिचितोऽपि चिरात् परिचित इव संस्तुत इव, असंभावितः अतिशयेन असत्कृतोऽपि उपारूढः अंकुरितः प्रौढः महान् प्रणयः स्नेहः यस्मिन् तथाभूतः इव, अस्निग्धः अजातस्नेहोऽपि प्रेम्णा परवान् पराधीनः इव शून्यः अपि किमपि अनुस्मरन् अनुध्यायन् इव, दुःखितः दुःखपूर्णः आकारः आकृतिः यस्य तथाभूतोऽपि सुखः सुखपूर्णः इवाचरतीति सुखायमानः ('सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते') इव, तूष्णीं स्थितोऽपि मौनमाश्रितोऽपि प्रार्थयमानः याचनां कुर्वन् इव, अपृष्टः अननुयुक्तोऽपि आत्मीयां स्वकीयाम् अवस्थां दशाम् आवेदयन् विज्ञापयन् इव, अभिनन्दन् प्रशंसां कुर्वन् इव, अनुशोचन् शोकं कुर्वन् इव, हृष्यन् प्रसीदन् इव, विषीदन् विषादं कुर्वन् इव, बिभ्यत् त्रस्यन् इव, अभिभवन् पराभवन् इव, हृतः मुषितः इव, आकाङ्क्षन् अभिलषन् इव विस्मृतम् अनुस्मरन् स्मृतिविषयं नयन् इव, अनिमेषेण निर्निमेषेण एकताननेति यावत् निश्चलं स्थिरं स्तब्धं रुद्धं च पक्ष्म नेत्ररोम यस्य तेन, अन्तः मध्ये बाष्पस्य अश्रुणः पूरेण प्रवाहेण आर्द्रेण क्लिन्नेन कर्णस्य अन्तं प्राप्तं चुम्बति स्पृशतीत्येवंशीलेन विकसितेन प्रफुल्लितेन इव, मुकुलिता मुकुलावस्थां प्राप्ता तारका कनीनिका यस्य तेन चक्षुषा नेत्रेण मत्तः क्षीवः इव, आविष्टः भूतग्रस्तः इव, वियुक्तः विरहित इव पिबन् पानविषयीकुर्वन् इव, आकर्षन् आकर्षणं कुर्वन् इव, अन्तः मध्ये विशन् प्रविशन् इवेति उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा, सुचिरं दीर्घकालं यावत् आलोक्य दृष्ट्वा अब्रवीत् अकथयत्—'वरा रमणीया तनुः शरीरं यस्याः तत्सम्बुद्धौ हे वरतनु ! जगति संसारे हि निश्चयेन सर्वः एव जन इति शेषः जन्मनः उत्पत्तेः वयसः अवस्थायाः आकृतेः आकारस्य वा सदृशम् अनुसारेण आचरन् कार्यं कुर्वन् वचनी-

वाला एक युवा ब्राह्मण देखा, जो ऊपर उठी, बिना लक्ष्य बाँधे दृष्टि से कुछ खोयी हुई-जैसी वस्तु को इधर-उधर देख रहा था। वह मेरे समीप आकर अन्यत्र कहीं दृष्टि न डाले, पहले का अनदेखा हुआ भी चिरपरिचित-जैसा, आतिथ्य से असंमानित होता हुआ भी बड़ा भारी प्रेम रखे-सा, स्नेह-रहित होता हुआ भी प्रेमाधीन हुआ-जैसा, सूना होता हुआ भी कुछ याद करता हुआ-सा, आकार में दुःखी होता हुआ सुख अनुभव करता हुआ-सा, चुपचाप खड़ा हुआ भी प्रार्थना करता हुआ-सा, अनपूछा भी अपना ही हाल बताता हुआ-सा, अभिनन्दन करता हुआ-सा, दुःखी होता हुआ-सा, प्रसन्न होता हुआ-सा, विषाद में पड़ता हुआ सा, डरता हुआ-सा, तिरस्कार करता हुआ-सा, लुटा हुआ-सा, चाहता हुआ-सा, भूले हुए की याद करता हुआ-सा, निश्चल-स्तब्ध बरौनियों वाली, अश्रुप्रवाह से गीली बनी कान तक पहुँची विकसित हुई-सी, अधखुली पुतली वाली एकटक आँख से शराबी-सा, भूत-लगा-सा, वियुक्त-सा, पीता हुआ-सा, खींचता हुआ-सा, भीतर प्रवेश करता हुआ-सा, देर तक देखकर बोला—'सुन्दरी, जन्म, अवस्था अथवा

तव पुनरेकान्तवामप्रकृतेर्विधेरिव विसदृशानुष्ठाने कोयं प्रयत्नः। यदियमक्लिष्टमालती-कुसुमसुकुमारा मालेव कण्ठप्रणयैकयोग्या तनुरनुचितेनामुना कष्टतरतपश्चरणपरिक्लेशेन ग्लानिमुपनीयते। रूपवयसोरनुरूपेण सुमनोहारिणी लतेव रसाश्रयिणा फलेन किमर्थं न संयोज्यते। जातस्य हि रूपगुणविहीनस्यापि जन्मोपनतानि जीवलोकसुखान्यनुभूय शोभते परत्र संबन्धी तपश्चरणपरिक्लेशः। किं पुनराकृतिमतो जनस्य। तद्दुःखयति मामस्यास्ते स्वभावसरसायास्तनोर्मृणालिन्या इव तुहिनपातस्तपःपरिक्लेशः। यदि च त्वादृशी जीवलोकसुखेभ्यः पराङ्मुखी तपसा क्लेशयत्यात्मानं तदा वृथा वहति धनुर-

---

यतां निन्दनीयतां न एति प्राप्नोति, पुनः किन्तु एकान्तम् नितान्तं यथा स्यात्तथा वामा प्रतिकूला प्रकृतिः स्वभावः यस्य तथाविधस्य विधेः विधातुः इवेत्युपमायाम् तव विसदृशम् अननुरूपं यत् अनुष्ठानं कार्यकरणं तप इत्यर्थः तस्मिन् कः अयं प्रयत्नः प्रयासः। यत् यस्मात् अक्लिष्टानि अनुपहतानि स्पर्शादिना विकृतिं न नीतानीति यावत् यानि मालत्याः कुसुमानि पुष्पाणि तेषाम् अथ च तद्वत् (लुप्तोपमा) सुकुमारा कोमला माला हारः इवेति श्लिष्टोपमायाम्, कण्ठे गले यः प्रणयः धारण-स्नेहः तस्य एका केवला योग्या, केवलं गले धारणयोग्येति यावत् तनुः शरीरम् अनुचितेन अयोग्येन अमुना एतेन अतिशयेन कष्टं कष्टकरं यत् तपः तस्य चरणस्य अनुष्ठानस्य परिक्लेशेन श्रमेण ग्लानिं म्लानिम् उपनीयते प्राप्यते? रूपं सौन्दर्यं वयः अवस्था च तयोः अनुसारेण सुमनोभिः पुष्पैः हारिणी मनोहारिणी लता वल्ली इवेति श्लिष्टोपमायाम् सुमनसः सज्जनाः तेषां हारिणी मनोज्ञा तनुः (पूर्वतोऽनुवृत्ता) रसं माधुर्यम् अथ च शृङ्गारं प्रेमाणमिति यावत् आश्रयतीत्येवंशीलेन फलेन प्रसवेन अथ च साध्येन, परिणामे न भोगेनेति यावत् किमर्थं कथं च न संयोज्यते संयुक्तीक्रियते अथ च उपयुज्यते। हि यतः जातस्य जन्म गृहीतवतः रूपं सौन्दर्यं गुणः तेन विहीनस्य रहितस्य अपि जनस्येति शेषः जन्मनि इहजन्मनि उपनतानि प्राप्तानि जीवलोकस्य संसारस्य सुखानि सौख्यानि अनुभूय उपभुज्य परत्र परलोके सम्बन्धी रूपादिप्राप्तिविषयकः तपश्चरणस्य तपस्यानुष्ठानस्य परिक्लेशः श्रमः शोभते भाति, किं पुनः भण्यते इत्यर्थः आकृतिमतः सौन्दर्याकारादिगुणसम्पन्नस्य जनस्य। तत् तस्मात् स्वभावतः निसर्गतः सरसायाः रसयुक्तायाः मृणाल्याः कमलिन्या तुहिनस्य हिमस्य पातः पतनम् इवेत्युपमायाम् स्वभावतः सरसायाः रसोपयुक्तायाः स्वादयोग्यायाः उपभोग्यायाः इति यावत् ते तव अस्याः तनोः शरीरस्य तपसः तपस्यायाः परिक्लेशः मां दुःखयति दुःखीकरोति। यदि च त्वादृशी त्वत्सदृशी नारीति शेषः जीवलोकस्य संसारस्य सुखेभ्यः सौख्येभ्यः पराङ्मुखी विमुखी सती तपसा तपस्यया आत्मानं क्लेशयति क्लेशं प्रापयति तदा तर्हि कुसुमकार्मुकः कामः अधिज्यं ज्याम् अधिरूढं धनुः

आकृति के अनुसार कार्य करते हुए सभी लोग जगत में निन्दा के पात्र नहीं होते हैं, किन्तु नितान्त प्रतिकूल स्वभाव के विधाता की तरह तुम क्यों प्रतिकूल काम करने का प्रयत्न कर रही हो, जिससे केवल गले से प्रणय (लगाव) रखने योग्य, मालती के फूलों की तरह अछूती माला की तरह केवल गले के प्रणय-योग्य, मालती के फूलों-जैसी मृदु यह अछूती काया इस अनुचित अतिकठिन तपश्चर्या के क्लेश से मुरझा रही है? सुमनों (फूलों) से मनोहर वनी लता जिस तरह रूप और अवस्था के अनुरूप, रस-भरे फल से युक्त होती है, उसी तरह सुमनों (सहृदयों) को आकृष्ट कर देने वाली तुम्हारी यह काया रूप और अवस्था के अनुरूप सरस फल (उपभोग) से युक्त क्यों नहीं की जा रही है? क्योंकि उत्पन्न हुए जीव को सौन्दर्य-गुण से हीन होते हुये भी जीवन में प्राप्त संसार के सुखों को भोग कर परलोक-सम्बन्धी तपश्चर्या का क्लेश शोभा देता है। सुन्दर आकृति वाले व्यक्ति की तो बात ही क्या। इसलिये स्वभावतः सरस (आर्द्र) कमलिनी पर हुए तुषार-पात की तरह तुम्हारी स्वभावतः सरस (उपभोग-योग्य, रम्य) इस देह पर तपश्चर्या का क्लेश मुझे दुःख दे रहा है। यदि तुम-जैसी (सुन्दरी) संसार

धिज्यं कुसुमकार्मुकः। निष्कारणमुदयति चन्द्रमाः। वृथा वसन्तमासाभ्यागमः। निष्फलानि कुमुदकुवलयकह्लारकमलाकरविकसितानि। निष्प्रयोजना जलदसमयारम्भाडम्बराः। निरर्थकान्युपवनानि। किं ज्योत्स्नया। किं वा लीलासरित्पुलिनैर्मलयानिलेन वा' इति।

अहं तु देवस्य पुण्डरीकस्यैव वृत्तान्तादपेतकौतुका सर्वथा तं वदन्तमपि कस्त्वं कुतो वा समायातः किमर्थं वा मामेवमभिदधासीत्यपृष्ट्वैवान्यतोगच्छम्। गत्वा च देवार्चनकुसुमान्याचिन्वतीं तरलिकामाहूयाब्रुवम्। 'तरलिके योयं युवा कोपि ब्राह्मणाकृतिरस्यावलोकयतो वदतश्चान्यादृश एवाभिप्रायो मयोपलक्षितः। तन्निवार्यतामयं यथा पुनरत्र नागच्छति। अथ निवारितोप्यागमिष्यति तदावश्यमेवास्याभद्रकं भविष्यति'

चापं वृथा मुधा वहति धारयति। निष्कारणं विना कारणं चन्द्रमाः चन्द्रः उदयति उदेति। वसन्तमासस्य वसन्ततोंः अभ्यागमः आगमनं वृथा व्यर्थम्। कुमुदानि च कुमुलयानि च कह्लाराणि च कमलानि च तेषाम् आकराणां वनानां समूहानामिति यावत् विकसितानि विकसनानि निष्फलानि व्यर्थानि सन्तीति शेषः। जलदानां मेघानां समयस्य कालस्य वर्षतोंरिति यावत् यः आरम्भः प्रारम्भः तस्य आडम्बराः मेघानां प्रदर्शनानि निष्प्रयोजनाः निरर्थकाः। उपवनानि उद्यानानि निरर्थकानि व्यर्थानि। ज्योत्स्नया चन्द्रिकया किम् तस्याः न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः। वा अथवा लीलार्थं विहरणार्थं सरितां नदीनां पुलिनानि सैकतमयाः तटप्रदेशाः तैः मलयस्य मलयाचलस्य अनिलेन वायुना किम्? तेषां न कोऽप्यर्थः इति भावः। चन्द्रवसन्तादीनि कामोद्दीपनानि भवन्ति, यदि तानि त्वयि कामं नोद्दीपयन्ति तपसि च प्रवर्तयन्ति, तर्हि तेषां जगति नास्ति कोऽप्युपयोगः इत्याशयः।

अहं तु देवस्य पूज्यस्य पुण्डरीकस्य एव वृत्तान्तात् घटनातः सर्वथा सर्वप्रकारेण अपेतं दूरीभूतं कौतुकं कुतूहलं यस्याः तथाभूता सती वदन्तं कथयन्तम् अपि तं ब्राह्मण-युवानम् 'त्वं कः असि? कुतः कस्मात् प्रदेशात् समायातः समागतः असि? किमर्थं कस्मात् वा माम एवम् अभिदधासि कथयसि? इति अपृष्ट्वा प्रश्नं न कृत्वा एव अन्यतः अन्यस्मिन् स्थाने अगच्छम् गतवती। गत्वा च देवस्य महादेवस्य अर्चनाय पूजनाय कुसुमानि पुष्पाणि आचिन्वतीम् अवचयं कुर्वतीं तरलिकाम् आहूय आकार्य अब्रुवम् अकथयम्—'तरलिके यः अयम् एष ब्राह्मणस्य आकृतिः यस्य यः, कोऽपि युवा तरुणः अस्तीति शेषः, अवलोकयतः मां पश्यतः वदतः कथयतश्च अन्यादृशः अन्यविधः कामिजनसदृशः इति यावत् एव अभिप्रायः आशयः मया उपलक्षितः ज्ञातः। तत् तस्मात्, अयं युवा निवार्यतां प्रतिषिध्यतां यथा पुनः अत्र अस्मिन् स्थाने न आगच्छति आयाति। अथ यदि निवारितः प्रतिषिद्धः अपि आगमिष्यति आयास्यति, तदा अवश्यं

के सुखों से मुँह मोड़े, तप द्वारा अपने को क्लेश में डालती है तो कामदेव वृथा ही डोरी पर चढ़ा धनुष रखता है। चन्द्रमा विना कारण उदय होता है। वसन्त-मास का आना वेकार है। कुमुदों, कुवलयों, कल्हारों और कमलों के समूह का खिलना निष्फल है। वर्षाकाल के आरम्भ के मेघाडम्बरों का कोई प्रयोजन नहीं। उपवन व्यर्थ हैं। चाँदनी से अथवा विहरण हेतु नदियों के रेतीले मैदानों से अथवा मलयाचल की वायु से क्या मतलब?"

मैं तो पूज्य पुण्डरीक वाली घटना से ही सर्वथा कुतूहल खोये, उसे बोलते जाते हुए भी यह न पूछकर ही कि 'तुम कौन हो? अथवा कहाँ से आये हो? अथवा क्यों मुझे ऐसी बातें कह रहे हो?' दूसरी तरफ चल दी। चलकर शिव-पूजन हेतु फूल तोड़ रही तरलिका को बुलाकर बोली—'तरलिका! यह जो ब्राह्मण की आकृति वाला युवा है, इसके देखने ओर बोलने का आशय मैंने और ही तरह का पाया है, अतः इसे हटा दो जिससे कि वह फिर यहाँ न आने पावे। यदि हटाया हुआ भी वह फिर आएगा, तो अवश्य ही उसका बुरा होगा।'

इति। स तु निवार्यमाणोपि दुर्निवारवृत्तेर्मदनहतकस्य दोषैर्भवितव्यतया वानर्थस्य नात्याक्षीदेवानुबन्धम्। अतीतेषु केषुचिद्दिवसेष्वेकदा गाढायां यामिन्यामुद्गिरत्स्विव भरेणोद्दीपितस्मरानलं ज्योत्स्नापूरमिन्दुमयूखेषु, लब्धनिद्रायां तरलिकायाम्, अप्राप्तसुखा संतापान्निर्गत्यास्मिन्नेव शिलातले विमुक्ताङ्गी कह्लारसुरभिणा मन्दमन्देनाच्छोदानिलेन वीज्यमाना, वर्णसुधाकूर्चकैरिव करैर्धवलितदशाशामुखे चन्द्रमसि निहितदृष्टिः, 'अपि नामायमेभिरमृतवर्षिभिरखिलजगदाह्लादकारिभिः करैश्चन्द्रमास्तमपि हृदयवल्लभं मे वर्षेत्, इत्याशंसाप्रसङ्गेन देवस्य सुगृहीतनाम्नः पुण्डरीकस्य स्मरन्ती, कथमभाग्यैर्मे मन्दपुण्यायास्तादृशस्यापि दिव्याकृतेर्महापुरुषस्य तस्य नभसोवतीर्णस्य भाषितमलीक-

---

नियतम् अस्य यूनः अभद्रकम् अशुभं भविष्यति जनिष्यते। स युवा तु निवार्यमाणः निषिध्यमानः अपि दुःखेन निवारयितुं शक्या इति दुर्निवारा वृत्तिः वर्तनं यस्य तथाभूतस्य हतः एव हतकः हतकश्चासौ मदनः इति मदनहतकः (आहिताग्नित्वात् मदनशब्दस्य पूर्वनिपातः) दग्धकामः इत्यर्थः तस्य दोषैः अवगुणैः वा अथवा अनर्थस्य उपद्रवस्य भवितव्यतया अवश्यंभावित्वात् अनुबन्धम् आसक्तिं न अत्याक्षीत् अत्यजत्। **अती०**—अतीतेषु व्यतीतेषु केषुचित् दिवसेषु दिनेषु एकदा एकस्मिन् समये गाढायां घोरायां यामिन्यां निशीथे इति यावत् इन्दोः चन्द्रमसः मयूखेषु किरणेषु भरेण अतिशयेन उद्दीपितः उत्तेजितः स्मरः मदनः एव अनलः अग्निः तम् इव ज्योत्स्नायाः चन्द्रिकायाः पूरं प्रवाहम् उद्गिरत्सु उद्वमत्सु सत्सु, तरलिकायां लब्धा प्राप्ता निद्रा यया ताम् निद्रितामिति यावत् सत्याम्, संतापात् हृदि संतापकारणात् न प्राप्तं लब्धं सुखं सौख्यं यया तथाभूता अहं निर्गत्य गुहातो बहिरागत्य अस्मिन् शिलातले शिलापृष्ठे एव विमुक्तानि शिथिलीकृतानि अङ्गानि यया सा, कह्लारैः सौगन्धिकैः सुरभिणा सुगन्धितेन मन्दमन्देन मन्थर-मन्थरेण अच्छोदस्य सरसः अनिलेन पवनेन वीज्यमाना वीजनविषयीक्रियमाणा, वर्णसुधा श्वेतवर्णसुधा 'चूना' इति भाषायां प्रसिद्धा तस्याः कूर्चकैः तूलिकाभिः इवेत्युपमायाम् करैः किरणैः धवलितानि श्वेतीकृतानि दशानाम् आशानां दिशानां मुखानि येन तथाभूते चन्द्रमसि शशिनि निहिता न्यस्ता दृष्टिः दृक् यया तथाभूता, 'अपि' सम्भावनायाम् अव्ययम्, नामेति कोमलामन्त्रणे, अयम् एष चन्द्रमाः अमृतं सुधां वर्षन्तीत्येवंशीलैः अखिलस्य समस्तस्य जगतः आह्लादं मोदं कुर्वन्तीत्येवंशीलैः करैः रश्मिभिः तं मे हृदय-वल्लभं प्राणप्रियम् पुण्डरीकमित्यर्थः वर्षेत् अमृतवृष्टिविषयीकुर्यात् इत्यर्थः', इति आशंसा आशा तस्याः प्रसङ्गेन सम्बन्धेन सुगृहीतं सुस्मरणीयमित्यर्थः नामधेयं नाम यस्य तस्य प्रातःस्मरणीयस्येत्यर्थः पुण्डरीकस्य स्मरन्ती स्मृतिविषयीकुर्वती (कर्मणि षष्ठी), कथम् मन्दं स्वल्पं पुण्यं सुकृतं यस्याः तस्या मे महाश्वेतायाः अभाग्यैः दुर्भाग्यैः तादृशस्य तथाविधस्य नभसः गगनात् अवतीर्णस्य

किन्तु रोका जाता हुआ भी वह न रोके जा सकने योग्य करतूतों वाले कामदेव के दोषों से अथवा अनर्थ की भवितव्यता के कारण पीछा नहीं छोड़ रहा था। कुछ दिन बीते, एक बार घोर रात में जब चन्द्रमा की किरणें अत्यन्त भड़की कामाग्नि-जैसी ज्योत्स्ना का प्रवाह उगल रही थीं और तरलिका को नींद आई हुई थी, निद्रा-सुख न प्राप्त किए, सन्ताप के कारण बाहर आकर इसी शिलातल पर अंगों को ढीला-ढाला छोड़े, कल्हारों से सुगन्धित, मन्द-मन्द, अच्छोद सरोवर की हवा खाती हुई, चूने की कूचियों-जैसे दशों दिशाओं के मुखों को धवलित किये चन्द्रमा पर दृष्टि गाड़े मैं 'सम्भवतः अमृत बरसाने वाले, अखिल जंगल के आह्लादक किरणों से चन्द्रमा मेरे उन प्राण-वल्लभ (पुण्डरीक) पर भी (अमृत) बरसा रहा हो' इस आशा के प्रसंग में पूज्य, प्रातःस्मरणीय पुण्डरीक की याद करती हुई 'मुझ मन्दभागिनी के दुर्भाग्यों से आकाश से उतरे, वैसे दिव्याकार महापुरुष का कथन भी झूठा हो गया'। अथवा दयावशीभूत हुए जिसने 'प्राणों से प्रेम रखने वाली यह बेचारी जीवित रहे' ऐसा मुझे आश्वासन दिया था, उसने फिर दर्शन तक नहीं दिए। सुगृहीतनामधेय, पूज्य पुण्डरीक भी क्या करें जो मृत

मुपजातम्, जातानुकम्पेन वा यथाकथंचिज्जीवितुमित्येव समाश्वासिता जीवितप्रिया तपस्विन्यपि येन पुनर्दर्शनमेव तेन मम न दत्तम्, किं करोतु देवः सुगृहीतनामा पुण्डरीको यः परासुरेवोत्क्षिप्य नीतः, कपिञ्जलस्तु जीव[1]न्गतः कथमियता कालेन तेनापि निष्करुणेन वार्तापि मे न सम्पादिता' इत्येतानि चान्यानि चालजालानि दुर्जीवितगृहीता चिन्तयन्ती जाग्रत्येवातिष्ठम् ।

अथ निभृतपदसंचरणम्, आ चरणादुत्कण्टकम्, अनवरतपतितमदनशरशल्यनिकरनिचितमिव शरीरमुद्वहन्तम्, उद्विकासिकेतकरजःपटलधवलं प्रथमतरमेव भस्मसात्कृतमिव मदनहुतभुजा, भुजाग्रेण कुण्डलीकृतमृणालमपर्यूषितशासनवलयमिवावश्य-

नीचैरागतस्य दिव्या आकृतिः आकारो यस्य तस्य महापुरुषस्य अपि भाषितं कथितम् अलीकं मिथ्या उपजातं संवृत्तम्, अथवा जाता समुत्पन्ना अनुकम्पा दया यस्य तथाभूतेन येन दिव्यमहापुरुषेण 'यथाकथञ्चित् जीवितुम् प्राणितुम्' इत्येव कारणात् जीवितं प्राणाः यस्याः तथाभूता तपस्विनी वराकी समाश्वासिता आश्वासनं प्रापिता अहमिति शेषः, अर्थात् तेन यदपि कथितं तत् केवलं प्राणानां धारणाय माम् आश्वासयितुमेव, न तु तत्त्वतः, अत्र इति शब्दबलात् 'जीवितुम्' इत्यस्य स्थाने 'जीवतु' इति तिङन्तक्रियैव साधीयसी, अतएव 'जीवतु जीवितप्रिया तपस्विनीत्येवमेव समाश्वासितास्मि' इत्येव पाठः साधीयान् । तेन दिव्यपुरुषेण पुनः द्वितीयवारं मे मह्यं दर्शनम् एव न दत्तं वितीर्णम् मत्सविधे नागतः इत्यर्थः । सुगृहीनामधेयः पुण्यश्लोकः देवः पूज्यः पुण्डरीकः किं करोतु कुर्यात् यः परा परागताः असवः प्राणाः यस्य तथाभूतः मृतः इत्यर्थः एव उत्क्षिप्य उत्थाप्य नीतः गगनमितिशेषः, कपिञ्जलः पुण्डरीकस्य मित्रं तु जीवन् जीवित एव दिव्यपुरुषेण सह गतः । इयता एतावता दीर्घेणेत्यर्थः कालेन समयेन निष्करुणेन तेन अपि वार्ता वृत्तान्तः अपि मे न सम्पादिता विदिता ज्ञातेत्यर्थः इति एतानि अन्यानि च आलजालानि (?) 'स्वप्नान्तर्गतप्रायाणि' चिन्तयन्ती चिन्तनविषयीकुर्वाणा दुः दुष्टं यत् जीवितं जीवनं तेन गृहीता आत्मीयीकृता दुःखितजीवनं यापयन्तीत्यर्थः जाग्रती अनिद्रिता एव अतिष्ठम् ।

अथ एतदनन्तरम् 'तमेव युवानमद्राक्षम्' इत्यस्ति वाक्यम् । निभृतं निःशब्दं पदयोः चरणयोः संचरणं संचारो यस्य तथाभूतम्, एतत् अन्यानि च द्वितीयान्तानि 'युवानम्' इत्यस्य विशेषणानि । आ चरणात् पादात् चरणपर्यन्तम् उत् उद्गतः कण्टकः रोमाञ्चः यस्य तम् रोमाञ्चितमित्यर्थः, अनवरतं निरन्तरं यथा स्यात्तथा पतिताः प्रहिताः इत्यर्थः ये मदनस्य कामस्य शराः बाणाः तेषां यानि शल्यानि अग्राणि तेषां निकरेण समूहेन निचितं व्याप्तम् इव शरीरम् उद्वहन्तं धारयन्तम्, भुजा०—भुजस्य बाहोः अग्रेण अग्रभागेन मणिबन्धेनेति यावत् कुण्डलीकृतं मण्डलितं मण्डलाकारेण परिणतमिति यावत् कामज्वरोपशमार्थं कटक-रूपेण परि-

हुए ही उठाकर (गगन) में ले जाये गए। कपिञ्जल तो जीता ही गया था। इतना समय हो गया है, उस निर्दयी ने भी मेरा खबर तक नहीं ली' इस तरह के तथा अन्यान्य बातों का जाल मन में बनाये, दुःखी जीवन की मारी जागती रही।

तदनन्तर मैंने दूर से ही दिन-जैसे चन्द्रमा के प्रकाश में पहचान में आ रहा वही युवा देखा, जो चुपके-चुपके पग रख रहा था, पैरों तक रोमाञ्चित या, निरन्तर पड़े हुए कामदेव के बाणों की नोकों के समूह से व्याप्त-जैसा शरीर धारण कर रहा था; विकसित केतकी के पुष्पों के पराग-समूह के समान श्वेत रंग का होता हुआ ऐसा लग रहा था मानो कामदेव ने पहले ही उसे भस्म कर रखा हो, गोल किया हुआ मृणाल (कलाई पर रखे)-ऐसा प्रतीत हो रहा था

१ जीवन्मृतः ।

मरणाय सकलजगदप्रतिहतशासनेन कुसुमधन्वना विसर्जितं दधानम्, उद्भूतसाध्वसोत्कम्पतरलितया केतकीगर्भसूच्या क परं गम्यते हतोसि मयेति मन्मथप्रथमसहायस्य चन्द्रमसः कलयेव कर्णान्तलग्नया तर्ज्यमानम्, उद्वेगावर्जितेन नयनजलस्रोतसात्मने जलमिव प्रयच्छन्तम्, आत्मेच्छयैव मत्करग्रहणाय निर्वर्तितस्नानमिव स्वेदाम्भसा, न युक्तमेव ते परहृदयमविज्ञायोपगन्तुमिति पदे पदे निवार्यमाणमिव गुरुणोरुस्तम्भेन, दूरत एव मदालिङ्गनालीकाशया प्रसारितभुजयुगलमुत्कलिकासहस्रविषमं रागसागरमिव प्रतरन्तम्, अनवरतप्रवृत्तैराकृष्यमाणमिव पुरस्ताद्दीर्घैर्निश्वासमरुद्भिः, उह्यमानमिव

वर्तितमिति भावः मृणालं कमलदण्डं सकलं च तत् जगत् लोकः तस्मिन् अप्रतिहतम् अनिरुद्धम् अनुलङ्घितमिति यावत् शासनम् आज्ञा यस्य तथाभूतेन कुसुमधन्वना कामदेवेन विसर्जितं दत्तम् अवश्यमरणाय निश्चितरूपेण प्राणत्यागाय अपर्युषितं न पर्युषितं पुराणं प्रत्यग्रं तात्कालिकमित्यर्थः यत् शासनम् आदेशः तस्य वलयं कटकम् इव दधानं धारयन्तम्, पुरा युद्धे विजयलाभाय प्रेषितानां वीर-योधानां मणिबन्धेषु राजा 'शत्रुरवश्यं जीयताम् अथवा स्वयम् अवश्यं म्रियताम्' इत्यवश्यमरणाज्ञारूपं कटकं बध्नाति स्मेति भावः, **उद्भूत०**—उद्भूतम् उत्पन्नं यत् साध्वसं भयं तेन यः उत्कम्पः वेपथुः तेन तरलितया चञ्चलीकृतया केतक्याः गर्भः अन्तरालं तस्य सूच्या सूच्याकाराग्रेणेत्यर्थः 'क कुत्र परम् अग्रे गम्यते गमनं क्रियते ? मया त्वं हतोऽसि मारितोऽसि' इति मन्मथस्य कामदेवस्य प्रथमः आदिमः मुख्य इति यावत् सहायस्य सहायताकारिणः चन्द्रमसः चन्द्रस्य कर्णस्य श्रोत्रस्य अन्तः प्रान्तः तस्मिन् लग्नया सक्तया षोडशांशेन इव तर्ज्यमानम् भीष्यमाणम्, वैशम्पायनेन कर्णप्रांते चन्द्रकलाकार-केतकीपुष्पं धृतमासीत् तच्च चन्द्रकलया उत्प्रेक्ष्यते, चन्द्रश्चोद्दीपनविभावेषु परिगण्यते इत्याशयः; उद्वेगः मनस्तापः तेन आवर्जितेन पातितेन नयनजलस्य अश्रुणः स्रोतसा प्रवाहेण आत्मने जलम् सलिलम् इव प्रयच्छन्तं ददानम्, मरणान्तरं मृताय तत्सम्बन्धिभिः पुत्रादिभिः जलाञ्जलिः दीयते, वैशम्पायनस्य सन्तानाभावात् स्वयमेवासौ स्वस्मै जलाञ्जलिददानत्वेनोत्प्रेक्ष्यते; आत्मनः स्वस्य एव न तु मम इच्छया एव मम करस्य पाणेः ग्रहणाय स्वेदस्य अम्भसा जलेन निवर्तितं कृतं स्नानं मङ्गलस्नानं येन तथाभूतम् इव, विवाहात् पूर्वं वरस्य वध्वाश्च मङ्गलस्नानं विधीयते, 'न युक्तम् उचितम् एव ते तव परस्याः ममेत्यर्थः हृदयम् मनः अविज्ञाय अज्ञात्वा उपगन्तुम्' इति गुरुणा भारिणा ऊरुस्तम्भेन जङ्घादण्डेन पदे पदे प्रतिपदम् निवार्यमाणं प्रतिषिध्यमानम् इव; **दूरतः**—दूरतः विप्रकर्षात् एव मम आलिङ्गनस्य आश्लेषस्य या अलीका मिथ्या आशा आशंसा तया प्रसारितं विस्तारितम् अग्रे कृतमिति यावत् भुजयोः बाह्वोः युगलं युग्मं येन तम् उत्कलिका उत्कण्ठा एव उत्कलिका वीचिः तासां सहस्रैः सहस्रसंख्याभिः विषमं भीषणम् दुस्तरमिति यावत् रागः अनुरागः प्रणय इति यावत् एव सागरः समुद्रः तम् इव प्रतरन्तम् अतिक्रमन्तम् (अत्र श्लिष्टरूपकोत्थापितोत्प्रेक्षा), **अनवरत०**—अनवरतं सततं यथा स्यात्तथा प्रवृत्तैः प्रारब्धैः दीर्घैः प्रलम्बैः निःश्वसितस्य

मानो निखिल जगत में अनुल्लंघनीय आज्ञा वाले कामदेव द्वारा अवश्य मरण हेतु दिया हुआ तात्कालिक आज्ञा-कटक (कड़ा) धारण कर रहा हो, उत्पन्न हुए भय के कारण कँपकँपी से हिल रहे, कान के प्रान्त-भाग में लगे केतकी-पुष्प के भीतरी नोक से ऐसा लग रहा था मानो कामदेव के मुख्य सहायक चन्द्रमा की कला द्वारा डराया जा रहा हो कि 'आगे कहाँ बढ़ रहे हो ? मैंने तुम्हें मार दिया है'; बेचैनी से गिर रहे अश्रु-प्रवाह से ऐसा लगता था मानो (स्वयं ही) अपने लिये (तर्पण-) जल दे रहा हो; पसीने के जल से मालूम हो रहा था मानो अपनी ही इच्छा से पाणि-ग्रहण हेतु मंगल स्नान किये हो, भारी-भारी खम्भे-जैसी जाँघ द्वारा पग-पग पर रोका-जैसा जा रहा हो कि 'दूसरे का हृदय जाने बिना तुम्हारा पास जाना ठीक ही नहीं', मेरे आलिंगन की झूठी आशा से दूर से ही दोनों भुजाओं को फैलाये ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उत्कलिकाओं (उत्कण्ठाओं) के रूप में हजारों उत्कलिकाओं (तरंगों) से भीषण बने

दिङ्मुखप्लाविना ज्योत्स्नापूरेण, रणरणकशून्यम्, उच्छुष्काननम्, प्रोन्मुक्तं सत्त्वेन, प्रतिपन्नं कृपणतया, अवधीरितं धैर्येण, संगृहीतं तरलतया, विसर्जितं लज्जया, अधिगतं धाष्ट्येन, दूरीकृतं परलोकभीत्या, विमुक्तं युक्तायुक्तविवेकेन, संकल्पजन्मन एव केवलस्य वशे स्थितम्, आविष्टमिव मत्तमिवोन्मादादापतन्तम्, दूरतोपि दिवसनिर्विशेषेण चन्द्रातपेन विभाव्यमानं तमेव युवानमद्राक्षम् ।

दृष्ट्वा च तं तादृशं निःस्पृहाप्यात्मनि परं भयमुपगतवती चेतस्यचिन्तयम् । 'अहो कष्टमापतितम् । यद्ययमुन्मादादागत्य पाणिनापि स्पृशति मां तदा मयेदमपुण्यहतकं शरीरमुत्स्रष्टव्यम् । तच्चिराद्देवस्य पुण्डरीकस्य पुनर्दर्शनप्रत्याशया दुःखोत्तरमप्यङ्गीकृतं व्यर्थतां मे यातं प्राणसंधारणम्' इति । स त्वेवं चिन्तयन्तीमेव मामुपसृत्याब्रवीत् ।

मरुद्भिः वायुभिः पुरस्तात् अग्रे आकृष्यमाणम् क्रियमाणाकर्षणम् इव, दिशाम् दिशानां मुखानि आननानि प्लावयति पूरयतीत्येवंशीलेन ज्योत्स्नायाः चन्द्रिकायाः पूरेण प्रवाहेण उह्यमानम् नीयमानम् इव, रणरणकेन औत्सुक्यजनितेन विह्वलभावेन शून्यं रिक्तम् उच्छुष्कं अतिरूक्षम् आननं मुखं यस्य तम्, सत्त्वेन बलेन उन्मुक्तं त्यक्तम्, कृपणया दैन्येन प्रतिपन्नम् आत्मीयीकृतम्, धैर्येण धीरतया अवधीरितं तिरस्कृतम्, तरलतया चाञ्चल्येन संगृहीतं परिगृहीतम्, लज्जया त्रपया विसर्जितं मुक्तम्, धार्ष्ट्येन धृष्टतया अधिगतं प्राप्तम्, परलोकात् लोकान्तरात् भीत्या भयेन दूरीकृतम् अपसारितम्, युक्तं च अयुक्तं चेति तयोः उचितानुचितयोः विवेकेन विचारेण विमुक्तं त्यक्तम्, संकल्पः मनसि कल्पना तस्मात् जन्म उत्पत्तिर्यस्य तस्य मनसिजस्य एव वशे अधीनतायां स्थितम्, आविष्टं भूतग्रस्तम् इव, मत्तं क्षीवम् इव उन्मादात् मानसिकरोगविशेषकारणात् आपतन्तम् आगच्छन्तम् तम् एव युवानं तरुणम् अद्राक्षम् अपश्यम् । उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षालंकारः ।

दृष्ट्वा—तं तादृशं तथाविधं दृष्ट्वा विलोक्य च आत्मनि स्वस्यां निःस्पृहा निर्गतेच्छा अपि परम् अत्यधिकं भयं भीतिम् उपगतवती प्राप्तवती चेतसि मनसि अचिन्तयम् चिन्तितवती—"अहो इति खेदे कष्टं कृच्छ्रम् आपतितम् आयातम् । यदि अयं युवा उन्मादात् उन्मादकारणात् चित्तविक्षेपादिति यावत् आगत्य पाणिना करेण अपि मां स्पृशति परामृशति तदा मया अपुण्यैः पापैः हतम् एव हतकम् इदं शरीरम् देहः उत्सृष्टव्यम् । तत् तस्मात् चिरात् दीर्घकालात् देवस्य पुण्डरीकस्य पुनः द्वितीयवारं यत् दर्शनम् अवलोकनं तस्य प्रत्याशया आशया दुःखं कष्टम् उत्तरम् उत्तरकालोद्भवं दुःखं यस्मिन् तत् दुःखपूर्णमित्यर्थः अपि अङ्गीकृतं स्वीकृतं मे मम प्राणानां धारणं रक्षणमित्यर्थः व्यर्थतां यातं व्यर्थीभूतम्" इति । स वैशम्पायनः तु एवम् इत्थं चिन्तयन्तीं विचारयन्तीम् एव माम् उपसृत्य उपगम्य अब्रवीत् अकथयत्—'चन्द्रवत् मुखम् आननं यस्याः

प्रेम-सागर को तैर रहा हो; लगातार चल रही लंबी-लंबी साँसों की हवाओं से आगे-आगे खींचा-जैसा जा रहा था; दिशा-मुखों को डुबा देने वाले चाँदनी के प्रवाह से ले जाया-जैसे जा रहा था; हृदय की बेचैनी से सूना-सूना बना हुआ था, जिसका मुख सूख गया था; जिसे जीवनी शक्ति ने त्याग दिया था; दीनता ने अपना लिया था; धैर्य ने ठुकरा दिया था; चंचलता ने अपने भीतर ले लिया था; लज्जा ने छोड़ दिया था; धृष्टता ने प्राप्त कर लिया था; परलोक के भय ने दूर खदेड़ दिया था; उचितानुचित के विवेक ने त्याग दिया था; जो केवल कामदेव के ही वश में था और भुतहा-जैसा, पागल-जैसा, उन्माद में (मेरी ओर) बढ़ा चला आ रहा था ।

और उस हालत में उसे देख निस्पृह होती हुई भी मैं मन में बहुत डर गई और सोचने लगी—'ओह, मुसीबत आ पड़ी है । यदि पागलपन में आकर यह हाथ से भी मुझे छू लेता है, तो मुझे पाप का मारा यह शरीर त्याग देना होगा । तब तो चिरकाल से पूज्य पुण्डरीक के फिर दर्शनों की आशा से दुख-भरा होता हुआ भी स्वीकृत किया मेरा प्राण-धारण बेकार ही

चन्द्रमुखि, हन्तुमुद्यतो मामयं कुसुमशरसहायश्चन्द्रमाः तच्छरणमागतोऽस्मि। रक्ष मामशरणमनाथमार्तमप्रतीकारक्षममात्मना त्वदायत्तजीवितम्। शरणागतपरित्राणं हि तपस्विनामपि धर्म एव। तद्यदि मामात्मप्रदानेन नात्र संभावयसि तदा हतोऽहमाभ्यां कुसुमशरशिशिरकराभ्याम्' इति। अहं तु तदाकर्ण्य झगित्युत्तमाङ्गनिर्गतज्वालेव रोषानलेन निर्दहन्तीव तमुन्मिषद्वाष्पस्फुलिङ्गया दृष्ट्या तदा, तर्जयन्तीवा पादतलादुत्कम्पितगात्रयष्टिराविष्टेवात्मानमप्यचेतयमाना क्रोधावेगरूक्षाक्षरमवदम्। 'आः पाप, कथमेवं गदतो मामुत्तमाङ्गे ते न निपतितं वज्रमवशीर्णा वा न सहस्रधा जिह्वा, विह्वलतां न गता वा वाणी, नष्टानि वा नाक्षराणि। मन्ये च न सन्त्येव तेऽस्मिञ्छरीरे सकललोकशुभाशुभसाक्षिभूतानि पञ्च महाभूतानि। येनैवं वदन्नाग्निना भस्मीकृतोऽसि न वायुना हृतोऽसि

तत्सम्बुद्धौ हे चन्द्रमुखि, कुसुमशरः मदनः सहायको यस्य तथाभूतः अयं चन्द्रमाः शशी मां हन्तुं मारयितुम् उद्यतः उद्युक्तः अस्तीति शेषः। तत् तस्मात् ते शरणं संरक्षणम् आगतः प्राप्तः अस्मि। अशरणम् अनाश्रयम् अनाथम् नाथहितम्, आर्तं दुःखितं प्रतीकारस्य प्रतिक्रियायाः अक्षमम् असमर्थम्, आत्मना स्वयं त्वयि आयत्तम् अधीनं जीवनं यस्य तथाभूतं मां रक्ष त्राहि हि यतः शरणम् आगतस्य प्राप्तस्य जनस्येति शेषः परित्राणं रक्षणं तपस्विनाम् तपस्यावताम् अपि धर्मः कर्तव्यम् एव अस्तीति शेषः। **तद्यदि**—तत् तस्मात् यदि आत्मनः स्वस्याः प्रदानेन समर्पणेन अत्र अस्मिन् स्थाने मां न संभावयसि सत्करोषि, तदा अहम् आभ्याम् एताभ्याम् कुसुमशरः कामश्च शिशिरकरः शीतरश्मिः चन्द्रश्चेति यावत् ताभ्याम् हतः मारितः अस्मीति शेषः।' अहं तु तत् यूनः कथनम् आकर्ण्य श्रुत्वा झगिति झटिति उत्तमाङ्गात् शिरसः निर्गता निःसृता ज्वाला अर्चिः यस्याः तथाभूता अहं रोषः क्रोधः एव अनलः वह्निः तेन तं युवानं निर्दहन्ती भस्मतां नयन्ती इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उन्मिषन्तः आविर्भवन्तः वाष्पः अश्रु तद्रूपाः स्फुलिंगाः अग्निकणाः यस्यां तथाभूतया दृष्ट्या दृशा तत् तम् (अत्र नपुंसकत्वं चिन्त्यम्) आतर्जयन्ती समन्तात् भर्त्सयन्ती इव, आ पादतलात् चरणतलात् आरभ्य उत्कम्पिता प्राप्ता गात्रं शरीरं यष्टिः इव यस्याः तथाभूता, आविष्टा भूतग्रस्ता इव आत्मानम् स्वाम् अपि अचेतयमाना अजानाना, क्रोधस्य कोपस्य आवेगः आवेशः तेन रूक्षाणि परुषाणि अक्षराणि वर्णाः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवदम् अकथयम्—'आः इति क्रोधे पाप पापिन्, माम् एवं गदतः कथयतः ते तव उत्तमाङ्गे मूर्ध्नि कथं वज्रम् अशनिः न पतितम्? कथं वा ते जिह्वा रसना सहस्रधा सहस्रप्रकारैः न अवशीर्णा भिन्ना? कथं वा ते वाणी विह्वलतां विक्लवतां न गता? कथं वा अक्षराणि न नष्टानि नाशं गतानि? मन्ये अवगच्छामि ते तव अस्मिन् शरीरे सकलाश्च ते लोकाः जनाः तेषां शुभं भद्रं च अशुभम् अभद्रं च तयोः साक्षिभूतानि साक्षात्-द्रष्टुभूतानि पञ्च महाभूतानि पृथिवी-जल-तेजो-वायु-गगनानि न सन्ति वर्तन्ते एव। येन यस्मात् एवं वदन् कथयन् त्वं न अग्निना वह्निना भस्मीकृत

गया।' मैं ऐसा सोच ही रही थी कि वह मेरे पास आकर बोला—'चन्द्रमुखी, कामदेव का सखा यह चन्द्रमा मुझे मार डालने को तैयार हुआ बैठा है, इसलिए तुम्हारी शरण आया हूँ, क्योंकि शरणागत की रक्षा करना तापसियों का भी धर्म होता है। इसलिए यदि तुम आत्मार्पण द्वारा यहाँ मुझे संमानित नहीं करती, तो मैं कामदेव और चन्द्रमा दोनों से मारा गया हूँ।' यह सुनकर मैं तो तत्काल शिर से निकली लपटों वाली क्रोधाग्नि से उसे फूँकती हुई-जैसी, उमड़ पड़े अश्रुरूपी अग्निकणों वाली दृष्टि से उसे ललकारती हुई-जैसी, शरीर में पैरों तक काँपती हुई, भूत-ग्रसा-जैसी, अपने तक की होश न सँभाले, क्रोधावेश से कठोर वाणी में बोली—'रे पापी ऐसा कहते तेरे शिर पर क्यों वज्र न पड़ा? क्यों तेरी जिह्वा के सहस्रों टुकड़े नहीं हुए? क्यों तेरी वाणी विह्वल न हुई? अथवा उसके अक्षर नष्ट नहीं हुए? मैं समझती हूँ कि सब लोगों के शुभाशुभ कर्मों के साक्षी-भूत पाँच महाभूत तेरे इस शरीर के भीतर

नाम्भसा प्लावितोसि न धरित्र्या रसातलं प्रवेशितोसि नापि तत्क्षणमेवाकाशेनात्मनिर्विशेषतां नीतोसि। अव्यवस्थितो व्यवस्थितेऽस्मिँल्लोके कुतस्त्वमुत्पन्न एवंविधः। यस्तिर्यग्जातिरिव कामचारी न किंचिदपि वेत्सि। येनैवं खलु हतविधात्रा केनाप्युपदर्शितमुखरागः स्वपक्षपातमात्रप्रवृत्तिरनिरूपितस्थानास्थानवादी शुक इव वक्तुमेवं शिक्षितस्तेनैव किमु तस्यामेव जातौ न निक्षिप्तोसि। तेनैकान्तहासहेतुरेवं वदन्नपि न क्रोधमुत्पादितवानसि। त्वदुक्ते दुःखिताहं ते संविभागमिमं करोमि येनात्मवचनानुरूपां जातिमापन्नो नैवास्मद्विधाः कामयसे।' इत्युक्त्वा चन्द्राभिमुखी भूत्वा कृताञ्जलिः

भस्मतां नीतः असि; न वायुना पवनेन हृतः अपनीतः असि; न अम्भसा जलेन प्लावितः प्रवाहितः असि; न धरित्र्या पृथिव्या रसातलं पातालं प्रवेशितः प्रवेशं कारितः असि, न आकाशेन गगनेन तत्क्षणं तत्कालम् एव आत्मनः स्वस्य निर्विशेषतां सदृशतां नीतः प्रापितः असि शून्यीकृतोऽसीति यावत्। व्यवस्थिते पञ्चभूतात्मकरूपेण कृतव्यवस्थे अस्मिन् लोके जगति एवंविधः एतादृशः अव्यवस्थितः व्यवस्थारहितः त्वम् कथम् उत्पन्नः जातः ? यः तिर्यग्योनिः पशु-पक्षिजातिः इवेत्युपमायाम् कामचारी यथेच्छविहारी न किञ्चित् अपि वेत्सि जानासि येन यस्मात् एवं खलु निश्चयेन हतश्चासौ विधाता तेन विधातृहतकेन दुष्टेन विधात्रेत्यर्थः केन अपि कारणेन उपदर्शितः प्रकटितः मुखे आनने रागः लालिमा येन तथाभूतः, स्वस्य आत्मनः पक्षयोः पतत्रयोः पातः पातनम् एव मात्रं तस्मिन् प्रवृत्तिः प्रवर्तनं यस्य सः स्वपक्षचालनपरः इत्यर्थः न निरूपितं न ज्ञातं स्थानं च अस्थानं चेति तस्मिन् वदितुं शीलमस्येति तथोक्तः शुकः कीरः इव उपदर्शिते मुखे रागः प्रेम येन सः, स्वपक्षपातमात्रे स्वमतरक्षणमात्रे प्रवृत्तिः यस्य सः अहमेव रज्यामि, अन्यस्तु न रज्यतीत्यनपेक्षीत्यर्थः अनिरूपितम् न ज्ञातं यत् स्थानास्थानं वक्तव्यावक्तव्यविषयः तत् वदसीत्येवंशीलः त्वम् [श्लिष्टोपमा] एवं वक्तुं वदितुं शिक्षितः पाठितः तेन एव हतविधात्रा तस्याम् एव जातौ शुकयोनौ इत्यर्थः कथं न निक्षिप्तः पातितः असि ? तेन तस्मात् एकान्तः अत्यधिकः यः हासः हसनं तस्य हेतुः कारणभूतः एवं वदन् अपि (शुकरूपत्वात्) त्वं मम क्रोधं न उत्पादितवान् जनितवान् स्याः अर्थात् शुकरूपेण एवं वदति त्वयि मम क्रोधो नोत्पन्नः स्यात् त्वं मनुष्योऽसि, अतः मम क्रोध-पात्रमसि। तव उक्ते कथने (भावे क्तः) दुःखिता दुःखं प्राप्ता सती अहं ते इमं संविभागं दुःखविभागं करोमि अर्थात् त्वया मह्यं बहु दुःखं दत्तम् तस्मिन् आत्मगतदुःखे त्वामपि सहभागी करोमि, त्वमहञ्च मिलित्वैव दुःखं भोक्ष्याव इति यावत्, येन संविभागेन आत्मवचनस्य स्वकथनस्य अनुरूपां योग्यां जातिं शुकयोनिमित्यर्थः आपन्नः प्राप्तः त्वम् अस्मद्विधाः अस्मादृशः सतीः स्त्रीः न कामयसे अभिलषसि" इति उक्त्वा कथयित्वा चन्द्रस्य चन्द्रमसः

है ही नहीं जिससे इस तरह बोलते हुए तुझे न अग्नि ने भस्म किया, न वायु ने उड़ाया, न जल ने डुबोया, न पृथिवी ने पाताल में धकेला और न ही आकाश ने तत्क्षण तुझे अपना-जैसा ही (शून्य) नहीं बना दिया। इस व्यवस्थित संसार में ऐसा अव्यवस्थित तू पैदा हो गया, जो पशु-पक्षियों की तरह कामवश हो कुछ भी नहीं जान रहा है ? जिस मुए विधाता ने किसी कारणवश मुख में राग (लाली) दिखाए, केवल अपने पक्षपात (पंखों की फड़फड़ाहट) में लगे, 'कहाँ बोलना चाहिये, कहाँ न बोलना चाहिए' इस बात का ज्ञान न रखे तोते के समान किसी कारणवश मुख में राग (प्रेम) दिखाए, केवल अपने पक्षपात (झुकाव) में चल रहे, 'क्या बोलना चाहिए, क्या नहीं बोलना चाहिए' इस बात का खयाल न रखे तुझे इस तरह सिखाया है, उसने ही तुझे उसी (शुक-) योनि में क्यों नहीं डाला ? तब तो नितान्त उपहासास्पद तू ऐसा बोलता हुआ भी मेरे क्रोध को नहीं भड़का पाता। तेरे बोलने पर बहुत दुःख में पड़ी हुई मैं तेरे साथ (अपने दुःख का) यह बटवारा करती हूँ कि जिससे अपने बोलने के अनुरूप (शुक-) योनि में प्राप्त हुआ तू हम-जैसों पर न मरे' यह कहकर चाँद की ओर मुँह

पुनरवदम्। 'भगवन्न परमेश्वर सकलभुवनचूडामणे लोकपाल, यदि मया देवस्य पुण्डरीकस्य दर्शनात्प्रभृति मनसाप्यपरः पुमान्न चिन्तितस्तदानेन मे सत्यवचनेनायमलीककामी मदुदीरितायामेव जातौ पततु', इति। स च मे वचसोऽस्यानन्तरमेव न वेद्मि किमसह्यवृत्तेर्मदनज्वरस्य वेगादुत सद्योविपाकस्यात्मनो दुष्कृतस्य गौरवादाहोस्विन्मद्वचसः सामर्थ्यादेव छिन्नमूलस्तरुरिवाचेतनः क्षितावपतत्। अतिक्रान्तजीविते-स्मिन्कृताक्रन्दात्तत्परिजनाच्छ्रुतवती यथासौ महाभागस्यैव मित्रं भवति।' इत्युक्त्वा च त्रपावनम्रमुखी महीं महीयसाश्रुवेगेन तूष्णीमेवाप्लावितवती।

चन्द्रापीडस्य तु तदाकर्ण्य कर्णान्तायतलोचनद्वयामीलनभग्नदृष्टेर्भ्रष्टवचनसौष्ठवस्य 'भगवति, कृतप्रयत्नायामपि भगवत्यामपुण्यभाजास्मिञ्जन्मनि मया न प्राप्तं देव्याः

अभिमुखी संमुखी भूत्वा कृताञ्जलिः बद्धाञ्जलिः पुनः अवदम् अकथयम्—'भगवन्, माहात्म्यशालिन्, परमेश्वर परमेश! सकलं समस्तं च तत् भुवनं जगत् तस्य चूडामणे शिरोमणे! लोकपाल लोकरक्षक! यदि चेत् मया महाश्वेतया देवस्य पूज्यस्य पुण्डरीकस्य दर्शनात् अवलोकनात् प्रभृति आरभ्य मनसा चेतसा अपि अपरः अन्यः पुण्डरीकात् भिन्न इत्यर्थः पुमान् पुरुषः न चिन्तितः न ध्यातः, तत् तर्हि मे सत्यवचनेन सत्यकथनेन अलीक-कामी मिथ्याकामुकः (एषः) मया उदीरितायां पूर्वमुक्तायाम् एव जातौ शुकयोनौ इति यावत् पततु गच्छतु' इति। स वैशम्पायनश्च मे वचनस्य शापोक्तेरित्यर्थः अनन्तरं पश्चात् एव न वेद्मि जाने किं असह्या सोढुमशक्या वृत्तिः वर्तनं यस्य तथाभूतस्य मदनज्वरस्य कामसंतापस्य वेगात् रयात् उत अथवा आत्मनः स्वस्य सद्यः तत्कालं विपाकः परिणामः यस्य तथाभूतस्य दुष्कृतस्य दुष्कर्मणो गौरवात् गुरुत्वात् सामर्थ्यादिति यावत् आहोस्वित् अथवा मम वचसः सामर्थ्यात् बलात् एव छिन्नं कृत्तं मूलं यस्य तथाभूतः तरुः वृक्षः इवेत्युपमायाम् अचेतनः गतचेतनः क्षितौ भुवि अपतत् पतितवान्। तस्मिन् वैशम्पायने अतिक्रान्तं गतं जीवितं प्राणाः यस्य तथाभूते अर्थात् मृते सति कृतः आक्रन्दः उच्चैः रोदनं येन तथाभूतात् तस्य परिजनात् भृत्यवर्गात् श्रुतवती आकर्णितवती यथा असौ युवा महाभागस्य भवतः एव मित्रं सुहृद् भवति'। इति उक्त्वा उदित्वा च महाश्वेता त्रपया लज्जया अवनम्रं नतं मुखं यस्याः तथाभूता सती महीयसा अत्यधिकेन अश्रूणां वेगेन रयेण तूष्णीम् जोषम् एव महीं पृथिवीम् आप्लावितवती पूरितवती।

चन्द्रा०—तत् महाश्वेताकथनम् आकर्ण्य श्रुत्वा 'चन्द्रापीडस्य हृदयमस्फुटत्' इत्यस्ति वाक्यम्। कर्णान्तं श्रोत्रप्रान्तं यावत् आयतं विस्तृतं यत् लोचनयोः नयनयोः द्वयं युगलं तस्य आमीलनेन मुद्रणेन भग्ना नष्टा दृष्टिः यस्य तथाभूतस्य भ्रष्टं विनष्टं वचनस्य वाचः सौष्ठवं माधुर्यं यस्य तस्य अथ च—'भगवति देवि महाश्वेते, भगवत्यां भवत्यां कृतः प्रयत्नः प्रयासः यया तथाभूतायां सत्यामपि अपुण्यं पापं भजतीत्येवंशीलेन मया अस्मिन् जन्मनि इह लोके देव्याः

किये, अंजलि-बद्ध होकर मैं फिर बोली—'भगवान्, परमेश्वर, सकल जगत के शिरोमणि, लोकरक्षक, पूज्य पुण्डरीक के दर्शन से लेकर यदि मैं मन से भी दूसरे पुरुष को ध्यान में नहीं लाई हूँ, तो मेरे इस सत्य वचन से यह झूठा कामी मेरी कही हुई ही जाति में पड़ जाय'। और वह मेरे कहने के बाद ही—मैं नहीं जानती कि—या तो कामज्वर के वेग के असह्य होने के कारण, या अपने पापभार के तत्काल परिणाम के कारण, या फिर मेरे वचन की शक्ति ही के कारण वह जड़-कटे वृक्ष की तरह अचेतन हुआ पृथिवी पर गिर गया। उसके मृत हो जाने पर आक्रन्दन किये उसके भृत्यवर्ग से सुना कि 'वह तो आपका ही मित्र होता है' यह कहकर लज्जा से मुँह नीचे किये, महाश्वेता बड़े भारी अश्रु-वेग से चुपचाप पृथिवी को भर बैठी।

यह सुनकर कर्णान्त तक फैली दोनों आँखों के बन्द हो जाने से दृष्टि तथा वचनमाधुरी खोये और 'भगवती! आपके प्रयत्न करने पर भी मुझ पापी ने इस जन्म में देवी कादम्बरी

कादम्बर्याश्चरणपरिचर्यासुखं तज्जन्मान्तरेऽपि भगवती संपादयित्री भूयात्' इति गदत एव कादम्बरीसमागमाप्राप्तिदुःखेनैव भेदोन्मुखं मुकुलमिव शिलीमुखाघातात्स्वभावसरसं हृदयमस्फुटत्। अथ महाश्वेतायाः शरीरमुत्सृज्य संभ्रमप्रतिपन्नचन्द्रापीडशरीरायां 'भर्तृदारिके, किं लज्जया, पश्य तावदन्यथैव कथमप्यास्ते देवश्चन्द्रापीडो भग्नेवास्य ग्रीवा न मूर्धानं धारयति, विचालितोऽपि न किंचिच्चेतयते, नान्तःप्रविष्टतारके समुन्मीलयति विलोचने, नायं यथावस्थितपतितानां गात्राणामावरणं करोति, नोच्छ्वसिति हृदयेन, हा देव चन्द्रापीड चन्द्राकृते कादम्बरीप्रिय क्वेदानीं त्वया विना गम्यते' इत्युक्त्वार्तवचसि तरलिकायाम्, तिर्यगाभुग्नचन्द्रापीडमुखनिश्चलस्तब्धदृष्टिनिश्चेष्टायां महाश्वेतायाम्,

---

कादम्बर्याः चरणयोः पादयोः या परिचर्याः सेवा तस्याः सुखं न प्राप्तम्, तत् तस्मात् अन्यत् जन्म इति जन्मान्तरं तस्मिन् अपि भगवती भवती (तपस्विन्यो हि 'भगवती' शब्देन सम्बोध्यन्ते) संपादयित्री कादम्बरी चरणपरिचर्यासुखस्य कर्त्री भूयात् तत् सम्पादयतु इत्यर्थः इति गदतः कथयतः एव चन्द्रापीडस्य कादम्बर्याः समागमः मिलनं तस्य या अप्राप्तिः अलाभः तेन यद् दुःखं कष्टं तेन एव शिलीमुखानां भ्रमराणां यः अघातः भ्रमणकृतसंघट्टाः तस्मात् स्वभावतः सरसं कोमलं भेदोन्मुखं स्फुटनोन्मुखं मुकुलं कुड्मुलम् इवेत्युपमायाम्, स्वभाव-सरसं हृदयम् अस्फुटत् व्यदीर्यत, यथा भ्रमराघातात् सरसं मुकुलं स्फुटति, तथैव महाश्वेतामुखात् श्रुतस्य वैशम्पायनवृत्तान्तस्य दुःखस्य आघातात् चन्द्रापीडस्य स्वभाव-सरसं हृदयम् अस्फुटत् इति भावः। **अथ**—अथ तद्धृदयस्फुटनान्तरम् महाश्वेतायाः शरीरं देहम् उत्सृज्य त्यक्त्वा संभ्रमेण त्वरया प्रतिपन्नं गृहीतं चन्द्रापीडस्य शरीरं यया तथाभूतायाम् ('तरलिकायाम्' इत्यनेनान्वयः) 'भर्तृदारिके, हे स्वामिपुत्रि महाश्वेते इत्यर्थः लज्जया त्रपया किम् त्यज लज्जामित्यर्थः पश्य तावत् सम्प्रति कथम् अन्यथा प्रकारान्तरेण एव देवः चन्द्रापीडः आस्ते तिष्ठति; भग्ना त्रुटिता इव अस्य चन्द्रापीडस्य ग्रीवा कन्धरा मूर्धानं शिरः न धारयति वहति; विचलितः हस्ताभ्यां परिवर्तितः अपि न किञ्चित् ईषत् चेतयते संज्ञां लभते; अन्तः मध्ये प्रविष्टे गते तारके कनीनिके ययोः तथाभूते विलोचने चक्षुषी न समुन्मीलयति उद्घाटयति; अयम् चन्द्रापीडः अवस्थितम् अनतिक्रम्य यथा स्यात्तथा पतितानाम् गात्राणाम् अङ्गानाम् आवरणम् आच्छादनं न करोति, हृदयेन न उच्छ्वसिति श्वासोच्छ्वासं करोति, हा इति दुःखे चन्द्रवत् आकृतिः आकारो यस्य तत्सम्बुद्धौ चन्द्रमुख इत्यर्थः कादम्बर्याः प्रियवल्लभ! देव चन्द्रापीड! इदानीं साम्प्रतं त्वया (? तया) विना क कुत्र गम्यते प्रस्थीयते?' इति उक्त्वा तरलिकायाम् आर्तं करुणं वचनं यस्याः तथाभूतायां सत्याम्, महाश्वेतायां तिर्यक् वक्रं यथा स्यात्तथा आभुग्ने अवनते चन्द्रापीडस्य मुखे आनने निहिता न्यस्ता निश्चला स्थिरा स्तब्धा जडा दृष्टिः दृक् यस्याः तथाभूतायां च निश्चेष्टायां शरीरव्यापार-

---

की चरण-सेवा का सुख नहीं पाया, अतः दूसरे जन्म में भी आप वह सुख देने वाली बनें' यह कहते-कहते ही चन्द्रापीड़ का स्वभावतः सरस फटने को तैयार हुआ बैठा हृदय कादम्बरी से भेंट न होने के दुःख के आघात से ही इस तरह फट गया जैसे स्वभावतः सरस, फटने को तैयार हुआ मुकुल भ्रमरों के आघात से फट जाया करता है। इसके पश्चात् महाश्वेता का शरीर छोड़कर, जल्दी-जल्दी चन्द्रापीड़ का शरीर थामे 'राजपुत्री! लज्जा छोड़ो, चन्द्रापीड़ को देखो तो ये कैसे और ही तरह के हो गये हैं; टूटी हुई-जैसी इनकी गर्दन सिर को नहीं सँभाल रही है; हिलाए-डुलाए भी इन्हें कुछ होश नहीं; भीतर घुसी पुतली वाली आँखों को नहीं खोल रहे है, ज्यों के त्यों पड़े हुए अंगों को नहीं ढक रहे हैं। न हृदय से साँस ही ले रहे हैं, हा! देव चन्द्रापीड़! हा चन्द्राकृति वाले! हा कादम्बरी के प्रियतम! उस (कादम्बरी) को छोड़ अब कहाँ जा रहे हो?' इस तरह तरलिका आर्त विलाप करने लगी; महाश्वेता टेढ़े झुके चन्द्रापीड़ के मुख पर अपनी स्थिर, पथराई दृष्टि गाढ़े, हक्की-बक्की रह गई; 'हाय पापिनी!

'आ पापे दुष्टतापसि किमिदं त्वया कृतम्, अपाकृताखिलजगत्पीडस्य तारापीडस्य कुलमुत्सादितम्, अनाथीकृताः प्रजाः सहास्माभिः, भग्नाः पन्थानो गुणानाम्, अर्गलिताः ककुभोऽर्थिलोकस्य, कस्य वदनमीक्षतां लक्ष्मीः, मोऽवलम्बनं भवतु भूमेः, कं सेवन्तां सेवकाः, त्वया विना संप्रति व्यसनमेव सेवा संवृत्ता, वृत्तं समानशीलत्वम्, अस्तमिता च परिजनश्लाघा, लघूकृतो भृत्यादरः, दूरं गतानि प्रियालपितानि, समाप्ताः परित्याग-कथाः, कथं कथावशेषीभूतोसि, भूतपूर्वाः कमुपयान्तु संप्रति प्रजाः, क्व संप्रति साधूनां समाधानम्, अधुना धूर्धरे त्वयि विपन्ने कः समुद्वहतु देवेन तारापीडेनोढां धुरम्, धीरस्यापि ते कथं कातरस्येव शुचा भिन्नं हृदयम्, दयालोरपि ते केयमद्येदृशी जाता निर्दयतास्मासु, देव प्रसीद, सकृदप्याज्ञापय, देहि भक्तजनस्याभ्यर्थनम्, प्रतिपद्यस्व

हितायां च सत्याम्, आः पापे—'आः इति खेदे पापे पापिनि ! दुष्टा चासौ तापसी तपस्विनी तत्सम्बुद्धौ त्वया इदं किं कृतं विहितम् ? अपाकृता दूरीकृता अखिलस्य समस्तस्य जगतः लोकस्य पीडा दुःखं येन तथाभूतस्य तारापीडस्य कुलं वंशः उत्सादितं विनाशितम्, अस्माभिः सह प्रजाः जनता अनाथीकृता नाथरहितीकृता, गुणानां शौर्यादीनां पन्थानः मार्गाः भग्नाः भङ्गं नीताः; अर्थिजनस्य याचकलोकस्य कृते ककुभः दिशः अर्गलिताः दत्तार्गलीकृताः अर्गलेन निरुद्धाः इत्यर्थः तेन विना कोऽर्थिजनमनोरथान् पूरयिष्यतीति यावत्; लक्ष्मीः राजश्रीःकस्य वदनं मुखम् ईक्षताम् पश्यतु; भूमेः पृथिव्याः अवलम्बनम् आश्रयः कः भवतु जायताम् न कोऽपीति सर्वत्र काकुः, सेवकाः भृत्याः कं सेवन्ताम् भजन्ताम्; त्वया विना अन्तरेण सेवा परिचर्या सम्प्रति इदानीं व्यसनं दुःखम् एव संवृत्ता जाता; समानं सदृशं शीलं स्वभावः यस्य तस्य भावः तत्त्वम् सर्वैः सह समानव्यवहारवत्त्वमित्यर्थः वृत्तम् अतीतं समाप्तमित्यर्थः ['वृत्तं पद्ये परित्रे त्रिष्वतीते दृढनिश्चये' इत्यमरः), परिजनस्य भृत्यवर्गस्य श्लाघा प्रशंसा अस्तम् इता गता अवसितेत्यर्थः, भृत्यानां सेवकानाम् आदरः सम्मानः लघूभूतः स्वल्पीभूतः, प्रियाणि मधुराणि आलपितानि भाषणानि दूरं दूरदेशं गतानि प्राप्तानि, परित्यागस्य दानस्य कथाः कथानकानि समाप्ताः अवसिताः, कथं त्वम् कथा नाममात्रम् एव अवशेषो यस्य तथाभूतोऽसि नामशेषोऽसीति भावः, पूर्वं भूताः इति भूतपूर्वाः प्रजाः सम्प्रति इदानीं कम् उपयान्तु उपगच्छन्तु समाश्रयन्तु इति यावत्, सम्प्रति साम्प्रतं साधूनां सज्जनानां समाधानं मानसी शान्तिः क्व ? अधुना धुरः राज्यभारस्य धरे धारके धारणक्षमे इत्यर्थः त्वयि विपन्ने मृते देवेन महाराजेन ऊढां धारितां धुरम् राज्यभारं कः समुद्वहतु धारयतु ? धीरस्य धैर्यशीलस्य अपि ते तव कातरस्य भीरोः इव हृदयं स्वान्तं शुचा शोकेन कथं भिन्नं दीर्णम् ? दयालोः दयाशीलस्य अपि ते तव अद्य अस्मासु का इयम् ईदृशी एवंविधा निर्दयता कठोरता जाता भूता ? देव, प्रसीद कृपां कुरु, सकृत् एकवारम् अपि आज्ञापय आदिश

दुष्ट तपस्विनी ! तू ने यह क्या कर दिया ? अखिल जगत की पीड़ा हरने वाले तारापीड का कुल मिटा दिया; हमारे साथ-साथ प्रजा को अनाथ बना दिया; गुणों के मार्ग तोड़ दिए, याचक लोगों के लिए दिशाओं की तालाबन्दी कर दी, लक्ष्मी अब किसका मुँह देखेगी ? पृथिवी का कौन अवलम्ब बनेगा ? सेवक किसकी सेवा किया करेंगे ? तुम्हारे बिना अब सेवा कष्ट ही है; (सब के साथ) एक-जैसा व्यवहार गया; भृत्य-वर्ग की सराहना गई; भृत्यों का आदर स्वल्प हो गया। मीठे संभाषण दूर चले गए; दान की कहानी समाप्त हो गई; किस तरह आप नामशेष हो गए; पहले वाली प्रजा अब किसका आश्रय लेगी ? सज्जनों को मानसिक शान्ति कहाँ मिलेगी ? राज्य-धुरा रखने वाले आपके चल बसने पर अब महाराज तारापीड द्वारा धारण की हुई राज्य-धुरा को कौन सँभालेगा ? धीर होते हुए भी कायर की तरह शोक से आपका हृदय कैसे फटा ? दयालु होते हुए भी हमारे ऊपर आपकी यह ऐसी निर्दयता आज कैसे हो गई ? महाराज प्रसन्न होइये, एक बार भी हमें आज्ञा दीजिए; भक्त लोगों की प्रार्थित वस्तु

प्राणान्, न त्वया विना क्षणमपि प्राणिति पुत्रवत्सलो देवस्तारापीडो न देवी विलासवती नाप्यार्यः शुकनासो न मनोरमा न राजानो नापि प्रजाः, परित्यज्य च सर्वानेकाकी क्व प्रस्थितोसि, कुतस्तवेयमेकपद एवेदृशी निष्ठुरता जाता, क्व सा गुरुजनस्योपरि भक्तिर्यं-देवमनपेक्ष्य प्रयासि' इत्युक्तवत्यवनितलविमुक्तात्मन्यारटति परिजने, तदाकर्णनोत्कर्णे हा हा किमेतदित्युद्भ्रान्तमनसि समापतति राजपुत्रलोके, समुत्प्लुतोत्पक्ष्मनयनदर्शिनि चन्द्रापीडवदननिवेशितदृशि दीनतरहेषारवकृताक्रन्दे शुचेव पर्यायोत्क्षिप्तखुरचतुष्काहत-क्ष्मातले मुहुर्मुहुरात्मोन्मोचनायेवाच्छोटितखरखलीनकनकशृङ्खलायोगे तुरंगमतां मुमुक्षतीवेन्द्रायुधे, पत्रलेखानिवेदितश्चन्द्रापीडागमना चन्द्रोदयोल्लासिनी वेलेव महोदधेः

अस्मान् इति शेषः; भक्तजनस्य स्वामिभक्तानाम् अस्माकम् अभ्यर्थनम् अभ्यर्थितं वस्तु देहि वितर, प्राणान् प्रतिपद्यस्व अङ्गीकुरु प्राप्नुहीति यावत्, त्वया विना अन्तरेण न प्राणिति जीवति, पुत्रः वत्सलः प्रियो यस्य सः देवः तारापीडः। सर्वान् परित्यज्य विहाय एकलः क्व प्रस्थितः गतः असि, कुतः कस्मात् एकपदे एकदैव ईदृशी एवंविधा निष्ठुरता निर्दयता गुरुजनस्य मातापित्रादीनाम् उपरि भक्तिः आराध्यत्वेन आसक्तिः, यत् यस्मात् एवम् अनपेक्ष्य अनादृत्य प्रयासि गच्छसि' इति उक्तवति कथितवति परिजने भृत्यवर्गे अवनितले भूतले विमुक्तः न्यस्त आत्मा येन तेन भुवि पतितेनेत्यर्थः आरटति विलपति सति, तदाकर्ण०—तस्य भृत्यवर्ग-करुणक्रन्दस्य आकर्णनेन श्रवणेन उत्कर्णे उत्थापितश्रोत्रे 'हा हा' इति शोके एतत् किम् इति उद्भ्रान्तं विह्वलं मनो यस्य तस्मिन् राजपुत्रलोके राजन्यसमूहे समापतति आगच्छति सति, समुत्प्लुतम् अश्रुपूर्णम् उत्पक्ष्म उत्थापितनेत्ररोम च यत् नयनं नेत्रं तेन पश्यतीत्येवंशीले चन्द्रा-पीडस्य वदने मुखे निवेशिता न्यस्ता दृग् दृष्टिः येन तस्मिन्, अतिशयेन दीनः इति दीनतरः यः हेषा-रवः हेषित-ध्वनिः तेन कृतः आक्रन्दः आक्रन्दनं रोदनमिति यावत् येन तेन शुचा शोकेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् पर्यायेण क्रमेण उत्क्षिप्तम् उत्थापितं यत् खुराणां शफानां चतुष्कं चतुष्टयं तेन आहतं ताडितं क्ष्मायाः भुवः तलं पृष्ठं येन तेन मुहुर्मुहुः वारं-वारं आत्मनः स्वस्य उन्मोचनाय उन्मुक्तये इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आच्छोटितः आकृष्टः खड़खड़ायितः इति यावत् खरस्य कठिनस्य खलीनस्य कविकायाः कनकशृंखलायाः सुवर्णशृंखलायाश्च योगः संयोगः येन तस्मिन् इन्द्रायुधे तुरङ्गमतां तुरङ्गत्वं मुमुक्षिते मोक्तुमिच्छति सति, पत्रलेखया निवेदितः विज्ञापितः चन्द्रापीडस्य आगमनं यस्यै तथाभूता 'कादम्बरी···तत्रैवाजगाम' इत्यस्ति वाक्यम्, इतः कादम्बर्याःविशेषणानि, चन्द्रस्य उदयेन उद्गमनेन उल्लसितुम् उल्लासं प्राप्तुं शीलमस्या इति तथोक्ता महोदधेः महा-

---

प्रदान कीजिए; प्राण प्राप्त कीजिए; आपके विना न पुत्र-वत्सल महाराज तारापीड़, न रानी विलासवती, न आर्य शुकनास, न मनोरमा, न राजे और न ही प्रजा क्षणभर भी जीवित रहेंगे; सबको छोड़कर अकेले आप कहाँ चल दिए? आपकी एकदम ऐसी निष्ठुरता क्यों हो गई? आपकी गुरुजन पर वह भक्ति कहाँ गई जो इस तरह (किसी की) पर्वाह न करके चले जा रहे हो?' यों कहते हुए नौकर-चाकर भूतल पर अपने को लुढ़काये जोर से विलाप करने लगे; उनका विलाप सुनने से कान ऊपर किये राजे लोग मन में विह्वल हुए 'हाय! हाय! यह क्या हो गया?' कहके आने लगे, डबडबाए, बरौनियों को ऊपर किये नयनों से देखता हुआ चन्द्रापीड़ के मुख पर दृष्टि गाढ़े, अत्यन्त दीनता-भरी हिनहिनाहट के शब्द से क्रन्दन किये, शोक के कारण—जैसे क्रमशः उठाये चारों खुरों से भूतल को खोदे, अपने को छुडाने हेतु-जैसे बार-बार कठिन लगाम और स्वर्ण-शृंखला को खड़खड़ाये इन्द्रायुध-तुरङ्गता से अपनी मुक्ति-जैसे चाहने लगा। (उधर इस बीच) पत्रलेखा द्वारा चन्द्रापीड़ के आने की सूचना प्राप्त किये, चन्द्रोदय उल्लसित (उछलती) महासागर की वीचि के समान चन्द्रोदय पर उल्लसित

समकरध्वजा व्याजीकृत्य महाश्वेतादर्शनं मातापित्रोः पुरः प्रतिपन्नश्रृङ्गारवेषाभरणा रणन्नूपुरयुगेन मुखरमेखलादाम्ना रम्योज्ज्वलाकल्पेन कल्पितानङ्गबलविभ्रान्तिना गृहीतसुरभिमाल्यानुलेपनपटवासाद्युपकरणेन नातिबहुना परिजनेनानुगम्यमाना पुरः केयूरकेणोपदिश्यमानमार्गा पत्रलेखाहस्तावलम्बिनी मदलेखया सह कृतालापा 'मदलेखे पत्रलेखा कथयति प्रत्यहमहं पुनस्तस्यैकान्तनिष्ठुरहृदयस्य शठमतेर्निर्घृणमनसो निस्पृहागमनमेव न श्रद्दधे, किं न स्मरसि तत्तस्य मदवस्थामश्रद्दधानस्य हिमगृहके मद्विमर्शाय दुर्विदग्धबुद्धेर्वक्रभाषितं यत्र सस्मितमालोकितया त्वयैवास्मै सुतरामेवासंशयकारि प्रत्युत्तरं दत्तम्, तदसौ मरणेपि मे न श्रद्धात्येवेमामवस्थाम्, अन्यथा यदि मदर्थे

सागरस्य वेला वीचिः इवेत्युपमायाम्, मकरध्वजः कामः तेन सह विद्यमाना, माता-पित्रोः पुरः अग्रे महाश्वेतायाः दर्शनम् अवलोकनं व्याजीकृत्य व्याजं विधाय प्रतिपन्नः स्वीकृतः श्रृङ्गारः प्रसाधनं च वेषः परिधानं च आभरणानि भूषणानि च यया सा, रणत् झङ्कुर्वत् नूपुरयोः मञ्जीरयोः युगलं युग्मं यस्य तेन 'परिजनेन' इत्यस्य विशेषणानि, मुखरं शब्दायमानं मेखलादाम काञ्चीसूत्रं यस्य तेन, रम्यः रमणीयः उज्ज्वलः निर्मलश्च आकल्पः वेषो यस्य तेन ('आकल्प वेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः) कल्पिता कृता अनङ्गस्य कामस्य बलस्य सैन्यस्य विभ्रान्तिः भ्रमः येन तेन, गृहीतं धृतं सुरभि सुगन्धितं माल्यं माला एव माल्यं स्रक् च अनुलेपनं विलेपनञ्च पटवासः सुगन्धितचूर्णञ्च आदौ यस्य तथाभूतम् उपकरणं सामग्री येन तेन, न अतिशयेन बहुलेन बहुना कतिपयेनेत्यर्थः परिजनेन भृत्य-वर्गेण अनुगम्यमाना अनुस्रियमाणा पुरः अग्रे केयूरकेण उपदिश्यमानः निर्दिश्यमानः मार्गः वर्त्म यस्यै सा, पत्रलेखायाः हस्तं करम् अवलम्बते गृह्णातीत्येवंशीला, मदलेखया एतन्नाम्न्या स्वसख्या सह कृतः आलापः संभाषणं यया सा मदलेखे— 'मदलेखे, पत्रलेखा प्रत्यहं नित्यं कथयति अहं (कादम्बरी) पुनः इत्यवधारणार्थेऽव्ययम् ('स्युरेवं तु पुनर्वै वेत्यवधारणवाचकाः' इत्यमरः) तस्य एकान्तं नितान्तं यथा स्यात्तथा निष्ठुरं कठोरं हृदयं स्वान्तं यस्य तथाभूतस्य, शठा धूर्ता मतिः बुद्धिः यस्य तस्य निर्घृणं घृणा दया तद्रहितं मनो यस्य तस्य चन्द्रापीडस्य निःस्पृहं निरीहं निःस्वार्थं मत्परकमिति यावत् आगमनम् एव न श्रद्दधे विश्वसिमि, किं न स्मरसि स्मृतिविषयं नयसि मम अवस्थां कामदशाम् अश्रद्दधानस्य अविश्वसतः, हिमगृहे शैत्यापादनाय निर्मिते गृहविशेषे मम विमर्शाय मम तद्विषयकानुरागस्य विचारणायेत्यर्थः दुर्विदग्धा अचतुरा मिथ्याभिमानपूर्णेति यावत् बुद्धिः मतिः यस्य तथाभूतस्य तस्य चन्द्रापीडस्य तत् वक्रभाभाषितं वक्रोक्तिम् यत्र यस्येत्यर्थः स्वस्मितं स्मितं कृत्वा तेन अवलोकितया दृष्टया त्वया एव अस्मै चन्द्रापीडाय सुतराम् सम्यक्तया एव न संशयं करोतीति तथोक्तं निःसंशयमित्यर्थः प्रत्युत्तरं प्रतिवचनं दत्तम् ।

टिप्पणी—बाण-कृत पूर्वभाग में कादम्बरी, मदलेखा और चन्द्रापीड़ के मध्य हिमगृह में

(हर्षित) हुई, काम को साथ लिये, माता-पिता के आगे महाश्वेता को देखने का बहाना बनाकर, श्रृङ्गार और वेष-भूषा किये, थोड़ी सी ऐसी नौकरानियों को—जिनकी पायजेवें झनझना रही थीं; करधनी बज रही थी, जो मनोहर और उज्ज्वल वेष में थी, कामदेव की सेना का भ्रम उत्पन्न किये हुए थी और सुगन्धित पुष्पमाला विलेपन (क्रीम) तथा पटवास (पाउडर) आदि सामग्री लिए हुई थीं—अपने पीछे रखे केयूरक द्वारा बताये जा रहे मार्ग से पत्रलेखा के हाथ का सहारा लिये, मदलेखा के साथ (यों) बातें छेड़े—'मदलेखा ! पत्रलेखा प्रतिदिन कहती रहती है कि मैं तो उस अतिकठोर हृदय वाले, मन के छलिया, निर्दय-मन के निःस्वार्थ भाव से आने में विश्वास नहीं करती; तुम्हें स्मरण नहीं कि मेरी हालत पर विश्वास न करते हुए उस मिथ्याभिमानी ने हिमगृह में मेरे (अनुराग के) विषय में विचार-विमर्श हेतु कैसी टेढ़ी-मेढी बातें की थीं, जिस पर तुमने ही अपनी ओर मुसकान के साथ देखते हुए उसे अच्छी तरह से दो-टूक जवाब दिया था ? इसलिए मरने पर भी वह मेरी हालत पर

दुःखमेवमियमनुभवतीत्येतदस्याभविष्यत्तदा तथा गमनमेव नाकरिष्यत्, तथागतोप्यसौ यत्किमपि वक्तव्यस्त्वयैव मया पुनर्दृष्टोपि नालपितव्यो नोपालब्धव्यः, न चरणपतितस्याप्यनुनयो ग्राह्यः, नाहं प्रियसख्या प्रसादनीया' इत्यभिदधानवाचेतितागमनखेदा कादम्बरी चन्द्रापीडदर्शनायोत्ताम्यन्ती तत्रैवाजगाम।

आगम्य चोद्धृतामृतमिव रत्नाकरम्, इन्दुविरहितमिव निशाप्रबन्धम्, अस्तमिततारागणमिव गगनम्, अपचितकुसुमशोभमिवोपवनम्, उत्खातकर्णिकमिव कमलम्, उत्खण्डिताङ्कुरमिव मृणालम्, अवलुप्ततरलमिव हारम्, उन्मुक्तजीवितं चन्द्रापीडमद्रा-

---

हुए जिस 'वक्रभाषित' का उल्लेख यहाँ भूषण भट्टने किया है, वह संक्षेपमें यह है—चन्द्रापीडः-(कादम्बरी प्रति)—देवि, जानामि कामरतिं निमित्तीकृत्य प्रवृत्तोऽयमविचलसन्तापतन्त्रो व्याधिः।···इच्छामि देहदानेनापि स्वस्यामत्रभवतीं कर्तुम्'। बेचारी कादम्बरी लज्जा के मारे कुछ उत्तर न दे सकी, तो उसकी सखी मदलेखा ने उसको उत्तर दिया—'कुमार, किं कथयामि। दारुणोऽयमकथनीयः खलु संतापः। अपि च कुमारभावोपेतायाः किमिवास्या यन्न संतापाय'। फिर भी चन्द्रापीड 'संदेहदोलारूढेनैव चेतसा···निर्ययौ। उसका कहना 'वक्रभाषित' ही सिद्ध हुआ, यथार्थ नहीं।

तत् तस्मात् असौ चन्द्रापीडः मरणेऽपि मृत्यौ जातेऽपि मे इमाम् अवस्थां न श्रद्दधाति विश्वसिति एव, अन्यथा प्रकारान्तरे यदि मम अर्थे हेतौ इयं कादम्बरी एवं दुःखम् अनुभवति भुङ्क्ते इति एतत् अस्य चन्द्रापीडस्य (हृदये) अभविष्यत् अजनिष्यत तर्हि गमनम् माम् उज्झित्वा हेमकूटात् प्रस्थानम् एव न अकरिष्यत्। तथा तेन प्रकारेण आगतः आयातः अपि यत्किमपि यत्किञ्चिदपि स वक्तव्यः त्वया एव वक्तव्यः न पुनर्मया, पुनः दृष्टोऽपि स न मया आलपितव्य संभाषितव्यः, न च उपालब्धव्यः उपालम्भविषयीकर्तव्यः, चरणयोः मे पादयोः पतितस्य अपि अस्य चन्द्रापीडस्य अनुनयः अभ्यर्थना न ग्राह्यः ग्रहीतव्यः, प्रियसख्या त्वयेत्यर्थः अहं न प्रसादनीया अनुनेतव्या' इति अभिदधाना कथयन्ती एव अचेतितः अज्ञातः आगमनस्य खेदः श्रमः यया तथाभूता कादम्बरी चन्द्रापीडस्य दर्शनाय आलोकनाय उत्ताम्यन्ती विह्वलीभवन्ती तत्र महाश्वेताया आश्रमे आजगाम आगतवती।

आगम्य आगत्य च उद्धृतम् उद्गृहीतम् अमृतं सुधा यस्मात् तथाभूतं रत्नाकरं समुद्रम् इव 'चन्द्रापीडम्' इत्यस्य विशेषणानि, इन्दुना चन्द्रेण विहीनं निशायाः रात्र्याः प्रबन्धं सातत्यम् निखिला रात्रिरित्यर्थः, अस्तम् इतः गतः ताराणां नक्षत्राणां गणः समूहः यस्मात् तथाभूतं गगनम् आकाशम् इव, अपचिता ह्रासं गता विगतेत्यर्थः कुसुमानां पुष्पाणां शोभा सुषमा यस्मात् तथाभूतम् उपवनम् उद्यानम् इव, उत्खाता त्रोटिता कर्णिका बीज-कोशी यस्य तथाभूतं कमलं पद्मम् इव उत्खण्डितः लूनः अङ्कुरः अभिनवोद्भिद् पुष्पाधारभूतः प्ररोह इति यावत् यस्य तथाभूतं मृणालं कमलदण्डम् इव, अवलुप्तः गतः तरलः हारमध्यगो मणिः, यस्मात् तथाभूतं

विश्वास ही नहीं करेगा, नहीं तो 'मेरे लिए यह कितना दुःख झेल रही है' इस बात का उसे यदि जरा भी अनुभव होता, तो वहाँ से जाता ही क्यों! इस तरह वह आया भी है, तो उसे जो कुछ भी कहना हो, तू ही कहना। मेरे देखने में आया, तो न बोलूँगी, न उलाहना दूँगी, न चरणों में पड़े हुए उसका अनुनय-विनय मानूँगी, और न ही तुम मुझे मनाना' इस प्रकार कहती हुई कादम्बरी आने की थकान का खयाल न किये, चन्द्रापीड को देखने हेतु उतावली बनी हुई वहाँ आ पहुँची।

आकर कादम्बरी ने अमृत-निकाला हुआ समुद्र सा चन्द्रमा-रहित सारी रात-सा, छिपे हुए तारागणों वाला गगन-सा, पुष्पों की सुषमा खोये उपवन-सा, तोड़ दी गई कर्णिका वाला कमल-सा, नोच दिये गए अंकुर वाला मृणाल-सा, मध्यमणि-खोये हार-सा, मृत पड़ा हुआ

क्षीत्। दृष्ट्वा च तं सहसा हा किमिदमित्यधोमुखी धरातलमुपयान्ती कथंकथमपि मुक्ताक्रन्दया मदलेखयाधार्यत। पत्रलेखा पुनरुन्मुच्य कादम्बरीकरतलमचेतना क्षितिमुपागमत्। चिराच्च लब्धसंज्ञापि कादम्बरी तथैव मूढेव निश्चलस्तब्धदृष्टिराविष्टेव स्तम्भितेव निष्प्रयत्ना निश्वसितुमपि विस्मृतान्तर्मन्युभारनिस्पन्देव चन्द्रापीडवदनसमर्पिताक्षी श्यामारुणानना ग्रहोपरक्तेन्दुबिम्बेव पौर्णमासीनिशा निशितपरशुपातोत्कम्पिनी लतेव वेपिताधरकिसलया लिखितेव स्त्रीस्वभावविरुद्धेन चेतसा तस्थौ। तथावस्थितां च तामुन्मुक्तार्तनादा सपादपतन मदलेखाब्रवीत् 'प्रियसखि, प्रसीदोत्सृजेमं मन्युसंभारमारटन्ती। बाष्पमोक्षेणामुच्यमानेस्मिन्नियतमतिभारोत्पीडितं तटाकमिव

हारं मौक्तिकस्रजम् इवेत्युपमा मालारूपा, उन्मुक्तं त्यक्तं जीवितं प्राणाः येन तम् चन्द्रापीडम् अद्राक्षीत् अपश्यत्। दृष्ट्वा—दृष्ट्वा विलोक्य च तं सहसा एकपदे हा इति शोके धरातलम् महीतलम् उपयान्ती उपगच्छन्ती कथं कथमपि केनापि प्रकारेण मुक्तः त्यक्तः मुखान्निःसारित इति यावत् क्रन्दः आक्रन्दनं यया तथाभूतया मदलेखया स्वसख्या अधार्यत धारिता। पत्रलेखा पुनः तु कादम्बर्याः करतलं हस्ततलम् उन्मुच्य त्यक्त्वा अचेतना चेतनारहिता सती क्षितिं पृथिवीम् उपागमत् उपागच्छत् पतितवतीत्यर्थः। चिरात् दीर्घकालानन्तरं लब्धा प्राप्ता संज्ञा चेतना यया तथाभूतापि कादम्बरी तथा तेनैव प्रकारेण एव मूढा मूर्छिता इव निश्चला स्थिरा स्तब्धा जडा दृष्टिः दृक् यस्याः तथाभूता, आविष्टा भूतग्रस्ता इव, स्तम्भिता जडीकृता इव, निष्प्रयत्ना निश्चेष्टा, निश्वसितुम् श्वासोच्छ्वासं कर्तुम् अपि विस्मृता कृतविस्मरणा, अन्तः मध्ये हृदये इत्यर्थः यः मन्युः दुःखं तस्य भारेण अतिशयेन निस्पन्दा निश्चेष्टा इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षा, चन्द्रापीडस्य वदने मुखे समर्पिते दत्ते अक्षिणी नयने यया सा, श्यामं शोकेन कृष्णवर्णं अरुणं क्रोधेन रक्तवर्णं च आननं मुखं यस्याः सा, ग्रहेण राहुणा उपरक्तं ग्रस्तं इन्दोः चन्द्रस्य विम्बं मण्डलम् यस्यां तथाभूता पौर्णमास्याः पूर्णिमायाः निशा रात्रिः इवेत्युपमायाम्, निशितः तीक्ष्णः यः परशुः कुठारः तस्य पातेन पतनेन उत्कम्पते उद्वेपते इत्येवंशीला लता वल्ली इव वेपितः कम्पितः अधरः अधरोष्ठः किसलयः पल्लव इव यस्याः सा (उभयत्रोपमा), स्त्रीस्वभावस्य महिला-प्रकृतेः विरुद्धेन विपरीतेन चेतसा लिखिता चित्रिता इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, तस्थौ स्थितवती, स्त्रियो हि चञ्चल-प्रकृतयो भवन्ति, सा तु स्त्रीत्वेऽपि लिखितेव निश्चला तस्थौ इति स्त्रीप्रकृतिविरुद्धत्वम्। तथा तेन प्रकारेण निश्चलत्वेनेत्यर्थः अवस्थितां स्थितां ताम् कादम्बरीम् उन्मुक्तः त्यक्तः आर्तः करुणः नादः क्रन्दो यया तथाभूता मदलेखा कादम्बर्याः सखी पादयोः तस्याः चरणयोः पतनेन सह वर्तमानं यथा स्यात्तथा अब्रवीत् अकथयत्—'प्रियसखि, प्रसीद कृपां कुरु आरटन्ती आक्रन्दन्ती त्वम् इयम् मन्योः दुःखस्य भारं वेगमित्यर्थः उत्सृज परित्यज। अस्मिन् एतस्मिन् मन्युसंभारे बाष्पस्य अश्रुणः मोक्षेण

चन्द्रापीड़ देखा। और उसे देखकर 'हाय! एकाएक यह क्या हो गया' कहती, मुँह नीचा किये जमीन पर गिरती-गिरती उसे किसी तरह रोती चिल्लाती हुई मदलेखा ने सँभाल लिया, किन्तु पत्रलेखा कादम्बरी से हाथ छुड़ाकर मूर्छित हुए जमीन पर गिर पड़ी। बहुत देर बाद होश में आई हुई भी कादम्बरी उसी तरह मूर्छित-जैसी आँखों में निश्चल और पथराई हुई, भुतही-जैसी, जड़ हुई-जैसी निश्चेष्ट, साँस लेना भी भूले, भीतरी दुख के भार से हिलती-डुलती नहीं जैसी, चन्द्रापीड़ के मुख पर दृष्टि गाढ़े, राहु-ग्रस्त चन्द्रमंडलवाली पौर्णमासी की निशा की तरह लाल-काला मुख धारण किये, तेज कुल्हाड़े के पड़ने से काँप जाने वाली लता की तरह किसलय-से उधर में थरथराये; स्त्री-स्वभाव के विरुद्ध मन से चित्र जैसी खड़ी रही। उस तरह खड़े हुए उसे आर्त नाद किये मदलेखा पाँव पड़कर बोली—'प्रिय सखी! कृपा करो; चीखती-रोती हुई इस दुख-भार को हल्का कर लो। आँसू बहाकर इस दुख-भार के न हटा दिये जाने पर अति (दुख) भार से पीड़ित, सरस [स्निग्ध] और मृदु [कोमल] तुम्हारा हृदय अवश्य ही इस प्रकार फट

सरसमृदु सहस्रधा स्फुटति ते हृदयमित्यपेक्षस्व देवीं मदिरां देवं च चित्ररथम्। त्वया विना कुलद्वयमपि नास्ति।'

इत्युक्तवतीं मदलेखां कादम्बरी विहस्याब्रवीत्। 'अयि उन्मत्तिके, कुतोऽस्य मे वज्रसारकठिनस्य हतहृदयस्य स्फुटनम्। यदालोक्यैवं सहस्रधा स्फुटितम्। अपि च या जीवति तस्याः सर्वमिदं माता पिता बन्धुरात्मा सख्यः परिजन इति। मया पुनर्म्रियमाणया जीवितभूतं कथंकथमपि समासादितमिदं प्रियतमशरीरं यज्जीवदजीवद्वा संभोगेनानुमरणेन वा द्विधापि सर्वदुःखानामेवोपशान्तये। तत्किमिति देवेनागच्छता मदर्थं प्राणांश्चोत्सृजता सुदूरमारोपितं गुरुतां च नीतमात्मानमश्रुपातमात्रकेण लघूकृत्य पातयामि। कथं स्वर्गगमनोन्मुखस्य देवस्य रुदितेनामङ्गलं करोमि। कथं पादधूलिरिव

पातेन अमुच्यमाने अदूरीक्रियमाणे अतिशयेन भारोत्पीडितम् जलभाराक्रान्तम् अथ शोकभाराक्रान्तं सरसं रसेन स्नेहेन सहितं मृदु कोमलञ्च तटाकं तडागम् इव ते हृदयं सहस्रधा सहस्रप्रकारैः स्फुटति विदीर्यते, यथा जलभरितं निर्बलञ्च तटाकः अधिकजलभारात् स्फुटति तथैव स्निग्धं कोमलञ्च ते हृदयं अधिकशोकभारात् स्फुटतीति भावः, अत्र श्लिष्टोपमा। इति एतस्मात् कारणात् देवीं मदिरां स्वमातरं देवं चित्ररथं स्वपितरञ्च अपेक्षस्व चिन्तयेत्यर्थः। त्वया विना अन्तरेण कुलद्वयम् मातृकुलं पितृकुलं चेत्युभयम् अपि नास्ति न विद्यते, निश्शेषं भविष्यतीति भावः।

इत्युक्त०—इति एवं प्रकारेण उक्तवतीं कथितवतीं मदलेखां स्व-सखीं कादम्बरी विहस्य हसित्वा अब्रवीत् अवदत्—'अयि उन्मत्तिके उन्मत्ते ! वज्रम् अशनिः तस्य सारः सारभूतमध्यभागः तद्वत् कठिनं कठोरम् अस्य मे मम हृदयस्य कुतः कस्मात् स्फुटनं स्फोटः न कुतोऽपीति काकुः यत् येन एवम् आलोक्य चन्द्रापीडं मृतं दृष्ट्वा सहस्रधा सहस्र-प्रकारैः न स्फुटितं दीर्णम्। अपि च किंच, या जीवति जीवितास्ति, तस्याः सर्वम् इदम् एतत् (सामान्ये नपुंसकम्) माता जननी, पिता जनकः, बन्धुः बान्धवः, आत्मा स्वः, सख्यः आलयः, परिजनः भृत्यवर्गः अस्तीति शेषः जीवितस्यैव कृते माता-पित्रादिकं भवति न मृतस्येति भावः। पुनः किन्तु म्रियमाणया प्राणान् त्यजन्त्या कथं कथमपि केनापि प्रकारेण समासादितं प्राप्तम् इदं जीवितभूतं प्राणभूतं प्रियतमस्य शरीरं देहः जीवत् प्राणवत् संभोगेन सुरतेन अथवा अजीवत् अप्राणवत् अनुमरणेन सह गमनेन द्विधा उभयथा अपि सर्वाणि च तानि दुःखानि कष्टानि तेषाम् एव उपशान्तये उपशमाय समाप्तये इति यावत् अस्तीति शेषः। तत् अतः किमिति कुतः देवेन चन्द्रापीडेन आगच्छता अत्रागमनं कुर्वता मदर्थं मम कृते च प्राणान् असून् उत्सृजता परित्यजता सुदूरम् अत्युच्चः आरोपितं प्रतिष्ठापितं गुरुतां गौरवं च नीतं प्रापितम् आत्मानं स्वाम् अश्रूणां पातः पतनमेवेति अश्रुपातमात्रकं तेन लघूकृत्य लाघवं प्रापय्य पातयामि अधः क्षिपामि। कथं कस्मात् रुदितेन रोदनेन स्वर्गे देवलोके गमनस्य प्रस्थानस्य उन्मुखस्य अभिमुखस्य देवस्य चन्द्रापीडस्य अमङ्गलम् अशुभं

उठेगा जैसे अति [जल-] भार से पीड़ित सरस [जल वाला] और मृदु [कमजोर] तालाब फट जाया करता है। इसलिए देवी मदिरा और महाराज चित्ररथ का खयाल करो। तुम्हारे बिना दोनों के कुल नहीं रहे।

इस तरह कहती हुई मदलेखा को कादम्बरी हँसकर बोली—'अरी पगली, वज्र की तरह कठोर मेरे इस हृदय का फटना कहाँ जो इस प्रकार देखकर हजारों खंडों में नहीं फटा। अपि च, जो जी रही है, उसी के ये सब माता, पिता, बन्धु, आत्मा, सखियाँ और नौकर-चाकर है। किन्तु मरने जा रही मैंने [अपना] प्राणभूत यह प्रियतम का शरीर किसी तरह पा ही लिया है, जो जीते रहते संभोग द्वारा और मृत होने सती होने द्वारा—दोनों ही तरह मेरे दुःखों के ही शान्ति के लिए है। तो क्यों मैं आते हुए और मेरे हेतु प्राणों का त्याग करते हुए देव चन्द्रापीड द्वारा खूब ऊँचे उठाये एवं गौरव पर पहुँचाये अपनी आत्मा को केवल आँसू बहा कर छोटा कर के नीचे गिराऊँ ? रोकर क्यों स्वर्ग की ओर जा रहे उनका अमङ्गल करूँ ? क्यों पद-रज

पादावनुगन्तुमुद्यता हर्षस्थानेपि रोदिमि। किं मे दुःखमेवंविधम्। अधुना तु मे सर्वदुःखान्येव दूरीभूतानि। किमद्यापि रुद्यते। यदर्थं कुलक्रमो न गणितः, गुरवो नापेक्षिताः, धर्मो नानुरुद्धः, जनवादान्न भीतम्, लज्जा परित्यक्ता, मदनोपचारैः सखीजनः खेदितः, दुःखिता मे प्रियसखी महाश्वेता। तस्याः कृते प्रतिज्ञातमन्यथा जातं मयेत्येतदपि चेतसि न कृतम्, तस्मिन्मदर्थमेवोज्झितप्राणे प्राणेश्वरे प्राणान्प्रतिपालयन्ती त्वयैवं किमुक्ताहम्। अस्मिन्समये मरणमेव जीवितम्। जीवितं पुनर्मरणम्। तद्यदि ममोपरि स्नेहः, करोषि मत्प्रियं हितं वा, तन्ममोपरि स्नेहावद्धयापि प्रियसख्या तथा कर्तव्यं यथा न तातोऽम्बा च मच्छोकादात्मानं परित्यजतः। यथा च मयि वाञ्छितं मनोरथं त्वयि पूरयतः। येन परलोकगताया अपि मे जलाञ्जलिदानाय पुत्रकस्त्वयि भविष्यति। यथा च मे सखीजनः

करोमि विदधामि। किं मे दुःखम् एवंविधम् ईदृशम्? कथं कस्मात् पादयोः चरणयोः धूलिः रजः इवेत्युपमायां पादौ चरणौ अनुगन्तुम् अनुसर्तुम् उद्यता उद्युक्ता अहं हर्षस्य मोदस्य स्थाने विषये इत्यर्थः अपि रोदिमि रोदनं करोमि। अधुना सम्प्रति तु मे सर्वाणि च तानि दुःखानि कष्टानि एव दूरीभूतानि अपगतानि। किम् अद्य अधुना अपि रुद्यते रोदनं क्रियते। यस्मै इति यदर्थं कुलस्य वंशस्य क्रमः परम्परा मर्यादेति यावत् न गणितः अपेक्षितः गुरवो माता-पित्रादयः श्रेष्ठ-पुरुषाः न अपेक्षिताः चिन्तिताः, धर्मः न अनुरुद्धः अनुसृतः पालित इत्यर्थः, जनवादात् लोकापवादात् न भीतं भयं कृतम्, लज्जा त्रपा परित्यक्ता उज्झिता, मदनस्य कामस्य उपचारैः प्रतीकारैः सखीजनः सख्यः खेदितः खेदं प्रापितः, मे प्रियसखी महाश्वेता दुःखिता दुःखं प्रापिता। तस्याः महाश्वेतायाः कृते अर्थे प्रतिज्ञातम् प्रतिज्ञाविषयीकृतं यत् यावत् तव विवाहो न भवति तावत् अहमपि विवाहं न करोमि; तत् अन्यथा जातं विपरीतभूतम् इति एतत् अपि मया चेतसि मनसि न कृतं चिन्तितमित्यर्थः। तस्मिन् प्राणेश्वरे प्राणनाथे चन्द्रापीडे इत्यर्थः मदर्थं मम कृते उज्झिताः त्यक्ताः प्राणाः येन तथाभूते सति प्राणान् असून् प्रतिपालयन्ती रक्षन्ती अहं त्वया मदलेखया एवं कथं कस्मात् उक्ता कथिता? अस्मिन् समये काले मरणं मे मृत्युः एव जीवितम् अस्ति। जीवितं पुनः च मरणम्। तत् तस्मात् यदि मम उपरि मयि तव स्नेहः प्रीतिः अस्ति अथवा यदि मम प्रियं प्रीतिकरं हितम् अर्थं भद्रमिति यावत् करोषि विदधासि, तत् तर्हि मम उपरि स्नेहेन प्रीत्या आवद्धया नियन्त्रितया तथा तेन प्रकारेण कर्तव्यं विधेयं यथा येन प्रकारेण तातः पिता अम्बा माता च मम शोकः दुःखं तस्मात् आत्मानं आत्मप्राणानित्यर्थः न परित्यजतः उज्झतः, यथा च मयि मद्विषये वाञ्छितम् अभिलषितं त्वयि पूरयतः सफलयतः इत्यर्थः येन परलोकं लोकान्तरं गतायाः प्राप्तायाः अपि मे मम जलाञ्जलेः दानाय अर्पणाय त्वयि पुत्रकः पुत्रः भविष्यति तव विवाहानन्तरं त्वयि उत्पन्नः पुत्रः प्रत्यहं मम जल-तर्पणं करिष्यतीति भावः। यथा

की तरह पैरों के पीछे चलने को तय्यार हुई बैठी मैं हर्ष के स्थान में रोऊँ? क्या मेरा दुःख ऐसा है? अब तो मेरे सभी दुख चले गए हैं। क्या अब भी रोया जांय? जिसके लिए मैंने न कुल-परम्परा की पर्वाह की, न गुरुजनों का खयाल रखा, न धर्म का अनुसरण किया, न लोकनिन्दा से डरी, लाज छोड़ी, मदन [निवारण] हेतु किये उपचारों से सखियों को कष्ट दिया, अपनी प्रिय सखी महाश्वेता को दुखी किया। उसके लिए जो प्रतिज्ञा की थी, वह और ही तरह हो पड़ी—यह भी मैंने नहीं सोचा। इन प्राणेश्वर के मेरे खातिर प्राण दे देने पर प्राणों की रक्षा करते हुए मेरे लिए तुमने ऐसा यह क्या कह डाला है? इस समय तो मरना ही [मेरा] जीवन है और जीना ही मेरा मरना है। इसलिए यदि मुझ पर तुम्हारा स्नेह है अथवा तुम मेरा प्रिय हित करती हो, तो मेरे प्रति स्नेह-बद्ध हुई भी तुम ऐसा करना कि जिससे पिता जी और माता जी मेरे शोक के कारण प्राण न त्याग दें और जैसा मनोरथ वे मुझ से चाहते थे, उसे वे तुमसे पूरा कर लें—और तुम में उत्पन्न हुआ पुत्र मुझे जलाञ्जलि देगा। जिस

परिजनो वा न स्मरति शून्यं वा भवनमालोक्य न दिशो गृह्णाति तथा करिष्यसि। पुत्रकस्य मे भवनाङ्गणे सहकारपोतस्य त्वया मच्चिन्तितयैव माधवीलतया सहोद्वाहमङ्गलं स्वयमेव निर्वर्तनीयम्। मच्चरणतललालितस्याशोकविटपस्य कर्णपूरार्थमपि न पल्लवः खण्डनीयः। मत्संवर्धिताया मालत्याः कुसुमानि देवार्चनायैवोच्चेयानि। वासभवने मे शिरोभागनिहितः कामदेवपटः पाटनीयः। मया स्वयं रोपिताश्चूतवृक्षा यथा फलं गृह्णन्ति तथा संवर्धनीयाः। पञ्जरबन्धदुःखाद्वराकी कालिन्दी सारिका शुकश्च परिहासो द्वावपि मोक्तव्यौ। मदङ्कशायिनी नकुलिका स्वाङ्क एव शाययितव्या। पुत्रको मे बालहरिणस्तरलकः कस्मिंश्चित्तपोवने समर्पणीयः। पाणितलसंवर्धितं मे जीवञ्जीवमिथुनं क्रीडापर्वते यथा न विपद्यते तथा कर्तव्यम्। पादसहसंचारी हंसको यथा न हन्यते केनचित्तथा

च मे सखीजनः आलिवर्गः अथवा परिजनः भृत्यवर्गः न मां स्मरति स्मृतिविषयीकरोति, मां विना शून्यं रिक्तं भवनं गृहम् आलोक्य दृष्ट्वा न दिशः दिशाः गृह्णाति अङ्गीकरोति अर्थात् गृहं त्यक्त्वा यत्र तत्र दिक्षु न गच्छति तथा त्वं करिष्यसि विधास्यसि। भवनस्य अङ्गणे प्राङ्गणे मे मम पुत्रकस्य कृतक-पुत्रस्य सहकारस्य पोतस्य बालवृक्षस्य त्वया मया चिन्तितया विचारितया माधवीलतया अतिमुक्त-वल्ल्या सह उद्वाहः विवाहः तद्रूपं मङ्गलं कल्याणं स्वयमेव आत्मना एव निर्वर्तनीयं करणीयम्। मम चरणयोः तलेन पृष्ठेन लालितस्य पालितस्य मच्चरणतलप्रहारैः वृद्धिं गतस्येत्यर्थः अशोकस्य विटपस्य शाखायाः पल्लवः किसलयः कर्णपूराय कर्णपूरं निर्मातुमित्यर्थः न खण्डनीयः त्रोटनीयः। मया संवर्धितायाः वृद्धिं प्रापितायाः मालत्याः पुष्पवल्लीविशेषायाः कुसुमानि पुष्पाणि देवस्य महादेवस्य अर्चनाय पूजनाय एव उच्चेयानि अवचेतव्यानि। वासस्य निवासस्य भवने गृहे मे शिरोभागे शिरः प्रदेशे निहितः स्थापितः कामदेवस्य मदनस्य पटः चित्रपट इत्यर्थः पाटनीयः खण्डखण्डीकर्तव्यः। मया स्वयम् आत्मना रोपिताः कृतारोपणाः चूतस्य आम्रस्य वृक्षाः तरवः यथा येन प्रकारेण फलं गृह्णन्ति फलवन्तो भवन्ति तथा तेन प्रकारेण त्वया संवर्धनीयाः वृद्धिं प्रापणीयाः। वराकी दीना कालिन्दी एतन्नाम्नी सारिका 'मैना' इति भाषायां प्रसिद्धा परिहासः एतन्नामा च शुकः कीरः द्वौ उभौ अपि पञ्जरे पिञ्जरे बन्धस्य बन्धनस्य यत् दुःखं कष्टं तस्मात् मोक्तव्यौ मुक्तौ कर्तव्यौ। मम अङ्के क्रोडे शयितुं शीलमस्या इति तथोक्ता नकुलिका न कुली स्वस्याः आत्मनः एव अङ्के क्रोडे शाययितव्या स्वापयितव्या। मे मम पुत्रकः कृतकः पुत्रः तरलकः एतन्नामा बालहरिणः मृग-शिशुः कस्मिंश्चित् तपोवने मुनीनाम् आश्रमे इत्यर्थः समर्पणीयः दातव्यः। मे मम पाणि-तलेन करतलेन संवर्धितं वृद्धिं प्रापितं जीवञ्जीवयोः चकोरयोः मिथुनं युगलं यथा न विद्यते विपत्तिं प्राप्नुयात् तथा कर्तव्यं विधेयम्। मे पादाभ्यां सह चरतीत्येवंशीलः हंसकः यथा

तरह मेरी सहेलियाँ अथवा नौकरानियाँ मेरी याद न करें और घर को सूना देखकर इधर-उधर खिसक न जायँ—ऐसा काम करना। मेरे भवन के आँगन में मेरे पुत्र आम के पौधों का विवाह-जैसा कि मैंने सोचा रखा था—तुम स्वयं माधवी लता से कर देना। मेरे चरणों के तले पले-पुसे अशोक वृक्ष की शाखा का पल्लव कर्णपूर हेतु भी न तोड़ना। मेरे द्वारा बड़ी की हुई मालती के फूल केवल देवपूजन हेतु चुनना। वास-भवन में मेरे सिर की ओर रखा कामदेव का चित्र-पट फाड़ देना। स्वयं मेरे द्वारा लगाए आम के पेड़ जिस तरह फल देने लग जायँ, वैसे बड़ा करते जाना। कालिन्दी नाम की मैंना तथा परिहास नाम का तोता—दोनों को पिंजरे के बन्धन से मुक्त कर देना। मेरी गोद पर सोने वाली नेवली को अपनी ही गोद पर सुलाना। मेरा तरल-नामक कृतक-पुत्र मृगशिशु किसी तपोवन में सौंप देना। मेरे हाथों से बढ़ाया हुआ चकोर का जोड़ा क्रीडा-पर्वत पर किसी तरह कष्ट में न पड़ जाय—ऐसा करना। मेरे पाँवों के

विधेयः। अचिरगृहीतवसतिः सा च बलाद्विधृता तपस्विनी वनमानुषिका वन एवोत्स्रष्टव्या। क्रीडापर्वतकः कस्मैचिदुपशान्ताय तपस्विने प्रतिपादयितव्यः। शरीरोपकरणानि मे ब्राह्मणेभ्यः प्रतिपादनीयानि। वीणा पुनरात्मन एवाङ्कप्रणयिनी कार्या। अपरमपि यत्ते रोचते तदपि स्वीकर्तव्यम्। अहं पुनरिममममृतकिरणरश्मिभिरनाश्यानचन्दनचर्चाभिरनवरतधारागृहासारसेकैरनेकसन्तान - तुहिनकिरणकिरणनिकरतारकिततारहारार्पणैर्मणि - दर्पणप्रणयनेन मलयजजलार्द्रपद्मिनीपत्रास्तरणेन सरसबिसकिसलयप्रस्तरैरकठोरमृणालतल्पकल्पनयोद्विकसत्कमलकुमुदकुवलयशयनीयैश्च दग्धशेषमुज्ज्वलचिताज्वालामालिनि

केनचित् जनेन न हन्यते व्यापाद्यते तथा विधेयः कर्तव्यः (अत्र 'तथा विधेयम्' इत्येव सुवचम्)। अचिरं नातिदीर्घकालं गृहीत्वा अङ्गीकृता वसतिः मया सह वासो यया तथाभूता, बलात् बलपूर्वकं विधृता गृहीता सा तपस्विनी वराकी वन-मानुषिका वन-मानुषी वने अरण्ये एव उत्स्रष्टव्या मोक्तव्या। क्रीडापर्वतः विलासाय निर्मितः कृत्रिमपर्वतः कस्मैचित् उपशान्ताय शान्तप्रकृतये तपस्विने तापसाय प्रतिपादयितव्यः दातव्यः। मे मम शरीरस्य देहस्य उपकरणानि भूषणवसनादीनि ब्राह्मणेभ्यः विप्रेभ्यः प्रतिपादनीयानि देयानि। पुनः किन्तु वीणा विपंची आत्मनः स्वस्याः एव अङ्के क्रोड प्रणयः स्नेहो अस्याः अस्तीति तथोक्ता कार्या कर्तव्या स्वाङ्कशायिनी एव विधेयेति भावः। अपरं वीणातिरिक्तम् यत् किमपि वस्तु ते तुभ्यं रोचते स्वदते तत् अपि स्वीकर्तव्यं ग्रहीतव्यम्। **अहं**—'अहं पुनः······निर्वापयात्मानम्' इत्यस्ति वाक्यम्। 'अहं पुनः अमृतकिरणस्य सुधांशोः चन्द्रस्येति यावत् रश्मिभिः किरणैः अनाश्यानम् अशुष्कम् आर्द्रमित्यर्थः यत् चन्दनं मलयजं तस्य चर्चाभिः लेपैः, अनवरतम् निरन्तरं यथा स्यात्तथा धारागृहाणां जलधारायन्त्रगृहाणाम् आसारस्य वेगवद्-वर्षाभिः यः सेकः सेचनं तैः, अनेकः सन्तानः परम्परा पंक्तिरिति यावत् येषां तथाभूताः तुहिन-किरणस्य शीतरश्मेः चन्द्रस्येत्यर्थः ये किरणाः रश्मयः तेषां निकरेण समूहेन तारकिताः सञ्जाततारा:, ये ताराः उज्ज्वलाः हाराः मौक्तिकस्रजः तेषाम् अर्पणैः धारणैरित्यर्थः, मणिदर्पणानां मणिरूपाणां मुकुराणां प्रणयनेन ग्रहणेनेत्यर्थः, मलयजस्य चन्दनस्य जलेन पानीयेन आर्द्राणि क्लिन्नानि यानि पद्मिनीनां कमलिनीनाम् आस्तरैः प्रस्तरणैः, सरसाः आर्द्राः ये बिसस्य मृणालस्य किसलयाः पल्लवाः तेषां प्रस्तरैः विस्तरैः, अकठोराणि कोमलानि यानि मृणालानि तेषां तल्पेन तल्परूपेण कल्पनया शय्यारूपेण रचनया, उद्विकसन्ति प्रफुल्लन्ति यानि कमलानि पद्मानि च कुमुदानि उत्पलानि च कुवलयानि नीलकमलानि चेति तेषां शयनीयैः शय्याभिः च दग्धात् प्लुष्टात् शेषम् अवशिष्टम् इमम् आत्मानम् स्वामित्यर्थः, यद्यपि उपर्युक्तानि सर्वाणि उपकरणानि तया काम-संतापोशमनाय प्रयुक्तानि, तथापि संतापोपशमनस्य स्थाने तैः अधिकाधिकं तापमुद्दीप्य सा दग्धा एव, अतः तेभ्यो दग्धशेषमित्युक्तम्, उज्ज्वलाः प्रदीप्ताः याः चितायाः

साथ-साथ चलने वाले हंस को कोई मार न देवे—ऐसा उपाय करना। हाल ही में (हमारे) पास रहने वाली, बे जबरन पकड़ी हुई बेचारी वन-मानुषी को वन में ही छोड़ देना। क्रीडापर्वत किसी शान्त स्वभाव के तपस्वी को दे देना। मेरे शरीर के उपकरण (भूषण वस्त्रादि) ब्राह्मणों को दे देना किन्तु वीणा अपनी गोद से ही लगा रखना। और भी जो कुछ (चीज) तुम्हें अच्छी लगे, रख लेना। मैं तो चन्द्रमा की किरणों से, गीले चन्दन के लेप से, लगातार जोर की वृष्टि करने वाले फव्वारों के सिञ्चन से, चन्द्रमा की किरणों द्वारा तारे-जैसे बने उज्ज्वल मौक्तिक हारों से, मणिमय दर्पणों को लाने से, चन्दन-जल से गीले किए पद्मिनी के पत्तों के बिछौने से, गीले मृणाल के पत्तों के फैलाने से, कोमल मृणालों को विस्तर का रूप दे देने से, खिल रहे कमलों, कुमुदों और कुवलयों की शय्याओं से जलने से बचे अपने आपको पूज्य चन्द्रापीड को

विभावसौ देवस्य कण्ठलग्ना निर्वापयाम्यात्मानम्'। इत्यभिदधानैव कृतावधारणानुबन्धां मदलेखामवक्षिप्योपसृत्य महाश्वेतां कण्ठे गृहीत्वा निर्विकारवचनैव पुनस्तामवादीत्।

'प्रियसखि, तवास्ति कीदृश्यपि प्रत्याशा ययानुरागपरवशा पुनःसमागमाकाङ्क्षिणी क्षणे क्षणे मरणाभ्यधिकानि दुःखान्यनुभवन्ती जीवितमलज्जाकरमननुशोच्यमनुपहसनीयमवाच्यं धारयसि। मम पुनः सर्वतो हताशायाः सापि नास्ति। तदामन्त्रये प्रियसखीं पुनर्जन्मान्तरसमागमाय।' इत्यभिधायोत्पद्यमानपुलककेसरोद्भासिन्यसमसाध्वसानिलाहतोत्कम्पोत्तरंग्यमाणानन्दबाष्पवेगोर्मितरला संगलत्स्वेदमकरन्दबिन्दुनिस्यन्दिनी मुकुलायमाननयनकुमुदा कुमुदिनीव चन्द्रापीडचन्द्रास्तमयविधुरा

चित्यायाः ज्वाला अर्चींषि तासां माला श्रेणी अस्मिन् अस्तीति तथोक्ते विभावसौ वह्नौ देवस्य पूज्यस्य प्रियतमस्य चन्द्रापीडस्येति यावत् कण्ठे गले लग्ना सक्ता सती निर्वापयामि शीतलीकरोमि' इति अभिदधाना कथयन्तीएव कृतः विहितः अवधारणस्य धारणस्य हस्ताभ्यां ग्रहणस्येत्यर्थः अनुबन्धः सातत्यं यया तथाभूतां मदलेखाम् अवक्षिप्य दूरीकृत्य आत्मानं मोचयित्वेत्यर्थः उपसृत्य उपगम्य महाश्वेतां कण्ठे गृहीत्वा आश्लिष्य निर्विकारं विकाररहितं वदनं मुखं यस्याः तथाभूता एव पुनः द्वितीयवारं ताम महाश्वेताम् अवादीत् अवदत्।

प्रियसखीति—प्रिया चासौ सखी तत्सम्बुद्धौ तव अस्ति कीदृशी कस्यापि प्रकारस्य प्रत्याशा प्रियतमेन पुनर्मिलनस्य आशा यया प्रत्याशया अनुरागस्य प्रेम्णः परवशा अधीना, पुनः समागमं मिलनम् आकाङ्क्षति इच्छतीत्येवंशीला, क्षणे-क्षणे प्रतिक्षणं मरणात् मृत्योः अपि अभ्यधिकानि अतिरिक्तानि दुःखानि कष्टानि अनुभवन्ती निर्विशमाना जीवितं जीवनम् अलज्जाकरम् न लज्जां त्रपां करोतीति तथोक्तम्, अननुशोच्यम् अनुशोचितुमयोग्यम् अनुपहसनीयम् नोपहासयोग्यम् अवाच्यम् न निन्द्यम् जीवितं जीवनं धारयसि वहसि। पुनः किन्तु सर्वतः सर्वप्रकारेण हता नष्टा आशा आशंसा यस्याः तथाभूतायाः मम सा आशा अपि नास्ति, तत् तस्मात् पुनः मुहुः जन्मान्तरे अन्यस्मिन् जन्मनि समागमाय मिलनाय आमन्त्रये आपृच्छे—जन्मान्तरे आवयोः पुनर्मिलनं स्यादित्याशया मां विसर्जयेति भावः। इत्यभि०—अभिधाय कथयित्वा उत्पद्यमानः जायमानः यः पुलकः रोमाञ्च एव केसरः किञ्जल्कः तैः उदासते शोभते इत्येवंशीला, असमं विषमं महान् इत्यर्थः यत् साध्वसं भयं तस्मात् यः अनिलः वृद्धिं गतः श्वासोच्छ्वासवायुः तेन आहता ताडिता, उत्कम्पेन वेपथुना उत्तरङ्ग्यमाणः तरङ्गवत् उच्छलन् आनन्द-बाष्पस्य आनन्दाश्रुणः वेगः रयः एव ऊर्मिः वीचिः नाभिः तरला चञ्चला, संगलन् सम्यक् प्रकारेण प्रस्रवन् स्वेदः धर्मजलम् एव मकरन्दः पुष्परसः तस्य बिन्दून् निस्यन्दयति स्रवतीत्येवंशीला मुकुलायामानं मुकुलवत् आचरत् अर्धमुद्रितमित्यर्थः नयनं नेत्रं कुमुदमिव यस्याः तथाभूता, कुमुदिनी कैरविणी इव चन्द्रापीडः एव चन्द्रः

गले लगाये दहकती, चिता की लपटों वाली आग में शीतल बना देती हूँ' यह कहती हुई ही लगातार (उसे) थामे हुए मदलेखा को हटा कर, पास जाकर महाश्वेता को गले लगाकर, मुख पर (कोई) विकार न लाये बोली—

''प्रिय सखी, तुम्हें तो किसी तरह आशा है ही, जिससे तुम अनुरागाधीन, फिर मिलने की इच्छा रखे और पल-पल मृत्यु से भी अधिक दुख झेलती हुई ऐसा जीवन रख रही हो जो न लज्जा-कारक है, न शोचनीय है और न ही उपहास-योग्य है। किन्तु मरी हुई आशा वाली मेरे हेतु तो वह भी नहीं। इसलिए तुमसे विदा ले रही हूँ (इस आशा के साथ) कि दूसरे जन्म में हम फिर मिलेंगी' यह कह कर उठ रहे रोमाञ्च के रूप में केसर से शोभायमान, महान् भय के कारण (बढ़े हुए) श्वासोच्छ्वास की हवा से हो रहे कम्प के द्वारा छलकते हुए आनन्दाश्रुओं के वेग की तरंगों से तरल बनी, चू रहे स्वेद-रूप मकरन्द की बूँदें टपकाती,

तदवस्थेपि हृदयवल्लभे समागमसुखमिवानुभवन्ती सरभसमुपरिपर्यस्तचिकुरहस्तोद्वान्तकुसुमनिवहेन मूर्ध्नार्चयित्वा चन्द्रापीडचरणौ स्रवत्स्वेदामृतार्द्राभ्यां कराभ्यामुत्क्षिप्याङ्केन धृतवती। अथ तत्करस्पर्शेनोच्छ्वसत इव चन्द्रापीडदेहाज्झटिति तुहिनमयमिव सकलमेव तं प्रदेशं कुर्वाणमव्यक्तरूपं किमपि चन्द्रधवलं ज्योतिरेवोज्जगाम। अनन्तरं चान्तरिक्षे क्षरन्तीवामृतमशरीरिणी वागश्रूयत। 'वत्से महाश्वेते, पुनरपि त्वं मयैव समाश्वासयितव्या वर्तसे। तत्ते पुण्डरीकशरीरं मल्लोके मत्तेजसाप्यायमानमविनाशि भूयस्त्वत्समागमनाय तिष्ठत्येव। इदमपरं मत्तेजोमयं स्वत एवाविनाशि विशेषतोऽमुना कादम्बरीकरस्पर्शेनाप्यायमानं चन्द्रापीडशरीरं शापदोषाद्विमुक्तमप्यन्तरात्मना कृतशरीरसंक्रान्ते-

---

चन्द्रमाः तस्य अस्तमयेन अस्तंगमनेन विधुरा दुःखिता कादम्बरी हृदयस्य वल्लभे प्रिये चन्द्रापीडे सा मृत्युं गतेत्यर्थः (रूपकोपमयोः संकरः) अवस्था यस्य तथाभूतेऽपि समागमः मिलनं तस्य सुखम् आनन्दम् इव अनुभवन्ती निर्विशमाना सरभसं शीघ्रम् उपरि पर्यस्तः पर्याकुलः यः चिकुरहस्तः केशपाशः ['पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः] तेन उद्वान्तः उद्गीर्णः कुसुमानां पुष्पाणां निवहः समूहः येन तथाभूतेन मूर्ध्ना शिरसा चन्द्रापीडस्य चरणौ पादौ अर्चयित्वा पूजयित्वा स्रवन् स्यन्दमानः स्वेदः घर्मजलम् अमृतमिव तेन आर्द्राभ्यां क्लिन्नाभ्यां कराभ्यां हस्ताभ्यां उत्क्षिप्य उत्थाप्य अङ्केन क्रोडेन धृतवती दधौ। अथ तदनन्तरम् तस्याः कादम्बर्याः करस्य हस्तस्य स्पर्शेन संसर्गेण उच्छ्वसतः उज्जीवत इव चन्द्रापीडस्य देहात् शरीरात् झटिति तत्कालं सकलं समस्तम् एव तं प्रदेशं तत् स्थानं तुहिनं हिममेवेति तन्मयं तद्रूपं कुर्वाणं कुर्वन्तम्, अव्यक्तम् अप्रकटं रूपं स्वरूपं यस्य तत् किमपि ईषत् यथा स्यात्तथा चन्द्रवत् धवलं श्वेतवर्णं ज्योतिः तेज एव उज्जगाम उदगच्छत्। अनन्तरं तत्पश्चात् च अन्तरिक्षे गगने अमृतं क्षरन्ती स्रवन्ती इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अशरीरिणी अमूर्ता वाक् वाणी अश्रूयत श्रुतिगोचरमभूत्—'वत्से पुत्रि महाश्वेते! पुनः द्वितीयवारम् अपि त्वं मया समाश्वासयितव्या आश्वासनं प्रापयितव्या वर्तते असि। ते तव तत् पुण्डरीकस्य, शरीरं मम लोके मम तेजसा धाम्ना आप्यायमानं पोषं वृद्धिं च नीयमानम् अत एव अविनाशि विनाशरहितं भूयः पुनः त्वया समागमनं मिलनं तस्मै तिष्ठति एव जीवति एवेत्यर्थः। इदम् एतत् अपरं द्वितीयं मम तेजः धाम एवेति तन्मयं स्वतः स्वभावतः एव अविनाशि अविनश्वरं विशेषतः अमुना एतेन कादम्बर्याः करस्य हस्तस्य स्पर्शेन अपि आप्यायमानं पुष्टीक्रियमाणं चन्द्रापीडस्य शरीरं शापस्य दोषात् प्रभावादित्यर्थः विमुक्तम् प्राणैः रहितम् अपि, अन्तरात्मा मध्यवर्तिना जीव-तत्त्वेन कृतं शरीरान्तरे अन्यस्मिन् शरीरे संक्रान्तिः संक्रमणं येन तथाभूतस्य योगिनः योगिपुरुषस्य शरीरम् इव अत्र एव अस्मिन् एव स्थाने भवत्योः युवयोः प्रत्ययार्थं विश्वासार्थम् आ शापक्षयात् शापक्षयपर्यन्तम् आस्ताम् तिष्ठतु, यथा

कुमुद सी आँखों को मुकुल की तरह आधे मीचे, कुमुदिनी-जैसी, चन्द्रापीड़-रूपी चन्द्र के अस्त हो जाने से दुःखी हुई, प्राणप्रिय की वैसी हालत में भी समागम का-सा आनन्द अनुभव करती हुई कादम्बरी ऊपर बिखरे केश-पाश से वेग के साथ गिर रहे पुष्प-समूह वाले शिर से चन्द्रापीड़ के चरणों की पूजा करके चू रहे अमृत-जैसे पसीने से गीले बने हाथों से उठाकर उन्हें अपनी गोद में धर बैठी। तदनन्तर उसके हाथ के स्पर्श से साँस लेते-जैसे चन्द्रापीड़ की देह से झट उस सारे ही प्रदेश को बर्फीला-जैसा बनाती हुई अस्पष्टरूप चन्द्रमा-जैसी कोई ज्योति निकली। तत्पश्चात् आकाश में अमृत-जैसे बहती हुई अमूर्त वाणी सुनाई दी—'पुत्री महाश्वेता! मुझे तुमको फिर आश्वासन देना है। तुम्हारे पुण्डरीक का वह शरीर मेरे (चन्द्र) लोक में मेरे तेज से ठीकठाक, अविनाशी बना हुआ फिर तुमसे मिलने हेतु (यथावत्) स्थित है। मेरा ही तेजस्वरूप यह दूसरा, स्वतः ही अविनाशी विशेषतः कादम्बरी के कर-स्पर्श से पुष्टि पा रहा चन्द्रापीड़ का शरीर शाप के दोष के कारण (प्राणों से) विमुक्त होता हुआ भी अन्तरात्मा द्वारा दूसरे

योगिन इव शरीरमत्रैव भवत्योः प्रत्ययार्थमा शापक्षयादास्ताम्। नैतदग्निना संस्कर्तव्यम्। नोदके प्रक्षेप्तव्यम्। नापि वा समुत्स्रष्टव्यम्। यत्नतः परिपालनीयमा समागमप्राप्तेः' इति।

तां तु श्रुत्वा किमेतदिति विस्मिताक्षिप्तहृदयः सर्व एव परिजनो गगनतलनिवेशितनिर्निमेषलोचनो लिखित इव पत्रलेखावर्जमतिष्ठत्। पत्रलेखा तु तेन तस्य ज्योतिषस्तुषारशीतलेनाह्लादहेतुना स्पर्शेन लब्धसंज्ञोत्थायाविष्टेव वेगाद्धावित्वा परिवर्धकहस्तादाच्छिद्येन्द्रायुधमस्मद्विधानां यथा तथा भवतु त्वं पुनरेवमेकाकिनि विना वाहनं दूरं प्रस्थिते देवे क्षणमप्यवस्थातुं न शोभस इत्यभिदधाना तेनैवेन्द्रायुधेन सहात्मानमच्छोददसरस्यक्षिपत्।

योगी योगबलेन आत्मानं शरीरान्तरे संक्रमयति, तस्य पूर्ववर्ति शरीरं यथावत् अविकृतं तिष्ठति, तथैव चन्द्रापीडशरीरं कादम्बर्याः करस्पर्शेन शापकालसमाप्तिं यावत् यथावत् स्थास्यतीति भावः (शापः अग्रे स्पष्टीभविष्यति)। एतत् चन्द्रापीडशरीरम् अग्निना वह्निना न संस्कर्तव्यम् अस्य दाह-संस्कारो न कार्यः इत्यर्थः, न च उदके नदीजले प्रक्षेप्तव्यं प्रक्षेपः कार्यः। नापि वा समुत्स्रष्टव्यं त्यक्तव्यम्। आ समागमस्य मिलनस्य प्राप्तेः प्राप्तिपर्यन्तं यत्नतः प्रयत्नपूर्वकं परिपालनीयम् सम्यक्तया रक्षणीयम्।

तां तु—ताम् आकाशवाणीं श्रुत्वा आकर्ण्य 'एतत् किम्' इति विस्मितेन विस्मयेन (भावे क्तः) आक्षिप्तम् आक्रान्तं हृदयं स्वान्तं यस्य तथाभूतः सर्वः निखिलः एव परिजनः भृत्यवर्गः गगनस्य आकाशस्य तले उपरि इत्यर्थः निवेशितं न्यस्तं निर्निमेषरहितं लोचनं नयनं येन तथाभूतः (मूर्छिताम्) पत्रलेखाम् वर्जयित्वा इति पत्रलेखावर्जं पत्रलेखां विहाय लिखितः चित्रितः इव अतिष्ठत् स्थितवान्। पत्रलेखा तु तस्य ज्योतिषः अव्यक्तधाम्नः तुषारः हिमं तद्वत् शीतलेन शीतेन अह्लादस्य प्रमोदस्य हेतुना कारणेन सम्पर्केण लब्धा प्राप्ता संज्ञा चैतन्यं यया तथाभूता सती उत्थाय उत्थिता भूत्वा आविष्टा भूतग्रस्ता इवेत्युत्प्रेक्षायाम् वेगात् रयात् धावित्वा धावनं कृत्वा परिवर्धकस्य एतन्नामकस्य अश्वपालस्य हस्तात् करात् इन्द्रायुधम् आच्छिद्य बलात् गृहीत्वा अस्मद्विधानाम् अस्मत्सदृशानां यथा तथा भवतु अस्माकमिदानीं नास्ति किमपि प्रयोजनमिति भावः, त्वं पुनः किन्तु एवम् वाहनं त्वामित्यर्थः विना एकाकिनि एकले देवे चन्द्रापीडे दूरं प्रस्थिते गते सति, अत्र स्त्रीलिङ्गः 'एकाकिनी'—पाठः सर्वथा असंगत एव, पुल्लिङ्गः सप्तम्यन्तः 'एकाकिनि'—पाठः देवेन सम्बध्यते, वस्तुतः 'त्वं पुनरेवमेकाकी' पाठः त्वं-पदवाच्येन इन्द्रायुधेन सम्बध्यमान एव साधीयान्, क्षणम् अपि क्षणमात्रमपि अवस्थातुम् अवस्थानं कर्तुं न शोभां प्राप्नोषि इति अभिदधाना वदन्ती तेन एव इन्द्रायुधेन सह आत्मानं स्वाम् अच्छोद-सरसि अच्छोद-सरोवरे अक्षिपत् क्षिप्तवती।

शरीर में संक्रमित योगी के शरीर की तरह यहीं तुम दोनों के विश्वास हेतु शाप-समाप्ति तक पड़ा रहे। इसका न दाह-संस्कार करना, न जल में फेंकना, न ही छोड़ देना। समागम-प्राप्ति तक यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करते जाना'।

उस (आकाशवाणी) को सुनकर 'यह क्या ?' इस तरह मन में आश्चर्यचकित हुआ सारा भृत्य-वर्ग पत्रलेखा को छोड़ गगनतल में एक-टक दृष्टि गाड़े, चित्रित-जैसा खड़ा रहा। किन्तु पत्रलेखा उस ज्योति के बर्फ-जैसे ठण्डे, आह्लाद-जनक स्पर्श द्वारा होश प्राप्त किये, उठकर भुतही-जैसी जल्दी-जल्दी दौड़कर परिवर्धक के हाथ से इन्द्रायुध को छीनकर हम-जैसों का जो हो, सो हो, किन्तु वाहन के बिना देव चन्द्रापीड़ के दूर चले जाने पर तुम्हारा क्षण भर भी यहाँ टिकना शोभा नहीं देता' यह कहती हुई उस इन्द्रायुध के ही साथ अच्छोद सरोवर में छलांग लगा बैठी।

अथ तयोर्निमज्जनसमयानन्तरमेव तस्मात्सरसः सलिलाच्छैवलोत्करमिव शिरसि लग्नं गलज्जलविन्दुसंदोहमयथावलम्बिदीर्घशिखं मुखोपरिपरस्परासक्तेरसंस्कारमलिनतया चोपसूचितचिरोध्र्वबन्धं जटाकलापमुद्वहज्जलार्द्रदेहासक्तेन बिसतन्तुमयेनेव ब्रह्मसूत्रेणोद्भासमानो म्लानारविन्दिनीपलाशपृष्ठपाण्डुरेण जीर्णमन्दारवल्कलेनाबद्धपरिकरः करेणाननावरोधिनीर्जटाः समुत्सारयन्नश्रुजलच्छलेनाच्छोदसरःसलिलमिवान्तःप्रविष्टमाताम्राभ्यामुद्वहँल्लोचनाभ्यामुद्विग्नाकृतिस्तापसकुमारकः सहसैवोदतिष्ठत्। उत्थाय च दूरत एवोद्दामबाष्पजलनिरोधपर्याकुलयापि बद्धलक्षया दृष्ट्या विलोकयन्तीं महाश्वेतामुपसृत्य शोकगद्गदमवादीत्। 'गन्धर्वराजपुत्रि, जन्मान्तरादिवागतोपि प्रत्यभिज्ञायतेयं

अथ—तयोः इन्द्रायुध-पत्रलेखयोः निमज्जनस्य ब्रुडनस्य समयस्य कालस्य अनन्तरम् पश्चात् एव 'तस्मात् सरसः तापसकुमारः सहसैवोदतिष्ठत्' इत्यस्ति वाक्यम्, तस्मात् सरसः सरोवरस्य सलिलात् शैवलस्य शैवालस्य उत्करं समूहम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, शिरसि मूर्ध्नि लग्नं सक्तम् (जटाकलापस्य विशेषणम्) गलत् स्यन्दमानः जलस्य विन्दूनां पृषतां सन्दोहः समूहः यस्मात् तथाभूतम्, न यथा यथास्थानमित्यर्थः अवलम्बितुं शीलमस्येति तथोक्ता च दीर्घा आयता च शिखा चूडा यस्य तम्, मुखस्य उपरि परस्परम् अन्योन्यं या आसक्तिः संश्लेषः तस्याः कारणात्, न संस्कारः मार्जनादिकं तेन मलिनतया मालिन्येन च उपसूचितः ज्ञापितः चिरः चिरकालीनः ऊर्ध्वः उपरितनः वन्धः वन्धनं यस्य तम् जटाकलापं जटासमूहम् उद्वहन् धारयन् एतत् अन्यानि च 'तापसकुमारः' इत्यस्य विशेषणानि, जलेन आर्द्रः क्लिन्नः यः देहः शरीरं तस्मिन् आसक्तेन लग्नेन बिसस्य मृणालस्य तन्तवः सूत्राणि एवेति तन्मयं तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, ब्रह्मसूत्रेण यज्ञोपवीतेन उद्भासमानः भ्राजन्, **म्लाना०**—म्लानं म्लानिं गतं यत् अरविन्दिन्याः कमलिन्याः पलाशं पत्रं तस्य पृष्ठवत् पृष्ठभागवत् पाण्डुरेण श्वेतेन जीर्णं पुराणं यत् मन्दारस्य वृक्षविशेषस्य वल्कलं त्वक् तेन आवद्धः सम्यक् वद्धः परिकरः कटिवसनं येन सः, करेण हस्तेन आननं मुखम् अवरुन्धन्ति आच्छादयन्तीत्येवंशीलाः जटाः संसक्त-केशान् समुत्सारयन् अपाकुर्वन् अश्रुजलस्य नयनवारिणः छलेन व्याजेन अन्तः मध्ये प्रविष्टं गतम् अच्छोद-सरसः सलिलं जलमिवेत्यपह्नुत्युत्थापितोत्प्रेक्षायाम् आताम्राभ्याम् ईषत् रक्तवर्णाभ्यां लोचनाभ्यां नयनाभ्याम् उद्वहन् धारयन् वहिः निस्सारयन्नित्यर्थः, उद्विग्ना उद्वेगं प्राप्ता आकृतिः आकारो यस्य तथाभूतः तापस-कुमारः तपस्विवालकः सहसा अकस्मात् एव उदतिष्ठत् उत्थितः उत्थाय उत्थितो भूत्वा च दूरतः दूरात् एव उद्दाम उत्कटम् अतिबहुलमित्यर्थः यत् बाष्प-जलम् अश्रुजलं तेन यः अवरोधः प्रतिबन्धः आच्छादनमित्यर्थः तेन पर्याकुलया व्याकुलया अपि दृष्ट्या दृशा वद्धं लक्षं लक्ष्यं यया तथाभूतया दृष्ट्या दृशा विलोकयन्तीं पश्यन्तीं महाश्वेताम् उपसृत्य उपगम्य शोकेन दुःखेन गद्गदं स्खलदक्षरं यथा स्यात्तथा अवादीत् अवदत्—'गन्धर्वराजस्य हंसस्य पुत्री तनया तत्सम्बुद्धौ महाश्वेते

उन दोनों के डूब जाने के समय के बाद ही एकदम उस सर के जल से एक तपस्वी बालक निकल आया, जो शैवाल-जैसे सिर पर लगे, जलविन्दु-समूह बहाये, ठीक तरह से न लटक रही लम्बी शिखा वाले, मुख के ऊपर चिपकने तथा बिना (मार्जन आदि) संस्कार से मैले होने के कारण चिरकाल से ऊपर बाँधे जाने की सूचना दिये, जटा-समूह को धारण कर रहा था, जल से गीली बनी देह पर चिपके मृणालसूत्रमय-जैसे यज्ञोपवीत से विभासित हो रहा था, मुरझाई हुई कमलिनी के पत्ते के पृष्ठ-भाग के समान श्वेत पुराने मन्दार के वल्कल से कमर कसे हुए था, मुख को ढक देने वाली जटाओं को हाथ से सरका रहा था, अश्रु-जल के बहाने भीतर घुसे अच्छोद सरोवर के जल को-जैसे लाल-लाल आँखों से बाहर निकाले जा रहा और जिसकी आकृति उद्विग्न हो रही थी। बाहर निकलकर प्रभूत अश्रु-जल द्वारा रुकावट होने के कारण व्याकुल होती हुई भी लक्ष्य बाँधे दृष्टि से देखती जा रही महाश्वेता के पास आकर शोक से गद्गद वाणी में बोला—'गन्धर्वराज-पुत्री ! जन्मान्तर से आये हुए-जैसे इस जन को

जनो न वा' इति। सा त्वेवं पृष्टा शोकानन्दमध्यवर्तिनी ससंभ्रममुत्थाय कृतपादवन्दना प्रत्यवादीत्। 'भगवन्कपिञ्जल, अहमेवंविधापुण्यवती या भवन्तमपि न प्रत्यभिजानामि। अथवा युक्तैवेदृशी मय्यनात्मज्ञायां संभावना याऽहमेकान्तत एव व्यामोहहता स्वर्गं गतेपि देवे पुण्डरीके जीवामि। तत्कथय केनासावुत्क्षिप्य नीतः, किमर्थं वा नीतः, किं वास्य वृत्तं, क्व वर्तते, किं वा तवोपजातं येनैतावता कालेन वार्तापि न दत्ता कुतो वा त्वमेकाकी देवेन विना समागतः।' स त्वेवं पृष्टो महाश्वेतया विस्मयोन्मुखेन कादम्बरीपरिजनेन चन्द्रापीडानुगामिना च राजपुत्रलोकेनोपर्युपरि पातिना वीक्ष्यमाणः प्रत्यवादीत्।

"गन्धर्वराजपुत्रि श्रूयताम्। अहं हि कृतार्तप्रलापामपि त्वामेकाकिनीं समुत्सृज्य वयस्यस्नेहादाबद्धपरिकरः क्व मे प्रियसुहृदमपहृत्य गच्छसीत्यभिधाय तं पुरुषमनुबध्नन्न-

---

इत्यर्थः जन्मान्तरात् अन्यस्मात् जन्मन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आगतोऽपि अयं जनः कपिञ्जलाभिधेयः प्रत्यभिज्ञायते प्रतिसंधीयते स एवायमिति-प्रत्यक्षयोः सम्मिश्रणात्मकज्ञानयोः विषयीक्रियते इत्यर्थः न वा ? सा महाश्वेता तु एवं पृष्टा अनुयुक्ता शोकः दुःखम् आनन्दः सुखं च तयोः मध्ये वर्तते इत्येवंशीला सम्भ्रमः त्वरा तेन सहितं यथा स्यात्तथा उत्थाय उत्थानं कृत्वा कृतम् पादयोः चरणयोः वन्दनं नमस्कृतिः यया तथाभूता प्रत्यवादीत् प्रत्युवाच—'भगवन् पूज्य कपिञ्जल! (कपिञ्जलः पुण्डरीकस्य मित्रमासीत्) अहं महाश्वेता एवंविधा ईदृशी अपुण्यवती पापा अस्मि या भवन्तम् त्वाम् अपि न प्रत्यभिजानामि प्रतिसंदधे ? अथवा अनात्मज्ञायाम् मूर्खायामित्यर्थः मयि ईदृशी एवंविधा सम्भावना कल्पना युक्ता उचिता एव या अहम् एकांततः एकांतेन पूर्णतयेत्यर्थः एव व्यामोहम् अज्ञानं तेन हता मारिता पीडितेत्यर्थः देवे पूज्ये पुण्डरीके स्वर्गं देवलोकं गते प्रयाते अपि जीवामि प्राणिमि। तत् तस्मात् कथय भण केन पुरुषेण उत्क्षिप्य उत्थाय नीतः पुण्डरीकः इति शेषः, किं वा अस्य पुण्डरीकस्य वृत्तं उदन्तः ? क्व कुत्र स वर्तते अस्ति ? किं वा तव कपिञ्जलस्य उपजातं वृत्तम् येन कारणेन एतावता इयता दीर्घेण कालेन वार्ता उदन्तः अपि न दत्ता प्रहिता ? देवेन पुण्डरीकेण विना एकाकी एकलः त्वं कुतः कस्मात् समागतः आयातः ?' महाश्वेतया एवं पृष्टः अनुयुक्तः स कपिञ्जलः विस्मयेन आश्चर्येण उन्मुखेन ऊर्ध्वीकृताननेन कादम्बर्याः परिजनेन भृत्यवर्गेण तथा चन्द्रापीडम् अनुगन्तुं शीलमस्येति तथोक्तेन उपर्युपरि-पातिना अग्रे-अग्रे आगच्छता राजपुत्र-लोकेन राजन्यसमूहेन वीक्ष्यमाणः विलोक्यमानः प्रत्यवादीत् प्रत्युवाच—'गन्धर्वराजपुत्रि! श्रूयताम् आकर्ण्यताम्। अहं हि निश्चयार्थे तया तेन प्रकारेण कृतः विहितः आर्तः दीनः प्रलापः विलापः यया तथाभूताम् अपि त्वाम् एकाकिनीम् अद्वितीयां समुत्सृज्य त्यक्त्वा वयस्ये मित्रे पुण्डरीके स्नेहात् प्रीतेः कारणात् आबद्धः परिकरः कटिवस्त्रं येन तथाभूतः सन् 'मे प्रियं सुहृदं मित्रम् अपहृत्य हृत्वा क्व कुत्र गच्छसि प्रयासि' इति

पहचानती हैं या नहीं ?' उसके द्वारा इस प्रकार पूछी हुई, शोक और आनद के बीच ये बोली—'भगवन् कपिञ्जल! क्या मैं ऐसी पापिनी हूँ कि आपको भी न पहचानूँ ? अथवा मुझ मूर्खा के विषय में ऐसी सम्भावना उचित ही है जो पूरी तरह से ही अज्ञान की मारी देव पुण्डरीक के स्वर्ग सिधारने पर भी जी रही हूँ। हाँ तो कहो कौन उन्हें उठाकर ले गया था ? अथवा किस लिए ले गया था ? अथवा उनका क्या समाचार है ? कहाँ हैं ? अथवा तुम्हारा क्या हुआ जो इतने समय से समाचार भी नहीं भेजा ? अथवा उन पूज्य के विना तुम अकेले क्यों आए हो ?' महाश्वेता द्वारा इस प्रकार पूछने पर आश्चर्य से मुँह ऊपर किये कादम्बरी के परिजन तथा चन्द्रापीड के अनुगामी, आगे-आगे आये राजपुत्रों द्वारा देखा जाता हुआ कपिञ्जल उत्तर में बोलाः—

"गन्धर्वराजपुत्री! सुनिए! रोती-रोती भी तुम्हें अकेली छोड़ कर मैं मित्र-स्नेह के कारण कमर कसे, 'मेरे प्रिय मित्र को हर कर कहाँ जा रहे हो ?' यह कहकर उस पुरुष के पीछे-

वेनोदपतम् । स तु मे प्रतिवचनमदत्त्वैव गीर्वाणवर्त्मनि विस्मयोत्फुल्लनयनैरवलोक्यमानो वैमानिकैरवगुण्ठितमुखीभिरवमुच्यमानगगनमार्गो दिव्याङ्गनाभिरभिसारिकाभिरालोल-तारकेक्षणाभिरितस्ततः प्रणम्यमानस्तारकाभिरम्बरसरःकुमुदाकरमतिक्रम्य तारागणं चन्द्रिकाभिरामसकललोकं चन्द्रलोकमगच्छत् । तत्र च महोदयाख्यायां सभायामिन्दु-कान्तमये महति पर्यङ्के तत्पुण्डरीकशरीरं स्थापयित्वा मामवादीत् । 'कपिञ्जल जानीहि मां चन्द्रमसम् । अहं खलूदयगतो जगदनुग्रहाय स्वव्यापारमनुतिष्ठन्ननेन ते प्रियवयस्येन कामापराधाज्जीवितमुत्सृजता निरपराधः संशप्तः । 'दुरात्मन्निन्दुहतक यथाहं त्वया करैः संताप्योत्पन्नानुरागः सन्नसंप्राप्तहृदयवल्लभासमागमसुखः प्राणैर्वियोजितस्तथा त्वमपि कर्मभूमीभूतेऽस्मिन्भारते वर्षे जन्मनि जन्मन्येवोत्पन्नानुरागोऽप्राप्तसमागमसुखस्तीव्रतरां

अभिधाय कथयित्वा तं पुरुषम् अनुवध्नन् अनुधावन् जवेन वेगेन उदपतम् उपरि अगच्छम् । स तु—तु किन्तु स पुरुषः प्रतिवचनम् उत्तरम् अदत्त्वा अप्रदाय एव गीर्वाणानां देवानां वर्त्मनि मार्गे आकाशे इत्यर्थः विस्मयेन आश्चर्येण उत्फुल्ले विकसिते नयने नेत्रे येषां तथाभूतैः वैमानिकैः विमानचारिभिः देवैः अवलोक्यमानः दृग्गोचरीक्रियमाणः अवगुण्ठितम् अवगुण्ठनवस्त्रेण आच्छा-दितं मुखम् आननं यासां तथा भूताभिः अभिसारिकाभिः प्रियतमानाम् अभिसरणं कुर्वतीभिः दिव्याङ्गनाभिः अप्सरोभिः अवमुच्यमानः त्यज्यमानः दीयमान इत्यर्थः गमन-मार्गः यस्य तथा-भूतः, आलोलाः चञ्चलाः तारकाः कनीनिकाः येषु तथाभूते ईक्षणे नयने यासां तथाभूताभिः ताराभिः इतस्ततः यत्र तत्र प्रणम्यमानः नमस्क्रियमाणः, अम्बरम् आकाशम् एव सरः सरोवरः तस्मिन् कुमुदानाम् कुवलयानाम् आकरम् समूहम् एव तारागणं तारासमूहम् (परम्परितरूपकम्) अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य चन्द्रिकया ज्योत्स्नया अभिरामः रमणीयः सकलः समस्तः लोकः स्थान-मित्यर्थः यस्मिन् तथाभूतं चन्द्रलोकम् अगच्छत् अगमत् । तत्र च—महोदय इति आख्या नाम यस्याः तथाभूतायां सभायाम् इन्दुकान्तः चन्द्रकान्तमणिः एवेति तन्मये चन्द्रकान्तमणिनिर्मिते इत्यर्थः महति विशाले पर्यङ्के मञ्चे स्थापयित्वा निधाय माम् अवादीत्—'कपिञ्जल ! मां चन्द्रमसं चन्द्रम् अवेहि । अहं खलु निश्चयेन उदयं गतः जगतः संसारस्य अनुग्रहाय उपकारायेत्यर्थः स्वं व्यापारं कार्यम् अनुतिष्ठन् कुर्वन् अनेन ते वयस्येन मित्रेण कामस्य मदनस्य अपराधात् दोषात् जीवितं प्राणान् उत्सृजता परित्यजता निरपराधः निर्दोषः (अहम्) संशप्तः शापविषयीकृतः—'दुरात्मन् दुष्ट ! इन्दु-हतक हतचन्द्र ! यथा तेन प्रकारेण त्वया चन्द्रमसा करैः किरणैः संताप्य संतापं प्रापय्य उत्पन्नः जातः रागः महाश्वेताविषयकं प्रेम यस्मिन् तथाभूतः सन् न संप्राप्तः हृदयवल्ल-भायाः प्राणप्रियायाः महाश्वेतायाः समागमस्य मिलनस्य सुखम् आनन्दः येन तथाभूतः अहम् प्राणैः जीवितेन वियोजितः पृथक् कृतः तया तेनैव प्रकारेण त्वम् अपि कर्मभूमीभूते कर्मभूमिरूपे अस्मिन् भारते वर्षे भारते देशे यथोक्तम्—'अत्रैव क्रियते कर्म कर्मभूमिरतो मता । यत्रैव भुज्यते

पीछे दौड़ा हुआ मैं वेग से ऊपर चल दिया, किन्तु मुझे उत्तर न देकर ही आकाश में आश्चर्य से फटी-फटी आँखों वाले विमानचारियों द्वारा देखा जाता हुआ, मुख पर घूँघट निकाले अभिसरण करती हुई अप्सराओं द्वारा मार्ग दिया जाता हुआ और, चंचल पुतलियों वाली आँखों वाली तारिकाओं द्वारा इधर-उधर प्रणाम किया जाता हुआ वह आकाश-रूपी सरोवर के कुमुद-समूह-रूपी तारागण को पार करके चाँदनी से रमणीय बने स्थान वाले चन्दलोक में चला गया । और वहाँ महोदय नाम की सभा में चन्द्रकान्त मणि के विशाल मञ्च पर पुण्डरीक के उस शरीर को रखकर मुझ से बोला—'कपिञ्जल ! मुझे चन्द्रमा समझो । उदय हुए और संसार की भलाई के लिए अपना काम करते जा रहे मुझ निरपराधी को काम-विकार के कारण अपने प्राण छोड़ते हुए तेरे इस मित्र ने शाप दे दिया—'दुष्टात्मा मुआ चाँद ! अपने किरणों से तपाकर अनुराग-भरे और प्राण-प्रिया से समागम का मुख प्राप्त न किये मुझे तू ने जिस प्राणों से वियुक्त किया है, वैसे ही तू भी कर्मभूमि-भूत भारतवर्ष में जन्म-जन्म में अनुराग-भरा, [प्रिया से] समागम

हृदयवेदनामनुभूय जीवितमुत्स्रक्ष्यसि' इति। अहं तु तेनास्य शापहुतभुजा झटिति ज्वलित इव निरागाः किमनेनोन्मदोषानुबन्धेन निर्विवेकबुद्धिना शप्तोऽस्मीत्युत्पन्नकोपस्त्वमपि मत्तुल्यदुःखसुख एव भविष्यसीति प्रतिशापमस्मै प्रायच्छम्। अपगतामर्षश्च विवेकमागतया बुद्ध्या विमृशन्महाश्वेताव्यतिकरमस्याधिगतवानस्मि। वत्सा तु महाश्वेता मन्मयूखसंभवादप्सरसः कुलाल्लब्धजन्मनि गौर्यामुत्पन्ना। तया चायं भर्ता स्वयंवृतः। अनेन च स्वयंकृतादेवात्मदोषान्मया सह मर्त्यलोके वारद्वयमवश्यमुत्पत्तव्यम्। अन्यथा जन्मनि जन्मन्येषा वीप्सैव न चरितार्था भवति। तद्यावदयं शापदोषादपैति तावदस्यात्मना विरहितस्य शरीरस्य मा विनाशो भूदिति मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम्। वत्सा च महाश्वेता समाश्वासिता। तदिदमत्र मत्तेजसाप्याय्यमानमा शापक्षयात्स्थितम्।

तद्धि भोगभूमिस्तु साऽपरा।" जन्मनि-जन्मनि भवे भवे एव उत्पन्नः जातः रागः प्रेम यस्मिन् तथाभूतः अप्राप्तः न लब्धः समागमस्य प्रिया-मिलनस्य सुखम् आनन्दः येन तथाभूततीव्रतराम् अतिशयेन तीव्रां हृदयस्य पीडां वेदनाम् अनुभूय अनुभवविषयीकृत्य जीवितम् प्राणान् उत्स्रक्ष्यसि त्यक्ष्यसि' इति **अहं तु**—अहं चन्द्रः तु अस्य पुण्डरीकस्य शाप एव हुतभुक् (रूपकम्) तेन शापाग्निना झटिति शीघ्रं ज्वलितः दग्धः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निर्गतः आगः अपराधः यस्मात् स निरपराधः इत्यर्थः किम् कुतः आत्मनः स्वस्य यः दोषः अपराधः तस्य अनुबन्धः सम्बन्धः यस्मिन् तथाभूतेन निर्विवेका विवेकरहिता बुद्धिः मतिः यस्य तथाभूतेन शप्तः शापविषयीकृतः इति कारणात् उत्पन्नः क्रोधः कोपः यस्मिन् तथाभूतः अहम् 'त्वम् अपि मम तुल्यं सदृशं दुःखं सुखं च यस्य तथाभूतः एव भविष्यसि' इति प्रतिशापं शापस्य उत्तरे शापं प्रायच्छम् दत्तवान्। अपगतः दूरीभूतः अमर्षः क्रोधो यस्य तथाभूतश्च विवेकम् उपचितानुचितविचारम् आगतया प्राप्तया बुद्ध्या मत्या विमृशन् विचारयन् अस्य पुण्डरीकस्य महाश्वेतया व्यतिकरं सम्बन्धम् अधिगतवान् ज्ञातवान् अस्मि। वत्सा पुत्री अत्र चन्द्रकुलोत्पन्नत्वात् पुत्रीत्युक्तम् महाश्वेता तु मम मयूखेभ्यः किरणेभ्यः सम्भवः जन्म यस्य तथाभूतात् अप्सरसः अप्सरसां कुलात् वंशात् लब्धं प्राप्तं जन्म यया तथाभूतायां गौर्याम् एतन्नाम्न्याम् उत्पन्ना जाता। तया महाश्वेतया च अयं पुण्डरीकः स्वयंवृतः स्वयं प्रियतमत्वरूपेण स्वीकृतः भर्ता अस्ति। अनेन पुण्डरीकेण च स्वयम् आत्मना कृतात् विहितात् एव आत्मनः दोषात् अपराधात् मया चन्द्रेण सह मर्त्यलोके मनुष्यलोके वारयोः द्वयम् द्विवारमित्यर्थः अवश्यम् निश्चितरूपेण उत्पत्तव्यम् जन्म ग्रहीतव्यम्। अन्यथा इतरथा 'जन्मनि जन्मनि' एषा वीप्सा द्विरुक्तिः एव चरितार्था सफला न भवति जायते! तत् तस्मात् यावत् यावता कालेन अयं पुण्डरीकः शापस्य दोषात् अपैति दूरीभवति विमुच्यते इत्यर्थः तावत् कालेन आत्मना विरहितस्य हीनस्य मृतस्येत्यर्थः अस्य पुण्डरीकस्य शरीरस्य देहस्य विनाशः क्षयः मा भूत् न भवतु इति कारणात् मया इदं शरीरम् उत्क्षिप्य उत्थाप्य समानीतम् आनीयत, वत्सा पुत्री महाश्वेता च समाश्वासिता आश्वासनं प्रापिता। तत् तस्मात् इदं शरीरम् अत्र

का सुख प्राप्त न किये अतितीव्र हृदय-वेदना भोग कर प्राणों से वियुक्त होगा'। इसकी उस शापाग्नि से शीघ्र ही जले हुए जैसे मुझे निरपराधी को 'अपने दोष से सम्बन्ध रखे, इस निर्विवेक बुद्धि वाले ने क्यों शाप दिया है?' इस कारण क्रोध में आये मैंने भी शाप का जवाब शाप में दे दिया—'तू भी मेरी तरह ही सुख-दुख भोगेगा'। क्रोध का शमन किये, विवेक-पूर्ण बुद्धि से विचार करते हुए मुझे इसके महाश्वेता के साथ सम्बन्ध का पता चला। बेटी महाश्वेता तो मेरी किरणों से उत्पन्न अप्सराओं के कुल जन्म लेने वाली गौरी में उत्पन्न हुई है। उसने भर्ता के रूप में इसका स्वयंवरण किया है। इसे अपने किए ही दोष के कारण मेरे साथ-साथ मर्त्यलोक में अवश्य जन्म लेना पड़ेगा, नहीं तो 'जन्म-जन्म' वाली यह द्विरुक्ति ही सफल नहीं होगी। इसलिए जब तक यह शाप दोष से मुक्त नहीं होता, तब तक इसका आत्मा-रहित शरीर उठाकर मैं यहाँ ले आया हूँ जिससे कि उसका विनाश न होने पावे। बेटी महाश्वेता को मैंने आश्वासन दे

अधुना त्वं गत्वैनं वृत्तान्तं श्वेतकेतवे निवेदय। महाप्रभावोऽसौ काचिदत्र प्रतिक्रियां कांचिदपि करोति।' इत्युक्त्वा मां व्यसर्जयत्।

अहं तु विना वयस्येन शोकावेगान्धो गीर्वाणवर्त्मनि धावन्नन्यतममतिक्रोधनं वैमानिकमलङ्घयम्। स तु मां दहन्निव रोषहुतभुजा भ्रुकुटिविकरालेन चक्षुषा निरीक्ष्याब्रवीत्। 'दुरात्मन्मिथ्यातपोबलगर्वित यदेवमतिविस्तीर्णे गगनमार्गे त्वयाहमुद्दामप्रचारिणा तुरंगमेणेवोल्लङ्घितस्तस्मात्तुरंगम एव भूत्वा मर्त्यलोकेऽवतर' इति। अहं तु तमुद्बाष्पपक्ष्मा कृताञ्जलिरवदम्। 'भगवन्वयस्यशोकान्धेन त्वं मयोल्लङ्घितो नावज्ञया। तत्प्रसीद। उपसंहर शापमाशु त्वमिमम्' इति। स तु मां पुनरवादीत्। 'यन्मयोक्तं तन्नान्यथा भवितुमर्हति। तदेतत्ते करोमि कियन्तमपि कालं यस्यैव वाहनतामुपयास्यसि

चन्द्रलोके मम तेजसा धाम्ना आप्यायमानम् पुष्यत् आ शाप-क्षयात् शापक्षय-पर्यन्तम् स्थितम् सुरक्षितमस्तीति भावः। अधुना इदानीं त्वं गत्वा एनम् एतं वृत्तान्तम् सूचय। महान् प्रभावः शक्तिः यस्य तथाभूतः असौ श्वेतकेतुः कदाचित् संभवतः अत्र अस्मिन् विषये काञ्चित् अपि कामपि प्रतिक्रियां प्रतीकारं करोति विधत्ते' इति उक्त्वा कथयित्वा मां व्यसर्जयत् गन्तुमादिशत्, चन्द्रः इति शेषः।

अहं तु—वयस्येन मित्रेण पुण्डरीकेण विना शोकस्य दुःखस्य आवेगेन आवेशेन अन्धः लुप्तोचितानुचितज्ञानः गीर्वाणानां देवानां वर्त्मनि मार्गे गमने इत्यर्थः धावन् शीघ्रं गच्छन् अन्यतमं कमप्येकम् अतिशयेन क्रुध्यतीति तथोक्तम् अतिक्रोधितमित्यर्थः वैमानिकं विमानस्थितं देवम् अलङ्घ्यम् अत्यक्रमम् तं पृष्ठे कृत्वा अग्रे निरगच्छमित्यर्थः। स वैमानिकः तु रोषः क्रोधः एव हुतभुक् अग्निः तेन क्रोधाग्निनेति भावः, भ्रुकुट्या भ्रूभङ्गेन विकरालेन भीषणेन चक्षुषा दृशा निरीक्ष्य विलोक्य अब्रवीत् अकथयन्—'दुरात्मन्, दुष्टा मिथ्या मुधा तपसः तपस्यायाः बलेन प्रभावेण गर्वितः संजातगर्भः तत्सम्बुद्धौ यत् यतः एवम् अतिशयेन विस्तीर्णे विस्तृते गगन-मार्गे आकाशपत्रे उद्दाम उद्गतः दाम्नः इति यथा स्यात्तथा उच्छृंखलम् उद्भूतमिति यावत् प्रचरति प्रचलतीत्येवंशीलेन त्वया तुरङ्गमेण तुरगेण इवेत्युपमायाम् उल्लङ्घितः अतिक्रान्तः तस्मात् तुरङ्गमः तुरगः एव भूत्वा मर्त्यलोके मनुष्यलोके अवतर अवतारं जन्मेत्यर्थः गृहाण'। उद्बाष्पम् उद्गतबाष्पम् अश्रुपूर्णमिति यावत् पक्ष्म नेत्ररोम यस्य तथाभूतः अहं तु कृतः बद्धः अञ्जलिः करपुटं येन तथाभूतः सन् अवदम् अकथयम्—'भगवन्! वयस्यस्य मित्रस्य शोकेन दुःखेन अन्धेन अन्धवत् अजानता मया त्वम् उल्लंघितः अतिक्रान्तः न अवज्ञया तिरस्कारेण, तत् तस्मात् प्रसीद प्रसन्नो भव। त्वम् इमं शापम् आशु शीघ्रम् उपसंहर प्रत्यावर्तय'। स वैमानिकः तु किन्तु पुनः माम् अवादीत् अब्रवीत्—'यत् मया उक्तम् कथितं तम् अन्यथा मिथ्येत्यर्थः न भवितुम् अर्हसि योग्यमस्ति। तत् तस्मात् एतत् ते तव करोमि अनुतिष्ठामि कियन्तं कमपि कालं समयं त्वं

दिया है। इसलिए मेरे तेज से पुष्टि लेता हुआ यह (शरीर) शाप-क्षय तक यहीं पड़ा हुआ है। अब तुम जाकर यह समाचार श्वेतकेतु को बता दो। महाशक्ति शाली वह कदाचित् इस सम्बन्ध में कुछ उपाय कर दें' यह कर उसने मुझे विदा कर दिया।

मित्र के शोकावेग में अन्धा बना आकाश में दौड़ा जाता हुआ मैं तो किसी एक विमानचारी का अतिक्रमण कर बैठा। वह तो क्रोधाग्नि से मुझे फूकता हुआ जैसा तेवड़ी से विकराल बनी आँख से देखकर बोला—'रे दुष्टात्मा, मिथ्या तपोबल का अभिमानी! क्योंकि तू ने अति विस्तीर्ण गगन-मार्ग में इस तरह उच्छृंखल रूप में चलते हुए घोड़े की तरह मेरा अतिक्रमण किया है, इसलिए घोड़ा बन कर ही तू मर्त्यलोक में जन्म ले' किन्तु डबडबाई बरौनियों वाले मैंने अञ्जलि बाँधे कहा—'भगवन्! मित्र-शोक के कारण अन्धे बने हुए मैंने आपका अतिक्रमण किया है तिरस्कार से नहीं, अतः प्रसन्न होइए। अपना यह शाप शीघ्र वापस ले लीजिए', किन्तु वे फिर मुझसे बोले—'जो मैंने कह दिया, वह अन्यथा नहीं हो सकता। इस कारण तेरे लिए

तस्यैवावसाने स्नात्वा विगतशापो भविष्यसि !' इत्येवमुक्तस्तु तमहमवदम् । 'भगवन्यद्येवं ततो विज्ञापयामि । तेनापि मत्प्रियवयस्येन पुण्डरीकेण चन्द्रमसा सह शापदोषान्मर्त्यलोके एवोत्पत्तव्यम् । तदेतावन्तमपि भगवान्प्रसादं करोतु मे दिव्येन चक्षुषावलोक्य यथा तुरंगमत्वेपि मे तेनैव प्रियवयस्येन सहावियोगेन कालो यायाद' इति । स त्वेवमुक्तो मुहूर्तमिव ध्यात्वा पुनर्मामवादीत् । 'अनया स्नेहलतया ते ममार्द्रीकृतं हृदयम् । तदालोकितं मया । उज्जयिन्यामपत्यहेतोस्तपस्यतस्तारापीडनाम्नो राज्ञः सनिदर्शनं चन्द्रमसा तनयत्वमुपगन्तव्यम् । वयस्येनापि ते पुण्डरीकेण तन्मन्त्रिण एव शुकनासनाम्नः । त्वमपि तस्य महोपकारिणश्चन्द्रात्मनो राजपुत्रस्य वाहनतामुपयास्यसि' इति । अहं तु तद्वचनानन्तरमेवाधःस्थिते महोदधौ न्यपतम् । तस्माच्च तुरंगीभूयैवोदतिष्ठम् ।

यस्य पुरुषस्य एव वाहनताम् उपयास्यसि वाहनीभविष्यसीत्यर्थः तस्य पुरुषस्य एव अवसाने समाप्तौ मरणे इति यावत् स्नात्वा स्नानं कृत्वा विगतः नष्टः शापो यस्य तथाभूतो भविष्यसि तव शापो विनंक्ष्यतीति भावः इति एवमुक्तः कथितः तु तम् अहम् अवदम्—'भगवन् ! यदि एवम् अस्तीति शेषः ततः तर्हि विज्ञापयामि निवेदयामि—'तेन मम प्रिय-वयस्येन प्रियमित्रेण पुण्डरीकेण अपि चन्द्रमसा चन्द्रेण सह शापस्य दोषात् प्रभावादिति भावः मर्त्यलोके मनुष्यलोके एव उत्पत्तव्यम् जन्म ग्रहीतव्यम् । तत् तस्मात् एतावन्तम् इयन्तम् अपि प्रसादम् अनुग्रहं भगवान् भवान् दिव्येन चक्षुषा नेत्रेण अवलोक्य दृष्ट्वा मे मम करोतु विदधातु यथा येन प्रकारेण मे तुरङ्गत्वे अश्वत्वे अपि तेन एव प्रियवयस्येन पुण्डरीकेण सह अवियोगेन अवियुक्तत्वेन संयुक्तत्वेनेति यावत् कालः समयः यायात् गच्छेत्' इति । स वैमानिकः तु एवम् उक्तः कथितः मुहूर्तं क्षणमपिकालम् इव ध्यात्वा ध्यानं कृत्वा पुनः द्वितीयवारम् माम् अवादीत् अब्रवीत्—'ते तव अनया एतया स्नेहः प्रीतिः अस्यास्तीति स्नेहलः (मतुवर्थीयो लच्) तस्य भावः तत्ता तया मित्रं प्रति प्रीतिमत्तयेति यावत् मम हृदयं स्वान्तं आर्द्रीकृतम् आर्द्रतां नीतम् । तत् तस्मात् मया आलोकितं विलोकितम् उज्जयिन्यां एतदभिधेयायां नगर्याम अपत्यस्य पुत्रस्य हेतोः निमित्तेन तपस्यतः तपस्यां कुर्वतः तारापीडः नाम यस्य तथाभूतस्य राज्ञः निदर्शनं प्रमाणं तेन सहितं यथा स्यात्तथा स्वप्नावस्थायां सूचना-पूर्वकमित्यर्थः चन्द्रमसा चन्द्रेण तनयत्वं पुत्रत्वम् उपगन्तव्यं प्राप्तव्यम् चन्द्रः तस्य पुत्रो भविष्यतीति भावः। ते तव वयस्येन मित्रेण पुण्डरीकेण अपि तस्य तारापीडस्य मन्त्रिणः शुकनाशः नाम यस्य तस्य तनयत्वमुपगन्तव्यम्'इति पूर्वेणान्वयः त्वम् अपि तस्य महोपकारिणः महोपकारकस्य चन्द्रः आत्मा स्वरूपं यस्य तस्य राजपुत्रस्य चन्द्रापीडस्य वाहनतां वाहनत्वम् उपयास्यसि वाहनीभविष्यसीत्यर्थः इति । अहं तु तस्य वैमानिकस्य वचनात् कथनात् अनन्तरं पश्चात् एव अधः नीचैः स्थिते महोदधौ महासागरे न्यपतम् पतितवान् । तस्मात् महा-

---

यह (बात) कर देता हूं कि कुछ समय तक जिसका तू वाहन बनेगा, उसकी समाप्ति पर स्नान कर के शाप समाप्त हो जाएगा'—इस प्रकार उनके कहने पर मैं उनको बोला—भगवन् ! यदि ऐसा है, तो मेरा निवेदन है कि मेरे प्रिय मित्र उस पुण्डरीक ने भी चन्द्रमा के साथ शाप-दोष के कारण मर्त्यलोक में ही जन्म लेना है, इसलिए दिव्य चक्षु से देखकर आप इतनी मात्र कृपा कर दीजिएगा जिसके घोड़े के रूप में रहते हुए भी मेरा उसी प्रिय मित्र के साथ बिना (उससे) पृथक् हुए समय कटता जाय'। इस तरह कहने पर थोड़ी देरी ध्यान लगाकर वे फिर मुझे बोले 'तेरे इस स्नेहिल स्वभाव ने मेरा हृदय पिघला दिया है। अतः मैंने (ध्यान से) देख लिया है। चन्द्रमा सूचना-पूर्वक उज्जयिनी में पुत्र हेतु तप कर रहे राजा तारापीड का पुत्र बनेगा। तेरा मित्र पुण्डरीक उसी के शुकनास नामक मंत्री का पुत्र बनेगा। तू भी महान् उपकारी चन्द्रमा-स्वरूप उस राजपुत्र का वाहन बनेगा।' मैं उसके कथनान्तर ही नीचे महासागर में जो गिरा

संज्ञा तु मे तुरंग[1]त्वेनापि न व्यपगता। येनायं मयास्यैवार्थस्य कृते किन्नरमिथुनानुसारी भूमिमेतामानीतो देवश्चन्द्रमसोऽवतारश्चन्द्रापीडः। योप्यसौ प्राक्तनानुरागसंस्काराद-भिलषन्नजानत्या त्वया शापाग्निना निर्दग्धः सोपि मे वयस्यपुण्डरीकस्यावतारः।"

इत्येतच्छ्रुत्वा 'हा देव पुण्डरीक, जन्मान्तरेप्यविस्मृतमदनुराग,मत्प्रतिबद्धजीवित, मच्छरण, मन्मुखावलोकिन्मन्मयसकलजीवलोक, लोकान्तरगतस्यापि तेऽहमेव राक्षसी विनाशायोपजाता दग्धप्रजापतेरियदेव मन्निर्माणे दीर्घजीवितप्रदाने च प्रयोजनं निष्पन्नं यत्पुनः पुनस्ते व्यापादनम्, स्वयं हत्वा च पापकारिणी कमुपालभे किं ब्रवीमि किमाक्रन्दामि कमुपयामि शरणं को वा करोतु मयि दयां याचेहमात्मनैवाधुना देव प्रसीद

सागरात् च तुरङ्गीभूय तुरगशरीरं धृत्वा उदतिष्ठम् उपरि आगच्छम्। तु किन्तु तुरङ्गत्वेन अश्व-त्वेन अपि मे मम संज्ञा चेतना न व्यपगता, अपगता, येन कारणेन अस्य एव अर्थस्य प्रयोजनस्य कृते अयम् चन्द्रमसः चन्द्रस्य अवतारः देवः महाराजः चन्द्रापीडः किन्नरयोः गन्धर्वयोः मिथुनं युगलम् अनुसरति अनुयातीत्येवंशीलः सन् एताम् इमाम् भूमिं स्थानम् अच्छोदसरोवरतीर-मिति यावत् मया आनीतः प्रापितः। यः अपि असौ (वैशम्पायनः) प्राक्तनः पूर्वजन्मीयः यः अनुरागः प्रेम (त्वयीत्यर्थः) तस्य संस्कारात् (त्वाम्) अभिलषन् कामयमानः अजानत्या अबोधयन्त्या त्वया शापः एव अग्निः वह्निः तेन निर्दग्धः प्लुष्टः, सः अपि मे मम वयस्यस्य मित्रस्य पुण्डरीकस्य अवतारः अस्तीति शेषः।

इत्येतत्—एतत् श्रुत्वा आकर्ण्य--'हा इति शोके देव पुण्डरीक अन्यत् जन्म इति जन्मान्तरं तस्मिन् अपि न विस्मृतः विस्मृतिं नीतः मयि अनुरागः प्रेम येन तत्सम्बुद्धौ, मयि एव प्रतिबद्धम् लग्नम् आसक्तमिति यावत् जीवितं प्राणाः यस्य तत्सम्बुद्धौ, अहं शरणम् आश्रयः यस्य तत्सम्बुद्धौ, मम मुखम् आननम् अवलोकयितुम् शीलमस्येति तत्सम्बुद्धौ, अहम् एवेति मन्मयः सकलः समग्रः जीवलोकः प्राणिवर्गः यस्य तत्सम्बुद्धौ, अन्यो लोकः इति लोकान्तरम् गतस्य यातस्य अपि ते विनाशाय क्षमाय अहम् एव राक्षसी पिशाची उपजाता उत्पन्ना; दग्धः हतश्चासौ प्रजापतिः विधाता तस्य मम निर्माणे सर्जने, दीर्घस्य चिरस्य जीवितस्य जीवनस्य प्रदाने वितरणे च इयत् एतावत् एव प्रयोजनं कृत्यं निष्पन्नं सिद्धम् यत् पुनः पुनः वारं-वारं ते तव व्यापादनं मारणं स्यात् स्वयम् आत्मना (त्वाम्) हत्वा व्यापाद्य पापं कर्तुं शीलमस्या इति तथोक्ता पापिनीत्यर्थः कम् उपालम्भविषयीकरोमि? किं ब्रवीमि वदामि? किं कुतः आक्रन्दामि आक्रन्दनं करोमि? कम् शरणम् आश्रयम् उपयामि उपगच्छामि? को वा मयि विषये दयां करुणां करोतु? अधुना इदानीम् आत्मना स्वयम् एव त्वां याचे प्रार्थये--'देव, प्रसीद

और वहाँ से घोड़ा बन कर निकल आया। किन्तु घोड़ा होने पर भी मेरी चेतना लुप्त नहीं हुई जिस कारण मैं इसी मतलब के लिए किन्नरों के जोड़े का पीछा करने वाले चन्द्रमा के अवतार देव चन्द्रापीड़ को इस भूमि तक ले आया हूँ और यह जो पूर्व जन्म के अनुराग के संस्कारवश (तुम्हें) चाहता हुआ (वैशम्पायन) तुम ने अनजाने शापाग्नि से जलाया, वह भी मेरे मित्र पुण्डरीक का अवतार है"।

यह सुनकर--'हाय देव पुण्डरीक! जन्मान्तर में भी मेरे प्रति तुम अनुराग न भूले! मुझ पर ही अपने प्राण लगाये! मेरी शरण आने वाले! मेरे मुख को देखते रहने वाले! सारा संसार मद्रूप ही बनाये! लोकान्तर गए हुये भी आपके विनाश हेतु मैं ही राक्षसी पैदा हुई हूँ। मुये विधाता का मुझ बनाने तथा दीर्घ जीवन प्रदान करने में क्या इतना ही प्रयोजन रहा कि मैं बार-बार आपका हनन करूँ? स्वयं (आपको) मारकर मैं पापिनी किसको उलाहना दूँ? क्या बोलूँ? क्यों रोऊँ-पीटूँ? किसकी शरण जाऊँ! कौन मुझ पर दया करे? अब

१. तुरङ्गत्वेऽपि।

कुरु दयां देहि मे प्रतिवचनमित्येतान्यक्षराण्युच्चारयन्त्यपि लज्जे, मन्ये च तवाप्येवमुत्पन्नं मन्दभाग्यायां मयि वैराग्यं येनैवमपि विप्रलपन्त्यां न प्रतिवचनं ददासि, हा हतास्म्यनेनैवात्मनो जीवितस्योपर्यनिर्वेदेन' इत्युन्मुक्तार्तनादा सोरस्ताडनमवनावात्मानमपातयत्।

कपिञ्जलस्तु तथार्तकृतप्रलापां सानुकम्पमवादीत्। 'गन्धर्वराजपुत्रि, कस्तवात्र दोषो येनैवमनिन्दनीयमात्मानं निन्दापदैर्योजयसि। को वाऽनुना सुखपाकेऽनुभवनीये दुःखस्यावसरः येनैवात्मानं शुचा व्यापादयसि। यदसह्यतरं तत्त्वया निर्व्यूढं दृढीकृतहृदययास्यैव समागमप्रत्याशया। यथा च शापदोषादिदमुपगतं भवत्योर्द्वयोरपि दुःखं तथा मया कथितमेव। चन्द्रमसोपि भारती भवतीभ्यां श्रुतैव। तदुन्मुच्यतामयमात्मनो

प्रसन्नो भव, दयां कृपां कुरु विधेहि, मे मह्यं प्रतिवचनं प्रत्युत्तरं देहि वितर' एतानि अक्षराणि वर्णान् शब्दान् इत्यर्थः उच्चारयन्ती कथयन्ती अपि अहं लज्जे त्रपे, मन्ये अवगच्छामि तव अपि मन्दं स्वल्पं भाग्यं दैवं यस्याः तथाभूतायां मयि एवम् ईदृशं वैराग्यं विरक्तिः उत्पन्नं जातम् येन मयि एवं विप्रलपन्त्यां विलपन्त्याम् सत्याम् अपि प्रतिवचनम् उत्तरं न ददासि वितरसि। हा इति दुःखे आत्मनः स्वस्याः जीवितस्य जीवनस्य उपरि अनेन एतेन एव अनिर्वेदेन अनवमानेन अघृणया मम तयेति यावत् हता मारिता अस्मि'। इति उन्मुक्तः त्यक्तः कृत इति यावत् आर्तः दैन्यपूर्णः नादः स्वरः यया तथाभूता सा उरसः वक्षसः ताडनेन आघातेन सह वर्तमानं यथा स्यात्तथा अवन्यां पृथिव्याम् आत्मानं स्वाम् अपातयत् पातितवती।

कपिञ्जलः तु तथा तेन प्रकारेण आर्तं करुणं यथा स्यात्तथा कृतः विहितः प्रलापः विलापः यया तथाभूतां महाश्वेतां अनुकम्पा दया तया सह विद्यमानं यथा स्यात्तथा अवादीत् अकथयत् 'गन्धर्व-राजपुत्रि! अत्र अस्मिन् विषये तव कः दोषः अपराधः येन कारणेन अनिन्दनीयं निन्दितुमनर्हम् आत्मानं निन्दायाः गर्हायाः पदैः शब्दैः योजयसि सम्बध्नासि? वा अधुना साम्प्रतं सुखः सुखरूपश्चासौ पाकः परिणामः तस्मिन् अनुभवनीये अनुभवितुं योग्ये सति कः अयम् दुःखस्य अवसरः समयः, येन एव शुचा शोकेन आत्मानम् स्वाम् व्यापादयसि प्राणैः वियोजयसि? यत् असह्यतरम् अतिशयेन सोढुमशक्यम् आसीदिति शेषः तत् दृढीकृतं द्रढितं हृदयं यया तथाभूतया त्वया अस्य पुण्डरीकस्य एव समागमस्य मिलनस्य प्रत्याशया आशया एव निर्व्यूढं समापितम् अतिक्रान्तमिति यावत्। यथा येन प्रकारेण च शापस्य दोषात् प्रभावादित्यर्थः भवत्योः युवयोः द्वयोः कादम्बरी-महाश्वेतयोः इदं दुःखम् उपगतम् उपनतम् (कर्मणि षष्ठी, अन्यथा 'भवत्यौ द्वे अपि' इति द्वितीया प्रसज्यते) तथा मया कथितम् उक्तम् एव। चन्द्रमसः चन्द्रस्य अपि भारती वाणी भवतीभ्यां युवाभ्यां श्रुता आकर्णिता एव। तत् तस्मात्

स्वयमेव मैं प्रार्थना करती हूँ—'देव, प्रसन्न होइये! दया कीजिये; मुझे उत्तर दीजिए; मुझे तो इन अक्षरों के बोलते भी लज्जा आ रही है, मैं समझती हूँ कि आपका मुझ अभागिनी पर ऐसा वैराग्य हो उठा है कि मेरे इस तरह विलाप करते हुए भी मुझे आप उत्तर नहीं दे रहे हैं। हाय! अपने जीव के ऊपर अपनी इस ममता से ही मैं मारी गई!' इस प्रकार छाती पीटने के साथ-साथ करुण विलाप करते हुए उसने अपने को जमीन पर गिरा दिया।

कपिञ्जल उस तरह आर्त विलाप करती हुई महाश्वेता को दयापूर्वक बोला—'गन्धर्वराज-पुत्री! तुम्हारा इसमें क्या दोष है जो इस प्रकार अपनी निन्दा कर रही हो? जब सुखदायक परिणाम भोगने को मिलने वाला है तो अब दुःख का यह कौन सा अवसर है, जो इस तरह शोकवश अपने को समाप्त करने जा रही हो? जो अत्यन्त असह्य था, उसे तुमने इन (पुण्डरीक) से मिलने की आशा से हृदय को दृढ़ बनाये झेल लिया है। शाप के प्रभाव से जिस तरह तुम दोनों को यह कष्ट मिला है, वह मैंने बता ही दिया है। चन्द्रमा की वाणी भी आप दोनों ने

वयस्यस्य चाश्रेयस्करः शोकानुबन्धः। द्वयोरेव श्रेयसे यदेव भवत्याङ्गीकृतं तदेवानुबध्यतां व्रतपरिग्रहोचितं तपः। तपसो हि सम्यक्कृतस्य नास्त्यसाध्यं नाम किंचित्। देव्या हि गौर्या तपसः प्रभावाददतिदुरासदं स्मरारेरपि यावदासादितं देहार्धपदम्। एवं त्वमपि नचिरात्तथैव मे वयस्यस्याङ्के निजतपसः प्रभावात्पदमवाप्स्यसि।' इति महाश्वेतां पर्यबोधयत्।

उपशान्तमन्युवेगायां च महाश्वेतायां विषण्णदीनमुखी कादम्बरी कपिञ्जलमप्राक्षीत्। 'भगवन्पत्रलेखया त्वया चास्मिन्सरसि जलप्रवेशः कृतः। तत्किं तस्याः पत्रलेखायाः संवृत्तमित्यावेदनेन प्रसादं करोतु भगवान्' इति। स तु प्रत्यवादीत्। 'राजपुत्रि, सलिलपातानन्तरं न कश्चिदपि तद्वृत्तान्तो मया ज्ञातः। तदधुना क्व चन्द्रात्मकस्य चन्द्रापीडस्य क्व पुण्डरीकात्मकस्य वैशम्पायनस्य जन्म किं वाऽस्याः पत्रलेखाया

आत्मनः ममेत्यर्थः वयस्यस्य मित्रस्य पुण्डरीकस्य अयम् एष न श्रेयस्करः कल्याणकृत् शोकस्य शुचः अनुबन्धः प्रबन्धः सातत्यमिति यावत् उन्मुच्यतां त्यज्यताम्। द्वयोः पुण्डरीक-चन्द्रापीडयोः श्रेयसे कल्याणाय भवत्या अङ्गीकृतं स्वीकृतं तत् एव व्रतपरिग्रहस्य स्वीकरणस्य उचितं योग्यं तपः अनुबध्यताम् सातत्येन निर्वर्त्यतामित्यर्थः। हि सम्यक् निश्चयेन सम्यक्-प्रकारेण कृतस्य अनुष्ठितस्य तपसः तपस्यायाः असाध्यम् अप्राप्यम् किमपि नामेति कोमलामन्त्रणे नास्ति। हि यतः देव्या गौर्या पार्वत्या तपसः प्रभावात् बलात् दुरासदं दुःखेन आसादयितुं शक्यं दुर्लभमित्यर्थः स्मरारेः शिवस्य अपि यावत् पर्यन्तं देहस्य अर्धस्य अर्धभागस्य पदं स्थानम् आसादितं लब्धम्, अत्र कवेः 'अर्धनारीश्वरं' प्रति संकेतः, एतदर्थं मङ्गलाचरणस्य आदिमः श्लोकः दृष्टव्यः। एवं त्वम् अपि न चिरात् शीघ्रमेव मे वयस्यस्य मित्रस्य पुण्डरीकस्य अङ्के क्रोडे निजतपसः स्वतपस्यायाः प्रभावात् बलात् पदं स्थानम् अवाप्स्यसि लप्स्यसे' इति कपिञ्जलः महाश्वेतां पर्यबोधयत् प्रतिबोधयामास।

महाश्वेतायाम् उपशान्तः समाप्तः मन्योः दुःखस्य वेगः रयः यस्याः तथाभूतायां सत्याम् विषण्णं विषादग्रस्तं दीनं दैन्यपूर्णं च मुखं यस्याः तथाभूता कादम्बरी कपिञ्जलम् अप्राक्षीत् अपृच्छत्—'भगवन्! पत्रलेखया त्वया च अस्मिन् सरसि अच्छोदसरोवरे जले प्रवेशः कृतः जलमज्जनं कृतम्। तत् तस्मात् तस्याः पत्रलेखायाः किं संवृत्तं जातम् इति आवेदनेन ज्ञापनेन भगवान् भवान् प्रसादं कृपां करोतु विदधातु' इति। स कपिञ्जलः तु प्रत्यवादीत् प्रत्यब्रवीत्— 'राजपुत्रि, सलिले जले पातात् पतनात् अन्तरं पश्चात् मया न कश्चित् अपि कोऽपि तस्याः पत्रलेखायाः वृत्तान्तः वृत्तम् मया ज्ञातः उपलब्धः। तत् तस्मात् अधुना इदानीं चन्द्रः आत्मा स्वरूपं यस्य तथाभूतस्य चन्द्रापीडस्य पुण्डरीकः आत्मा स्वरूपं यस्य तथाभूतस्य वैशम्पायनस्य

सुन ही ली। इसलिए मेरे मित्र के लिए अशुभकारक यह लगातार का शोक त्याग दीजिये। उन दोनों के कल्याण हेतु आप ने जो व्रतग्रहण-योग्य तप अपना रखा है, उसे ही लगातार करती जाइए। वस्तुतः ठीक तरह से किये गए तप के लिए कुछ भी असाध्य नहीं, क्योंकि देवी पार्वती ने तप के प्रभाव से महादेव तक के भी शरीर का अति दुर्लभ आधा भाग प्राप्त कर लिया था। तुम भी शीघ्र ही अपने तप के प्रभाव से मेरे मित्र की गोद में स्थान प्राप्त कर लोगी, इस प्रकार कपिञ्जल ने महाश्वेता को समझाया।

महाश्वेता के दुःख का वेग जब शान्त हुआ, तो विषण्ण और दीनमुखी कादम्बरी कपिञ्जल को पूछ बैठी—'भगवन्! पत्रलेखा और आपने (एक साथ) इस तरह सरोवर में प्रवेश किया था। तब उस पत्रलेखा का क्या बना—यह बताने की आप कृपा करें'। उसने उत्तर दिया—'राजपुत्री! जल में छलांग लगाने के बाद मुझे उसका कुछ भी समाचार मालूम नहीं है। इस लिए अब चन्द्र-स्वरूप चन्द्रापीड का तथा पुण्डरीक-स्वरूप वैशम्पायन का कहाँ-

वृत्तमिति सर्वथैवास्य वृत्तान्तस्यावगमनाय गतोऽहं प्रत्यक्षलोकत्रयस्य तातस्य श्वेतकेतोः पादमूलम्। इत्यभिदधान एव गगनमुदपतत्।

अथ गते तस्मिन्विस्मयान्तरितशोकवृत्तान्ता चन्द्रापीडमालोक्य गलितनयनपयसि यथास्थानमपसृत्य स्थितवति सपरिजने राजपुत्रलोके कादम्बरी महाश्वेतामवादीत्। 'प्रियसखि, तुल्यदुःखतां त्वया सह नयता न खल्वसुखं स्थापितास्मि भगवता विधात्रा। अद्य मे शिरः समुद्घाटितम्। अद्य ते वदनं दर्शयन्ती प्रियसखीति चाभाषमाणा न लज्जे। तवाप्यहमद्यैव प्रियसखी संजाता। संप्रति मरणं जीवितं वा न दुःखाय मे। तत्कोऽपरः प्रष्टव्यो मया। केन वापरेणोपदेष्टव्यम्। यदेवं गते यत्करणीयं तदुपदिशतु मे प्रियसखी। नाहमात्मना किंचिदपि वेद्मि किं कृत्वा श्रेयः।' इत्युक्तवतीं

च क्व कुत्र जन्म उत्पत्तिः किं वा पत्रलेखायाः वृत्तं जातम् इति सर्वथा एव अस्य वृत्तान्तस्य उदन्तस्य अवगमाय उपलब्धये प्रत्यक्षं प्रत्यक्षीभूतं लोकयोः त्रयं यस्य तथाभूतस्य पुण्डरीकस्य तातस्य पितुः श्वेतकेतोः पादयोः चरणयोः मूलम् समीपमित्यर्थः अहं गतः चलितः (अत्र लडर्थे निष्ठा)'—इति अभिदधानः कथयन् एव गगनम् आकाशम् उदपतत् उत्पतितवान् उदडीयतेत्यर्थः।

अथ—तस्मिन् कपिञ्जले गते प्रयाते सति विस्मयेन कपिञ्जल-प्रोक्त-घटनाकृताश्चर्येणेत्यर्थः अन्तरितः व्यवहितः शोकस्य दुःखस्य वृत्तान्तः उदन्तः यस्याः सा कादम्बरी चन्द्रापीडम् आलोक्य गलितं पतितं नयनपयः नेत्रजलम् अश्रु इत्यर्थः यस्य तथाभूते, सपरिजने सभृत्यवर्गे राजपुत्र-लोके राजन्यजने अपसृत्य पश्चात् गत्वा यथास्थानं स्थानमनतिक्रम्य स्वेषु-स्वेषु उचित-स्थानेष्वित्यर्थः स्थितवति उपविशति सति महाश्वेताम् अवादीत् अब्रवीत्—'प्रिय-सखि ! त्वया सह तुल्यं समानं दुःखं यस्याः भावः तत्ता ताम् नयता प्रापयता भगवता विधात्रा ब्रह्मणा अहं खलु निश्चयेन न असुखं दुःखं यथा स्यात्तथा स्थापिता दुःखे पातिता अस्मीत्यर्थः, पूर्वं तु त्वमेव दुःखिनी आसीः, तादृशीं च त्वां दृष्ट्वा मम महत् दुःखं जायते ते, सम्प्रति तु त्वमिव अहमपि दुःखिनी इत्यावयोः समानदुःखत्वात् अहमात्मानं सुखिनं मन्ये इति भावः। अद्य मे शिरः मूर्धा समुद्घाटितम् उत्थितमित्यर्थः। ते तुभ्यं वदनं मुखं दर्शयन्ती द्रष्टुं प्रेरयन्ती 'प्रियसखी' (खल्वसि) इति च आभाषमाणा कथयन्ती न लज्जे आवयोः समानदुःखशालित्वादितिभावः। अद्य एव तव अहं प्रियसखी संजाता संवृत्ता। सम्प्रति इदानी मरणं मृत्युः जीवितं जीवनं वा मे मम दुःखाय न अस्तीति तत् तस्मात् मया कः अपरः त्वदन्यो जनः प्रष्टव्यः अनुयोक्तव्यः। अपरेण त्वद्भिन्नेन अन्येन केन जनेन उपदेष्टव्यम् मह्यम् उपदेशो देय इत्यर्थः। यत् एवं गते ईदृश्यां परिस्थितौ यत् करणीयं कृत्यं तत् मे प्रियसखी त्वमित्यर्थः उपदिशतु उपदेशं करोतु। अहम आत्मना स्वयं 'किं

कहाँ जन्म हुआ है अथवा इस पत्रलेखा का क्या बना—इसी सारे वृत्तान्त को जानने हेतु मैं तीनों लोकों का साक्षात्कार किये, (पुण्डरीक के) पिता श्वेतकेतु के चरण समीप चला'—यह कहता कहता ही आकाश को चल दिया। तत्पश्चात् कपिञ्जल के चले जाने पर भृत्यों सहित राजा लोग चन्द्रापीड़ को देखकर आँसू बहाये, हटकर जब यथावत् अपने-अपने स्थानों में बैठ गये, तो कादम्बरी—जिसकी शोक की घटना आश्चर्य ने दबा दी—महाश्वेता को बोली—'प्रिय सखी ! तेरे साथ सम-दुःखभागिनी बनाकर भगवान् विधाता ने सचमुच मुझे सुख में डाल दिया है। आज मेरा मस्तक ऊँचा हो गया है। आज मुझे मुख दिखाते तथा ('तू मेरी) प्रियसखी है' यह कहते मुझे कोई लज्जा नहीं है। तेरी भी मैं आज ही प्रियसखी बन पाई हूँ। अब मुझे क्या मृत्यु अथवा क्या जीवन—किसी का दुःख नहीं, इसलिये मुझे किस दूसरे को पूछना है ? अथवा कौन दूसरा मुझे उपदेश देगा ? ऐसी परिस्थिति में जो कुछ करना है, उसका तू मुझे उपदेश दे। स्वयं मैं कुछ भी नहीं जानती कि क्या करके श्रेय होगा'—इस प्रकार

कादम्बरीं महाश्वेता प्रत्यवादीत्। प्रियसखि, किमत्र प्रश्नेनोपदेशेन वा यदेवेयमनतिक्रमणीया प्रियतमसमागमप्रत्याशा कारयति तदेव करणीयम्। पुण्डरीकवृत्तान्तोऽद्य कपिञ्ज[1]लहस्तात्स्फुटीभूतः तदा तु वाङ्मात्रकेणैव समाश्वासितया मया न पारितमन्यत्किंचिदपि कर्तुम्। त्वमन्यत्किं करोषि यस्याः प्रत्ययस्थानमिदं चन्द्रापीडशरीरमङ्क एवास्ते। तदन्यथात्वेस्य करणीयचिन्ता। यावत्पुनरिदमविनाशि तिष्ठति तावदेव तस्यानुवृत्तिं मुक्त्वा किमन्यत्करणीयम्। अप्रत्यक्षाणां हि देवतानां मृदश्मकाष्ठमय्यः प्रतिमाः श्रेयसे पूजासत्कारेणोपचर्यन्ते। किं पुनः प्रत्यक्षदेवस्य चन्द्रापीडनामान्तरितस्य चन्द्रमसो मूर्तिरनाराधितप्रसन्ना।'

इत्युक्तवत्यां महाश्वेतायां कादम्बरी तूष्णीमेवोत्थाय तरलिकया मदलेखया

कृत्वा श्रेयः कल्याणम्' इति किञ्चित् अपि न वेद्मि जाने।' उक्तवतीं कादम्बरीं महाश्वेता प्रत्यवादीत् प्रत्युवाच—'प्रियसखि! अत्र अस्मिन् विषये प्रश्नेन पृच्छया अथवा उपदेशेन किम् यद् एव इयम् अनतिक्रमणीया अनुल्लङ्घनीया प्रियतमस्य प्रणयिनः समागमस्य मिलनस्य प्रत्याशा आशा कारयति कर्तुं प्रेरयति तद् एव करणीयं कार्यम्। पुण्डरीकस्य वृत्तान्तः उदन्तः कपिञ्जलस्य हस्तात् द्वारा स्फुटीभूतः स्पष्टीभूतः। तदा तस्मिन् काले पुण्डरीकमृत्युसमये तु वाक् एव वाङ्मात्रकं आकाशवाणीमात्रं तेन एव मया महाश्वेतया अन्यत् आत्महत्यादिकं किञ्चित् अपि किमपि कर्तुं विधातुं न पारितं शक्तम्। तत् तस्मात् त्वम् अन्यत् किं करोषि विदधासि यस्याः ते प्रत्ययस्य विश्वासस्य स्थानं साधनमित्यर्थः इदं चन्द्रापीडस्य शरीरं देहः अङ्के क्रोडे एव आस्ते तिष्ठति। तत् तस्मात् अस्य चन्द्रापीड-शरीरस्य अन्यथात्वे अङ्कस्थितत्वाभावे करणीया चिन्ता यया तथाभूता त्वम् आसीः। यावत् यदवधि इदं चन्द्रापीडशरीरम् अविनाशि अनश्वरम् अक्षतमिति यावत् तिष्ठति विद्यते तावत् तदवधि एव तस्य शरीरस्य अनुवृत्तिं सेवां मुक्त्वा विहाय अन्यत् किं करणीयं न किमपीति काकुः गृहि। यतः अप्रत्यक्षाणां परोक्षाणां मृत् मृत्तिका च अश्मा प्रस्तरश्च काष्ठं दारु चेवेति तन्मय्यः तद्रूपाः प्रतिमाः मूर्तयः श्रेयसे कल्याणाय पूजा अर्चा समाहारः प्रणामादिना समादरः तयोः समाहारः तेन उपचर्यन्ते सेव्यन्ते, किं पुनः भण्येत प्रत्यक्षस्य अपरोक्षस्य देवस्य देवतायाः चन्द्रापीडेति नाम्ना आख्यया अन्तरितस्य व्यवहितस्य चन्द्रापीड नाम धृत्वा मनुष्यरूपेणावतीर्णस्येत्यर्थः चन्द्रमसः चन्द्रस्य अनाराधिता आराधनम् अप्राप्ता एव प्रसन्ना मुदिता मूर्तिः।

इति—महाश्वेतायाम् उक्तवत्यां कथितवत्यां सत्याम् कादम्बरी तूष्णीं जोषम् एव

बोल चुकने पर कादम्बरी को महाश्वेता ने कहा—'प्रिय सखी! इस सम्बन्ध में पूछने और उपदेश की क्या बात है? जो कुछ यह अनुल्लङ्घनीय प्रियतम के मिलने की आशा कराती है, वही करना है। पुण्डरीक का वृत्तान्त आज कपिञ्जल के हाथों स्पष्ट हो गया है। उस समय तो केवल (आकाश-) वाणीमात्र से ही आश्वासन प्राप्त किये मैं अन्य कुछ भी न कर सकी, इसलिए तुम अन्य क्या करोगी? जिसे विश्वास दिलाने वाला चन्द्रापीड़ का यह शरीर गोद में ही स्थित है। यदि यह न होता, तो चिन्ता की बात थी ही। जब तक यह शरीर अक्षत पड़ा हुआ है, तब तक इसकी सेवा के सिवाय क्या करना है? अप्रत्यक्ष देवताओं की मिट्टी, पत्थर और काष्ठ की बनी मूर्तियों की कल्याण हेतु पूजा-सत्कार द्वारा सेवा की जाती है, तो प्रत्यक्ष देवता चन्द्रापीड़ नाम से अवतरित, बिना आराधना के ही प्रसन्न हुई चन्द्रमा की मूर्ति की बात क्या?

इस प्रकार महाश्वेता के कह चुकने पर कादम्बरी—जो लड़की ही थी—चुपचाप उठकर

---

१. कपिञ्जलाख्यानात्।

चोत्थाप्य तामखेदार्हां चन्द्रापीडतनुमन्यतरस्मिञ्छीतवातातपवर्षादिसर्वद्वन्द्वदोषरहिते शिलातले शनैरखेदयन्ती स्थापयित्वापनीतशृङ्गारवेषाभरणा मङ्गलमात्रकावस्थापितैकक-रत्नवलया स्नातशुचिर्भूत्वा परिधाय धौतशुचिनी दुकूले प्रक्षाल्य पुनः पुनर्गाढलग्नमधर-किसलये ताम्बूलरागमुपर्युपरिनिमीलितागतबाष्पवेगोत्तरललोचनान्यदेव किमप्य-चिन्तितमनुत्प्रेक्षितमशिक्षितमनभ्यस्तमनुचितमपूर्वं बाला बलाद्विलोमप्रकृतिनाकार्य-पण्डितेन दग्धवेधसा कार्यमाणा, यान्येव सुरभिकुसुमधूपानुलेपनानि सुरतोपभोगायानी-तानि तैरेव देवतोचितामपचितिं संपाद्य चन्द्रापीडमूर्तौ, मूर्तिमतीव शोकवृत्तिरार्तरूपा, रूपान्तरमिव तत्क्षणेनैवागता, विगतजीवितेव शून्यमुखी, मुखावलोकिनी चन्द्रापीडस्य,

---

उत्थाय उत्थानं कृत्वा तरलिकया महाश्वेता-सख्या मदलेखया स्वसख्या च तद्द्वारेत्यर्थः न खेदः क्लेशः इत्यखेदः तस्य अर्हां योग्याम् अखेदनीयामित्यर्थः, तां चन्द्रापीडस्य तनुं शरीरम् उत्थाप्य उत्थातुं प्रेर्य शीतं शैत्यञ्च वातः वायुश्च आतपः घर्मश्च वर्षः वृष्टिश्च आदौ येषां तथाभूतानि सर्वाणि समस्तानि यानि द्वन्द्वानि परस्परविपरीतानि युग्मरूपाणि प्रकृति-तत्त्वानि तेषां दोषैः प्रभावै-रित्यर्थः रहिते वर्जिते अन्यतरस्मिन् कस्मिंश्चिदेकस्मिन् शिलातले प्रस्तरस्य पृष्ठे शनैः मन्दं मन्दं अखेदयन्ती खेदं न प्रापयन्ती स्थापयित्वा स्थापनं कृत्वा अपनीतः दूरीकृतः शृङ्गारार्थं वेषः परि-धानम् आभरणं भूषणं च यया तथाभूता, मङ्गलम् एव मङ्गलमात्रकम् तदर्थम् अवस्थापितं धृत-मित्यर्थः एकस्मिन् करे हस्ते रत्नवलयं रत्नखचितकटकं यया तथाभूता, स्नानेन स्नानं कृत्वेत्यर्थः शुचिः शुद्धा भूत्वा धौते प्रक्षालिते अतएव शुचिनी शुद्धे दुकूले द्वे वस्त्रे परिधाय धृत्वा, अधरः निम्नोष्ठः किसलयः पल्लव इवेति लुप्तोपमा, तस्मिन् गाढं घनं यथा स्यात्तथा लग्नं संसक्तं ताम्बू-लस्य पुन्नागवल्याः पत्रस्य रागं लालिमानं पुनः पुनः वारं-वारं प्रक्षाल्य प्रक्षालनं कृत्वा उपर्युपरि उत्तरोत्तरं निमीलिते मुद्रिते आगतः वाष्पस्य अश्रुणः वेगः रयः याभ्याम् तथाभूते च उत्तरले चञ्चले च लोचने नेत्रे यस्याः तथाभूता, विलोमा विपरीता प्रकृतिः स्वभावः यस्य तथाभूतेन अकार्येषु अपकृत्येषु पण्डितेन विचक्षणेन दग्धः हतश्चासौ वेधाः विधाता तेन विधातृहतकेनेत्यर्थः बलात् बलपूर्वकं किमपि अचिन्तितम् अविचारितम् अनुत्प्रेक्षितम् असंभावितम् अशिक्षितम् अपा-ठितम् अनभ्यस्तं न पुनः पुनः कृतम् अनुचितम् अयोग्यम् अपूर्वम् अभिनवं कार्यमाणा कर्तुं विवशीक्रियमाणा बाला (कादम्बरी) यानि एव सुरभीणि सुगन्धीनि कुसुमानि पुष्पाणि च धूपः तुरुष्कश्च अनुलेपनं बिलेपनं चेति सुरते निधुवने उपभोगाय प्रयोगाय आनीतानि आसन् तैः एव चन्द्रापीडस्य मूर्तौ शरीरे देवतानां देवानाम् उचितां योग्याम् अपचितिम् पूजाम् ('क्षयार्च-योरपचितिः' इत्यमरः। संपाद्य कृत्वा मूर्तिमती साकारा शोकवृत्तिः शोकाख्यभावः इवेत्युत्प्रेक्षा-याम् आर्तं दीनं रूपम् आकारो यस्याः सा, तेन क्षणेन समयेन रूपान्तरम् आकारान्तरम् इवेत्यु-त्प्रेक्षायाम् आगता प्राप्ता, विगतं अपगतं जीवितं प्राणाः यस्याः तथाभूता इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, शून्यं

तरलिका और मदलेखा (की सहायता) द्वारा कष्ट न दिए जाने योग्य चन्द्रापीड की देह उठाकर, शीत, हवा, धूप, वर्षा आदि सभी द्वन्द्वों के दोषों से रहित किसी एक शिलातल पर रखकर, शृंगार की वेष-भूषा उतारे, मंगल-मात्र हेतु एक हाथ में रत्न-जड़ित कड़ा पहने, स्नान से शुद्ध हुई, धुले हुए शुद्ध दो वस्त्र पहन कर, किसलय-सदृश अधर पर गाढ़ी लगी पान की लाली बार-बार धोकर, एक के बाद एक आये हुए अश्रु-वेग से चंचल बनी आँखों को मीचे, विपरीत स्वभाव वाले, अपकृत्यों के पण्डित मुए विधाता द्वारा बलात् कुछ और ही तरह के ऐसे अपूर्व (कार्य) करवाई जा रही जो उसने सोचा ही न था, जिसकी न कल्पना की थी, न शिक्षा ली थी, जिसका न अभ्यास था और जो न ही उचित था, सुरतोपयोग हेतु जो सुगन्धित फूल, धूप और विलेपन-द्रव्य लाए हुये थे, उनसे ही चन्द्रापीड की देवतोचित पूजा करके, साकार शोकवृत्ति-जैसी दुःख-स्वरूप, तत्क्षण दूसरे ही रूप में बदली हुई-जैसी, मरी-जैसी,

पीडितोत्पीडितहृदयापि रक्षन्ती बाष्पमोक्षम्, उद्दामवृत्तेः शोकादपि मरणादपि कष्टतमामवस्थामनुभवन्ती, तथैवाङ्के समारोपितचन्द्रापीडचरणद्वया, दूरागमनखिन्नेनापि बुभुक्षितेनाप्यप्रतिपन्नस्नानपानभोजनेनापि मुक्तात्मना राजपुत्रलोकेन स्वपरिजनेन च सह निराहारा तं दिवसमक्षिपत्।

यथैव च दिवसमशेषं तथैव तां गम्भीरमेघोपरोधभीमामनवरतगर्जितध्वनिकम्पितहृदयबन्धामाबद्धकलकलापिकुलकेकाकोलाहलाकुलितचेतोवृत्तिमुद्दामदर्दुरारटितबधिरितश्रोत्रेन्द्रियां दुर्दर्शतडित्संपातपीडितदिशमश[१]निनिर्ह्लादतर्जनापादितभुवनज्वरां ज्वलत्खद्योतनिवहजर्जरिततरुगहनतलतमःप्रसरभीषणतमां तमस्विनीमपि दूरीकृत्या-

रिक्तं मुखम् आननं यस्याः सा, चन्द्रापीडस्य मुखम् अवलोकयते पश्यतीत्येवंशीला, पीडितेन पीडया [भावे क्तः] उत्पीडितम आक्रान्तमित्यर्थः हृदयं यस्याः सा अपि वाष्पस्य अश्रुणः मोक्षं पात रक्षन्ती निवारयन्ती उद्दामा उत्कटा वृत्तिः वर्तनं यस्य तथाभूतात् शोकात् दुःखात् अपि, मरणात् मृत्योः अपि अतिशयेन कष्टाम् इति कष्टतमाम् अवस्थां दशाम् अनुभवन्ती भुञ्जाना, तथा तेन प्रकारेण एव अङ्के क्रोडे समारोपितं स्थापितं चन्द्रापीडस्य चरणयोः पादयोः द्वयं युगलं यया सा, दूरात् विप्रकर्षात् यत् आगमनं तेन खिन्नेन श्रान्तेन अपि न प्रतिपन्नं कृतं स्नानं च पानं च भोजन चैतेषां समाहारः येन तेन अपि मुक्तः परित्यक्तः आत्मा आत्मीयं सर्वमपि तेन राजपुत्रलोकेन राजन्य-जनेन स्वपरिजनेन स्वभृत्यजनेन च स निराहारा अकृतभोजना तं दिवसम् दिनम् अक्षिपत समाप्तिम् अनयत्।

यथैव—'यथा एव अशेषं सम्पूर्णं दिवसम् (क्षपितवती) तथैव क्षणमिव क्षपां क्षपितवती' इत्यस्ति वाक्यम्। गम्भीरः घनः यः मेघः जलधरः तेन उपरोधः प्रतिबन्धः तेन भीमाम् भीषणाम् एतत् अन्यानि च 'क्षपाम्' इत्येतस्य विशेषणानि। अनवरतः निरन्तरः यः गर्जितस्य गर्जनस्य (भावे क्तः) ध्वनिः शब्दः तेन कम्पितः कम्पं नीतः हृदस्य बन्धः स्थितिः यया ताम्, आवद्धं समवेतम् एकत्रितमिति यावत् कलं मधुरं शब्दायमानं यत् कलापिनां मयूराणां कुलं समूहः तस्य केकायाः वाण्याः कोलाहलेन कलकलेन आकुलिता व्याकुलीकृता (विरहिणाम्) चेतोवृत्तिः यया ताम्, उद्दामं भीषणं दर्दुराणां मण्डूकानाम् यत् आरटितं टरटरायितं तेन बधिरितं बधिरीकृतं श्रोत्रेन्द्रियं यया ताम्, **दुर्दश०**—दुर्दर्शः दुःखेन द्रष्टुं शक्यो यः तडितः सम्पातः विद्युत्पातः तेन पीडिताः क्लेशिताः दिशः ककुभः यया ताम्, अशनेः वज्रस्य निर्ह्लादेन अतिगर्जनेन यत् तर्जनं विभीषिका तेन आपादितः जनितः भुवनस्य ज्वरः तापः यया तान्, ज्वलन् दीप्यमानः यः खद्योतानां ज्योतिरिङ्गणानां निवहः निकरः तेन जर्जरितः जर्जरीकृतः शिथिलीकृतः तरूणां

मुख में सूनी-सूनी, चन्द्रापीड़ का मुख देखती जा रही, हृदय में पीड़ा से उत्पीड़ित हुई भी अश्रुपात को रोके जा रही, विकटाकार शोक से भी, मृत्यु से भी कई गुणा अधिक कष्टकारक दशा का अनुभव करती हुई, गोद में उसी तरह चन्द्रापीड़ के दोनों चरणों को रखे, दूर से आने के कारण थके होते हुये भी, भूखे होते हुये भी, स्नान, पान, भोजन न किये होते भी, अपना सब कुछ छोड़े हुये राजा लोगों तथा नौकर-नौकरानियों के साथ कुछ भी न खाये उस दिन को बिता बैठी।

जिस प्रकार सारा दिन काटा, वैसे ही घने मेघों के छा जाने से भयंकर बनी, निरन्तर गड़गड़ाहट की ध्वनि से (लोगों का) हृदय-स्थान हिलाये, मंडली बाँधे और मीठा बोल रहे मयूरों की वाणी के कोलाहल से मनोवृत्ति को व्याकुल बनाये, मेढकों की जोर की टर्टराहटों से कानों को वहिरा बनाये, चौंधिया देने वाली बिजली की कौंध से दशों दिशाओं को पीड़ित किये वज्र की भीषण गर्जना की विभीषिका से जगत को ज्वर-जैसा उत्पन्न किये, टिमटिमाते जुगनुओं द्वारा फाड़े हुए पेड़ों के झुरमुटों के तलभाग के अन्धकार के विस्तार से बड़ी भीषण

१. अतिनिर्ह्लाद।

बलासहभुवं भीतिमपरित्यक्तचन्द्रापीडचरणकमलाऽचेतितस्वशरीरखेदा जाग्रती समुपविष्टैव क्षणमिव क्षपां क्षपितवती। प्रातश्च तदुन्मीलितं चित्रमिव चन्द्रापीडशरीरमवलोक्य शनैः शनैः पाणिना स्पृशन्ती पार्श्वस्थितां मदलेखामवादीत्। 'प्रियसखि मदलेखे, न वेद्मि किं रुचेर्वशादुत निर्विकारतयैवेति। अहं तु तादृशीमेवेमां तनुमालोकयामि। त्वमपि तावदादरतो निरूपय।' इत्येवमुक्ता मदलेखा तां प्रत्यवादीत्। 'प्रियसखि किमत्र निरूपणीयम्। अन्तरात्मनो विरहाद्व्यापारमात्रकम[1]स्योपरतम्। अन्यत्तादृशमेवेदं व्याकोशशतपत्राकारं मनागप्यनुन्मुक्तं श्रिया वदनम्। तथायं संवेल्लिताग्रभागः स्निग्धः कुन्तलकलापः। तथैवेयमिन्दुशकलानुकारिणः कान्तिर्ललाटस्य। तादृशमेवेदमामुकुलितनीलोत्पलद्युतिहारि कर्णान्तायतं लोचनद्वयम्। तथैव चेमावहसतोपि विह[2]सिता विचो-

वृक्षाणां गहनस्य वनस्य तले नीचैः तमसः अन्धकारस्य प्रसरः विस्तारः तेन अतिशयेन भीषणाम् इति भीषणतमाम्, तमस्विनीम् रात्रिम् अपि अबलानां नारीणां सहभुवं सहजातां नैसर्गिकीमिति यावत् भीतिं भयं दूरीकृत्य अपनीय न परित्यक्तम् उज्झितं चन्द्रापीडस्य चरणं कमलं पद्ममिवेति लुप्तोपमा, यया तथाभूता न चेतितः गणितः स्वस्याः शरीरस्य देहस्य खेदः क्लमः यया तथाभूता जाग्रती अस्वपन्ती समुपविष्टा निषण्णा एव क्षणम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् क्षपां निशां क्षपितवती यापितवती। **प्रातश्च**—प्रातः प्रभाते च उन्मीलितं विकसितं चित्रम् आलेख्यम् इवेत्युपमायाम् तत् चन्द्रापीडस्य शरीरम् अवलोक्य दृष्ट्वा शनैः शनैः मन्दं-मन्दं पाणिना करेण स्पृशन्ती परामृशन्ती पार्श्वे समीपे स्थितां निषण्णां मदलेखां स्वसखीम् अवादीत् अकथयत्—'प्रियसखि मदलेखे! न वेद्मि जानामि किं रुचेः अभिलाषस्य वशात् कारणात् उत अथवा निर्विकारतया विकृति-राहित्येन इति अहं तु इमां तनुम् शरीरं तादृशीं तथाविधाम् एव आलोकयामि पश्यामि। तत् तस्मात् त्वम् अपि तावत् सम्प्रति आदरतः सादरं निपुणमित्यर्थः निरूपय पश्य' इति एवम् उक्ता उदिता मदलेखा तां कादम्बरीं प्रत्यवादीत् प्रत्युवाच 'प्रियसखि! अत्र अस्मिन् विषये किं निरूपणीयं द्रष्टव्यम्। अन्तरात्मनः अन्तर्जीवस्य प्राणानामिति यावत् विरहात् वियोगात् व्यापारः शारीरिकी चेष्टा एवेति तन्मात्रकम् अस्य चन्द्रापीडस्य उपरतं समाप्तम्। अन्यत् तादृशं तथाविधम् इदम् एतत् व्याकोशं विकसितं ('व्याकोश-विकच-स्फुटाः इत्यमरः) यत् शतपत्रं कमलं तस्य आकार इव आकारः आकृतिः यस्य तत् तत्तुल्यमित्यर्थः मनाक् ईषत् अपि श्रिया सुषमया अनुन्मुक्तम् अत्यक्तं युक्तमित्यर्थः वदनं मुखम् अस्तीति शेषः। तथा तथाविधः एव अयम् संवेल्लितः चञ्चलः अग्रभागः यस्य तथाभूतः स्निग्धः चिक्कणः कुन्तलकलापः केशसमूहः अस्तीति शेषः। इन्दुः चन्द्रः तस्य शकलं खण्डम् अनुकरोति विडम्बयतीत्येवंशीलस्य ललाटस्य भालस्य इयम् एषा कान्तिः द्युतिः तथैव अस्ति। इदम् मुकुलितं मुकुलावस्थास्थितं अर्धमुद्रितमित्यर्थः यत् नीलोत्पलं नीलकमलं तस्य द्युतिं कान्तिं हरति अतिशेते इत्येवंशीलं

बनी वह रात भी कादम्बरी ने स्त्रीजन-सुलभ भय को दूर करके चन्द्रापीड के चरणकमलों को न छोड़े, अपनी देह की पर्वाह न किये, बैठी-बैठी ही जागती क्षण की तरह काट दी।

प्रातःकाल चित्र-जैसा खुला हुआ चन्द्रापीड का वह शरीर देखकर हाथ से धीरे-धीरे छूती हुई कादम्बरी पास में बैठी मदलेखा को बोली—'प्रियसखी मदलेखा! पता नहीं—या तो अभिलाष के कारण या विकार न होने के कारण, मैं तो इस देह को ज्यों का त्यों देख रही हूँ। इसलिए तू भी जरा आदर के साथ देख'। इस तरह कही गयी मदलेखा ने उसे उत्तर दिया—'प्रियसखी! इसमें क्या देखना है। भीतरी जीव के निकल जाने के कारण इसकी केवल चेष्टा ही समाप्त हुई है। अन्य (सब) वैसा ही है। खिले कमल-सदृश इस मुख ने जरा भी कान्ति नहीं छोड़ी है। यह हिलते हुए नोकों वाला केश-कलाप वैसा ही चिकना बना हुआ

१. अस्यामुपरतम्। २. विकसितौ।

द्भासितकपोलमूलौ सृक्कोपान्तौ। तादृश एवाभिनवकिसलयच्छविरधरः। तथैव चेदं विद्रुमालोहितनखाङ्गुलीतलं पाणिपादम्। तथैव चेदमविगलितसहजलावण्यसौकुमार्याणां सौष्ठवमङ्गानाम्। तत्सत्या सा भारती कपिञ्जलावेदितश्च शापवृत्तान्त इति संभावयामि।' इत्युक्तवत्यां मदलेखायामानन्दनिर्भरा महाश्वेतायै दर्शयित्वा चन्द्रापीडचरणतलनिबद्धजीविताय राजपुत्रलोकायापि दर्शितवती।

स तु विस्मयोत्फुल्ललोचनः सर्व एवावनितलनिवेशितशिराः प्रणम्य चन्द्रापीडचरणौ रचिताञ्जलिर्जानुद्वयेनावनौ स्थित्वा कादम्बरीं व्यज्ञापयत्। 'देवि, त्वत्प्रभावोयं यदेवमस्मानपुण्यवतः परित्यज्य दूरं गतस्यापि देवस्य तादृशमेवेदं प्रसन्नेन्दुमण्डलद्युति-

कर्णान्तं श्रोत्रप्रान्तं यावत् आयतं विस्तीर्णं लोचनयोः नयनयोः यं युगलं तादृशम् तदवस्थम् एव। इमौ एतौ अहसतः हास्यं न कुर्वतः अपि देहस्येति योज्यम् अन्यथा 'अहसन्तौ' इति स्यात्, विहसितौ कृतहासौ इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उद्भासितं विभासितं प्रकाशितमित्यर्थः कपोलयोः गण्डस्थलयोः मूलं याभ्यां तथाभूतौ सृक्कयोः अथवा सृक्कणोः ओष्ठप्रान्तयोः उपान्तौ प्रान्तभागौ तथा एव तादृशौ एव ('प्रान्तावोष्ठस्य सृक्किणी' इत्यमरः)। अभिनवः नूतनः यः किसलयः पल्लवः तस्य छविः छटा इव छविः यस्य तथाभूतः (लुप्तोपमा) अधरः अधरोष्ठः तादृशः तथाविधः एव। इदम् विद्रुमवत् प्रवालवत् आलोहितानि रक्तवर्णानि नखानि च अङ्गुलीनां तलानि नीचैः भागाः च यस्य तत् पाणिपादं तथा एव तदवस्थम् एव। इदं च अविगलितम् अगतम् अक्षीणमिति यावत् सहजं स्वाभाविकं लावण्यं सौन्दर्यं च सौकुमार्यं मृदुत्वं च येषां तथाभूतानाम् अङ्गानाम् अवयवानां सौष्ठवं शोभनत्वं तथा तत्सदृशम् एव। तत् तस्मात् सा भारती आकाशवाणी सत्या अवितथा कपिञ्जलेन आवेदितः ज्ञापितः शापस्य वृत्तान्तः उदन्तः चापि सत्यः इति संभावयामि उत्प्रेक्षे' इति मदलेखायाम् उक्तवत्यां कथितवत्याम् सत्याम् आनन्देन मोदेन निर्भरा पूर्णा कादम्बरी महाश्वेतायै चन्द्रापीडस्य चरणयोः पादयोः तले निबद्धम् आश्रितमित्यर्थः जीवितं प्राणाः यस्य तस्मै राजपुत्र-लोकाय राजन्यसमूहाय अपि दर्शितवती अदर्शयत्।

स तु—विस्मयेन आश्चर्येण उत्फुल्ले विकसिते लोचने नयने यस्य तथाभूतः सर्वः सकलः एव स राजपुत्रलोकः अवन्याः भुवः तले पृष्ठे निवेशितं न्यस्तं शिरः शीर्षं येन तथाभूतः सन् चन्द्रापीडस्य चरणौ पादौ प्रणम्य नमस्कृत्य, रचितः कृतः बद्धः इति यावत् अञ्जलिः येन सः, जानुनोः ऊरुसन्धिभागयोः द्वयेन युगलेन अवनौ भुवि स्थित्वा उपविश्य कादम्बरीं व्यज्ञापयत् न्यवेदयत्—'देवि! अयम् एष तव प्रभावः माहात्म्यमित्यर्थः अस्ति यत् एवम् अपुण्यवतः अपुण्यशालिनः पापिन इति यावत् अस्मान् परित्यज्य विहाय दूरं गतस्य प्राप्तस्य अपि देवस्य

है। चन्द्रमा के (आधे) टुकड़े के समान माथे की यह कान्ति भी वैसी ही है। कलि-रूप नील कमल की कान्ति को चुराने वाली कर्ण-प्रान्त तक फैली आँखें भी वैसी ही हैं। न हँसते हुए भी हँसते जैसे कपोलों के निचले भागों को विभासित किये ओष्ठ-प्रान्तों के पार्श्वभाग भी वैसे ही हैं। नये कोपल की-सी छवि रखे अधर भी उसी तरह का है। मूँगों–जैसे लाल नखों अंगुलियों के तल-भाग वाले हाथ-पैर वैसे ही हैं। स्वाभाविक लावण्य और कोमलता न खोये अङ्गों की रमणीयता वैसी ही है। इसलिए वह आकाशवाणी और कपिञ्जल द्वारा बताया शाप का वृत्तान्त—दोनों सत्य है—ऐसी मेरी संभावना है'। मदलेखा के यह कहने पर हर्ष से फूले न समाते कादम्बरी ने महाश्वेता को दिखाकर चन्द्रापीड के चरण-तल पर आश्रित जीवन वाले राज लोगों को भी दिखाया।

आश्चर्य से फटी आँखों वाले वे सभी राजा लोग भूतल पर सिर टेके, चन्द्रापीड के चरणों को नमन करके अञ्जलि बाँधे, घुटनों के बल जमीन पर बैठकर कादम्बरी से निवेदन करने लगे– 'देवी! यह तुम्हारा ही प्रभाव है जो हम पापियों को छोड़कर दूर गये हुए भी देव चन्द्रापीड

१. अविमलित।

हारि वीक्ष्यते वदनम्। तथैव चेदं चरणयुगलमवभाति पुरेव प्रोत्फुल्लरक्ततामरसच्छायम्। तथैव च पुनः प्रसादानुभवप्रत्याशालालसं हृदयम्। मनुष्यलोकेषु केन कदा वा दृष्टं श्रुतमनुभूतं वा यदस्माभिः पुण्यवद्भिः।' इत्यभिहितवति राजलोके ससखीजना सपरिजना चोत्थाय स्वयमेवावचित्य देवतार्चनकुसुमानि स्नात्वा निर्वर्तितचन्द्रापीडशरीरपूजासंस्कारा शरीरस्थितिकरणायादिदेश सकलमेव राजलोकम्। निर्वर्तितस्नानाशने च तस्मिन्नात्मनापि महाश्वेतयोपनीतानि तथैव सह सपरिवारा फलान्युपभुक्तवती। कृताहारा च पुनस्तथैव चन्द्रापीडचरणावङ्केनोद्वहन्ती तमपि दिवसमनयत्। अन्येद्युश्चोपजातदृढतरप्रत्यया चन्द्रापीडशरीराविनाशं प्रति मदलेखामवादीत्। 'प्रियसखि, देवस्य शरीरमिदमुपचरन्तीभिरवश्यमा शापक्षयादस्माभिरधुनात्र स्थातव्यम्। तदिम-

---

चन्द्रापीडस्य प्रसन्नं विमलं यत् इन्दोः चन्द्रमसः मण्डलं बिम्बं तस्य द्युतिं कान्तिं हरति चोरयतीत्येवशीलम् (उपमा) इदं वदनं मुखं तादृशं तथाविधम् एव वीक्ष्यते दृश्यते। प्रोत्फुल्लं पूर्णतया विकसितं यत् रक्तं रक्तवर्णं तामरसं कमलं तस्य छाया कान्तिः इव छाया यस्य तत् (लुप्तोपमा) इदं चरणयोः युगलं द्वयं पुरा इव पूर्वम् इव तथा एव अवभाति शोभते। प्रसादः अस्मान् प्रति प्रसन्नता अनुग्रहो वा तस्य अनुभवस्य या प्रत्याशा आशा तस्यां लालसं लोलुपं हृदयं पुनः तथैव तादृशमेव अन्यत् च अपि च मनुष्यलोकेषु मर्त्यलोके इत्यर्थः केन जनेन कदा कस्मिन् समये वा दृष्टं विलोकितं श्रुतम् आकर्णितम् अनुभूतम् अनुभवविषयीकृतं वा यत् पुण्यवद्भिः पुण्यशालिभिः अस्माभिः दृष्टं श्रुतम् अनुभूतम् इति आवर्तते।' इति राजलोके राजसमूहे अभिहितवति कथितवति सति सखीजनेन सखीभिः सह वर्तमाना सपरिजना भृत्यवर्गसहिता च उत्थाय उत्थानं कृत्वा, देवतानाम् अर्चनाय पूजनाय कुसुमानि पुष्पाणि अवचित्य त्रोटयित्वा, स्नात्वा स्नानं कृत्वा निर्वर्तितः संपादितः चन्द्रापीडस्य शरीरस्य देहस्य या तथाभूता, शरीरस्य देहस्य पूजा अर्चना च संस्कारः अधिवासनादिकं च यया तथाभूता शरीरस्य स्थितिः स्नानभोजनादिना निर्वाहः तस्याः करणाय संपादनाय समग्रम् एव राजलोकम् राजगणम् आदिदेश आज्ञापयामास। तस्मिन् राजलोके निर्वर्तितं कृतं स्नानं च अशनं भोजनं च येन तथाभूते सति आत्मना अपि स्वयमपि महाश्वेतया उपनीतानि आनीतानि फलानि सपरिवारा सपरिजना तया महाश्वेतया सह एव उपभुक्तवती खादितवती। कृतः विहितः आहारः भोजनं यया सा पुनः तथा पूर्वोक्तप्रकारेण एव चन्द्रापीडस्य चरणौ पादौ अङ्केन क्रोडेन उद्वहन्ती धारयन्ती तम् अपि दिवसं दिनम् अनयत् व्यत्यापयत्। अन्येद्युः अपरस्मिन् दिने चन्द्रापीडस्य शरीरस्य अविनाशं नाशाभावं प्रति उपजातः उत्पन्नः अतिशयेन दृढः इति दृढतरः प्रबलतरः प्रत्ययः विश्वासो यस्याः सा कादम्बरी मदलेखाम् अवादीत् अकथयत्–'प्रियसखि मदलेखे! देवस्य चन्द्रापीडस्य इदं शरीरं देहम् उपचरन्तीभिः

निर्मल चन्द्रमंडल की कान्ति को पछाड़ देने वाला यह मुख वैसा ही दिखाई दे रहा है। खिले हुए लाल कमल की-सी सुषमावाले ये दोनों पैर पहले की तरह वैसे ही शोभा दे रहे हैं। प्रसन्नता अनुभव करने की आशा का लोभी हृदय भी उसी तरह का है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य-लोक में किसने अथवा कब यह देखा अथवा सुना अथवा अनुभव किया जो हम भाग्यवानों ने देखा, सुना अथवा अनुभव किया है?' यों राजा लोगों के कहने पर सखियों और परिजन सहित उठकर देवार्चन हेतु स्वयं ही फूल चुनकर नहाकर, चन्द्रापीड के शरीर की पूजा और संस्कार किये उसने जीवन-निर्वाहोपयोगी स्नान भोजनादि करने के लिये सभी राजाओं को आज्ञा दी। उनके स्नान-भोजन कर लेने पर स्वयं भी महाश्वेता द्वारा लाये हुये फल सपरिवार उसी के साथ खाये। भोजन कर चुकने पर उसने चन्द्रापीड़ के चरण गोद में रखते हुये फिर उसी तरह वह दिन भी काटा। दूसरे दिन चन्द्रापीड़ के शरीर की अविनाशिता पर खूब दृढ़ विश्वास जमाये, वह मदलेखा को बोली—'प्रिय सखी! देव चन्द्रापीड़ के इस शरीर

सत्यद्भुतं वृत्तान्तं तातस्याम्बायाश्च गत्वा निवेदय। येन नान्यथा मां संभावयतः दुःखेन वा मदीयेन न तिष्ठतः। यथा मामेवंविधां दुःखभागिनीमागत्य न पश्यतस्तथा करिष्यसि। न शक्नोम्यहं तातमम्बां च दृष्ट्वा शोकवेगं धारयितुम्। मया चोपरतमेव देवमालोक्य न रुदितम्। सा किमपरमधुना निःसंशयितजीविते देवं प्रतिपन्ननियमा रोदिमि! इत्यमिधाय तां व्यसर्जयत्।

गत्वागतया च तया 'प्रियसखि, सिद्धं तेऽभिवाञ्छितम्। एवं संदिष्टं तातेन चित्ररथेनाम्बया च मदिरया गाढंगाढं पुनरालिङ्ग्य शिरस्युपाघ्राय च 'वक्तव्यावयोर्वचनाद्वत्से कालमेतावन्तं मनस्येव नैतदावयोरासीद्यथा जामातृसहिता वत्सा द्रष्टव्येति तदयमेवावयोः परमानन्दो यद्वत्सया स्वयं जामाता वृतः, तत्राप्यपरं भगवतो लोकपालस्य चन्द्रम-

---

सेवमानाभिः अस्माभिः आ शापस्य क्षयात् शापनिवृत्तिपर्यन्तम् अस्माभिः अधुना इदानीम् अवश्यं निश्चयेन अत्र अस्मिन् प्रदेशे स्थातव्यं स्थेयम्। तत् तस्मात् इयम् एतत् अद्भुतम् आश्चर्यकरं वृत्तान्तम् उदन्तं तातस्य पितुः अम्बायाः मातुश्च गत्वा निवेदय सूचय। येन कारणेन माम् अन्यथा विरुद्धचरित्रामित्यर्थः तौ न संभावयतः विचारयतः मदीयेन मत्सम्बन्धिना दुःखेन वा न (गृहे) तिष्ठतः। यथा आगत्य आगम्य एवंविधाम् ईदृशीं दुःखभागिनीं मां न पश्यतः अवलोकयतः। तातं पितरम् अम्बां मातरं च दृष्ट्वा अहं शोकस्य दुःखस्य वेगं रयं धारयितुं रोद्धुं न शक्नोमि पारयिष्यामि (अत्र भविष्यदर्थे लट्)। मया देवं चन्द्रापीडम् उपरतं मृतम् एव आलोक्य दृष्ट्वा न रुदितं न रोदनं कृतम्। सा अहम् निर्गतं संशयितं संशयः (भावे क्तः) यस्मात् तत् निश्चितमित्यर्थः जीवितं प्राणाः यस्य तस्मिन् देवे चन्द्रापीडे प्रतिपन्नः अङ्गीकृतः, नियमः व्रतं यया तथाभूता किम् अपरं रोदिमि? इति अभिधाय कथयित्वा तां मदलेखां व्यसर्जयत् गन्तुम् आदिशत्।

गत्वा—गत्वा यात्वा आगतया निवृत्तया च तया मदलेखया—'सखि कादम्बरि! ते तव अभिवाञ्छितम् अभीप्सितं सिद्धं निष्पन्नम्। तातेन पित्रा चित्ररथेन अम्बया मात्रा मदिरया च एवं संदिष्टं सन्देशः प्रहितः—गाढं-गाढम् घनं-घनं यथा स्यात्तथा (अतिशयार्थे द्विरुक्तिः) पुनः मुहुर्मुहुः आलिङ्ग्य आश्लिष्य, शिरसि मस्तके उपाघ्राय चुम्बित्वेत्यर्थः आवयोः वचनात् प्रातिनिध्यादित्यर्थः वक्तव्या कथनीया—वत्से पुत्रि! एतावन्तम् इयन्तं कालम् एतावत्कालपर्यन्तमित्यर्थः आवयोः द्वयोः मनसि चित्ते एव एतत् न आसीत् यथा जामात्रा सहिता सह वर्तमाना वत्सा पुत्री द्रष्टव्या अवलोकनीया भविष्यतीति शेषः, तत् तस्मात् आवयोः अयम् एष एव परमश्चासौ आनन्दः महान् हर्षः यत् वत्सया त्वया स्वयम् आत्मना जामाता भर्ता वृतः अङ्गीकृतः; तत्र अपि अपरम् अन्यत् (हर्षस्थानं) यत् स जामाता भगवतः ऐश्वर्यशालिनः

की सेवा करते हुये हमें अब शाप-समाप्ति तक अवश्य यहाँ ठहरना होगा। इसलिये यह समाचार तू जाकर पिता जी और माता जी को बता दे, जिससे कि वे मेरे सम्बन्ध में और ही तरह की सम्भावना न कर बैठे अथवा मेरे दुःख के कारण (घर में) न बैठे रहे। ऐसा करो कि जिससे आकर वे इस तरह मुझ दुखिनी को न देख पावें। मैं पिता जी और माता जी को देखकर शोक के वेग को न रोक सकूँगी। मैं मरे हुये देव चन्द्रापीड़ को देखकर भी नहीं रोई, तो अब उनके जीवित रहने का पक्का निश्चय हो जाने पर नियम पर बैठी क्यों रोऊँ?' यह कहकर उसने उसे बिदा किया।

जाकर वापस आयी जब उसने यह बताया कि "प्रिय सखी! तुम्हारा वाञ्छित सिद्ध हो गया है। पिता चित्ररथ और माता मदिरा ने इस तरह संदेश दिया है—'हमारी ओर से बार-बार खूब गले लगाकर और सिर सूँघकर कहना कि बेटी, इतने समय तक हमारे मन में भी यह बात नहीं थी कि हम दामाद सहित पुत्री को देखेंगे, इसलिए हमको महान् हर्ष है कि बेटी ने स्वयं पति का वरण कर लिया है, तिस पर भी (हर्ष यह है कि) वह लोकरक्षक

सोऽवतारः तत्कल्याणैः शापावसाने जामात्रा सहैवानन्दबाष्पनिर्भरमाननारविन्दं ते द्रक्ष्यावः" इत्यावेदिते निर्वृतेनान्तरात्मना दैवतवदुपचरन्ती तच्चन्द्रापीडशरीरमतिष्ठत्।

अथापगतवति जलदसमये, घननिरोधोद्बन्धादिवोन्मुक्ते जीवलोके, प्रसरन्तीष्विवाशासु, फलभरावनम्रकलमवनपिञ्जरासु ग्रामसीमासु, काशकुसुमधवलास्वरण्यस्थलीषु, सेव्यतामुपगतेषु प्रासादतलेषु, कह्लारहारिषु पल्वलेषु, कुमुदामोदशीतलासु यामवतीषु, सेफालिकापरिमलग्राहिषु निशावसानमातरिश्वसु, चन्द्रप्रभाभिरामेषु प्रदोषेषु, उद्दामफुल्लेन्दीवररजोवाससुरभिषु वासरेषु, सलिलापसरणक्रमतरंग्यमाणासु सुकुमारतीर-

---

लोकपालस्य लोकरक्षकस्य चन्द्रमसः चन्द्रस्य अवताररूपमित्यर्थः। तत तस्मात् (कल्याणैः कल्याणकारकैः व्रतादिभि शापस्य अवसाने समाप्तौ जामात्रा ते भर्त्रा सह एव आनन्दस्य हर्षस्य वाष्पेण अश्रुणा निर्भरं पूर्णं ते तव आननं मुखम् अरविन्दं कमलम् इव (लुप्तोपमा) आननम् द्रक्ष्यावः आलोकयिष्यावः इति आवेदिते कथिते निर्वृतेन शान्तेन अन्तरात्मना मनसा दैवतवत् देवतावत् तत् चन्द्रापीडस्य शरीरं देहम् उपचरन्ती सेवमाना अतिष्ठत् स्थितवती कादम्बरीति शेषः।

अथाप०—अथ एतदनन्तरं जलदानां काले समये वर्षर्तोरिति यावत् अपगतवति समाप्तवति सतीत्युत्तरत्र सत्सप्तमी चलति, जीवलोके प्राणिवर्गे संसारे इति यावत् घनानां मेघानां यः निरोधः प्रतिबन्धः एव बन्धः बन्धनं तस्मात् उन्मुक्ते पृथक् भूते सति मेघप्रतिबन्ध-कारणात् लोकाः गृहेषु बन्धनगता इव आसन् वर्षाकारणात् बहिर्गन्तुमसम्भवात् इति भावः आशासु दिशासु प्रसरन्तीषु विस्तृतीभवन्तीषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, ग्रामाणाम् अवसथानां सीमासु प्रान्तेषु फलस्य सस्यस्य भरेण भारेण अवनम्राणि नतानि कलमानां शालीनां वनानि क्षेत्राणीत्यर्थः तैः पिञ्जरासु पीतवर्णासु सतीषु, प्रासादानाम् सौधानां तलेषु अधोभागेषु सेव्यतां सेवनयोग्यतां आवासयोग्यतामिति यावत् उपगतेषु प्राप्तेषु सत्सु, पल्वलेषु कासारेषु कह्लारैः सौगन्धिकैः रक्तकमलैरिति यावत् हरन्ति (मनः) इत्येवंशीलेषु मनोहरेष्वित्यर्थः सत्सु; यामवतीषु रात्रिषु कुमुदानां रात्रिकमलानाम् आमोदेन परिमलेन शीतलासु शिशिरासु सतीषु, निशायाः रात्रेः अवसानं समाप्तिः तस्य मातरिश्वसु वायुषु प्रातःकालीनवायुषु इति यावत् से(शे)फालिका पुष्पलताविशेषः तस्याः परिमलं सौरभं गृह्णन्तीत्येवंशीलेषु सत्सु, प्रदोषेषु निशामुखेषु ('प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः) निशाप्रारम्भेष्वित्यर्थः चन्द्रस्य चन्द्रमसः प्रभया छटया अभिरामेषु रमणीयेषु सत्सु, वासरेषु दिनेषु उद्दामम् उत्कटं पूर्णतयेत्यर्थः फुल्लानि विकसितानि यानि इन्दीवराणि नीलकमलानि तेषां रजसः परागस्य यः वासः गन्धः तेन सुरभिषु सुगन्धिषु सत्सु, सुकुमारं मृदु यत् तीरं तटं तस्मिन् याः सैकत्यः सिकतासम्बन्धिन्यः वालुकामय्यः रेखाः श्रेण्यः

भगवान् चन्द्रमा का अवतार है, इसलिये (व्रतादि) कल्याणों द्वारा शाप-समाप्ति पर दामाद के साथ ही आनन्दाश्रु से छलकते तेरा मुख-कमल देखेंगे, ऐसा कहे जानेपर, शान्त-चित्त हुई कादम्बरी देवता के समान चन्द्रापीड के उस शरीर की सेवा में लगी रही।

इसके बाद जब वर्षाकाल बीत गया, प्राणि-वर्ग मेघों की बाधा के बन्धन से-जैसे उन्मुक्त हो गया, दिशायें दूर-दूर-जैसे फैलने लगीं, गाँवों की सीमायें सस्य के भार से झुके धान के बनों (खेतों) द्वारा पीली हो उठीं, वन-भूमियाँ काँस के फूलों से सफेद हो चलीं, भवनों के तल-भाग रहने योग्य हो गए, तालाब कमलों से मनोहर बने गये, रातें कुमुदों के सौरभ से ठंडी हो गईं, प्रातःकाल की हवायें निर्गुण्डी के फूलों की महक लेने लगीं, सायंकाल चाँद की छटा से रमणीय हो उठे, दिन खूब खिले हुये इन्दीवर के पराग के सौरभ से सुगन्धित हो गये, नदी-तीरों के मृदु रेत की रेखायें पानी के क्रमशः नीचे उतरते रहने से तरंगाकार बन

सैकतरेखासु, सुखोत्तारतामापन्नास्वापगासु, पङ्कपरिहरणशुष्केष्वप्रहतरूढतृणोलपच्छन्नेषु सन्दाश्यानकर्दमोद्भिद्यमानाभिनवपदवीकेषु पुनरपि पार्थिवलोकेन प्रवर्तितेषु प्राञ्जलवर्त्मसु, जम्बालविगमात्सर्वतस्तुरगखुरसहासु भूमिष्वेकदा चन्द्रापीडचरणमूलोपविष्टां कादम्बरीमुपसृत्य मेघनादो व्यज्ञपयत्। 'देवो युवराजश्चिरयतीत्युत्ताम्यता हृदयेन देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन च वार्ताहराः प्रहिताः। ते च देव्या एव शोकशल्यघटनां परिहरद्भिर्यथावृत्तं सर्वमाख्यायास्माभिरभिहिताः। 'भवतां हस्ते देवेन चन्द्रापीडेन न किंचित्प्रतिसन्देष्टव्यम्। नापि देव्या कादम्बर्या। तदकृतविलम्बा एव गत्वैवमखिलवृत्तान्तं लोकार्तिहरायावनितलपतये देवदेवाय तारापीडायावेदयत।' इत्येव-

---

तासु सलिलस्य जलस्य यत् अपसरणं पश्चात् गमनं तस्य क्रमेण तरंग्यमाणासु तरंगितीक्रियमाणासु तरंगरूपास्विव प्रतीयमानास्वित्यर्थः, आपगासु नदीषु उत्तरणम् उत्तारः यासां तासां भावः तत्ता ताम् आपन्नासु प्राप्तासु सूत्तरास्वित्यर्थः सतीषु, प्राञ्जलानि ऋजूनि सरलानीत्यर्थः यानि वर्त्मानि मार्गाः तेषु पङ्कस्य कर्दमस्य यत् परिहरणं दूरीकरणं दूरीभवनमित्यर्थः तेन शुष्केषु शुष्कीभूतेषु, अप्रहतानि पादैः अदलितानि रूढानि प्रादुर्भूतानि यानि तृणानि घासाश्च उलप वीरुधश्च तैः छन्नेषु आवृतेषु ['वीरुद्-गुल्मिन्युलप इत्यपि' इत्यमरः], मन्दं स्वल्पं यथा स्यात्तथा आश्यानः शुष्कः यः कर्दमः पङ्कः तेन उद्भिद्यमाना प्रादुर्भवन्ती अभिनवा प्रत्यग्रा पदवी स्थानं येषां तेषु पार्थिवाः राजानः तेषां लोकेन समूहेन पुनः अपि प्रवर्तितेषु प्रयोगे आनीतेषु सत्सु, भूमिषु भूषु जम्बालः पङ्कः ['निषद्वरस्तु जम्बालः पंकोऽस्त्री शाद-कर्दमौ' इत्यमरः] तस्य विगमात् अपगमनात् दूरीभवनादिति यावत् सर्वतः परितः सहन्ते इति सहाः तुरगाणाम् अश्वानां खुराणां शफानां सहाः खुरप्रहारं सोढुं क्षमाः इत्यर्थः तासु सतीषु, एकदा एकस्मिन् समये चन्द्रापीडस्य चरणयोः पादयोः मूले समीपे इत्यर्थः उपविष्टां निषण्णां कादम्बरीम् उपेत्य उपसृत्य मेघनादः एतन्नामा सेनापति-पुत्रः, व्यज्ञपयत् न्यवेदयत्। देवो०—देवः युवराजः चन्द्रापीड इत्यर्थः चिरयति विलम्बते इति हेतोः उत्ताम्यता व्याकुलीभवता हृदयेन स्वान्तेन देवेन महाराजेन तारापीडेन, देव्या महिष्या विलासवत्या, आर्येण मान्येन शुकनासेन च वार्ताहराः सन्देशहराः दूताः प्रहिताः प्रेषिताः। ते वार्ताहराश्च देव्याः भवत्याः शोक एव शल्यं वाणाग्रमिवेति लुप्तोपमा, तस्य घटनां वृत्तं परिहरद्भिः वर्जयद्भिः भवच्छोकवृत्तान्तवर्जमित्यर्थः अस्माभिः यथावृत्तं यथाजातं सर्वम् आख्याय कथयित्वा अभिहिताः उक्ताः—'भवतां युष्माकं पार्श्वे इत्यर्थः देवेन चन्द्रापीडेन न किञ्चित् प्रतिसंदेष्टव्यम् प्रतिसन्देशः देयः इत्यर्थः, नापि कादम्बर्या प्रतिसन्देष्टव्यमिति अनुवर्तते। तत तस्मात् न कृतः विलम्बः कालात्ययः यः तथाभूताः एव भवन्तः गत्वा प्रस्थानं कृत्वा एव अखिलं समग्रं वृत्तान्तम् उदन्तं लोकानां प्रजानाम् आर्तेः पीडायाः हराय दूरीकर्त्रे

गई; नदियाँ सरलता से पार करने योग्य हो गई, सीधे-सरल रास्ते, जो कीचड़ हट जाने से सूख गये थे, जमे हुये—अनकुचले घास एवं वेलों से ढके हुये थे, और जिनका ताजा-ताजा स्थान सूखे पड़े कीचड़ के कारण थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ने लग गया था, राजा लोगों द्वारा प्रयोग में लाये जाने लगे और जमीन कीचड़ न होने से चारों ओर घोड़ों की टापों को सहने वाली वन गई, तो एक वार चन्द्रापीड़ के चरणों के समीप बैठी हुई कादम्बरी के पास आकर मेघनाद ने निवेदन किया—'देव युवराज [चन्द्रापीड़] देरी कर रहे हैं—इस कारण अकुलाते हुये मन से महाराज तारापीड़, महारानी विलासवती और आर्य शुकनास ने सन्देश-वाहक दूत भेजे हैं। आपकी शल्य-जैसी (चुभ रही) शोक-घटना को छोड़े हमने जैसा हुआ है, वह सब वताकर, उन्हें कह दिया है—'आप लोगों के हाथों न देव चन्द्रापीड़ को और नहीं देवी कादम्बरी को जवाव में कोई सन्देश देना है, इसलिये विना विलम्ब किये जाकर ही सारा वृत्तान्त प्रजा-पीड़ा के हर्ता, भूतल के स्वामी, राजाधिराज तारापीड से कह दो, परन्तु हमारे

मभिहितास्तु तेऽस्मान्मन्युनिर्भराः प्रत्यवदन्। 'यथा भवद्भिः कथितं तत्तथा। तिष्ठतु तावत्क्रमागतस्नेहो भक्तिरनुवृत्तिर्वा। कार्यगौरवकृतं कुतूहलमेव देवावलोकनं प्रति बलात्प्रेरयत्यस्मान्। यदि भवतामपि वार्तामात्रकोपलभ्य एवायमर्थस्ततो युज्यतेऽस्माकं भवद्भ्यः समुपलभ्य प्रतिगमनम्। अथ नयनविषयगामी तदा वयमपि नेदृशा एवापुण्यकर्माणो ये न पश्यन्ति देवम्। अस्माभिरपि चिरतरं चरणपरिचर्यया देवस्य पविन्त्रित एवात्मा। अस्माकमपि सर्वदा दर्शनगोचरावस्थानेन प्रसादं कृतवानेव देवः। किमद्य जातं येन देवस्य पादारविन्दवन्दनप्रसादेनासंविभज्य विसृज्यामहे। त एव वयं पादलग्नाश्चरणरेणवः। यद्विज्ञाप्य देवीं देवस्य युवराजस्य पादप्रणामेनास्माकं सफलयतु भवाना-

---

अवनितलस्य भूतलस्य पत्यै देवानां देवाय राजाधिराजाय तारापीडाय आवेदयत निवेदयत—इति एवम् अभिहिताः उक्ताः तु ते वार्ताहराः मन्युना दुःखेन क्रोधेन वा निर्भराः पूर्णाः सन्तः प्रत्यवदन् प्रत्यूचुः 'यथा भवद्भिः युष्माभिः कथितम् उक्तम् तत् तथा तेन प्रकारेण अस्तु। तावत् आदौ क्रमेण आगतः परम्पराप्राप्तः स्नेहः युवराजे प्रीतिः भक्तिः, अनुवर्तनं सेवा च तिष्ठतु आस्ताम्। कार्यस्य कर्तव्यस्य गौरवेण महत्त्वेन कृतं जनितं कुतूहलं कौतुकम् एव अस्मान् देवस्य चन्द्रापीडस्य अवलोकनं दर्शनं प्रति बलात् हठात् प्रेरयति प्रणुदति। यदि अयम् एषः अर्थः वस्तु भवतां युष्माकम् अपि वार्ता एव वार्तामात्रकं वृत्तान्तमात्रं तेन उपलभ्यः उपलब्धुं ज्ञातुं योग्योऽस्ति अर्थात् यदि वार्ताद्वारा एव भवद्भिः एषोऽर्थः ज्ञातः न प्रत्यक्षीकृतः ततः तर्हि भवद्भ्यः वार्ता वृत्तान्तं समुपलभ्य ज्ञात्वा अस्माकं प्रतिगमनं प्रतिनिवृत्तिः युज्यते सम्यक् एवास्तीत्यर्थः। अथ यदि एषोऽर्थः भवतां नयनयोः चक्षुषोः विषयं गोचरं गन्तुं शीलमस्येति तथोक्तः भवद्भिः प्रत्यक्षीकृतः इत्यर्थः तदा तर्हि न ईदृशाः एवंविधाः अपुण्यं कर्म येषां तथाभूताः पापिनः इत्यर्थः स्मः ये देवं चन्द्रापीडं न पश्यन्ति। (भवत्सदृशैः) अस्माभिः अपि चिरतरम् अतिचिरकालपर्यन्तं देवस्य चन्द्रापीडस्य चरणयोः पादयोः परिचर्यया सेवया आत्मा पवित्रितः पवित्रीकृतः एवास्ति। अस्माकम् अपि सर्वदा नित्यं दर्शनस्य अवलोकनस्य गोचरं विषयभूतम् अवस्थानं स्थितिः तेन देवः चन्द्रापीडः प्रसादम् अनुग्रहं कृतवान् विहितवान् एव, दर्शनदानेन वयं कृतार्थीकृताः इत्यर्थः। अद्य इदानीं किं जातं संवृत्तम् येन कारणेन वयं देवस्य चन्द्रापीडस्य पादौ चरणौ अरविन्दे कमले इवेति लुप्तोपमा तयोः वन्दनं प्रणमनम् एव प्रसादः अनुग्रहः तेन असंविभज्य संविभागं न कृत्वा विसृज्यामहे गन्तुमादिश्यामहे अर्थात् प्रणयन-प्रसादे वयमपि न समभागिनः क्रियामहे। वयं पादयोः चरणयोः लग्नाः सक्ताः ते एव चरण-रेणवः चरणधूलयः स्मः ये पूर्वम् आस्म। यत् देवीं कादम्बरीं विज्ञाप्य निवेद्य युवराजस्य चन्द्रापीडस्य पादयोः चरणयोः प्रणामेन वन्दनेन भवान् अस्माकं वार्ताहराणां

यह कहने पर क्रोध-भरे उन्होंने उत्तर दिया—'आप लोगों ने जो कहा, वह ठीक है। परम्परा से चला आ रहा [युवराज के प्रति] हमारा स्नेह भक्ति अथवा सेवा फिलहाल एक तरफ रखो, कार्य के महत्त्व से उत्पन्न कुतूहल ही हमें देव चन्द्रापीड़ को देखने के लिये बलात् प्रेरित कर रहा है। यदि आप लोगों को भी यही बात केवल समाचार से ही जानने को मिली है, तो हमारा आप लोगों से जानकर वापस हो जाना ठीक है। यदि यह बात आप लोगों की आँखों के सामने आई है, तो हम भी ऐसे पापी नहीं हैं जो देव चन्द्रापीड़ को न देखें। हमने भी चिरकाल तक देव चन्द्रापीड़ के चरणों की सेवा से अपनी आत्मा पवित्र कर रखी है। सदा हमारी आँखों के सामने खड़ा होकर उन्होंने हम पर भी कृपा कर ही रखी है। आज कौन सी बात हो गई है जिसके कारण उनके चरणारविन्दों की वन्दना की कृपा का हिस्सा हमें दिये बिना हमें विदा किया जा रहा है। हम भी तो उनके चरणों में लगी चरण-रज हैं। इसलिए देवी कादम्बरी से निवेदन करके आप देव

गमनपरिश्रमम्। अन्यथा भूमिमेतावतीमागत्य संभवे सत्यप्रत्यक्षीकृतयुवराजशरीरा गताः सन्तः किं देवदेवेन तारापीडेन वक्तव्या वयम्। किं वास्माभिर्देवो विज्ञापयितव्यः। इत्यावेदिते देवी प्रमाणम्।' इति विज्ञाप्य पुनस्तूष्णीं स्थितवति मेघनादे तत्कालसमुत्प्रेक्षितानाश्वासश्वशुरकुलवैक्लव्याद्विलीयमानेव शुचान्तःसंचितं बाष्पमाकुलिततरलतारकाभ्यामापिवन्ती लोचनाभ्यां गद्गदिकयावगृह्यमाणकण्ठी कथं कथमपि चिरात्कादम्बरी प्रत्युवाच। 'स्थान एव हि तैरगमनमङ्गीकृतम्। अनवलोक्य देवमेवमेव याताः सन्तः किमुच्यन्ताम्। अपि च वृत्तान्त एवायमेवंविधो लोकातीतो यत्रावलोकनेनापि न संप्रत्ययः समुत्पद्यते। किं पुनरनालोकनेनापि। कैतवमात्रकोपदर्शितप्रेमपल्लवा वल्लभतमजीवितां वयमपि यावत्पश्यामस्तं तावदनवेक्षितप्राणवृत्तयः स्नेहसद्भावनया

आगमनस्य परिश्रमम् आयातं सफलयतु सफलीकरोतु। अन्यथा नो चेत् एतावताम् इयतीं दूरस्थितामित्यर्थः भूमिं प्रदेशम् आगत्य आगमनं कृत्वा संभवे सति दर्शनावसरे प्राप्तेऽपीत्यर्थः न प्रत्यक्षीकृतं दृष्टं युवराजस्य चन्द्रापीडस्य शरीरं देहः यैः तथाभूताः गताः निवृत्ताः सन्तः देवदेवेन राजाधिराजेन वयं किं वक्तव्याः कथनीयाः स्याम। वा अथवा अस्माभिः देवः तारापीडः किं विज्ञापयितव्यः निवेदयितव्यः। इति आवेदिते निवेदिते देवी भवती एव प्रमाणम् अर्थात् यथादिशति भवती तथा करिष्यामः। इति—विज्ञाप्य निवेद्य मेघनादे पुनः तूष्णीं जोषं यथा स्यात्तथा स्थितवति निषण्णे सति तत्कालं तस्मिन्नेव समये समुत्प्रेक्षितं सम्भावितम् मनसि विचारितम् अनाश्वासेन अनाश्वस्ततया पुत्रागमनकृतया अधीरतयेत्यर्थः श्वसुरकुलस्य पतिवंशस्य यत् वैक्लव्यम् विह्वलत्वं तस्मात्, शुचा शोकेन व्यालीयमाना लयं गच्छन्ती इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अन्तः मध्ये सञ्चितं संगृहीतं वाष्पम् अश्रु आकुलिते व्याकुलीभूते च तरले चञ्चले च तारके कनीनिके ययोः तथाभूते च ताभ्यां लोचनाभ्याम् आपिबन्ती निगृह्णन्तीत्यर्थः गद्गदिकया गद्गदस्वरेण अवगृह्यमाणः रुध्यमानः कण्ठः गलो यस्याः तथाभूता कथं कथमपि अतिकृच्छ्रेण चिरात् दीर्घकालान्तरं कादम्बरी प्रत्युवाच प्रत्यब्रवीत्—'हि निश्चयेन स्थाने उचितम् एव ['युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः] यत् तैः वार्ताहरैः अगमनं निवर्तनम् अङ्गीकृतं स्वीकृतम् अर्थात् ते न गताः इति युक्तमेव। देवं चन्द्रापीडम् अनवलोक्य अदृष्ट्वा एवमेव पूर्णतया घटनाचक्रम् अविदित्वैव याताः गताः सन्तः ते लोकैः किम् उच्यन्ताम् किं कथ्येरन्। अपि च, किं च वृत्तान्तः घटनाचक्रम् एव अयम् एष एवंविधः एतादृशः लोकातीतः लोकमतीतः अलौकिक इत्यर्थः यत्र अवलोकनेन साक्षात्करणेन अपि संप्रत्ययः विश्वासः न समुत्पद्यते न जायते, अनालोकनेन असाक्षात्कारेण अपि किं पुनः किम् वक्तव्यम्। कैतव०—कितवस्य भावः कैतवं छलम् एव कैतवमात्रकं तेन उपदर्शितं प्रकटितं प्रेम स्नेहः पल्लवं किसलयम् इवेति लुप्तोपमा यैः तथाभूताः सर्वेभ्यः वल्लभं प्रियम् इति वल्लभतमं जीवितं

युवराज [चन्द्रापीड़] के चरणों के नमन द्वारा हमारे आने का परिश्रम सफल बनाइये, नहीं तो इतनी दूर भूमि में आकर संभव होने पर भी युवराज की देह का साक्षात्कार किये बिना गए हमें राजाधिराज तारापीड़ क्या कहेंगे अथवा हम उन्हें क्या बतायेंगे। उनके इस आवेदन पर आप की जैसी आज्ञा हो'—इस प्रकार निवेदन करके मेघनाद के फिर चुपचाप बठ जाने पर, बिना आश्वासन के श्वसुर-कुल की विह्वलता का तत्काल अनुमान लगाये, शोक के मारे घुली जाती हुई-जैसी, भीतर इकट्ठे हुए आँसुओं को बेचैन और चञ्चल पुतलियों वाली आँखों से भीतर-ही-भीतर पीती हुई, घिग्घी से रुँधे हुए कण्ठवाली कादम्बरी बहुत देर बाद किसी तरह उत्तर में बोली—'उनका जाना स्वीकार न करना वस्तुतः ठीक ही है। बिना देव चन्द्रापीड़ को देखे यों ही गये उन्हें लोग क्या कहेंगे। इसके अतिरिक्त यह घटना ही ऐसी अलौकिक है कि देख लेने पर भी जिसपर विश्वास ही नहीं होता, बिना देखे विश्वास होने की बात तो दूर रही। केवल छल-भरा प्रेम-पल्लव दिखाये, प्राणों को ही सबसे अधिक प्रिय माने हम भी जब उन (चन्द्रापीड़) को देख रहे हैं, तो प्राणों की पर्वाह न

सद्भृ¹त्या न पश्यन्तीत्यघटमानकमिदम्। तदपरिलम्बितं प्रवेश्यन्ताम्। पश्यन्तु देवम्। सफलयित्वागमनपरिश्रमेण सार्धं लोचने ततो यास्यन्ति' इति। आज्ञानन्तरं च मेघनादेन प्रवेशितान्दूरत एव समं बाष्पपातेन पञ्चाङ्गालिङ्गितमहीतलांश्चन्द्रापीडचरणवन्दनसद्भावनिहितोत्पक्ष्मनिभृतदृष्टींस्ताननन्यदृष्टिश्चिरमिवालोक्य कादम्बरी स्वयमेवाभाषत।

"भद्रमुखाः, परित्यज्यतामयं क्रमागतस्नेहसद्भावसुलभः शोकावेगः। यत्खल्वनालोचितावधि दुःखावसानमेव दुःखं तन्मरणभीरोर्भवतु नाम शोकावेगाय। यत्पुनः सुखोदर्कं तत्पुरःस्थितया सुखप्रत्याशयैवान्तरितं नापतति हृदये। तदेष वृत्तान्त एवंविधो

प्राणाः येषां ते वयम् अपि यावत् वर्तमाने इत्यर्थः पश्यामः निरूपयामः तावत् तर्हि न अपेक्षिता गणिताः प्राणानां वृत्तिः वर्तनं यैः तथाभूताः सद्भृत्याः सज्जनाः सेवकाः स्नेहस्य प्रीतेः सद्भावनया सद्भावेन न पश्यन्ति साक्षात्कुर्वन्ति इति इदम् अघटमानम् असंगच्छमानम् अस्तीति शेषः। तत् तस्मात् न परिलम्बितं [भावे क्तः] विलम्बः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा शीघ्रमेवेत्यर्थः प्रवेश्यन्ताम् प्रवेष्टुम् प्रेर्यन्ताम्। ते देवं चन्द्रापीडं पश्यन्तु विलोकयन्तु। आगमनस्य परिश्रमेण आयासेन सार्धं सह लोचने नयने सफलयित्वा सफलीकृत्य ततः तदनन्तरं यास्यन्ति गमिष्यन्ति' इति। आज्ञायाः आदेशस्य अनन्तरं पश्चात् च मेघनादेन प्रवेशितान् प्रवेशं कारितान् दूरतः दूरात् एव बाष्पस्य अश्रुणः पातेन पातनेन समं सह पञ्च च तानि अङ्गानि द्वे जानुनी, द्वौ करौ शिरश्चेति तैः आलिङ्गितम् आश्लिष्टं स्पृष्टमित्यर्थः महीतलं भूतलं यैः तथाभूतान्, चन्द्रापीडस्य चरणयोः पादयोः यत् वन्दनं नमनम् तस्मिन् यः सद्भावः सद्भावना तस्मिन् निहिताः न्यस्ताः उत्पक्ष्माः ऊर्ध्वीकृतनेत्ररोमाः निभृताः निश्चलाः दृष्टयः दृशः येषां तान् न अन्यत्र चरणौ विहाय अन्यस्मिन् स्थाने दृष्टिः यस्या तथाभूता सती चिरं दीर्घकालम् इवेति वाक्यालङ्कारे आलोक्य दृष्ट्वा कादम्बरी स्वयम् आत्मना एव अभाषत कथितवती।

भद्र०—भद्रं शुभं मुखं येषां तत्सम्बुद्धौ सज्जनाः इत्यर्थः क्रमेण परम्परया आगतः प्राप्तः यः स्नेहस्य प्रीतेः सद्भावः सत्ता तस्मिन् सुलभः सुप्रापः' स्वाभाविकः इत्यर्थः अयम् शोकस्य शुचः आवेगः रयः परित्यज्यताम् मुच्यताम्। यत् दुःखं खलु निश्चयेन न आलोचितः विमृष्टः ज्ञातः इति यावत् अवधिः मर्यादा यस्य तथाभूतं निरवधिकमित्यर्थः दुःखम् अवसाने अन्ते यस्य तथाभूतम् एव अस्तीति शेषः तत् दुःखं मरणात् मृत्योः भीरोः भीतस्य कातरस्येत्यर्थः शोकस्य शुचः आवेगाय भवतु जायतां नामेति कोमलामन्त्रणे। पुनः किन्तु यत् दुःखं सुखम् उदर्कः उत्तरं फलं यस्य तथाभूतं ('उदर्कः फलमुत्तरम्' इत्यमरः) अस्तीति शेषः तत् दुःखम् पुरः उत्तरकाले स्थितया विद्यमानया सुखस्य प्रत्याशया आशया एव अन्तरितं व्यवहितं सत् हृदये मनसि न आपतति आगच्छति स्थानं करोतीत्यर्थः। तत् तस्मात् कारणात् एष वृत्तान्तः घटनाचक्रमित्यर्थः

किये, सच्चे सेवक स्नेह की सद्भावना से उन्हें न देखें—यह बात घटती नहीं। अतः उनका प्रवेश शीघ्र करवाइये। वे देव चन्द्रापीड़ को देखें। आगमन के परिश्रम के साथ ही वे आँखों को (भी) सफल बनाएँ। तत्पश्चात् वे जायेंगे।' आज्ञा के बाद मेघनाद द्वारा प्रविष्ट कराये, दूर से ही अश्रुपात के साथ पाँचों अङ्गों—दो घुटने, दो हाथ और माथे—से भूतल को स्पर्श किये, चन्द्रापीड़ की चरण-वन्दना की सद्भावना में ऊपर उठी बरौनियों वाली, निश्चल दृष्टि रखे उन्हें देर तक देखकर अन्यत्र दृष्टि न किये कादम्बरी स्वयमेव बोली—

'भले लोगो! परम्परा से चली आई स्नेह-भावना में सुलभ यह शोकावेग छोड़ दीजिए। वास्तव में बिना अवधि जाने जो दुख अन्त तक दुख ही बना रहता है, वह मृत्यु से डरने वालों को हो तो हो, लेकिन जो दुःख परिणाम में सुख देने वाला होता है, वह आगे होने वाले सुखकी आशा से युक्त हुआ हृदय में आता ही नहीं। इस कारण यह घटना ऐसी है कि इस

१. सद्वृत्त्या।

येन न केवलमत्र निरवकाशता शोकस्य प्रत्युत सुदूरभिन्नवृत्तेर्विस्मयस्यावसरः। किमत्र परिबोधनेन। अन्यत्राहष्टपूर्वो मनुष्येषु प्रत्यक्षीकृत एवायं वृत्तान्तः। भवद्भिरपि दृष्टं च पुरेवाक्षततनोर्देवस्य वदनम् संभाषणापि या देवेन विना न संभवति सापि संभावितैव। तद्गम्यतामधुना वार्तोत्सुकमतेर्देवस्य पादमूलम्। न चायं प्रत्यक्षदृष्टोऽप्युपरतशरीराविनाशवृत्तान्तः प्रकाशनीयः। दृष्टोऽस्माभिरच्छोदसरसि तिष्ठत्येतदेवावेदनीयम्। यतः कारणादुपरतिः खल्ववश्यंभाविनी प्राणिनां कथंचित्प्रत्ययमुत्पादयति। शरीराविनाशः पुनः प्राणैर्विनाकृतानां दृश्यमानोऽप्यश्रद्धेय एव। तदस्यावेदनेन सुदूरस्थितमपि गुरुजनं मरणसंशये निक्षिप्य वर्तमाने प्रयोजनमेव नास्ति। प्रत्यागतजीविते जीवितेश्वरे स्वयमेवायमत्यद्भुतभूतोऽर्थो गुरुजनेष्वाप्रकटीभविष्यति।' इत्येवमादिष्टाश्च ते व्यज्ञापयन्।

एवंविधः एतादृशः अस्तीति शेषः येन कारणेन न केवलम् अत्र अस्मिन् विषये शोकस्य शुचः निरवकाशता स्थानाभावः प्रत्युत अपि तु सुदूरम् अत्यन्तमित्यर्थः भिन्ना विपरीता वृत्तिः वर्तनं यस्य तथाभूतस्य नितान्तविरोधिन इति यावत् विस्मयस्य आश्चर्यस्य अवसरः समयः। अत्र अस्मिन् विषये किं परिबोधनेन प्रतिबोधनया। अन्यत्र अन्यस्मिन् स्थाने मनुष्येषु मानवेषु न पूर्वं दृष्टः इत्यदृष्टपूर्वः अनवलोकितपूर्वः अयं वृत्तान्त उदन्तः भवद्भिः प्रत्यक्ष कृतः दृष्ट एव, भवद्भिः अपि पुरा इव पूर्ववत् न क्षता नष्टा निर्विकारेति यावत् तनुः शरीरं यस्य तस्य देवस्य युवराजस्य वदनं मुखं दृष्टं विलोकितं च। या सम्भाषणा परस्परालापः अपि देवेन सह न सम्भवति जायते सा अपि संभाविता शरीरे प्राणागमानन्तरं संभाव्या एव। तत् तस्मात् वार्तायाम् उदन्ते उत्सुका उत्कण्ठिता मतिः मन इत्यर्थः यस्य तथाभूतस्य देवस्य तारापीडस्य पादयोः चरणयोः मूलं समीपम् अधुना गम्यताम् प्रस्थीयताम्। प्रत्यक्षं समक्षं यथा स्यात् तथा दृष्टः विलोकितः अपि अयम् उपरतस्य निष्प्राणस्य शरीरस्य देहस्य अविनाशस्य नाशाभावस्य तथैवावस्थानस्येति यावत् वृत्तान्तः उदन्तः न प्रकाशनीयः प्रकटीकरणीयः। अच्छोदसरसि तिष्ठति वर्तते, अस्माभिः दृष्टः विलोकितः इति एतत् इदम् एव आवेदनीयं विज्ञापयितव्यम्। **यतः**—यतः कारणात् यस्मात् हेतोः अवश्यं भवितुं शीलमस्या इति तथोक्ता अवश्यं जायमाना प्राणिनाम् उपरतिः मृत्युरित्यर्थः कथञ्चित् प्रत्ययं विश्वासम् उत्पादयति जनयति प्राणीक्रियते इत्यत्र सर्वेषां विश्वास इति भावः पुनः किन्तु प्राणैः असुभिः विनाकृतानां वियुक्तानाम् भूतानामित्यर्थः शरीरस्य अविनाशः अक्षतत्वं दृश्यमानः प्रत्यक्षीक्रियमाणः अपि अश्रद्धेयः न श्रद्धातुं योग्यः अविश्वसनीय एव भवतीति शेषः। तत् तस्मात् अस्य वृत्तान्तस्य आवेदनेन सूचनेन सुदूरम् अतिदूरं स्थितं वर्तमानम् अपि गुरुजनं श्वसुरादिजनं मरणस्य मृत्योः संशये सन्देहे इत्यर्थः निक्षिप्य पातयित्वा वर्तमाने इदानीन्तने काले प्रयोजनम् अर्थः एव अस्माभिः नास्ति। प्रत्यागतं पुनरावृत्तं जीवितं प्राणाः यम् तस्य जीवितस्य ईश्वरे प्राणनाथे स्वयम् आत्मना एव अयम् एष अतिशयेन अद्भुतः अत्याश्चर्यमयः अर्थः वस्तु गुरुजनेषु मातापि-

सम्बन्ध में केवल शोक का स्थान नहीं, बल्कि इसके अत्यन्त विरुद्ध आश्चर्य का स्थान है। इस विषय में क्या समझाना है? अन्यत्र पहले कहीं भी देखने में न आया हुआ यह वृत्तान्त मनुष्यों में देख ही लिया है। आप लोगों ने भी पहले की तरह ठीक-ठाक देह वाले देव चन्द्रापीड़ का मुख देख लिया है। उनके बिना जो बात-चीत (इस समय) संभव नहीं, उसकी भी (प्राण आ जाने पर) सम्भावना है ही। इसलिए अब मन में समाचार हेतु उत्सुक बने देव तारापीड़ के चरणों में जाइये। (किन्तु) प्रत्यक्ष देखने में आया हुआ भी मृत शरीर के अविनाश का यह समाचार प्रकट न करें। यही कहें कि उनको हमने देखा है। वे अच्छोद सरोवर पर हैं। कारण यह है कि प्राणियों की अवश्यम्भावी मृत्यु किसी तरह विश्वास पैदा कर देती है, किन्तु प्राणों से वियुक्त होने वालों के शरीर का अविनाश देखते हुए भी विश्वास-योग्य नहीं होता। इसलिए इस बात को कह देने से बहुत दूर पड़े हुए गुरुजन का मृत्यु-संकट में डालना इस समय हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। जब प्राणनाथ जीवित हो उठेंगे तो स्वयं ही यह अत्यन्त अद्भुत बात

'देवि, किं विज्ञापयामः। द्वाभ्यामेवापरिज्ञानमस्य वस्तुनः संभवेदगमनेनास्मदीयेनाकथनेन वा। तदस्माकं तु हस्ते द्वयमप्येतन्नास्ति। युवराजवैशम्पायनयोर्वार्तां विना दुःखं तिष्ठता देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन संभाव्य प्रेषितानामप्रोषितजीवितानामगमनं तु दूरापेतमेव। गत्वापि दयिततमतनयवार्ताश्रवणलालसस्य राज्ञो देव्या आर्यशुकनासस्य दुःखप्लुताक्षीण्युद्वीक्ष्य मुखानि निर्विकारवदनानामस्माकमवस्थानमशक्यमेव।' इति विज्ञापिता तैरेवमेतदित्युक्त्वा कादम्बरी मेघनादमवादीत्। 'मेघनाद, वेद्मि संस्तुतजनस्यैतदनुचितमिति। तथापि गुरूणां चेतःपीडामवेक्षमाणया मयैवमभिहितम्। इतरदपि दुःखमापतति। कीदृशं भवति। किं पुनरिदं महावज्रपतन-

---

त्रादिषु आ समन्तात् प्रकटीभविष्यति ज्ञातं भविष्यतीत्यर्थः। इति एवम् आदिष्टाः आज्ञप्ताः च ते वार्ताहराः व्यज्ञापयन् न्यवेदयन्—'देवि ! किं विज्ञापयामः निवेदयामः। अस्य वस्तुनः 'युवराजः मृतः किंतु शरीरतः ध्रियते' इत्यात्मकस्य अर्थस्य अपरिज्ञानं गुरुजनेषु अनुपलम्भः द्वाभ्याम् एव प्रकाराभ्यामिति शेषः सम्भवेत्—अस्मदीयेन अस्माकमित्यर्थः तत्र अगमनेन अप्रत्यावर्तनेन वा अथवा अस्माकं तत्र गमनेऽपि अकथनेन गुरुजनं प्रति एतद्वृत्तान्तस्य अनभिधानेन। तु किन्तु तत् एतत् द्वयम् उभयम् अपि द्वौ एव प्रकारौ इत्यर्थः अस्माकं हस्ते वशे नास्ति। युवराजः चन्द्रापीडश्च वैशम्पायनः मन्त्रिपुत्रश्चेति तयोः वार्ताम् उदन्तं विना दुःखं यथा स्यात्तथा दुःखेनेत्यर्थः तिष्ठता वर्तमानेन देवेन महाराजेन तारापीडेन, देव्या महिष्या विलासवत्या, आर्यशुकनासेन च संभाव्य विचार्य प्रेषितानां प्रहितानाम्, न प्रोषितं गतं जीवितं प्राणाः येषां तथाभूतानां जीवितानामित्यर्थः अगमनं तु दूरम् अपेतम् गतम् एव अर्थात् एतत् सर्वथा असम्भवम्। गत्वा यात्वा अपि अतिशयेन दयितः दयिततमः प्रियतम इत्यर्थ यः तनयः पुत्रः चन्द्रापीडः तस्य वार्तायाः वृत्तान्तस्य श्रवणे आकर्णने लालसस्य उत्कटेच्छावतः राज्ञः तारापीडस्य, देव्या विलासवत्याः, आर्य-शुकनासस्य च दुःखेन शोकेन प्लुते अश्रुपूर्णे अक्षिणी चक्षुषी येषु तथाभूतानि विलोक्य दृष्ट्वा निर्विकारं विकार-रहितम् आननं मुखं येषां तथाभूतानाम् अस्माकम् अवस्थानं स्थितिः अशक्यं दुष्करम् एव तान् रुदितान् दृष्ट्वा वयं सुस्थाः स्थातुं न शक्नुमः इति भावः' इति तैः विज्ञापिता निवेदिता 'एतत् एतेषां कथनम् एवम् एव सत्यमेव' इति उक्त्वा कादम्बरी मेघनादम् सेनापति-पुत्रम् अवादीत् अकथयत्—'मेघनाद ! वेद्मि जाने संस्तुतस्य जनस्य परिचित-लोकानां कृते एतत् अनुचितम् अयुक्तम्' इति। तथापि गुरूणां श्वसुरादीनां चेतसः पीडां मनोवेदनम् अवेक्षमाणया पश्यन्त्या मया एवम् अभिहितं कथितम्। इतरत् एतद्-भिन्नम् अन्यदपि दुःखम् आपतति आगच्छति। तत् कीदृशं भवति ? महावज्रस्य महाशनेः पतनस्य पातस्य सदृशं तुल्यम् इदं पुत्रमरणरूपम् दुखं किं पुनः किमु वक्तव्यम्

गुरुजनों पर प्रकट हो ही जाएगी' यह आज्ञा प्राप्त किये वे (वार्ताहर) निवेदन करने लगे—'देवी, क्या कहें ? इस बात का पता न होने देना दो तरह से ही सम्भव है—या तो हम न जावें या फिर (जावें तो) न कहें। किन्तु ये दोनों (विकल्प) हमारे हाथ में नहीं। युवराज और वैशम्पायन के समाचार के बिना दुःख में पड़े हुए महाराज तारापीड़ रानी विलासवती तथा आर्य शुकनास द्वारा सोच विचारकर भेजे हुए, जीते जी हमारे न जाने की बात तो बहुत ही दूर की है। जाकर भी अत्यन्त प्रिय पुत्र का समाचार सुनने की लालसा रखे राजा, (तारापीड़), रानी (विलासवती) और आर्य शुकनास के दुःख के कारण आँसू-भरी आँखों वाले मुखों को देखकर मुखों में विकार न लाते, हमारा टिकना दुष्कर ही है'। उनके इस निवेदन पर 'यह ठीक ही है' कहकर कादम्बरी मेघनाद को बोली—'मेघनाद, मैं जानती हूँ कि परिचित लोगों के लिए यह अनुचित है। तथापि गुरुजन की मनोवेदना का ख्याल करके मैंने ऐसा कहा था। अन्य दुःख भी आ पड़ता है, वह कैसा होता है ! फिर महावज्रपात के समान इस दुःख की तो बात ही क्या। अतः यह

सदृशम्। तदेतदपि भवतु। एभिः सहापरः कश्चिच्छ्रद्धेयवचाः प्रत्यक्षदृष्टसकलवृत्तान्तः संप्रत्ययाय व्रजतु।' इत्येवमादिष्टस्तु मेघनादो व्यज्ञापयत्। 'देवि, राजलोके तु का कथा भृत्यवर्गोऽपि सकल एवायं कन्दमूलफलाशी निश्चयं कृत्वा स्थितो यथास्माकं मध्यादेकेनापि देवपादान्विना न प्रतीपं गन्तव्यमिति। भृत्या अपि त एव ये संपत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते। समुन्नम्यमानाः सुतरामवनमन्ति। आलप्यमाना न समानालापाः संजायन्ते। स्तूयमाना नोत्सिच्यन्ते। क्षिप्यमाणा नापरागं गृह्णन्ति। उच्यमाना न प्रतीपं भाषन्ते। पृष्टा हितप्रियं विज्ञापयन्ति। अनादिष्टाः कुर्वन्ति। कृत्वा न जल्पन्ति। पराक्रम्य न विकत्थन्ते। विकथ्यमाना अपि लज्जामुद्वहन्ति। महाहवेष्वग्रतो ध्वजभूता इव लक्ष्यन्ते। दानकाले पलायमानाः पृष्ठतो निलीयन्ते। धनात्स्नेहं बहु मन्यन्ते। जीविता-

---

(कैमुतिकन्यायेन अत्रार्थापत्तिः) तद् तस्मात् एतत् महावज्रपतनसदृशं दुःखमपि जायताम्। एभिः वार्ताहरैः सह सार्धम् अपरः अन्यः कश्चित् श्रद्धेयं विश्वसनीयं वचः वचनं यस्य तथाभूतः प्रत्यक्षं यथा स्यात् तथा दृष्टः विलोकितः सकलः वृत्तान्तः घटनाचक्रं येन सः, सम्प्रत्ययाय विश्वासाय व्रजतु गच्छतु' इति एवम् आदिष्टः प्राप्तादेशः मेघनादः तु व्यज्ञापयत् आवेदयत्। देवि — राजलोके राजसु तु का कथा अर्थात् राज्ञां विषये तु किमु वक्तव्यम् अयं सकलः समग्रः भृत्यवर्गः परिजनोऽपि कन्दश्च मूलं च फलञ्चेत्यश्नाति खादतीत्येवंशीलः सन् (एतम्) निश्चयं निर्णयं कृत्वा विधाय स्थितः कृतावस्थानः अस्ति—'यथा अस्माकं मध्यात् अभ्यन्तरात् देवस्य चन्द्रापीडस्य पादान् चरणान् विना एकेन अपि प्रतीपं विलोमं न गन्तव्यम्' अर्थात् युवराजं विना न निवर्तितुं ते कृतसंकल्पाः सन्ति। भृत्याः सेवकाः अपि ते एव भवन्तीति शेषः ये सम्पत्तेः समृद्धेः (तुलनार्थे पञ्चमी) सम्पत्त्यपेक्षया इत्यर्थः विपत्तौ विपदि सविशेषं विशेषेण सेवन्ते उपचरन्ति। समुन्नम्यमानाः उन्नतिं नीयमानाः सन्तः सुतरां भृशम् अवनमन्ति नम्रीभवन्ति। आलप्यमानाः संभाष्यमाणाः समानः सदृशः अलापः संभाषणं येषां तथाभूताः न संजायन्ते भवन्ति अर्थात् आलपिताः न आलापे स्वामि-सदृशीभवन्ति, मितवाचो भवन्ति। स्तूयमानाः स्वामितः स्तुतिं लभमानाः न उत्सिच्यन्ते न दृप्यन्ति। क्षिप्यमाणाः तिरस्क्रियमाणाः न अपरागं विरक्तिं गृह्णन्ति न विरक्ता भवन्तीत्यर्थः। उच्यमाना किमपि अननुकूलं भाष्यमाणाः प्रतीपं विरुद्धं न भाषन्ते कथयन्ति। पृष्टाः अनुयुक्ताः हितं हितकारकं प्रियं मधुरं च विज्ञापयन्ति निवेदयन्ति। अनादिष्टाः अनाज्ञप्ताः आज्ञाम् अलब्ध्वेत्यर्थः कुर्वन्ति कर्तव्यं कर्म विदधति। कृत्वा कार्यमिति शेषः न जल्पन्ति कथयन्ति। पराक्रम्य पराक्रमकर्म कृत्वा न विकत्थन्ते न श्लाघां कुर्वन्ति। विकत्थ्यमानाः श्लाघ्यमाना अपि लज्जाम् उद्वहन्ति लज्जन्ते। महान्तश्च ते आहवाः संग्रामाः तेषु ध्वज भूताः वैजयन्तीरूपाः इव अग्रतः पुरतः लक्ष्यन्ते दृश्यन्ते सेनायाः अग्रिमपंक्तौ तिष्ठन्तीत्यर्थः। दानस्य द्रव्यादिवितरणस्य काले समये पलायमानाः द्रवन्तः पृष्ठतः

(दुख) भी होवे। इन (सन्देशवाहकों) के साथ विश्वास दिलाने हेतु कोई दूसरा भी जावे, जिसका कथन विश्वसनीय हो और जिसने सारा घटनाचक्र प्रत्यक्ष देख रहा हो'। इस तरह आज्ञा प्राप्त किये मेघनाद ने निवेदन किया—'देवी! राजा लोगों की तो बात ही क्या, कन्द, मूल और फल खाने वाला यह सारा का सारा भृत्यवर्ग निश्चय कर बैठा है कि हमारे बीच में से एक भी विना युवराज-चरण के वापस न मुड़े। सेवक भी वे ही होते हैं जो सम्पत्ति की अपेक्षा विपत्ति में और अधिक सेवा करते हैं, उन्नति दी जाने पर नम्र हो जाते हैं, सराहना की जाने पर शेखी नहीं बघारते। फटकारे जाते हुए विरक्त नहीं हो जाते। (कुछ कठोर) कहने पर विरुद्ध नहीं बोलते। पूछने पर हित और प्रिय बोलते हैं। बिना आज्ञा प्राप्त किये कार्य करते हैं। (कार्य) करके बखान नहीं करते। शौर्य-कर्म करके डींग नहीं मारते। प्रशंसा की जाने पर लज्जित हो जाते हैं। महायुद्धों में ध्वज बने हुए-जैसे आगे-आगे दिखाई देते हैं। दान के

त्पुरो मरणमभिवाञ्छन्ति। गृहादपि स्वामिपादमूले सुखं तिष्ठन्ति। येषां च तृष्णा चरणपरिचर्यायास्, असंतोषो हृदयाराधने, व्यसनमाननावलोकने, वाचालता गुणग्रहणे, कार्पण्यमपरित्यागे भर्तुः। ये च विद्यमानेपि स्वात्मन्यस्वाधीनसकलेन्द्रियवृत्तयः पश्यन्तोप्यन्धा इव शृण्वन्तोपि बधिरा इव वाग्मिनोपि मूका इव जानन्तोपि जडा इवानुपहतकरचरणा अपि पङ्गव इव क्लीबा इवाकिंचित्कराः स्वा[1]त्मना स्वामिचिन्तादर्शे प्रतिबिम्बवद्वर्तन्ते। तत्सर्वमेवायमेवं स्थितो भृत्यलोकः। देवस्य च स्थाने देवी वर्तते। तदाज्ञापितं

पश्चात् निलीयन्ते अन्तर्धीयन्ते धनालोभात्। धनात् धनापेक्षयेत्यर्थः स्नेहं प्रीतिं बहु अधिकं यथा स्यात् तथा मन्यन्ते स्वीकुर्वन्ति। जीवितात् प्राणेभ्यः पुरः स्वामिनः अग्रे मरणं मृत्युम् अभिवाञ्छन्ति इच्छन्ति। गृहात् निजगृहापेक्षयेत्यर्थः स्वामिनः भर्तुः पादयोः चरणयोः मूले समीपमित्यर्थः सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा तिष्ठन्ति। येषां भृत्यानां च तृष्णा उत्कटाभिलाषः स्वामिनः चरणयोः पादयोः परिचर्यायां सेवायाम् अस्ति (न तु धनादौ)। असंतोषः अतृप्तिः स्वामिनः हृदयस्य आराधने प्रसादने (न तु स्त्रीप्रभृतिषु)। व्यसनम् आसक्तिः स्वामिनः आननस्य मुखस्य अवलोकने आज्ञाप्राप्तये दर्शने (न तु मद्य-द्यूतादिषु) वाचालता मुखरता गुणानां शौर्यदाक्षिण्यादीनां ग्रहणे आदाने (न तु पर-निन्दायाम्)। कार्पण्यं कृपणता भर्तुः स्वामिनः अपरित्यागे अमोचने (न तु अन्येषु कार्येषु) अर्थात् ते सेवारताः सन्तः भर्तुः चरणमूलं न त्यजन्ति। उपरि सर्वत्र परिसंख्यालंकारः। ये भृत्याः च स्वात्मनि विद्यमानेऽपि आत्मनः स्वतन्त्र-सत्तायां वर्तमानायाम् अपि न स्वाधीनाः आत्मायत्ताः सकलानां समस्तानाम् इन्द्रियाणां वृत्तयः वर्तनानि येषां तथाभूताः भवन्ति तेषां जीवनं स्वाम्यायत्तं भवतीति भावः; पश्यन्तः अवलोकयन्तः अपि अन्धाः नेत्ररहिताः इव, अत्र अन्धत्वं परदोषवीक्षणम्; शृण्वन्तः आकर्णयन्तः अपि बधिराः श्रवणशक्ति-रहिता इव पर–निन्दां न शृण्वन्तीति भावः, वाग्मिनः वाणीमन्तोऽपि मूकाः अवाचः इव प दोषान् न कथयन्तीति भावः, जानन्तः ज्ञानवन्तः अपि जडाः मूर्खा इव स्वामिप्रोक्तकथादिश्रवणे अजानन्त इव श्रद्धया शृण्वन्तीति भावः, न उपहतं न खण्डितं सुस्थमिति यावत् करौ हस्तौ च चरणौ पादौ च तेषां समाहारः इति चरणं येषां तथाभूताः अपि पङ्गवः विकलाङ्गाः इव गमनादि-व्यापारस्य स्वाम्यधीनत्वात् इत्यर्थः, उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षा-विरोधाभासयोः संकरः, क्लीवाः षण्ढाः इव अकिञ्चित्कराः न किमपि कर्तुं शक्ताः स्वाम्यधीनत्वात् संभोगशक्तिराहित्याच्च, अत्रोपमा, स्वात्मना स्वयं स्वामिनः भर्तुः या चिन्ता एव आदर्शः मुकुरः तस्मिन् प्रतिबिम्बवत् प्रतिच्छायावत् वर्तन्ते भवन्ति अर्थात् भर्तुः या चिन्ता भवति सा तेषां मुखे प्रतिबिम्बिता भवति, स्वामिचिन्तया तेऽपि चिन्तिता भवन्तीति यावत् (अत्र 'स्वामिचित्तादर्शे' इति पाठः साधीयान्) तत् सर्वम् इति सामान्ये नपुंसकम् एव

समय भागकर पीछे छिप जाते हैं। धन की अपेक्षा स्नेह को अधिक मानते हैं। प्राणों की अपेक्षा (स्वामी के) आगे मृत्यु पसन्द करते हैं। घर की अपेक्षा स्वामी के चरणमूल में सुख समझते हैं। और जिनकी (स्वामी के) चरणों की सेवा में तृष्णा रहती है (धनादि में नहीं), अतृप्ति स्वामी के हृदय की आराधना से रहती है (स्त्रीधन आदि में नहीं), (स्वामी के) मुख को देखने का व्यसन रहता है (मद्य-द्यूतादि का नहीं), वाचालता (दूसरों से) गुणग्रहण में रहती है (परनिन्दा में नहीं), कृपणता स्वामी के (चरण-मूल) को न छोड़ने में रहती है (अन्य कामों में नहीं)। और जो अपनी आत्मा को रखते हुए भी सभी इन्द्रियव्यापारों में पराधीन रहते हैं, जो देखते हुए अन्धे-जैसे, सुनते हुए भी बहिरे-जैसे, बोलने वाले होते भी गूँगे-जैसे, जानते हुए भी मूर्ख-जैसे, हाथ-पैर ठीकठाक होते हुए भी विकलांग-जैसे, हिजड़ों की तरह कुछ न कर सकने वाले स्वयं स्वामी के चिन्ता-रूपी दर्पण पर प्रतिबिम्ब

१. स्वात्मनः।

कृतमवधारयतु देवी।' इत्युक्त्वा मेघनादस्त्वरितकनामानं कुमारबालसेवकमाहूय तैः सह व्यसर्जयत्।

अथ सुबहुदिवसापगमे वार्तां विनोत्ताम्यन्ती चन्द्रापीडस्यैवागमनायोपयाचितं कर्तुमवन्तीनामनगरीदेवतानामवन्तिमातृणामायतनं निर्गता विलासवती 'देवि, दिष्ट्या वर्धसे, प्रसन्नास्तेवन्तिमातरः, परागता युवराजवार्ताहराः' इति सहसैव संभ्रमप्रधावितात् परिजनादुपश्रुत्यानन्दबाष्पजललुलितया जलार्द्रेन्दीवरदलस्रजेव विक्षेपदीर्घया दृष्ट्यार्चयन्तीव चिरं दृष्ट्वा ककुभो मृगाङ्गनेव परिभ्रष्टबालपोता फूत्कृत्य प्राकृतेवार्ता 'केनेदममृतं मे

अयं भृत्यलोकः परिजनः एवं स्थितो वर्तते इति शेषः। देवस्य चन्द्रापीडस्य स्थाने च देवी भवती वर्तते अस्ति, वयं भवत्या एव भृत्याः इति भावः। तत् तस्मात् आज्ञापितं भवत्या आदिष्टम् 'कश्चिच्छ्रद्धेयवचाः व्रजतु इति तत् देवी कृतं विहितम् अवधारयतु निश्चयेन जानातु'। इति उक्त्वा मेघनादः त्वरितकः इति नाम यस्य तम् कुमारस्य युवराजस्य चन्द्रापीडस्य बालश्चासौ सेवकः भृत्यश्च तम् बाल्यावस्थातः एव भृत्यत्वं गतमित्यर्थः आहूय आकार्य तैः वार्ताहरैः सह व्यसर्जयत् गन्तुमादिशत्।

अथ—अथ विसर्जनानन्तरम् सुबहूनाम् अनेकेषां दिवसानाम् अपगमे अतिक्रमे वार्तां पुत्रविषयकम् उदन्तं विना उत्ताम्यन्ती विह्वलीभवन्ती चन्द्रापीडस्य एव आगमनाय गृहे प्रत्यावर्तनाय उपयाचितम् अभीष्टसिद्ध्यनन्तरं देवताभ्यः उपहारदानसंकल्पं कर्तुम् विधातुम् अवन्ती नाम यस्याः तथाभूता या नगरी पुरी तस्याः देवतानां तदधिष्ठात्रीणां देवीनाम् अवन्ति-मातृणां 'ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा माहेन्द्री चैव वाराही चामुण्डा सप्त मातरः।' इत्युक्तानां सप्तानाम् आयतनं मन्दिरं निर्गता निर्याता विलासवती—'देवि महिषि! दिष्ट्या भाग्येन वर्धसे वृद्धिं गच्छसि, एष खलु प्रयोगः वर्धापने प्रयुज्यते अर्थात् 'देवि! वर्धापनम्, वर्धापनम्'। अवन्तिमातरः उपर्युक्ताः देव्यः ते त्वयि प्रसन्नाः सन्ति। युवराजस्य चन्द्रापीडस्य वार्ताहराः सन्देहवाहका परागताः प्रत्यावृत्ताः 'इति सहसा अकस्मात् एव संभ्रमः त्वरा तेन सहितं यथा स्यात्तथा प्रधावितात् द्रुतात् परिजनात् भृत्यवर्गात् उपश्रुत्य आकर्ण्य आनन्दस्य प्रमोदस्य यत् बाष्पजलम् अश्रुजलं तेन लुलितया कम्पितया, जलेन आर्द्रा क्लिन्ना इन्दीवराणां नीलकमलानां दलानां पत्राणां स्रक् माला इवेत्युपमायाम् तया, विक्षेपेण अस्तव्यस्ततया दीर्घया विस्तीर्णीभूतया दृष्ट्या दृशा चिरं दीर्घकालं दृष्ट्वा ककुभः दिशाः अर्चयन्ती पूजयन्ती इवेत्प्रेक्षायाम् परिभ्रष्टः यूथात् गतः बालः मूर्खः (बालोऽर्भके च मूर्खे स्यात्' इत्यमरः) पोतः शावकः यस्याः तथाभूता मृगाङ्गना मृगी इवेत्युपमायाम् फूत्कृत्य 'फू फू' इति कृत्वा प्राकृता पामरा साधारणस्त्रीति यावत् इवेत्युपमायाम् आर्ता पीडिता–'वाचः वाण्या छलेन छद्मना केन जनेन इदम् अमृतं

के समान बने रहते हैं। यहाँ बैठे ये सभी भृत्य लोग इसी प्रकार के हैं। और देव चन्द्रापीड़ के स्थान पर आप हैं, इसलिए आपने जो आज्ञा दी है, उसका निश्चय से पालन हुआ आप समझिए।' यह कहकर मेघनाद ने युवराज बाल-सेवक त्वरितक नामक को बुलाकर उन (वार्ताहरों) साथ भेज दिया।

इसके बाद बहुत सारे दिन बीत जाने पर समाचार के बिना बेचैन हुई, चन्द्रापीड़ के आने हेतु ही मनौती करने के लिए अवन्ती-नामक नगरी के देवता अवन्ति माताओं के मन्दिर में गई विलासवती 'रानीजी! बधाई बधाई, अवन्ति मातायें तुम पर रीझ गई हैं, युवराज के सन्देशवाहक दूत लौट आए हैं'—एकदम ही जल्दी-जल्दी दौड़े आए भृत्यवर्ग से यह सुनकर आनन्द के अश्रु-जल में तैरती हुई, जल से गीली बनी नीलकमलों की पंखुड़ियों की माला-जैसी, अस्त-व्यस्तता में दूर तक फैली दृष्टि द्वारा देर तक देखकर दिशाओं की अर्चना करती हुई-जैसी, (यूथ से) बिछुड़े हुए मूर्ख बाली हिरनी-सदृश फफकारे भरती, गँवार स्त्री की तरह आर्त बनी (रानी) 'वाणी के ब्याज में यह अमृत मेरे ऊपर किसने बरसाया? किसकी

वाक्छलाद् वृष्टं, कस्यानुकम्पास्मिञ्जने जाता, केन दृष्टाः, कियद्दूरे वर्तन्ते, किं वा तैः कथितं, कुशलं मे वत्सस्य' इति पृच्छन्त्येवाद्राक्षीदितस्ततो यथा[१]दर्शनं संघशः प्रधावितेन नरपतिप्रतिबद्धेन चोज्जयिनीनिवासिना जनेन 'आगतो युवराजः, कियद्दूरे भवद्भिः परित्यक्तः, दिवसेष्वेतेषु क्व वर्तते, क्व वा भवद्भिर्यात्वा दृष्टः, क्व चातिकष्टस्तेनातिवाहितो वाहनमात्रसाधनेन धाराधरागमः, तुरगपृष्ठगतस्य मन्ये वहत एवास्यापक्रान्तस्त्वरितक एतद्वेत्ति, किमनेन वेदितेनाप्येतत्कथयतु यदर्थमयं क्लेशः कृतो युवराजेन स दृष्टो वैशम्पायनः प्रत्यानीतो वा मिलितोऽस्य पत्रलेखासहितो मेघनादः, दत्तः[२] कथं कश्चिदपि संदेशो देववर्धनेन मे मित्रमेवासावद्यारभ्य राभसिकतयैव विनाशं बलाद्गतस्य बाल

सुधा मे ममोपरीत्यर्थः वृष्टं वृष्टिविषयीकृतम् ? अत्र व्याजापह्नुतिः, अस्मिन् जने मयीत्यर्थः कस्य अनुकम्पा कृपा जाता संवृत्ता ?, केन दृष्टाः विलोकिताः वार्ताहराः ? इति शेषः, ते कियद् दूरे कियति दूरस्थाने वर्तन्ते विद्यन्ते ? अथवा तैः किं कथितं भणितम् ? मे वत्सस्य चन्द्रापीडस्य कुशलं कल्याणं किम् ? इति पृच्छन्ती प्रश्नान् कुर्वन्ती…ताँल्लेखहारकान् दूरत एव अद्राक्षीत् इत्यस्ति वाक्यम्। इतस्ततः यत्र तत्र दर्शनम् अनतिक्रम्य यथादर्शनं अर्थात् यथा यथा ते वार्ताहरान् पश्यन्ति स्म तथा तथा संघशः संघ-संघ-क्रमेण दलवद्धीभूयेत्यर्थः प्रधावितेन द्रुतेन नरपतिना राज्ञा प्रतिबद्धेन सम्बद्धेन अप्रतिबद्धेन असम्बद्धेन वा राजकर्मचारिणा वा अराजकर्मचारिणा वेत्यर्थः उज्जयिन्याः निवासिना वास्तव्येन जनेन लोकैः 'आगतः युवराजः चन्द्रापीडः भवद्भिः युष्माभिः कियद्-दूरे कियद्-विप्रकर्षे परित्यक्तः मुक्तः' ? 'एतेषु दिवसेषु दिनेषु युवराजः क्व कुत्र वर्तते विद्यते ?' 'भवद्भिः यात्वा गत्वा क्व वा दृष्टः विलोकितः ?' 'तेन अतिकष्टः अतिशयेन कष्टकारकः धाराधराणां जलदानां आगमः आगमनं वर्षर्तुरिति यावत् वाहनमात्रम् अश्वमात्रं साधनं यस्य तथाभूतेन तेन युवराजेन क्व कुत्र अतिवाहितः यापितः ?' 'मन्ये तुरगस्य अश्वस्य पृष्ठे उपरि गतस्य स्थितस्य वहतः चलतः एव अस्य युवराजस्य (जलदसमयः) अतिक्रान्तः वीतः', 'त्वरितकः एतन्नामा बालसेवकः एतत् वेत्ति जानाति। एतत् वेदितेन ज्ञापितेन अपि किम् एतत् कथयतु वदतु यदर्थं यन्निमित्तं युवराजेन चन्द्रापीडेन अयं क्लेशः आयासः कृतः स वैशम्पायनः दृष्टः विलोकितः अथवा प्रत्यानीतः प्रत्यावर्त्य गृहमानीतः। अथवा पत्रलेखया सहितः मेघनादः अस्य युवराजस्य मिलितः तेन सह मिलनं जातमित्यर्थः ?' 'देववर्धनेन एतत्संज्ञकेन पुरुषविशेषेण कश्चिद् अपि संदेशः वाचिकं कथं दत्तः प्रहित इत्यर्थः' 'अद्य आरभ्य प्रभृति असौ देववर्धनः मे मित्रं सखा अस्तीति शेषः'। राभसिकः साहसिकः अविमृश्यकाकारीति यावत् तस्य भावः

मुझ पर कृपा हुई है ? किसने (दूतों को) देखा ? वे कितने दूर हैं ? अथवा उन्होंने क्या कहा है ? क्या मेरा बच्चा सकुशल है ? यह पूछती हुई दूर से ही त्वरितक सहित उन सन्देशवाहकों को देख बैठी—जो इधर-उधर झुण्डों में दौड़ी चली आ रही उज्जयिनी-निवासी सरकारी कर्मचारी और गैर-कर्मचारी जनता द्वारा अपने-अपने देखने के अनुसार 'क्या युवराज आ गए हैं ? 'आप लोगों ने उन्हें कितने दूरछोड़ा है ?' 'इतने दिनों वे कहाँ रहे ?' 'जाकर आप लोगों ने उन्हें कहाँ देखा ?' 'अश्वमात्र साधन रखे उन्होंने अतिकष्टदायक वर्षाकाल कहाँ गुजारा ? मालूम होता है कि घोड़े की पीठ पर चढ़े चलते-चलते ही उनका वर्षाकाल बीता होगा, त्वरितक यह जानता है; इसे जानने से क्या होगा ? यह कहो कि जिसके खातिर युवराज ने यह कष्ट उठाया है, उन वैशम्पायन को देखा है ? अथवा उन्हें घर वापस लाए हैं ?' 'क्या पत्रलेखा सहित मेघनाद इन्हें मिला ?' 'देववर्धन ने कोई कैसा सन्देश भेजा है ? वह आज से मेरा सखा है', 'बिना सोचे-समझे उतावलेपन में हठपूर्वक विनाश को प्राप्त

---

१. यथादर्शनसंबन्धशः। २. दत्ता।

धर्मणो वत्सस्य बिभेम्येव वार्तां पृच्छन्नपि जीवत्यसावस्य वाजी यो युवराजेन प्रसादीकृतः, प्रसीदत सादिनां प्रथमस्य पृथुवर्मणो मातुलस्य मे कथयत वार्ताम्, उत्प्रेक्षामहे महानश्ववारैरनुभूतः क्लेश इति, कुशलं महाश्वपतेरश्वसेनस्य, श्वशुरोऽसावस्माकम्, विस्मयः कृतोऽस्मत्पित्रापि यच्चिह्नकमपि भवतां हस्ते न किंचित्प्रहितम्, आहितभर एवासौ युवराजभवने दृष्टो भवद्भिर्भ्राता मे भरतसेनः, सपरिजनस्य सेनापतेर्भद्रं भद्रसेनस्य, सेवाव्यसनी सूनुर्मे कुमारवर्मा तत्र लगति, बलाधिकृतस्य का वार्तावन्तिसेनस्य रोषितस्तेनासीन्नासीरार्थं युवराजः, राजकुले कः प्रसादवित्तो वर्धमानो मान्यते वा केन वा किं लब्धमेतावद्भिर्दिवसैः, आजीवनिका बहवः खल्वभिनवसेवका जाताः, यातु तावत्सर्वंसेवान्यद्येन दृष्टः स कथयतु सर्वसेनसूनोर्वीरसेनस्य वार्तां पितर्युपरते प्रथममेव स प्रविष्टो

तत्ता तया एव बलात् हठात् विनाशम् नाशं गतस्य बालधर्मणः बालः बालोचितः धर्मः स्वभावो यस्य तथाभूतस्य वत्सस्य पुत्रस्य वार्तां प्रवृत्तिं पृच्छन् प्रश्नविषयीकुर्वन् अपि अहं बिभेमि भीतो भवामि एव'। 'अस्य वत्सस्य असौ वाजी तुरङ्गमः यः युवराजेन चन्द्रापीडेन प्रसादीकृतः अनुग्रह रूपेण प्रदत्तः जीवति प्राणिति किम्'?, 'प्रसीदत प्रसन्ना भवत् कृपां कुरुतेत्यर्थः। सादिनाम् अश्वारोहिणां प्रथमस्य आद्यस्य पृथुवर्मणः एतदभिधेयस्य मे मातुलस्य मातृ-भ्रातुः वार्ताम् वृत्तं मे मह्यं कथयत ब्रूत'। 'उत्प्रेक्षामहे संभावयामः अश्ववारैः अश्वारोहिभिः महान् विपुलः क्लेशः कष्टम् अनुभूतः भुक्तः' इति, 'महान् चासौ अश्व-पतिः अश्वसेनाया सेनानीः तस्य अश्वसेनस्य एतन्नामकस्य कुशलं कल्याणम् अस्तीति शेषः? असौ सः अस्माकं श्वसुरः पत्नीपिता अस्ति'; 'अस्माकं पित्रा जनकेन विस्मयः आश्चर्यं कृतः यत् तेन भवतां हस्ते पार्श्वे किञ्चित् किमपि चिह्नकम् लक्षणं पत्रादिमित्यर्थः न प्रहितम् प्रेपितम्', 'आहितः स्थापितः भरः भारः यस्मिन् तथाभूतः असौ मे भ्राता सहोदरः भवद्भिः युष्माभिः युवराजस्य चन्द्रापीडस्य भवने गृहे दृष्टः विलोकितः किम्', परिजनेन भृत्यवर्गेण सह वर्तमानस्य सेनापतेः भद्रसेनस्य एतन्नामकस्य भद्रं कुशलं किम्', 'सेवायाः परिचर्यायाः व्यसनम् आसक्तिः अस्यास्तीति तथोक्तः मे मम सुनुः पुत्रः कुमारवर्मा तत्र लगति सेवां करोतीत्यर्थः' 'बलस्य सैन्यस्य अधिकृतस्य अधिकारिणः अवन्तिसेनस्य का वार्ता वृत्तान्तः?' तेन नासीरम् अग्रप्रयाणम् ('नासीरः त्वग्रप्रयाणं स्यात्' इति हैमः। तदर्थं तस्य हेतोः युवराजः चन्द्रापीडः रोषितः रोषं प्रापितः': 'राजकुले राजगृहे प्रसादः प्रसन्नता युवराजस्येति शेषः तेन वित्तं धनं यस्य तथाभूतः अत एव वर्धमानः उन्नतिं प्राप्यमाणः कः मान्यते मान्योऽस्तीत्यर्थः', एतावद्भिः इयद्भिः दिवसैः दिनैः केन किं लब्धम् प्राप्तम् धनादिकमिति शेषः', आजीवनम् आजीविका एषाम् अस्तीति आजीवनिकाः आजीविकावन्तः बहवः खलु निश्चयेन अभिनवाः नूतनाः सेवकाः भृत्याः जाताः भूताः', तावत् आदौ अन्यत् अपरं सर्वम् एव यातु आस्ताम् येन दृष्टः विलोकितः स सर्वसेनस्य सूनोः

हुए, बचकाने स्वभाव के (अपने) पुत्र का समाचार पूछते भी मुझे डर ही लग रहा है; युवराज ने जो घोड़ा उसे उपहार-रूप में दिया था वह जीवित है क्या? 'प्रसन्न हूजिए; घुड़सवारों में सब से पहले मेरे मामाजी पृथुवर्मा का समाचार कहिए', 'हमारा अनुमान है कि घुड़सवारों ने बड़ा कष्ट झेला है'; 'बड़े अश्वसेनानी अश्वसेन तो राजी-प्रसन्न हैं ना? वे हमारे श्वसुर हैं', 'कितना आश्चर्य है कि हमारे पिताजी ने आप लोगों के हाथ कोई चिह्न—पत्रादि—तक नहीं भेजा' 'अपना दायित्व सँभाले ही मेरे भाई भरतसेन को आप लोगों ने युवराज-भवन में देखा था' 'भृत्यों सहित सेनापति भद्रसेन की कुशल तो है?'; 'नौकरी का शौकीन मेरा लड़का कुमारवर्मा वहीं लगा हुआ है', 'सेनाधिकारी अवन्तिसेन का क्या हाल है? आगे-आगे जाने से उन्होंने युवराज को रुष्ट कर दिया था; राजदरबार में राजकृपा द्वारा वित्त प्राप्त किये और ऊँचे पद पर चढ़ाये किसकी मान्यता हो रही है?' 'इतने दिनों में किसे क्या मिला?' नौकरी पेशे में बहुत नये सेवक हो गए हैं; 'यह सब हो, जैसा हो, जिसने देखा, वह सर्वसेन

यात्रां मात्रास्य दुःखान्तरितप्रत्यग्रपतिमरणशोकादशनक्रियैव परित्यक्ता न विद्म एवं कथं सा जीवति, इत्येतानि चान्यानि च प्रतिपदं पृच्छ्यमानानप्यदत्तवचसो नासाग्रस्थित-मन्युगर्भदृष्टीनाविष्टानिव, अध्वश्रमनिःसहाङ्गानपि पदाकृष्टिसंभावितोद्यमायासितया गत्या गच्छतश्च, अतिमलिनपटच्चराच्छादितान्, असंस्कारमलिनकायान्, अनेकधैवोद्-बद्धाध्वधूलिपरुषमूर्धजान्ध्वजानिवाध्वक्लेशस्याश्रयानिव श्रमस्य पदन्यासानिव दौर्मनस्यस्यावासानिव प्रवासस्य संदर्भानिव सर्वदुःखानां दूरत एव त्वरितकसमेतांस्तॉल्लेख-हारकान् आलोक्य तस्मिन्नेव मातृगृहाङ्गणे स्थित्वा तेषामाह्वानायादिदेश।

पुत्रस्य वीरसेनस्य वार्तां वृत्तान्तं कथयतु भणतु, पितरि जनके उपरते मृते सति स प्रथमं प्रथमवारम् एव यात्रां प्रविष्टः यात्रां कृतवानित्यर्थः, अस्य वीरसेनस्य मात्रा जनन्या दुःखेन पुत्रयात्रागमनकृत-शोकेन अन्तरितः व्यवहितः प्रत्यग्रः सद्यस्कः यः पत्युः भर्तुः मरणस्य मृत्योः शोकः दुःखम् तस्मात् कारणात् अशनस्य भोजनस्य क्रिया अनुष्ठानम् एव परित्यक्ता उज्झिता, न विद्मः जानीमः, सा कथं जीवति प्राणिति' इति एतानि अन्यानि इतराणि च वृत्तानीति शेषः प्रतिपदं पदे-पदे पृच्छ्यमानान् प्रश्नविषयीक्रियमाणान् अपि न दत्तं वचः उत्तरं यैः तथाभूतान्, **नासा०**— नासायाः घ्राणस्य अग्रे अग्रभागे स्थिता लग्ना च मन्युः दैन्यम् ('मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः) गर्भे मध्ये यस्याः तथाभूता च दृष्टिः दृक् येषां तान्, आविष्टान् भूतग्रस्तान् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अध्वनः मार्गस्य यः श्रमः क्लमः तेन निःसहानि सोढुमशक्यानि, अशक्तानि शिथिलानीति यावत् येषां तथाभूतान् अपि पदानां चरणानाम् या आकृष्टिः आकर्षणं तेन संभावितः अनुमितः य उद्यमः चलनोद्योगः तेन आयासितया आयासं प्राप्तया गत्या गच्छतः चलतश्च, अतिशयेन मलिनानि मालिन्यं गतानि यानि पटच्चराणि जीर्णवस्त्राणि ('पटच्चरं जीर्णवस्त्रम्' इत्यमरः) तैः आच्छादितान् आवृतान्, असंस्कारेण स्नानमार्जनादिसंस्काराभावेन मलिनः मलयुक्तः कायः शरीरं येषां तान्, **अनेक०**—अनेकधा अनेकप्रकारैः एव उद्बद्धाः उपरि बद्धाः अध्वनः मार्गस्य धूल्या रजसा परुषाः कठोराः मूर्धजाः केशाः येषां तान्, अध्वनः क्लेशस्य कष्टस्य ध्वजान् चिह्नानि इव, श्रमस्य क्लमस्य आश्रयान् आधारान् इव, दौर्मनस्यस्य मानसिक्याः अप्रसन्नतायाः विषादस्येत्यर्थः पदन्यासान् चरणप्रक्षेपान् इव प्रवासस्य परदेशगमनस्य आवासान् निवासस्थानानि इव, सर्वाणि च तानि दुःखानि तेषां संदर्भान् समूहान् इवेत्युपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षालंकारः त्वरितकेन बालसेवकेन सहितान् तान् लेखहारकान् वार्ताहरान् पत्रवाहकानिति यावत् दूरतः दूरात् एव (विलासवती) अद्राक्षीत् अपश्यत्। आलोक्य तान् दृष्ट्वा तस्मिन् एव मातृगृहस्य मातृमन्दिरस्य अङ्गणे प्राङ्गणे स्थित्वा स्थितिं विधाय तेषां वार्ताहराणाम् आह्वानाय आकारणाय आदिदेश आज्ञापितवती, सेवकानिति शेषः।

के पुत्र वीरसेन की खबर दे; पिता के मरने पर उसकी पहले-पहल यात्रा है। (पुत्र के) दुख से पति के मरने के ताजा-ताजा शोक को भुलाए, उसने खाना छोड़ रखा है, पता नहीं इस तरह वह कैसे जी रही है' ये तथा अन्यान्य बातें पूछे जाते हुए भी कुछ भी जवाब न दिये, दैन्य-भरी दृष्टि नाक के अग्रभाग पर गाड़े, भुतहे-जैसे, मार्ग की थकावट के कारण ढीलेवाले अङ्गोंवाले होते हुए भी पैरों के घसीटने से मालूम हो रहे (उनके) प्रयत्न से कष्ट-भरी गति से चले जा रहे, बड़े मैले फटे-पुराने कपड़ों से ढके, (स्नानादि) संस्कार के न होने के कारण शरीर से मैले बने, अनेक तरह से ऊपर बँधे और रास्ते की धूल से कठोर बने बालों को रखे, मार्ग की थकान के चिह्न-जैसे, थकान के आश्रय-जैसे, विषाद के पग-जैसे, प्रवास के आवास-गृह-जैसे, सब दुःखों के ढेर-जैसे लग रहे थे। उन्हें देखकर रानी ने उसी मातृ-मन्दिर के आँगन में बैठ उनके बुलाने हेतु आज्ञा दी।

अनन्तरं चातर्कितापतितदर्शनोत्पादितद्विगुणदुःखावेगान्मुषितानिवोन्मुक्तानिवेन्द्रियैर्दारुमयानिव शून्यशरीरान्निर्जीवितानिवोपसर्पतः पुरस्तात्पतन्तीव बाष्पान्धा साध्वसस्खलितचरणकमला कतिचिद्गत्वा पदानि गद्गदतरमुच्चैस्कृतप्रणामानेवावादीत्। 'भद्राः, कथयताशु वत्सस्य मे वार्तामात्रम्। इदं त्वन्यथैव किमपि कथयति मे हृदयम्। अप्रत्ययमेवाश्रयते। वत्सो दृष्टो वा न भवद्भिः।' इत्येवं पृष्टास्तु ते सहसागतबाष्पवेगमवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गाः प्रणामापदेशेनोत्सृज्य कृच्छ्रादिवाभिमुखमुन्नमितवदना व्यज्ञापयन्। 'देवि, दृष्टोऽस्माभिरच्छोदसरस्तीरे युवराजः। शेषमेष त्वरितको निवेदयिष्यति।' इत्यभिवदत एव तानुद्बाष्पमुखी प्रत्युवाच। 'किमपरमयं तपस्वी निवेदयिष्यति। दूरतः प्रभृत्यपसृतप्रहर्षेणैवोपसर्पणेन प्रतिलेखमालिकाशून्यैः शिरोभिरविषण्ण-

---

अनन्तरं०—अतर्कितम् अचिन्तितं यथा स्यात्तथा अकस्मादिति यावत् आपतितं संजातं यत् दर्शनं विलासवत्याः अवलोकनं तेन उत्पादितं जनितं यत् द्विगुणं द्वाभ्यां गुणितं दुःखं तस्य आवेग रयः येषां तान् मुषितान् चोरैः लुठितान् इव इन्द्रियैः करणैः उन्मुक्तान् परित्यक्तान् इव, दारु काष्ठं तन्मयान् तद्रूपान् इव, शून्यं रिक्तं शरीरं येषां तान्, निर्जीवितान् निष्प्राणान् इवेत्युपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा पुरस्तात् अग्रतः उपसर्पतः उपगच्छतः, बाष्पेण अश्रुभिः अन्धा विगतेक्षणा, साध्वसेन भयेन स्खलितौ चरणौ पादौ कमले पद्मे इवेति लुप्तोपमा यस्याः तथाभूता विलासवती कतिचित् कानिचित् पदानि पादप्रक्षेपान् गत्वा अतिशयेन गद्गदं स्खलिताक्षरं यथा स्यात्तथा ऊचैः तारस्वरेण न कृतः प्रणामः नमस्कारः यैः तथाभूतान् एव अवादीत् अब्रवीत्—'भद्राः! सज्जनाः! मे मम वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य वार्ता एव वार्तामात्रम् प्रवृत्तिमात्रं कुशलमिति यावत् आशु शीघ्रं कथयत ब्रूत। मे मम हृदयम् तु इदं वार्तामात्रं किमपि अन्यथा अन्येनैव प्रकारेण विपरीततयेत्यर्थः कथयति ब्रूते। अप्रत्ययम् अविश्वासम् एव न आश्रयते जुषते मे हृदयम् इत्यनुवर्तते। भवद्भिः युष्माभिः वत्सः चन्द्रापीडः दृष्टः विलोकितः? न वा दृष्टः?' इति एवं पृष्टाः अनुयुक्ताः ते वार्ताहराः सहसा एकपदे आगतं प्रवृत्तं बाष्पस्य अश्रूणां वेगं रयम् अवन्याः पृथिव्याः तले पृष्ठे निवेशितं स्थापितम् उत्तमाङ्गं शिरः यैः तथाभूताः प्रणामस्य नमनस्य अपदेशेन व्याजेन उत्सृज्य विमुच्य कृच्छ्रात् कष्टात् इव अभिमुखं यथा स्यात्तथा उन्नमितम् उच्चैः कृतं वदनं यैः तथाभूताः सन्तः व्यज्ञापयन्—"देवि, अस्माभिः अच्छोदसरसः अच्छोदसरोवरस्य तीरे तटे युवराजः चन्द्रापीडः दृष्टः विलोकितः। शेषम् अवशिष्टम् वृत्तम् एष त्वरितकः निवेदयिष्यति विज्ञापयिष्यति' इति अभिवदतः कथयतः एव तान् वार्ताहरान् उद्बाष्पम् उद्गतबाष्पम् उदश्रु इति यावत् वदनम् आननं यस्याः सा देवी प्रत्युवाच प्रत्युक्तवती—'अयम् तपस्वी वराकः त्वरितकः किम् अपरम् अन्यत् निवेदयिष्यति विज्ञापयिष्यति?' दूरतः दूरात् प्रभृति आरभ्य अपसृतः अपगतः हर्षः

तदनन्तर अकस्मात् हो पड़े (रानी के) दर्शन से उमड़े दुगुने दुखावेग वाले, लुटे हुए, जैसे, इन्द्रियों द्वारा परित्यक्त-जैसे, सूने शरीर और विना प्राणों के-जैसे, आगे-आगे आ रहे, ऊंचे स्वर से प्रणाम न किये उन्हें आँसुओं से अन्धी बनी, भय के मारे कमल जैसे चरणों में लड़खड़ाती रानी कुछ पग चलकर टूटे-फूटे अक्षरों में बोली—'भले लोगो! मेरे पुत्र का केवल (कुशल-) समाचार शीघ्र कहो। यह मेरा हृदय तो कुछ और ही कह रहा है। इसे विश्वास ही नहीं आ रहा है। आप लोगों ने बच्चे को देखा है? या नहीं?' यह पूछे जाने पर वे एकदम उमड़ पड़े अश्रु-वेग को प्रणाम करने के बहाने जमीन पर सिर टेके गिराकर मुश्किल से सिर उठाये, सामने होकर बोले—'रानी जी! युवराज को हमने अच्छोद सरोवर के तट पर देखा है। शेष यह त्वरितक निवेदन करेगा।' यह कहते-कहते ही उन्हें मुख से अश्रुपूर्ण हुई बोली—'अन्य बात यह वेचारा (त्वरितक) क्या निवेदन करेगा। जो कहना था, वह आप लोगों ने ही दूर से लेकर हर्ष-रहित आगमन से, उत्तरपत्र-माला से रहित सिरों से, विषाद-भरे दीन मुखों से,

दीनैराननैः प्रयत्नसंरक्षिताश्रुमोक्षदुःखिताभ्यां लोचनाभ्यां सम्मुखसमक्षमधारणेन च दृष्टेर्यदावेदितव्यं तद्भवद्भिरेवावेदितम्। हा वत्स जगदेकचन्द्र चन्द्रापीड चन्द्रानन चन्द्रशीतलप्रकृते चन्द्राभिरामगुण लोचनानन्दभूत किं भूतं ते येन नागतोसि। तात चन्द्रापीड पीडिता ब्रवीमि न कोपादुपालभमाना। न युक्तमेतत्तव 'अम्ब न परिलम्बं मनागपि करोमि' इति तथा मे पुरः प्रतिज्ञायान्यत्र क्वाप्यवस्थातुम्। वत्स गच्छत एव ते मयास्य हतहृदयस्य शङ्कयैव ज्ञातं दुष्करं मे वत्सस्य पुनर्मुखावलोकनमिति। बलाद्गतोसि। किं करोमि। को वात्र दोषो वत्सस्य। मन्दभाग्याया ममैवैतान्यपुण्यानां विलसितानि। अवन्त्यपुण्यवत्योपि लोके न पुनर्मया सदृशी पापकारिणी। यस्यास्त्वमेक एवमकाण्ड एवाच्छिद्य क्वापि नीतोसि। विप्रलब्धास्मि दग्धवेधसा। वत्स सुदूरस्यापि

मोदः यस्मात् तथाभूतेन माम् प्रति भवताम् उपसर्पणेन उपगमनेन, प्रतिलेखानां प्रत्युत्तरपत्राणाम् माला एव मालिका तया शून्यैः रहितैः शिरोभिः शीर्षैः, (प्राचीनकाले आज्ञापत्राणि सन्देशपत्राणि वा वस्त्रेण आवृत्य माला-रूपेण शिरसा धार्यन्ते उह्यन्ते स्म च।) आ समन्तात् विषण्णैः विषादपूर्णैः दीनैः दैन्यभरितैः च आननैः मुखैः, प्रयत्नेन प्रयासेन संरक्षितः निरुद्ध इत्यर्थः यः अश्रूणां मोक्षः पातः तेन दुःखिताभ्यां दुःखं प्राप्ताभ्यां लोचनाभ्यां नेत्राभ्याम्, मम मुखस्य आननस्य समक्षम् अग्रे इत्यर्थः दृष्टेः दृशः अधारणेन अन्यसनेन यत् आवेदितव्यं निवेदितव्यं तत् भवद्भिः युष्माभिः एव आवेदितम् निवेदितम्। हा इति शोके वत्स ! पुत्र ! जगतः संसारस्य एकः अद्वितीयः चन्द्रः तत्सम्बुद्धौ, चन्द्रवत् आननं मुखं यस्य तत्सम्बुद्धौ, चन्द्रवत् शीतला शिशिरा प्रकृतिः स्वभावः यस्य तत्सम्बुद्धौ, चन्द्रवत् अभिरामाः रमणीयाः गुणाः यस्य तत्सबुद्धौ, लोचनानां चक्षुषाम् आनन्दभूतः आनन्दरूपः तत्सम्बुद्धौ, ते तव किं भूतं जातं येन कारणेन त्वं न आगतः असि। तात प्रिय ! चन्द्रापीड ! पीडिता दुःखिता सती ब्रवीमि कथयामि न कोपात् क्रोधात् उपालभमाना उपालम्भं कुर्वाणा। 'अम्ब मातः ! परिलम्बं विलम्बम् मनाक् ईषत् अपि न करोमि' इति तथा तेन प्रकारेण मे मम पुरः समक्षं प्रतिज्ञाय प्रतिज्ञां कृत्वा क्व कुत्र अपि अन्यत्र अन्यस्थाने अवस्थातुम् अवस्थानं कर्तुम् एतत् तव न युक्तं नोचितम्। वत्स पुत्र ! गच्छतः व्रजतः एव ते तव मया अस्य हतं दग्धं हृदयं तस्य हृदयहतकस्य शङ्कया आशङ्कया एव ज्ञातं विदितं यत् मे मम वत्सस्य पुत्रस्य तवेत्यर्थः पुनः द्वितीयवारं मुखस्य आननस्य अवलोकनं दर्शनं दुष्करं कठिनम् इति। बलात् हठात् अनिच्छन् अपीत्यर्थः गतः यातः असि। किं करोमि विदधामि ? अत्र वत्सस्य पुत्रस्य कः दोषः अपराधः। मन्दं भाग्यं यस्याः तथाभूतायाः मम एव अपुण्यानां पापानाम् एतानि इमानि विलसितानि विलासाः क्रीडितानीति यावत् सन्तीति शेषः। अपुण्यम् पापम् आसाम् अस्तीति तथोक्ताः अपि लोके जगति भवन्ति जायन्ते पुनः किन्तु मया सदृशी तुल्या पापकारिणी पापिनी न यस्याः त्वम् एव एकः केवलः पुत्रः इति शेषः, एवम् अकाण्डे असमये एव आच्छिद्य बलात् गृहीत्वा क्वापि कुत्रापि नीतः प्रापितः असि। दग्धः हतश्चासौ वेधाः विधाता

प्रयत्न-पूर्वक रोके हुए अश्रुपात से दुःखी बने आँखों से तथा मेरे मुख के सामने दृष्टि न करने से कह दिया है। हाय ! जगत के एकमात्र चन्द्र, चन्द्रापीड, चन्द्र-से मुख वाले, चन्द्र से शीतल स्वभाव वाले, चन्द्र-से अभिराम गुणों वाले, आँखों के आनन्द-रूप, तुम्हें क्या हो गया जो नहीं आये ? प्यारे चन्द्रापीड, मैं दुखी हुई बोल रही हूँ न कि क्रोध में उलाहना देती हुई। 'माता जी, मैं जरा भी विलम्ब नहीं करूँगा' यह मेरे आगे प्रतिज्ञा करके तुम्हारा कहीं भी दूसरी जगह ठहरना ठीक नहीं। बेटा, जाते हुए ही अपने इस मुये हृदय की शंका से ही मुझे पता चल गया था कि बच्चे का फिर मुख देखना मेरे लिये कठिन हैं। तुम जबरन गये हो। क्या करूँ ? अथवा इसमें बच्चे का क्या दोष। मुझ मन्दभागिनी के ही पापों के खेल हैं, जगत में पापिनियाँ भी होती तो हैं, किन्तु मेरी-जैसी पापिनी नहीं, जिसका एकमात्र पुत्र तू असमय में ही (मुझसे)

पादयोः पतामि ते। निवर्तस्वैकवारम्। अम्बेत्यालपतस्ते वदनमालोकयितुमुत्कण्ठितं मे हृदयम्। जात दुर्लभक न जानाम्येव किमाजन्मनः प्रभृति शैशवं ते स्मृत्वात्मानमनुशोचामि। उत यौवनाभोगकारिणीं वर्तमानां रूपशोभाम्। आहोस्विदवष्टम्भधीरामुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्यागामिनीं प्रभुताम्। इत्येवं विलपन्तीं मामवलोक्य हृदयस्थितो मैवं कृथाश्चेतसि पुत्र यथा विनापि मया जीवत्येव विलासवती। जात त्वया विना जीवन्त्यापि पितुरेवं ते कथं मया वदनं दर्शितम्। न वेद्मि किमपि प्रियतया ते किमाकृतेः प्रत्ययादुत स्त्रीजनसहभुवो मूढभावादेवेत्यद्यापि न श्रद्दधाति मे हृदयमनिष्टं ते। येन न सहस्रधा स्फुटति। स्फुटीकर्तुं च वार्तां भीता ते त्वरितकोपनीतामेव नेच्छामि। वरमनाकर्ण्यैवाश्रवणीयमुपरतास्मीति। तात किं ब्रवीषि यथा किमनेन सुतस्नेहानुचितेन लोकलज्जाकरेण

तेन विप्रलब्धा वञ्चिता अस्मि। वत्स पुत्र! सुदूरस्य अतिदूरं गतस्य अपि ते पादयोः चरणयोः चरणयोः पतामि पतनं करोमि। एकः वारः अवसरः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा इति एकवारं निवर्तस्व प्रत्यागच्छ। 'अम्ब मात.' इति आलपतः वदतः तं तव वदनं मुखम् आलोकयितुं द्रष्टुं मे मम हृदयं स्वान्तम् उत्कण्ठितम् उत्सुकं वर्तते इति शेषः। दुर्लभः दुष्प्रापः एव दुर्लभकः तत्सम्बुद्धौ जात पुत्र, न जानामि वेद्मि एव किम् आ जन्मनः जन्मतः प्रभृति (अत्र प्रभृतिपदम् अधिकम्) ते तव शैशवं शैशवावस्थां स्मृत्वा स्मृतिविषयीकृत्य आत्मानम् अनुशोचामि आत्मनि शोकं करोमि पश्चात्तापमिति यावत्। उत अथवा यौवनस्य तारुण्यस्य आभोगं विस्तारं करोतीत्यवंशीलां वर्तमानां विद्यमानां तव रूपस्य सौन्दर्यस्य शोभां सुषमां स्मृत्वा आत्मानमनुशोचामीत्यनुवर्तते। आहोस्वित् अथवा अवष्टम्भः दृढ-निश्चयः तेन धीरां स्थिराम् आगामिनीं भविष्यत्कालीनां ते प्रभुतां प्रभुसत्ताम् उत्प्रेक्ष्य उत्प्रेक्ष्य संभाव्य संभाव्य विमृश्य विमृश्येति यावत् आत्मानम् अनुशोचामीति अनुवर्तते'। इति एवम् एतेन प्रकारेण विलपन्तीं विलापं कुर्वाणां माम् अवलोक्य दृष्ट्वा हृदये स्थितः कृतावस्थानः त्वम् हे पुत्र, चेतसि मनसि एवं मा कृथाः कुरु विचारयेत्यर्थः यथा—'मया चन्द्रापीडेन विना अपि विलासवती जीवति प्राणिति एव'। जात पुत्र! त्वया विना जीवन्त्या म्रियमाणया मया ते पितुः जनकस्य एवं कथं वदनं मुखं दर्शितं द्रष्टुं प्रेरितं स्यात्। न वेद्मि जाने किमपि मे मनसः संशयारूढत्वादिति भावः ते प्रियतया स्नेहेन किं वा ते आकृतेः आकारस्य प्रत्ययात् विश्वासात् उत स्त्रीजने स्त्रीजातौ सहभुवात् सहजात् स्वाभाविकादिति यावत् मूढभावात् मूर्खत्वात् एव इति अद्य अपि सम्प्रति अपि मे मम हृदयं ते तव अनिष्टम् अशुभं न श्रद्दधाति श्वसिति। येन कारणेन सहस्रखण्डेषु न स्फुटति विदीर्यते, अहं भीता सती त्वरितकेन बाल-सेवकेन उपनीताम् उपाहृतां ते तव वार्तां वृत्तान्तं स्फुटीकर्तुं प्रकटयितुं न इच्छामि अभिलषामि। अश्रवणीयं श्रोतुमनर्हम् तत्सम्बन्धिवृत्तमिति शेषः अहम् उपरता मृता अस्मि इति वरम् श्रेष्ठम्। तात प्रिय, किं ब्रवीसि कथयसि यथा यत् 'अनेन एतेन सुते पुत्रे स्नेहः प्रीतिः तस्य

छीनकर कहीं ले जाया गया है। जले विधाता ने मुझे ठग लिया है। वेटा, दूर होते हुए भी तेरे मैं पाँव पड़ती हूँ। एक बार लौट कर आ जा। 'माँ' यों पुकारते हुए तेरे मुख को देखने हेतु मेरा हृदय उत्सुक हो रहा है। हे दुर्लभ पुत्र! मैं नहीं जानती कि क्या जन्म से लेकर तेरे वचपन को याद करके अथवा यौवन का विस्तार करने वाली तेरी वर्तमान सौन्दर्य-सुषमा को याद करके अथवा दृढ निश्चय से स्थिर वनी तेरी भावी प्रभु-सत्ता को सोच-सोच करके मैं शोक कर रही हूँ। इस तरह विलाप करती हुई मुझे देखकर पुत्र! हृदय में बैठा तू यह खयाल मत करना कि 'मेरे बिना विलासवती जी ही रही है। वेटा, तेरे बिना जीवित रहती भी तेरे पिता को किस तरह मुँह दिखाऊँ। मैं नहीं समझ रही हूँ कि या तो तेरे स्नेह के कारण, या तेरे चेहरे के विश्वास के कारण या फिर स्त्रीजन-सुलभ मूर्खता के कारण मेरे हृदय को अब तक तेरे अनिष्ट का विश्वास ही नहीं हो रहा है, जिससे यह सहस्रों खण्डों में नहीं फूट रहा है! डरी हुई मैं त्वरित द्वारा लाये हुए तेरे समाचार को स्पष्ट हुआ नहीं चाहती। न सुनने योग्य वात को न

वैक्लव्येनेति। एषा स्थितास्मि ते वत्स वचनात्तूष्णीम्। न रोदिमि।' इत्यभिदधानैवा-सन्नसखीजनावलम्बितशरीरा मोहमगात्।

अथानेकसहस्रसंख्येन प्रधावता विलासवतीपरिजनेनावेदिते तस्मिन्वृत्तान्ते मन्दरास्फालनोद्वेल इव महाम्भोधिरुद्भ्रान्तचेताः ससंभ्रममुत्थायार्यशुकनासद्वितीयो यामावस्थितां प्रजविनीं करेणुकामारुह्य रयादापिबन्निव पुरो राजमार्गं किं किमेतदित्यु-न्मुक्तार्तनादकलकलेन सर्वतः प्रधावता जनपदौघेनाकर्षन्निवोद्वासयन्निव पृष्ठतः सगो-पुराट्टालकप्राकारभवनतोरणामुज्जयिनीं निर्जगाम नरपतिः। उपेत्य चावन्तिमातृगृहमव-तीर्य तिर्यग्विषण्णोद्बाष्पवदनेन मलयजजलैश्च सिञ्चता कदलीदलैश्च वीजयता जलार्द्रैश्च

अनुचितेन अयोग्येन, लोके जगति लज्जां करोति तथोक्तेन वैक्लव्येन विह्वलत्वेन' इति। 'वत्स पुत्र, ते वचनात् कथनात् एषा अहं तूष्णीं स्थिता अस्मि मौनम् आकलयामि। न रोदिमि क्रन्दामि' इति अभिदधाना कथयन्ती एव विलासवती आसन्नः समीपवर्ती यः सखीजनः सखीलोकः तेन अवलम्बितं धृतं शरीरं देहः यस्याः तथाभूता मोहं मूर्छाम् अगात् अगमत्।

अथा०—अथ राज्ञ्याः मूर्छागमानन्तरम् अनेकानि सहस्राणि संख्या यस्य तेन प्रधानता प्रद्रवता विलासवत्याः परिजनेन भृत्यवर्गेण तस्मिन् वृत्तान्ते देवीमूर्छागमोदन्ते आवेदिते सूचिते मन्दरेण मन्दराचलेन यः आस्फालः मन्थाः तेन उत् उद्गता वेला तरङ्गराशिः यस्मात् तथाभूतः महाम्भोधिः महासागरः इवेत्युपमायाम् उद्भ्रान्तम् विचलितम् चेतः चित्तं यस्य सः संभ्रमः त्वरा तेन सहितं यथा स्यात्तथा उत्थाय उत्थितो भूत्वा आर्यशुकनासः द्वितीयः सहायः इत्यर्थः यस्य तथा-भूतः नरपतिराजा तारापीडः यामे प्रहरे अवस्थिताम् वर्तमानां करेणुकाम् हस्तिनीम् आरुह्य आरूढो भूत्वा रयात् वेगात् पुरः अग्रे राजमार्गं राजपथम् आपिबन् आपानविषयीकुर्वन् इवेत्यु-त्प्रेक्षायाम् किं किम् एतत् जातमिति शेषः? इति उन्मुक्तः त्यक्तः कृत इति यावत् यः आर्तः करुणः नादः शब्दः तस्य कलकलेन कोलाहलेन सर्वतः सर्वदिग्भ्यः प्रधावता प्रद्रवता जनपदानां जनानाम् ('भवेज्जनपदो देशे जने जनपदेऽपि च' इति विश्वः) ओघेन समूहेन पृष्ठतः पृष्ठ-भागात् आकर्षन् इव गोपुरं नगरद्वारं च अट्टालकः अट्टं च प्राकारः नगरबहिर्भित्तिश्च भवनानि गृहाणि च तोरणानि गृहाणाम् अर्धचन्द्राकाराणि द्वाराणि चेति तैः सह वर्तमानाम् उज्जयिनीम् उत् उत्थितः वासः यस्याः तथाभूतां करोतीति उद्वासयन् शून्यीकारयन् इवेत्युभयत्रोत्प्रेक्षा निर्जगाम निरगच्छत्। अवन्तिमातृगृहम् अवन्तिमातृमन्दिरम् च उपेत्य उपगम्य तिर्यक् वक्रं यथा स्यात् तथा अवतीर्य करेणुकातः अवरोहणं कृत्वा विषण्णं विषाद-पूर्णम् उद्बाष्पम् उदश्रु च वदनं मुखं यस्य तथाभूतेन, मलयजस्य चन्दनस्य जलैः वारिभिः च सिञ्चता सेचनं कुर्वता च,

---

सुनकर ही मैं मर जाऊँ तो अच्छा है। तात, क्या तुम यह बोल रहे हो कि 'पुत्रस्नेह के अनुचित लोकलज्जाकारक ऐसी विह्वलता से क्या!' लो बेटा, अब मैं तुम्हारे बोलने से चुप हो गई हूँ। नहीं रोती' यह कहती ही रानी, शरीर से समीपवर्ती सखियों द्वारा पकड़ी, मूर्छा खा बैठी।

तदनन्तर अनेक हजारों की संख्या में दौड़े चले आ रहे विलासवती के भृत्य-गणों द्वारा इस वृत्तान्त की सूचना दिये जाने पर, मन्दराचल द्वारा मन्थन किये जाने के कारण ज्वार-भाटे से भरे महासमुद्र की तरह मन में क्षुब्ध हुआ, शीघ्र खड़ा हो, आर्यशुकनाश को साथ लिये, पहरे पर खड़ी तेज चलने वाली हथिनी पर सवार होकर, तेज चाल से सामने के राजपथ को पीता हुआ-जैसा 'यह क्या हुआ, क्या हुआ' इस तरह मारी हुई करुणा-भरी चीखों का कोला-हल मचाये, चारों ओर से दौड़े चले आ रहे लोगों की भीड़ को अपने पीछे खींचता हुआ-जैसा, नगर-द्वार, अटारियाँ, परकोटे, भवनों और तोरणों सहित उज्जयिनी को खाली करवाता हुआ-जैसा राजा निकल पड़ा। अवन्ति-मातृ-मन्दिर के पास पहुँच कर, (हथिनी से) तिरछे उतर कर राजा ने विषाद और अश्रु-भरे मुखों वाले, चन्दन-जल से सींचते हुये, केले के पत्तों से हवा

पाणिपल्लवैः संवाहनं कुर्वता कथं कथमपि चेतनामापाद्यमानां परिजनेनार्धोन्मीलितलोचन-युगामुष्णकालकमलिनीमिव विलासवतीमपश्यत्। दृष्ट्वा च सहसा प्रवृत्तेन नेत्राम्भसा मूर्च्छावशेषापनयनायेव सिञ्चन्समुपविश्य पार्श्वे स्पर्शामृतवर्षिणा करेण ललाटे चक्षुषि कपोलयोरुरसि बाह्वोश्च स्पृशञ्छनैः शनैर्बाष्पगद्गदमवादीत्। 'देवि, यदि सत्यमेवान्यादृशं किमपि वत्सस्य चन्द्रापीडस्य ततो न जीव्यत एव। किमर्थमयमात्मा वत्सस्य कृते सकललोकसाधारणेनामुना वैक्लव्योपगमेन तुच्छतां नीयते। इयन्ति शुभान्युपात्तानि कर्माणि। किमपरं क्रियते। नाधिकस्य भाजनं सुखस्य वयम्। अनुपात्तं हि हृदयताडन-मपि कुर्वद्भिर्न लभ्यत एवात्रात्मेच्छया। विधिर्नामापरः कोप्यत्रास्ते। यत्तस्मै रोचते तत्करोति। नासौ कस्यचिदप्यायत्तः। एवं च पराधीनवृत्तौ रूर्वस्मिन्न किं वास्माभि-

---

कदल्याः रम्भायाः दलैः पत्रैः च वीजयता वीजनं कुर्वता, जलेन आर्द्रैः क्लिन्नैः पाणिभिः करैः पल्लवैः किसलयैः इवेति लुप्तोपमा, संवाहनम् शरीरमर्दनं कुर्वता परिजनेन भृत्यवर्गेण कथं कथमपि कृच्छ्रेण चेतनां संज्ञाम् आपाद्यमानां प्राप्यमाणाम् अर्धं यथा स्यात् तथा उन्मीलितम् उद्घाटितं लोचनयोः नेत्रयोः युगं युगलं यया तथाभूता, उष्णकालस्य ग्रीष्मसमयस्य कमलिनीं पद्मिनीम् इवेत्युपमायाम् विलासवतीम् अपश्यत् दृष्टवान् राजेति शेषः। दृष्ट्वा विलोक्य च ताम् सहसा सपदि प्रवृत्ति प्रादुर्भूतेन नेत्रयोः अम्भसा जलेन अश्रुणेति यावत् मूर्छायाः अवशेषः अवशिष्टभागः तस्य अपनयनाय दूरीकरणाय इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सिञ्चन् सेकं कुर्वन् पार्श्वे समीपे देव्याः इति शेषः समुपविश्य निषद्य स्पर्शः एव अमृतम् (रूपकम्) वर्षतीत्येवंशीलेन करेण हस्तेन ललाटे भाले, चक्षुषि नेत्रे कपोलयोः गण्डस्थलयोः उरसि वक्षसि बाह्वोः भुजयोश्च स्पृशन् स्पर्शविषयीकुर्वन्, शनैः शनैः मंदं-मंदं वाष्पेण अश्रुणा गद्गदम् अस्पष्टा-क्षरं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवादीत् अवदत् राजेति शेषः। देवि—यदि चेत् वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य (सम्बन्धे) किमपि अन्यादृशं विपरीतमित्यर्थः सत्यं यथार्थम् एव अस्तीति शेष, ततः तर्हि न जीव्यते प्राणाः धार्यन्ते एव किमर्थं कथं वत्सस्य पुत्रस्य कृते निमित्ते इत्यर्थः सकलाश्च ते लोकाः जनाः तेषां साधारणेन सदृशेन प्राकृतजनैः अनुभूयमानेनेत्यर्थः, अमुना वैक्लव्यस्य व्याकुलतायाः उपगमनेन प्राप्त्या अयम् आत्मा अन्तर्जीवः तुच्छतां लघुतां नीयते प्राप्यते अर्थात् नीचजनसेवितोऽयं वैक्लव्यपथः यत्र प्रवृत्ताऽसि। इयन्ति एतावन्ति शुभानि साधूनि कर्माणि उपात्तानि अर्जितानीत्यर्थः। अपरम् अन्यत् किं क्रियते विधीयते। अधिकस्य सुखस्य भाजनं पात्रं न स्मः। हि यतः अनुपात्तम् अनर्जितं कर्म हृदयस्य वक्षसः ताडनम् आघातं कुर्वाद्भिः विदधद्भिः अपि अस्माभिः आत्मेच्छया स्वेच्छया न लभ्यते न प्राप्यते एव। अत्र अस्मिन् संसारे विधिः विधाता नामेति निश्चये अथवा विधिनामकः अपरः अन्य कोऽपि अनिर्वचनीयः आस्ते तिष्ठति। यत् तस्मै विधये रोचते स्वदते तत् करोति विधत्ते। असौ विधिः कस्यचित् अपि

करते हुए और जल से गीले बने कर-किसलयों से हाथ-पैर दबाते जा रहे परिजन द्वारा मुश्किल से होश में लाई जा रही, अध-खुली आँखों वाली ग्रीष्मकाल की कमलिनी-जैसी विलासवती देखी। और देखकर एकाएक उमड़ पड़े अश्रु-जल से बचीखुची मूर्छा को दूर करने हेतु जैसे खींचता हुआ राजा पास बैठकर स्पर्श से अमृत बरासने वाले हाथ द्वारा माथे, आँखों, कपोलों, छाती और भुजाओं को छूता हुआ धीरे-धीरे आँसुओं से लड़खड़ाती वाणी में बोला—'देवी! पुत्र चन्द्रापीड़ के सम्बन्ध में कुछ और ही तरह की बात यदि सत्य है, तो हमसे जीया ही नहीं जायगा। पुत्र के लिए सभी जन-साधारण में पायी जाने वाली इस व्याकुलता से आत्मा को क्यों गिरा रही हो? हमने इतने शुभ कर्म अर्जित कर रखे हैं। और क्या किया जाय। अधिक सुख के हम पात्र नहीं है, क्योंकि जो अर्जित नहीं है, वह छाती भी पीटते जायं, अपनी इच्छा से मिलता ही नहीं। विधाता भी सचमुच इस संसार में कोई होता है। जो उसे अच्छा लगता है, वही वह करता है। वह किसी के भी अधीन नहीं। इस तरह सभी लोगों के उसके अधीन होने

लब्धम् । वत्सस्यातिदुर्लभो जन्मोत्सवः संभावितः । अङ्कगतस्य मुखमवलोकितम् । उत्तानशयस्योच्चुम्ब्य चरणावुत्तमाङ्गे कृतौ । जानुसंचारिणो रेणुधूसरशरीरस्याङ्के लुलतः स्पर्शसुखमनुभूतम् । अव्यक्तमनोहारीणि प्रथमजल्पितानि श्रोत्रे कृतानि । विचेष्टमानस्य बालचाटवो दृष्टाः । गृहीतविद्यस्य गुणवत्तयानन्दितं हृदयम् । उपारूढयौवनस्यामानुषी रूपशोभा शक्तिश्च प्रत्यक्षीकृता । अभिषिक्तस्य यौवराज्ये शिरः समाघ्रातम् । दिग्विजयागतस्य प्रणमतः परिष्वक्तान्यङ्गानि । एतावदेव मनोरथशतवाञ्छितस्य वस्तुनो न संपन्नं यद्वधूसमेतस्य निजपदे प्रतिष्ठां कृत्वा तपोवने न गतम् । सर्वाभिवाञ्छितप्राप्तिस्तु महतः पुण्यराशेः फलम् । अपरमपि किं वृत्तं वत्सस्यैतदद्यापि न परिस्फुटं केनचिदेव कथितम् ।

आयत्तः अधीनः न वर्तते इति शेषः । सर्वस्मिन् निखिले लोके पराधीना अन्यायत्ता वृत्तिः वर्तनं यस्य तथाभूते सति अस्माभिः वा किं न लब्धं प्राप्तम् अपितु सर्वमपि लब्धमिति काकुः । वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य अतिदुर्लभः अतिदुष्प्रापः जन्मनः उत्पत्तेः उत्सवः महः संभावितः मानितः । अङ्के क्रोडे गतस्य स्थितस्य मुखम् आननम् अवलोकितं दृष्टम् । उत्तानम् ऊर्ध्वमुखं यथा स्यात्तथा शेते इति तथोक्तस्य मुखम् उपरि कृत्वा शयानस्येति यावत् चरणौ पादौ उच्चुम्ब्य उपरि चुम्बित्वा उत्तमाङ्गे मूर्ध्नि कृतौ धृतौ । जानुभ्याम् ऊरुसन्धिभागाभ्यां संचरतीत्येवंशीलस्य रेणुना रजसा धूसरं मलिनं शरीरं यस्य तस्य अङ्के क्रोडे लुलतः लुठतः अस्य चन्द्रापीडस्य स्पर्शस्य सुखम् आनन्दः अनुभूतं भुक्तम् । अव्यक्तानि अस्पष्टानि च मनोहराणि मधुराणि च प्रथमानि आद्यानि जल्पितानि भाषितानि (भावे क्तः) श्रोत्रे कर्णे कृतानि श्रुतानीत्यर्थः । विचेष्टमानस्य विविधां चेष्टां क्रीडामित्यर्थः कुर्वतः बालोचिताः चाटवः बालचाटवः प्रियप्रायाणि वचनानि ('चटु चाटुः प्रियप्रायम्' इति हैमः) दृष्टाः विलोकिताः (अत्र चाटूनां दृग्विषयत्वं चिन्त्यम्) गृहीता अधीता विद्या शिक्षाद्वारा ज्ञानं येन तथाभूतस्य गुणवत्ता गुणसम्पन्नतां तया हृदयं स्वान्तम् आनन्दितम् आनन्दं प्रापितम् । उपारूढम् आश्रितं यौवनं तारुण्यं यम् तस्य अमानुषी मानुषेषु असंभवा रूपस्य सौन्दर्यस्य शोभा छटा शक्तिः सामर्थ्यं च प्रत्यक्षीकृता साक्षाद् कृता । यौवराज्ये युवराजस्य कर्मणि अभिषिक्तस्य कृताभिषेकस्य शिरः मूर्धा समाघ्रातं घ्राणविषयीकृतम् चुम्बितमित्यर्थः । दिशां विजयात् आत्माधीनीकरणात् आगतस्य निवृत्तस्य प्रणमतः प्रणामं प्रकुर्वतः अङ्गानि अवयवाः परिष्वक्तानि आश्लिष्टानि । मनोरथानाम् अभिलषितानां शतैः वाञ्छितस्य अभीष्टस्य वस्तुनः पदार्थस्य एतावत् इयत् एव न संपन्नं संजातं यत् वध्वा पत्न्या समेतस्य सहितस्य एतस्य चन्द्रापीडस्य निजे स्वकीये पदे राजसिंहासने प्रतिष्ठां कृत्वा प्रतिष्ठाप्य तपोवने मुनिजनाश्रमे न गतं यातम् । सर्वाणि यानि अभिवाञ्छितानि अभीष्टानि तेषां प्राप्तिः लाभः तु महतः विपुलस्य पुण्यानां सत्कर्मणां राशेः समूहस्य फलं परिणामः भवतीति शेषः । अपरम् अपि अन्यच्च वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य किं वृत्तं जातम् एतत् अद्यापि अधु-

---

पर हमने क्या कुछ नहीं प्राप्त किया ? अतिदुर्लभ वत्स का जन्मोत्सव मनाया । गोद में रखे उसका मुँह देखा । उताने पड़े उसके पैर चूमकर सिर पर रखे । घुटनों के बल चलते, शरीर से धूलिधूसर बने, गोद पर लुढ़कते इसके स्पर्श का सुख लूटा । प्रारम्भ के तुतलाते मधुर बोल सुने । तरह-तरह के खेल करते हुए इसके बचपन के प्रिय शब्द देखे । विद्या प्राप्त किये इसकी गुणशीलता का हृदय ने आनन्द लिया । युवा हुए इसकी मनुष्यों में दुर्लभ रूप-माधुरी और शक्ति प्रत्यक्ष देखी, युवराज के पद पर अभिषिक्त हुए इसका सिर चूमा । दिग्विजय करके (घर) आए, प्रणाम करते इसके अंगों को गले लगाया । सैकड़ों मनोरथों से वाञ्छित बात का इतना मात्र ही नहीं होने पाया कि हम अपने पद पर इसे बिठाकर तपोवन नहीं जा पाए । किन्तु सभी वाञ्छितों की प्राप्ति बड़ी भारी पुण्यराशि का फल होता है । दूसरी बात यह है कि पुत्र को

एतावत्तु मया व्यक्तमेतदेव परिजनात्कथयतः कर्णे कृतम्। यथास्मत्प्रहितैर्लेखहारिभिः सहापरो वत्सस्य मे बालसेवकस्त्वरितकनामायातः। स वेत्ति सर्वं वृत्तान्तम्। सोपि त्वया न पृष्ट एवेति। तत्तं तु तावत्पृच्छामः। ततो जीवितमरणयोरन्यतरदङ्गीकरिष्यामः।' इत्यभिवदत्येव राजनि परिजनान्तरितं त्वरितकमाहूय प्रतीहारः 'त्वरितकमारान्महीतलनिवेशितोत्तमाङ्गमालोकयतु देवः' इति दर्शितवान्।

राजा तु तथा तमालोक्य चन्द्रापीडस्नेहादेहीत्याहूय हस्तेनोत्तमाङ्गे स्पृष्ट्वादिष्टवान्। 'भद्र कथय किं वृत्तं वत्सस्य येनागमनाय मया तन्मात्रामात्येन च लिखितेपि नायातः। अनागमनकारणं वा किंचिन्न प्रतिलेखितवान्' इति। स त्वेवमादिष्टो राज्ञा गमनतः प्रभृति यथावृत्तं कथयितुमारेभे। राजा तु चन्द्रापीडहृदयस्फुटनवृत्तान्तं यावदा-

---

नापि केनचित् एव परिस्फुटं परितः स्पष्टं न कथितम् उक्तम्, एतावत् इयत् तु कथयतः परस्परम् अभिदधतः परिजनात् भृत्यवर्गात् व्यक्तं स्पष्टम् एतत् एव कर्णे कृतं श्रुतम् यथा यत् अस्माभिः प्रहितैः प्रेषितैः लेखहारिभिः पत्रवाहकैः सह अपरः अन्यः मे मम वत्सस्य पुत्रस्य त्वरितक इति नाम यस्य तथाभूतः बालश्चासौ सेवकः भृत्य अर्थात् बाल्यात् प्रभृति भृत्यभूत आयातः आगतः अस्ति, स सर्वं निखिलं वृत्तान्तम् उदन्तं वेत्ति जानाति। स त्वरितकः अपि त्वया न पृष्टः प्रश्नविषयीकृतः एव। तत् तस्मात् तं तु तावत् प्रथमं पृच्छामः। ततः तदनन्तरं जीवितं प्राणनं च मरणं मृत्युश्च तयोः मध्ये अन्यतरत् किमपि एकम् अङ्गीकरिष्यामः स्वीकरिष्यामः'। इति राजनि तारापीडे अभिवदति कथयति सति एव परिजनेन भृत्यवर्गेण अन्तरितं व्यवहितं परिगतमित्यर्थः त्वरितकम् आहूय आकार्य प्रतीहारः द्वारपालः 'आरात् दूरात् एव मह्याः तले भूतले निवेशितं न्यस्तम् उत्तमाङ्गं शिरः येन तथाभूतं त्वरितकम् आलोकयतु पश्यतु देवः महाराजः' इति दर्शितवान् द्रष्टुं प्रैरयत्।

राजा—राजा तारापीडः तु तया तं त्वरितकम् आलोक्य दृष्ट्वा चन्द्रापीडस्य स्नेहात् प्रीतेः कारणात् 'एहि आगच्छ' इति आहूय आह्वानं कृत्वा हस्तेन करेण उत्तमाङ्गे शिरसि स्पृष्ट्वा स्पर्शं कृत्वा आदिष्टवान् आदिशत्। 'भद्र, कथय ब्रूहि वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य किं वृत्तं जातम् येन कारणेन आगमनाय गृहमागन्तुम् मया तस्य मात्रा जनन्या विलासवत्या अमात्येन मन्त्रिणा शुकनासेन च लिखिते लिपीकृते अपि न आयातः आगतः गृहमिति शेषः। अनागमनस्य अनिवर्तनस्य कारणं हेतुः वा किञ्चित् न प्रतिलेखितवान् प्रत्युत्तरितवान्' इति। स त्वरितकः तु राज्ञा एवम् आदिष्टः लब्धाज्ञः गमनतः प्रस्थानतः प्रभृति आरभ्य यथावृत्तं यथाघटितं कथयितुम् आख्यातुम् आरेभे प्रचक्रमे। राजा तारापीडः चन्द्रापीडस्य हृदयस्य स्फुटनस्य स्फोटस्य वृत्तान्तं

क्या हुआ है—यह अभी तक किसी ने भी स्पष्ट नहीं कहा है। इतना मात्र तो (परस्पर) बातें करते हुए नौकर-चाकरों से यही मैंने स्पष्ट सुना है कि हमारे भेजे पत्र-वाहकों के साथ मेरे पुत्र का त्वरितक नाम का बचपन से ही सेवा किये चला आ रहा भृत्य आया है। वह सब वृत्तान्त जानता है। उसे भी तुमने नहीं पूछा। इसलिए पहले उससे पूछते हैं। तदनन्तर जीवन और मृत्यु इन दोनों में से किसी एक को अपनाएँगे'। राजा के यह कहने पर भृत्यवर्ग से घेरे हुए त्वरितक को बुलाकर द्वारपाल—'दूर से ही सिर भूमि पर टेके त्वरितक को महाराज देखिए' (यह कहके) उसे दिखा दिया।

राजा ने उस तरह उसे देखकर स्नेहपूर्वक 'आओ आओ' (कहके) बुलाकर हाथ से उसका सिर छूकर आज्ञा दी—'भद्र, बोल पुत्र को क्या हुआ है जिससे आने हेतु मेरे, उसकी माता के तथा मंत्री (शुकनास) के लिखने पर भी वह नहीं आया ?' राजा की इस प्रकार आज्ञा प्राप्त किया वह प्रस्थान से लेकर जो-जो कुछ हुआ, उसे कहने लगा। राजा ने चन्द्रापीड

कर्ण्यातिक्षुभितशोकार्णवाक्रान्तिविक्लवः प्रसार्य करमार्तस्वरस्त्वरितकमवादीत्। 'भद्र, विरम संप्रति। कथितं त्वया कथनीयम्। मयापि श्रुतं यच्छ्रोतव्यम्। पूर्णो मे प्रश्नदोहदः। निवृत्तं श्रवणकौतुकम्। कृतार्थीभूता श्रुतिः। आनन्दितं हृदयम्। उत्पन्ना प्रीतिः। सुखं स्थितोस्मि। हा वत्स त्वयैकाकिना स्फुटतो हृदयस्यानुभूता वेदना। निर्व्यूढा त्वया वैशम्पायनस्योपरि प्रीतिः। वयं दुःखभागिनो निस्त्रिंशाः कर्मचाण्डालाः। येषां तथापि हृदयस्फुटने निर्विकारत्वमेव। देवि वज्रसारतोपि कठिनतरमेवेदमावयोर्हृदयम्। यन्न स्वयं सहस्रधा स्फुटति। न चापि मरणदुःखभीरवोमी वत्समनुगच्छन्ति स्वयं प्राणाः। तदुत्तिष्ठ यावदेवातिदूरं न प्रयात्येकाकी वत्सस्तावदेवानुगमनाय प्रयतामहे। सशोकं शुकनास किमद्यापि तिष्ठसि। अयं स कालः स्नेहस्य। महाकालायतनसमीपे

वृत्तं यावत् तत्पर्यन्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा अतिशयेन क्षुभितः क्षोभमवाप्तः शोकः शुक् एव अर्णवः समुद्रः (रूपकम्) तस्य आक्रान्त्या आक्रमणेन विह्वलः विक्लवः सन् करं हस्तं प्रसार्य विस्तार्य आर्तः करुणः स्वरः वाणीत्यर्थः यस्य तथाभूतः त्वरितकम् अवादीत् अकथयत्—'भद्र, लक्षणया दुर्मुख इत्यर्थः सम्प्रति अधुना विरम विरतो भव। कथनीयं कथन-योग्यं त्वया कथितम् उक्तम् एव। मया अपि श्रुतम् आकर्णितं यत् श्रोतव्यं श्रोतुं योग्यम् आसीदिति शेषः। मे मम प्रश्नस्य दोहदः अभिलाषः पूर्णः समाप्तः। श्रवणयोः कर्णयोः कौतुकं श्रवणकुतूहलं निवृत्तं समाप्तम्। श्रुतिः श्रोत्रं कृतार्थीभूता चरितार्थतां गता। हृदयम् आनन्दितम् आनन्दम् अवाप्तम्। प्रीतिः प्रसन्नता जाता। सुखं यथा स्यात् तथा स्थितः अस्मि, सुस्थः अस्मीत्यर्थः। अत्र 'भद्र', इति आरभ्य सर्वत्र विपरीत-लक्षणया विपरीतार्थोऽवसेयः। हा इति शोके त्वया एकाकिना अद्वितीयेन सता स्फुटतः विदीर्यमाणस्य वेदना पीडा अनुभूता अनुभवविषयीकृता अस्मासु न संविभक्तेति भावः। त्वया वैशम्पायनस्य उपरि तं प्रतीत्यर्थः प्रीतिः स्नेहः निर्व्यूढा निर्वाहिता। वयं दुःखभागिनः कष्टमेविनः निस्त्रिंशाः निर्दयाः कर्मणा चाण्डालाः क्रियात्मकरूपेण श्वपचाः स्मः। येषाम् अस्माकं तव हृदयस्य तथा तेन प्रकारेण अपि स्फुटने विदरणे निर्विकारत्वम् विकार-राहित्यम् अस्तीति शेषः। देवि, महिषि! वज्रस्य अशनेः सारः सत्त्वं तस्मात् अपि कठिनतरम् अतिशयेन कठोरम् एव आवयोः तव मम च हृदयम् अस्ति यत् स्वयम् आत्मना सहस्रधा सहस्र-खण्डेषु न स्फुटति विदीर्यते। न च अपि मरणस्य मृत्योः दुःखात् कष्टात् भीरवः भयवन्तः अमी एते प्राणाः स्वयम् आत्मना वत्सं पुत्रम् अनुगच्छति अनुसरन्ति। तत् तस्मात् उत्तिष्ठ उत्थिता भव यावत् यावता कालेन एव वत्सः चन्द्रापीडः एकाकी असहायः अतिदूरतरं दविष्ठं यथा स्यात्तथा न प्रयाति प्रगच्छति तावत् तावता कालेन अनुगमनाय तम् अनुगमन्तुं प्रयतामहे प्रयत्नं कुर्महे। शुकनासः सशोकं शोकेन सहितं यथा स्यात्तथा अद्यापि अधुनापि किं कस्मात् तिष्ठसि अवस्थानं करोषि? स्नेहस्य प्रीति-निर्वाहस्येत्यर्थः अयम् एष एव कालः समयः अस्तीति शेषः। महा-

---

के हृदय फटने तक का समाचार सुनकर अत्यन्त क्षुब्ध हुए शोक-सागर के आक्रमण से (विह्वल) हुए, हाथ फैलाकर आर्त स्वर में त्वरितक को कहा—'भद्र, अब बस करो। तुम्हें जो कहना था, वह कह दिया हैं। मुझे जो सुनना था, सुन लिया हैं। मेरी प्रश्न की चाह पूरी हो गई है। सुनने की उत्कण्ठा समाप्त हो गई है। कान कृतार्थ हो गए हैं। हृदय प्रसन्न हो उठा है। प्रीति उत्पन्न हो गई है। मैं सुख से हूँ। हाय! बच्चे! हृदय फटते समय तुमने अकेले ही वेदना झेली है। वैशम्पायन के प्रति तुमने स्नेह निभाया। हम दुःखभागी कठोर और कर्म के चाण्डाल हैं। जिन्हें उस तरह हृदय फटने पर भी कोई विकार ही नहीं हुआ। रानी! हम दोनों का हृदय वज्र से भी अधिक कठोर है, जो स्वयं हजारों टुकड़ों में नहीं फट रहा हैं। मरण के दुख से डरे हुए ये प्राण भी स्वयं पुत्र का अनुसरण नहीं करते। इसलिए उठो, जब तक पुत्र अकेला बहुत दूर नहीं जा पहुचता, तब तक उसके अनुगमन हेतु प्रयत्न करें। शुकनास! तुम भी अब तक शोकयुक्त हो क्यों बैठे हुए हो? स्नेह का वह समय यही है। महाकाल शिव के मन्दिर के

समादिश सपदि परिचारकांश्चितारचनाय। रचयत झटिति काष्ठानि काष्ठिकाः। किं तिष्ठतैवं संकुचिताः कञ्चुकिनः। गत्वा निष्क्रामयत हुताशनप्रवेशोपकरणानि। निष्कारण-रुदितेन किमधुना। उपरोधपरिलम्बाद्विना दापयाशेषं देवि द्विजेभ्यः कोषम्। कस्य कृतेऽद्यापि पाल्यते। पालनादिकं करणीयमधुना क्षीणं क्षीणपुण्यस्य मे। यात यथाभूमि भूमिपतयः। उत्सृष्टाः स्थ। यथा च नाद्यैवास्य दुःखं जानन्ति प्रजास्तथा करिष्यथ। कथावशेषीभूतो मे वत्सः। कमपरं संविधाय यामि।' एवमार्तंप्रलापिनं तारापीडमचेतितात्मपीडया विलासवत्या धृतशरीरमार्ततरस्त्वरितको व्यज्ञापयत्। 'देव स्फुटितेपि हृदये भ्रियते शरीरेण युवराजः। शापदोषाद्वैशम्पायनस्य च यथा जन्म तथा निरवशेषं शृणोतु तावद् देवः' इति।

कालस्य एतन्नाम्नः महादेवस्य आयतनस्य मन्दिरस्य समीपे सन्निधौ परिचारकान् सेवकान् सपदि झटिति चितायाः चैत्यायाः रचनाय निर्माणाय समादिश आज्ञां देहि। काष्ठिकाः भोः काष्ठ-वाहकाः! झटिति शीघ्रं काष्ठानि एधांसि रचयत चिता-रूपेण स्थापयतेत्यर्थः। भो कन्चुकिनः! सौविदल्लाः। एवं संकुचिताः संकोचमवाप्ताः यूयं किं कस्मात् तिष्ठत। गत्वा हुताशने वह्नौ प्रवेशस्य उपकरणानि सामग्रीः चन्दन धूप-पुष्पादीनि निष्क्रामयत बहिरानयत। अधुना साम्प्रतं निष्कारणं विना कारणं रुदितेन रोदनेन किम् न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः। हे देवि महिषि! उपरोधः प्रतिबन्धश्च परिलम्बः विलम्बश्चेति तयोः समाहारः तस्मात् विना ऋते अशेषं सकलं कोषं द्रविणं द्विजेभ्यः विप्रेभ्यः दापय दातुं प्रेरय। कस्य कृते निमित्ते अद्यापि अधुनापि पाल्यते रक्ष्यते कोषः इति शेषः। क्षीणं समाप्तं पुण्यं सुकृतं यस्य तथाभूतस्य मे मम प्रजानां पालनं रक्षणम् आदौ यस्य तथाभूतं करणीयं कर्तव्यम् अधुना क्षीणं समाप्तम्। भूमिपतयः हे राजानः! भूमिं स्व-स्व-भूमिम् अनतिक्रम्येति यथाभूमि यात गच्छत। उत्सृष्टाः उन्मुक्ताः स्थ (असेः लटि मध्यमपुरुषबहुव०)। यथा येन प्रकारेण अद्य एव अस्य चन्द्रापीडस्य प्रजाः जनता न दुःखं कष्टं जानन्ति अनुभवन्ति तथा करिष्यथ विधास्यथ। मे वत्सः पुत्रः चन्द्रापीडः कथा नाम एव अवशेषः अवशिष्टांशो यस्य तथाभूतः अकथाविशेषः कथाविशेषः सम्पद्यमानः भूतः इति कथा-विशेषीभूतः (च्विरूपम्) जातः इति शेषः। अपरम् अन्यं कं राजानं संविधाय कृत्वा कस्योपरि राज्यभारमारोप्येत्यर्थः यामि गच्छामि परलोकमिति शेषः।' एवम् आर्तं करुणं यथा स्यात्तथा प्रलपति विलपतीत्येवंशीलम्, अचेतिता न ज्ञाता गणितेत्यर्थः आत्मनः स्वस्याः पीडा वेदना यया तथाभूतया विलासवत्या धृतम् अवलम्बितं शरीरं देहः यस्य तम् तारापीडम् अतिशयेन आर्तः आर्ततरः अतिदुःखितः त्वरितकः व्यज्ञापयत् न्यवेदयत—'देव, हृदये स्फुटिते विदीर्णे अपि युवराजः शरीरेण भ्रियते जीवति। शापस्य दोषात् वैशम्पायनस्य च जन्म उत्पत्तिः तथा निरवशेषम् अशेषं देवः महाराजः तावत् प्रथमं शृणोतु आकर्णयतु' इति।

समीप चिता बनाने हेतु शीघ्र आज्ञा दो। ओ काष्ठवाहको! शीघ्र काष्ठों को (चितारूप में) रखो। रे कंचुकी लोगो! क्यों संकोच किये बैठे हो? जाकर अग्नि-प्रवेश योग्य सामग्री निकालो। अब बिना कारण रोने-धोने से क्या? रानी! बिना रोक और विलम्ब के सारा खजाना ब्राह्मणों को दिलवा दो। अब भी वह किस हेतु रखा जा रहा है? क्षीण पुण्य वाले मेरा (प्रजा-) पालन आदि कर्तव्य अब समाप्त हो गया है। राजा लोगो! तुम अपनी-अपनी भूमि में चले जाओ। तुम मुक्त हो। जिस तरह आज ही इस (चन्द्रापीड) की प्रजा दुख का अनुभव न करने लग जाय, वैसा करना। मेरा बच्चा नाम-शेष रह गया है। किस दूसरे को राजा बनाकर जाऊँ?' इस तरह दीनतापूर्वक विलाप करते हुए, अपनी वेदना की पर्वाह न किये विलासवती द्वारा शरीर से थामे हुए तारापीड़ को अत्यन्त आर्त हुआ त्वरितक बोला—'महा-राज, हृदय फट जाने पर भी युवराज शरीर से जीवित हैं। शाप-दोष के कारण जिस प्रकार वैशम्पायन का जन्म हुआ, उसे महाराज पूरा-पूरा सुनिए'।

तारापीडस्तु तदद्भुतमाकर्ण्यं कौतुकान्तरितशोकावेगो विगतनिमेषेण चक्षुषाविष्ट इव दत्तावधानस्तेन कथ्यमानं यथादृष्टं यथाश्रुतं यथानुभूतं च निरवशेषं तत्सर्वमश्रौषीत्। श्रुत्वा च तमनेकचिह्नोत्पादितप्रत्ययमश्रद्धेयं च निरतिशयशोककारणं च विस्मयास्पदभूतं च दुःश्रवं च कौतुककरं च युवराजवैशम्पायनयोर्वृत्तान्तमीषदिव विवर्तिताननो विमर्शस्तिमिततारकां दृष्टिं निर्विशेषावस्थे शुकनासमुखेऽभ्यपातयत्। सुहृदस्तु स्वयं दुःखिता अपि निधानीकृत्यात्मदुःखं सुहृद्दुःखापनोदायैव यतन्ते यतः शुकनाशस्तदवस्थोपि स्वस्थवदवनिपतिमुवाच।

'देव, विचित्रेऽस्मिन्संसारे संचरत्सु सुखदुःखमयेषु देवतिर्यग्योनिमानुषेषु त्रिगुणात्मनः प्रधानस्यापि परिणामात्परमाण्वादेर्ब्रह्माण्डपर्यन्तस्योत्पत्तिस्थितिप्रलयकारणस्ये-

---

तारा०—तारापीडः तु तत् अद्भुतम् आश्चर्यकरम् आकर्ण्य कौतुकेन कुतूहलेन अन्तरितः व्यवहितः शोकस्य शुचः आवेगः रयः यस्य तथाभूतः, विगतः दूरीभूतः निमेषः निमीलनं यस्मात् तथाभूतेन चक्षुषा नयनेन आविष्टः भूतग्रस्तः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दत्तम् अवधानं ध्यानं येन तथाभूतः तेन त्वरितकेन कथ्यमानम् उच्यमानम् दृष्टम् अनतिक्रम्य इति यथादृष्टं, श्रुतम् आकर्णितम् अनतिक्रम्येति, अनुभूतम् अनतिक्रम्येति यथा स्यात्तथा तत् सर्वं वृत्तम् अश्रौषीत् श्रुतवान्। श्रुत्वा—तम् अनेकानि चिह्नानि लक्षणानि तैः उत्पादितः जनितः प्रत्ययः विश्वासो यस्य तथाभूतः राजा अश्रद्धेयम् श्रद्धातुमयोग्यं च निरतिशयस्य अत्यधिकस्य शोकस्य शुचः कारणं हेतुं च विस्मयस्य आश्चर्यस्य आस्पदभूतं स्थानभूतं च दुःश्रवं दुःखेन श्रोतुं योग्यं च कौतुकं कुतूहलं करोतीति तथोक्तं च युवराजः चन्द्रापीडश्च वैशम्पायनश्च तयोः वृत्तान्तम् उदन्तम् ईषत् किमपि इव विवर्तितं पश्चात् कृतम् आननं मुखं येन स विमर्शेन तर्कवितर्केण वा संशयेन स्तिमिते निश्चले तारके कनीनिके यस्याः ताम् दृष्टिं दृशम् निर्विशेषा समाना अवस्था दशा यस्य तस्मिन् शुकनासस्य मुखे अभ्यपातयत् प्रक्षिप्तवान्। सुहृदः सखायः तु आत्मनः स्वस्य दुःखं निधानीकृत्य एकत्र निधाय अगणयित्वेत्यर्थः सुहृदः मित्रस्य दुःखस्य कष्टस्य अपनोदनाय अपनोदयितुम् एव यतन्ते प्रयत्नं कुर्वन्ति, यतः यस्मात् कारणात् शुकनासः सा अवस्था दशा यस्य तथाभूतोऽपि सन् स्वस्थवत् सुस्थ इव अवनपतिं राजानम् उवाच उक्तवान्।

देव—'देव महाराज अस्मिन् विचित्रे विलक्षणे संसारे जगति सञ्चरत्सु सम्भ्रमत्सु सुखानि च दुःखानि च तन्मया सुखदुःखयुक्ताः (मतुबर्थे मयट्) तेषु देवाः च तिर्यग् योनयः पशु-पक्षिणः च मानुषाः मनुष्याः चेति तेषु त्रयः गुणाः सत्त्वं, रजः, तमः इत्यात्मा स्वरूपं यस्य तथाभूतस्य प्रधानस्य प्रकृतितत्त्वस्य अपि ('सत्त्व-रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः' इति सांख्याः) परिणामात् परिणमनात् विकारादिति यावत्, परमाणुः (न्यायमतेन) पृथिव्यादिभूतानां निरवयवः अतिसूक्ष्मांशः आदौ यस्य तथाभूतात् आरभ्य ब्रह्माण्डं जगत् पर्यन्तः समाप्तिः यस्य तथाभूतस्य

उस अद्भुत बात को सुनकर तारापीड़ जिसका शोकवेग कुतूहल द्वारा दबा दिया गया था, भूत ग्रस्त-जैसा एकटक दृष्टि से, ध्यान दिये, उस (त्वरितक) के द्वारा कही जा रही वह बात, जैसी उसने देखी सुनी और अनुभव की थी, सारी की सारी सुन बैठा। युवराज और वैशम्पायन के उस वृत्तान्त को, जिसने अनेक लक्षणों से विश्वास उत्पन्न कर दिया था, जो विश्वास के अयोग्य, अत्यन्त शोक का कारण, आश्चर्यास्पद, सुनने में कष्टकारक और कुतूहल-जनक था, सुनकर मुँह कुछ पीछे मोड़े, तर्क-वितर्क के कारण निश्चल बनी पुतलियों वाली दृष्टि अपने ही समान दशा वाले शुकनास के मुख पर डाली। मित्र लोग तो स्वयं दुःखी होते हुए भी अपना दुःख एक तरफ रख के मित्र का दुःख दूर करने के का ही प्रयत्न करते हैं। तभी तो वैसी हालत में होता हुआ भी भला-चंगा-जैसा बना शुकनास राजा को बोला—

'महाराज, इस विचित्र संसार में चलते-फिरते सुखदुख भोगते-भागते देवताओं, पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों में त्रिगुणात्मक प्रकृति के परिणाम के कारण, परमाणु आदि से लेकर

ईश्वरस्येच्छया धर्माधर्मसाधनानामिष्टानिष्टफलसंबन्धकारिणां कर्मणां वा शुभाशुभानां विपाकस्वभावाद्वा स्वयमेवानेकप्रकारमुत्पद्यमानस्य तिष्ठतो विनश्यतो वा नियतवृत्तेः स्थावरजङ्गमस्य न कदाचिदवस्था सा या न संभवति। तत्कुतोयं देवस्यात्र वस्तुनि विमर्शः[1]। यदि युक्तेर्विचारात्कियन्त्यत्र युक्तिरहितान्यागमप्रामाण्यादेवाभ्युपगतान्यपि संवादीनि दृश्यन्ते। मुद्राबन्धाद्ध्यानाद्वा विषप्रसुप्तस्योत्थापने कीदृशी युक्तिः। अयस्कान्तस्य चायसः समाकर्षणे भ्रमणे वा। मन्त्राणां वैदिकानामवैदिकानां वानेक-

---

चराचरात्मकस्य पदार्थजातस्येत्यर्थः उत्पत्तिः जन्म च स्थितिः अवस्थानं च प्रलयः विनाशश्चेति तेषां कारणस्य हेतुभूतस्य ईश्वरस्य परमात्मनः इच्छया स्पृहया धर्मः पुण्यम् अधर्मः पापं च तयोः साधनानि निमित्तानि इष्टम् अभीप्सितम् अनिष्टम् अनभीप्सितं च यत् फलं परिणामः तेन सम्बन्धं कुर्वन्तीत्येवंशीलानां शुभानि च अशुभानि चेति सदसन्ति तेषां वा कर्मणां प्रवृत्तीनां विपाकः परिणामः तद्रूपात् स्वभावात् कारणात् स्वयम् आत्मना एव अनेके प्रकाराः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा उत्पद्यमानस्य जायमानस्य तिष्ठतः अवस्थानं कुर्वतः विनश्यतः विनाशं गच्छतः वा नियता निश्चिता वृत्तिः वर्तनं यस्य तथाभूतस्य स्थावरश्च जंगमश्च चराचरस्येत्यर्थः न कदाचित् कदापि सा अवस्था स्थितिः या न सम्भवति न सम्भाव्या इत्यर्थः। तत् तस्मात् देवस्य महाराजस्य अत्र अस्मिन् वस्तुनि विषये कुतः कस्मात् विमर्शः संशयः? यदि युक्तेः उपपत्तेः विचारात् विमर्शात् (अत्रे 'यदि युक्तेः विचारः क्रियेत' इत्युपवाक्यमपेक्ष्यते अन्यथा 'यदि' शब्दोऽधिकः) अत्र जगति कियन्ति युक्त्या उपपत्त्या रहितानि हीनानि आगमः शास्त्रं तस्य प्रामाण्यात् प्रमाणत्वात् एव अभ्युपगतानि स्वीकृतानि अपि संवादीनि अव्यभिचारीणि दृश्यन्ते विलोक्यन्ते। मुद्रायाः यौगिकशरीरक्रियायाः बन्धात् करणात् अथवा ध्यानात् चिन्तनात् विषेण सर्पादिविषप्रभावेणेत्यर्थः प्रसुप्तस्य निद्रितस्य उत्थापने निर्विषीकरणे विषमपनीय चेतनीकरणे इति यावत् कीदृशी किंविधा युक्तिः उपपत्तिः न कापीति काकुः। अयस्कान्तस्य चुम्बकप्रस्तरस्य अयसः लौहस्य समाकर्षणे आकृष्टौ भ्रमणे इतस्ततः सञ्चालने (अत्र 'भ्रामणे' इति सुवचम्) च कीदृशी युक्तिः इत्यनुवर्तते। वैदिकानाम् वेदप्रोक्तानाम् अवैदिकानां वेदोक्त-भिन्नानां शाबराणामित्यर्थः मन्त्राणां वा अनेकप्रकारेषु विविधेषु कर्मसु कार्येषु सिद्धौ निष्पत्तौ सफलतायामित्यर्थः नानाविधाः अनेकविधाः ये द्रव्याणां पदार्थानां संयोगाः सम्बन्धाः परस्परमिश्रणानीति यावत् तेषां मरणं मृत्युः मदनः कामः आदौ यस्य तथाभूतस्य कार्यस्य उत्पादनं जननम्, अपहरणम् अपनयनं च वशीकरणम् आत्माधीनीकरणं च विद्वेषणं द्वेषोत्पादनं च आदौ येषां तथाभूतेषु कार्येषु कीदृशी, युक्तिः इत्यनुवर्तते, मन्त्रबलेन द्रव्यसम्मिश्रणेन च युक्तिविरुद्धम् असंभवमपि सर्वं कर्तुं शक्यते इति भावः। शक्तेः मन्त्रादिद्वारा बलस्य समुत्पादनात् जननात् अन्येषां बहुतराणां प्रचुर-

---

ब्रह्माण्ड पर्यन्त की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारणीभूत ईश्वर की इच्छा से अथवा धर्म और अधर्म के निमित्तभूत, भले-बुरे फल से सम्बन्ध रखने वाले शुभाशुभ कर्मों के स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप स्वयमेव अनेक प्रकारों से उत्पन्न होने, टिकने और नष्ट होने वाले नियम-बद्ध स्थावर-जंगम (रूप जीवों) की कभी कोई ऐसी अवस्था नहीं, जो संभव न हो। इसलिए इस विषय में आप क्यों सन्देह में पड़ रहे हैं? यदि युक्ति से विचार किया जाय, तो इस संसार में कितनी ही युक्ति-रहित बातें केवल शास्त्रों के प्रमाण से ही स्वीकार की जाती हुई भी सही दिखाई देती हैं। मुद्राबन्ध अथवा ध्यान द्वारा विष से सोये हुए को (होश में लाकर) खड़ा उठा देने में कौन-सी युक्ति है? चुम्बक पत्थर द्वारा लोहे के खींचे जाने और घुमाये जाने में कौन सी युक्ति है? वैदिक और अवैदिक मन्त्रों द्वारा अनेक प्रकार के कार्यों की सिद्धि में कौन

---

१. विमर्षः।

प्रकारेषु कर्मसु सिद्धौ। नानाविधद्रव्यसंयोगानां वा मरणमदनाद्युत्पाद[1]नाहरणवशीकरणविद्वेषणादिषु। शक्तेः समुत्पादनात् अन्येषां बहुतराणामेवंविधानां च तत्र तत्र सर्वस्मिन्नेवागमः प्रमाणम्। आगमेषु सर्वेष्वेव पुराणरामायणभारतादिषु सम्यगनेकप्रकाराः शापवार्ताः। तद्यथा। महेन्द्रपदवर्तिनो नहुषस्य राजर्षेरगस्त्यशापादजगरता। सौदासस्य च वसिष्ठसुतशापान्मानुषादत्वम्। असुरगुरुशापाच्च ययातेस्तारुण्य एव

तराणाम् एवंविधानां च तत्र-तत्र तस्मिन् तस्मिन् सर्वस्मिन् अद्‌भुतकार्यजाते इति शेषः आगमः शास्त्रम् एव प्रमाणम्। सर्वेषु निखिलेषु अपि पुराणानि च रामायणं च भारतं च आदौ येषां तथाभूतेषु आगमेषु शास्त्रेषु सम्यक् यथा स्यात्तथा अनेकप्रकाराः विविधाः शापस्य वार्ताः वृत्तान्ताः सन्तीति शेषः। तत् यथा उदाहरणार्थं यथा—महेन्द्रस्य स्वर्गाधिपतेः शक्रस्य पदे स्थाने वर्तते इत्येवंशीलस्य राजा चासौ ऋषिश्च तस्य नहुषस्य एतत्संज्ञकस्य अगस्त्यस्य ऋषेः शापात् शापकारणात् अजगरता अजगरयोनिप्राप्तिः। सौदासस्य सुदासपुत्रस्य इक्ष्वाकुवंशीयस्य राजविशेषस्य वसिष्ठस्य एतदाख्य ऋषिविशेषस्य सुतस्य पुत्रस्य शापात् मानुषान् मनुष्यान् अत्ति भक्षयतीति तथोक्तस्य भावः तम् राक्षसत्वमित्यर्थः जातमिति शेषः।

टिप्पणी—नहुषस्य—नहुष ययाति का पिता और आयुष का पुत्र एक चन्द्रवंशी राजा था। वह बड़ा बुद्धिमान तथा शक्तिशाली था। वृत्र को मारकर जब इन्द्र ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त-स्वरूप जलमग्न हो आत्मशुद्धि कर रहा था, तब देवताओं ने इन्द्र के खाली पड़े सिंहासन पर राजा नहुष को प्रतिष्ठित कर दिया। अधिकार-मद में आकर नहुष ने इन्द्राणी पर हाथ फेरना चाहा। इन्द्राणी ने यह शर्त रखी कि यदि तुम सात ऋषियों द्वारा ढोई जाने वाली पालकी पर बैठे मेरे पास आओ, तो मैं तुम्हें अपना लूँगी। कामान्ध ने ऐसा ही किया और अगस्त्य पर जल्दी-जल्दी चलने हेतु 'सर्प, सर्प' कहा। ऋषि आग-बबूले हो बैठे। उन्होंने तत्काल राजा को शाप दे दिया—'सर्पो भव'। फलस्वरूप वह स्वर्ग से गिर कर सर्पयोनि में चला गया।

सौदासस्य—इक्ष्वाकु-वंश के प्रसिद्ध अयोध्यापति राजा सुदास के पुत्र का नाम वीरसह था वे बड़े धर्मात्मा थे। एक समय आखेट हेतु वन-विचरण में उन्होंने सिंह रूप धारण किये दो राक्षसों को सभी जानवरों को खाते देखा तो क्रुद्ध हो उठे। झट बाण निकाला और एक को मार डाला। दूसरा यह धमकी देता हुआ कि मैं अपने साथी की मृत्यु का बदला लूँगा। तत्काल अन्तर्धान हो गया। इस घटना के बहुत समय बाद जब सौदास अश्वमेध कर रहे थे, तो यज्ञसमाप्ति पर वही राक्षस वशिष्ठ का रूप धारण करके राजा को बोला कि राजन्, 'सामिष' भोजन होना चाहिए। राजा मान गये। दुष्ट राक्षस ने पाचक का रूप बनाकर राजा और वसिष्ठ को मनुष्य का मांस पका कर खिला दिया। ऋषि क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने तत्काल राजा को शाप दे दिया 'मानुषादो भव'। गुरुशाप से ही निर्दोषी राजा को मानुषाद (राक्षस) योनि भोगनी पड़ी। पता नहीं भूषण भट्ट ने यहाँ वशिष्ठ के स्थान में 'वशिष्ठसुत' किस आधार पर लिखा (देखिए रामा० उ० कां० सर्ग ६५)।

ययातेः—ययाति चन्द्रवंशी राजा नहुष का पुत्र था। उसकी दो रानियाँ थीं—देवयानी

सी युक्ति है? नाना प्रकार के द्रव्य-संमिश्रणों (रासायनिक प्रक्रियाओं) द्वारा मृत्यु, कामवासना आदि का उत्पादन, अपहरण, वशीकरण और शत्रुता कराने आदि में कौन सी युक्ति है! शक्ति-उत्पादन के कारण ऐसे-ऐसे अन्य बहुत सारे पदार्थों द्वारा उन-उन सभी कार्यों की सिद्धि में शास्त्र ही प्रमाण हैं। सभी शास्त्रों—पुराण, रामायण, महाभारत आदि—में शाप की वार्तें खूब मिलती है, जैसे—इन्द्र के स्थान पर बैठे राजर्षि नहुष का अगस्त्य के शाप से साँप हो जाना, सौदास का वसिष्ठ-पुत्र के शाप से राक्षस बन जाना;

१. मान्धाद्युत्पाद।

जरसा भङ्गः। त्रिशङ्कोश्च पितृशापाच्चाण्डालभावः। श्रूयते च स्वर्गवासी महाभिषो नाम राजास्मिंल्लोके शन्तनुरुत्पन्नः। तत्पत्नीत्वमुपगताया गङ्गायाः शापदोषादष्टानामपि वसूनां मनुष्येषूत्पत्तिः। तिष्ठतु तावदन्य एव। अयमादिदेवो भगवानजः स एव जमदग्नेरात्मजतामुपगतः। श्रूयते च पुनश्चतुर्धात्मानं विभज्य राजर्षेर्दशरथस्य तथैव

और शर्मिष्ठा असुरराज की कन्या थी। बचपन में कभी दोनों लड़कियों में कुछ झगड़ा हुआ जिसमें शर्मिष्ठा ने गुरु-कन्या का अपमान किया था। इस पर शुक्राचार्य ने शर्मिष्ठा को शाप दे दिया था कि जा तू इसकी दासी बनेगी। विवाहोपरान्त शर्मिष्ठा ययाति के यहाँ देवयानी की दासी बनकर रहने लगी। लेकिन सुन्दर होने के कारण राजा शर्मिष्ठा को अधिक प्रेम करने लगा और गुप्त रूप से ब्याह भी कर बैठा। देवयानी को बड़ा बुरा लगा। उसने पिता से शिकायत कर दी। शुक्राचार्य ने ययाति को शाप दे दिया कि तेरा यौवन समाप्त हो जाय। फलतः बेचारा असमय में ही बूढ़ा हो गया।

टिप्पणी—त्रिशङ्कोः—प्रसिद्ध सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का पिता त्रिशङ्कु सूर्यवंशी राजा था। उसे अपनी देह से अत्यधिक अनुराग हो उठा। उसने चाहा कि मैं सदेह ही स्वर्ग जाऊँ। इस हेतु यज्ञ कराने के लिए वह कुलगुरु वसिष्ठ के पास गया, लेकिन उन्होंने एकदम इनकार कर दिया कि नियम-विरुद्ध सदेह कोई स्वर्ग नहीं जा सकता। हताश हो वह गुरुपुत्रों के पास गया। उन्होंने भी कोरा जवाब दे दिया कि जब पिताजी ही यज्ञ नहीं करा सके, तो हम कैसे करा सकते हैं। इस पर त्रिशङ्कु को क्रोध आ गया और वह गुरुपुत्रों को भला-बुरा कह बैठा जिससे क्रुद्ध हो उन्होंने उसे चाण्डाल बन जाने का शाप दे दिया। यहाँ भी हम नहीं समझते कि कवि ने क्यों पिता द्वारा शाप कहा है (देखिए रामा० वा० कां० सर्ग ५८)।

टिप्पणी—शन्तनुः—शन्तनु एक चन्द्रवंशी राजा थे। उसकी पहली पत्नी गंगा और दूसरी सत्यवती थी। गंगा को ब्रह्मा से भूलोक जाने का शाप मिला हुआ था। भूलोक उतरते हुए उसे आठ वसु मिल गये, जिन्हें वसिष्ठ ने अपनी कामधेनु के अपहरण के कारण भूलोक जाने का शाप दे रखा था। उन्होंने गंगा से प्रार्थना की कि तुम हमें अपने गर्भ में रखना और जन्मते ही अपने जल में डुबो देना। गंगा ने ऐसा ही किया। आठवाँ पुत्र भीष्म था, जिसे शन्तनु ने डुबोने नहीं दिया।

असुराणां राक्षसानां गुरुः शुक्राचार्यः तस्य शापात् च ययातेः एतन्नामस्य राजविशेषस्य तारुण्ये यौवने एव जरसा वार्धक्येन भङ्गः विनाशः तरुण एव वृद्धो जात इति भावः पितुः शापात् चाण्डालभावः चाण्डालत्वम्। श्रूयते आकर्ण्यते स्वर्गवासी स्वर्गस्थितः महाभिषः नाम (अव्यक्तम्) राजा अस्मिन् लोके मर्त्यलोके शन्तनुरुत्पन्नः जातः। तस्य शन्तनोः पत्नीत्वं भार्यात्वमुपगतायाः प्राप्तायाः गङ्गायाः (पञ्चमी) अष्टानाम् वसूनां देवता-विशेषाणाम् अपि मनुष्येषु मनुष्ययोनौ इत्यर्थः उत्पत्तिः जन्म जातः इति शेषः। तिष्ठतु आस्ताम् तावत् अन्यः दृष्टान्त एव। अयम् एष आदिदेवः विष्णुः भगवान् अजः अजन्मा विद्यते, परन्तु स एव जमदग्नेः ऋषिविशेषस्य आत्मजताम् पुत्रत्वम् उपागतः प्राप्तः। जामदग्न्यः परशुरामः दशावतारेषु गण्यते। श्रूयते च पुनः (स एव विष्णुः) आत्मानं स्वं चतुर्धा चतुर्भागेषु विभज्य विभागं कृत्वा राजर्षेः दशरथस्य आत्म-

---

राक्षस-गुरु शुक्राचार्य के शाप से ययाति को यौवन में ही बुढ़ापा आ जाना, और त्रिशंकु को पिता के शाप से चाण्डाल बनना पड़ा; सुनने में आता है कि स्वर्गवासी महाभिष नाम का राजा इस लोक में शन्तनु बना। उनकी पत्नी गंगा से शाप-दोष के कारण आठों ही वसुओं को मनुष्यों में जन्म लेना पड़ा। अब अन्य दृष्टान्त ही छोड़ो। यह जो आदिदेव अजन्मा भगवान (विष्णु) हैं, वे ही जगदग्नि के पुत्र बने। सुना जाता है कि वे ही अपने को चार भागों में

मथुरायां वसुदेवस्य। तन्मनुष्येषु देवतानामुत्पत्तिर्नैवासंभाविनी। न च पूर्वमनुष्येभ्यो गुणैः परिहीयते देवः। न चापि भगवतः कमलनाभादतिरिच्यते चन्द्रमाः। किमत्रासंभावनीयम्। अपि च गर्भारम्भसंभवे देवेन देव्या वदने विशंश्चन्द्रमा एव दृष्टः। तथा ममापि स्वप्ने पुण्डरीकस्य दर्शनं समुपजातम्। तदुत्पत्तिं प्रति तयोर्नास्त्येव संदेहः। विनष्टयोः शरीरस्याविनाशः कथं कथं वा पुनर्जीवितप्रतिलम्भ इत्यत्राप्यखिललोकप्रख्यातप्रभावममृतमेवैकं कारणमावेदितम्। तच्चन्द्रमसि विद्यत इत्येषास्त्येव वार्ता। तत्सर्वमेतदित्थमेवावगच्छतु देवः। अन्यच्च तादृशाकारकान्तेरखिललोकाह्लादकारिणोऽन्यत्र संभव एव नास्ति। तत्कल्याणैर्न चिराच्छापावसाने निर्वर्तितगन्धर्वसुतोद्वाहमङ्गलस्य गलन्नयनपयसो वध्वा सह पादयोः पततः पुत्रत्वमुपगतस्य चन्द्रापीडनामान्तरितस्य

जतामुपागतः इत्यनुवर्तते, दशरथस्य चत्वारः पुत्राः—रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः—विष्णोः एव अंशाः आसन्। तथा एव मथुरायां नगर्यां वसुदेवस्य आत्मजत्वमुपगतः भगवान् विष्णुः कृष्णरूपेण अवतीर्णः। तत् तस्मात् मनुष्येषु मर्त्येषु देवतानाम् उत्पत्तिः जन्म नैव असंभाविनी असंभवा अस्तीति शेषः। न च पूर्वे च ते मनुष्याः प्रागुक्ताः मानुषाः दशरथादयः तेभ्यः देवः भवान् गुणैः दया-दाक्षिण्यादिभिः न हीयते न हीनो भवति। न च चन्द्रमाः भगवतः कमलनाभात् विष्णोः अतिरिच्यते अधिकः अस्ति। अत्र अस्मिन् विषये किम् असंभावनीयम् असंभाव्यम् न किमपीति काकुः। अपि च गर्भारम्भस्य सम्भवे गर्भाधानसमये इत्यर्थः देवेन भवता देव्या विलासवत्या वदने मुखे आनने विशन् प्रवेशं कुर्वन् चन्द्रमाः एव दृष्टः विलोकितः। तथा मम अपि स्वप्ने स्वप्नावस्थायां पुण्डरीकस्य कमलस्य दर्शनं समुपजातम् सम्भूतम्। तत् तस्मात् तयोः चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः उत्पत्तिं जननं प्रति तयोः चन्द्र-पुण्डरीकयोः सन्देहः संशयः नास्ति एव। विनष्टयोः नाशं प्राप्तयोः तयोः चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः शरीरस्य कथम् अविनाशः नाशाभावः कथं वा पुनः जीवितस्य प्राणानां प्रतिलम्भः प्राप्तिः इत्यत्र अस्मिन् सम्बन्धे अपि अखिलेषु लोकेषु जगत्सु प्रख्यातः प्रसिद्धः प्रभावः सामर्थ्यं यस्य तथाभूतम् अमृतं पीयूषम् एव एकं कारणं हेतुः आवेदितं कथितम् अस्तीति शेषः। तत् अमृतं चन्द्रमसि चन्द्रे विद्यते वर्तते—इति एषा वार्ता प्रवृत्तिः अस्ति एव। तत् तस्मात् एतत् सर्वं वृत्तम् इत्थम् एव यथा त्वरितकेन आवेदितम् अर्थात् सत्यमेवेत्यर्थः देवः भवान् अवगच्छतु जानातु। **अन्यच्च**—अन्यत् च एतदतिरिक्तम्, तादृशः तथाविधः आकारः आकृतिश्च कान्तिः दीप्तिश्च यस्य तथाभूतस्य अखिलस्य लोकस्य संसारस्य आह्लादम् आनन्दं करोति जनयतीत्येवंशीलस्य जनस्य अन्यत्र अन्यस्मिन् स्थाने सम्भवः सम्भावना एव नास्ति। तत् तस्मात् कल्याणैः मङ्गलैः मङ्गलकृत्यपूर्वकमित्यर्थः न चिरात् शीघ्रम् एव शापस्य अवसाने समाप्तौ निर्वर्तितः सम्पादितः गन्धर्वसुतया कादम्बर्या सह उद्वाहः विवाहः एव मङ्गलं येन तथाभूतस्य, गलत् स्रवत् नयनाभ्यां नेत्राभ्यां पयः जलम् अश्रु इत्यर्थः यस्य तस्य, वध्वा

बाँटकर राजर्षि दशरथ के, तथा मथुरा में वसुदेव के पुत्र बने। इसलिये मनुष्यों में देवताओं की उत्पत्ति कोई असम्भव नहीं और न ही आप गुणों में पूर्वोक्त पुरुषों से कम हैं, न ही चन्द्रमा भगवान विष्णु से बड़ा है। इस विषय में क्या असम्भव है ? इसके अतिरिक्त, गर्भारम्भ होते समय आपने चन्द्रमा को रानी के मुख में प्रवेश करते देखा है। एवं मुझे भी स्वप्न में पुण्डरीक का दर्शन हुआ था। इसलिये उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में चन्द्रमा और पुण्डरीक का सन्देह ही नहीं। दोनों के मृत होने पर किस तरह शरीर का नाश न होना और किस तरह फिर प्राणों का आ जाना—इस विषय में भी त्रिभुवन में प्रसिद्ध प्रभाव वाला अमृत ही एकमात्र कारण कहा गया है। वह (अमृत) चन्द्रमा में है—यह बात है ही। इसलिये यह सब आप ऐसा ही समझें। इसके अतिरिक्त, उस तरह की आकृति और कान्ति वाला तथा सकल जगत का आह्लाददायक अन्यत्र हो ही नहीं सकता। इसलिये मंगल (कृत्य) पूर्वक शीघ्र ही शाप समाप्ति पर गन्धर्वपुत्री (कादम्बरी) के साथ विवाह-मंगल किये, आँखों से (आनन्द के) आँसू बहाये,

लोकपालस्यैव चन्द्रमसो दर्शनेनाजन्मकृतमेव संतापं परित्यक्ष्यति देवः। तयोरेवं शापोऽस्माकं पुनर्वर एव। तदस्मिन्वस्तुनि मनागपि न देवेन देव्या वा शोकः कार्यः। मङ्गलान्यभिधार्यन्ताम्। अभिमतदेवताराधनेन धनातिसर्जनेन चान्यजन्मोपार्जितं कुशलमभिवर्ध्यताम्। अकुशलमपि यमनियमकष्टव्रतोपवासादिना तपःपरिक्लेशेन क्षयमुपनीयताम्। अपरमपि यद्यदेवं गते श्रेयस्करं श्रूयते ज्ञायते वा तत्तदद्यैवारभ्य क्रियतां कार्यतां च कर्म। न खलु वैदिकानामवैदिकानां कर्मणामसाध्यं नाम किंचिदपि। उत्पत्तिरपि तयोः कृच्छ्रलब्धयोरीदृशेनैव प्रकारेणोपजाता।'

इत्युक्तवति शुकनासे सशोक एव राजा प्रत्यवादीत्। 'सर्वमेतद्यदार्येणाभिहितं

पत्न्या सह पादयोः चरणयोः पततः प्रणामं कुर्वतः इत्यर्थः, पुत्रत्वम् उपगतस्य प्राप्तस्य पुत्रीभूतस्येत्यर्थः चन्द्रापीडनाम्ना अन्तरितस्य व्यवहितस्य लोकपालस्य लोकरक्षकस्य एव चन्द्रमसः चन्द्रस्य दर्शनेन अवलोकनेन आजन्म कृतम् जन्मनः प्रभृति विहितम् एव संतापं तापं देवः भवान् परित्यक्ष्यति मोक्ष्यति दूरीकरिष्यतीत्यर्थः। तयोः चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः एवंविधः शापः अस्माकं पुनः तु वरो देवाद् वृतम् (वरो देवाद्वृते श्रेष्ठे' इत्यमरः]। तत् तस्मात् अस्मिन् वस्तुनि विषये देवेन महाराजेन देव्या महिष्या च मनाक् ईषत् अपि शोकः दुःखं न कार्यः करणीयः। मङ्गलानि मङ्गलोचित-वस्तूनि अभिधार्यन्ताम् ध्रियन्ताम्। अभिमता दृष्टा वाञ्छिता या देवता तस्या आराधनेन प्रसादनेन, धनस्य वित्तस्य अतिसर्जनेन दानेन च अन्यस्मिन् पूर्वस्मिन् जन्मनि उपार्जितं सञ्चितमित्यर्थः कुशलं कल्याणम् अभिवर्ध्यताम् वृद्धिं नीयताम्, अकुशलम् अशुभम् अपि यमाः अहिंसा-सत्यास्तेयादिरूपाः च नियमाः ब्रह्मचर्यादयः च कष्टव्रतं चान्द्रायणादि च उपवासाः औपवस्तानि च ('औपवस्तं तूपवासे' इत्यमरः) अनशनानि यावत् आदौ यस्य तथाभूतेन तपसः तपस्यायाः क्लेशेन कष्टेन क्षयं नाशम् उपनीयताम् प्राप्यताम्, **अपरमपि**—अपरम् अन्यत् अपि यत् यत् एवं गते स्थितौ इत्यर्थः श्रेयस्करं कल्याणापादकं श्रूयते आकर्ण्यते अथवा ज्ञायते बुध्यते तत् तत् अद्य एव आरभ्य प्रभृति क्रियताम् विधीयतां कार्यतां कर्तुं प्रेर्यतां कर्म कृत्यम्। न खलु निश्चयेन वैदिकानां वेदप्रोक्तानाम् अवैदिकानां पुराणादिप्रोक्तानां कर्मणाम् अनुष्ठानानां किञ्चित् अपि असाध्यम् साधयितुम् अशक्यं नामेति कोमलामन्त्रणे। तयोः चन्द्रापीड-शुकनासयोः उत्पत्तिः जन्म अपि कृच्छ्रेण कठिनतया लब्धयोः प्राप्तयोः ईदृशेन एवंविधेन एवं प्रकारेण रीत्या उपजाता सम्पन्ना।

इत्युक्त०—इति शुकनासे उक्तवति कथितवति सति सशोकः शोकयुक्तः एव राजा प्रत्यवादीत् प्रत्युवाच—यत् आर्येण भवता अभिहितम् कथितम् एतत् सर्वं कः अन्यः भवद्-भिन्नः

वधू के साथ-साथ चरणों में पड़े, पुत्र बने, चन्द्रापीड़ नाम से रूपान्तरित हुये लोकपाल चन्द्रमा के ही दर्शनों से आप आजन्म का सन्ताप छोड़ बैठेंगे। उन दोनों का इस प्रकार का शाप हमारे लिये वरदान ही है, इसलिये इस बात के विषय में न आप और न रानी को शोक करना चाहिये। मांगलिक वस्तुयें धारण कीजिये। इष्ट देवता की आराधना तथा धन-दान से पूर्व जन्म में अर्जित कल्याण की वृद्धि कीजिये। अकल्याण का भी यम, नियम, चान्द्रायण, उपवास आदि तथा तपस्या के क्लेश द्वारा क्षय कीजिये। और भी जो-जो ऐसी स्थिति में श्रेयस्कर कार्य सुनने में आता है अथवा समझा जाता है, उस-उस को आज से ही लेकर कीजिये और करवाइये। वास्तव में वैदिक अथवा अवैदिक अनुष्ठानों के आगे भला क्या असाध्य है! बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुए उन दोनों—चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन—की उत्पत्ति भी तो इसी प्रकार हुई थी।

शुकनास के यह कहने पर, शोक-पूर्ण होते हुये भी राजा ने उत्तर दिया—'यह सब कुछ

कोन्यो बुध्यते। केन वापरेण वयं परिबोधनीयाः। कस्य वापरस्यास्माभिर्वचनं करणीयम्। किंतु तद्वत्सस्य मे वैशम्पायनदुःखात्स्फुटनं हृदयस्याग्रतो दृष्टिलग्नं सर्वमेवान्यदन्तरयति। तदेव पश्यामि। तदेव शृणोमि। तदेवोत्प्रेक्षे। तदेवमप्रत्यक्षिते वत्सस्य वदने संस्तम्भमेवात्मनो न शक्नोमि कर्तुम्। यत्र च ममायमीदृशः प्रकारस्तत्र देव्याः परिबोधनं दूरापेतमेव। तद्गमनादृतेन्य उपाय एव नास्ति जीवितसंधारणाय। इत्येवमवधारयत्वार्यः।' इत्युक्तवति तारापीडे चिरात्तनयपीडया तत्पुरः परित्यज्य लज्जां विलासवती कृताञ्जलिरुच्चैर्जगाद। 'आर्यपुत्र, यद्येवं तथापि किमपरं विलम्बितेन। निर्गता एव वयम्। दीयतां प्रयाणम्। उत्ताम्यति मे हृदयं वत्सस्य दर्शनाय। दुःखापनोदार्थं स्फुटनमङ्गीकृतमासीत्। तदपि संप्रति दर्शनकाङ्क्षया न रोचत एव। जानामि वरं दीर्घकालमपि दुःखान्यनुभवन्ती सकृदपि वत्सस्य दर्शनाय जीवितास्मि। न पुनरसह्यदुःखोपशान्तये संप्रत्येव मृतास्मीति। तदस्य पुनराशानिबन्धनस्य सर्वात्ययनिवारणो-

---

जानाति न कोऽपीति काकुः। केन वा अपरेण अन्येन जनेन वयम् परिबोधनीयाः प्रतिबोधं प्रापणीयाः। अपरस्य अन्यस्य कस्य जनस्य वचनं कथनम् अस्माभिः करणीयं कार्यम्। किन्तु मे वत्सस्य पुत्रस्य वैशम्पायनस्य दुःखात् कष्टात् तत् हृदयस्य स्फुटनं विदरणम् अग्रतः पुरतः दृष्टौ दृशि लग्नं स्थितमित्यर्थः अन्यत् अपरं सर्वम् एव अन्तरयति व्यवदधाति। तत् एव दृश्यमिति शेषः पश्यामि विलोकयामि। तत् तत् एव शृणोमि कर्णे करोमि। तत् एव उत्प्रेक्षे कल्पयामि। तत् तस्मात् एवं वत्सस्य पुत्रस्य वदने मुखे अप्रत्यक्षिते असाक्षात्कृते सति आत्मनः संस्तम्भं स्थिरीकरणम् एव कर्तुं न शक्नोमि पारयामि। यत्र यस्मिन् विषये च मम अयम् एष प्रकारः दशेत्यर्थः तत्र देव्याः परिबोधनं दूरापेतम् एव दूरस्यैव वार्तेत्यर्थः। तत् तस्मात् गमनात् अच्छोदसरोवरे प्रयाणात् ऋते अन्तरेण जीवितस्य प्राणानां संधारणाय रक्षणायेत्यर्थः उपायः साधनम् एव नास्ति—इति एवम् आर्यः भवान् अवधारयतु निश्चिनोतु'। इति एवं तारापीडे उक्तवति कथितवति सति चिरात् चिरकालात् तनयस्य पुत्रस्य पीडया वेदनया तस्य शुकनासस्य पुरः अग्रे लज्जां त्रपां परित्यज्य विहाय विलासवती कृतः बद्धः अञ्जलिः यया तथाभूता उच्चैः तार-स्वरेण जगाद अकथयत्—'आर्यपुत्र! नाथ! यदि एवम् अस्ति स्थितिः इति शेषः तथापि तर्हि किम् अपरम् अन्यत् विलम्बितेन विलम्बेन! निर्गताः निष्क्रान्ताः एव वयम् चलाम इत्यर्थः (अत्र लडर्थे निष्ठा)। प्रयाणं प्रस्थानं दीयतां क्रियतामित्यर्थः। वत्सस्य पुत्रस्य दर्शनाय अवलोकनाय मे हृदयं स्वान्तम् उत्ताम्यति आकुलीभवति। दुःखस्य पुत्र-शोकस्य अपनोदार्थं दूरीकरणार्थं मया स्फुटनं स्वहृदयस्य विदरणम् अङ्गीकृतं स्वीकृतम् आसीत्। तत् अपि संप्रति अधुना पुत्रस्य दर्शनस्य विलोकनस्य आकाङ्क्षया इच्छया मह्यं न रोचते स्वदते एव। जानामि मन्ये दीर्घकालं चिरकालम् अपि दुःखानि कष्टानि अनुभवन्ती भुञ्जाना वरं श्रेष्ठं सकृत् एकवारम् अपि वत्स्य पुत्रस्य दर्शनाय विलोकनार्थं जीविता धृतप्राणा अस्मि अहमिति शेषः। पुनः किन्तु असह्यस्य सोढुमशक्यस्य

जो आपने कहा है, दूसरा कौन जानता है? अथवा दूसरा कौन हमें समझा सकता है? किन्तु वैशम्पायन के दुःखों के कारण मेरे पुत्र के हृदय का वह फट जाना मेरे आँखों के आगे घूमता हुआ अन्य सभी (बातों) को दबा देता है। मैं उसी (दृश्य) को देखता रहता हूँ। उसी को सुनता जाता हूं। उसी की कल्पना में रहता हूँ। इसलिये पुत्र का मुख प्रत्यक्ष किये बिना मैं अपने को संभाल नहीं सकता हूँ। जहाँ मेरा अपना यह हाल है, वहाँ रानी को समझाने की बात तो दूर की है। अतः प्राण-रक्षा हेतु वहाँ जाने के अतिरिक्त दूसरा चारा ही नहीं—यह आप निश्चय समझें।' तारापीड के यह कहने पर चिरकाल से वेदना के कारण उनके आगे लज्जा को त्याग विलासवती अञ्जलि बाँधे जोर-जोर से बोली—'प्राणनाथ, यदि ऐसा है, तो और विलम्ब से क्या? हम चल ही पड़ें। प्रस्थान कीजिये। मेरा हृदय पुत्र देखने हेतु अकुला रहा है। दुःख दूर करने के लिये मैंने अपने हृदय का फट जाना स्वीकार कर लिया था, लेकिन

पायस्य वत्साननावलोकनोत्सुकस्य गमनमपि हृदयस्य तावद्विनोदतां व्रजतु।' इति वदन्तीमेव विलासवतीमासाद्यान्यतमः शुकनासस्यात्मसमः परिणतवयाः षट्कर्मा समुपसृत्य स्वस्तिपूर्वकं व्यज्ञापयत्। 'देवि सर्वत एवापरिस्फुटेन वार्ताकलकलेनाकुलीकृतहृदया मनोरमा स्वयमेव धावन्त्यागता। राज्ञो लज्जमाना नोपगता स्थानमिदम्। तदेषा मातृगृहस्य पृष्ठतस्तिष्ठति। पृच्छति च देवीम्। किमेभिः कथितम्। जीवति मे वत्सो वैशम्पायनः। स्वस्थशरीरो वा। ढौकितो वा पुनर्युवराजस्य। क्व वर्तते। तावागमिष्यतो वा कियद्भिर्दिवसैः' इति राजा तु तदुपरतिवार्ताया अपि कष्टतममाकर्ण्य दीर्ण इव शुचा शतगुणीभूतशोकोत्प्लुताङ्गीं विलासवतीमवादीत्। 'देवि, न श्रुतं किंचिदपि

दुःखस्य उपशान्तये समाप्तये सम्प्रति एव अधुना एव न मृता न मृत्युं गता। तत् तस्मात् गमनम् प्रयाणम् अपि पुनः आशाया निबन्धस्य कारणस्य, सर्वे च अत्ययाः कृच्छ्राणि दोषा वा ('अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे दोषे दण्डेऽप्यथापदि' इत्यमरः) तेषां निवारणस्य दूरीकरणस्य उपायस्य साधनस्य वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य आननस्य मुखस्य अवलोकने दर्शने उत्सुकस्य समुत्कण्ठितस्य अस्य हृदयस्य तावत् इदानीं विनोदस्य मनोरञ्जनस्य कौतुकस्येति यावत् भावः ताम् व्रजतु गच्छतु विनोदीभवत्वित्यर्थः।' इति वदन्तीं कथयन्तीं विलासवतीम् आसाद्य प्राप्य अन्यतमः कश्चित् एकः शुकनासस्य आत्मसमः आत्मना तुल्यः परिणतं परिपक्वं वृद्धतामुपगतमिति यावत् वयः अवस्था यस्य तथाभूतः षट् षट्संख्यानि कर्माणि ब्राह्मोचितकार्याणि यानि मनुना प्रोक्तानि यथा—'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः॥ [१०.७५] यस्य तथाभूतः ब्राह्मणः समुपसृत्य अग्रे आगत्य 'स्वस्ति' इति पूर्वकं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा व्यज्ञापयत् न्यवेदयत्—'देवि, सर्वतः परितः एव अपरिस्फुटेन अस्पष्टेन वार्तायाः वृत्तान्तस्य कलकलेन कोलाहलेन आकुलीकृतं विह्वलीकृतं हृदयं यस्याः तथाभूता मनोरमा शुकनासस्य पत्नी स्वयम् आत्मना एव धावन्ती प्रद्रवन्ती आगता अस्ति। राज्ञः नृपात् लज्जमाना त्रपमाणा इदं स्थानं प्रदेशं न आगता आयाता। तत् तस्मात् एषा मनोरमा मातृगृहस्य मातृमन्दिरस्य पृष्ठतः पृष्ठभागे तिष्ठति स्थितास्ति। देवीं भवतीं च पृच्छति—'एभिः वार्ताहरैः किं कथितं भणितम्? मे वत्सः पुत्रः वैशम्पायनः जीवति प्राणिति किम्? स्वस्थं सुस्थं शरीरं यस्या तथाभूतो वा अस्ति? युवराजस्य चन्द्रापीडस्य वा पुनः ढौकितः मिलितः किम्? क्व वर्तते अस्ति? तौ चन्द्रापीड-वैशम्पायनौ कियद्भिः कतिभिः दिवसैः दिनैः आगमिष्यतः आयास्यतः' इति। राजा तारापीडः तु तयोः चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः या उपरतिः मृत्युः तस्याः वार्तायाः वृत्तान्तस्य अपेक्षया अपि कष्टतमम् अतिशयेन कष्टकरम् आकर्ण्य श्रुत्वा शुचा शोकेन दीर्णः (हृदये) विदीर्ण इवेत्युत्प्रेक्षायाम् शतेन शत-संख्यया गुणीभूतः गुणितः यः शोकः शुक् तेन उत्प्लुतं

अब दर्शन की आकांक्षा से वह अच्छा लगता ही नहीं। मैं समझती हूँ कि ठीक ही हुआ जो चिरकाल दुःख भोगती हुई भी मैं एक बार भी पुत्र के दर्शन हेतु जीवित रही, किन्तु असह्य दुःख मिटाने हेतु अभी भी मरी नहीं। इसलिये आशा के कारण एवं सभी कष्टों के निवारण के साधनभूत और पुत्र का मुख देखने हेतु उत्सुक बने इस हृदय के लिये वहाँ जाना भी फिलहाल एक विनोद होना चाहिये'।।यह कहती हुई ही विलासवती के पास पहुँचकर कोई एक शुकनास का आत्म-तुल्य, वृद्ध, षट्कर्मी ब्राह्मण आगे बढ़कर 'स्वस्ति' कथन-पूर्वक निवेदन कर बैठा—'रानी, चारों ओर फैले, अस्पष्ट समाचार के हल्ले के कारण हृदय में अकुलाई हुई मनोरमा स्वयमेव दौड़े-दौड़े आई हुई है। राजा से लजाती हुई इस जगह नहीं आई। इसलिये वे मातृ-मन्दिर के पीछे खड़ी है, और आप से पूछ रही हैं कि इन सन्देशवाहकों ने क्या कहा है? क्या मेरा पुत्र वैशम्पायन जीवित है? अथवा राजी-खुशी है? अथवा युवराज को मिला है? कहाँ हैं? वे दोनों कितने दिनों में आ जायेंगे?' उनके मरण-समाचार से भी अधिक कष्टकारक (प्रश्न) सुनकर राजा शोक से विदीर्ण हुआ-जैसा सौगुना बढ़े हुये शोक से व्याप्त शरीर वाली विलासवती को

वत्सयोः प्रियसख्या ते । अन्यतश्च श्रुत्वा कदाचिज्जीवितेनैव वियुज्यते । तदुत्तिष्ठ स्वयमेव धैर्यमालम्ब्य सर्ववृत्तान्तानुकथनेन संस्थापय प्रियसखीं तथा यथार्यशुकनासेन सह यातव्यम् ।' इत्येवोत्थाप्य सपरिजनां विलासवतीं व्यसर्जयत् । आत्मनापि शुकनासेन सह गमनसंविधानमकारयत् ।

अथ तथा प्रस्थिते राजनि राजानुरागाच्चन्द्रापीडस्नेहेन चाश्चर्यदर्शनकुतूहलाय प्रथमगतपितृपुत्रभ्रातृमित्रस्वजनदर्शनाय च गृहरक्षकवर्जमुज्जयिन्याः सकल एव लोको गन्तुमुदचलत् । राजा तु शीघ्रगमनविघातहेतून्समस्तानेव निवर्त्य प्रलघुपरिकरः पिबन्निव पन्थानमेकदिवसेनेव परापतितुमीहमानः स्तोकत एवाध्वनः प्रभृत्युत्ताम्यता हृदयेन कियत्यध्वन्यद्यापि वर्तामहे कतिपयैर्दिवसैः परापताम इति मुहुर्मुहुस्तुरंगमारोपितं

पूर्णमित्यर्थः अङ्गं शरीरं यस्याः तथाभूताम् विलासवतीम् अवादीत् अकथयत्—'ते तव सख्या मनोरमा वत्सयोः पुत्रयोः चन्द्रापीडवैशम्पायनयोः किञ्चित् अपि न श्रुतम् आकर्णितम् । अन्यतः अन्येभ्यः श्रुत्वा आकर्ण्य कदाचित् सम्भवतः जीवितेन प्राणैः एव वियुज्यते वियुक्ता भवति म्रियते इत्यर्थः । तत् तस्मात् उत्तिष्ठ उत्थिता भव स्वयम् आत्मना एव धैर्यं धृतिम् आलम्ब्य आश्रित्य सर्वस्य निखिलस्य च वृत्तान्तस्य उदन्तस्य अनुकथनेन अन्वभिधानेन प्रियसखीं मनोरमां तथा संस्थापय समाश्वासय यथा आर्यशुकनासेन सह तया अपि यातव्यम् चलितव्यम्' । इति एव उत्थाप्य उत्थातुं प्रेर्य सपरिजनां सभृत्यवर्गां विलासवतीं व्यसर्जयत् गन्तुमादिशत् । आत्मना स्वयमपि च शुकनासेन सह गमनस्य संविधानं प्रबन्धम् अकारयत् कर्तुमादिशत् ।

अथ—राजनि तारापीडे प्रस्थिते प्रयाते सति राज्ञः तारापीडस्य अनुरागात् प्रीतेः चन्द्रापीडस्य स्नेहेन प्रेम्णा च आश्चर्यस्य विस्मयस्य दर्शने कुतूहलाय कौतुकाय प्रथमं पूर्वं गताः पितरः जनकाश्च भ्रातरः सहोदराश्च मित्राणि सखायश्च स्वजनाः आत्मीयजनाश्चेति तेषां दर्शनाय विलोकनाय च गृहस्य रक्षकम् अवेक्षकं वर्जयित्वा इति गृहरक्षकवर्जम् उज्जयिन्याः सकलः समस्तः एव लोकः जनः गन्तुम् यातुम् अचलत् चलितवान् । राजा तु शीघ्र-गमने त्वरित-चलने विघातः प्रतिबन्धः बाधेति यावत् तस्य हेतून् कारणीभूतान् समस्तान् सर्वान् एव निवर्त्य प्रत्यावर्त्य प्रकर्षेण अत्यन्तं लघुः स्वल्पः इत्यर्थः परिकरः परिवारः यस्य तथाभूतः सन् पन्थानं मार्गं पिबन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् एकेन दिवसेन दिनेन परापतितुं गन्तुं प्राप्तुमित्यर्थः ईहमानः इच्छन् स्तोकतः अल्पात् एव अध्वनः मार्गात् प्रभृति आरभ्य उत्ताम्यता आकुलीभवता हृदयेन 'अद्यापि कियति कियन्मात्रे अध्वनि मार्गे वर्तामहे स्मः ? कतिपयैः कतिभिः दिवसैः परापतामः गच्छामः

बोला—'रानी ! तुम्हारी सखी ने पुत्रों के सम्बन्ध में कुछ नहीं सुना है । दूसरों से सुनकर संभव है वह प्राण छोड़ बैठें । इसलिये उठो, स्वयं ही धैर्य का सहारा लिये, फिर सारा वृत्तान्त कहकर अपनी प्रिय सखी को ढाढस बँधाओ जिससे वह भी आर्य शुकनास के संग चल दें'—इस तरह राजा ने विलासवती उठाकर परिजन-सहित भेज दी । स्वयं भी शुकनास के साथ जाने की तय्यारी करा दी ।

तदनन्तर राजा के प्रस्थान करने पर राजा के अनुराग से, चन्द्रापीड के स्नेह से और अद्‌भुत वस्तु देखने के कौतुक के लिये तथा पहले गये हुये अपने अपने पिताओं, पुत्रों, भाइयों, मित्रों व आत्मीय जनों को देखने हेतु घर के रख वाले को छोड़कर उज्जयिनी के सारे लोग जाने के लिये निकल पड़े । किन्तु राजा शीघ्र गमन में बाधा के कारण बने उन सभी को लौटाकर, थोड़ा-सा भृत्य-वर्ग, साथ रखे, मार्ग को पीते हुये-जैसे एक ही दिन में पहुँचना चाहते हुये, थोड़े ही मार्ग से लेकर अकुलाते हुये हृदय से 'अभी हम मार्ग की कितनी दूरी

त्वरितकमाहूयाहूय पृच्छन्नविच्छिन्नकैः प्रयाणकैर्बहुभिरेव दिवसैराससादाच्छोदम्। आसाद्य च विकल्पशतदोलाधिरोहणदुःस्थितेनान्तरात्मना दूरस्थित एव प्रथममाप्ततमानश्ववारान्वार्तान्वेषणाय त्वरितकेन सार्धं प्रहितवान्।

अथ तैः सार्धमागच्छन्तम्, उज्झितात्मसंस्कारमलिनकृशशरीरम्, अवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गम्, उद्बाष्पदीनतरदृष्टिम्, जीवितलज्जया रसातलमिव प्रवेष्टुमीहमानम्, अहमहमिकया परस्परावरणेनैवात्मदर्शनमभिरक्षन्तम्, अक्षतमपि हतमिव, सपरिच्छदमपि मुषितमिव, जीवन्तमपि मृतमिव, ससंभ्रमकृतागमनमपि प्रतीपमाकृष्यमाणचरणमिव, अङ्गैरेव सह गलितोत्साहम्, बाष्पेणैव सह मुक्तात्मानम्, वैक्लव्येनैव

तत्र प्राप्ताः भवाम इत्यर्थः? इति मुहुर्मुहुः वारं-वारं तुरङ्गे अश्वे आरोपितं स्थापितं त्वरितकं बाल-सेवकम् आहूय आहूय आकार्य आकार्य पृच्छन् प्रश्नान् कुर्वन् अविच्छिन्नकैः निरन्तरैः मध्येमार्गं विश्राम-रहितैरिति यावत् प्रयाणकैः गमनैः वहन् चलन् राजा बहुभिः अनल्पैः एव दिवसैः अच्छोदम् अच्छोदसरोवरम् आससाद प्राप्तवान्, आसाद्य प्राप्य च विकल्पानां शङ्कानां शतम् एव दोला प्रेङ्खा [रूपकम्] तस्याम् अधिरोहणम् अवस्थानं तेन दुःस्थितेन दुःखितेन अन्तरात्मना मनसा दूरे स्थितः वर्तमान एव प्रथमं पूर्वम् अतिशयेन आप्ताः प्रामाणिकाः विश्वस्ता इति यावत् तान् अश्ववारान् सादिनः वार्तायाः वृत्तान्तस्य अन्वेषणाय गवेषणाय त्वरितकेन सार्धं सह प्रहितवान् प्रेषितवान्।

अथ—तैः अश्ववारैः सार्धं सह आगच्छन्तम् आयान्तम् राजपुत्रलोकमित्यनेन सम्बन्धः, उज्झितः परित्यक्तः आत्मनः स्वस्य संस्कारः स्नानमार्जनादिः तेन मलिनं मलोपेतं कृशं क्षामं च शरीरं देहः यस्य तम्, अवन्याः भुवः तले पृष्ठे निवेशितं न्यस्तम् उत्तमाङ्गं शिरः येन तम्, उद्बाष्पा उद्गताश्रुः अतिशयेन दीना दीनतरा अतिदुःखिता च दृष्टिः दृक् यस्य तम्, जीवितात् प्राणधारणात् लज्जया त्रपया रसातलं पातालम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रवेष्टुं प्रवेशं कर्तुम ईहमानम् इच्छन्तम्, अहमहमिकया 'अहं पूर्वम् अहं पूर्व' मिति स्पर्धया परस्परस्य अन्योन्यस्य आवरणेन आच्छादनेन व्यवधानेनेति यावत् एव आत्मनः स्वस्य दर्शनं राजकर्तृकप्रत्यक्षम् अभिरक्षन्तम् वारयन्तम्, मा तावद् राजा मां पश्यतु इति कृत्वा अहंपूर्विकया आत्मानं निह्नोतुं प्रयतमानम् इति भावः, अक्षतं क्षतिरहितं सुस्थमिति यावत् अपि हतं क्षतम् इव, परिच्छदः सामग्री तेन सह वर्तमानम् अपि मुषितं लुण्ठितम् इव, जीवन्तं प्राणन्तम् अपि मृतं गत-प्राणम् इव, सम्भ्रमः त्वरा तेन सहितं यथा स्यात्तथा कृतम् आगमनं येन तम् अपि प्रतीपं विपरीतं पश्चादिति यावत् आकृष्यमाणौ आकर्षणविषयीक्रियमाणौ चरणौ यस्य तम् इव, उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षा। अङ्गैः अवयवैः एव सह गलितः शिथिलीभूतः उत्साहः साहसं यस्य तम्, बाष्पेण अश्रुणा एव सह मुक्तः

पर हैं? कितने दिनों में पहुँचगे?' इस तरह घोड़े पर चढ़ाये त्वरितक को बार-बार बुलाकर पूछते हुए बिना विश्राम किये यात्रा में चलते चलते बहुत ही दिनों में अच्छोद सरोवर पहुँचे। और पहुँचकर सैकड़ों संकल्प विकल्पों की दोला पर चढ़े रहने के कारण दुःखित हुये मन से दूर ही स्थित हो उन्होंने पहले त्वरितक के साथ अत्यन्त विश्वस्त अश्वारोहियों को खबर लाने हेतु भेजा।

इसके बाद उनके साथ आते हुये, छोड़े हुये अपने [स्नानादि] संस्कार के कारण शरीर से मैले और कृश बने, भूतल पर सिर धरे, डबडबाई अतिदीन दृष्टि वाले, जीवित रहने के कारण लज्जा से पाताल में-जैसे प्रवेश करना चाहते हुये, स्पर्धा में एक दूसरे की ओट में आकर ही (राजा को) अपना मुख दिखाने से बचते हुये ठीक ठाक होते हुये भी मारे हुये-जैसे, साज-सज्जा साथ रखे हुये भी लुटे हुये-जैसे, जीते हुये भी मरे-जैसे, जल्दी-जल्दी आये हुये भी पैरों से पीछे खींचे जाते हुये–जैसे, अंगों के साथ ही उत्साह में ढीलेढाले,

सहोपसर्पन्तम्, मेघनादपुरःसरं सकलमेव चन्द्रापीडचरणतलनिबद्धजीवितं राजपुत्रलोकमालोक्योल्ल[1]सिततनयशोकोर्मिवेगाक्रान्तोऽप्युच्छ्वसित इव दृढीभूतचन्द्रापीडदेहाविनाशप्रत्ययान्तरात्मना निवृत्य सावरणपर्याणवर्तिनीं विलासवतीमवादीत्। 'देवि, दिष्ट्या वर्धसे। ध्रियते सत्यमेव शरीरेण वत्सः। येन सकल एवायं तच्चरणकमलानुजीवी राजपुत्रलोकस्तत्पादमूलादागत' इति। सा तु तदाकर्ण्य किंचिदात्मपाणिनैवोत्सारितावरणसिचयाञ्चला निश्चलया दृष्ट्या चिरमिवालोक्य तनयनिर्विशेषं राजपुत्रलोकमविच्छिन्नाश्रुधारापि धैर्यमुन्मुच्योच्चैरारटितवती 'हा वत्स, कथं सहपांशुक्रीडितस्यैतावतो राजपुत्रलोकस्य मध्ये त्वमेवैको न दृश्यसे' इति। तथारटन्तीं तु तां समाश्वास्य दूरत

आत्मा बुद्धिः मनोबलमिति यावत् येन तम् ['आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः' इत्यमरः] सहोक्तिः, वैक्लव्येन वैह्वल्येन एव उपसर्पन्तम् उपगच्छन्तम्, मेघनादः सेनापति-पुत्रः पुरःसरः अग्रगामी यस्य तम्, सकलं समस्तम् एव चन्द्रापीडस्य चरणयोः पादयोः तले निबद्धम् आश्रितं 'जीवितं जीवनं यस्य तम् राजपुत्राणां राजन्यानां लोकं समूहम् आलोक्य दृष्ट्वा उल्लसितः उत्थितः तनयस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य शोकस्य शुचः ऊर्मेः इवेति लुप्तोपमा, यः वेगः रयः तेन आक्रान्तः अधिष्ठितः व्याप्त इति यावत् अपि उच्छ्वसितः समाश्वसितः प्राणितं इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दृढीभूतः निश्चितीभूतः चन्द्रापीडस्य देहस्य अविनाशे अक्षतत्वे प्रत्ययः विश्वासः यस्य तथाभूतेन अन्तरात्मना हृदयेनेत्यर्थः निवृत्य प्रत्यागम्य सावरणम् आवरणसहितम् आच्छादितमित्यर्थः पर्याणं पल्ययनं तस्मिन् वर्तते इति तथोक्तां विलासवतीम् अवादीत् अकथयत्। देवि—दिष्ट्या भाग्येन वर्धसे वृद्धिं गतासि अर्थात् वर्धापनं वर्धापनम्, सत्यं यथार्थमेव वत्सः पुत्रः शरीरेण देहेन ध्रियते जीवति। येन यतः सकलः समग्रः एव अयं तस्य चन्द्रापीडस्य चरणौ कमले इवेति लुप्तोपमा अनुजीवितुम् शीलमस्येति तथोक्तः राजपुत्रलोकः राजन्यजनः तस्य चन्द्रापीडस्य पादयोः चरणयोः मूलात् समीपादित्यर्थः आगतः आयातः इति। सा विलासवती तु तत् आकर्ण्य श्रुत्वा किञ्चित् किमपि यथा स्यात्तथा आत्मनः स्वस्याः एव पाणिना हस्तेन उत्सारितम् अपाकृतम् आवरणस्य आच्छादनस्य सिचयस्य वसनस्य अञ्चलं प्रान्तः यया तथाभूता सती निश्चलया स्थिरया दृष्ट्या दृशा चिरमिव दीर्घकालम् तनयेन पुत्रेण निर्विशेषं समानं राजपुत्रलोकं राजसमूहम् आलोक्य दृष्ट्वा अविच्छिन्ना अविरता अश्रुणः बाष्पस्य धारा यस्याः सा अपि धैर्यं धृतिम् उन्मुच्य त्यक्त्वा उच्चैः तारम् आरटितवती आक्रान्दितवती—हा—'हा इति खेदे वत्स पुत्र! कथं सह सार्धं पांशुना रजसा क्रीडितस्य क्रीडां कृतवतः एतावतः इयतः राजपुत्रलोकस्य मध्ये त्वम् एव एकः केवलः कथं कस्मात् न दृश्यसे अवलोक्यसे?' इति। तथा तेन प्रकारेण आरटन्तीम् आक्रन्दन्तीं तां विलासवती समाश्वास्य आश्वासनं प्रापय्य

आँसुओं के ही साथ मनोबल गिराये, विह्वलता के ही साथ आगे बढ़ते हुये, मेघनाद को आगे रखे, चन्द्रापीड के चरण-तल पर आश्रित रखे जीवन वाले सभी राजा लोगों को देखकर उठ रही पुत्र-शोक की तरंगों के वेग से घिरा हुआ भी आश्वस्त हुआ-जैसा राजा चन्द्रापीड के शरीर के ठीकठाक होने के विश्वास को दृढ़ किये मन से पीछे मुड़कर पर्देवाली जीन पर स्थित विलासवती को बोला—'रानी, बधाई हो। सचमुच ही पुत्र शरीर से जीवित है। तभी तो उसके चरणों के समीप से आये हैं।' किन्तु रानी यह सुनकर अपने हाथ से ही थोड़ा सा आच्छादन-पट का आँचल हटाये, स्थिर दृष्टि से देर तक पुत्र-सदृश राजाओं को देख निरन्तर अश्रु-धारा बहाती हुई भी, धैर्य को छोड़कर जोर से चिल्ला बैठी—'हाय बेटा! साथ-साथ धूलि में खेलने वाले इतने सारे राजपुत्रों के बीच तुम ही एकमात्र क्यों नहीं दिखाई

---

१. उल्लसितनयनः।

एव राजा समं सर्वलोकेनावनितलनिवेशितोत्तमाङ्गं मेघनादमितो ढौकस्वेत्यादिश्यो-द्दिश्याप्राक्षीत्। 'मेघनाद, कथय को वृत्तान्तो वत्सस्य' इति स तु व्यज्ञापयत्। 'देव, चेतनाविरहाच्चेष्टामात्रकमेवापगतं शरीरे पुनर्ज्ञायते। दिवसे दिवसेऽप्यधिका कान्तिः समुपजायते' इति। राजा तु तच्छ्रुत्वा जीवितप्रतिलम्भे समुपजातप्रत्याशः 'श्रुतं देव्या मेघनादस्य वचनं, तदेहि चिरात्पुनः कृतार्थयामो दर्शनेनात्मानं पश्यामो वत्सस्य वदनम्' इत्यभिदधान एवाभिवर्धितगतिविशेषया करेण्वा महाश्वेताश्रममगमत्।

अथ सहसैव तच्चन्द्रापीडगुरुजनागमनमाकर्ण्य पुरःप्रकीर्णतारमुक्तानुकारिनयन-बिन्दुसंदोहा 'हा हतास्मि मन्दपुण्या दुःखैकभागिनी, न जानाम्येव विस्मृतमरणा किय-द्यावदहमनेनानेकप्रकारं खलीकारदानैकपण्डितेन दग्धवेधसा परं दग्धव्या।' इत्यभि-

---

दूरतः दूरात् एव सर्वः निखिलश्चासौ लोकः लोकाः तेन समं सार्धम् अवनितले भूतले निवेशितं न्यस्तम् उत्तमाङ्गं शिरः येन तथाभूतं मेघनादम् 'इतः अत्र ढौकस्व समीपमागच्छ' इति आदिश्य आज्ञाप्य उद्दिश्य लक्ष्यीकृत्य अप्राक्षीत् अपृच्छत्—'मेघनाद, कथय ब्रूहि वत्सस्य पुत्रस्य कः वृत्तान्तः उदन्तः वर्तते इति शेषः ?' इति। स तु व्यज्ञापयत् न्यवेदयत्—'देव महाराज, चेत-नायाः चैतन्यस्य विरहात् अभावात् चेष्टा एव चेष्टामात्रकम् शारीरिकचलनादिक्रियामात्रम् एव देहे अपगतं विनष्टं ज्ञायते प्रतीयते। दिवसे-दिवसे प्रतिदिवसम् अपि कान्तिः दीप्तिः अधिका विपुला समुपजायते उत्पद्यते' इति। तत् श्रुत्वा आकर्ण्य राजा तु जीवितस्य प्राणानां प्रतिलम्भे प्राप्तौ समुपजाता समुत्पन्ना प्रत्याशा जीवनाशा यस्य तथाभूतः सन् 'देव्या भवत्या मेघनादस्य वचनं कथनं श्रुतम् आकर्णितम् ? तत् तस्मात् एहि आगच्छ, चिरात् दीर्घकालानन्तरं पुनः मुहुः दर्शनेन पुत्रस्य दर्शनेन अवलोकनेन आत्मानं कृतार्थयामः कृतकृत्यीकुर्मः। वत्सस्य पुत्रस्य वदनं मुखं पश्यामः विलोकयामः' इति अभिदधानः कथयन् एव अभिवर्धितः वृद्धिं प्रापितः गतेः चलनस्य विशेषः तीव्रता यस्याः तथाभूतया करेण्वा हस्तिन्या महाश्वेतायाः आश्रमम् तपःस्थानम् अगमत् अगच्छत्।

अथ—सहसा अकस्मात् एव तत् चन्द्रापीडस्य गुरुजनस्य माता-पित्रोः आगमनम् आकर्ण्य श्रुत्वा: पुरः अग्रे प्रकीर्णः विकीर्णः प्रसारितः इति यावत् ताराः शुद्धा उज्ज्वलाः [मुक्ताशुद्धौ च तारः स्यात्' इत्यमरः] याः मुक्ताः मौक्तिकानि ताः अनुकुर्वन्ति विडम्बयन्तीत्येवंशीलाः ये नयनयोः बिन्दवः अश्रुपृषताः तेषां सन्दोहः समूहः यया तथाभूता, हा खेदे मन्दं स्वल्पं पुण्यं सुकृतं यस्याः सा, दुःखं कष्टम् एव एकं केवलं भजतीति तथोक्ता, अहं हता मारिता अस्मि, न जानामि वेद्मि एव विस्मृतं विस्मृतिं नीतं मरणं मृत्युः यया सा कियत् यावत् कियत्कालपर्यन्तम् अहम् अनेन खलीकारः अपकारः उत्पीडनमिति यावत् तस्य दाने प्रदाने एव एकस्मिन् केवले पण्डितेन चतुरेण दग्ध-वेधसा विधिहतकेन परम् अधिकं दग्धव्या दाह्या।' इति

देते ?' चिल्लाते हुये उसे धीरज बँधाकर राजा सभी लोगों के साथ-साथ भूतल पर माथा टेके हुये मेघनाद को 'इधर आओ' यह आज्ञा देकर और उसे लक्ष्य करके पूछने लगे—'मेघनाद, कहो पुत्र का क्या हाल-समाचार है ?' उसने निवेदन किया—'चेतना चली जाने के कारण मालूम होता है कि शरीर से केवल चेष्टा ही गई है। कान्ति दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक होती जा रही है।' यह सुनकर जीवित हो जाने की आशा रखे राजा बोले—'रानी तुमने मेघनाद का कथन सुना ? इसलिये आओ ! चिरकाल बाद फिर (पुत्र के) दर्शन से अपने को कृतार्थ करें, पुत्र का मुख देखें' यह कहते ही द्रुत गति से चलाई जा रही हथिनी से महाश्वेता के आश्रम को चल पड़े।

तत्पश्चात् एकाएक चन्द्रापीड के माता-पिता का आना सुनकर आगे उज्ज्वल मोतियों-जैसे अश्रु-बिन्दुओं का समूह बिखेरे—'हाय ! 'मन्दभागिनी, दुखमात्र भोगने वाली मैं मर गई। मैं जान ही नहीं रही हूँ कि केवल उत्पीड़न देने में ही चतुर यह जला विधाता इससे भी अधिक

दधानैव धावित्वा ह्रिया महाश्वेता गुहाभ्यन्तरमविशत्। चित्ररथतनयापि सत्वरोपसृतसखीकदम्बकावलम्बितशरीरा तूष्णीमेव मोहान्धकारम्। तदवस्थयोश्च तयोः शुकनासावलम्बितशरीरो राजा विवेशाश्रमपदम्। तदनु मनोरमावलम्बिता पुरःप्रधावितोऽप्लुतायततरदृष्टिः क्व मे वत्स इति पृच्छन्ती विलासवती। प्रविश्य च सहजयैव कान्त्याऽविरहितमुपरतसर्वप्रयत्नं सुप्तमिव तं पुत्रवत्सला तनयमालोक्य यावन्न परापतत्येव तारापीडस्तावद्विलासवती विधारयन्तीं मनोरमामप्याक्षिप्य दूरत एव प्रसारितबाहुलताद्वया रयोन्मुक्तजर्जराभिर्नयनजलधाराभिः प्रस्रवेण च सिञ्चन्ती महीतलम्, 'एहि जातदुर्लभक चिराद् दृष्टोऽसि, देहि मे प्रतिवचनम्, आलोकय सकृदपि माम्, अनुचितं तात तवैतदवस्थानम्, उत्थायाङ्कोपगमनेन मे संपादय तनयोचितं स्नेहम्, न चानाकर्णितपूर्वं

अभिदधाना कथयन्ती एव ह्रिया लज्जया धावित्वा द्रुतं गत्वा महाश्वेता गुहायाः गह्वरस्य अभ्यन्तरम् अन्तः अविशत् प्रविष्टवती। चित्ररथस्य गन्धर्वराजस्य तनया पुत्री कादम्बरी अपि सत्वरं शीघ्रं उपसृतः उपगतः यत् सखीनाम् आलीनां कदम्बम् समूहः तेन अवलम्बितं धृतं शरीरं यस्याः तथाभूता सती तूष्णीम् जोषम् एव मोहः मूर्छा एव अन्धकारः तम् 'अविशत्' इत्यनुवर्तते। तयोः महाश्वेता-कादम्बर्योः सा अवस्था दशा ययोः तथाभूतयोः सत्योः शुकनासेन अवलम्बितं शरीरं यस्य तथाभूतः राजा तारापीडः आश्रमस्य पदं स्थानं विवेश प्राविशत्। **तदनु**—तदनु तत्पश्चात् मनोरमया शुकनासपत्न्या अवलम्बिता दत्तहस्तावलम्बा पुरः अग्रे प्रधाविता प्रद्रुता उत्प्लुता अश्रुपूर्णा दृष्टिः दृक् यस्याः तथाभूता 'मे वत्सः पुत्रः क्व कुत्र अस्तीति' शेषः पृच्छन्ती प्रश्नविषयीकुर्वाणा विलासवती 'विवेश' इत्यनुवर्तते। प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा च सहजया नैसर्गिक्या एव कान्त्या द्युत्या अविरहितं पूर्णम् अपि उपरताः समाप्ताः सर्वे प्रयत्नाः शारीरिकचेष्टाः इत्यर्थः यस्य तथाभूतं सुप्तम् निद्रितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् तनयं पुत्रम् आलोक्य पुत्रे सुते वत्सला प्रीतिमती विलासवती—यावत् यावता कालेन तारापीडः न परापतति पश्चात् न आगच्छति एव तावत्–[गर्भितवाक्यमेतत्] विधारयन्तीं हस्तालम्बं ददतीं मनोरमाम् अपि आक्षिप्य दूरीकृत्य दूरतः दूरात् एव प्रसारितं विस्तारितं बाह्वोः भुजयोः लतयोः इवेति लुप्तोपमा द्वयं युगलं यया तथाभूता, रयेण वेगेन उन्मुक्ताः त्यक्ताः अत एव जर्जराः छिन्न-भिन्नाः ताभिः नयनजलस्य अश्रुणः वाष्पस्य धाराभिः परम्पराभिः प्रस्रवेण प्रस्रुतस्तन्येन च महीतलं धरातलं सिञ्चन्ती आर्द्रयन्ती—'जातश्चासौ दुर्लभकश्च हे दुर्लभ पुत्र, एहि आगच्छ, चिरात् बहुतिथात् कालात् दृष्टः विलोकितः असि, मे मह्यं प्रतिवचनम् उत्तरं देहि प्रयच्छ, सकृत् एकवारम् अपि माम् आलोकय पश्य, तात प्रिय, तव एतत् अवस्थानम् अवस्थितिः अनुचितम् न योग्यम्, उत्थाय उत्थितो भूत्वा मे मम अङ्के क्रोडे उपगमनेन उपसर्पणेन तनयस्य पुत्रस्य उचितं योग्यं स्नेहं प्रीतिं संपादय कुरु, बाल्ये

कब तक मुझे तरह–तरह से जलाता रहेगा।' यह कहती हुई ही लज्जा के मारे दौड़कर महाश्वेता गुफा के भीतर जा घुसी। चित्ररथ की पुत्री (कादम्बरी) भी शीघ्र पास आये सखीगण द्वारा शरीर से थामी हुई चुपचाप ही मूर्छा के अन्धकार में जा घुसी। उन दोनों के ऐसी हालत में होते हुये शरीर से शुकनास का सहारा लिये राजा ने आश्रम के स्थान में प्रवेश किया। तत्पश्चात् मनोरमा द्वारा थामी, आगे दौड़ी, अश्रु भरी दीर्घ दृष्टि वाली 'मेरा बच्चा कहाँ है ?' पूछती हुई विलासवती प्रविष्ट हुई। प्रवेश करके स्वाभाविक कान्ति से युक्त, सभी चेष्टायें छोड़े, सोये पड़े-जैसे उस पुत्र को देख पुत्र-वत्सला विलासवती—जब तक तारापीड पीछे आ भी नहीं पाये थे, तभी—शरीर को थामे हुये मनोरमा को धकेल कर दूर से ही दोनों हाथ फैलाये, वेग से गिरने के कारण छिन्न-भिन्न अश्रुजल-धाराओं तथा स्तनों से चू रहे दुग्ध से पृथिवी को सींचती हुई 'आओ दुर्लभ बच्चे ! बहुत समय बाद देखने में आये हो; मुझे उत्तर दो; एक बार भी मुझे देख लो; हे तात, तुम्हारा इस प्रकार पड़ा रहना अनुचित है; उठकर गोद में आने से

बाल्येपि त्वया मद्वचनम्, अद्य किमेवं विलपन्त्या अपि न शृणोषि, जात केन रोषितोस्येषा तोषयामि वत्स पादयोर्निपत्य, पुत्र चन्द्रापीड प्रणम तावत्प्रत्युद्गम्य त्वत्स्नेहादेवातिदूरमागतस्यापि पितुः पादौ, क्व सा गता ते गुरुभक्तिः, क्व ते गुणाः, क्व सः स्नेहः, क्व सा धर्मज्ञता, क्व तत्पितृपक्षपातित्वम्, क्व सा बन्धुप्रीतिः, क्व सा परिजनवत्सलता, कथमभाग्यैर्मे सर्वमेकपद एवोत्सृज्यैवमौदासीन्यमवलम्ब्यावस्थितोसि, अथवा यथा ते सुखं तथा तिष्ठ वयमुदासीनहृदयास्त्वयि', इति कृतार्तप्रलापा समुपसृत्य पुनः पुनर्गाढमालिङ्गयाङ्गानि शिरः समाघ्राय कपोलौ चुम्बित्वा चन्द्रापीडस्य चरणावुत्तमाङ्गे कृत्वोन्मुक्तकण्ठमरोदीत्। तथा रुदन्तीं तु तामन्तरितनिजपीडस्तारापीडश्चन्द्रापीडमपरिष्वज्यैव सर्वप्रजापीडापहरणक्षमाभ्यां भुजाभ्यामवलम्ब्याब्रवीत्। 'देवि, यद्यप्यावयोः

बाल्यावस्थायाम् अपि त्वया मम वचनं न पूर्वम् आकर्णितं श्रुतम् इत्यना० न, अद्य किं कस्मात् एवं विलपन्त्या आक्रन्दन्त्या अपि न शृणोषि आकर्णयसि, हे जात पुत्र, केन रोषितः रोषं प्रापितः असि, वत्स हे पुत्र, पादयोः चरणयोः निपत्य पतित्वा एषा इयम् अहं तोषयामि प्रसादयामि, हे पुत्र चन्द्रापीड! तावत् आदौ प्रत्युद्गम्य अभिगम्य त्वयि स्नेहः प्रीतिः तस्मात् अतिदूरं दविष्ठम् आगतस्य आयातस्य अपि पितुः जनकस्य पादौ चरणौ प्रणम, नमस्कुरु ते तव सा प्रसिद्धा गुरुषु मातापित्रादिषु भक्तिः आराध्यत्वेन सेवा क गता? ते गुणाः शौर्यादयः क? स्नेहः प्रीतिः क? धर्मं जानाति वेत्तीत्येवंशीलस्य भावः धर्मज्ञता क? पितरि जनके पक्षपातित्वं पक्षपातः स्नेहः इतियावत् क? बन्धुषु बान्धवेषु प्रीतिः स्नेहः क? परिजने भृत्यवर्गे वत्सलता वत्सवत् प्रेम क? मे मम अभाग्यः दुर्दैवैः एकपदे सहसा एव सर्वम् उत्सृज्य परित्यज्य कथं कस्मात् औदासीन्यं ताटस्थ्यम् वैराग्यैमिति यावत् अवस्थितः असि। अथवा यथा ते सुखं भवति तथा तिष्ठ; वयं त्वयि विषये उदासीनं तटस्थं हृदयं येषां तथाभूताः स्मः' इति कृतः आर्तः करुणः प्रलापः विलापः यया सा समुपसृत्य उपगम्य पुनः पुनः वारंवारम् अङ्गानि अवयवान् गाढं निविडं यथा स्यात्तथा आलिङ्गय आश्लिष्य, शिरः समाघ्राय घ्रात्वा चुम्बित्वेत्यर्थः कपोलौ गण्डस्थले चुम्बित्वा चन्द्रापीडस्य चरणौ पादौ उत्तमाङ्गे शिरसि कृत्वा धृत्वेत्यर्थः उन्मुक्तः त्यक्तः कण्ठः गलः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अत्युच्चैरिति यावत् अरोदीत् रुदितवती। **तथा**—तथा तेन प्रकारेण रुदन्तीम् क्रन्दन्तीं ताम् स्वमहिषीम् अन्तरिता व्यवहिता अगणितेति यावत् निजा स्वकीया पीडा वेदना येन तथाभूतः तारापीडः चन्द्रापीडम् अपरिष्वज्य अनालिङ्गय एव सर्वाः निखिलाश्च ताः प्रजाः लोकाः तासां पीडायाः दुःखस्य अपहरणस्य निवारणस्य क्षमाभ्यां समर्थाभ्यां भुजाभ्यां बाहुभ्यां अवलम्ब्य गृहीत्वा

पुत्रोचित स्नेह करो; बचपन में भी तुमने मेरी कही कभी अनसुनी नहीं की; आज क्यों विलपते हुये मेरी नहीं सुनते। बेटा! किसने तुम्हें कुपित किया। यह मैं आज पैर पकड़कर मनाती हूँ; पुत्र चन्द्रापीड़! अगवानी करके तुम्हारे स्नेह के कारण बहुत दूर से आये हुये पिता के चरणों में पड़कर पहले प्रणाम करो; तुम्हारी वह पितृ-भक्ति कहाँ गई। तुम्हारे वे गुण कहाँ गये। कहाँ गई तुम्हारी वह धर्मज्ञता। कहाँ है पिता के प्रति वह पक्षपात। वह बन्धु-प्रीति कहाँ है। भृत्यवर्ग 'पर वह प्रीति कहाँ गई? मेरे दौर्भाग्य से एकदम सब कुछ छोड़-छाड़कर ही क्यों वैराग्य का पल्ला पकड़े बैठे हो? अथवा जिस तरह तुम्हें सुख हो, वैसे ही सही, तुम्हारे प्रति हम हृदय से उदासीन हो गए हैं' इस तरह अति विलाप किये, पास जाकर बार-बार अंगों को कसकर आलिंगन किये, शिर सूँघकर, गालों को चूम के, चन्द्रापीड़ के चरण माथे से लगाकर गला फाड़-फाड़ रोने लगी। अपनी पीड़ा दबाये, चन्द्रापीड़ का आलिंगन ही न करके तारापीड़ उस तरह क्रन्दन करती हुई रानी को सारी प्रजा का दुःख-निवारण में समर्थ अपनी दोनों भुजाओं से सँभालकर

सुकृतैरपत्यतामुपगतस्तथापि देवतामूर्तिरेवायमशोचनीयः। तदुन्मुच्यतामयमिदानीं मनुष्यलोकोचितः शोचितव्यवृत्तान्तः। अस्मिञ्छोके कृते न किंचिदपि भवति। केवलं गल एव स्फुटति रटतो न हृदयम्। निरर्थकं प्रलपितमेव निर्याति वदनान्न जीवितम्। निरासङ्गं नयनजलमेव पतति न शरीरम्। अपि च वत्सस्यादर्शनमात्रमेवावयोः पीडाकरम्। तच्चैवमालोक्यमाने मुखेऽस्य दूरापेतम्। अपरमस्यामवस्थायामावाभ्यामपि तावत्परमवष्टम्भं कृत्वा मनोरमा शुकनासश्च संधारणीयौ ययोर्लोकान्तरितो वैशम्पायनः। तिष्ठतां तावदेतावपि। यस्याः प्रभावात्पुनरनुभवनीयो वत्सस्य जीवितप्रतिलम्भाभ्युदयमहोत्सवः सैवेयं गन्धर्वराजतनया वधूस्तेऽस्मदागमनशोकोर्मिसंक्रान्तिमूढा सनामग्रहण-

---

अब्रवीत् अकथयत्—'देवि, यद्यपि आवयोः मम तव च सुकृतैः पुण्यैः अपत्यतां पुत्रत्वम् उपगतः चन्द्रापीड इति शेषः तथापि देवता मूर्तिः देवरूपः एव अयम् अशोचनीयः शोचितुमयोग्यः। तत् तस्मात् इदानीं साम्प्रतम् मनुष्य-लोकस्य मनुष्याणामित्यर्थः शोचितव्यः शोक-योग्यः अयं वृत्तान्तः उदन्तः उन्मुच्यताम् त्यज्यताम्। अस्मिन् शोके कृते सति न किञ्चित् अपि भवति जायते। रटतः क्रन्दनः केवलं गलः कण्ठः एव स्फुटति विदीर्यते न हृदयम्। वदनात् मुखात् निरर्थकं अपार्थकं प्रलपितम् प्रलापः (भावे क्तः) एव निर्याति निर्गच्छति न जीवितं प्राणाः निर्गताः आसङ्गः सम्बन्धः यस्मात् तथाभूतम् असम्बद्धं निरर्थकमिति यावत् नयनयोः जलम् अश्रु पतति, न शरीरं देहः। उपरि सर्वत्र परिसंख्या। अपि च किं च वत्सस्य पुत्रस्य अदर्शनम् एव अदर्शनमात्रम् अनालोकनम् एवेत्यर्थः आवयोः माता-पित्रोः पीडाकारं वेदनाजनकम् आसीदिति शेषः। तत् च अस्य पुत्रस्य मुखे आनने आलोक्यमाने दृश्यमाने सति दूरं यथा स्यात्तथा अपेतं गतम् तस्य वदनं दृष्ट्वा अस्माकं पीडा गतेति भावः। अपरम् अन्यच्च अस्याम् अवस्थायां परिस्थित्यां आवाभ्यां पतिपत्नीभ्याम् अपि तावत् प्रथमं परम् उत्कृष्टम् अवष्टम्भम् साहसं धैर्यमिति यावत् कृत्वा विधाय धृत्वेत्यर्थः मनोरमां शुकनासश्च पतिपत्न्यौ संधारणीयौ धैर्यं दत्त्वा तथा प्रत्यवस्थापनीयौ यथा प्राणान् न मुञ्चतमिति भावः, ययोः दम्पत्योः वैशम्पायनः पुत्रः लोकान्तरितः अन्यः लोकः इति लोकान्तरं तदस्य सञ्जातम् इति लोकान्तरं गत इति यावत्। एतौ अपि तावत् प्रथमं तिष्ठताम् आसाताम्, त्यज्यतां तावत् तयोः प्रश्नः इति भावः। यस्याः कादम्बर्याः प्रभावात् सामर्थ्यात् पुनः वत्सस्य पुत्रस्य जीवितस्य प्राणानां प्रतिलम्भः प्राप्तिः तेन यः अभ्युदयः वृद्धिः तस्य महोत्सवः महामहः अनुभवनीयः अनुभवविषयीकरणीयः अस्तीति शेषः सा एव ते वधूः पुत्रवधूः गन्धर्वराजस्य तनया पुत्री अस्माकम् आगमनेन यः शोकः शुक् तस्य ऊर्मीणां तरङ्गाणां या संक्रान्तिः संक्रमणं तया मूढा मोहं प्राप्ताः, नाम्नः कादम्बरीति संज्ञायाः ग्रहणेन उच्चारणेन

बोले—'रानी, यद्यपि हमारे पुण्यों से हमारे पुत्र बने हैं, तथापि देवता स्वरूप होने से यह शोक करने योग्य नहीं हैं, इसलिए मनुष्य-लोक के लिये उचित यह शोचनीय बात छोड़ दो। इस शोक के करने पर कुछ भी नहीं बनता। चिल्लाते-चिल्लाते गला ही फटता है, हृदय नहीं। मुख से व्यर्थ प्रलाप ही निकलता है, प्राण नहीं। वेकार अश्रुजल ही गिरता है, शरीर नहीं। इसके अतिरिक्त हम दोनों के लिये पुत्र का न देखना ही दुःखदायक बना हुआ था, सो इस तरह उसका मुख देख लेने पर वह भी दूर हो गया है। दूसरी बात यह है कि ऐसी अवस्था में हमें भी अपने में पक्का धीरज बाँधकर मनोरमा और शुकनास को धीरज बँधाना है, जिनका पुत्र वैशम्पायन दूसरे लोक में चला गया है। इन दोनों की भी बात फिलहाल छोड़ो। जिसके प्रभाव से पुत्र के पुनर्जीवन-प्राप्ति रूप अभ्युदय का महोत्सव हमें मनाना है, वही तुम्हारी पुत्रवधू यह गन्धर्वराज की पुत्री (कादम्बरी) हमारे आ जाने के कारण शोक-तरंगों के आक्रमण से मूछित

मुन्मुक्ताक्रन्दाभिः प्रियसखीभिर्ग्राह्यमाणाद्यापि संज्ञा न प्रतिलभते। तदेनां तावदुत्थाप्याङ्के कृत्वा चेतनां लम्भय। ततो यथेच्छं रोदिष्यसि।'

इत्यभिहिता राज्ञा विलासवती 'क्व सा मे वत्सस्य जीवितनिबन्धनवधूः' इत्यभिदधत्येव ससंभ्रममुपसृत्याप्रतिपन्नसंज्ञामेवाङ्कनादाय कादम्बरीं करेण मूर्च्छानिमीलनाहितद्विगुणतरनयनशोभं वदनमालोक्यानवरतनयनसलिलस्नानार्द्रमिन्दुशकलशीतलं स्वकपोलं कपोलयोर्ललाटे ललाटं लोचनयोश्च लोचने निवेशयन्ती चन्द्रापीडस्पर्शशिशिरेण च पाणिना हृदये स्पृशन्ती 'समाश्वसिहि मातस्त्वया विनाद्यैव प्रभृति केन संधारितं वत्सस्य मे चन्द्रापीडस्य शरीरम्, मातस्त्वममृतमयीव जातासि येन वत्सस्य पुनर्वदनमालोकितम्' इत्यवादीत्।

सहितं यथा स्यात् तथा उन्मुक्तः मुखेभ्यः त्यक्तः कृत इत्यर्थः आक्रन्दः आरटनं याभिः तथोक्ताभिः प्रियाभिः सखीभिः आलिभिः ग्राह्यमाणा (? गृह्यमाणा) ध्रियमाणा अद्यापि अधुनापि संज्ञां चेतनां न प्रतिलभते प्राप्नोति। तत् तस्मात् एनां वधूं तावत् प्रथमम् उत्थाप्य उत्थितां कृत्वा अङ्के क्रोडे कृत्वा धृत्वा चेतनां संज्ञां लम्भय। ततः तत्पश्चात् इच्छाम् अनतिक्रम्येति यथेच्छम् इच्छानुसारं रोदिष्यसि क्रन्दिष्यसि।

इत्यभि०—इति राज्ञा तारापीडेन अभिहिता कथिता विलासवती—'सा मे मम वत्सस्य जीवितस्य प्राणानां निबन्धनं कारणीभूता वधूः स्नुषा क्वास्ति ?' इति अभिदधती कथयन्ती एव ससंभ्रमं सत्वरम् उपसृत्य समीपे गत्वा न प्रतिपन्ना प्राप्ता संज्ञा चेतना यां तथाभूताम् एव कादम्बरीं करेण आदाय गृहीत्वा अङ्केन उत्सङ्गेन धृत्वेति शेषः मूर्च्छया मूर्छाकारणादित्यर्थः यत् निमीलनं चक्षुषोः मुद्रणं तेन अहिता जनिता द्विगुणतरा अतिशयेन द्वाभ्यां गुणिता नयनयोः नेत्रयोः शोभा यस्मिन् तथाभूतं तस्या वदनं मुखम् आलोक्य दृष्ट्वा अनवरतं निरन्तरं यत् नयनयोः सलिलं अश्रुजलं तेन यत् स्नानम् आप्लावनं तेन आर्द्रं क्लिन्नम्, इन्दोः चन्द्रमसः यत् शकलं खण्डं तद्वत् शिशिरेण शीतरेण शीतलेन (लुप्तोपमा) स्वस्याः आत्मनः कपोलं गण्डस्थलं तस्याः कपोलयोः, ललाटं भालं तस्याः ललाटे, लोचने नेत्रे तस्याः लोचनयोः निवेशन्ती स्थापयन्ती, चन्द्रापीडस्य स्पर्शेन संपर्केण शिशिरेण शीतलेन च पाणिना करेण तां हृदये वक्षसि स्पृशन्ती परामृशन्ती—'हे मातः पुत्रि इत्यर्थः (पुत्रे तातशब्दप्रयोगवत् पुत्रीसमानायां स्नुषायामपि अत्र मातृशब्दप्रयोगो ज्ञेयः, अथवा आदरार्थे स्नेहातिशयार्थे वा अयं प्रयोगः यथा—'मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरम्'—भर्तृहरिः। 'अभिमातर्देवयजनसम्भवे देवि सीते'—भवभूतिः) समाश्वसिहि धैर्यं धरेत्यर्थः, त्वया विना त्वाम् अन्तरेण अद्य एव प्रभृति (अत्र 'अद्यपर्यन्तम्' इत्येव सुवचम्) केन मे वत्सस्य पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य शरीरं संधारितं धृतं स्यात्। मातः त्वम् अमृतमयी पीयूषमयी इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, जाता संवृत्ता असि येन कारणेन वत्सस्य पुत्रस्य वदनं पुनः आलो-

---

हुई, नाम ले-लेकर चीखें मारती हुई सखियों द्वारा थामी जाती हुई भी होश में नहीं आ रही है, इसलिये इसे उठाकर गोद में रख होश में लाओ। तब जी भर के रो लेना'।

राजा के यह कहने पर विलासवती—'कहाँ है वह मेरे पुत्र के जीवन की कारणीभूत बहू।' यह कहती हुई ही विलासवती जल्दी-जल्दी पास जाकर होश में न आई हुई ही कादम्बरी को हाथ से ग्रहण कर, गोद में रख कर मूर्छा के कारण मीचने से उत्पन्न आँखों की दुगुनी शोभा वाला मुख देखकर, निरन्तर अश्रुजल द्वारा स्नान से गीला चाँद के टुकड़े के समान ठंडा अपना कपोल उसके कपोलों पर, (अपना) भाल (उसके) भाल पर, और (अपनी) आँखें (उसकी) आँखों पर रखती हुई और चन्द्रापीड के स्पर्श से ठण्डे बने हाथ से (उसकी) छाती छूती हुई, बोली—'माँ (बेटी)! धैर्य रखो। तुम्हारे बिना आज तक कौन मेरे बच्चे चन्द्रापीड का शरीर धारण किये रहता! माँ! तुम अमृतमयी हो बैठी हो

कादम्बरी तु तेन चन्द्रापीडनामग्रहणेन तेन च तन्निर्विशेषवृत्तिना विलासवतीशरीरस्पर्शेन लब्धसंज्ञापि लज्जावनम्रमुखी प्रतिपत्तिमूढा मदलेखयाङ्कादवतार्य परवत्येव यथाक्रममकार्यत वन्दनां गुरूणाम्। 'आयुष्मति दीर्घकालमविधवा भव' इति कृताशीर्वादा च शनैः शनैस्तैरुत्थाप्यमानातिनिकटे विलासवत्याः पृष्ठतः समुपवेश्याधार्यत। अथ प्रत्यापन्नचेतनायां चित्ररथतनयायां चन्द्रापीडमेवोज्जीवितं मन्यमानो राजा चिरमिवास्या गाढमङ्गमालिङ्ग्य चुम्बंश्च पश्यंश्च स्पृशंश्च स्थित्वा। मदलेखामाहूयादिदेश। 'दर्शनसुखमात्रकमस्माकं विधीयमानम्। तच्चास्माभिरासादितम्। तद्यादृशेनैवोपचारेणैतावतो दिवसानुपचरितवती वधूर्वत्सस्य शरीरं स एवोपचारो नास्मदनुरोधाल्लज्जया वा मनागपि परिहरणीयः। वयं निष्प्रयोजना द्रष्टार

कितं दृष्टम्' इति अवादीत् अकथयत्। कादम्बरी--तेन विलासवती कर्तृकेण चन्द्रापीडस्य नाम्नः नामधेयस्य ग्रहणेन कथनेन तेन च तस्मात् चन्द्रापीड-स्पर्शात् निर्गतः विशेषः भेदः यस्याः तथाभूता वृत्तिः वर्तनं यस्य तेन चन्द्रापीडस्पर्शसदृशेनेत्यर्थः विलासवत्याः शरीरस्य स्पर्शेन लब्धा प्राप्ता संज्ञा चेतना यया तथाभूतापि लज्जया त्रपया अवनम्रं नतं मुखं यस्याः सा, प्रतिपत्तिः कार्यं तस्यां मूढा किंकर्तव्यविमूढा, मदलेखया अङ्कात् विलासवत्याः उत्सङ्गात् अवतार्य अवतारणं कृत्वा परवती परायत्ता एव यथाक्रमं क्रमशः गुरूणां श्वश्रूश्वसुरादीनां वन्दनां नमस्कारम् अकार्यत कर्तुं प्रैर्यत। 'आयुष्मति, दीर्घजीविते ! दीर्घकालं बहुकालपर्यन्तम् अविधवा सौभाग्यवती भव एधि' इति कृतः आशीर्वादः आशीर्वचनं यस्याः सा शनैः शनैः तैः (? ताभिः सखीभिरित्यर्थः) उत्थाप्यमाना उत्थातुं प्रेर्यमाणा अतिनिकटे अतिसमीपे विलासवत्याः पृष्ठतः पृष्ठभागे समुपवेश्य संस्थाप्य अधार्यत अवालम्ब्यत। अथ प्रत्यापन्ना प्रत्यागता चेतना संज्ञा या तथाभूतायां चित्ररथस्य तनयायां पुत्र्यां कादम्बर्यां सत्याम् चन्द्रापीडम् एव उज्जीवितं प्राप्तं मन्यमानः, कादम्बर्याम् उज्जीवितायां सत्यां राजा चन्द्रापीडम् एव उज्जीवितम् अमन्यत इति भावः, राजा चिरं दीर्घकालमिव अस्याः कादम्बर्याः अङ्गं शरीरं गाढं निविडं यथा स्यात्तथा आलिङ्ग्य परिष्वज्य चुम्बन् चुम्बनं कुर्वन् च स्पृशन् स्पर्शं कुर्वन् च स्थित्वा (कियत्कालम्) मदलेखाम् आहूय आकार्य आदिदेश आज्ञां ददौ—'अस्माकं विधीयमानं क्रियमाणं दर्शनस्य पुत्रावलोकनस्य सुखम् एवमात्रकम् आसीत्। तत् सुखं च अस्माभिः आसादितं प्राप्तमेव। तत् तस्मात् यादृशेन यथाविधेन एव उपचारेण सेवया एतावतः इयतः दिवसान् (कालात्यन्तसंयोगे द्वि०) वधूः कादम्बरी वत्सस्य चन्द्रापीडस्य शरीरं देहम् उपचरितवती सेवितवती, स एव उपचारः अस्माकम् अनुरोधात् प्रतिबन्धात् अथवा अस्मत्तः लज्जया त्रपाकारणात् मनाक् ईषत्

जिससे हम फिर पुत्र का मुँह देख पाये हैं।' कादम्बरी चन्द्रापीड के उस नाम-ग्रहण से तथा उसके-जैसे विलासवती के शरीर-स्पर्श से होश में आई हुई भी लज्जा से सिर नीचे किये, किंकर्तव्य-विमूढ़ हुई, मदलेखा द्वारा (विलासवती के) गोद में से उतारी जाकर, विवश हुई क्रमशः (चन्द्रापीड) के माता-पिता की वन्दना करवाई गई। 'आयुष्मति ! चिरकालपर्यन्त तुम सौभाग्यवती बनी रहो' यह आशीर्वाद प्राप्त किये, धीरे-धीरे सखियों द्वारा उठाई जाती हुई, बिलकुल पास ही विलासवती के पीछे बिठाकर थामी जाती रही। तदनन्तर चित्ररथ की कन्या (कादम्बरी) के होश में आ जाने पर चन्द्रापीड को ही जीवित समझता हुआ राजा देर तक उसका शरीर गले लगाकर चूमता हुआ देखता हुआ और छूता हुआ (थोड़ी देर) बैठकर, मदलेखा को बुलाकर आज्ञा दे गया—'हमारा जो करना था, वह केवल दर्शनसुख था; वह हमने प्राप्त कर लिया है। इसलिये जिस प्रकार की सेवा से ही वधू ने इतने दिन पुत्र की सेवा की है, वही सेवा हमारे लिहाज से अथवा लज्जा के कारण जरा भी नहीं छोड़नी

एव केवलम्। किमस्माभिरिह स्थितैर्गतैर्वा। यस्याः करस्पर्शेनाप्यायितमेतदविनाशि सैव वधूः पार्श्वेऽस्य तिष्ठतु।' इत्यादिश्य निर्जगाम। निर्गत्य चोपकल्पितं निजावासमगत्वैव तपस्विवासोचितेऽन्यतमस्मिन्नासन्न एवाश्रमस्य शुचिशिलातलसनाथे तरुलतामण्डपे समुपविश्य निर्विशेषदुःखं सकलमेव राजचक्रमाहूय सबहुमानमवादीत्। 'न भवद्भिरवगन्तव्यं यथाद्य शोकावेगादेवैतदहमङ्गीकरोमीति। पूर्वचिन्तित एवायमर्थो यथा वधूसमेतस्य चन्द्रापीडस्य वदनमालोक्य संक्रामितनिजभरेण मया क्वचिदाश्रमपदे गत्वा पश्चिमं वयः क्षपितव्यमिति। स चायं मे भगवता कृतान्तेन पुराकृतैः कर्मभिर्वा विरूपैरेवं समुपनमितः। किमपरं क्रियते। अनतिक्रमणीया नियतिः अप्रापणीयं नानुभूतमात्मचेष्टाकृतं वत्सस्य सुखम्। प्रजापरिपालनफलं

अपि न परिहरणीयः त्याज्यः। वयं निष्प्रयोजनाः निरर्थकाः केवलं द्रष्टारः दर्शका एव स्मः। अस्माभिः इह स्थितैः कृतावस्थानैः अथवा गतैः कृतगमनैः किम् न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः। यस्याः वध्वाः करस्य स्पर्शेन संपर्केण आप्यायित पुष्यमाणं सत् एतत् शरीरम् अविनाशि अनश्वरम् अस्तीति शेषः, सा एव वधूः स्नुषा अस्य चन्द्रापीडस्य पार्श्वे समीपे तिष्ठतु आस्ताम्' इति आदिश्य आज्ञाप्य निर्जगाम निरगच्छत्। निर्गत्य निष्क्रम्य च उपकल्पितं परिजनेन कल्पितं निर्मितं निजम् स्वम् आवासम् आवासस्थानम् अगत्वा अयात्वा एव तपस्विनां तपोवतां वासस्य उचिते योग्ये अन्यतमस्मिन् कस्मिंश्चित् एकस्मिन् आसन्ने सन्निहिते आश्रमस्य महाश्वेताया इति शेषः शुचि शुद्धं यत् शिलातलं शिलापृष्ठं तेन सनाथे युक्ते इत्यर्थः तरवः वृक्षाश्च लताः वल्ल्यश्च तासां मण्डपे मण्डपाकारेण निर्मिते गृहे इत्यर्थः समुपविश्य निषद्य निर्गतः विशेषो यस्मात् तथाभूतं समानमेवेत्यर्थः दुःखं यस्य तत् सकलम् एव समस्तमेव राजचक्रं राजकम् आहूय आकार्य बहुश्चासौ मानः आदरः तेन सहितं यथा स्यात्तथा अवादीत् अकथयत्—'भवद्भिः युष्माभिः एतत् न अवगन्तव्यं मन्तव्यम् यथा यत् अद्य अहं शोकस्य दुःस्य आवेगात् आवेशात एव एतत् आश्रमपदम् अङ्गीकरोमि स्वीकरोमि इति। अयम् अर्थः वस्तु पूर्वं चिन्तितः विचारित एव आसीत् यथा यत् वध्वा स्नुषया समेतस्य सहितस्य चन्द्रापीडस्य वदनं मुखम् आलोक्य दृष्ट्वा संक्रामितः तस्मिन् संस्थापितः निजः स्वकीयः भरः राज्यभारः येन तथाभूतेन मया क्वचित कुत्रचित् आश्रम-पदे आश्रम-स्थाने गत्वा पश्चिमम् अन्तिमम् वयः अवस्था वार्धक्यमिति यावत् क्षपितव्यम् अतियापनीयम्। सच अयम् अर्थः भगवता कृतान्तेन यमेन अथवा पुरा पूर्वजन्मनि कृतैः विहितैः विरूपैः विपरीतैः अशुभैः इति यावत् कर्मभिः प्रवृत्तिभिः समुपनमितः सम्प्रापितः। अपरम् अन्यत् किं क्रियते न किमपीति काकुः। नियतिः भाग्यम् न अतिक्रमितुं शक्येति अनुल्लङ्नीया। अप्रापणीयं न प्रापयितुं शक्यम् आत्मनः स्वस्य या चेष्टाः प्रयत्ना इत्यर्थः ताभिः कृतं जनितं वत्सस्य चन्द्रापीडस्य सुखं न अनुभूतं न दृष्टमित्यर्थः। प्रजानां परिपालनं

चाहिये। हम तो व्यर्थ के ही दर्शकमात्र हैं। हम यहाँ रहें तो क्या अथवा जायें, तो क्या? जिसके हस्त-स्पर्श से पुष्ट हुआ यह शरीर अविनाशी बना हुआ है, वही वधू इसके पास रहे।' यह आज्ञा देकर राजा चल दिये। चलकर (सेवकों द्वारा) बनाये गये अपने आवास-स्थान में न जाकर तपस्वियों के रहने योग्य आश्रम के पास ही किसी एक शुद्ध शिला तल से युक्त वृक्षों तथा लताओं से (स्वयंमेव) बने मण्डप में बैठकर समान दुख वाले राजमंडल को बुलाकर सादर बोले—'आप लोग यह न समझ बैठे कि शोकवेश में आकर मैं यह आश्रम-जीवन अपना रहा हूँ। यह बात तो मैंने पहले ही सोच रखी थी कि वधू-सहित चन्द्रापीड का मुख देखकर (उसे) अपना राज्यभार सौंप मैं कहीं आश्रम-स्थान में जाकर अपनी अन्तिम अवस्था बिताऊँगा। और वह भगवान् यम ने अथवा पहले के किये बुरे कर्मों ने ला दी है। और क्या किया जाय। भाग्य का अतिक्रमण किया नहीं जा सकता। अपने प्रयत्नों से पुत्र को दिया जाने वाला सुख मैं देख न सका, क्योंकि वह (भाग्य ने) देने नहीं दिया। प्रजा-

तु पुनर्भवद्भुजेष्वेवमक्षतेष्वविरहितमस्त्येव। अन्यथापि हि चेष्टमानेष्वस्मासु सर्वमेत्र तेष्वेवावस्थितम्। तदिच्छामि चिरकाङ्क्षितं मनोरथं पूरयितुम्। धन्याश्च जरापीतसारतनवस्तनयेष्वात्मभरमासज्य लघुशरीराः परलोकगमनं साधयन्ति। यच्च बलाद्गले पादमादाय यदा तदानिच्छतोऽप्याच्छिद्यत एव कृतान्तेन। तद्यदि पात्रे क्वचिदपि स्थापयित्वा निजपदं जरापरिभुक्तायुःशेषेण निष्प्रयोजनस्थितिना सर्वसुखबाह्येन मांसपिण्डेन परलोकसुखान्युपार्ज्यन्ते लाभ एवायम्। तदस्य वस्तुनः कृते भवन्तो मया प्रार्थनीयाः[1]। इत्युक्त्वा संनिहितान्यपि परित्यज्योचितानि सर्वसुखान्यनु-

---

परिरक्षणं फलं फलसुखमित्यर्थः तु पुनः भवतां युष्माकं भुजेषु बाहुषु अक्षतेषु अखण्डितेषु सत्सु अविरहित मया सम्बद्धम् अस्त्येव विद्यते एव। अन्यथा प्रकारान्तरेण अपि हि यतः अस्मासु चेष्टमानेषु प्रयतमानेषु सत्सु, सर्वम् निखिलम् एव प्रजापरिपालनादिकं तेषु भवतां भुजेषु एव अवस्थितम् आधारितम् अस्ति। तत् तस्मात् चिरात् दीर्घकालात् आकाङ्क्षितम् अभिलषितं मनोरथं कामनां पूरयितुं पूर्णं कर्तुम् इच्छामि कामये। धन्याः सुकृतिनः पुरुषाः जरया वृद्धावस्थया पीतः क्षयं नीतः इत्यर्थः सारः बलं यस्याः तथाभूता तनुः शरीरं येषां ते, तनयेषु पुत्रेषु आत्मनः स्वस्य भरं राज्यभारम् आसज्य न्यस्य लघु भार-रहितं शरीरं येषां तथाभूताः सन्तः परलोके लोकान्तरे गमनं प्रयाणं साधयन्ति निष्पादयन्ति अर्थात् राज्यभारापगमे निश्चिन्ता भूत्वा तप आदिना परलोकसुधारं कुर्वन्ति। यत् च बलात् बलपूर्वकं गले कण्ठे पादम् चरणम् आदाय निक्षिप्येत्यर्थः यदा तदा यस्मिन् कस्मिन् समये अनिच्छतः अनाकाङ्क्षतः अपि [अत्र 'अनिच्छन्नपि' इति सुवचम् मनुष्यस्य आच्छेदन-क्रियायाः कर्मकत्वात् कर्मणश्च प्रथमान्तत्वात्, अथवा यथा कथञ्चित् अनादरे षष्ठी ज्ञेया] कृतान्तेन यमेन आच्छिद्यते आकृष्यते एव मनुष्यः इति शेषः तत् तस्मात् यदि क्वचित् अपि कस्मिन्नपि पात्रे योग्यव्यक्तौ [**'योग्य-भाजनयोः पात्रम्'** इत्यमरः] निजपदं स्वभारमित्यर्थः स्थापयित्वा न्यस्य जरया वृद्धावस्थया परिभुक्तं पीतं क्षयं नीतमिति यावत् आयुषः वयसः शेषः अवशिष्टभागः यस्य तथाभूतेन, निष्प्रयोजना निरर्था स्थितिः अवस्थानं यस्य तेन सर्वेभ्यः शारीरिकेभ्यः सुखेभ्यः बाह्येन बहिर्भूतेन मांसपिण्डेन शरीर-रूप-मांसपिण्डेन परलोकस्य लोकान्तरस्य सुखानि उपार्ज्यन्ते संचीयन्ते तपोव्रतादि-पुण्यकर्मभिरिति शेषः अयं लाभः फलप्राप्तिः एव। तत् तस्मात् अस्य वस्तुनः अर्थस्य कृते एतन्निमित्तमित्यर्थः मया. भवन्तः यूयम् प्रार्थनीया अभ्यर्थनीयाः'। **इति—** उक्त्वा कथयित्वा सन्निहितानि आसन्नानि अपि उचितानि साधारणानि सर्वाणि

पालन रूप फल (का सुख) तो आप लोगों की भुजाओं के ठीक-ठाक रहते मैंने पा ही लिया है। हमारे और तरह प्रयत्न करने पर भी सभी कुछ (आप लोगों की) उन भुजाओं पर ही निर्भर करता है। इसलिये मैं चिर-कांक्षित मनोरथ पूरा करना चाहता हूँ। पुण्यवान् लोग—जिनका शारीरिक बल वृद्धावस्था ने चट कर दिया है—अपना (राज्य) भार (पुत्र पर) डालकर, शरीर से हल्के हुए परलोक-गति को सुधारते हैं। और वैसे तो गले पर पाँव रखकर कभी न कभी न चाहते हुए भी यम खींच ले जायगा ही, इसलिये यदि किसी सुपात्र पर अपना पद-भार रख कर (शरीर-रूपी) मांसपिण्ड से—जिसकी शेष आयु बुढापे ने चट कर दी है, जिसका (कुछ) प्रयोजन नहीं रहा और जो सभी सुखों के अक्षम हो बैठा है—परलोक-सुख अर्जित किये जाँय, तो यह लाभ ही है। इसलिये इस बात के खातिर मुझे आप लोगों से प्रार्थना करनी है'। यह कहकर सभी साधारण सुखों को पास में रहते हुए भी छोड़ छाड़कर

---

१. प्रार्थिताः।

चितान्यङ्गीकृत्य वन्यानि तथा हि हर्म्यबुद्धिं वृक्षमूलेषु, अन्तःपुरस्त्रीप्रीतिं लतासु, संस्तुतजनस्नेहं हरिणेषु, निवसनरुचिं चीरवल्कलेषु, कुन्तलरचनाभियोगं जटासु, आहारहार्दं कन्दमूलफलेषु, शस्त्रधारणव्यसनमक्षसूत्रे, प्रजापरिपालनशक्तिं समित्कुशकुसुमेषु, नर्मालापं धर्मसंकथासु, समररसमुपशमे, जयेच्छां परत्र, कोशस्पृहां तपसि, आज्ञां मौने, सर्वोपभोगरागं च वैराग्ये, तनयस्नेहं तरुषु संक्रमय्य तथा तपस्विजनोचिताः क्रियाः कुर्वन्गन्धर्वलोकोचितानहरहरुपचारान्कादम्बर्या कथमपि समुत्सृष्टलज्जया महाश्वेतया च क्रियमाणाननिच्छन्नविच्छेदात्सायंप्रातश्चानुभूतचन्द्रापीडदर्शनसुखो दुःखान्यगणयन्नरपतिः सपरिवारः समं देव्या शुकनासेन च तत्रैवातिष्ठत् ।

समस्तानि च सुखानि परित्यज्य विहाय अनुचितानि असाधारणानि वन्यानि वनभवानि (सुखानि) अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य तथा हि यथा हि—हर्म्याणां प्रासादानां बुद्धिं धियम् वृक्षाणां तरूणाम् मूलेषु बुध्नेषु, संक्रमय्य इति सर्वत्रान्वेति, अन्तः-पुरस्य अवरोधस्य अन्तःपुरस्त्रीणामिति यावत्, प्रीतिम् प्रेम लतासु वल्लीषु, संस्तुतानाम् परिचितानां लोकानां स्नेहं प्रीतिम् हरिणेषु मृगेषु, वसनानां दुकूलानां रुचिम् अनुरागं चीराणि जीर्णवस्त्राणि च वल्कलानि वृक्षत्वचश्च तेषु कुन्तलानां केशानां रचना विन्यासः तस्याम् अभियोगम् आसक्तिं जटासु परस्परसंसक्तकेशेषु, आहारस्य भोजनस्य हार्दं प्रेम कन्दाः गोलमूलानि च मूलानि बुध्नाश्च फलानि चेति तेषु, शस्त्रस्य आयुधस्य धारणस्य हस्ते वहनस्य व्यसनम् आसङ्गम् अक्षाणां सूत्रे जपमालायाम्, प्रजानां जनानां पालनस्य रक्षणस्य शक्तिं बलं समिधः यज्ञार्थकाष्ठानि च कुशाः दर्भाश्च कुसुमानि पुष्पाणि चेति तेषु, नर्म क्रीडा ['क्रीडा लीला च नर्म च' इत्यमरः] तस्य आलापं संभाषणं धर्मसंकथासु धार्मिकीषु कथासु, जयस्य विजयस्य इच्छाम् कामनां परत्र परलोके तपोव्रतादिना परलोकः जीयते साध्यते इति भावः, कोशस्य धनस्य स्पृहाम् इच्छां तपसि तपस्यायाम् धनसञ्चयेच्छास्थाने तपःसञ्चयेच्छायामित्यर्थः; आज्ञाम् आदेशं मौने तूष्णीम्भावे, सर्वे च ते उपभोगाः ऐन्द्रियभोगाः तेषु रागम् आसक्तिं च वैराग्ये विरक्तौ, तनयस्य पुत्रस्य स्नेहं प्रीतिं तरुषु संक्रमय्य स्थानान्तरितीकृत्य अर्थात् राज्ञः यो यः सम्बन्धः पूर्वं हर्म्यादिना आसीत् स स इदानीं लतामण्डपादिषु जातः। **तथा**—तपस्वि-जनस्य तापसानाम् उचिताः योग्याः क्रियाः अनुष्ठानानि कुर्वन् विदधत् गन्धर्वलोकस्य किम्पुरुषवर्षस्य उचितान् अभ्यस्तान् प्रचलितानित्यर्थः कादम्बर्या कथमपि समुत्सृष्टा त्यक्ता लज्जा त्रपा यया तथाभूतया महाश्वेतया च अहरहः प्रतिदिवसं क्रियमाणान् अनुष्ठीयमानान् उपचारान् विधि-विधानानि लोकाचारानिति यावत् अनिच्छन् नाभिलषन् नानुसरन्नित्यर्थः अविच्छेदात् अव्यवधानात् निरन्तरमित्यर्थः सायं सायंकाले प्रातः प्रभाते च अनुभूतम् अनुभवविषयीकृतं चन्द्रापीडस्य दर्शनस्य अवलोकनस्य सुखम

असाधारण वन के सुख अपनाकर जैसे—महलों की बुद्धि वृक्षों की जड़ों पर, अन्तःपुरवर्ती महिलाओं का प्रणय लताओं पर, परिचित जनों का स्नेह हिरनों पर, वस्त्रों की रुचि चीथड़े और वल्कलों पर, केशविन्यास का लगाव जटाओं पर, भोजन का शौक कन्दमूलफलों पर, शस्त्र धारण करने की आदत जपमाला पर, प्रजा-पालन की शक्ति समिधा कुश और फूलों (के तोड़ने) पर, हँसी-मखौल की बातें धार्मिक कथाओं पर, युद्ध-रस शान्ति पर, विजयेच्छा परलोक पर, धन की चाह तप में, आज्ञा मौन में, सब (ऐन्द्रिय) भोगों का अनुराग वैराग्य में, पुत्रप्रेम वृक्षों पर स्थानान्तरित करके तथा तपस्वी-लोगों के योग्य-क्रियायें करता हुआ, गन्धर्वलोक में प्रचलित कादम्बरी तथा किसी तरह लज्जा त्यागे महाश्वेता द्वारा प्रतिदिन किये जाने वाले उपचारों—सामाजिक विधि-विधानों को न चाहता हुआ, बिना नागा प्रातः सायं चन्द्रापीड़ के दर्शन का आनन्द लेता हुआ, दुखों की पर्वाह न करता हुआ राजा सपरिवार रानी और शुकनास के साथ वहीं रुका रहा"।

इत्येव च कथयित्वा भगवाञ्जाबालिर्जराभिभवविच्छायं स्मितं कृत्वा हारीतप्रमुखान्सर्वानेव ताञ्छ्रावकानवादीत्। 'दृष्टमायुष्मद्भिरिदमन्तःकरणापहारिणः कथारसस्याक्षेपसामर्थ्यम्। यत्कथयितुं प्रवृत्तोस्मि तत्परित्यज्यैव कथारसात्कथयन्नतिदूरमतिक्रान्तोस्मि। तद्यः स कामोपहतचेताः स्वयंकृतादेवाविनयाद्दिव्यलोकतः परिभ्रश्य मर्त्यलोके वैशम्पायननामा शुकनाससूनुरभवत्स एवैष पुनः स्वयंकृतेनाविनयेन कोपितस्य पितुराक्रोशान्महाश्वेताकृताच्च सत्याधिष्ठानादस्यां शुकजातौ पतितः'।

इत्येवं वदत्येव भगवति जाबालौ बाल्येपि मे सुप्तप्रबुद्धस्येव पूर्वजन्मान्तरोपात्ताः

आनन्दः येन तथाभूतः, दुःखानि कष्टानि अगणयन् अचिन्तयन् उपेक्षमाण इति यावत् नरपतिः तारापीडः सपरिवारः सपरिजनः देव्या विलासवत्या शुकनासेन च समं सह तत्रैव अच्छोदसरोवरे अतिष्ठत् स्थितोऽभूत्।"

टिप्पणी—तारापीड़ के अच्छोद सरोवर पर टिक जाने के बाद घटना-चक्र एकदम बदल जाता है। हम अब कादम्बरी के पूर्वभाग में बाण द्वारा वर्णित जावालिआश्रम में आ जाते हैं जहाँ वैशम्पायन महाश्वेता के शाप के कारण तोते की योनि में पड़ा पल रहा है और ऋषि जावालि आश्रम-वासियों के अनुरोध पर उसके पूर्व जन्म की कहानी 'नरपतिः···तत्रैवातिष्ठत्' तक कह गए हैं।

इत्येव—इति एव कथयित्वा उदित्वा भगवान् पूज्यः जाबालिः जरायाः वृद्धावस्थायाः अभिभवेन आक्रमणेन विच्छायं विगतच्छायं निष्प्रभं विवर्णमिति यावत् स्मितम् ईषद्धास्यं कृत्वा हारीतः स्वपुत्रः प्रमुखः मुख्यः येषु तथाभूतान् सर्वान् एव तान् श्रावकान् श्रोतॄन् अवादीत् अवदत्—'आयुष्मद्भिः दीर्घजीविभिः युष्माभिरित्यर्थः अन्तःकरणं मनः हरतीत्येवंशीलस्य कथायाः रसस्य स्वादस्य आक्षेपस्य आकर्षणस्य सामर्थ्यं शक्तिं दृष्टं विलोकितम्। यत् कथयितुम् आख्यातुं प्रवृत्तः प्रक्रान्तः अस्मिन्, तत् परित्यज्य त्यक्त्वा एव कथाया रसात् अतिदूरं दविष्ठम् अतिक्रान्तः गतः अस्मि। तत् तस्मात् यः स पुण्डरीकः कामेन मदनेन उपहतः सन् स्वयं आत्मना कृतात् विहितात् अविनयात् धार्ष्ट्यात् दिव्यलोकतः सुरलोकात् परिभ्रश्य भ्रष्टो भूत्वा मर्त्यलोके मनुष्यलोके वैशम्पायनः नाम अभिधेयं यस्य तथाभूतः शुकनासस्य सूनुः पुत्रः अभवत् स एव एष पुनः द्वितीयवारं स्वयं कृतेन विहितेन अविनयेन धार्ष्ट्येण कोपितस्य रोषितस्य पितुः श्वेतकेतोः आक्रोशात् कठोरवचनात् शापादिति यावत् महाश्वेतया कृतात् विहितात् सत्यम् ऋतम् अधिष्ठानम् आश्रयो यस्य तथाभूतात् आक्रोशात् शापादित्यर्थः च अस्यां शुकस्य कीरस्य जातौ योनौ पतितः च्युतः'। इति एवं भगवति जाबालौ वदति कथयति एव बाल्ये बाल्यावस्थायाम् अपि आदौ सुप्तः शयितः पश्चात् प्रबुद्धः जागरितः तस्य इवेत्युपमायां मे मम पूर्वस्मिन् जन्मान्तरे

इतना ही कहकर भगवान जावालि वृद्धावस्था से दबाये जाने के कारण भद्दी-सी हँसी हँसकर हारीत आदि उन सभी श्रोताओं को बोले--'तुम लोगों ने मन-हरण कथास्वाद की यह आकर्षण-शक्ति देख ली है। जिसे मैं कहने चला था, उसे छोड़-छाड़कर ही बहुत दूर पहुँच गया हूँ। इसलिए हृदय में काम का मारा हुआ जो वह (पुंडरीक) धृष्टता के कारण सुरलोक से च्युत हो मर्त्यलोक में वैशम्पायन नाम से शुकनास का पुत्र हुआ था, वही यह फिर अपनी की हुई धृष्टता से कुपित किये पिता (श्वेतकेतु) के शाप से तथा महाश्वेता द्वारा दिये सच्चे शाप से इस शुकयोनि में जा पड़ा है।'

भगवान जावालि के यह कहते ही सोकर जागे हुए-जैसे मेरी पूर्व जन्मान्तर में पढ़ी-

समस्ता एव विद्या जिह्वाग्रेऽभवन् । सकलासु च कलासु कौशलमुपजातम् । उपदेशाय मनुजस्येव चेयं विस्पष्टवर्णाभिधाना भारती च संपन्ना । विज्ञानं च सर्ववस्तुविषयं स्मरणं च संवृत्तम् । किं बहुना । मनुष्यशरीराहते सर्वमन्यत्तत्क्षणमेव मे वैशम्पायनस्य स एव चन्द्रापीडस्योपरि स्नेहः सैव कामपरवशता स एव महाश्वेतायामनुरागः सैव तदवाप्तिं प्रत्युत्सुकतेत्युपगतं सकलमेव । केवलमसंजातपक्षतया मे तस्मिन्समये पूर्वजन्मोपात्ता शरीरचेष्टा नासीत् । तथा चाविर्भूतसकलान्यजन्मवृत्तान्तः समुत्सुकान्तरात्मा किं मातापित्रोः किं तातस्य तारापीडस्य किमम्बाया विलासवत्याः किं वयस्यस्य चन्द्रापीडस्योत प्रथमसुहृदः कपिञ्जलस्याहोस्विन्महाश्वेताया इति नाज्ञासिषमेवं कस्य कस्य कथं वा स्मृतवानस्मीति । तथा चोत्सुकान्तरात्मा महीतलनिवेशित-

---

उपात्ताः गृहीताः समस्ताः सकलाः एव विद्याः चतुर्दशसंख्यकाः त्रय्याद्याः जिह्वायाः रसनायाः अग्रे अग्रभागे अभवन् जाताः स्मृतिविषयीभूताः इति भावः ['ऋषि-जाबालिमुखात् स्वपूर्वजन्मवृत्तान्तम् आकर्ण्य स्मृतपूर्वजन्मा, तरुणो भूत्वा आश्रमात् पलायमानो मार्गे केनापि चाण्डालेन गृहीतः, चाण्डालाधिपतिकन्यायै प्रदत्तः, तया च भवते उपायनीकृतोऽस्मि' इति वैशम्पायननामा शुकः राज्ञः शूद्रस्य राजसभायां स्ववृत्तान्तं कथयतीति कथा-सम्बन्धोऽत्र ज्ञेयः] सकलासु समस्तासु कलासु संगीताद्यासु च कौशलं नैपुण्यम् उपजातम् उत्पन्नम् । उपदेशाय कथनाय मनुजस्य मनुष्यस्य इवेत्युपमायाम् च इयम् एषा विस्पष्टं सुव्यक्तं वर्णानाम् अक्षराणाम् अभिधानं प्रतिपादनम् उच्चारणमित्यर्थः यस्यां तथाभूता भारती वाणी च सम्पन्ना सञ्जाता । सर्वाणि वस्तूनि पदार्थाः विषयाः इन्द्रियार्थाः यस्मिन् तथाभूतं विज्ञानं विशिष्टज्ञानं स्मरणं स्मृतिश्च संवृत्तं सञ्जातम् । किम् बहुना अधिक-कथनेन किम् । मनुष्यस्य शरीरात् देहात् ऋते विना अन्यत् अपरं सर्वं तत्क्षणम् एव तदानीम् एव मे मम वैशम्पायनस्य जातमिति शेषः । चन्द्रापीडस्य उपरि स पूर्ववर्ती एव स्नेहः प्रीतिः, सा एव कामस्य मदनस्य परवशता अधीनता, महाश्वेतायां स एव अनुरागः प्रेमा, तस्या अवाप्तिं प्राप्तिं प्रति सा एव उत्सुकता—सकलं समस्तम् एव उपगतं प्राप्तम् । केवलम् न जातौ समुत्पन्नौ बाल्यकारणात् पक्षौ पक्षती यस्य तस्य भावः तत्ता तया मे मम तस्मिन् समये काले पूर्वस्मात् जन्मतः उपात्ता शरीरस्य चेष्टा सञ्चलनादिकं न आसीत् । तथा च आविर्भूतः प्रकटितः सकलः समस्तः अन्यस्य पूर्वस्येत्यर्थः जन्मनः वृत्तान्त उदन्तः यस्य तथाभूतः समुत्सुकः उत्कण्ठितः अन्तरात्मा अन्तःकरणं यस्य सः—माता मनोरमा च पिता शुकनासश्च किं भूतमिति सर्वत्रान्वयः, तातस्य पूज्यस्य तारापीडस्य किम्, अम्बायाः मातुः विलासवत्याः किम्, वयस्यस्य सुहृदः चन्द्रापीडस्य किम् उत अथवा प्रथमस्य आद्यस्य पुण्डरीक-रूपेण पूर्वजन्मनः इत्यर्थः सुहृदः मित्रस्य कपिञ्जलस्य आहोस्वित् अथवा महाश्वेतायाः किम् जातम् इति न अज्ञासिसम् ज्ञातवान् एवं तथा कस्य कस्य (कर्मणि षष्ठी) कथं केन प्रकारेण वा स्मृतवान् स्मृतौ आनीतवान् अस्मि इत्यपि नाज्ञासिषम् । तथा च उत्सुकः उन्मनाः अन्तरात्मा मनः यस्य तथा-

---

पढ़ाई सभी विद्यायें बचपन में भी कण्ठाग्र हो गईं । सभी कलाओं में निपुणता आ गई । कहने के लिये स्पष्ट वर्णोच्चारण वाली वाणी हो गई । सभी वस्तुओं का विज्ञान तथा स्मरण हो उठा । मनुष्य-देह को छोड़कर बाकी सभी कुछ तत्क्षण हो गया । मुझ वैशम्पायन का चन्द्रापीड के ऊपर वही स्नेह, वही कामाधीनता, महाश्वेता पर वही प्रेम, उसकी प्राप्ति हेतु उत्सुकता—सब कुछ याद हो गया । केवल मेरे पंख न होने के कारण उस समय पूर्व जन्म से प्राप्त शरीर-चेष्टा नहीं होने पाई । तथा पूर्व जन्म का सारा वृत्तान्त प्रकट हो जाने पर मन में बेचैन हुआ मैं यह नहीं जान पाया कि मेरे माता-पिता का, तात तारापीड़ का, पहले जन्म के मित्र कपिञ्जल का, अथवा महाश्वेता का क्या हुआ तथा किस किस को मैं कैसे याद कर गया यह भी नहीं जान

शिराश्चिरमिव स्थित्वा भगवन्तं जाबालिं निजाविनयश्रवणलज्जया विलीयमान इव विशन्निव पातालतलं कथमपि शनैः शनैर्व्यज्ञापयम्। 'भगवंस्त्वत्प्रसादादाविर्भूत-ज्ञानोस्मि संवृत्तः। स्मृताः खलु मया सर्व एव पूर्वबान्धवाः। मूढतायां च यथैव मे तेषां स्मरणं नासीत्तथैव पीडापि। अधुना पुनस्तान्स्मृत्वा स्फुटतीव मे हृदयम्। न च तान्स्मृत्वापि तथा यथा चन्द्रापीडं यस्य मदुपरतिश्रवणमात्रकात्स्फुटितं हृदयम्, तत्त-स्यापि जन्माख्यानेन प्रसादं करोतु भगवान्। येनायं तिर्यग्योनिवासोपि मे तेन सहैकत्र वसतो न पीडाकरः संजायते।' इत्येवं च विज्ञापितो मया सासूयमिव मामवलोक्य भगवाञ्जाबालिः सस्नेहकोपगर्भं प्रत्यवादीत्। 'दुरात्मन्, ययैतावतीं दशामुपनीतोसि कथं तामेव तरलहृदयतामनुबध्नासि। अद्यापि पक्षावपि नोद्भिद्येते। तत्संचरणक्षमस्तु तावद्भव। ततो मां प्रक्ष्यसि।' इत्येवमुक्ते भगवता समुपजातकुतूहलो हारीतः पप्रच्छ।

भूतोऽहम् महीतले भूतले निवेशितं न्यस्तं शिरः मूर्धा येन स चिरम् इव दीर्घकालम् स्थित्वा भग-वन्तं ऋषिं जाबालिं निजः स्वीयः यः अविनयः धृष्टता तस्य श्रवणेन ऋषिमुखात् आकर्णनेन या लज्जा त्रपा तया विलीयमानः लयं गच्छन् इव पाताल-तलं रसातलं विशन् प्रविशन् इवेत्युभयत्रो-त्प्रेक्षा कथम् अपि केनापि प्रकारेण शनैः शनैः मन्दं मन्दं व्यज्ञापयम् न्यवेदयम्—'भगवन्, तव प्रसादात् कृपया आविर्भूतं प्रकटीभूतं ज्ञानं यस्य तथाभूतः अहम् अस्मि। मया सर्वे समस्ताः पूर्व-बान्धवाः पूर्वजन्मनः बन्धवः खलु निश्चयेन स्मृताः स्मरणविषयीकृताः। मूढतायाम् अज्ञानतायां यथा येन प्रकारेण एव मे तेषां स्मरणं स्मृतिः न आसीत् तथा एव पीडा तद्वियोगजन्यवेदना अपि न आसीत्। अधुना पूर्वजन्मविषयकज्ञानसमये तान् स्मृत्वा स्मृतौ आनीय मे हृदयं स्फुटति दीर्यते इवेत्युत्प्रेक्षायाम् न च तान् पूर्वबान्धवान् स्मृत्वा अपि तथा (स्फुटतीव मे हृदयम्) यथा चन्द्रा-पीडं स्मृत्वा (स्फुटति) यस्य मम उपरतिः मृत्युः तस्य श्रवणमात्रकात् केवलं श्रवणात् आकर्णनात् हृदयं स्फुटितं विदीर्णम्। तत् तस्मात् तस्य चन्द्रापीडस्य अपि जन्मनः आख्यानेन कथनेन भगवान् भवान् प्रसादम् अनुग्रहं करोतु विदधातु; येन कारणेन मे मम अयं तिर्यग्योनौ पशुपक्षि-जातौ शुकयोनौ इति यावत् वासः स्थितिः अपि तेन चन्द्रापीडेन सह एकत्र एकस्मिन् स्थाने वसतः वासं कुर्वतः पीडां वेदनां करोतीति तथोक्तः न संजायते भवति।' इति एवं च विज्ञापितः निवेदितः असूया ईर्ष्या अथवा कोपः तया सहितं यथा स्यात्तथा माम् अवलोक्य दृष्ट्वा स्नेहः प्रीतिश्च कोपः क्रोधश्च तयोः गर्भः मध्यं तेन सहितं यथा स्यात्तथा प्रत्यवादीत् उत्तरं ददौ—'दुरात्मन् दुष्टात्मन् यया (तरलहृदयतया) त्वम् एतावतीम् इयतीं दशाम् अवस्थाम् उपनीतः प्रापितः असि, कथं ताम् एव तरलं चञ्चलं हृदयं यस्य तस्य तस्य भावः तत्ता ताम् हृदय-चञ्चल-तामित्यर्थः अनुबध्नासि हठात् अनुसरसि। अद्य अपि अद्यपर्यन्तं पक्षौ पक्षती न उद्भिद्येते न निस्सरतः। तत् तस्मात् तावत् प्रथमं सञ्चरणस्य इतस्ततो गमनस्य क्षमः समर्थः भव जायस्व।

पाया। मन में उत्सुक बना, भूतल पर सिर रखे, देर तक (वैसे ही) रहकर अपनी धृष्टता सुनने से हुई लज्जा के मारे घुला जाता हुआ-जैसा, पाताल-प्रवेश करता हुआ-जैसा मैं भगवान् जाबालि को किसी तरह धीरे-धीरे बोला—'भगवन्, आपकी कृपा से मैं (पूर्व जन्म का) जान-कार हो बैठा हूँ। सचमुच पूर्वजन्म के वे सभी बन्धु-बान्धव मुझे याद आये हैं। अज्ञानावस्था में जैसे उनका स्मरण नहीं था वैसे ही (उनके विरह की) वेदना भी नहीं थी। अब उनको याद करके हृदय फटा-सा जा रहा हैं। उनको याद करके वैसा नहीं (फटा जा रहा) जैसा चन्द्रापीड़ को याद करके, जिसका मेरी मृत्यु सुनते ही हृदय फट गया था। इसलिये उसका भी जन्म बता देने की आप कृपा कर दें' मेरे इस प्रकार निवेदन करने पर खार से जैसे मुझे देखकर भगवान जाबालि स्नेह और क्रोधसहित बोले––'रे दुष्टात्मा ! जिससे तू इतनी (बुरी) दशा को प्राप्त हुआ है, क्यों उसी मन-चञ्चलता से चिपका जा रहा है ? तेरे अभी पंख भी नहीं निकले हैं। इसलिये पहले तू उड़ने-फिरने वाला तो बना, तब मुझे पूछना'। ऋषि के यह कहते ही कुतूहल

'तात, महानयं विस्मयो मे। कथय कथमस्य मुनिजातौ वर्तमानस्य तादृशी कामपरता जाता। यया जीवितमपि न संधारयितुं पारितम्। कथं च दिव्यलोकसंभूतस्य तथा स्वल्पमायुः संवृत्तम्।' एवं च पृष्टः सूनुना भगवाञ्जाबालिरमलाभिः पापमलमिव प्रक्षालयन्दशनदीधितिसलिलधाराभिः प्रत्यवादीत्। 'स्पष्टमेवात्र कारणं वत्स। अयं हि कामरागमोहमयादल्पसारात्स्त्रीवीर्यादेव केवलादुत्पन्नः। श्रुतौ च पठ्यते एतद्यादृशाद्वै जायते तादृगेव भवतीति। लोकेऽपि च प्रायः कारणगुणभाञ्ज्येव कार्याणि दृश्यन्ते। तथा चतदायुर्वेदेऽपि श्रूयते। यः किलाल्पसारात्स्त्रीवीर्यादेव केवलाज्जन्तुर्भवति स खल्वभावात्सारभूतस्य स्थैर्यहेतोः पुरुषवीर्यस्य यथासारं गर्भे वा विलयमापद्यते मृतो वा जायते जातो वा न दीर्घकालं जीवतीति। तदयमुत्पन्न एवेदृशो येनास्य तादृशी

ततः तत्पश्चात् मां प्रक्ष्यसि पृच्छां करिष्यसि।' भगवता ऋषिणा एवम् उक्ते कथिते सति समुपजातम् उत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य तथाभूतः हारीतः जाबालि-पुत्रः पप्रच्छ पृष्टवान्—'तात! पितः! अयं मे महान् अत्यधिकः विस्मयः आश्चर्यम् अस्तीति शेषः। कथय वद मुनीनां श्वेतकेतु-प्रभृतीनां जातौ कुले वर्तमानस्य विद्यमानस्य अस्य कामः परं प्रधानं यस्य तस्य भावः तत्ता कामुकतेत्यर्थः कथं कस्मात् जाता संवृत्ता? यया कामपरतया जीवितं प्राणान् अपि संधारयितुं धर्तुं न पारितं शक्तम्? कथं च दिव्यलोके संभूतस्य जन्म गृहीतवतः तथा आयुः जीवनकालः स्वल्पं स्तोकं संवृत्तं जातम्?' एवं सुनना पुत्रेण पृष्टः कृतप्रश्नः भगवान् जाबालिः अमलाभिः स्वच्छाभिः दशनानां दन्तानां दीधितयः दीप्तयः सलिलस्य जलस्य धाराः इवेति लुप्तोपमायाम् ताभिः पापम् स्वमलं प्रक्षालयन् क्षावत् इवेति रूपकोत्प्रेक्षयोः संकरः प्रत्यवादीत् प्रत्युवाच—'वत्स, पुत्र, अत्र अस्मिन् विषये कारणं हेतुः स्पष्टं स्फुटम् एव अस्तीति शेषः। हि यतः अयं शुकरूपो वैशम्पायनः कामः वासना च रागः 'मनसः प्रवणायितम्' च मोहः अज्ञानञ्चेति प्राचुर्येण अस्मिन् अस्तीति तथोक्तात् अल्पः स्तोकः सारः बलं यस्मिन् तस्मात् उत्पन्नः जातः। [एष कथांशः पूर्वभागे पुण्डरीक-महाश्वेतयोः प्रथममिलन-समये वर्णितः इति तत्रैव द्रष्टव्यः]। श्रुतौ—श्रुतौ वेदे च पठ्यते अधीयते एतत् यत्—'यादृशात् यद्गुण-प्रधानात् वै निश्चयेन (प्राणी) जायते उत्पद्यते तादृक् तद्गुणप्रधान एव भवति' इति। लोके जगति अपि प्रायः प्राचुर्येण कार्याणि उत्पद्यमानानि वस्तूनि कारणस्य उत्पादकहेतोः गुणं विशेषतां भजन्ति प्राप्नुवन्ति दृश्यन्ते विलोक्यन्ते। यथा चोक्तं नैयायिकैः—'कारणगुणाः कार्यगुणान् आरभन्ते' इति। तथा च एतत् आयुर्वेदे आयुर्वेद-शास्त्रे अपि श्रूयते आकर्ण्यते। यः जन्तुः जीवः किलेति निश्चये अल्पः स्तोकः सारः बलं यस्मिन् तस्मात् केवलात् एकमात्रात् स्त्रीवीर्यात् रजसः भवति उत्पद्यते, स खलु निश्चयेन सार-भूतस्य सार-रूपस्य, स्थैर्यस्य स्थिरतायाः हेतोः कारणभूतस्य पुरुष-वीर्यस्य (शुक्रस्य) अभावात् असत्त्वात् यथासारं सारानुसारेण गर्भे मातृकुक्षौ वा विलयम् आपद्यते विलीयते अथवा मृतः विगतप्राणो जायते भवति अथवा जातः उत्पन्नो वा न दीर्घकालं चिरं जीवति प्राणिति' इति

भरा हारीत पूछ बैठा—'पिता जी! यह तो मेरे लिये बड़े भारी आश्चर्य की बात है। कहिये, मुनि-जाति में उत्पन्न हुये इसमें उस तरह की कामुकता कैसे हो गई जिसके कारण यह प्राणों को भी न सभाल सका?' इस प्रकार पुत्र द्वारा पूछे जाते हुये भगवान जाबालि जल-धाराओं जैसी दन्त-छटाओं से पापरूपी मल को धोते हुये-जैसे बोले—'बेटा, कारण इसका स्पष्ट ही है, क्योंकि यह काम, राग और मोह-प्रधान केवल स्त्री-रज से ही उत्पन्न हुआ है। यह वेद में पढ़ने को मिलता हैं—'वास्तव में जो जैसे से पैदा होता है, वैसा ही होता है'। आयुर्वेद में भी सुना जाता है कि जो जीव सचमुच अल्प सार वाले केवल स्त्रीवीर्य (रज) से ही उत्पन्न होता है, वह स्थिरता के कारणभूत सार-रूप पुरुष-वीर्य के अभाव से सारानुसार या तो गर्भ में ही लीन हो जाता है, या मर जाता है या यदि जीता रहे तो दीर्घकाल तक नहीं जीयेगा। इसलिये यह

कामपरता जाता। मरणं च मदनवेगसंज्वरासहिष्णोस्तथोपनतम्। अधुनापि तादृश एवाल्पायुरयम्। शापा[1]वसानोत्तरकालं यदस्याक्षयेणायुषा योगो भविष्यति।'

इत्येतच्छ्रुत्वा पुनरवनितलनिवेशितशिराः प्रणम्य भगवन्तं व्यज्ञापयम्। 'भगवन्नहमपुण्यवानस्यां तिर्यग्योनौ वर्तमानः स्वयं सर्वस्यैवाक्षमः। वागपि मे भगवतः प्रसादात्संप्रत्येवानने संभूता। भूतपूर्वञ्च ज्ञानमन्तरात्मनि। शरीरं पुनरायुःसंवर्धककर्मयोग्यं भगवतः प्रसादादन्यस्मिञ्जन्मनि यदि भवेत्तत्केन प्रकारेणाक्षयं तन्मे महाकर्मसाध्यमायुर्भविष्यतीत्येतदाज्ञापयतु भगवान्।' इत्येवं विज्ञापितस्तु मया दिक्षु विक्षिप्य चक्षुर्भगवानाज्ञापितवान्। 'एतदपि यथा तथा ज्ञास्यस्येव। तावदियं कथास्ताम्। रसाक्षेपादचेतितैवास्माभिः प्रभातप्राया रजनी। प्रभाविरहादनुन्मृष्टरजत[2]दर्पणा-

[आयुर्वेद-सिद्धान्तः]। तत् तस्मात् अयं शुक-रूपो वैशम्पायनः ईदृशः स्त्रीवीर्यप्रधान एव उत्पन्नः, येन कारणेन अस्य तादृशी तथाविधा कामपरता कामुकता जाता। मरणं मृत्युः च मदनस्य कामस्य असहिष्णोः सोढुमक्षमस्य अस्य तथा तेन प्रकारेण उपनतम् प्राप्तम्। अधुना इदानीम् अपि शुकयोनौ इत्यर्थः अयं तादृशः तथाविधः एव अल्पायुः स्वल्पजीवितः अस्ति। शापस्य अवसानात समाप्तेः उत्तरकालम् अनन्तरम् अस्य अक्षयेण क्षयरहितेन, देवानामिव अनन्तेन आयुषा जीवन-कालेन योगः सम्बन्धः भविष्यति''।

इत्येतत्—एतत् श्रुत्वा समाकर्ण्य पुनः मुहुः अवनितले महीतले निवेशितं स्थापितं शिरः येन तथाभूतोऽहम् भगवन्तं जाबालिं प्रणम्य नत्वा व्यज्ञापयम् न्यवेदयम्—'भगवन्! अहम् अपुण्यवान् पुण्यरहितः अस्यां तिर्यग्योनौ पक्षियोनौ वर्तमानः स्थितः स्वयम् आत्मना सर्वस्य शापदोषनिवारणसाधनभूतकार्यजातस्य एव अक्षमः असमर्थः अस्मि। भगवतः भवतः प्रसादात् अनुकम्पया वाक् वाणी अपि सम्प्रति अधुना एव मे मम आनने मुखे सम्भूता जाता। पूर्वं पूर्वजन्मनि भूतम् इति भूतपूर्वम्, भूतशब्दस्य पूर्वनिपातः, ज्ञानं च अन्तरात्मनि सम्प्रत्येव संभूतम् इत्यनुवर्तते। पुनः किन्तु भवतः प्रसादात् अनुग्रहात् यदि अन्यस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे आयुषः जीवन कालस्य संवर्धकस्य वृद्धिकारकस्य कर्मणः क्रियायाः योग्यं समर्थं शरीरं देहः यदि भवेत् तर्हि केन प्रकारेण विधया महत् यत् कर्म अनुष्ठानं तेन साध्यं निष्पाद्यं मे मम अक्षयम् अनन्तम् आयुः भविष्यति जनिष्यते' इति। एवं मया विज्ञापितः निवेदितः तु भगवान् जाबालिः दिक्षु दिशासु चक्षुः दृष्टिं विक्षिप्य प्रेर्य आज्ञापितवान् आदिशत्—'एतत् अपि यथा तथा येन केन प्रकारेण त्वं ज्ञास्यसि ते विदितं भविष्यति एव। तावत् इदानीम् इयं कथा प्रसङ्गः आस्ताम् तिष्ठतु।' रसस्य कथारसस्य आक्षेपात् आकर्षात् अस्माभिः प्रभातप्राया प्रायेण प्रभातीभूता रजनी रात्रिः अचेतिता अज्ञाता एव। **प्रभा०**—प्रभायाः कान्त्याः विरहात् अभावात्

उत्पन्न ही ऐसा हुआ कि जिससे इसमें ऐसी कामुकता आई है। और कामवेग से हुये ज्वर को न सह सकते हुए इसकी उस तरह मृत्यु हुई है। अब भी यह उसी तरह अल्पायु है। शाप-समाप्ति के बाद इसका अक्षय आयु का योग बनेगा।'

यह सुनकर फिर धरातल पर सिर रखे मैंने भगवान् जाबालि से प्रार्थना की—'भगवन्, मैं पापी इस पक्षि योनि में पड़ा हुआ स्वयं सभी कुछ करने में असमर्थ हूँ। आपकी कृपा से वाणी भी मेरे मुख में अभी-अभी आई है। पूर्व जन्म का ज्ञान अन्तरात्मा में अभी हुआ है। किन्तु यदि आपकी कृपा से दूसरे जन्म में आयु-वृद्धिकारक कर्म करने योग्य शरीर मुझे मिल जाय, तो किस प्रकार महाकर्म से साध्य मेरी अक्षय आयु होगी' यह आप मुझे आज्ञा दीजिये।' मेरे इस तरह निवेदन करने पर भगवान् जाबालि ने चारों ओर दृष्टि डालकर आज्ञा दी—'यह भी तुम जैसे-तैसे जान ही लोगे? इस समय इस कथा को रहने दो। कथा के रस से हमें पता ही नहीं चला कि रात प्रायः बीत गई। क्रमशः उठकर फैलती जा रही,

१. शापावसानानन्तरकालम्। २. रजतकुम्भाभ।

भमिदमपरान्तावलम्बि वर्तते रजनिकरबिम्बम्। यथायथोद्गमविस्तारिणी जरत्तामरसपत्रारुणा पाण्डुच्छविरुल्लसति सीमन्तयन्ती तमःकेशसंघातमिव पूर्वस्याः ककुभोरुणाग्रकरालोकततिः। इमाः सशेषतिमिरतयाम्ब्र[1]राकाण्डकलुषं भास्वत्प्रभालोकमारब्धाः क्रमेण यथासूक्ष्मं तारकाः प्रवेष्टुम्। एष पम्पासरःशायिनां प्रबोधाशंसी समुच्चरति कोलाहलः श्रोत्रहारी विहंगमानाम्। एते च निशीथिनीपरिमिलनशीतलाश्चलितवनकुसुमपरिमिलनग्राहिणो वातुं प्रवृत्ताः प्रभातपिशुना वायवः, प्रत्यासन्नाग्निविहारवेला।' इत्यभिदधान एव गोष्ठीं भङ्क्त्वोदतिष्ठत्।

न उन्मृष्टः मार्जितः यः रजतस्य रौप्यस्य दर्पणः मुकुरः तस्य आभा शोभा इव आभा यस्य तथाभूतम् (लुप्तोपमा) रजनिकरस्य निशाकरस्य चन्द्रस्येति यावत् बिम्बम् मण्डलम् अपरा पश्चिमदिक् तस्याः अन्ते प्रान्ते अवलम्बते इत्येवंशीलं वर्तते अस्ति। यथा यथा यथाक्रमेण क्रमशः इतियावत् यः उद्गमः उदयः तेन विस्तारिणी विस्तीर्यमाणा जरत् जीर्यमाणं पूर्णतया विकसितमित्यर्थः यत् तामरसं रक्तकमलं तस्य पत्रवत् दलवत् अरूणा ईषद्रक्ता रक्त-पीता, पाण्ड्वी पीतरक्ता, धूसरवर्णा छविः कान्तिः यस्याः तथाभूता, पूर्वस्याः प्राच्याः पूर्वदिशानायिकाया इत्यर्थः तमः तिमिरम् एव केशसंधातः केश-समूहः तं सीमयन्ती इव सीमन्तः केशविभाजकरेखा तं करोतीति तथोक्ता इवेत्युत्प्रेक्षा तस्याः तमः एव केशपाशः इति रूपकेण संकरः, अरुणस्य सूर्यसारथेः ये अग्राः प्रथमाः कराः किरणाः तेषाम् आलोकस्य प्रभायाः ततिः श्रेणी उल्लसति विभासते। आकाशे एकतः तमः अवशिष्यतेस्म, अपरतः अरुणोदयालोक उल्लसति स्म, अतएव कवि-कल्पनेयम् यत् अरुणोदयः प्राची-नायिकायाः ततोरूपकेशान् द्विभागयोः विभजतिस्मेति भावः। इमाः एताः प्रत्यक्षं दृश्यमाना इत्यर्थः तारकाः नक्षत्राणि क्रमेण क्रमशः यथासूक्ष्मं यथा स्यात् तथा क्रमशः सूक्ष्म-सूक्ष्मीभवन्त्यः शेषेण सहितं सावशेषं तिमिरम् अन्धकारः यस्मिन् तथाभूतस्य भावः तत्ता तया अम्बरे आकाशे अकाण्डे असमये कलुषं मलिनं भास्वतः सूर्यस्य प्रभायाः द्युत्याः आलोकं प्रकाशं प्रवेष्टुम् प्रवेशं कर्तुम् आरब्धाः प्रवृत्ताः। एष श्रुतिगोचरः पम्पासरसि एतन्नामके विन्ध्याटव्यां स्थिते सरोवरे शेरते स्वपन्तीत्येवंशीलानां प्रबोधं जागरणम् आशंसितुं सूचयितुमित्यर्थः शीलमस्येति तथोक्तः विहङ्गमानां विहगानां श्रोत्रं कर्णं हरतीति तथोक्तः श्रवण-सुभगः कोलाहलः कलकलः समुच्चरति समुद्गच्छति। एते स्पृश्यमाना निशीथिन्या निशया यत् परिमिलनं सम्पर्क इत्यर्थः तेन शीतलाः शिशिराः चलितानि कम्पितानि यानि वनानां कुसुमानि पुष्पाणि तेषां परिमलं सौरभं गृह्णन्ति आददते इत्येवंशीलाः प्रभातस्य प्रातः कालस्य पिशुनाः सूचका वायवः पवनाः वातुं चलितुं प्रवृत्ताः प्रारब्धाः, अग्नये अग्निकार्याय अग्निहोत्रादियज्ञ-सम्पादनायेति यावत् यः विहारः विहरणं गमनमित्यर्थः तस्य वेला समयः प्रत्यासन्नः सन्निहितः अस्तीति शेषः' इति अभिदधानः कथयन् जाबालिः गोष्ठीं सभां कथाश्रवणार्थं समवेतां मुनिजनपरिषदमिति यावत् भङ्क्त्वा विसृज्य उदतिष्ठत् उत्तस्थौ।

रक्त कमल के जीर्ण पंखुड़ियों के समान लाल-लाल सी, धूसर छवि वाली, अरुणोदय की अगली किरणों की आलोक-रेखा पूर्व दिशा (रूपी नायिका) के तिमिर रूपी केश-समूह की माँग बनाती हुई-जैसी विभासित हो रही है। अन्धेरा शेष रहने के कारण क्रमशः छोटे-छोटे होते जाते हुए, ये तारे गगन में असमय मलिन बने सूर्य की प्रभा के प्रकाश में प्रवेश करने लगे। पम्पा-सरोवर में सोने वाले पक्षियों के जागरण की सूचना देने वाला यह कर्ण-मधुर कोलाहल उठ रहा है। रात्रि के सम्पर्क से ठंडी-ठंडी बनी, वनों के हिलते हुये पुष्पों की सुगन्ध लेती हुई, प्रातःकाल की सूचक ये हवायें बहने लगी है। अग्निकार्य हेतु चल पड़ने की वेला समीप ही है'। यह कहते हुये ही जावालि सभा भंग करके उठ खड़े हुए।

१, अम्बरैरकाण्ड।

अथोत्थिते भगवति जाबालौ वीतरागापि निष्कौतुकापि मोक्षमार्गावस्थानापि समस्तैव सा तपस्विपरिषत्कथारसाद्विस्मृतगुरूचितप्रतिपत्तिः शृण्वतीवोत्कण्ट[२]कितकाया विस्मयोत्फुल्लमुखी युगपदागलितशोकानन्दजन्मनयनसलिला हाकष्टशब्दानुबन्धिनी स्तम्भितेव चिरमिव स्थित्वा यथास्थानं जगाम। हारीतस्तु मां सन्निहितेऽपि मुनिकुमारकजने निजकरेणैवोत्क्षिप्यात्मपर्णशालां नीत्वा शनैः स्वशयनैकदेशे स्थापयित्वा प्राभातिकक्रियाकरणाय निर्ययौ। निर्गते च तस्मिंस्तेन सर्वकार्याक्षमेण तिर्यग्जातिपतनेन पीडितान्तरात्मा चिन्तां प्राविशम्। अत्र तावदनेकभवसुकृतशतसहस्राधिगम्यं मानुष्य-

---

अथो०—अथ भगवति जाबालौ उत्थिते कृतोत्थाने वीतः विगतः रागः सांसारिकवस्तुषु आसङ्गः यस्याः तथाभूतापि, निष्कौतुका कुतूहलरहितापि मोक्षस्य मुक्तेः मार्गे अवस्थानं यस्याः सा अपि समस्ता निखिला एव सा तपस्विनां तापसानां परिषत् सभा मण्डलीति यावत् कथायाः रसात् आस्वादात् कारणात् विस्मृताः विस्मृतिं नीता गुरौ जाबालौ उचिता योग्या प्रतिपत्तिः व्यवहारो यया तथाभूताः सकलां निशां कथा-श्रावणे गुरुचरणानां नियोजनम्—इति नोचितमस्माकं व्यवहारः इति ते विस्मृतवन्तः इति भावः, शृण्वती आकर्णयन्ती इवेति वाक्यालंकारे, ऊर्ध्वं कण्टकाः रोमाञ्चः संजाताः अस्या इति तथोक्ताः विस्मये आश्चर्ये उत्फुल्लं विकसितं यस्याः सा, युगपत् समम् एव आगलितं पतितं शोकः दुःखम् आनन्दः हर्षश्च ताभ्यां जन्म यस्य तथाभूतं नयनयोः सलिलं जलम् अश्रु इत्यर्थः यस्याः सा, ब्राह्मणस्य पतनात् शोकः, ऋषिदत्ताश्वासनात् च आनन्दः, 'हा कष्टम्' इति शोक-शब्दः तम् अनुबध्नाति अनुलगतीत्येवंशीला, स्तम्भिता स्तब्धा जडीभूता इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, चिरं दीर्घकालम् इवेति वाक्यालंकारे स्थित्वा उपविश्य यथास्थानं स्थानम् अनतिक्रम्य स्व-स्व-स्थानमित्यर्थः जगाम अगच्छत्। तु किन्तु हारीतः मुनीनां कुमाराणां जने (जनशब्दोऽत्र बह्वर्थे) समूहे सन्निहिते प्रत्यासन्ने अपि मां निजेन स्वीयेन करेण हस्तेन एव उत्क्षिप्य उत्थाप्य आत्मनः स्वस्य पर्णशालां पर्णकुटिं नीत्वा प्रापय्य शनैः स्वस्य शयनस्य शय्यायाः एकस्मिन् देशभागे इत्यर्थः स्थापयित्वा निधाय प्रभाते भवाः प्राभातिक्यः प्रातःकालीनाः याः क्रियाः स्नानसन्ध्यावन्दनादिक्यः तासां करणाय अनुष्ठानाय निर्ययौ निर्गतः। तस्मिन् हारीते निर्गते निर्याते सति, सर्वाणि च तानि कर्माणि तेषाम् अक्षमेण अशक्तेन तेन तिर्यग्-जातौ पक्षियोनौ इत्यर्थः पतनेन भ्रंशनेन पीडितः दुःखितः अन्तरात्मा मनः यस्य तथाभूतः अहं चिन्ताम् प्राविशम् अकरवम्—' अत्र जगति तावत् प्रथमम् अनेके असंख्याः ये भवाः जन्मनि तेषां सुकृतानां पुण्यानां सहस्रैः अधिगम्यं प्राप्यं मानुष्यम् मनुष्यत्वम् मनुष्ययोनिरित्यर्थ; दुर्लभम् दुःखेन लब्धुं शक्यं भवतीति शेषः। तत्रापि मानुष्ये प्राप्तेऽपि अपरम्

तदनन्तर भगवान जाबालि के उठ खड़े हो जाने पर सारी की सारी तपस्वी-मण्डली—भले ही वह विरक्त, कुतूहल-रहित और मुक्ति-मार्ग की पथिक थी, कथा के रस (आकर्षण के) कारण गुरु के प्रति समुचित व्यवहार भूले हुये, सुनती जाती हुई, शरीर में रोमाञ्चित हुई आश्चर्य में मुँह बाये, एकदम शोक और आनन्द 'में उमड़ पड़े अश्रुजल को बहाये, (दुःख में) 'राम! राम! राम! ध्वनि का सिलसिला जमाये, हक्की-बक्की-सी, देर तक ठहर कर अपने-अपने स्थानों को चल दी। किन्तु हारीत मुनि बालकों के निकट होते हुए भी अपने हाथ से ही मुझे उठाकर अपनी पर्ण-कुटी में ले जाकर धीरे-धीरे अपनी शय्या के एक भाग पर रखकर, प्रातःकालीन क्रियाएँ (स्नान, सन्ध्यावन्दनादि) करने हेतु निकल गया। उसके निकल जाने पर सभी कार्यों (के करने) में अक्षम, उस पशु-पक्षी योनि में पड़ने के कारण मन में दुःखी हुआ मैं चिन्ता में पड़ गया—'इस जगत में पहले तो अनेक जन्मों के हजारों पुण्यों द्वारा प्राप्त होने

---

२. उत्कण्ठिततया।

मेव दुर्लभम् । तत्राप्यपरं सकलजातिविशिष्टं ब्राह्मण्यम् । ततोपि विशिष्टतरमासन्नामृतपदं मुनित्वम् । तस्यापि विशेषान्तरं किमपि दिव्यलोकनिवासित्वम् । तद्येनैतावतः स्थानात्स्वदोषैरात्मा पातितस्तेन कथमधुना सर्वक्रियाविहीनेनास्यास्तिर्यग्जातेः समुद्धतः स्यात् । कथं वा पूर्वजन्माहितस्नेहैः सह समागमसुखमनुभूतम् । अननुभवतश्च तन्निष्प्रयोजनेनामुना जीवितेन किं मे परिरक्षितेन । पततु यत्र तत्र क्वापि यातनाशरीरम् । सुखं तु नानुभवितव्यममुना दुःखैकभाजनेन । तत्परित्यजाम्येनम् । पूर्यतामस्मद्व्यसनदानैकचिन्तादुःस्थितस्य विधेर्मनोरथः, इति । एवं च जीवितपरित्यागचिन्तानिमीलितं मां समुच्छ्वासयन्निव विकासहासिना मुखेन सहसा प्रविश्य

अन्यत् सकलासु समस्तासु जातिषु वर्णेषु ब्राह्मण्यं ब्राह्मणत्वं दुर्लभम् इत्यनुवर्तते । तत् तस्मात् ब्राह्मण्यात् अपि विशिष्टतरम् अतिशयेन विशिष्टम् श्रेष्ठमिति यावत् आसन्नं सन्निहितम् अमृतम् महान् आनन्दः मोक्ष इत्यर्थः तस्य पदं स्थानं यस्मिन् तथाभूतम्, मुनित्वं यतित्वं दुर्लभम् इत्यनुवर्त्तते । तस्य मुनित्वस्यापि किमपि अन्यः विशेषः वैशिष्ट्यम् इति विशेषान्तरम् दिव्यलोके सुरलोके निवासित्वम् निवासः इत्यर्थः (अत्र उत्तरोत्तरस्य पूर्व-पूर्वं प्रति उत्कर्षप्रतिपादनात सारालंकारः) । तत् तस्मात् येन मया एतावतः इयतः उच्चात् स्थानात् पदात् स्वस्य दोषैः अवगुणैः आत्मा पातितः प्रच्यावितः, कथं केन प्रकारेण अधुना इदानीं सर्वाश्च ताः क्रियाः स्नानध्यानाद्याः ताभिः विहीनेन रहितेन तेन मयेत्यर्थः अस्याः एतस्याः तिर्यग्-जातेः पक्षियोनितः आत्मा समुद्धृतः उद्धारं प्रापितः स्यात् । कथं वा पूर्वस्मिन् जन्मनि आहितः कृतः स्नेहः येषु तैः सह समागमस्य सङ्गमस्य सुखम् आनन्दः अनुभूतः स्यात् । तत् सुखम् अननुभवतः अभुञ्जानस्य च मे निष्प्रयोजनेन निरर्थकेन अमुना एतेन जीवितेन प्राणितेन परिरक्षितेन परितः त्रातेन किम् न किमपीति काकुः । यत्र तत्र क्वापि कुत्रापि इदं यातनार्थं शरीरं यातनाशरीरम्, यातना तीव्रवेदना ('यातना तीव्रवेदना' इत्यमरः) केवलं यातनोपभोगप्रयोजनकं शरीरमिति भावः पततु भ्रश्यतु । दुःखस्य एव एकस्य केवलस्य भाजनेन पात्रेण अमुना शरीरेण सुखं तु न अनुभवितव्यम् उपभोक्तव्यम्' तत् तस्मात् एनम् (? एतत् शरीरमित्यर्थः) परित्यजामि परिमुञ्चामि ! अस्मभ्यं मह्यमित्यर्थः यत् व्यसनस्य दुःखस्य दानं वितरणम् एव एका केवला या चिन्ता तया दुःस्थितस्य दुःखितस्य विधेः विधातुः मनोरथः अभिलाषः पूर्यताम् पूर्णो भवतु' इति । एवं च जीवितस्य प्राणानाम् परित्यागस्य मोचनस्य चिन्तया निमीलितम् मुद्रितनेत्रमित्यर्थः मां वैशम्पायन-शुकम् विकासः प्रफुल्लता च हासः हसनं चास्मिन्नस्तीति तथोक्तेन मुखेन समुच्छ्वासयन् समाश्वासयन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सहसा अकस्मात् प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा हारीतः

वाला मनुष्य-जन्म ही दुर्लभ है । उसमें भी दूसरा सभी जातियों में अतिविशिष्ट ब्राह्मणत्व दुर्लभ है । उससे भी और अधिक विशिष्ट मुनित्व दुर्लभ होता है, जिसमें मोक्षपद सन्निहित रहता है । उससे भी कुछ और विशेषता रखने वाला दुर्लभ—दिव्य लोक-निवास है । इसलिये जिस ने इतने बड़े स्थान से अपने दोषों के कारण अपने को गिराया है, वह सभी क्रियाओं से रहित हुआ अब इस तिर्यक् योनि से अपना उद्धार कैसे कर सकता है ? अथवा पूर्व जन्म में गाँठे हुये स्नेह वालों के साथ मिलने का आन्द कैसे ले सकता हूँ ? उस आनन्द को न लूँ । मेरे बचे हुये इस वृथा जीवन से क्या ! यातना वाले शरीर का यहाँ-वहाँ कहीं भी पतन हो जाना चाहिये । एक मात्र दुःख का पात्र बने हुये इसको सुख तो भोगना है नहीं, इसलिये इसे छोड़ देता हूँ ! मुझे केवल दुःख ही देने की चिन्ता में पड़े विधाता का मनोरथ पूरा हो जाय' । इस तरह प्राण-परित्याग की चिन्ता में आँखें बन्द किये मुझे प्राणों को देता हुआ-जैसा खिले

हारीतोऽभ्यधात्। 'भ्रातर्वैशम्पायन दिष्ट्या वर्धसे। पितुस्ते भगवतः श्वेतकेतोः पादमूलात्कपिञ्जलस्त्वामेवान्विष्यन्नायातः' इति।

अहं तु तच्छ्रुत्वा तत्क्षणेनोत्पन्नपक्ष इवोत्पत्य तत्समीपमेव प्राप्तुमभिवाञ्छन्नुद्ग्रीवावलोकी क्वासाविति तमप्राक्षम्। स त्वकथयत्। एष तातपादमूले वर्तत इति। एवं वादिनं तु तमहं पुनरवदम्। 'यद्येवं ततः प्रापयतु मां तत्रैव भगवान्। उत्ताम्यति मे हृदयं तद्दर्शनाय' इति। एवं वदन्नेवाग्रतो गगनागमनवेगादयथास्थितजटाकलापम्, अनिलपथसंचरणचलितैकाञ्चलोत्तरीयम्, तरुत्वचा दृढाबद्धपरिकरम्, अर्धत्रुटितयज्ञोपवीतसनाथास्थिशेषोरस्कम्, निःशेषसुरपथावतरणश्रमोच्छ्वसितशरीरम्, समीरणा-

---

ऋषिपुत्रः अभ्यधात् अवादीत्—"भ्रातः वैशम्पायन ! दिष्ट्या वर्धसे ते वर्धापनं करोमीत्यर्थः। ते तव पितुः जानकस्य भगवतः श्वेतकेतोः पादमूलात् चरण-समीपात् कपिञ्जलः त्वाम् एव अन्विष्यन् अनुसंदधानः आयातः आगतः अस्तीति शेषः' इति।

अहं०—अहं तु तत् हारीतवचनं श्रुत्वा आकर्ण्य तस्मिन् क्षणेन उत्पन्नौ संजातौ पक्षौ पतत्रे यस्या तथाभूतः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उत्पत्य उड्डीय तस्य कपिञ्जलस्य समीपं निकटम् एव प्राप्तुं गन्तुम् अभिवाञ्छन् इच्छन् उत् ऊर्ध्वं ग्रीवा कन्धरा यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवलोकयते पश्यसीत्येवंशीलः 'असौ कपिञ्जलः क कुत्र अस्ति' इति तं हारीतम् अप्राक्षम् अपृच्छम्। स हारीतः तु अकथयत् अवदत्—'एष कपिञ्जलः तातस्य मे पितुः जाबालेः पादयोः मूले समीपे इत्यर्थः वर्तते विद्यते' इति। एवं वदति कथयतीति तथोक्तं तं हारीतं तु अहं पुनः अवदम् अकथयम्—'यदि एवम् अस्ति, ततः तर्हि भगवान् भवान् मां तत्र एव प्रापयतु नयतु। मे हृदयं तस्य कपिञ्जलस्य दर्शनाय विलोकनाय उत्ताम्यति आकुलीभवति' इति। एवं वदन् कथयन् एव अग्रतः पुरतः गगनात् आकाशात् आगमनस्य यः वेगः रयः तस्मात् अयथास्थितः अव्यवस्थितः जटानां लग्न-केशानां कलापः समूहः यस्य तथाभूतम् एतत् अन्यानि च 'कपिञ्जलम्' इत्यस्य विशेषणानि, वाक्यं च 'कपिञ्जलमद्राक्षम्' इत्यस्ति, अनिलस्य वायोः यः पन्थाः मार्गः गगनं तस्मिन् संचरणेन विचरणेन चलितः कम्पितः एकः अञ्चलः प्रान्तभागो यस्य तथाभूतम् उत्तरीयम् उपरिवस्त्रं यस्य तम्, तरोः वृक्षस्य त्वचा वल्कलेन दृढं बलवत् यथा स्यात्तथा आबद्धः आनद्धः परिकरः कटिवस्त्रं येन तथाभूतम्, अर्धं यथा स्यात्तथा त्रुटितं खण्डितं यज्ञोपवीतं ब्रह्मसूत्रं तेन सनाथं युक्तम् अस्थि-शेषम्, अस्थि कीकसं तस्य शेषः अवशेषः यस्मिन् तथाभूतम् उरः वक्षःस्थलं यस्य तम्, निःशेषः समग्रः यः सुराणां देवानां पन्थाः मार्ग आकाशमित्यर्थः तस्मात् अवतरणस्य नीचैः आगमनस्य यः श्रमः क्लमः तेन उच्छ्वसितं कृतोच्छ्वासं यस्य तम्, समीरणेन

और हँसते मुख के साथ सहसा प्रविष्ट हो हारीत बोला—'भाई वैशम्पायन ! बधाई हो। तुम्हारे पिता भगवान् श्वेतकेतु के चरण-समीप से तुम्हें ही ढूँढता हुआ कपिञ्जल आया हुआ है'।

यह सुनकर मैं तो पंख-लगा हुआ-जैसा उड़ कर उसी के पास जाना चाहता हुआ गर्दन ऊपर किये देखता हुआ उसे पूछ बैठा—'वह कहाँ है !' उसने कहा—'वह पिताजी के चरणों के पास बैठा है'। ऐसे कहते उसे मैं फिर बोला—'यदि ऐसा है, तो आप मुझे वहीं ले चलिये। मेरा हृदय उसे देखने को उतावला बना हुआ है।' ऐसा कहते ही मैंने अपने सामने कपिञ्जल को देख लिया, जिसका जटा-समूह आकाश से आने के वेग के कारण अस्त-व्यस्त हुआ पड़ा था, चादर का एक किनारा गगन में चलने से हिल रहा था, कटि-वस्त्र पेड़ की छाल से मजबूती के साथ बँधा हुआ था, हड्डी मात्र शेष रहे वक्ष पर आधा टूटा यज्ञोपवीत पड़ा हुआ था, शरीर

पहृतमपि म[१]रुत्पथोत्पन्नखेदसंभृतमुदकप्रवेशान्निस्यन्दमानस्वेदमाननेन मदवलोकन-दुःखोद्गतं च बाष्पजललवविसरमीक्षणाभ्यां युगपदुत्सृजन्तम्, मुमुक्षुमपि मत्स्नेहेनामुक्तम्, वीतरागमपि मत्प्रियहितरतम्, निःसङ्गमपि मत्समागमोत्सुकम्, निःस्पृहमपि मदर्थसंपादनपर्याकुलम्, निर्ममम्प्युपारूढस्नेहम्, निरहंकारमप्यहमेवायमिति मां मन्यमानम्, समुज्झितक्लेशमपि मदर्थं क्लिश्यन्तम्, समलोष्टाश्मकाञ्चनतासुखितमपि मद्दुःखदुःखितम्, कृतज्ञमकृतज्ञः स्नेहलप्रकृतिं रूक्षचेताः सुकृतिनमपुण्यवाननुगतं वामस्वभावो भावार्द्रहृदयमेकान्तनिष्ठुरोमित्रं वैरी वचनकरमनाश्रवो महात्मानं दुरात्मा

वायुना अपहृतं नीतम् अपि मरुतः वायोः पथि गगने इत्यर्थः उत्पन्नेन जातेन खेदेन क्लमेन संभृतं पूर्णम्, उदके सुरसरितः जले इत्यर्थः प्रवेशात् गमनात् आननेन मुखेन निस्यन्दमानः क्षरन् स्वेदः घर्मजलं यस्य तम् (अत्र 'निस्यन्दमानम्' इत्येव सुवचम्, जलप्रवेशे स्वेदनिस्यन्दासंभवात्) मम अवलोकनेन दर्शनेन यत् दुःखम् तेन उद्गतम् उद्भूतम् बाष्पजलस्य अश्रुजलस्य लवानां कणानां विसरं समूहम् (समूहो निवह-व्यूह-संदोह-विसर-व्रजाः इत्यमरः) ईक्षणाभ्यां नयनाभ्यां युगपत् एकदैव उत्सृजन्तम् मुञ्चन्तम्, मुमुक्षुम् मोक्षेच्छुकम् अपि मयि स्नेहेन प्रीत्या अमुक्तम् अत्यक्तम्, विगतः रागः यस्मात् तथाभूतं विरक्तमिति यावत् अपि मम प्रिये हिते श्रेयसि रतं सक्तम्, निर्गतः सङ्गः जन-सम्पर्कः यस्मात् तथाभूतम् अपि मम समागमः सङ्गमः मिलनमिति यावत् तस्मिन् उत्सुकम् उत्कण्ठितम्, निःस्पृहं स्पृहया इच्छया रहितम् अपि मम अर्थः कार्य-मित्यर्थः तस्य सम्पादने करणे पर्याकुलम् आकुलम्, निर्गतं मम ममत्वबुद्धिरित्यर्थः यस्मात् तम् अपि मयि उपारूढः स्थितः स्नेहः प्रीतिः यस्य तम् निर्गतः अहंकारः अहंभावो यस्मात् तम् अपि 'अयं वैशम्पायनः अहम् कपिञ्जलः एव' इति मां मन्यमानम् बुध्यमानम्, समुज्झिताः परित्यक्ताः सर्वे क्लेशाः येन तम् अपि मदर्थे मत्कृते क्लिश्यन्तम् क्लेशमनुभवन्तम्, समे समाने लोष्टं प्रस्तरश्च काञ्चनं सुवर्णञ्च यस्य तस्य भावः तत्ता तया सुखितं सुखं सञ्जातमस्येति तथोक्तम् अपि मम दुःखेन कष्टेन दुःखितं सञ्जातदुखम्, कृतज्ञ०—अकृतज्ञः कृतम् उपकृतं न जानातीति तथोक्तः कृतघ्नः इत्यर्थः अहं तम् कृतज्ञम् कृतवेदिनम्, रूक्षं शुष्कं निःस्नेहमिति चेतः चित्तं यस्य सोऽहम्, स्नेहः अस्मिन् अस्तीति स्नेहला प्रकृतिः स्वभावः यस्य तम्, अपुण्यवान् पुण्यरहितोऽहं सुकृतिनं पुण्यवन्तम्, वामः प्रतिकूलः स्वभावो यस्य सोऽहम् अनुगतम् अनुकूलम्, एकान्तम् अत्यन्तं यथा स्यात्तथा निष्ठुरोऽहम् भावेन भावनया कारुण्येनेत्यर्थः आर्द्रं क्लिन्नं हृदयं यस्य तम्, वैरी शत्रुः अहम् अमित्रं सुहृदम् अनाश्रवः न आश्रवः वचने स्थितः ('आश्रवो वचने स्थितः' इत्यमरः)

समस्त दिव्य मार्ग से उतरने की थकावट के कारण धौंक रहा था, जो वायु द्वारा ले जाया जाता हुआ भी व्योममार्ग की थकान से युक्त था, (आकाश-गंगा के) जल में प्रवेश करने के कारण मुख से पसीना बहा रहा था, मुझे देख दुःख से उमड़े अश्रुजलकणों का समूह एक साथ दोनों ओर से छोड़ रहा था, मोक्ष का इच्छुक होता हुआ भी मेरे प्रति स्नेह न छोड़े हुए था, विरक्त होता हुआ भी मेरे प्रियहित में लगा हुआ था, निस्संग होता हुआ भी मेरे संगम हेतु उत्सुक बना हुआ था, निरीह होता हुआ भी मेरा काम करने में व्याकुल हो रहा था, ममता-रहित होता हुआ भी (मुझ पर) स्नेह रखे हुए था, अहंकार-रहित होता हुआ भी 'यह मैं ही हूँ' इस तरह मुझे मानता, क्लेश को छोड़े हुए भी मेरे लिये क्लेश उठा रहा था, पत्थर और सोना एक-जैसा मानने के कारण सुखी रहता हुआ भी मेरे दुःख के कारण दुखी हो रहा था, जो कृतज्ञ था (जब कि) मैं कृतघ्न, जो प्रकृति से स्नेहशील था तो मैं चित्त से रूखा, जो भगवान् था तो मैं पापी, जो अनुकूल था तो मैं प्रतिकूल स्वभाव का, जो हृदय में भावना से आर्द्र था तो मैं अतिनिष्ठुर, जो मित्र था तो मैं वैरी, जो वचनपालक था तो मैं वचन का झूठा और जो महात्मा था तो

---

१. मरुत्पथोत्पतन ।

कपिञ्जलमहमद्राक्षम्। दृष्ट्वा च निर्भरगलितनयनपयास्तादृशोपि कृताभ्युद्गमनप्रयत्नः फूत्कृत्य तमवदम्। 'सखे कपिञ्जल, एवं जन्मद्वयान्तरितदर्शनमपि त्वां दृष्ट्वा किं सरभसमुत्थाय दूरत एव प्रसारितभुजद्वयो गाढालिङ्गनेन सुखमनुभविष्यामि। किं करेणावलम्ब्यासनपरिग्रहं कारयिष्यामि। किं सुखासीनस्य गात्रसंवाहनं कुर्वञ्छ्रममपनेष्यामि' इति। एवमात्मानमनुशोचन्तमेव मां कपिञ्जलः करद्वयेनोक्षिप्य मद्विरहदुःखदुर्बले वक्षसि निवेश्य चिरमिवान्तःप्रवेशयन्निवालिङ्गनसुखं किल तथा मेनुभूय भूयसा मन्युवेगेनोत्तमाङ्गे कृत्वा मच्चरणावितरवदरोदीत्।

तथा रुदन्तं तु तं वाङ्मात्रप्रतीकारः पुनरवदम्। 'सखे कपिञ्जल, सकलक्लेशपरिभूतस्य पापात्मनो ममेदं युज्यते यत्त्वया प्रारब्धम्। त्वं पुनर्बालोपि न स्पृष्ट एवा-

---

अवचनपालकः इत्यर्थः वचनं करोति पालयतीति तथोक्तम्, दुरात्मा दुष्टात्माहम् महात्मानं महापुरुषम् अद्राक्षम् अपश्यम्। दृष्ट्वा विलोक्य च निर्भरं भृशं यथा स्यात्तथा गलितं पतितं नयनयोः पयः अश्रुजलं यस्य तथाभूतोऽहम् तादृशः तथाविधः पक्षराहित्यात् सर्वथा असमर्थं अपि कृतः अभ्युदमनस्य स्वागतार्थं कियद्-दूरोपगमस्य प्रयत्नः प्रयासः येन तथाभूतः फूत्कृत्य फूत्कारं कृत्वा सीत्कृत्येति यावत् तम् कपिञ्जलम् अवदम् अकथयम्—'सखे मित्र! कपिञ्जल! एवं जन्मनोः द्वयेन युग्मेन अन्तरितं व्यवहितं दर्शनं यस्य तथाभूतम् अपि त्वां दृष्ट्वा विलोक्य किं रभसः वेगः तेन सहितं यथा स्यात्तथा उत्थाय उत्थानं कृत्वा दूरतः दूरात् एव प्रसारितं विस्तारितं भुजयोः बाह्वोः द्वयं युगं येन तथाभूतः गाढेन निविडेन आलिङ्गनेन आश्लेषेण सुखम् आनन्दम् अनुभवामि भुञ्जे? किं करेण हस्तेन अवलम्ब्य गृहीत्वा आसनस्य परिग्रहं ग्रहणं कारयिष्यामि कर्तुं प्रेरयिष्यामि? किं सुखं सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा आसीनस्य उपविष्टस्य गात्राणाम् अङ्गानां संवाहनं क्लमः निवारणार्थं मर्दनं कुर्वन् विदधत् श्रमं क्लमम् अपनेष्यामि दूरीकरिष्यामि?' इति एवम् आत्मानं स्वम् अनुशोचन्तं शोकविषयीकुर्वन्तम् एव माम् कपिञ्जलः करयोः हस्तयोः द्वयेन युगेन उत्क्षिप्य उत्थाप्य मम विरहस्य वियोगस्य दुःखेन कष्टेन दुर्बले कृशे वक्षसि वक्षःस्थले निवेश्य स्थापयित्वा चिरं दीर्घकालम् इवेति वाक्यालंकारे अन्तः मध्ये प्रवेशयन् प्रवेष्टुं प्रेरयन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् किल यथार्थं मे मम आलिङ्गनस्य आश्लेषस्य सुखम् आनन्दम् अनुभूय अनुभवविषयीकृत्य भूयसा विपुलेन मन्योः शोकस्य वेगेन रयेण मम चरणौ उत्तमाङ्गे शिरसि कृत्वा धृत्वा इतरवत् नीचवत् ('इतरस्त्वन्य-नीचयोः' इत्यमरः) अरोदीत् अक्रन्दत्।

तथा—तथा तेन प्रकारेण रुदन्तं क्रन्दन्तं तु तं वाक् एव वाङ्मात्रम् प्रतीकारः प्रतिक्रिया यस्य तथाभूतोऽहं पुनः अवदम् अकथयम्—'सखे मित्र कपिञ्जल सकलाः सर्वे च ते क्लेशाः कष्टानि तैः परिभूतस्य अभिभूतस्य पापः दुष्टः आत्मा यस्य तथाभूतस्य मम मत्कृते इत्यर्थः इदं युज्यते युक्तम् यत् त्वया प्रारब्धं प्रक्रान्तं रुदितमित्यर्थः त्वं किं रोदिषि,' मया एव रोदितव्यम् इति

मैं दुरात्मा। देखकर खूब आँसू बहाये, वैसी हालत में होता हुआ भी अगवानी का प्रयत्न किये, आहें भरकर मैं उसको बोला—'मित्र कपिञ्जल! इस तरह दो जन्मों का व्यवधान पड़ने पर भी तुम्हें देख क्या मैं शीघ्र उठकर दूर से ही दोनों हाथ फैलाये, कसकर छाती से लगाने का आनन्द लूँ? क्या हाथ से पकड़कर तुम्हें आसन पर बिठाऊँ? क्या आराम से बैठे हुए तुम्हारे अंगों को दबाता हुआ मैं तुम्हारी थकान मिटाऊँ?' इस प्रकार अपने ऊपर पश्चात्ताप करते हुए ही मुझे कपिञ्जल दोनों हाथों से उठाकर, मेरे वियोग के दुख के कारण देर तक कृश बनी छाती पर रख कर मुझे हृदय में घुसाता हुआ-जैसा, उस तरह मेरे आलिंगन का आनन्द लेकर, बड़े भारी दुख वेग के साथ मेरे चरणों को शिर से लगाकर गँवारों की तरह रोने लगा।

उस प्रकार रोते हुए उसे वाणी-मात्र से ही प्रतीकार कर सकने वाला मैं फिर बोला—'मित्र कपिञ्जल! यह जो (रुदन) तुमने आरम्भ किया है, वह सभी क्लेशों से आक्रान्त मुझ

मीभिः संसारबन्धात्मकैर्निर्वाणमार्गपरिपन्थिभिर्दोषैः। तत्किमधुना मूढजनगतेन वर्त्मना। समुपविश्य तावत्कथय यथावृत्तं तस्य वार्ताम्। अपि कुशलं तातस्य। स्मरति वा माम्। दुःखितो वा मदीयेन दुःखेन। मद्वृत्तान्तमाकर्ण्य किमुक्तवान्। कुपितो न वा' इति। स त्वेवमुक्तो मया हारीतशिष्योपनीते पल्लवासने समुपविश्याङ्के मां कृत्वा हारीतोपनीतेनाम्भसा प्रक्षाल्य मुखमाख्यातवान्।

'सखे कुशलं तातस्य। अयं चास्मद्वृत्तान्तः प्रथमतरमेव तातेन दिव्येन चक्षुषा दृष्टः। दृष्ट्वा च प्रतिक्रियायै कर्म प्रारब्धम्। समारब्ध एव कर्मणि तुरगभावाद्विमुक्तो गतोस्मि तातस्य पादमूलम्। गतं च मां दूरत एवोद्बाष्पदृष्टिविषण्णदीनवदनं भयादनुपसर्पन्तमालोक्याहूयाज्ञापितवान्। 'वत्स कपिञ्जल परित्यज्यतां स्वदोषशङ्का। ममैवायं खलु शठमतेः सर्व एव दोषः। येन जानताप्युत्पत्तिसमय एव वत्सस्य कृते नेदमायुष्करं

भावः। त्वं पुनः बालः बालकोऽपि सन् अमीभिः एतैः संसारस्य बन्धः बन्धनम् एव आत्मा येषां तथाभूतैः संसारबन्धनस्वरूपैरित्यर्थः निर्वाणं मोक्षः तस्य मार्गस्य वर्त्मनः परिपन्थिभिः विरुद्धैः दोषैः कामादिभिः न स्पृष्टः स्पर्शाविषयीकृतः असि। तत् तस्मात् अधुना मूढजनैः मूर्खैः गतेन अनुसृतेन वर्त्मना मार्गेण किम्? मूर्खा एव रुदन्ति, त्वं किं रोदिषीति भावः। समुपविश्य निषद्य तावत् आदौ यथा वृत्तं जातं, तस्य वार्ताम् उदन्तं कथय। अपि प्रश्ने, तातस्य पितुः श्वेतकेतोः कुशलं भद्रम्? अपि माम् स्मरति स्मृतिविषयीकरोति? मदीयेन मामकेन दुःखेन दुःखितः सञ्जातदुःखः किम्? मम वृत्तान्तं कामपीडया मरणस्य उदन्तम् आकर्ण्य तातः किम् उक्तवान् कथितवान्? कुपितः क्रुद्धो न वा?' मया एवम् उक्तः अभिहितः स कपिञ्जलः हारीतस्य शिष्येण छात्रेण उपनीते आनीते पल्लवानाम् आसने पल्लवनिर्मितासने समुपविश्य निषद्य माम् अङ्के उत्सङ्गे कृत्वा धृत्वा हारीतेन उपनीतेन आनीतेन अम्भसा जलेन मुखं प्रक्षाल्य प्रक्षालनं कृत्वा आख्यातवान् कथितवान्।

सखे—सखे मित्र, तातस्य पितुः श्वेतकेतोः कुशलं भद्रम् अस्तीति शेषः। अयम् अस्माकं वृत्तान्तः उदन्तः दिव्येन चक्षुषा ज्ञाननेत्रेण प्रथमतरम् आदौ एव दृष्टः विलोकितः। दृष्ट्वा च प्रतिक्रियायै प्रतीकारार्थं कर्म-अनुष्ठानं प्रारब्धम् उपक्रान्तम् तुरगभावात् तुरगत्वात् अश्वयोनितः विमुक्तः विमुक्तिं प्राप्तोऽहं तातस्य पितुः श्वेतकेतोः पादयोः मूलं समीपमित्यर्थः गतः यातः अस्मि। गतं तत्र प्राप्तं दूरतः दूरात् एव उद्बाष्पा उदश्रुः दृष्टिः दृक् यस्मिन् तथाभूतं च विषण्णं विषाद पूर्णं च दीनं दैन्य-पूर्णं च वदनं मुखं यस्य तथाभूतम् भयात् भीतिकारणात् अनुपसर्पन्तं नोपगच्छन्तं माम् आलोक्य दृष्ट्वा आहूय आकार्य आज्ञापितवान् आदिष्टवान्--'वत्स पुत्रकपिञ्जल! स्वस्य आत्मनः दोषस्य अपराधस्य शङ्का परित्यज्यताम् परिमुच्यताम्। शठा मूर्खा मतिः बुद्धिः यस्य तथाभूतस्य मम एव दोषः अस्तीति शेषः। येन मया जानता बुद्ध्यमानेन अपि उत्पत्ति-

---

पापात्मा के लिए तो ठीक है, किन्तु तुम बालक होते हुए भी इस संसार में बाँधने वाले, मुक्ति-मार्ग के विरोधी (कामादि) दोषों से अछूते हो, इसलिए इस समय मूर्खों के मार्ग में जाने से क्या? पहले बैठकर जो कुछ हुआ है, उसका समाचार कहो। क्या पिता जी सकुशल हैं? अथवा मेरी याद करते हैं? मेरे दुःख से दुखी हैं क्या? मेरा वृत्तान्त सुनकर उन्होंने क्या कहा? कुपित हुए या नहीं?' मेरे इस प्रकार पूछने पर हारीत के शिष्य द्वारा लाए पत्तों के आसन पर बैठकर, मुझे गोद में रखकर, हारीत द्वारा लाए जल से मुँह धोकर वह बोला।

'मित्र, पिता जी राजी-प्रसन्न हैं। हमारा यह समाचार पिताजी ने दिव्य चक्षु से पहले ही देख लिया था। और देखकर (इसके) प्रतीकार हेतु अनुष्ठान आरम्भ कर दिया था। अनुष्ठान आरम्भ करते ही घोड़े की योनि से मुक्त हुआ मैं पिता जी के चरणों के पास गया। वहाँ गये, दूर से ही डबडबाई दृष्टि, विषाद और दैन्यभरे मुखवाले, डर के मारे पास न जाते हुए मुझे देख

कर्म निर्वर्तितम् । अधुना सिद्धप्रायमेवेदम् । न दुःखासिका भावनीया । मत्पादमूले तावत्स्थीयताम्' इति । एवमाज्ञापितस्तु तातेन विगतभीर्व्यज्ञापयम् । 'तात, यदि प्रसादोऽस्ति ततो यत्रैवासावुत्पन्नस्तत्रैव गमनायाज्ञापयतु मां तातः' इति । एवं विज्ञापितस्तु मया पुनराज्ञापितवान् । 'वत्स शुकजातावसौ पतितः । तद्गत्वापि तमद्य नैव वेत्सि नाप्यसौ त्वां वेत्तीति तत्तिष्ठ तावत्' इति । अद्य च प्रातरेवाहूय मामाज्ञापितवान् । 'वत्स कपिञ्जल महामुनेर्जाबालेराश्रमपदं सुहृत् ते प्राप्तः । जन्मान्तरस्मरणं चास्योपजातम् । तद्गच्छ संप्रति तं द्रष्टुम् । मदीयया चाशिषानुगृह्य वक्तव्योऽसौ । वत्स यावदिदं कर्म परिसमाप्यते तावत्त्वयास्मिन्नेव जाबालेः पादमूले स्थातव्यमिति । अपि च त्वद्दुःखिताम्बा ते श्रीरपि तस्मिन्नेव कर्मणि परिचारिका वर्तते । तया तु शिरस्युपाघ्रायैतदेव

समये जन्मकाले एव वत्सस्य पुत्रस्य पुण्डरीकस्य कृते इदम् आयुष्करम् दीर्घजीवनकारकं कर्म अनुष्ठानं न निर्वर्तितं सम्पादितम्, अधुना इदानीम् इदं कर्म सिद्धप्रायं प्रायः सिद्धम् एव अस्तीति शेषः । दुःखासिका महादुःखं न भावनीया मनसि न आनेया । मम पादयोः मूले समीपे तावत् इदानीं स्थीयताम् त्वं स्थितिं विधेहि । तातेन जनकेन एवम् आज्ञापितः आदिष्टः विगता अपगता भीः भयं यस्य तथाभूतोऽहम् व्यज्ञापयम् निवेदितवान्—'तात पितः ! यदि चेत् प्रसादः अनुग्रहः अस्ति ततः तर्हि यत्र यस्मिन् स्थाने एव असौ पुण्डरीकः उत्पन्नः तत्र एव गमनाय प्रयाणाय तातः भवान् माम् आज्ञापयतु आदिशतु' इति मया एवं विज्ञापितः निवेदितः तु पुनः स माम् आज्ञापितवान् आदिशत्—'वत्स पुत्र, असौ पुण्डरीकः शुकजातौ शुकयोनौ पतितः । तत् तस्मात् गत्वा यात्वा अपि त्वं तम् अद्य इदानीं न एव वेत्सि जानासि, न अपि असौ शुकरूपे पुण्डरीकः त्वां वेत्ति जानाति इति, तत् तस्मात् तिष्ठ स्थितिं विधेहि तावत् इदानीम् ।' अद्य च प्रातः प्रातःकाले एव आहूय आकार्य माम् आज्ञापितवान् आदिष्टवान्—'वत्स कपिञ्जल, महामुनेः महर्षेः जाबालेः आश्रमस्य पदं स्थानं ते तव सुहृत् शुकरूपः पुण्डरीकः प्राप्तः गतः । अस्य च ते मित्रस्य जन्मान्तरस्य पूर्वजन्मनः स्मरणं स्मृतिः जाता संवृत्ता । तत् तस्मात् सम्प्रति इदानीं तम् द्रष्टुं गच्छ याहि । मदीयया मामकिन्या ममेत्यर्थः आशिषा आशीर्वचनेन तम् अनुगृह्य अनुकम्प्य असौ पुण्डरीकः वक्तव्यः कथनीयः—'वत्स, यावत् यावत्पर्यन्तम् इदं कर्म अनुष्ठानं परिसमाप्यते समाप्तिं गच्छति, तावत् तावत्पर्यन्तं त्वया अस्मिन् एव जाबालेः पाद-मूले चरणसमीपे स्थातव्यम् अवस्थानं कर्तव्यम्' इति । अपि च किंच तव दुःखेन दुःखिता दुःखमवाप्ता ते तव अम्बा माता श्रीः लक्ष्मीः अपि अस्मिन् एव कर्मणि कार्ये मे परिचारिका सेविका वर्तते विद्यते मे सहयोगं ददातीत्यर्थः । तया ते मात्रा लक्ष्म्या शिरसि उपाघ्राय चुम्बित्वा

कर, बुलाकर उन्होंने मुझे आज्ञा दी—'बेटा कपिञ्जल, अपने दोष की शंका छोड़ दो । सचमुच यह सारा ही दोष मुझ मूढ-बुद्धिवाले का ही है, जिसने जानते हुए भी जन्म-काल में ही पुत्र के लिए आयुवर्धक अनुष्ठान नहीं किया । यह अब प्रायः सिद्ध हो ही गया हैं । तुम्हें मन में अधिक दुःख नहीं करना चाहिए । फिलहाल मेरे चरणों के पास रहो ।' इस तरह पिता द्वारा आज्ञा प्राप्त किये मैंने निर्भय होते हुए निवेदन किया—'पिता जी, यदि अनुग्रह हो, तो जहाँ वह उत्पन्न हुआ है, वहीं जाने हेतु आप मुझे आज्ञा दीजिये' । मेरे इस प्रकर निवेदन करने पर उन्होंने फिर आज्ञा दी—'बेटा, वह शुक-योनि में पड़ा हुआ है । इसलिए आज जाकर भी न तुम उसको जानोगे, न वही तुम्हें जानेगा । इसलिए फिलहाल यहीं रुको' । आज प्रातःकाल ही मुझे बुलाकर आज्ञा दी—'बेटा कपिञ्जल, तुम्हारा सखा महामुनि जाबालि के आश्रम-स्थान में पहुँचा हुआ है । उसे पूर्व-जन्म का स्मरण हो गया है । इसलिये अब उसे देखने हेतु जाओ । मेरी तरफ से आशीष द्वारा उसे अनुगृहीत करके बोलना—'बेटा, जब तक मेरा यह अनुष्ठान समाप्त होने में नहीं आता, तब तक तुम इन्हीं जाबालि जी के चरणों के पास ठहरे रहो । इसके अतिरिक्त, तुम्हारे दुख से दुखित तुम्हारी माता लक्ष्मी भी इसी अनुष्ठान में मेरी सेवा कर रही

पुनः पुनः संदिष्टम् ।' एवमुक्त्वाऽकठोरशिरीषकुसुमशिखासूक्ष्माग्रोद्भेदपक्ष्मलानि गात्राणि पुनः पुनः पाणिना परामृश्यान्तर्हृदयेनादूयत। तथा दूयमानहृदयं च तमवदम् । 'सखे कपिञ्जल किं दूयसे। त्वयापि मन्दपुण्यस्य मम कृते तुरंगमतापन्नेन पराधीनवृत्तिना बहुतराण्येव दुःखान्यनुभूतानि। कथं सोमपानोचितेनामुनास्येन समुत्पादितसफेनरक्तस्रवाः खरखलीनक्षतयो विसोढाः। कथमयमकठोरकिसलयशयनैक-सेवाकुमारः सदा पर्याणितस्य न शीर्णः पृष्ठवंशः। कथमेषु कुसुमोच्चयपातितबालवन-लतास्पर्शमात्राक्षमेषु गात्रेषु कशाभिघाता निपतिताः। कथं च ब्रह्मसूत्रोद्वाहिनि देहेऽस्मिन्वध्रोत्पीडनकृताः पीडाः समुपजाताः' इति। एभिरन्यैश्च पूर्ववृत्तान्ता-लापैस्तत्कालविस्मृततिर्यग्जातिदुःखः सुखमतिष्ठम् ।

इत्यर्थः एतत् एव यन्मया संदिष्टमित्यर्थः पुनः पुनः सन्दिष्टम् सन्देश-रूपेण कथितम्'। एवम् उक्त्वा कथयित्वा अकठोराणि कोमलानीत्यर्थः यानि शिरीषस्य कुसुमानि सुमनांसि तेषां या शिखा उपरितनभागः तस्याः सूक्ष्मः अतिलघुः यः अग्रः अग्रिमः उद्भेदः उद्गमः तद्वत् पक्ष्मलानि रोमयुक्तानि गात्राणि अङ्गानि पाणिना हस्तेन परामृश्य स्पृष्ट्वा अन्तः मध्ये हृदयेन अदूयत अखिद्यत। तया तेन प्रकारेण दूयमानं खिद्यमानं हृदयं यस्य तथाभूतं च तम् कपिञ्जलम् अवदम् अकथयम्—'सखे मित्र कपिञ्जल ! किं कस्मात् दूयसे खिद्यसे ? त्वया अपि मन्दं स्वल्पं पुण्यं सुकृतं यस्य तथाभूतस्य कृते अर्थे तुरङ्गताम् अश्वत्वम् अश्वयोनिमिति यावत् आपन्नेन प्राप्तेन पराधीना परायत्ता वृत्तिः वर्तनं यस्य तेन बहुतराणि अत्यन्तबहूनि एव दुःखानि कष्टानि अनुभूतानि भुक्तानि। कथम् सोमस्य पानस्य उचितेन अभ्यस्तेन अमुना एतेन आस्येन मुखेन समुत्पादितः जनितः सफेनस्य फेनसहितस्य रक्तस्य रुधिरस्य स्रवः स्रावः याभिः तथाभताभिः खरं कठोरं यत् खलीनं मुखस्थितः लोहमयो वल्गाभाग इत्यर्थः तेन क्षतयः क्षतानि विसोढाः क्षान्ताः। **कथम्**—सदा सततं पर्याणं पल्ययनं संजातमस्येति तथोक्तस्य ते अकठोराणि यानि किसलयानि पल्लवानि तेषां शयनस्य शय्याया एव एकस्य केवलस्य सेवया सेवनेन सुकुमारः सुकुमारीभूतः पृष्ठवंशः पृष्ठास्थि कथं न शीर्णः त्रुटितः ? कुसुमानां पुष्पाणाम् उच्चये अवचये पातिताः नीचैः कृताः इत्यर्थः याः बालाः मृद्व्यः वनस्य लताः वल्ल्यः तासां स्पर्शः एव स्पर्शमात्रं तस्य अक्षमेषु सोढुमशक्तेषु एषु एतेषु गात्रेषु अङ्गेषु कशायाः प्रतोदस्य अश्वताडिन्याः इति यावत् अभिघाताः ताडनानि निपतिताः ? कथं च ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीतम् उद्वहति धारयतीत्येवंशीले अस्मिन् देहे शरीरे वध्रं चर्मपट्टः तेन यत् उत्पीडनं पीडा तेन कृताः जनिताः पीडाः वेदनाः समुपजाताः संभूताः इति अन्यैः अपरैश्च पूर्वं प्राक्तनाः पूर्वजन्मीयाः ये वृत्तान्ताः उदन्ताः तेषाम् आलापैः संभाषणैः तत्कालं तस्मिन् समये विस्मृतं विस्मृतिं नीतम् तिर्यग्जातेः पशु-पक्षियोनेः दुःखं येन तथाभूतोऽहम् सुखं सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा अतिष्ठम् स्थितवान्।

है। उसने तुम्हारा सिर सूँघ (चूम) कर बार-बार यही सन्देश दिया है।' इस प्रकार कहकर शिरीष के कोमल पुष्पों की चोटी की सूक्ष्म नोकों की तरह रोम वाले मेरे अंगों को बार बार हाथ से छू कर हृदय के भीतर बड़ा दुखी होते उसे मैं बोला—'सखा कपिञ्जल, क्यों दुखी हो रहे हो ? घोड़े की योनि पाये, पराधीन हुये तुमने भी तो मुझ मन्दभागी के खातिर बहुत सारे दुख झेले हैं। सोमपान में अभ्यस्त इस मुँह से झाग के साथ-साथ खून निकाल देने वाले लगाम के ही कठोर दहाने के घाव कैसे सहे। केवल कोमल पल्लवों की शय्या का ही सेवन करते रहने से कोमल बनी, सदा जीन चढ़ी तुम्हारी यह रीढ़ क्यों नहीं टूटी! फूल चुनते समय नीचे झुकाई कोमल लताओं का स्पर्शमात्र भी न सह सकने वाले इन अंगों पर किस तरह चाबुक की मार पड़ी। और यज्ञोपवीत धारण करने वाले शरीर पर चाम के कमरबंद के चुभते रहने से कैसी पीड़ा हुई होगी'। इन पूर्व जन्म के अन्य वृत्तान्तों की बातचीत से उस समय अपनी पक्षि-योनि का दुख भूले हुये मैं सुख के साथ बैठा रहा।

उपरोहति च मध्याह्नं सवितरि सह कपिञ्जलेन मां यथोचितमाहारमकारयत्। कृताहारश्च कपिञ्जलः क्षणमिव स्थित्वा मामब्रवीत्। 'अहं हि तातेन त्वां समाश्वासयितुं जाबालिपादमूलादा कर्मपरिसमाप्तेर्न त्वया चलितव्यमित्येतच्चादेष्टुं विसर्जितः। अन्यदहमपि तत्रैव कर्मणि व्यग्रतर एव। तद् व्रजामि संप्रति।' अहं तु तच्छ्रुत्वा विषण्णवदनस्तं प्रत्यवदम्। 'सखे कपिञ्जल, एवं गते किं ब्रवीमि। किं च तातस्याम्बाया वा संदिशामि। सर्वं त्वमेव वेत्सि' इति। स त्वेवमुक्तो मया पुनः पुनस्तत्रावस्थानाय मां संनिधाय हारीतं चानुभूतास्मदालिङ्गनसुखो विस्मयोन्मुखेन मुनिकुमारकजनेनेक्ष्यमाणोऽन्तरिक्षमतिक्रम्य क्वाप्यदर्शनमगात्। गते च तस्मिन्हारीतः समाश्वास्य मां शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत्। उत्थाय चान्यं मुनिकुमारकं मत्पार्श्वे स्थापयित्वा निरगात्। निर्वर्तितस्ना-

---

उप०—सवितरि सूर्ये अह्नः मध्ये इति मध्याह्नम् उपरोहति आरोहणं कुर्वति सति कपिञ्जलेन सह मां यथोचितं यथायोग्यम् आहारं भोजनम् अकारयत् कर्तुं प्रैरयत् हारीत इति शेषः। कृतः आहारो भोजनं येन तथाभूतः कपिञ्जलः क्षणम् ईषत्कालम् इवेति वाक्यालंकारे, स्थित्वा माम् अब्रवीत् अवदत्—अहं हि निश्चयेन तातेन पित्रा त्वाम् समाश्वासयितुं समाश्वासनं दातुं तथा 'आकर्मणः अनुष्ठानस्य परिसमाप्तेः पर्यवसानपर्यन्तं 'त्वया जाबालेः पाद-मूलात् चरणसमीपात् न चलितव्यं गन्तव्यम्' इति एतत च आदेष्टुम् आज्ञापयितुम् विसर्जितः। अन्यत् किंच अहम् अपि तत्र तस्मिन् एव कर्मणि अनुष्ठाने व्यग्रतरः भृशं व्यासक्तः एव अस्मि। तत् तस्मात् सम्प्रति साम्प्रतं व्रजामि गच्छामि'। अहं तु तत् श्रुत्वा आकर्ण्य विषण्णं विषादपूर्णं वदनं मुखं यस्य तथाभूतः तं कपिञ्जलं प्रत्यवदम् प्रत्यब्रुवम्—'एवं गते ईदृश्यां परिस्थितौ किं ब्रवीमि वदामि। किं च तातस्य पितुः अम्बायाः मातुश्च संदिशामि सन्देशं प्रेषयामि। सर्वं निखिलं वृत्तमित्यर्थः त्वम् एव वेत्सि जानासि।' इति मया एवम् उक्तः अभिहितः सः कपिञ्जलस्तु तत्र आश्रमे अवस्थानाय स्थातुं (कर्मसमाप्ति-पर्यन्तमिति शेषः) माम् पुनः पुनः वारं-वारं प्रतिबोध्येति पृथक् ल्यबन्तक्रिया अत्रापेक्ष्यते अन्यथा 'मां हारीतं संनिधाय' इति द्विकर्मकत्वं न संघटते, हारीतं (मत्समीपे) संनिधाय स्थापयित्वा च अनुभूतम् अस्माकं ममेत्यर्थः आलिङ्गनस्य आश्लेषस्य सुखम् आनन्दः येन तथाभूतः सन् विस्मयेन आश्चर्येण ऊत् ऊर्ध्वं मुखम् आननं यस्य तेन मुनिकुमारकजनेन मुनिबालकैः ईक्ष्यमाणः विलोक्यमानः अन्तरिक्षम् आकाशम् अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य क्वापि कुत्रापि अदर्शनं लोपम् अगात् अगच्छत्। तस्मिन् कपिञ्जले गते प्रस्थिते सति हारीतः माम् समाश्वास्य आश्वस्तीकृत्य शरीरस्य स्थितेः स्नान-भोजनादिक्रियायाः करणाय निर्वर्तनाय उदतिष्ठम् उत्तस्थौ। उत्थाय च अन्यम् अपरं मुनिकुमारकं मुनिबालकं मम पार्श्वे समीपे स्थापयित्वा निधाय निरगात् निरगच्छत्। निर्वर्तितः संपादितः स्नानादि-क्रियाणां

सूर्य के मध्याह्न में चढ़ जाने पर हारीत ने कपिञ्जल के साथ मुझे यथोचित भोजन करवाया। खाना खाये कपिञ्जल क्षण भर ठहर कर मुझको बोला—'वस्तुतः पिता जी ने तुम्हें धीरज बँधाने तथा यह आज्ञा देने मुझे भेजा है कि जब तक अनुष्ठान पूरा नहीं हो जाता, तब तक जाबालि जी के चरणों के पास से (कहीं) नहीं जाना। अपि च, मैं भी उसी अनुष्ठान में ही खूब लगा हुआ हूँ। इसलिये अब चलता हूँ'। यह सुनकर विषण्ण-मुख हुआ मैं उसे बोला—'सखा कपिञ्जल! ऐसी स्थिति में मैं क्या बोलूँ? अथवा माता-पिता को क्या सन्देश दूँ? तुम्हीं सब कुछ जानते हो'। मेरे यह कहने पर बार-बार मुझे (अनुष्ठान-समाप्ति तक) वहीं टिके रहने हेतु समझा कर, तथा हारीत को बिठाकर, मेरे आलिंगन का आनन्द लेता हुआ, आश्चर्य में ऊपर मुँह किये मुनि-कुमारों द्वारा देखा जाता हुआ वह अन्तरिक्ष पार करके कहीं गायब हो गया। उसके चले जाने पर हारीत मुझे आश्वासन देकर स्नानादि करने हेतु उठ खड़ा हुआ।

नादिक्रियाकलापश्चात्मनैव सहापराह्णसमये पुनर्मामाहारमकारयत्।

एवं चावहितचेतसा हारीतेन संवर्ध्यमानः कतिपयैरेव दिवसैः संजातपक्षोऽभवम्। उत्पन्नोत्पतनसामर्थ्यश्च चेतस्यकरवम्! 'गमनक्षमस्तु संवृत्तोऽस्मि। तन्न नाम चन्द्रापीडोत्पत्तिपरिज्ञानम्। महाश्वेता पुनः सैवास्ते। तत्किमुत्पन्नज्ञानोपि तद्दर्शनेन विनात्मानं निमेषमपि दुःखं स्थापयामि। भवतु तत्रैव गत्वा तिष्ठामि।' इति निश्चित्यैकदा प्रातर्विहारनिर्गत एवोत्तरां ककुभं गृहीत्वावहम्। अबहुदिवसाभ्यस्तगमनतया स्तोकमेव गत्वाशीर्यन्त इव मेऽङ्गानि श्रमेण। अशुष्यच्चञ्चुपुटं पिपासया। नाडिंधमेनाकम्पत कण्ठः श्वासेन। तदवस्थश्च शिथिलायमानपक्षतिरत्र पताम्यत्र पतामीति परवानेवान्यतमस्य तमस्विनीतिमिरसंघातस्येवार्ककरतिरस्कारिणो घनहरितपल्लवभराव-

---

कार्याणां कलापः समूहः येन तथाभूतश्च आत्मना स्वेन सह अपराह्णसमये मध्याह्नोत्तरकाले तृतीयप्रहरे इति यावत् पुनः माम् आहारं भोजनम् अकारयत् कारितवान्।

एवं—अवहितं सावधानं चेतः चित्तं यस्य तथाभूतेन हारीतेन संवर्ध्यमानः वृद्धिं प्राप्यमाणः कतिपयैः कतिभिश्चित् एव दिवसैः अहोभिः अहं संजातौ समुत्पन्नौ पक्षौ पतत्रे यस्य तथाभूतोऽहम् अभवम् संवृत्तः। उत्पन्नम् उत्पतनस्य उड्डयनस्य सामर्थ्यं बलं यस्मिन् सोहम् चेतसि मनसि अकरवम् अचिन्तयमित्यर्थः—'गमनस्य उड्डयनस्य क्षमः समर्थस्तु अहं संवृत्तः जातः अस्मि। तत् तस्मात् न नामेति—कोमलामन्त्रणे चन्द्रापीडस्य उत्पत्तेः जनेः परिज्ञानम् बोधः स्यात्, पुनः किंतु महाश्वेता सा एव आस्ते वर्तते। तत् तस्मात् तद्विषये उत्पन्नं सञ्जातं ज्ञानं यस्य तथाभूतः अपि तां जानानः अपीत्यर्थः तस्याः दर्शनेन विलोकनेन विना निमेषं क्षणम् अपि किं कस्मात् आत्मानं स्वं दुःखं यथा स्यात्तथा स्थापयामि दुःखे पातयामीत्यर्थः। भवतु अस्तु, तत्रैव महाश्वेतायाः स्थाने गत्वा तिष्ठामि स्थितिं करोमि'। इति निश्चित्य अवधार्य एकदा एकस्मिन् समये प्रातः प्रभाते विहारार्थं विचरणार्थं निर्गतः निःसृतः एव उत्तरां ककुभं दिशाम् गृहीत्वा आश्रित्य अवहम् अचलम्, अबहुभिः स्वल्पैः एव दिवसैः दिनैः अभ्यस्तम् प्रारब्धमित्यर्थः गमनं चलनं येन तस्य भावः तत्ता तया स्तोकम् स्वल्पम् एव गत्वा उड्डीय श्रमेण क्लमेन मे अङ्गानि गात्राणि अशीर्यन्त अस्फुटन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। चञ्चुः त्रोटिः तस्याः पुटम् अन्तरालम् पिपासया तृषा अशुष्यत् शुष्कमभवत्। **नाडिंधम०**—नाडिं धमति स्फाययतीति तथोक्तेन श्वासेन श्वसनेन कण्ठः गलः अकम्पत अवेपत, सा अवस्था यस्य सः शिथिलायमाना शिथिलीभवन्ती ('पक्षतिः पक्षमूलम्' इत्यमरः) 'अत्र पतामि, अत्र पतामि' इति परवान् परायत्तः एव अन्यतमस्य कस्यचित् एकस्य तमस्विन्याः निशायाः यत् तिमिरम् अन्धकारः तस्य संघातः राशिः तस्य इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अर्कस्य सूर्यस्य तिरस्कारिणः निवारकस्येत्यर्थः घनाः निबिडाः हरिताः

उठकर मेरे पास दूसरे मुनिकुमार को बिठाकर चल पड़ा। स्नानादि क्रिया-कलाप किये अपराह्ण समय अपने साथ ही उसने फिर मुझे भोजन करवाया।

इस प्रकार सावधान चित्त से हारीत द्वारा पाले पोसे जाते हुए मेरे कुछ ही दिनों में पंख उग आए। उड़ने को समर्थ हुए मेरे मन में विचार आया—'चलने फिरने को मैं समर्थ हो गया हूँ। इसलिए चन्द्रापीड की उत्पत्ति का ज्ञान भले ही न हो, किन्तु महाश्वेता तो वही है। अतः ज्ञान उत्पन्न होते हुए भी मैं उसके दर्शनों के बिना पल भर भी क्यों अपने को मैं डालूँ। अस्तु, वहीं चलकर रहता हूँ'। यह निश्चय करके एक बार प्रातः भ्रमण हेतु निकला हुआ मैं उत्तर दिशा को ग्रहण करके चल पड़ा। बहुत दिनों का उड़ने का अभ्यास न होने के कारण थोड़ा ही चलकर थकावट के कारण मेरे अङ्ग टूट-से गए। प्यास के मारे चन्चुपुट सूख गया। नाड़ियों को फुला देने वाले श्वास से गला काँप उठा। वैसी हालत में पंखों से ढीला पड़ता हुआ 'यहाँ गिरा, वहाँ गिरा' यों पराधीन-जैसा मैं रात्रि के अन्धकार-समूह-जैसे, सूर्य-किरणों को रोक देने

नम्रस्यासन्नतरस्य सरस्तीरतरुनिकुञ्जस्योपर्यात्मानममुञ्चम्। चिरादिवोन्मुक्ताध्वश्रमक्लमोऽवतीर्य शीतलतरुतलच्छायास्थितो दलगहनसंरोधशिशिरमरविन्दकिञ्जल्करजोवाससुरभि बिसरसकषायमापीयमानमेवोत्पादितपुनरुक्तपानस्पृहमा तृप्तेः पयो निपीय यथाप्राप्तैरकठोरकमलकर्णिकाबीजैर्वीरतरुपर्णाङ्कुरफलैश्च कृत्वा क्षुधः प्रतीकारमपराह्णसमये पुनः कियन्तमप्यध्वानं यास्यामीति मनसि कृत्वाध्वश्रमनिःसहान्यङ्गानि विश्रमयितुमन्यतमामविच्छिन्नच्छायां शाखामारुह्य तरोर्मूलभाग एवावातिष्ठम्। तथा स्थितश्चाध्वश्रमसुलभां निद्रामगच्छम्। चिरादिव च लब्धप्रबोधो बद्धमात्मानमनुन्मोचनीयैस्तन्तुपाशैरपश्यम्। अग्रतश्च पाशविरहितमिव कालपुरुषम्, अतिकठिनतया

हरिद्वर्णाश्च ये पल्लवाः किसलयाः तेषां भरेण भारेण अवनम्रस्य निम्नीभूतस्य आसन्नतरस्य अतिसमीपवर्तिनः सरसः पम्पासरोवरस्य तीरस्य तरूणां वृक्षाणां निकुञ्जस्य कुञ्जस्य उपरि आत्मानं स्वम् अमुञ्चम् अपातयम्। चिरात् दीर्घकालम् इवेति वाक्यालंकारे उन्मुक्तः अपनीतः अध्वनः मार्गस्य यः श्रमः आयासः तस्य क्लमः खेदः येन तथाभूतः अवतीर्य नीचैः आगत्य शीतला तरूणां वृक्षाणां तलस्य अधोभागस्य या छाया अनातपः तस्यां स्थितः कृतावस्थानः, दलानां पत्राणां यत् गहनं घनो भागः तेन यः संरोधः आतपनिरोधः तेन शिशिरं शीतलम्, अरविन्दानां कमलानां किञ्जल्कानां केसराणां रजसः परागस्य वासेन सुगन्धेन सुरभि सुगन्धितम्, बिसानां मृणालानां रसेन कषायं तुवरं ('तुवरस्तु कषायोऽस्त्री' इत्यमरः) आपीयमानम् पानविषयीक्रियमाणम् एव उत्पादिता जनिता पुनरुक्तस्य आवर्तितस्य पानस्य स्पृहा इच्छा तथाभूतम् आ तृप्तेः कण्ठेहत्य तृप्तिपर्यन्तमिति यावत्, पयः जलं निपीय पीत्वा, यथाप्राप्तैः यथालब्धैः अकठोराणि कोमलानि कमलानां कर्णिकानां बीजकोषाणां बीजैः फलैः वीर-तरोः अरुष्करस्य ('वीरवृक्षोऽरुष्करोऽग्निमुखी भल्लातकी त्रिपु' इत्यमरः) पत्राणां दलानां अङ्कुरैः प्ररोहैः फलैश्च क्षुधः बुभुक्षायाः प्रतीकारं प्रतिक्रियाम् निवृत्तिमित्यर्थः कृत्वा विधाय 'अपराह्णस्य समये मध्याह्नोत्तरकाले तृतीये प्रहरे इति यावत् पुनः मुहुः कियन्तम् अपि कमपि अध्वानं मार्गं यास्यामि चलिष्यामि' इति मनसि कृत्वा विचार्य अध्वनः श्रमः प्रयासः तेन निःसहानि अशक्तानि अङ्गानि अवयवान् विश्रमयितुं विश्रमम् प्रापयितुम् अविच्छिन्ना निरन्तरा छाया यस्याः तथाभूतां शाखां विटपम् आरुह्य अधिष्ठाय तरोः वृक्षस्य मूलभागे एव अतिष्ठम् स्थितिम् अकरवम्। तथा तेन प्रकारेण स्थितः कृतावस्थानश्च अध्वनः मार्गस्य श्रमेण खेदेन सुलभां सुप्रापां निद्राम् अगच्छम् सुप्तोऽभवम्। चिरात् दीर्घकालात् इवेति वाक्यालंकारे च लब्धः प्राप्तः प्रबोधः जागरणं येन तथाभूतोऽहम् आत्मानं स्वम् अनुन्मोचनीयैः उन्मोचयितुं न शक्यैः तन्तूनां सूत्राणां पाशैः बन्धनैः बद्धम् नद्धम् अपश्यम् दृष्टवान्। अग्र०—अग्रतः पुरतश्च 'पुरुषमद्राक्षम्' इत्यस्ति वाक्यम् पाशेन बन्धनेन विरहितं हीनं कालपुरुषम् यमदूतम् इव, एतत् अन्यानि च 'पुरुषम्' इत्यस्य

वाले, घने हरे पत्तों के भार से नीचे झुके हुए, अतिसमीप-स्थित, सरोवर के तट के वृक्षों के किसी एक झुरमुट के ऊपर अपने को छोड़ बैठा। देर तक मार्ग के श्रम की थकान मिटाये मैं नीचे उत्तर कर वृक्षों के नीचे ठंडी छाया में बैठा, घने पत्तों से (धूप के) रोक दिए जाने के कारण ठंडे बने, कमलों के केसरों की पराग की बास से सुगन्धित बने, कमलनालों के रस से कषैले, पीकर भी फिर-फिर पीने की इच्छा उत्पन्न किये हुए जल को तृप्ति-पर्यन्त पीकर, जैसे भी मिले हुए कमल-डोडों के कोमल बीजों तथा भिलावे के पत्तों के कोंपलों व फलों से क्षुधा की निवृत्ति करके 'मध्याह्नोत्तर काल में कुछ और मार्ग पार कर लूँगा' वह मन में सोच, रास्ते की थकान के कारण अशक्त हुए पड़े अंगों को विश्राम देने हेतु घनी छाया वाली किसी एक शाखा पर चढ़कर, वृक्ष के निचले भाग में ही बैठ गया। उस तरह बैठे मुझे मार्ग की थकावट के कारण सुलभ नींद आ गई। और देर बाद जागा, तो न छुडाए जा सकने वाले धागों के जाल से अपने को बँधा हुआ देखा। और सामने बिना पाश के यमदूत-जैसा, शरीर की दृढ़ता और

कालिम्ना च वपुषः कालायसपरमाणुभिरिव केवलैर्निर्मितम्, प्रेतपतिमिवापरम्, पतिपक्षमिव पुण्यराशेः, आशयमिव पाप्मनः, विनापि क्रोधकारणादाबद्धभीषणभ्रुकुटिरौद्रतरेणाननेनारक्तकेकरतरकनीनिकेन च चक्षुषा सकलजनभयंकरस्य भगवतः कृतान्तस्यापि भयमिवोपजनयन्तम्, आशये केशेषु चास्निग्धम्, आनने ज्ञाने चान्धकारितम्, वर्णे चरिते च कृष्णम्, निवसने कर्मणि च मलिनम्, वपुषि वचसि च परुषम्, अदृष्टाश्रुतानुरूपमप्याकारप्रत्ययादेवानुमीयमानक्रौर्यदोषं पुरुषमद्राक्षम्। आलोक्य च तं तादृशमात्मन उपरि निष्प्रत्याश एवापृच्छम्। 'भद्र कस्त्वम्? किमर्थं वा त्वया बद्धोऽस्मि। यद्यामिषतृष्णया तत्किमिति सुप्त एव न व्यापादितोऽस्मि। किं मया निरागसा बन्धदुःखमनुभावितेन। अथ केवलमेव

विशेषणानि, वपुषः शरीरस्य अतिकठिनतया अतिसंहततया कालिम्ना कृष्णवर्णेन च केवलैः एकमात्रैः कालायसस्य कृष्णवर्णलोहस्य परमाणुभिः सूक्ष्मनिरवयवतत्त्वैः निर्मितं रचितम् इव, अपरं द्वितीयं प्रेतपतिं यमम् इव, पुण्यानां सुकृतानां राशेः समूहस्य प्रतिपक्षं सपत्नम् इव, पाप्मनः पापस्य आशयं हृदयम् इव, क्रोधस्य रोषस्य कारणात् हेतोः विना ऋते अपि आबद्धा रचिता या भीषणा भयंकरी भृकुटिः भ्रूभंगः तया अतिशयेन रौद्रेण भीषणतरेण आननेन मुखेन आरक्ते ईषद्रक्तवर्णे केकरतटे अतिशयेन वलिरे वक्रे इति यावत् कनीनिके तारके यस्य तथाभूतेन चक्षुषा दृष्ट्या च सकलानां सर्वेषां जनानां लोकानां भयङ्करस्य भयोत्पादस्य भगवतः कृतान्तस्य यमराजस्य अपि भयं भीतिम् उपजनयन्तम् उत्पादयन्तम् इवेति उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षालंकारः, आशये हृदये केशेषु कचेषु च अस्निग्धम् स्नेहरहितम् अथ च अचिक्कणम्, आनेन मुखेन ज्ञाने च अन्धकारितम् अन्धकारयुक्तम् अथ च शून्यम्, वर्णे रूपे चरिते च कृष्णम् श्यामम् अथ च निन्द्यम् निवसने वस्त्रे कर्मणि क्रियायां च मलिनम् मलपूर्णम् अथ च सदोषम्, वपुषि शरीरे वचसि वचने च परुषम् दृढम् अथ च कठोरम्, (अत्र पुरुषस्य यथा आशयादयः प्रस्तुताः तथा केशादयोऽपि प्रस्तुता इति प्रस्तुतानां प्रस्तुतानाम् एकधर्माभिसम्बन्धात् तुल्ययोगिता, सा च श्लेषगर्भिता) न दृष्टं विलोकितं श्रुतम् आकर्णितम् अनुरूपं समानं यस्य तथाभूतमपि आकारस्य आकृतेः प्रत्ययात् ज्ञानात् एव अनुमीयमानम् अनुमितिविषयीक्रियमाणं क्रौर्यं क्रूरता तद्रूपं दोषः यस्मिन् तम् पुरुषम् अद्राक्षम् अपश्यम्। तादृशं तथाविधं च तम् आलोक्य दृष्ट्वा आत्मनः स्वस्य उपरि स्वप्राणानां विषये इत्यर्थः निर्गता प्रत्याशा आशा यस्मात् तथाभूत एव अपृच्छम् पृष्टवान्—'भद्र, दुष्ट, (विपरीतलक्षणया) त्वं कोऽसि? किमर्थं केन अर्थेन त्वया अहं बद्धः पाशेन संयतः अस्मि? यदि आमिषस्य मांसस्य तृष्णया लोभेन बद्धः इति शेषः तत् तर्हि सुप्तः निद्रितः एव किं कुतः न व्यापादितः मारितः अस्मि? निर्गतम् आगः अपराधः यस्मात् तेन निरपराधेनेत्यर्थः मया बन्धस्य

कालिमा से केवल काले लौह-परमाणुओं से निर्मित-जैसा, दूसरा यमराज-जैसा, पुण्य-समूह का शत्रु-जैसा, पाप का हृदय-जैसा, क्रोध के कारण के विना भी भीषण भ्रुकुटि ताने अतिप्रचण्ड बने मुख तथा लाल-लाल ऐंचेतानी (अतिवक्र) पुतलियों वाली आँख से भगवान यमराज को भी भय पैदा करता हुआ जैसा, हृदय में अस्निग्ध (प्रीति-रहित), तो केशों में भी स्निग्ध (विना तेल लगाये रूखा), मुख और ज्ञान—दोनों में अँधेरा-छाया, रंग-रूप और चरित्र—दोनों में काला, वस्त्र और कार्य—दोनों में मला, शरीर और वचन में कठोर पुरुष को देखा, जिसके क्रूरता दोष का अनुमान (उसकी) आकृति के ज्ञान से ही किया जा सकता था भले ही वैसा-जैसा कोई कभी न देखा हो और न सुना ही हो। उस तरह का उसे देखकर अपने जीवन के प्रति निराश हुआ मैं पूछ बैठा—'भले आदमी! तुम कौन हो? तुमने क्यों मुझे बाँधा है? यदि मांस की चाह है, तो सोते हुए को ही मुझे क्यों न मार डाला? मुझ निरपराधी को दुख

कौतुकात्। ततः कृतं कौतुकम्। मुञ्चतु मामिदानीं भद्रमुखः। मया खलु वल्लभजनोत्कण्ठितेन दूरं गन्तव्यम्। अकालक्षेपक्षमं वर्तते मे हृदयम्। भवानपि प्राणिधर्मे वर्तते।' एवमुक्तः स मामुक्तवान्। 'महात्मन्, अहं खलु क्रूरकर्मा जात्या चाण्डालः। न च मया त्वमामिषलुब्धेन कुतूहलेन वा बद्धः। मम खलु स्वामी पक्कणाधिपतिरितो नातिदूरे मातङ्गकप्रतिबद्धायां भूमौ कृतावस्थानः। तस्य दुहिता कौतुकमये प्रथमे वयसि वर्तते। तस्यास्त्वं केनापि दुरात्मना कथितो यथा जाबालेराश्रम एवंगुणविशिष्टो महाश्चर्यकारी शुकस्तिष्ठति। तया च श्रुत्वोत्पन्नकौतुकात्त्वद्ग्रहणाय बहव एवापरे मादृशाः समादिष्टाः। तदद्य पुण्यैर्मयासादितोसि। तदहं तत्पादमूलं त्वां प्रापयामि बन्धे मोक्षे चाधुना सा ते प्रभवति' इति।

बन्धनस्य दुःखम् अनुभावितेन अनुभवितुं प्रेरितेन ? अथ यदि केवलं कौतुकात् कुतूहलात् बद्धः इत्यनुवर्तते ततः तर्हि कौतुकं कृतम् पूरितम्। भद्रमुख ! (विपरीतलक्षणा) भवान् इदानीं सम्प्रति मां मुञ्चतु त्यजतु। वल्लभः प्रियश्चासौ जनः महाश्वेतारूपः तस्मिन् उत्कण्ठितेन समुत्सुकेन मया खलु इति निश्चये दूरं विप्रकृष्टदेशे गन्तव्यं प्रयातव्यम्। मे हृदयं न कालस्य समयस्य क्षेपस्य अत्ययस्य विलम्बस्येति यावत् क्षमं समर्थं वर्तते अस्ति। भवान् त्वम् अपि प्राणिनां जीवानां धर्मे विशेषे वर्तते अर्थात् त्वमपि प्राणी असि, बन्धनगतोऽहमिव त्वमपि बन्धनगतः दुःखम् अनुभविष्यसि प्राणित्वस्य उभयत्र समानत्वम्, यथोक्तम्—आत्मवत् सर्वभूतेष्विति, अथवा यथा सर्वे प्राणिनः स्वप्रियजने उत्कण्ठते तथाऽहमपि, अतः मां मुञ्च। एवम् उक्तः कथितः स माम् उक्तवान् कथितवान्। **महात्मन्**—महात्मन् महानुभाव ! क्रूरं कठोरं कर्म कृत्यं यस्य तथाभूतः अहं जात्या जन्मना चाण्डालः श्वपचः अस्मीति शेषः। न मया आमिषस्य मांसस्य लुब्धेन लोभिना सता अथवा कुतूहलेन कौतुकेन त्वं बद्धः बन्धनं नीतः। मम खलु निश्चयेन स्वामी भर्ता पक्कणस्य शबरालयस्य ('पक्कणः शबरालयः' इत्यमरः) अधिपतिः अधीशः मातङ्गकैः श्वपचैः प्रतिबद्धायाम् गृहादिनिर्माणेन कृताधिकारायां भूमौ भूखण्डे कृतम् विहितम् अवस्थानं वासः येन तथाभूतः अस्तीति शेषः। तस्य शबराधिपतेः दुहिता कन्या कौतुकमये कुतूहलमये प्रथमे वयसि तारुण्ये इत्यर्थः वर्तते विद्यते। केन अपि दुरात्मना दुष्टात्मना त्वं तस्याः कन्यायाः कन्यायै (सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी) कथितः यत् जाबालेः एतदाख्यर्षेः आश्रमे एवं एवंविधैः सकलविद्यादि-पारंगतत्वादिभिरित्यर्थः गुणैः विशिष्टः युक्तः महत् आश्चर्यं करोतीति तथोक्तः शुकः कीरः तिष्ठति वर्तते। श्रुत्वा आकर्ण्य च तया कन्यया उत्पन्नं कौतुकं कुहलं यस्याः तस्याः भावः तत्त्वं तस्मात् तव ग्रहणाय गृहीत्वा आनयनायेत्यर्थः बहवः अपरे अनेके मादृशाः मत्सदृशाः जनाः आदिष्टा आज्ञापिताः। तत् तस्मात् अद्य पुण्यैः पुण्यद्वारा भवान् त्वम् आसादितः प्राप्तः असि। तत् तस्मात् अहं तस्याः कन्यायाः पादयोः चरणयोः मूलं समीपमित्यर्थः त्वां प्रापयामि नयामि। अधुना सम्प्रति ते तव बन्धे बन्धने मोक्षे मुक्तौ च अधुना इदानीं सा कन्या प्रभवति समर्था अस्ति।

भुगताने से क्या ? यदि कुतूहल के कारण बाँधा है, तो कुतूहल पूरा कर ही लिया है। अब भले मानुष मुझे छोड़ दो। अपने प्रियजन के लिए उत्सुक हुए मुझे दूर जाना है। मेरा हृदय विलम्ब नहीं सह सकता। आप भी प्राणियों का धर्म समझते हैं'। मेरे ऐसा कहने पर वह मुझे बोला—'हे महात्मा ! मैं वास्तव में क्रूर काम करने वाला मैं जाति का चाण्डाल हूँ। मैंने तुम्हें न तो मांस-लोभी होकर, न ही कुतूहल के कारण बाँधा है। मेरे स्वामी भीलों की बस्ती के सरदार यहाँ से कुछ दूर मातङ्गों द्वारा (घर बनाकर) अपने अधिकार में की हुई भूमि में रह रहे हैं। उनकी लड़की कुतूहल-भरी तरुणावस्था में है। किसी दुष्टात्मा ने उसे तुम्हारे विषय में कह दिया कि जाबालि-आश्रम में ऐसे-ऐसे गुणों वाला कोई आश्चर्यजनक तोता रह रहा है। सुनकर उसने कुतूहल वश तुम्हें पकड़ने हेतु मेरे-जैसे अनेकों को आज्ञा दे रखी है, इसलिए आज़ पुण्यों से मैंने तुम्हें पाया है। तो अब उसके चरणों के पास तुम्हें ले चलता हूँ। तुम्हारा बन्धन और मुक्ति अब उसी के हाथ है'।

अहं तु तच्छ्रुत्वा शुष्काशनिनेव ताडितः शिरसि संविग्नान्तरात्मा चेतस्यकरवम्। 'अहो मे मन्दपुण्यस्य दारुणतरः कर्मणां विपाकः। येन मया सुरासुरशिरःशेखराभ्यर्चितचरणसरसिजायाः श्रियो जातेन जगत्त्रयनमस्यस्य महामुनेः श्वेतकेतोः स्वहस्तसंवर्धितेन दिव्यलोकाश्रमनिवासिना भूत्वा म्लेच्छजातिभिरपि दूरतः परिहृतप्रवेशमधुना पक्वणं प्रवेष्टव्यम्। चण्डालैः सहैकत्र स्थातव्यम्। जरन्मातङ्गाङ्गनाकरोपनीतैः कवलैः आत्मा पोषणीयः। चण्डालबालकजनस्य क्रीडनीयेन भवितव्यम्। दुरात्मन्पुण्डरीकहतक धिग्जन्मलाभं ते यस्य कर्मणामयमीदृशः परिणामः। किमर्थं प्रथमगर्भ एव न सहस्रधा शीर्णोसि। मातः श्रीः, अशरणजनशरणचरणपङ्कजे, अतिगहनभीषणाद्रक्ष मामस्मान्महानरकपातात्। तात भुवनत्रयत्राणक्षम, त्रायस्व कुलतन्तुमेकम्। त्वयैव संवर्धितोस्मि।

अहं—अहं तु तत् चाण्डालवचनं श्रुत्वा आकर्ण्य शुष्केण वर्षारहितेन अशिना अनभ्रवज्रेणति यावत् शिरसि ताडितः आहतः संविग्नः उद्विग्नः अन्तरात्मा मनो यस्य तथाभूतः सन् चेतसि अकरवम् मनसि व्यचारयम्—'अहो इति आश्चर्ये मन्दं स्वल्पं पुण्यं यस्य तथाभूतस्य मे मम कर्मणां पूर्वजन्मकृतानां पापानामित्यर्थः अतिशयेन दारुणः भीषणः विपाकः परिणामः येन कारणेन सुराः देवाश्च असुराः राक्षसाश्चेति तेषां शिरःसु शीर्षेषु ये शेखराः आपीडाः पुष्पमालाः इति यावत् तैः अभ्यर्चिते पूजिते चरणौ सरसिजे पद्म इवेति लुप्तोपमा यस्याः तथाभूतायाः श्रियः जातेन उत्पन्नेन येन मया पूर्वस्मिन् जन्मान्तरे पुण्डरीकेण जगतां त्रयस्य त्रिभुवनस्य नमस्यस्य नमस्करणीयस्य महामुनेः महर्षेः श्वेतकेतोः स्वस्य हस्ताभ्यां कराभ्यां संवर्धितेन वृद्धिं नीतेन पालित पोषितेनेति यावत् दिव्यलोकस्य सुरलोकस्य आश्रमे मुनिस्थाने निवस्तुं शीलमस्येति तथोक्तेन भूत्वा म्लेच्छजातिभिः नीचवर्गैः अपि दूरत दूरात् परिहृतः त्यक्तः प्रवेशो यस्य तथाभूतं पक्वणं शबरावासः प्रवेष्टव्यम् प्रविष्टेन भवितव्यम्। चाण्डालैः सह एकत्र एकस्मिन् स्थाने स्थातव्यम् स्थेयम्। जरत्यः वृद्धाः याः मातङ्गानां शबराणां अङ्गनाः स्त्रियः तासां करेण पाणिना उपनीतैः आहृतैः कवलैः ग्रासैः आत्मा पोषणीयः पोषं नेयः। चण्डालानां बालकजनस्य बालानां क्रीडनकेन क्रीडासाधनेन भवितव्यम्। दुरात्मन् दुष्टात्मन् पुण्डरीकहतक हतपुण्डरीक! ते तव जन्मलाभं जन्मग्रहण धिक् अस्तु यस्य कर्मणां पूर्वजन्मकृतकर्मणाम् ईदृशः एतादृशः परिणामः पाकः। किमर्थं कस्मात् त्वं प्रथमे आद्ये गर्भे एव सहस्रधा सहस्रखण्डेषु न शीर्णः शीर्णतां गतः छिन्नभिन्नो जातः इति यावत्। हे मातः अम्बे श्रीलक्ष्मि! अशरणाः शरण-रहिताः ये जनाः तेषां शरणम् आश्रयः चरणः पङ्कजं कमलम् इवेति लुप्तोपमा यस्याः तत्सम्बुद्धौ, अतिगहनः अतिकठिनश्चासौ अतिभीषणः अतिभयङ्करश्च तस्मात् अस्मात् नरके पातात् पतनात् मां रक्ष त्रायस्व। तात पितः! भुवनानां जगतां त्रयं तस्य त्राणस्य रक्षणस्य क्षम समर्थ! एकं कुल-तन्तुं वंश-सूत्रं

यह सुनकर मैं अनभ्र वज्र से मारा हुआ-जैसा मन में उद्विग्न हुआ सोचने लगा—'आश्चर्य है कि मुझ मन्दभागी के कर्मों का यह कितना भीषणतर परिणाम है जो कि देवों और दानवों के शिरों की पुष्पमालाओं से पूजित चरण-कमलों वाली लक्ष्मी से उत्पन्न हुए, तीनों भुवनों के नमस्कार योग्य महामुनि श्वेतकेतु के हाथों द्वारा पाले-पोसे एवं सुरलोक निवासी होकर मुझे अब शबरों की बस्ती में जाना पड़ रहा है, जहाँ म्लेच्छ जाति के लोग भी दूर से प्रवेश नहीं करते। और चाण्डालों के साथ एक ही जगह रहना पड़ रहा है। केवल बूढ़ी मातंग स्त्रियों के हाथों से लाये भोजन-ग्रासों द्वारा अपना पोषण करना होगा। चाण्डालों के छोकरों का खिलौना बनना पड़ेगा। दुष्टात्मा मुए पुण्डरीक! तेरे जन्मने को धिक्कार है, जिसके कर्मों का यह ऐसा परिणाम निकल रहा है। तू पहले ही गर्भ में हजारों खण्डों में क्यों न छिन्न-भिन्न हो गया? हे अशरणों के शरण-दायक चरण कमल वाली! मुझे इस अतिघोर और अतिभीषण नरकपात से बचाओ। तीनों लोकों की रक्षा में सक्षम पिताजी! एकमात्र वंश-सूत्र

वयस्य कपिञ्जल, यदि परापत्य त्वयास्मात्पापान्न मोचितोस्मि तदा जन्मान्तरेपि पुनर्मा कृथा मत्समागमप्रत्याशाम् ।' इत्येतानि चान्यानि च चेतसा विलप्य पुनस्तमभ्यर्थनादीनमवदम् ।

'भद्रमुख जातिस्मरो मुनिरस्मि जात्या। तत्तवापि मामस्मान्महतः पापसंकटादुद्धृत्य धर्मो भवत्येवादृष्टसुखहेतुः । दृष्टेपि च केनचिदपरेणादृष्टस्य मन्मुक्तिकृतः प्रत्यवायो नास्त्येव । तन्मुञ्चतु मां भद्रमुखः' इत्यभिदधानश्च पादयोरपतम् । स तु विहस्य मामब्रवीत् । 'रे मोहान्ध, यस्य शुभाशुभकर्मसाक्षिभूताः पञ्च लोकपालास्तवैवात्मशरीरस्थिता न

माम् त्रायस्व रक्ष । त्वया एव अहं संवर्धितः वृद्धिं प्रापितः पालितः पोषितश्चेति यावत् । हे वयस्य मित्र कपिञ्जल ! यदि परापत्य आगत्य त्वया अहम् एतस्मात् पापात् न मोचितः मुक्तिं प्रापितः, तदा तर्हि जन्मान्तरे अन्यस्मिन् जन्मनि अपि मम समागमस्य मिलनस्य प्रत्याशाम् आशां मा वृथा न कुरु' । इति एतानि अन्यानि च चेतसा मनसा विलप्य विलापं कृत्वा अभ्यर्थनया प्रार्थनया दीनं दैन्यपूर्णं यथा स्यात् तथा तम् पुरुषम् अवदम् अकथयम्—

भद्र०—'हे भद्रमुख कल्याणमुख ! अहं जात्या जन्मना स्मरतीति स्मरः जाते स्मर इति जातिस्मरः पूर्वजन्मस्मरणकर्ता मुनिः यतिः अस्मि । माम् अस्मात् महतः विपुलात् पाप संकटात् पाप-कष्टात् उद्धृत्य मम उद्धारं विधाय तव अपि अदृष्टे अदृष्ट-लोके परलोके इत्यर्थः यत् सुखं तस्य हेतुः कारणीभूतः धर्मः सुकृतं भवति एव अवश्यं भविष्यतीत्यर्थः । दृष्टे दृष्टलोके इहलोके इत्यर्थः अपि केनचित् अपरेण अदृष्टस्य अनवलोकितस्य मम मुक्तिं मोचनं करोतीति तथोक्तस्य तव प्रत्यवायः पापं नैव अस्ति अर्थात् त्वत्कर्तृकमन्मोक्षणम् अत्र वने न कोऽपि पश्यति अतः मन्मोक्षणे नास्ति पापम् । तत् भद्रमुख भवान् मां मुञ्चतु त्यजतु' इति अभिदधानः कथयन् च तस्य चरणयोः पादयोः अपतम् पतितवान् । चाण्डालस्तु विहस्य हासं कृत्वा माम् अब्रवीत् अवदत्—'रे मोहान्ध अज्ञानान्ध ! यस्य तव एव (अत्र तवैवेति सुवचम्) आत्मनः स्वस्य शरीरे स्थिताः वर्तमानाः शुभानि साधूनि अशुभानि असाधूनि यानि कर्माणि कार्याणि तेषां साक्षिभूताः साक्षात्कर्तारः पञ्च लोकपालाः इन्द्रयमवरुणादयः न पश्यन्ति आलोकयन्ति सः अन्यस्य लोकपालेतरस्य भयात् अन्यस्य पश्यतोऽपि अकार्यं कर्तुमनर्हं कर्म न आचरति ? अपि तु आचरति एवेति काकुः । अयं भावः—यस्य पुरुषस्य शरीरस्थाः सर्वकर्मसाक्षिणः लोकपालाः पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति, सोऽन्येषां पश्यतामपि अकर्म न करिष्यतीति नोपपद्यते अर्थात् मच्छरीरस्थाः लोकपलाः मम कर्म पश्यन्ति तस्मात् स्वामिविरुद्धं नाचरिष्यामि ।

की रक्षा करो, आपने ही मुझे पाला-पोसा है । सखा कपिञ्जल ! यदि आकर तुमने इस पाप से नहीं छुड़ाया, तो जन्मान्तर में भी तुम मुझसे मिलने की आशा न करना' । मन में ये तथा अन्य विलाप करके दीनता-भरी प्रार्थना में मैंने फिर उसे कहा—

'भले मानुष, मैं जाति से पूर्वजन्म का स्मरण किये हुए मुनि हूँ । इसलिए इस महान् पाप-संकट से छुडाकर तुम्हारा भी परलोक में सुख देनेवाला धर्म होगा ही । इस लोक में भी विना किसी के देखे मुझे छोड़ते हुए तुम्हें पाप नहीं लगेगा । इसलिए भले आदमी ! मुझे छोड़ दो' । यह कहते हुए मैं उसके पाँव पड़ गया । किन्तु वह हँसकर मुझे बोला—'रे अज्ञान के अन्धे ! जिसके तेरे ही अपने शरीर में स्थित भले-बुरे कामों के साक्षीभूत पाँच लोकपाल नहीं

पश्यन्ति सोऽन्यस्य भयादकार्यं नाचरति। तन्नीतोसि मया स्वाम्याज्ञया' इति। एवमभिदधान एव मामादाय पक्वणाभिमुखमगच्छत्।

अहं तु तेन तद्वचसाभिहत इव मूर्ध्नि मूकतामापन्नः केषां पुनः कर्मणामिदं मे फलमित्यन्तरात्मनाभिध्यायन्प्राणपरित्यागं प्रति कृतनिश्चयोऽभवम्। नीयमानश्च तथा तेन तन्मोचनप्रत्याशयैवाग्रतो दत्तदृष्टिराविष्टैरिव बीभत्सविन्यासैर्व्यावृत्तैश्चावर्तकानायपरिभ्रमणानिभृतैश्च मृगावपाटितजीर्णवागुरासंग्रन्थनव्यग्रैश्चोत्त्रुटितकूटपाशसंग्रन्थनायस्तैश्च हस्तस्थितसकाण्डकोदण्डैश्च प्रासप्रचण्डपाणिभिश्च सेलग्राहिभिश्च नानाविधग्राहकविहंगवाचालनकुशलैः कौलेयकमुक्तिसंचारणचतुरैश्चण्डालशिशुभिर्वृन्दशो दिशि दिशि

तत् तस्मात् स्वामिनः आज्ञया आदेशेन मया त्वं नीतः तत्पार्श्वे प्रापितः एव प्राप्यते एवेति लडर्थे निष्ठा'। एवम् अभिदधानः वदन् एव स माम् आदाय गृहीत्वा पक्वणस्य शबरवासस्य अभिमुखम् अगच्छत् गतवान्।

अहं—तेन तस्य चण्डालस्य वचनेन कथनेन मूर्ध्नि शिरसि अभिहतः आहत इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मूकतां मौनम् आपन्नः प्राप्तः केषां पुनः कर्मणां पूर्वजन्मीयानां मे मम इदं फलम् परिणामः इति अन्तरात्मना मनसा अभिध्यायन् चिन्तयन् प्राणानां जीवितस्य परित्यागं मोक्षणं प्रति कृतः विहितः निश्चयो निर्णयः येन तथाभूतोऽहम् अभवम्। तेन चाण्डालेन तथा तेन प्रकारेण नीयमानः प्राप्यमाणः तया शबराधिपतेः कन्यया मोचनस्य मुक्तेः प्रत्याशया आशया एव अग्रतः पुरतः दत्ता क्षिप्ता दृष्टिः दृक् येन तथाभूतोऽहम् 'पक्वणमपश्यम्' इत्यस्ति वाक्यम्, इतः परं च पक्वणस्य विशेषणानि, 'चण्डालशिशुभिः आवेद्यमानम्', कथंभूतैः चाण्डालशिशुभिः? आविष्टैः भूतप्रेतग्रस्तैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, बीभत्सः घृणोत्पादकः विन्यासः वस्त्रभूषादिरचना येषां तैः, व्यावृत्तैः आखेटात् गृहं प्रत्यागतैः, आवर्ता अम्भसां भ्रमाः ('आवर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः) एव आवर्तकाः (स्वार्थे कः) तेषु यः आनायः जालम् ('आनायः पुंसि जालं स्यात्' इत्यमरः) तस्य परिभ्रमेण इतस्ततः परिक्षेपेण अनिभृतैः चञ्चलैश्च, **मृगा०**—मृगैः हरिणैः अवपाटिता त्रोटिता या जीर्णा पुराणी वागुरा मृगबन्धनी ('वागुरा मृगबन्धनी' इत्यमरः) तस्याः संग्रन्थने गुम्फने संयोजने इति यावत् (व्यग्रैः आयस्तैः च, उत्त्रुटिताः उच्छिन्नाः ये कूटपाशाः उन्माथाः तेषां संग्रन्थने संयोजने आयस्तैः कृतायासैः, प्रासैः कुन्तैः भल्लैरिति यावत् प्रचण्डाः भीतिकराः पाणयः हस्ताः येषां तैः, सेलानि अस्त्रविशेषान् गृह्णन्तीत्येवं शीलैश्च, नानाविधाः विविधाः ये ग्राहकाः पक्षिग्राहकाः श्येनादयः विहङ्गा खगाः तेषां वाचालने पक्षिग्रहणे वाचालीकरणे शिक्षणे इति यावत् कुशलैः दक्षैः, कौलेयकानाम् कुक्कुराणाम् [कौलेयकः सारमेयः कुक्कुरो मृगदंशकः' इत्यमरः] कमपि पशुमुद्दिश्य मुक्तौ मोचने तमनु संचारणे सञ्चारण-क्रियायां चतुरैः कुशलैः चण्डालानां

देखते, वह अन्य के भय से बुरा काम नहीं करेगा क्या? इसलिए स्वामी की आज्ञा से मैं तुझे ले ही जा रहा हूँ'। इस प्रकार कहता हुआ ही वह मुझे लेकर शबरबस्ती की ओर चल पड़ा।

मैं तो उसके उस वचन से सिर पर चोट खाये-जैसे चुप हुआ, 'मेरे कौन से कर्मों का यह फल होगा' यह मन में सोचता हुआ प्राण-त्याग करने का निश्चय कर बैठा। उसके द्वारा इस प्रकार ले जाए जाते हुए, उस (लड़की) के द्वारा छोड़ दिए जाने की आशा से आगे दृष्टि डाले मैंने शबरों की बस्ती देख ली, जिसकी दूर से ही सूचना भूतग्रस्त जैसे, घृणोत्पादक वेश-भूषावाले, (घर) लौटे, जल-भौंरों में डाले हुए मछली पकड़ने के जालों को इधर-उधर घुमाने में लगे हुए, मृगों द्वारा तोड़ी पुरानी वागुराओं (फन्दों) को ठीक करने में व्यस्त, टूटे पड़े फाँसने के फन्दों को जोड़ने में व्यग्र हाथों में बाण-सहित धनुष रखे, भालों से भीषण बने हाथों वाले, सेल पकड़े, तरह तरह के शिकार पकड़ने वाले [बाज आदि] पक्षियों को बोली सिखाने में चतुर, कुत्तों को (पशुविशेष के पीछे) छोड़ने और इधर-उधर दौड़ाने में कुशल और दल

मृगयां क्रीडद्भिर्दूरत एवावेद्य[1]मानम्, इतस्ततो विस्रगन्धिधूमोद्गमानुमीयमानसान्द्रवंशवनान्तरितवेश्मसंनिवेशम्, सर्वतः करङ्कप्रायवृतिवाटम्, अस्थिप्रायरथ्यावकरकूटम्, उत्कृत्तमांसमेदोवसासृक्कर्दमप्रायकुटीराजिरम्, आखेटकप्रायाजीवम्, पिशितप्रायमशनम्, वसाप्रायस्नेहम्, कौशेयप्रायपरिधानम्, चर्मप्रायास्तरणम्, सारमेयप्रायपरिवारम्, धवलीप्रायवाहनम्, स्त्रीमद्यप्रायपुरुषार्थम्, असृक्प्रायदेवताबलिपूजम्, पशूपहारप्रायधर्मक्रियम्, आकरमिव सर्वनरकाणाम्, कारणमिव सर्वाकुशलानाम्,

मातङ्गानां शिशुभिः बालकैः वृन्दशः दलेषु दलेषु दिशि दिशि दिशायां दिशायां मृगयाम् आखेटं क्रीडद्भिः (अत्र मृगयया क्रीडद्भिरित्येव सुवचं क्रीड्धातोरकर्मत्वात्) दूरतः दूरात् एव आवेद्यमानम् सूच्यमानम्, इतस्ततो०—इतस्ततः यत्र तत्र विस्रः आममांसस्य गन्धो यस्मिन् तथाभूतो यः धूमस्य उद्गमः उपरि गमनम् तेन अनुमीयमानः अनुमितिविषयीक्रियमाणः सान्द्रेण घनेन वंशानां वेणूनां वनेन अन्तरितः व्यवहितः वेश्मनां गृहाणां संनिवेशः स्थितिः यत्र तथाभूतम्, सर्वतः परितः कङ्कालाः शरीरास्थीनि ('स्याच्छरीरास्थि कङ्कालः' इत्यमरः) प्रायः बाहुल्येन यत्रेति करङ्कप्रायाः चासौ वृत्तिः वेष्टनम् यस्मिन् तथाभूतः वाटः मार्गः यस्मिन् तथाभूतम् ('वाटो वृतौ च मार्गे च' इति विश्वः) अस्थीनि प्रायः यत्र तथाभूता या रथ्या प्रतोली तस्याम् अवकरस्य संकरस्य ('संकरोऽवकरस्तथा' इत्यमरः) कूटः समूहः यस्मिन् तथाभूतम्, उत्कृत्तम् उद्दीर्णं यत् मांसं पललं च मेदः अस्थिसारश्च वसा वपा मांसोपरि स्निग्धतरत्वमित्यर्थश्च असृक् रुधिरं चैतेषां समाहारः इति० असृक् तस्य कर्दमः पङ्कः प्रायः बाहुल्येन यत्र तथाभूतं कुट्याः कुटीरस्य अजिरं प्राङ्गणं यस्मिन् तथाभूतम्, आखेट एव आखेटकः मृगया प्रायः प्रायेण आजीवः आजीविका यत्र तथाभूतम् ('आजीवो जीविका वार्ता' इत्यमरः) पिशितं मांसं प्रायः बाहुल्येन अशनं भोजनं यत्र तथाभूतम्, वसा वपा प्रायः प्रायेण स्नेहः स्निग्ध-पदार्थः यत्र तथाभूतम् अर्थात् यत्र घृत-तैलादिस्निग्धपदार्थ-स्थाने पशूनां वसा एव प्रयुज्यते स्म, कौशेयं कृमिकोशोत्थं वस्त्रं प्रायः बाहुल्येन परिधानम् अधोंऽशुकम् यत्र तम् ('कौशेयं कृमिकोशोत्थं परिधानं त्वधोंऽशुके' इति हैमः) चर्म अजिनं प्रायः यस्मिन् तथाभूतम् आस्तरणं शय्या यत्र तम्, सारमेयाः श्वानः एव प्रायः परिवारः परिजनः यत्र तम्, धवली श्वेतवर्णा गौः एव वाहनं युग्यं यान-साधनमित्यर्थः यत्र तम्, स्त्री योषित् च मद्यं मदिरा चेति प्रायः पुरुषार्थः जीवन-ध्येयं यत्र तम्, असृक् रुधिरम एव प्रायः देवतानां बलिः उपहारश्च पूजा अर्चना च यत्र तम् ('करोपहारयोः पुंसि बलिः प्राण्यङ्गजे स्त्रियाम्' इत्यमरः । पशूनां जीवानाम् उपहारः समर्पणं बलिदानं प्रायः धर्मक्रिया धर्मानुष्ठानं यत्र तम्, सर्वाणि च तानि नरकाणि निरयाः तेषाम् आकरम् खनिम् ('खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्' इत्यमरः), इव, सर्वाणि च तानि अकुशलानि अभद्राणि तेषां कारणं हेतुम

बना कर दिशा-दिशा में शिकार खेलते हुए चण्डालों के लड़के (सूचना) दे रहे थे, जहाँ इधर-उधर ऊपर उठ रहे कच्चे मांस की गन्ध लिये धुएँ से सघन बांसों के वनों में घिरे घरों का अनुमान किया जा रहा था, रास्तों में जहाँ चारों ओर मार्ग में अस्थि पंजरों की बाड़ कर रखी थी, गलियों में प्रायः हड्डियों से भरा कूड़ा करकट का ढेर पड़ा हुआ था, झोपड़ियों के आंगनों में प्रायः नोचा हुआ मांस, मेदा, चर्बी और खून का कीचड़ हो रहा था, भोजन प्रायः मांस ही होता था, तेल आदि का काम प्रायः चर्बी से लिया जाता था, तहमत प्रायः रेशमी रहता था, बिछौना प्रायः चमड़े का होता था, परिवार प्रायः कुत्ते थे, वाहन श्वेत गायें थीं, जीवन का ध्येय प्रायः स्त्री(भोग) और मदिरा(पान) बना हुआ था, देवताओं की बलि-पूजा खून से होती थी, एवं धर्म-कर्म प्रायः पशु-बलि था, जो सभी नरकों की खान-जैसी, सभी अमंगलों का कारण-

१. आवेद्यमानम्।

संनिवेशमिव सर्वश्मशानानाम्, पत्तनमिव सर्वपापानाम्, आयतनमिव सर्वयातनानाम्, स्मर्यमाणमपि भयंकरम्, श्रूयमाणमप्युद्वेगकरम्, दृश्यमानमपि पापजननम्, जन्मकर्मतो मलिनतरजनम्, जनतो नृशंसतरलोकहृदयम्, लोकहृदयेभ्योऽपि निर्घृणतरसर्वसंव्यवहार-समस्तपुरुषम्, अविशेषाचारबालयुवस्थविरम्, अव्यवस्थितगम्यागम्याङ्गनोपभोगम्, अपुण्यकर्मैकापणं पक्कणमपश्यम्।

दृष्ट्वा च तं तादृशं नरकवासिनोऽप्युद्वेगकरं समुत्पन्नघृणोन्तरात्मन्यकरवम्। 'अपि नाम सा चाण्डालदारिका दूरत एव मामालोक्योत्पन्नकरुणा मोचयेन्न जातिसदृशमाचरिष्यति। भविष्यन्त्येवंविधानि मे पुण्यानि। न निमेषमप्यत्र पदं कुर्याम्।' इत्येवंकृता-

इव, सर्वाणि च तानि श्मशानानि पितृ-वनानि तेषां संनिवेशम् निकषणं वास-स्थानमिति यावत् इव, सर्वाणि च तानि पापानि अघानि तेषां पत्तनं नगरम् इव, सर्वाश्च ताः यातनाः तीव्रवेदनाः तासाम् आयतनम् गृहम् इव, तत्र जीवेभ्यो यातना दीयते स्मेति भावः, उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षा-लङ्कारः; स्मर्यमाणं स्मृतिविषयीक्रियमाणम् अपि भयङ्करं भीतिप्रदम्, श्रूयमाणम् आकर्ण्यमानम् उद्वेगम् मानसीम् अशान्ति करोतीति तथोक्तम्, दृश्यमानं प्रत्यक्षीक्रियमाणम् अपि पापस्य जननं जनकम्, उपरि सर्वत्र अपि-शब्द-बलात् कैमुत्य-न्यायेन अर्थापत्तिरलङ्कारः, जन्म उत्पत्तिश्च कर्म कार्यं चेति ताभ्यां मलिनतरा अतिशयेन मलिनाः जनाः लोकाः यत्र तम्, जनतः पाम-रेभ्यः नीचजनेभ्यः इत्यर्थः (**जनो** लोके महर्लोकात् परलोके च **पामरे**' इति विश्वः) नृशंसतरम् अतिशयेन नृशंसं क्रूरं लोकानां जनानां हृदयं यत्र तम्, लोकानां जनानां हृदयेभ्यः हृदयापेक्षया अपि निर्गता घृणा दया यस्मात् तथाभूतः निर्दयतर इत्यर्थः सर्वः सकलः संव्यवहारः व्यवहारः येषां तथाभूताः समस्ताः सकलाः पुरुषाः यत्र तम्, अविशेषः विशेषरहितः समान इति यावत् आचारः आचरणं येषां तथाभूताः बालाः बालकाश्च युवानः तरुणाश्च स्थविराः वृद्धाश्च यत्र तम्, अव्यवस्थितः व्यवस्थारहितः अनियतः इति यावत् गम्याः गमनयोग्याः उपभोग्याः इत्यर्थः अगम्याः भगिन्यादयश्च याः अङ्गनाः स्त्रियः तासाम् उपभोगः यस्मिन् तम् अपुण्यानि पापानी-त्यर्थः यानि कर्माणि कार्याणि एव एकानि केवलानि तेषाम् आपणं हट्टं पक्कणं शबरावासम् अहम् अपश्यम्। **दृष्ट्वा**—तादृशं तथाविधं नरकस्य निरयस्य निवासिनः वास्तव्यस्यापि उद्वेगकरम् उद्वेजकम् [अर्थापत्तिः] तं पक्कणं दृष्ट्वा विलोक्य समुत्पन्ना जाता घृणा यस्य तथा-भूतोऽहम् अन्तरात्मनि मनसि अकरवम् अचिन्तयम्—'अपि नामेति संभावनायाम् सा चाण्डाल-दारिका चाण्डाल-कन्या दूरतः दूरात् एव माम् आलोक्य दृष्ट्वा समुत्पन्ना संजाता करुणा दया यस्याः तथाभूता सती मां मोचयेत् मुक्तं कारयेत् जात्याः कुलस्य सदृशेन आचरिष्यति आचरणं करिष्यति। मे मम एवंविधानि ईदृशानि पुण्यानि सुकृतानि भविष्यन्ति किम्? मुक्तः सन् अहम् अत्र शबरनिवासे निमेषम् अपि नेत्रस्पन्दमपि क्षणमपीति यावत् न पदं स्थानं

भूत-जैसा, सभी मरघटों का खेमा-जैसा, सभी पापों का शहर-जैसा, सभी यातनाओं का घर-जैसा था और जो याद किया जाता हुआ भी भयंकर था, सुना जाता हुआ भी बेचैनी पैदा कर देता था और देखा जाता हुआ भी पापजनक था एवं जहाँ के लोग जन्म और कर्म-दोनों से बड़े मैले थे, लोगों का हृदय बीच जनों से भी अधिक क्रूर था, सभी लोगों का व्यवहार लोगों के हृदयों से भी अधिक निर्दयतापूर्ण था, आचरण में क्या बालक, क्या युवा और क्या बूढ़े—सभी एक समान थे, और जहाँ स्त्रियों के उपयोग में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी कि यह भोग्य है अथवा अभोग्य है और जो केवल पापों का ही बाजार था।

उस तरह के उस शबरावास को देखकर—जो नरकवासी को भी भय से कँपा देने वाला था—मन में घृणा किये मैंने मन में सोचा—'हो सकता है कि वह चाण्डाल-कन्या दूर से ही मुझे देखकर दया-वश छुड़वा दे। अपनी जाति की तरह आचरण न करे। क्या मेरे ऐसे पुण्य

शंसमेव मां नीत्वा स चाण्डालस्तदा दुर्दर्शनाकारवेषायै दूरतः स्थितः प्रणम्य 'एष स मया प्राप्तः' इति तस्यै चाण्डालदारिकायै दर्शितवान्। सा तु प्रहृष्टतरवदना 'शोभनं कृतम्' इति तमभिधाय तत्करात्स्वकरयुगेनादाय माम्, 'आः पुत्रक प्राप्तोसि, सांप्रतं क्वापरं गम्यते, व्यपनयामि ते सर्वमिदं कामचारित्वम्' इत्यभिदधानैव धावमानचण्डालबालकोपनीतेऽर्धाश्यानलोमशदुर्गन्धिगोचर्मवध्रिकावनद्धे दृढवद्धदारुमयपानभोजनपात्रे मनागुद्घाटितद्वारे दारुपञ्जरे समं महाश्वेतावलोकनमनोरथैराक्षिप्यार्गलितद्वारा सा मामवदत्। यथा 'अत्र निर्वृतः संप्रति तिष्ठ।' इत्यभिधाय तूष्णीमस्थात्। अहं तु तथा संरुद्धश्चेतस्यकरवम्। 'महासंकटे पतितोस्मि। यदि तावदावेदितात्मावस्थः शिरसा

कुर्याम् तिष्ठेयमित्यर्थः' इति। एवं कृता विहिता आशंसा आशा येन तथाभूतम् माम् नीत्वा स चण्डालः तदा दुदर्शनः द्रष्टुमयोग्यः आकारः आकृतिः वेषश्च यस्याः यतस्यै दूरतः दूरात् एव स्थितः प्रणम्य नमस्कृत्य 'एष स शुकः मया प्राप्तः लब्धः' इति [उक्त्वा] तस्यै चाण्डालदारिकायै चाण्डाल-कन्यायै दर्शितवान् अदर्शयत्। सा तु अतिशयेन प्रहृष्टं प्रसन्नं वदनं मुखं यस्याः तथाभूता सती 'शोभनं सुष्ठु कृतम्' इति तं चाण्डालम् अभिधाय कथयित्वा तस्य करात् हस्तात् स्वस्याः आत्मनः करयोः हस्तयोः युगेन द्वयेन आदाय कृत्वा माम् 'आः इति कोपे पीडायां वा ('आस्तु स्यात्कोप पीडयोः' इत्यमरः) पुत्रक सुत ! प्राप्तः लब्धः असि साम्प्रतम् इदानीम् अपरम् अग्रे क्व गम्यते यायते ? ते तव सर्वं निखिलम् इदं कामचरित्वम् व्यपनयामि दूरीकरोमि' इति अभिदधाना वदन्ती एव धावमानाः द्रवन्तः ये चण्डालानां बालकाः तै उपनीते अर्धं यथा स्यात्तथा आश्यानं शुष्कं च लोमशं रोमयुक्तं च दुर्गन्धि पूतिगन्धि च यत् गोः चर्म त्वक् तस्य या वध्रिका नध्री रज्जुरिति यावत् तया अवनद्धे बद्धे दृढं स्यात्तथा बद्धानि दारुमयानि काष्ठनिर्मितानि पानस्य जलपानस्य भोजनस्य अशनस्य च पात्राणि भाण्डानि यत्र तथाभूते, मनाक् ईषत् उद्घाटितम् अनावृतं द्वारं यत्र तस्मिन् दारुणः काष्ठस्य ('काष्ठं दारु' इत्यमरः) पञ्जरे पिञ्जरे महाश्वेतायाः अवलोकनस्य दर्शनस्य मनोरथैः अभिलाषैः समं सह आक्षिप्य प्रक्षिप्य अर्गलितं दत्तार्गलं विष्कम्भेन रुद्धकपाटमिति यावत् द्वारं यथा सा माम् अवदनं अब्रवीत् यथा—'सम्प्रति इदानीम् अत्र पिञ्जरे निर्वृतः सुखी तिष्ठ' इति अभिधाय कथयित्वा तूर्णीं जोषम् अस्थात् स्थितवती अहंतु तथा तेन प्रकारेण संरुद्धः निरुद्धः सन् चेतसि मनसि अकरवम् व्यचारयम्—'महांश्चासौ संकटः विपत्तिः तस्मिन् पतितः च्युतः अस्मि। यदि—यदि तावत् आदौ आवेदिता निज्ञापिता आत्मनः स्वस्य अवस्था दशा येन

होंगे ? मैं तो यहाँ आँख झपकने तक भी न टिकूँ' ? इस तरह आशा मन में रखे हुए मुझे लेकर वह चण्डाल तब दूर ही खड़ा हो उस भद्दी आकृति और वेषवाली को प्रणाम करके 'यह वह मैंने पा लिया है' कहके उस चण्डाल-कन्या को दिखा बैठा। वह खूब प्रसन्नमुख हुई—'ठीक किया है' यह कह कर उसके हाथ पर से अपने दोनों हाथों में लेकर मुझे—'आह ! पुत्र ! पा लिया गया है, अब आगे कहाँ जाएगा ? तेरी यह सारी स्वेच्छाचारिता मिटा देती हूँ।' यह कहती ही दौड़े-दौड़े चाण्डाल बालकों द्वारा लाये, आधी-सूखी, रोम-भरी, दुर्गन्ध वाली गौ की खाल की डोरियों में कसे हुए, मजबूती के साथ बँधे जल पीने और खाने हेतु लकड़ी के पात्र रखे, थोड़ा-सा खुले दरवाजे वाले, लकड़ी के पिंजरे में महाश्वेता से मिलने की अभिलाषाओं के साथ-साथ डालकर द्वार बन्द किये वह मुझे बोली—'अब यहां मौज करो' और यह कहकर चुप हो गई। किन्तु इस तरह बन्द किये हुए मेरे मन में

प्रणिपत्य मुक्तये विज्ञापयाम्येनां तदा य एव मे गुणो दोषतामापद्य बन्धायोपजातः स एव संवर्धितो भवति। साधु जल्पतीत्येवाहमनया ग्राहितः। कास्या मदीयया बन्धन-पीडया पीडा। नाहमस्यास्तनयो न भ्राता न बन्धुः। अथ मौनमालम्ब्य तिष्ठामि। तत्रापि शाठ्यप्रकुपिता कदाचिदतोऽप्यधिकामवस्थां प्रापयति माम्। नृशंसतमा हि जातिरियम्। अथवा वरमितोऽप्यधिकमुपजातं न पुनश्चाण्डालैः सह वागपि विमिश्रिता। अपि च गृहीतमौनं निर्वेदात्कदाचिन्मुञ्चत्येव। वदंस्तु पुनर्न मोक्तव्य एवाहमनया। अपि च यद्दिव्यलोकभ्रंशो यन्मर्त्यलोके जन्म यत्तिर्यग्जातौ पतनं यच्चाण्डालहस्तागमनं यच्चेदमेवंविधं पञ्जरबन्धदुःखं सर्वं एवायमनियतेन्द्रियत्वस्यैव दोषः। तत्किमेकया वाचा। सर्वेन्द्रियाण्येव नियमयामि।' इति निश्चित्य मौनग्रहणमकरवम्। आलप्यमानोऽप्यातज्यं-

---

तथाभूतः कथितस्वसर्ववृत्तान्तः इति यावत् शिरसा मूर्ध्ना प्रणिपत्य प्रणम्य मुक्तये मोक्षाय एनां कन्याम् विज्ञापयामि निवेदयामि तदा तर्हि यः एवं मे गुणः वक्तृत्वादिरूपः दोषतां दोषत्वम् आपद्य प्राप्य दोषीभूत इत्यर्थः मम बन्धाय बन्धनाय उपजातः संवृत्तः, स एव दोषीभूतः गुणः संवधितः वृद्धिं नीतो भवति पूर्वम् 'अयं शुकः साधु सम्यक् जल्पति भाषते' इति कारणात् एव अनया चण्डालदारिकया अहं ग्राहितः बन्धे प्रापितः। अस्याः कन्यकायाः मदीयया मामिकया बन्धनस्य पीडया कष्टेन किम् न किमपीति काकुः। अहम् अस्य दारिकायाः न तनयः पुत्रः, न भ्राता सहोदरः, बन्धुः स्वजनः। अथ यदि मौनम् आलम्ब्य आश्रित्य तिष्ठामि, तत्र अपि तर्ह्यपि शाठ्येन मम धौर्त्येन प्रकुपिता क्रोधं प्राप्ता कदाचित् सम्भवतः अतः अस्याः अपि अधिकां भूयसीम् अवस्थां दशां मां प्रापयति नयति अधिककष्टं दास्यतीति भावः। हि यतः इयं जातिः चाण्डाल-जातिः अतिशयेन नृशंसा क्रूरा इति नृशंसतमा अस्तीति शेषः। अथवा पक्षान्तरे इतः एतस्मात् कष्टात् अपि अधिकं कष्टम् उपजातं संजातं वरम् श्रेष्ठम् न पुनः किन्तु चाण्डालैः सह वाग् वाणी अपि विमिश्रिता संमिलिता, मौने अधिककष्टसहनं वरम् न पुनः अस्यैः वाण्या उत्तरदानं वरम् इति भावः। अपि च गृहीतम् अवलम्बितं मौनं तूष्णीम्भावः येन तथाभूतं मां कदाचित् संभवतः मुञ्चति त्यजति एव। वदन् भाषमाणः तु पुनः न अहम अनया कन्यया मोक्तव्यः त्यक्तव्यः एव। अपि च किंच यत् दिव्यलोकात् सुरलोकात् भ्रंशः पतनम्, यत् मर्त्यलोके मानुषलोके जन्म उत्पत्ति यत् तिर्यग्-जातौ पशुपाक्षियोनौ पतनं च्युतिः यत् चाण्डालस्य हस्ते आगमनम्, यच्च इदम् एवंविधम् एतादृशं पञ्जरे बन्धस्य बन्धनस्य दुःखं कष्टम्—सर्वः एव अयम् न नियतानि नियन्त्रितानि इन्द्रियाणि यस्य तस्य भावः तत्त्वं तस्य एव दोषः। तत् तस्मात् एकया वाचा वाण्या किम्? सर्वाणि एव इन्द्रियाणि नियमयामि नियन्त्रयामि', इति निश्चित्य निर्णीय मौनस्य तूष्णीम्भावस्य ग्रहणम् अवलम्बनम् अकरवम् कृतवान्। बलात् हठात्

विचार उठा—'यदि इस समय अपनी सारी अवस्था बताये, शिरसे प्रणाम करके अपने छुटकारे के लिए इससे निवेदन करता हूँ, तो जो मेरा (वक्तृत्व) गुण दोष बनकर मेरे बन्धन के लिए हुआ, वही और महत्त्व पकड़ लेगा। 'यह अच्छा बोलता है' इसीलिए तो इसने मुझे पकड़वाया। मेरी बन्धन-पीड़ा से इसे क्या दुख! इसका मैं न पुत्र, न भाई और न बन्धुजन, कुछ भी तो नहीं हूँ। यदि मौन साधे रहता हूँ तो मेरी शठता से कुपित हुई यह मेरा इससे अधिक और भी बुरा हाल कर देगी। क्योंकि यह जाति बड़ी निर्दय हुआ करती है। अथवा इससे भी और अधिक बुरा हाल अच्छा है अपेक्षा इसके कि मैं चाण्डालों की वाणी से अपनी वाणी भी मिलाऊं। संभव है कि चुप्पी साधे हुए मुझे घृणा के कारण छोड़ ही दे। किन्तु बोलते हुए मुझे (देखा तो) यह छोड़ेगी ही नहीं। और (मेरा) यह जो स्वर्गलोक से पतन, मर्त्यलोक में जन्म, पशुपक्षि-योनिमें आ पड़ता, चाण्डालों के हाथों में आ जाना और यह इस प्रकार पिंजरे मे बंध जाने का दुख—यह सब कुछ मेरे इन्द्रियों को वश में न रखने का ही दोष है, केवल वाणीमात्र का ही क्यों। सभी इन्द्रियों को वश में करता हूँ। यह निश्चय करके मैंने मौन साध ली। जबर्दस्ती

मानोप्याहन्यमानोपि त्रुट्यमानोपि च बलान्न किंचिदप्यवदम्। केवलमुच्चैश्चीत्कारमेवामुञ्चम्। उपनीतेपि च पानाशने तं दिवसमनशनेनैवात्यवाहयम्। अन्येद्युश्चातिक्रामत्यशनकाले मे दूयमाने हृदये च सा स्वपाणिनोपनीय नानाविधानि पक्वान्यपक्वानि च फलानि सुरभिशीतलं च पानीयमप्रतिपन्नतदुपभोगं मामारोपितलोचना स्निह्यन्तीवावोचत्। 'क्षुत्पिपासार्दितानां हि पशुपक्षिणां निर्विचारचित्तवृत्तीनामुपनतेष्वाहारेष्वनुपयोगो न संभवत्येव। तद्यद्येवंविधस्त्वं कोपि भोज्याभोज्यविवेककारी पूर्वजातिस्मरोस्मदीयमाहारं परिहरसि तथापि तावद्भक्ष्याभक्ष्यविवेकरहितायां तिर्यग्जातौ वर्तमानस्य ते किं वाभक्ष्यं यन्न भक्षयसि। येन चोत्कृष्टतमां जातिं प्राप्यात्मनवेदृशं कर्म कृतं येन तिर्यग्योनौ पतितः स किमपरं विचारयसि। प्रथममेवात्मा न विवेके स्थापितः। अधुना स्वकर्मोपा-

---

आलप्यमानः संभाष्यमाणः अपि, आतर्ज्यमानः भर्त्स्यमानः अपि, आहन्यमानः ताड्यमानः अपि, त्रुट्यमानः (त्रोट्यमानः) यष्टिकादिभिः विध्यमानः अपि न किञ्चित् अवदम् अकथयम्। केवलं उच्चैः तारस्वरेण चीत्कारम् 'चीत' इति शब्दम् अमुञ्चम् मुखात् अत्यजम् अकरवमित्यर्थः। पानं जलम् च अशनं भोजनं चेति उपनीते जानीते अपि तं दिवसम् अनशनेन भोजनं विनैव अत्यवाहयम् अनयम्। **अन्येद्युश्च**—अन्येद्युः अन्यस्मिन् दिने अशनस्य भोजनस्य काले समये अतिक्रामति गच्छति सति मे हृदये च दूयमाने खिद्यमाने च सा चण्डालकन्या नानाविधानि अनेकप्रकाराणि पक्वानि परिणतानि अपक्वानि अपरिणतानि च फलानि सुरभि सुगन्धि शीतलं शिशिरं च पानीयं जलम् स्वस्याः पाणिना करेण उपनीय आनीय न प्रतिपन्नः स्वीकृतः तेषाम् उपभोगः ग्रहणं येन तथाभूतं माम् आरोपिते मयि न्यस्ते लोचने यया सा स्निह्यन्ती स्नेहं कुर्वाणा इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अवोचत् अब्रवीत्—'क्षुत् क्षुधा च पिपासा तृषा च ताभ्याम् अर्दितानां पीडितानां पशुपक्षिणां तिर्यचाम् निर्विचारा विचार-रहिता चित्तवृत्तिः मनोवृत्तिः येषां तथाभूतानां सताम् उपनीतेषु आनीतेषु आहारेषु भोजनेषु अनुपयोगः उपयोगाभावः न संभवति एव, पशुपक्षिणो हि मनसि विचारं न कृत्वा सर्वमेव भोज्यपदार्थं भुञ्जते इति भावः। तत् तस्मात् यदि एवंविधः एतादृशः त्वं कोऽपि भोज्यं भक्ष्यं च तयोः विवेकं विचारं करोतीत्येवंशीलः पूर्व-जातेः पूर्वजन्मनः स्मरतीति स्मरः स्मरणकर्ता अस्मदीयम् अस्माकीनम् आहारं परिहरसि परिवर्जयसि, तथापि तर्ह्यपि तावत् भक्ष्यस्य भोज्यस्य अभक्ष्यस्य अभोज्यस्य च विवेकेन विचारेण रहितायां हीनायां तिर्यग्जातौ पशुपक्षियोनौ वर्तमानस्य स्थितस्य ते तव किं वा अभक्ष्यम् अभोज्यं यत् न भक्षयसि खादसि। येन जनेन च उत्कृष्टतमाम् अतिशयेन उत्कृष्टां प्रकृष्टतमां जातिं प्राप्य लब्ध्वा आत्मना स्वयमेव ईदृशम् एतादृशं कर्म कार्यं कृतम् विहितम् येन कारणेन तिर्यग्योनौ पशुपक्षिजातौ पतितः गतः स त्वम् अपरम् अन्यत् किं विचारयसि विमृशसि। प्रथमम् आदौ एव आत्मा

बुलवाया जाता हुआ भी, फटकारा जाता हुआ भी, तोड़ा जाता हुआ और तोड़ा-मरोड़ा जाता हुआ भी मैं कुछ नहीं बोला। केवल जोर की चीखें ही मारता रहा। जल और भोजन लाने पर भी वह दिन मैंने बिना खाए ही काटा। दूसरे दिन भोजन-समय बीत जाने तथा हृदय के तड़पने लगने पर, वह चाण्डाल-कन्या अपने हाथ से तरह-तरह के कच्चे-पक्के फल और सुगन्धित शीतल जल लाकर उनका उपभोग न किये मुझपर दृष्टि गाड़े स्नेह करती हुई-जैसी बोली—'भूख प्यास के मारे, मन में किसी तरह का विचार न किये पशु-पक्षियों का भोजन न करना कतई सम्भव नहीं। इसलिए भक्ष्याभक्ष्य का विचार करने वाले, पूर्व जन्म स्मरण किये हुए यदि तुम कोई भोजन से परहेज कर रहे हो, तो भी इस समय भक्ष्याभक्ष्य के विचार से रहित पशु-पक्षियों की योनि में स्थित तुम्हारे लिए ऐसा अभक्ष्य क्या है जो तुम न खा सको? जिस (व्यक्ति) ने सबसे ऊँची जाति प्राप्त करके स्वयं ऐसा काम किया जिससे पशु-पक्षियों की योनि में जा गिरा, उसको अन्य विचार का क्या करना है? पहले ही उसने अपने को विवेक में

त्तजातिसदृशमाचतरस्ते नास्त्येव दोषः। येषां च भक्ष्याभक्ष्यनियमोस्ति तेषामप्यापत्काले प्राणानां संधारणमभक्ष्योपयोगेनापि तावद्विहितम्। किं पुनस्त्वादृशस्य। न चेदृशं किंचिदप्याहाराय मयोपनीतं यादृशेन चाण्डालाशनशङ्का समुत्पद्यते। फलानि तु ततोपि प्रतिगृह्यन्त एव। पानीयमपि चाण्डालभाण्डादपि भुवि पतितं पवित्रमेवेत्येवं जनः कथयति। तत्किमर्थमात्मानं क्षुधा पिपासया वा पातयसि। यन्न भक्षयस्यमूनि मुनिजनोचितानि वनफलानि न पिबसि वा पानीयम्' इति। अहं तु तेन तस्याश्चाण्डालजात्यनुचितेन वचसा विवेकेन च विस्मितान्तरात्मा तथेति प्रतिपद्य शापनिघ्नो घृणां परित्यज्य जीविततृष्णया क्षुत्पिपासोपशमायाशनक्रियामङ्गीकृतवानस्मि। मौनं तु पुनर्नात्याक्षम्।

विवेके कर्तव्याकर्तव्यविचारे न स्थापितः स्वयं विवेको न कृत इत्यर्थः। अधुना इदानीं स्वस्य कर्मणा पूर्वजन्मकृतकार्येण उपात्ता प्राप्तेत्यर्थः या जातिः योनिः तस्याः सदृशं समानम् आचरतः व्यवहरतः ते तव दोषः नास्ति एव। येषां च भक्ष्यं भोज्यं च अभक्ष्यम् अभोज्यं च तयोः नियमः व्यवस्था अस्ति, तेषां अपि कृते आपदः विपत्त्याः काले समये अभक्ष्यस्य उपयोगेन ग्रहणेन अपि प्राणानां जीवितस्य संधारणं रक्षणमित्यर्थः तावत् विहितं शास्त्रेषु विधानमस्तीत्यर्थः किं पुनः त्वादृशस्य त्वत्सदृशस्य भण्येतेत्यर्थः। यथाह मनुः—'जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः। आकाशमिव पंकेन न स पापेन लिप्यते। (१०, १०४) न च ईदृशम् एतादृशं किञ्चित् आहाराय भोजनाय मया उपनीतम् आनीतम् यादृशेन चण्डालस्य अशनस्य भोजनस्य शङ्का समुत्पद्यते जायते। फलानि तु ततः चण्डालात् अपि प्रतिगृह्यन्ते आदीयन्ते एव। पानीयं जलम् अपि चण्डालस्य भाण्डात् पात्रात् अपि भुवि पृथिव्यां पतितं पवित्रं शुद्धम् एव इति जनः लोकः कथयति अभिदधाति। तत् तस्मात् किमर्थं कस्मात् कारणात् आत्मानं स्वं क्षुधा बुभुक्षया पिपासया तृषा वा पातयसि मारयसि। यत् त्वम् अमूनि एतानि मुनि-जनेभ्यः उचितानि योग्यानि वनस्य फलानि न भक्षयसि अत्सि, वा पानीयं जलं न पिबति पानविषयीकरोषि इति। अहं तु तस्याः चाण्डाल-दारिकायाः चाण्डालजात्याः अनुचितेन अयोग्येन तेन वचसा वचनेन विवेकेन कर्तव्याकर्तव्यविवेचनेन विस्मितः चकितः अन्तरात्मा अन्तःकरणं यस्य तथाभूतः 'तथा' यथा त्वया कथितं तत् युक्तमेव इति प्रतिपद्य स्वीकृत्य शापस्य निघ्नः आयत्तः अधीनः इति यावत् घृणां जुगुप्सां परित्यज्य त्यक्त्वा जीवितस्य प्राणानां तृष्णया इच्छया क्षुध् क्षुधा च पिपासा तृट् च तयोः उपशमाय निवृत्तये अशनस्य भोजनस्य क्रियां व्यापारम् अङ्गीकृतवान् स्वीकृतवान्। तु किंतु मौनं तूष्णींभावं न अत्याक्षम् त्यक्तवान्।

नहीं रखा। अब अपने कर्म से प्राप्त योनि के अनुसार आचरण करते हुए तुम्हें कोई भी दोष नहीं। और जिन लोगों का भक्ष्याभक्ष्य का नियम है, उनके लिए भी आपत्ति-काल में प्राण-धारण हेतु अभक्ष्य को भी उपयोग में लाने का विधान है, तुम जैसों की तो बात ही क्या। इसके अतिरिक्त, खाने के लिए मैं ऐसी कोई चीज नहीं लाई हूँ जिससे चाण्डाल के खाने की शंका हो। फल तो उनसे भी लिये जाते हैं। चण्डाल के भांडे से भी जमीन पर गिरा पानी शुद्ध ही होता है—ऐसा लोग कहते हैं। इसलिए क्यों भूख-प्यास से अपने को मारते हो जो मुनिजनों के योग्य इन वन-फूलों को नहीं खा रहे हो और न पानी पी रहे हो ?' मैं तो चाण्डाल जाति के प्रतिकूल उसके उस कथन और विवेक से मन ही मन आश्चर्य-चकित हुआ 'अच्छी बात है' यह स्वीकार करके शाप-वशीभूत हुआ, घृणा छोड़कर, प्राणों के लोभ से भूख-प्यास मिटाने हेतु भोजन करना स्वीकार कर बैठा, किन्तु मौन नहीं छोड़ा।

एवमतिक्रामति च काले क्रमेण तरुणतामापन्ने मय्येकदा प्रभातायां यामिन्यामुन्मीलितलोचनोऽद्राक्षमस्मिन्कनकपञ्जरे स्थितमात्मानम्। सापि चाण्डालदारिका यादृशी तादृशी देवेनापि दृष्टैव। सकलमेव तत्पक्कणममरपुरसदृशमालोक्य चापगतचाण्डालवसतिसंवेगो विस्मितान्तरात्मा किमेतदिति कुतूहलात्प्रष्टुकामो यावन्न परित्यजाम्येव मौनं तावदेषा मामादाय देवपादमूलमायाता। तत्केयं, किमर्थमनया चाण्डालतात्मनः ख्यापिता, 'किमर्थं वाहं बद्धः, बद्धो वा किमर्थमिहानीतः' इत्यत्र वस्तुन्यहमपि देव इवानपगतकूतूहल एव' इति।

राजा तु तच्छ्रुत्वा समुपजाताभ्यधिककुतूहलस्तदाह्वानाय पुरःस्थितां प्रतिहारीमादिदेश। नचिरादेव तयोपदिश्यमानमार्गा प्रविश्य सा पुरस्तादूर्ध्वस्थितैव राजानमभिभवन्ती धाम्ना प्रागल्भ्येन बभाषे। 'भुवनभूषण रोहिणीपते तारारमण कादम्बरीलोचनानन्दचन्द्र, सर्वंस्त्वयास्य दुर्मतेरात्मनश्च पूर्वजन्मवृत्तान्तः श्रुत एव। अत्रापि

एवम् एतेन प्रकारेण काले समये अतिक्रामति गच्छति सति, क्रमेण शनैः शनैः मयि तरुणतां यौवनम् आपन्ने प्राप्ते सति एकदा यामिन्यां रात्र्यां प्रभातायां अवसितायां सत्याम् उन्मीलिते उन्निद्रिते लोचने नयने येन तथाभूतोऽहम् आत्मानं स्वम् अस्मिन् कनकस्य सुवर्णस्य पञ्जरे स्थितं वर्तमानम् अद्राक्षम् अपश्यम्, सा चण्डालदारिका अपि यादृशी यद्विधा अस्ति तादृशी तद्विधा देवेन भवता (शूद्रकेण) अपि दृष्टा विलोकिता एव। तत् पक्कणं शबरावासम् अमरपुरेण स्वर्गेण सदृशं तुल्यम् आलोक्य दृष्ट्वा च अपगतः दूरीभूतः चाण्डालानां शबराणां वसतेः वासस्य संवेगः उद्विग्नता तस्य तथाभूतोऽहं विस्मितः चकितः अन्तरात्मा मनः यस्य तथाभूतोऽहम् 'एतत् चक्षुषोरग्रे दृश्यमानं किम्?' इति कुतूहलात् प्रष्टुं कामः इच्छा यस्य स यावत् मौनं नैव त्यजामि तावत् एषा चण्डालकन्या माम् आदाय गृहीत्वा देवस्य भवतः पादयोः मूलं समीपम् इह आयाता आगता। 'इयं कन्या का? किमर्थम् कस्मात् कारणात् अनया एतया आत्मनः स्वस्याः चाण्डालता चाण्डालत्वम् ख्यापिता कथिता, किमर्थम् अहं बद्धः पञ्जरे इति शेषः, बद्धो वा किमर्थं कस्मात् इह भवतः राजसभायाम् आनीतः प्रापितः' इति अत्र अस्मिन् वस्तुनि विषये अहम् अपि न अपगतं दूरीभूतं कुतूहलं कौतुकं यस्य तथाभूत एव अस्मि' इति।

तत् शुकवचनं श्रुत्वा राजा शूद्रकस्तु समुपजातं समुत्पन्नम् अभ्यधिकम् अत्यधिकं कुतूहलं कौतुकं यस्य तथाभूतः सन् तस्याः चाण्डालदारिकायाः आह्वानाय आकारणाय पुरः अग्रे स्थितां प्रतीहारीं द्वारपालम् आदिदेश। न चिरात् एव शीघ्रमेव तया प्रतीहार्या उपदिश्यमानः निर्दिश्यमानः मार्गः यस्यै तथाभूता सा चाण्डालकन्या पुरस्तात् राज्ञः अग्रे ऊर्ध्वं यथा स्यात्तथा स्थिता एव उत्थिता एव धाम्ना तेजसा राजानं शूद्रकम् अभिभवन्ती अतिशयानेत्यर्थः बभासे अवोचत्—'हे भुवनस्य संसारस्य भूषण रत्न! रोहिणी एतन्नाम्नी तारा तस्याः पते नाथ! ताराणां रमण भर्तः! कादम्बर्याः लोचनयोः नेत्रयोः आनन्द दायकश्चन्द्र आनन्दचन्द्रः तत्सम्बुद्धौ त्वया अस्य दुर्मतेः दुर्बुद्धेः वैशम्पायनस्य आत्मनश्च पूर्व-जन्मनः वृत्तान्तः उदन्तः श्रुत एव। अत्र

इस प्रकार समय बीतने पर मैं धीरे-धीरे युवा हुआ, तो एक बार रात बीतने पर आँखें खोले हुए मैंने अपने को इस सोने के पिंजरे में पड़ा देखा। वह चण्डाल-कन्या भी जैसी है, वैसी आपने देख ही ली है।

यह सुनकर अत्यन्त कुतूहल-युक्त हुए राजा ने उस (कन्या) को बुलाने हेतु सामने खड़े द्वारपाल को आज्ञा दी। शीघ्र ही उसके बताये मार्ग पर चलकर प्रविष्ट हो वह (राजा के) आगे खड़ी-खड़ी ही अपने तेज से राजा को मात करती हुई साहसपूर्वक बोली—'संसार-भूषण, रोहिणी के पति, ताराओं के नाथ, कादम्बरी के नयनों के आनन्द-दायक चन्द्र! तुमने अपने

जन्मनि यथायं निषिद्धोपि पित्रा कामरागान्धः पितुराज्ञामुल्लङ्घ्य वधूसमीपं प्रस्थितः तथाप्यनेन स्वयमेव कथितम्। तदहमस्य दुरात्मनो जननी श्रीः। तथा प्रस्थितमेनं दिव्येन चक्षुषा दृष्ट्वास्य पित्राहं समादिष्टास्मि। 'सर्व एव ह्यविनयप्रवृत्तोनुतापाद्विना न निवर्तते। तदयं ते तनय कदाचिदस्या अपि तिर्यग्जातेरधस्तात्पतति तद्यावदिदं कर्म न परिसमाप्यते तावदेनं मर्त्यलोक एव बद्ध्वा धारय। यथा चानुतापोस्य भवति तथा प्रतिविधेयमस्य' इति। तदस्य विनयायेदं विनिर्मितं मया। सर्वमधुना तत्कर्म परिसमाप्तम्। शापावसानसमयो वर्तते। शापावसानेन च युवयोः सममेव सुखेन भवितव्यमिति त्वत्समीपमानीतो मयायम्। अत्रापि यच्चाण्डालजातिः ख्यापिता तल्लोकसंपर्कपरिहाराय। तदनुभवतां संप्रति द्वावपि सममेव जन्मजराव्याधिमरणादि-

---

अपि अस्मिन्नपि जन्मनि शुकयोनौ यथा अयं पित्रा श्वेतकेतुना निषिद्धः वारितः अपि कामः मदनः तत्कृतेन रागेण प्रणयेन अन्धः पितुः आज्ञाम् उल्लङ्घ्य अतिक्रम्य वध्वाः महाश्वेतायाः समीपं प्रस्थितः चलितः तथापि अनेन स्वयम् आत्मना एव कथितं गदितम्। तत् तस्मात् अहम् अस्य दुरात्मनः दुष्टात्मनः जननी माता श्रीः लक्ष्मीः अस्मि। तथा तेन प्रकारेण प्रस्थितं वधूसमीपं प्रयातम् एनम् दिव्येन चक्षुषा ज्ञान नेत्रेण दृष्ट्वा अस्य पित्रा श्वेतकेतुना अहम् आदिष्टा आज्ञापिता अस्मि—'हि यतः अविनये धृष्टतायाः मार्गे इत्यर्थः प्रवृत्तः चलितः सर्व एव जनः अनुतापात् पश्चात्तापात् विना न निवर्तते न निवृत्तः पराङ्मुख इति यावत् जायते, धृष्टतां करोत्येवेति भावः। तत् तस्मात् ते तव अयं तनयः शुकयोनिस्थितः पुत्रः कदाचित् सम्भवतः अस्याः अपि तिर्यग्जातेः पशुपक्षियोनितः अधस्तात् अधः नीचैः पतति तत् तस्मात् यावत् यावता कालेन इदं मया क्रियमाणं कर्म अनुष्ठानं न परिसमाप्यते परसमाप्तिं गच्छति, तावत् तावता कालेन एनं शुकरूपं पुत्रं मर्त्यलोके मनुष्यलोके एव बद्ध्वा बन्धने प्रक्षिप्य धारय रक्ष। यथा यस्य अनुतापः स्वकर्म प्रति पश्चात्तापः भवति तथा अस्य प्रतिविधेयम् करणीयम् इति। तत् तस्मात् अस्य वैशम्पायनस्य विनयाय विनयनिमित्तं यथासौ अविनयमपनीय विनयमार्गम् आश्रयेत् तथा मया इदं विनिर्मितं कृतम्। अधुना इदानीं सर्वं तत् कर्म अनुष्ठानं परिसमाप्तम्। शापस्य अवसानस्य समाप्तेः समयः वर्तते अस्ति। शापस्य अवसाने च युवयोः तव वैशम्पायनस्य च समम् युगपत् एव सुखेन आनन्देन भवितव्यम् भवनीयम् इति हेतोः तव समीपं पार्श्वे मया अयम् आनीतः आनीयत, अत्र अपि यत् मया चाण्डालजातिः ख्यापिता कथिता तत् लोकानां संपर्कस्य संसर्गस्य परिहाराय दूरीकरणाय अर्थात् लोकाः यथा अस्माभिः संपर्कं न कुर्युः। तत् तस्मात् सम्प्रति अधुना द्वौ उभौ अपि समम् एव युगपत् एव जन्म उत्पत्तिश्च जरा वृद्धावस्था च व्याधिः रोगश्च

और इस दुर्बुद्धि के पूर्व जन्म का सारा हाल सुन लिया है। इस जन्म में भी पिता द्वारा रोक दिये जाने पर भी जिस तरह पिता की आज्ञा का अतिक्रमण करके यह वधू के पास चला था, वह भी इसने स्वयं ही कह डाला है। मैं इस दुष्टात्मा की माँ लक्ष्मी हूँ। इस तरह प्रस्थित हुए इसे दिव्य दृष्टि से देखकर इसके पिता ने मुझे आज्ञा दी है—'धृष्टता (का मार्ग) अपनाने वाला कोई भी हो बिना पाश्चात्ताप हुए वह नहीं हटता। इसलिए यह तुम्हारा पुत्र कदाचित् तिर्यग्-योनि से भी और अधिक नीचे गिर जाय, इस लिए जब तक मेरा यह अनुष्ठान समाप्त नहीं हो जाता, तब तक तुम इसे बाँधकर मर्त्यलोक में ही रखो। इस तरह उपाय करते रहना जिससे कि इसको (अपने अविनय पर) पश्चात्ताप हो जाय'। इसलिए इसमें विनय लाने हेतु मैंने यह किया हैं। वह सारा अनुष्ठान अब समाप्त हो गया है। यह शाप-समाप्ति का समय है। शाप-समाप्ति का तुम दोनों साथ-साथ ही आनन्द लूटो। इसीलिए इसे तुम्हारे पास लाई हूँ। इस सम्बन्ध में जो मैंने चाण्डाल-जाति प्रख्यापित की हैं, वह दुनिया के संपर्क से बचने हेतु की है।

दुःखबहुले तनू परित्यज्य यथेष्टजनसमागमसुखम् ।' इत्यभिदधानैव सा झटिति रणद्भूषणारवबधिरितान्तरिक्षमुत्फुल्ललोकलोचनोद्वीक्षिता क्षितेर्गगनमुदपतत् ।

अथ राज्ञस्तद्वचनमाकर्ण्य संस्मृतजन्मान्तरस्य 'सखे वैशम्पायनाख्यपुण्डरीक, दिष्ट्या तुल्यकालमेवावयोः शापावसानं संजातम्' इत्यभिदधत एवाकर्णाकृष्टकार्मुको मकरकेतुरग्रतः परमास्त्रं कादम्बरीं कृत्वा जीवितापहरणाय प्रतिरोधक इव निरुद्धसर्वाशोऽन्तरा पदं चकार । तत्पदाक्रान्तिनिर्वासितमिव कादम्बरीशरणमुपजगामान्तःकरणम् । तन्मार्गणाभिहतिभीता इव देहमुत्सृज्य निर्जग्मुरजडाः श्वासमरुतः । तद्बाणपक्षवाता-

मरणं मृत्युश्च आदि येषां तानि यानि दुःखानि कष्टानि बहुलानि वहूनि ययोः तथाभूते तनू मानुषौ देहौ परित्यज्य त्यक्त्वा यथेष्टाः यथाभिलषिताः ये जनाः प्रियतमा च मातृपित्रादयश्च तैः समागमस्य पुनर्मिलनस्य सुखम् आनन्दम् अनुभवताम् भुञ्जाताम् इति अभिदधाना कथयन्ती एव सा चाण्डालदारिकारूपा लक्ष्मीः झटिति शीघ्रं रणन्ति झणत्कुर्वन्ति यानि भूषणानि अलंकाराः तेषां रवेण शब्देन बधिरितं बधिरीकृतम् अन्तरिक्षम् आकाशं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा उत्फुल्लैः विकसितैः लोकानां जनानां लोचनैः उद्वीक्षिता सती क्षितेः पृथिवीतः गगनम् आकाशम् उदपतत् उदडीयत । **अथ**—अथ लक्ष्म्याः उद्गमनानन्तरम् तस्याः लक्ष्म्याः तत् वचनं कथनम् आकर्ण्य श्रुत्वा संस्मृतं स्मृतिविषयतां नीतं जन्मान्तरं पूर्वजन्म यस्य तस्य राज्ञः शूद्रकस्य 'सखे मित्र ! वैशम्पायन आख्या नाम यस्य तथाभूत पुण्डरीक ! दिष्ट्या सौभाग्येन तुल्यः समानः एक इति यावत् कालः समयः यस्य तथाभूतम् आवयोः तव मम च शापस्य अवसानं समाप्तिः संजातं सम्पन्नम्, इति अभिदधानः कथयन् एव आकर्णं कर्णपर्यन्तम् आकृष्टं कार्मुकं धनुः येन तथाभूतः मकरकेतुः कामः अग्रतः पुरतः कादम्बरीं परमम् अस्त्रं कृत्वा विधाय जीवितस्य प्राणानाम् अपहरणाय ग्रहणाय प्रतिरोधकः प्रतिरोधी दस्युरिति यावत् ('प्रतिरोधिपरास्कन्दि-पाटच्चर-मलिम्लुचाः' इत्यमरः) इवेति श्लिष्टोपमायाम् निरुद्धाः आवृताः सर्वाः आशाः दिशः अथ च सर्वा आशा रक्षणस्य प्रत्याशा येन तथाभूतः सन् अन्तरा मध्ये हृदये इति यावत् पदं स्थानं चकार कृतवान् । अयं भावः यथा कश्चित् पाटच्चरः दिशाः अवरुध्य सशस्त्रः सन् द्रव्यादि-हरणाय गृहान्तः प्रविशति तथैव मकरकेतुरपि कादम्बरीं शस्त्रीकृत्य प्राणापहरणाय राज्ञः शूद्रस्य हृदये प्रविवेश । तस्य मकरकेतोः पदाक्रान्त्या स्थानग्रहणेन निर्वासितं निष्कासितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अन्तःकरणं हृदयं कादम्बर्याः शरणम् उपजगाम अगच्छत् । अन्योऽपि दस्युना गृहे आक्रान्ते अन्यत्र शरणार्थं पलायते । **तन्मार्ग०**—तस्य मकरकेतोः मार्गणैः बाणैः या अभिहतिः अभिघातः प्रहारः इति यावत् तया भीता भयं प्राप्ताः इव देहम् शूद्रकस्य शरीरम् उत्सृज्य त्यक्त्वा अजडाः चेतनाः अथ च अशीतलाः उष्णा इत्यर्थः

इसलिए अब तुम दोनों जन्म, बुढ़ापा, रोग, मरण आदि दुखों में भरे (भूलोकीय) शरीरों को छोड़कर एक-साथ अपने इष्टजनों से मिलन का सुख भोगो' यह कहती-कहती ही वह झट झणझणते हुए भूषणों के शब्द से अन्तरिक्ष को बहिरा बनाये, लोगों द्वारा फटी-फटी आँखों से देखी जाती हुई भूतल से आकाश को उड़ गई ।

तदनन्तर उसका कथन सुनकर अपने जन्मान्तर का स्मरण किये हुए—"मित्र वैशम्पायननामक पुण्डरीक ! सौभाग्य से हम दोनों के शाप की समाप्ति एक साथ हो गई है" यह कहते हुए ही राजा (शूद्रक) के हृदय के भीतर कान तक धनुष खींचे कामदेव उत्कृष्ट अस्त्र के रूप में कादम्बरी को आगे करके प्राण हरने हेतु एक डाकू की तरह सभी आशा (दिशायें, प्रत्याशा) रोके घुस गया । उसके भीतर आक्रमण कर देने के कारण बाहर निकाला हुआ-जैसा हृदय कादम्बरी की शरण में चला गया । कामदेव के बाणों के प्रहार के भय से मानो अजड़ (गर्म, चेतन) निश्वास-वायु निकल पड़े । उसके बाणों पर लगे पंखों की हवा से ताडित-जैसा चञ्चल शरीर

हतमिवाकम्पत तरलं शरीरम्। तच्छरशल्यभरालसोत्कण्टकिनी तनुरजायत। तद्विशिखरजोरूषितमिव नयनयुगलमश्रुजलमुत्ससर्ज। आपाण्डुतां च सद्यो वदनलावण्यमयासीत्। तद्धनुर्गुणध्वानाकर्णनोद्वेजितमिव हृदयवेदनाकूणितत्रिभागं नयनयुगलमभवत्। अन्तर्ज्वलिष्यतो मदनदहनस्य धूमोपहतमिव वेपमानमधरकिसलयं शोषमगात्। तत्तापविरसमाननान्निष्पीडितं सरागं हृदयमिव ताम्बूलमपतत्। आर्द्रस्य दारुणो द्रव इव दह्यमानस्याङ्गेभ्यो निरगमत्स्वेदः। मदनशरकीलितानीव तावत्तैव क्षणेनाङ्गानि परवशा-

---

श्वासमरुतः निश्वास-वायवः निर्जग्मुः निःसृताः, कामपीडितस्य राज्ञः शरीरात् उष्णनिश्वासाः निःसृताः इति भावः, अत्र प्रहार-भयात् इवेति हेतूत्प्रेक्षा, अजडशब्दे श्लेषः अर्थात् दस्युप्रहार-भयात् यथा अजडाः चेतनाः भृत्यादयः गृहं त्यक्त्वा पलायन्ते तथैव श्वासमरुतः वहिर्जग्मुः इति उत्प्रेक्षया उपमा ध्वन्यते, अतः अत्र अलङ्कारेण अलङ्कार-ध्वनिः। तस्य मकरकेतोः शराणां वाणानां पक्षाणां पुङ्खानां वातेन वायुना आहतम् अभिहतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् राज्ञः तरलं चञ्चलं शरीरम् अकम्पत अवेपत। तस्य शराणां वाणानां यानि शल्यानि अग्राणि तेषां यः भरः भारः तेन अलसा मन्थरा तनुः देहः उत्कण्टकिनी उत्कण्टकिता रोमाञ्चिता इति यावत् अजायत अभवत्। तस्य मकरकेतोः ये विशिखाः वाणाः पुष्पात्मकाः तेषां यत् रजः परागः तेन रूषितं भरितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् नयनयोः नेत्रयोः युगलं द्वयम् अश्रुजलं वाष्पम् उत्ससर्ज उन्मुमोच। वदनस्य मुखस्य लावण्यं सौन्दर्यं सद्यः तत्कालम् आपाण्डुताम् मनाक् श्वेतताम् अयासीत् अगच्छत्। तस्य मकरकेतोः धनुषः चापस्य गुणस्य प्रत्यञ्चायाः ध्वानस्य टङ्कार ध्वनेरित्यर्थः आकर्णनेन श्रवणेन उद्वेजितम् उद्वेगम् अवापितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् नयनयोः युगलं द्वयं हृदयस्य वेदनया पीडया आकूणितः ईषत् मुद्रितः त्रिभागः त्रिशब्दोऽत्र त्रिदशवत् पूरणार्थकः अर्थात् तृतीयो भागः यस्य तथाभूतम् अभवत् अजायत। अन्तः हृदये ज्वलिष्यतः ज्वलनोन्मुखस्य मदनः कामः एव दहनः [रूपकम्] अग्निः तस्य धूमेन उपहतं ताडितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् [अत्र 'मदनदहनधूमोपहतम्' इत्येव सुवचम् अन्यथा असमर्थसमास-प्रसङ्गात्] वेपमानं कम्पमानम् अधरः अधरोष्ठः किसलयं पल्लवम् इवेति लुप्तोपमा, शोषं शुष्कताम् अगात् अगच्छत् अशुष्यदित्यर्थः, ज्वलनात् पूर्वं धूमो निःसरत्येव।

तत्ताप०—तस्य मकरकेतोः तापेन ज्वरेण विरसं नीरसं निष्पीडितं संपीडितम् अथ च अभिभूतम्, सरागम् रागः लालिमा अथ च प्रेम तेन सहितं हृदयम् इवेति श्लिष्टोत्प्रेक्षायाम् ताम्बूलं पुन्नागवल्लीपत्रम् आननात् मुखात् अपतत् अस्रंसत। दह्यमानस्य प्रज्वाल्यमानस्य आर्द्रस्य क्लिन्नस्य दारुणः काष्ठस्य द्रवः निस्यन्दः इवेत्युपमायाम् दह्यमानस्य कामाग्निना प्रज्वालमानस्य राज्ञः शूद्रकस्य अङ्गेभ्यः गात्रेभ्यः स्वेदः घर्मजलं निरगमत् निरगच्छत्। मदनस्य कामदेवस्य शरैः बाणैः कीलितानि कीलैः नियन्त्रितानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम् राज्ञः अङ्गानि अवयवाः तावता

काँप उठा। उसके बाणों के शल्यों के भार से अलसाई देह कण्टकित (काँटों वाली, रोमाञ्चित) हो बैठी। उसके (पुष्परूप) बाणों के पराग से भरी दोनों आँखें आँसू वहाने लगीं। मुख का सौन्दर्य एकदम पीला पड़ गया। उसके धनुष की टंकारध्वनि सुनने से हृदय-वेदना में दोनों आँखें अपना तीसरा हिस्सा मूँद बैठीं। हृदय में जलने को न तय्यार हुई पड़ी कामाग्नि के धुएँ के टकराने से जैसे हिलता हुआ किसलय-सदृश अधर सूख गया। काम-ज्वर के कारण स्वाद में फीका बना, (मुख के) निष्पीड़ित (दबाया) सराग (लाल) पान का बीड़ा मुख से नीचे गिरा पड़ा ऐसा लग रहा था मानो निष्पीडित (पीडाभिभूत), सराग (प्रेम-भरा) हृदय गिर पड़ा हो। जलाई जा रही गीली लकड़ी से निकल रहे पानी की तरह (कामाग्नि द्वारा) जलाये जा रहे राजा के अंगों से स्वेद निकलने लगा। काम के बाण-रूपी कीलों से ठोक दिये

न्यजायन्त। तथा च कादम्बरीं पुरस्कृत्य कुसुमधन्वनायास्यमानस्य तदवयवरूपशोभाविनिर्जितानि तापापहरणक्षमाण्यपि तस्याकिंचित्कराण्यभवन्। तथा हि। कमलकिसलयानि पाणिपादेन, कुवलयदलस्रजो दृष्ट्या, मणिदर्पणाः कपोलेन, मृणालानि बाहुलतिकया, शशाङ्करश्मयो नखमयूखैः, घनसारधूलिः स्मितप्रभया, मुक्तादामानि दशनकिरणैः, अमृतकरबिम्बं मुखेन, ज्योत्स्ना लावण्येन, मणिवेदिकाकुट्टिमानि नितम्बेन। एवं च विहतसर्वबाह्यप्रतिक्रियस्य, हृदयेप्यसुखायमानसकलान्यविनोदस्य, तामेवाभिध्यायतः, तामेवोत्प्रेक्षमाणस्य, तामेवाभिलपतः, तामेव पश्यतः, तामेवालपतः,

---

एव क्षणेन स्वल्पेनैव कालेनेत्यर्थः परवशानि परायत्तानि अजायन्त बभूवुः। तथा च कादम्बरीं पुरस्कृत्य अग्रेकृत्वा लक्ष्यीकृत्येति यावत् कुसुमधन्वना पुष्पचापेन कामदेवेनेति यावत् आयास्यमानस्य आयासं प्राप्यमाणस्य पीड्यमानस्येति यावत् तस्य शूद्रकस्य ये अवयवाः पाणिपादादयः तेषां रूपस्य सौन्दर्यस्य शोभया सुषमया विनिर्जितानि पराभूतानि तापस्य कामकृतज्वरस्य अपहरणे दूरीकरणे क्षमाणि समर्थानि सन्ति अपि तस्य शूद्रकस्य कृते अकिञ्चित्कराणि व्यर्थानि अभवन् जातानि अर्थात् तापापहराणि यान्यपि कमलादीनि वस्तूनि लोकप्रसिद्धानि सन्ति तेषां राज्ञोऽङ्गैः निर्जितत्वात् तापापहरणे सामर्थ्याभावः, एतदेव स्पष्टयति। **तथाहि**—कमलानि सरसिजानि च किसलयानि पल्लवानि च तस्य राज्ञः पाणी हस्तौ च पादौ चरणौ च तेषां समाहारः इति पाणिपादम् तेन निर्जितानि इति क्रियायाः सर्वत्रान्वयः कार्यः, कुवलयानां नीलोत्पलानां दलानां पत्राणां स्रजः मालाः दृष्ट्या दृशा [निर्जिताः], मणिमयाः दर्पणाः मणिदर्पणाः मणिमुकुराः कपोलेन गण्डस्थलेन, मृणालानि कमलनालानि बाहुः भुजः लता वल्ली लतिका तया इवेति लुप्तोपमायाम्, शशाङ्कस्य चन्द्रस्य रश्मयः किरणाः नखानां कररुहाणां मयूखैः किरणैः, घनसारस्य कर्पूरस्य धूलिः रजः स्मितस्य मन्दहासस्य प्रभया कान्त्या, मुक्तानां मौक्तिकानां दामानि हाराः दशनानां दन्तानां किरणैः रश्मिभिः, अमृतकरस्य सुधाकरस्य चन्द्रस्येति यावत् बिम्बं मण्डलं मुखेन वदनेन, ज्योत्स्ना चन्द्रिका लावण्येन मणिमय्यः वेदिकाः मणिवेद्यः तासां कुट्टिमानि बद्धभूमयः नितम्बेन कटिपश्चाद्भागेन निर्जिताः पराजिताः। पराजिताः सन्तः इमे वराकाः कथं तेषां तापमुपशमेयुरिति भावः। अत्र उपरि सर्वत्र उपमानानां तिरस्करणात् प्रतीपालङ्कारः।

एवं च—एवम् एतेन प्रकारेण विहता अपगतेत्यर्थः सर्वा निखिला बाह्या बहिरङ्गा प्रतिक्रिया तापोपशमनोपायः इत्यर्थः यस्य तस्य 'दाहक्षमो झटित्येवारुरोह परां कोटिं कामानलः' इत्यस्ति वाक्यम्। हृदये अन्तः अपि असुखायमानः न सुखं ददानः सकलः अन्यः विनोदो मनोरञ्जनं यस्य तस्य, ताम् कादम्बरीम् एव अभिध्यायतः चिन्तयतः, ताम् एव अभिलषतः

गए जैसे उसके अङ्ग तत्काल पराधीन हो गए। अपि, च कादम्बरी को लक्ष्य करके कामदेव द्वारा तंग किये जा रहे उसके लिए उसके अंगों की सौन्दर्य-छटा द्वारा परास्त की हुई वस्तुयें ताप मिटाने में सक्षम होती हुई भी बेकार पड़ गई, जैसे—कमल और किसलय उसके हाथ-पैरों ने, नील कमलों की पंखुड़ियों की मालायें उसकी दृष्टि ने, मणिमय दर्पण उसके गालों ने, मृणाल उसकी लता-जैसी भुजाओं ने, चन्द्रमा की किरणें उसके नाखूनों की किरणों ने, कपूर-रज उसकी मुस्कान की (श्वेत) छटा ने, मोतियों के हार उसके दाँतों की किरणों ने, चन्द्रबिम्ब उसके मुख ने, चाँदनी उसके लावण्य ने, और मणिमय वेदी का फर्श उसके नितम्ब ने पराजित कर दिया था। इस तरह सभी बाहरी प्रतीकार के उपायों से रहित, भीतर भी सभी अन्य विनोदों से सुख प्राप्त न करते हुए, उसी (कादम्बरी) का ध्यान करते, उसी की कल्पना करते,

तामेवालिङ्गतः, तया सह तिष्ठतः, तां रममाणस्य, मुक्तसर्वान्यक्रियस्य, दिवाप्यनुन्मीलितलोचनस्य, रात्रावप्यनुपजातनिद्रस्य, सुहृज्जनमप्यसंभाषयतः, कार्योपगतानप्यजानतः, गुरुजनमप्यनमस्यतः, धर्मक्रियामप्यकुर्वाणस्य, सुखादप्यनर्थिनः, दुःखादप्यनुद्विजमानस्य, मरणादप्यबिभ्यतः, गुरुभ्योऽप्यपेतलज्जस्य, आत्मन्यपि विगलितस्नेहस्य, किं बहुना, कादम्बरीसमागमेऽप्यनुद्यमस्य केवलमस्य मुहुर्मुहुर्मूर्च्छोपगमच्छलेन जीवितोत्सर्गयोग्यामिव कुर्वतो विहस्तेनापि प्रतिपन्नविविधोपकरणेन गलितनयनपयसाप्युच्छुष्कान-

---

कामयमानस्य, ताम् एव पश्यतः विलोकतः, ताम् एव आलपतः संभाषणस्य, ताम् एव आलिङ्गतः आश्लिष्यतः, तया सह तिष्ठतः अवस्थानं कुर्वाणस्य, ताम् प्रकोपयतः कोपं प्रापयतः, ताम् अनुनयतः प्रसादयतः, तस्याः पादयोः चरणयोः पततः पतनं कुर्वतः, तया सह केलिं क्रीडां कुर्वतः, ताम् रममाणस्य तया सह रमणं विदधतः [अत्र 'तया रममाणस्य' इत्येव सुवचं रम-धातोरकर्मकत्वात], मुक्ताः त्यक्ताः सर्वा अखिलाः अन्याः क्रियाः कर्माणि येन तस्य, दिवा दिने अपि न उन्मीलिते उद्घाटिते लोचने नयने येन तस्य, रात्रौ निशि अपि न उपजाता संजाता निद्रा सुप्तिः यस्य तस्य, सुहृद् चासौ जनः मित्राणीत्यर्थः अपि असंभाषयतः अनालपतः [अत्र 'असंभाषमाणस्य' इत्येव सुवचम्] कार्याय उपगतान् समीपे आगतान् लोकानिति शेषः अपि अजानतः कामवैकल्यात् अपरिचिन्वतः इत्यर्थः, गुरुजनं श्रेष्ठपुरुषान् अपि अनमस्यतः न नमस्कारं कुर्वतः, धर्मस्य क्रियां स्नानसन्ध्यावन्दनादिकम् अपि अकुर्वाणस्य न विदधतः, सुखात् अपि अनर्थिनः अनिच्छुकस्य [अत्र 'सुखेन' इत्येवोचितम्], दुःखात् कष्टात् अपि अनुद्विजमानस्य नोद्वेगं प्राप्नुवतः मरणात् मृत्योः अपि अबिभ्यतः न भयं कुर्वतः गुरुभ्यः पूज्यश्रेष्ठ-पुरुषेभ्यः अपि अपेता अपगता लज्जा त्रपा यस्य तस्य, अलज्जमानस्येति यावत् आत्मनि स्वस्योपरि अपि विगलितः अपगतः स्नेहः प्रीतिः यस्य तस्य, किं बहु०—बहुना अधिकेन किम् कादम्बर्या समागमः सङ्गमः तस्मिन् अपि न उद्यमः उद्योगः यस्य तस्य अनुद्यमस्येत्यर्थः [उपरि सर्वत्र अपि-शब्द बलात् अन्यस्य तु किं भण्येतेत्यर्थस्य आपादनात् अर्थापत्तिः अलंकारः], केवलं मुहुर्मुहुः वारं-वारं मूर्च्छायाः मोहस्य उपगमस्य आगमनस्य छलेन व्याजेन जीवितस्य प्राणानाम् उत्सर्गस्य मोचनस्य योग्याम् अभ्यासम् इवेत्यपह्नुत्युत्थापितोत्प्रेक्षायाम् कुर्वतः विदधतः ['योग्याभ्यासार्कयोषितोः' इति विश्वः], विहस्तेनापि चाप्तपरिजनेनोपचर्यमाणस्यापीत्यन्वयः, विहस्तेन विगतः हस्तः करः यस्य तथाभूतेनापि प्रतिपन्नं स्वीकृतं करे धृतमिति यावत् विविधं नाना उपकरणं तापोपशामकसामग्री येन तेन, यः खलु हस्तरहितः स कथम् उपकरणं धारयेत् इति विरोधः तत्परिहारस्तु विहस्तेन व्याकुलेनेति [विहस्त-व्याकुलौ व्यग्रे' इति हैमः], एतत् अन्यानि च 'आप्तपरिजनेन' इत्यस्य विशेषणानि, गलितं पतितं नयनयोः नेत्रयोः पयः अश्रुजलमित्यर्थः यस्य तेन अपि उच्छुष्कं शुष्कतां गतम् आननं मुखं यस्य तेन, अत्र जल मुक्तं सुखम् उच्छुष्कमिति

उसी को चाहते, उसी को देखते, उसी से बोलते, उसे ही गले लगाते, उसी के साथ बठते, उसे नाराज करते, उसे मनाते, उसके पाँव पड़ते, उसके साथ क्रीडा करते, उससे रमते, अन्य सभी कार्य छोड़े, दिन में भी आँख न खोले, रात को भी न सोये, मित्र लोगों से भी बातें न करते, कार्य हेतु आये हुए लोगों को भी न जानते-पहचानते, श्रेष्ठ जनों को भी प्रणाम न करते, धर्म-कर्म को भी न करते, सुख से भी प्रयोजन न रखते, दुख से भी उद्विग्न न होते, मृत्यु से भी न डरते, गुरुजनों से भी न लज्जा किये, अपने प्रति भी स्नेह न किये, अधिक क्या—कादम्बरी से मिलने तक का भी उद्यम न किये केवल बार-बार मूर्छा खाने के बहाने प्राण-विसर्जन का अभ्यास करते हुए—जैसे, (सूख कर) लकड़ी बने शरीर वाले उस (राजा) को फूँक डालने में सक्षम बनी कामाग्नि शीघ्र ही पराकाष्ठा में पहुँच गई। यद्यपि विहस्त (हस्तरहित, व्याकुल) होते हुए भी विविध उपकरण (हाथों में) रखे, आँखों से आँसू गिरते हुए भी सूखे पड़े चेहरे

नेन मुषितवचनावकाशेनापि वैशम्पायनाक्रोशनपरेणानवरतमाचरणाद्विकीर्णचन्दनचर्चेन चरणतलनिवेशितार्द्रारविन्दिनीदलेन करार्पितकर्पूरक्षोददन्तुरतुषारखण्डेन हृदयविनिहितहिमार्द्रहारदण्डेन कपोलतलस्थापितस्फटिकमणिदर्पणेन ललाटतटघटितचन्द्रमणिनांसदेशावस्थापितमृणालनालेन कदलीदलव्यजनवाहिनानर्तिततालवृन्तेन जलार्द्रानिलसंचारिणा कुसुमतल्पकल्पनाकुलेन धारागृहजलयन्त्रप्रवर्तनाहृतार्तिना मणिकुट्टिमक्षालनाग्रहस्तेन च सजलकिञ्जल्कजलजोपचारप्रकरसंभ्रान्तेन च शिशिरभूगृहाभ्यन्तरप्रत्यवेक्षणदक्षेण चोद्यानदीर्घिकातटलतागहनमण्डपसेकसंतापहारिणा च मलयजरसचन्द्रार्द्र-

---

विरोधः उच्छुष्कं कृशमिति अर्थान्तरात् तत्परिहारः, मुषितः अपहृतः वचनस्य कथनस्य अवकाशः अवसरः यस्य तेन अपि वैशम्पायनस्य आक्रोशनं निन्दनं परं प्रधानं यस्य तेन अपि, यस्य वचनस्यैव नास्ति समयः स कथं क्रोशतीति विरोधः, क्रोशनं रोदनमिति तत्परिहारः [उपरि सर्वत्र विरोधाभासालंकारः], अनवरतं निरन्तरम् आचरणात् चरणपर्यन्तं विकीर्णा प्रक्षिप्ता कृतेति यावत् चन्दनस्य मलयजस्य चर्चा लेपः येन तेन, चरणयोः पादयोः तले अधोभागे निवेशितानि स्थापितानि आर्द्राणि क्लिन्नानि अरविन्दिन्याः कमलिन्याः दलानि पत्राणि येन तेन, करयोः राज्ञः हस्तयोः अर्पितं प्रदत्तं न्यस्तमिति यावत् कर्पूरस्य घनसारस्य क्षोदेन चूर्णेन दन्तुरितम् उन्नतावनतं पूर्णमित्यर्थः तुषारस्य हिमस्य खण्डं शकलं येन तेन, हृदय०—हृदये वक्षसि विनिहितः स्थापितः हिमेन तुषारेण आर्द्रः क्लिन्नः हारः मौक्तिकस्रक् दण्ड इवेति लुप्तोपमा येन तेन, कपोलयोः गण्डयोः स्थापितः विन्यस्तः स्फटिकमणिमयः दर्पणः मुकुरः येन तेन, ललाटस्य भालस्य तले उपरीत्यर्थः घटितः संयोजितः स्थापित इति यावत् चन्द्रमणिः चन्द्रकान्तमणिः येन तेन, अंसयोः स्कन्धयोः देशे प्रदेशे स्थापितं विन्यस्तं मृणालनालं विसदण्डः येन तेन, कदल्याः रम्भायाः दलानां पत्राणां व्यजनं वीजनं वहति धारयतीत्येवंशीलेन, आनर्तितः इतस्ततः भ्रामितः जलेन आर्द्रः क्लिन्नः यः अनिलः वायुः तं सञ्चारयितुं शीलमस्येति तथोक्तेन, कुसुमानां पुष्पाणां यत् तल्पं शयनं कल्पनया रचनया आकुलेन व्यग्रेण, धारागृहस्य जलधाराप्रवर्तकभवनस्य जलयन्त्राणां धारायन्त्राणां प्रवर्तनात् सञ्चालनात् आ ईषत् ['आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ' इत्यमरः] तदा दूरीकृता आर्तिः पीडा येन तेन मणिकुट्टिमस्य मणिमयबद्धभूमेः क्षालने धोवने अग्रहस्तः हस्तस्य अग्रभागो यस्य तेन, सजलानि जलयुक्तानि किञ्जल्कानि केसराणि येषां तथाभूतानि तानि जलजानि कमलानि तैः उपचारस्य सेवायाः यः प्रकरः (? प्रकारः) तस्मिन् संभ्रान्तेन त्वरितलग्नेनेति यावत्, शिशिरं शीतलं यत् भूगृहं भुवः नीचैः निर्मितं गृहम् तस्य अभ्यन्तरस्य मध्यस्य प्रत्यवेक्षणे निरीक्षणे दक्षेण कुशलेन, **चोद्यान०**—उद्यानस्य उपवनस्य या दीर्घिका वापी तस्याः तटे तीरे लतानां वल्लीनां गहनस्य वनस्य (गहनं काननं वनम्' इत्यमरः) यः मण्डपः जनाश्रयः ('मण्डपोऽस्त्री जनाश्रयः' इत्यमरः) तस्मिन् यः सेकः सिञ्चनं तेन संतापं हरति अपाकरोतीत्येवंशीलेन, मलयजः चन्दनं

रखे, बोलने के लिये समय पास न रहते हुए भी वैशम्पायन को कोसने में लगे, लगातार (राजा के) पैरों तक चन्दन का लेप किये, पैरों के तले कमलिनी के गीले पत्तों को रखे, हाथों पर कर्पूर-चूर्ण से उन्नतावनत बना वर्फ का टुकड़ा दिये, छाती पर वर्फ से गीली बनी मोतियों की लड़ धरे, गालों के ऊपर स्फटिक मणि का दर्पण स्थापित किये, भाल-स्थल पर चन्द्रकान्त मणि सँजोये, कन्धों के स्थान पर मृणाल-दण्ड रखे, केले के पत्तों का पंखा धारण किये, ताड़ का पंखा इधर-उधर घुमाये, जल से गीली-गीली हवा करते, फूलों की शय्या बनाने में व्यस्त, धारा-गृह में लगे फव्वारों को चलाने से (राजा की) वेदना थोड़ी बहुत शान्त किए, हाथों से मणिमय फर्श को धोने में व्यस्त, जल-युक्त केसरों वाले कमलों द्वारा उपचार के प्रकार में जल्दी जल्दी बने, भूमिगत ठंडे घरों के भीतरी भागों का पता लगाने में निपुण, उद्यान की बावड़ियों के किनारे के लताकुञ्ज के मण्डप को जल-सिञ्चन

जलचन्द्राश्रयावधानदानोद्यतेन चाप्तपरिजनेनोपचर्यमाणस्यापि काष्ठीभूतदेहस्य दाहक्षमो झटित्येवारुरोह परां कोटिं कामानलः। राज्ञः एव तुल्यावस्थस्य महाश्वेतोत्कण्ठया पुण्डरीकात्मनो वैशम्पायनस्य।

तस्मिन्नेव चान्तरे तत्संधुक्षणायेव प्रवर्तयन् सरसकिसलयलतालास्योपदेशदक्षं दक्षिणानिलम्, आलोलरक्तपल्लवप्रालम्बान् कम्पयन्नशोकशाखिनः, वाञ्छितमुकुलमञ्जरीभरेणानम्रयन् बालसहकारान्, उत्कोरकयन्कुरबकैः सह बकुलतिलकचम्पकनीपान्, आपीतयन्किंकिरातैः ककुभो, विकिरन्नतिमुक्तकामोदम्, उद्दामयन्किंशुकवनानि,

तस्य रसः द्रवश्च चन्द्रसंज्ञः कर्पूरमिति यावत् ('कर्पूरमस्त्रियाम्। घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताभ्रो हिमवालुका' इत्यमरः) च आर्द्रं क्लिन्नं वस्तु इत्यर्थः च जलं पानीयं च चन्द्राश्रयः चन्द्रिकायुक्तस्थानं चेति ०आश्रयाः तेषु अवधानं ध्यानं तस्य दाने वितरणे उद्यतेन उद्युक्तेन अर्थात् राज्ञः कृते पूर्वोक्तवस्तूनि यथा सुलभानि स्युः तथा सावधानैः च आप्तः विश्वस्तः ('आप्त-प्रत्ययितौ समौ' इत्यमरः) यः परिजनः भृत्यवर्गः तेन उपचर्यमाणस्य सेव्यमानस्य अपि काष्ठीभूतः इन्धनीभूतः इन्धनसादृश्यमवाप्तः देहो यस्य तस्य राज्ञः शूद्रकस्य दाहक्षमः दाहे समर्थः कामः एव अनलः अग्निः (रूपकम्) झटिति शीघ्रमेव पराम् उत्कृष्टां कोटिं काष्ठाम् आरुरोह आरूढवान्, राज्ञः कामवेदना परां काष्ठां गतेति भावः। राज्ञः एव तुल्या समाना अवस्था दशा यस्य तथाभूतस्य महाश्वेतायाम् उत्कण्ठया औत्सुक्येन पुण्डरीकात्मनः पुण्डरीक-स्वरूपस्य वैशम्पायनस्य अपि 'कामानलः परां कोटिम् आरुरोह' इत्यनुवर्तते।

तस्मिन्—तस्मिन् एव च अन्तरे समयस्य मध्ये 'परावर्तत सुरभि-मासः' इत्यस्ति वाक्यम्, विशेषणानि सुरभिमासस्यैव, तस्य परां कोटिम् आरूढस्य कामानलस्य संधुक्षणाय समिन्धनाय इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सरसाः रसवन्तः रसार्द्राः इति यावत् किसलयाः पल्लवाः यासां तथाभूताः याः लताः वल्ल्यः तासां लास्यस्य नृत्यस्य उपदेशे शिक्षणे दक्षम् निपुणम् नवकिसलयान् विविधं नर्तयन्तमित्यर्थः दक्षिणानिलम् दक्षिणदिशायाः पवनं मलयमारुतमिति यावत् प्रवर्तयन् वातुं प्रेरयन्, आलोलाः चञ्चलाः ये रक्ताः लोहिताः पल्लवाः किसलयाः तेषां प्रालम्बाः समूहाः येषु तान् अशोकस्य शाखिनः वृक्षान् कम्पयन् धुन्वन्, वाञ्छितानि चिरादभिलषितानि चिरप्रत्याशितानीति यावत् यानि मुकुलानि कुड्मलानि च मञ्जर्यः वल्लर्यश्च तासां भरेण भारेण बालाः नवीनाः ये सहकाराः आम्रवृक्षाः तान् नम्रयन् अवनमयन्, कुरबकैः रक्तपुष्पवृक्षविशेषैः सह बकुलाः केसराश्च तिलकाः क्षुरकाश्च चम्पकाः हेमपुष्पकाश्च नीपाः कदम्बाश्चेति तान् नीपान् उत् उद्गताः कोरकाः येषु तथाभूतान् कुर्वन् उत्कोरकयन् कोरकयुक्तीकुर्वन् किंकिरातैः कुरण्टैः ककुभः दिशः आपीतयन् समन्तात् पीतपर्णीकुर्वन्, अतिमुक्तस्य माधवीलतायाः आमोदं परिमलं विकिरन् इतस्ततः विक्षिपन् किंशुकानां पलाशानां वनानि विपिनानि उद्दामयन् पुष्पैः समर्धयन्,

द्वारा (राजा का) ताप हरण करने वाले तथा चन्दन-लेप, कपूर, गीली वस्तुयें, जल और और चाँदनी वाले स्थान पर ध्यान देने में तत्पर विश्वस्त भृत्य-गणों द्वारा उसका उपचार किया जा रहा था। महाश्वेता की उत्कण्ठा के कारण राजा की-जैसी ही हालत वाले पुण्डरीक-स्वरूप वैशम्पायन को भी जला देने में समर्थ बनी कामाग्नि पराकाष्ठा पर जा पहुँची।

इसी बीच कामाग्नि को भड़काने हेतु-जैसे सरस किसलयों वाली लताओं को नृत्य की शिक्षा देने में दक्ष मलयानिल को बहाता हुआ, चंचल लाल-लाल पल्लव-समूहों वाले अशोक वृक्षों को हिलाता हुआ, अभीष्ट मुकुलों और मंजरियों के भार से छोटे-छोटे आम के वृक्षों को झुकाता हुआ, लाल कुरंटे के वृक्षों के साथ-साथ मौलसिरी, तालमखाना, चम्पा और कदम्ब के वृक्षों में कलियाँ निकालता हुआ, पीले कुरण्टों से दिशाओं को पीला-पीला बनाता हुआ,

निरङ्कुशयन् कामिजनमनांसि, निर्मूलयन्मानम्, अपमार्जयंल्लज्जाम्, अपाकुर्वन्कोपम्, अपनयन्ननुनयव्यवस्थाम्, आस्थापयन्हठचुम्बनालिङ्गनरतस्थितिम्, समुल्लासयन्मकरध्वजरक्तध्वजानिव किंशुकानि, सकलमेव महारजतमयमिव रागमयमिव मदनमयमिवोन्मादमयमिव प्रेममयमिवोत्सवमयमिवौत्सुक्यमयमिव जनयन्जीवलोकम्, किसलयितसर्वकान्तारकाननोपवनतरुरुत्फुल्लचूतद्रुमामोदवासितदशाशान्तरो मधुमदमधुरकोकिलालापदुःखिताध्वगजनश्रुतिरनवरतमकरन्दसीकरासारदुर्दिनोन्मादितसकलजीवलोकहृदयो

कामी च कामिनी चासौ जनः तस्य मनांसि हृदयानि निरङ्कुशयन् उच्छृङ्खलयन्, मानं कामिनीनां गर्वम् निर्मूलयन् समूलम् उत्पाटयन् समीपयन्निति यावत् लज्जां त्रपाम् अपमार्जयन् अपाकुर्वन्, कोपं प्रणयकोपम् अपाकुर्वन् दूरीकुर्वन् मानिनीनां मानभङ्गं कुर्वन्निति यावत्, अनुनयस्य प्रसादनस्य व्यवस्थां नियमन् अपनयन् भञ्जयन्, कामिनो हि चरणपातादिना मानिनीम् अनुनयन्तीति व्यवस्थास्ति, किन्तु सुरभिमासे मानिनी अनुनयम् अलब्ध्वापि स्वतः प्रियतममुपसर्पन्तीति व्यवस्थाभङ्गः, हठात् बलात् चुम्बनं मुखस्य अधरेण कपोलेन वा संयोगः च आलिङ्गनम् आश्लेषश्च रतं संभोगश्चेति रतानि तेषां स्थितिं वृत्तिम् अवस्थामिति यावत् आस्थापयन् प्रवर्तयन् बलपूर्वकं चुम्बनादिकार्यं कारयन्निति भावः, मकरध्वजस्य मकरकेतोः रक्तान् रक्तवर्णान् ध्वजान् पताकाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् किंशुकानि पलाशान् समुल्लासयन् विभासयन्, सकलं समस्तम् एव जीवलोकं चराचरात्मकं जगत् महारजतं काञ्चनम् ('चामीकरं जातरूपं **महारजत-काञ्चने**' इत्यमरः) तन्मयम् इव, रागः अनुरागः प्रणय इति यावत् तन्मयम् इव, मदनमयं काममयम् इव, उन्मादः चित्तविभ्रमः तन्मयम् इव, प्रेममयं प्रणयमयम् इव, उत्सवो महः आनन्द इति यावत् तन्मयम् इव औत्सुक्यमयम् उत्कण्ठामयम् इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षा जनयन् कुर्वन्, **किसल०**–किसलयितानि सञ्जातकिसलयानि किसलयैः भरितानीत्यर्थः सर्वाणि कान्ताराणि महारण्यानि [**महारण्ये** दुर्गपथे **कान्तारं** पुंनपुंसकम्' इत्यमरः] च काननानि अरण्यानि च उपवनानि उद्यानानि चेति वनानि तेषां तरवः वृक्षाः यस्मिन् तथाभूतः, उत्फुल्लाः विकसिताः ये चूतस्य आम्रस्य द्रुमाः वृक्षाः तेषाम् आमोदेन परिमलेन वासितानि सुरभितानि दशानाम् आशानां दिशाम् अन्तरम् अन्तरालं मध्यमिति यावत् येन तथाभूतः, मधुनः मकन्दस्य मदेन प्रभावेणेत्यर्थः मधुराः मिष्टाः ये कोकिलानां परपुष्टानाम् आलापाः शब्दाः तैः दुःखिताः दुःखमवापिता अध्वगजनस्य पान्थानां श्रुतिः श्रोत्रं येन तथाभूतः, अनवरतः निरन्तरः यः मकरन्दस्य पुष्परसस्य सीकराणां कणानां आसारः वृष्टिः तया दुर्दिनं मेघाच्छन्नं दिनम् ('मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्' इत्यमरः) तेन उन्मादितं उन्मादं प्रापितं सकलस्य समस्तस्य जीवलोकस्य प्राणिवर्गस्य हृदयं येन तथोक्तः, मदेन पुष्परसेन आकुलाः

माधवी लताओं का सौरभ बिखेरता हुआ, ढाक के वनों को फूलों से समृद्ध करता हुआ कामी लोगों के मनों को उच्छृंखल बनाता हुआ, (स्त्रियों के) मान को उखाड़ फेंकता हुआ, लज्जा को हटाता हुआ, प्रणयकोप को मिटाता हुआ, अनुनय-विनय की व्यवस्था को भंग करता हुआ, अबरन चुम्बन, आलिंगन और संभोग की स्थिति उत्पन्न करता हुआ, कामदेव की लाल ध्वजाओं जैसे टेसुओं को विभासित करता हुआ,सारे के सारे जीवलोक को सुवर्णमय जैसा,अनुरागमय-जैसा, काममय-जैसा, उन्मादमय-जैसा, प्रेममय-जैसा, उत्सवमय-जैसा, औत्सुक्यमय-जैसा बनाता हुआ, महारण्य, अरण्य और उपवन के सभी वृक्षों को किसलय पूर्ण किये, खिले हुए आम के वृक्षों की सुगन्धि से दशों दिशाओं के अन्तराल को सुरभित किये, मधु-मत्त कोयलों की मधुर ध्वनि से बटोहियों के कानों को कष्ट पहुँचाये, लगातार मकरन्द-कणों की वृष्टि से बने दुर्दिन द्वारा सभी

मदाकुलभ्रमद्भ्रमरझंकारकातरितविरहातुरमनोवृत्तिरात्मसंभवैकोल्लासकारी भरात्परावर्तत सुरभिमासः।

येन च कुसुमधन्वनः परमास्त्रेण मधुना पर्याकुलितहृदया कादम्बरी संप्राप्ते भगवतः कामदेवस्य महे महता प्रयत्नेन कथं कथमप्यतिवाहितदिवसा श्यामायमानदशदिशि सायाह्ने स्नात्वा निर्वर्तितकामदेवपूजा तस्य पुरश्चन्द्रापीडमतिसुरभिशीतलैः स्नापयित्वाम्भोभिरा चरणाद्विलिप्य मृगमदामोदिना हरिचन्दनेन सुरभिकुसुमस्रग्भिरुद्ग्रथितं कुन्तलकलापं कृत्वैककर्णार्पितसत्किसलयाशोककुसुमस्तबककर्णपूरं कर्पूरकुसुमप्रायैः प्रसाध्याभरणविशेषैर्विस्मृतनिमेषापिबन्तीव भावार्द्रया दृशा सुचिरमालोक्योत्कण्ठानिर्भरा

मत्ताः च भ्रमन्तः इतस्ततः भ्रमणं कुर्वन्तश्च ये भ्रमराः मधुकराः तेषां झंकारेण 'झम्' इति शब्देन कातरिता कातरीकृता अधीरीकृता विरहेण वियोगेन आतुराणां व्याकुलानां जनानां मनोवृत्तिः येन तथाभूतः, आत्मनः मनसः संभवः उत्पत्तिः यस्य तथाभूतः मनोजः काम इति यावत् तस्य एकः केवलः उल्लासं करोतीत्येवंशीलः कामोल्लासकः कामोद्दीपकः इति यावत् सुरभिमासः वसन्तः भरात् अतिशयेन पूर्णतयेति यावत् ('अथातिशयो भरः' इत्यमरः) परावर्तत निरवर्तत आगत इत्यर्थः।

येन च—कुसुमधन्वनः मदनस्य परमम् उत्कृष्टं च तत् अस्त्रम् आयुधं येन तेन मधुना वसन्तेन पर्याकुलितं परितः आकुलीभूतं हृदयं यस्याः तथाभूतया कादम्बरी भगवतः माहात्म्यशालिनः कामदेवस्य महे उत्सवे [महउद्धव उत्सवः' इत्यमरः] संप्राप्ते समागते महता विपुलेन प्रयत्नेन उद्यमेन कथं कथमपि केनापि प्रकारेण अतिकृच्छ्रादिति यावत् अतिवाहितः अतियापितः दिवसः दिनं यथा तथाभूता श्यामायमानाः श्यामवर्णाभवन्त्यः दश दिशः यस्मिन् तस्मिन् सायाह्ने सायंसमये स्नात्वा स्नानं विधाय निर्वर्तिता कृता कामदेवस्य पूजा अर्चना यया तथाभूता, तस्य कामदेवस्य पुरः अग्रे चन्द्रापीडम् अतिसुरभिभिः अतिसुगन्धिभिः अतिशीतलैः अतिशिशिरैश्च अम्भोभिः जलैः स्नापयित्वा स्नानं कारयित्वा, आ चरणात् चरणपर्यन्तं मृगमदस्य कस्तूर्याः आमोदः गन्धः अस्मिन्नस्तीति तथोक्तेन हरिचन्दनेन पीतचन्दनेन विलिप्य लेपं कृत्वा कुन्तलकलापं केशसमूहं सुरभीणां सुगन्धीनाम् कुसुमानां पुष्पाणां स्रग्भिः मालाभिः उद्ग्रथितम् उद्बद्धं कृत्वा, एकस्मिन् कर्णे श्रोत्रे अर्पितः स्थापितः सत् विद्यमानं किसलयं पल्लवं यस्मिन् सकिसलय इत्यर्थः असोकस्य कुसुमानां पुष्पाणां स्तबकः गुच्छः एव कर्णपूरः कर्णावतंसः यस्य तथाभूतं (चन्द्रापीडम्) कर्पूरस्य घनसारस्य कुसुमानि पुष्पाणि प्रायः बाहुल्येन येषु तथाभूतैः आभरणविशेषैः अलंकार-विशेषैः प्रसाध्य विभूष्य भावेन मनोभावेन आर्द्रया सजलया दृशा दृष्ट्या विस्मृतः विस्मृतिं नीतः निमेषः पक्ष्मपातः यया तथाभूता सती आपिबन्ती इव अत्यादरेण

प्राणिजगत् के हृदयों को उन्मत्त किये, मदमत्त हो मंडराये भ्रमरों की झंकार से विरह के मारे लोगों की मनोवृत्ति को हतोत्साह किये तथा एकमात्र कामोल्लासक वसन्त जोर-शोर से आ पहुँचा।

कामदेव के ब्रह्मास्त्र जिस वसन्त से हृदय में अत्याकुल हुई कादम्बरी भगवान कामदेव के उत्सव के आने पर बड़े प्रयत्न से येन केन प्रकारेण दिन को काटे, दसों दिशाओं को श्यामवर्ण बना देने वाले सायं समय में स्नान करके, कामदेव की पूजा किये, उसी के आगे चन्द्रापीड को अति सुगन्धित और शीतल जल से नहलाकर, पैरों तक कस्तूरी की सुगन्धि से युक्त चन्दन का लेप करके, केश-कलाप में सुगन्धित फूलों की मालायें गूँथकर एक कान में पत्ते सहित अशोक के फूलों का गुच्छा कर्णपूर रूप में पहनाये, अधिकतर कर्पूर के फूलों वाले आभरण-विशेषों से सजाकर, भाव भीनी एक-टक निगाह से पीती हुई-जैसी देर तक देखकर, उत्कण्ठा से भरी हुई,

पुनः पुनर्निश्वस्योत्कम्पमाना साध्वसेन स्विन्नसर्वाङ्गी समुत्कण्टकिततनुरुच्छुष्यदधर-वदना महाश्वेतावलोकनभयान्मुहुर्मुहुर्दिक्षु विक्षिप्तोच्चकितदृष्टिरतिचिरमिवोपसृत्य पुनः पुनः स्थित्वाविष्टेव परवती परित्याजिता बलाल्लज्जया सहाबलाजनसहजां भीतिं भगवता भुवनत्रयोन्मादकारिणा मन्मथेनात्मानमपारयन्ती संधारयितुमेकान्ते निःसहा सहसा तमभिपत्य मुकुलितनयनपङ्कजा जीवन्तमिव निर्भरं कण्ठे जग्राह।

चन्द्रापीडस्य तु तेनामृतसेकाह्लादिना कादम्बरीकण्ठग्रहेण सद्यः सुदूरगतमपि कण्ठस्थानं पुनर्जीवितं प्रत्यपद्यत। दिवसक्लमामीलितं कुमुदमिव शरज्ज्योत्स्नाभिपाता-दुच्छ्वसितमा बन्धनाद् हृदयम्। उषःपरामृष्टेन्दीवरमुकुललीलयोदमीलत्कर्णान्तायतं

पश्यन्तीत्यर्थः सुचिरं दीर्घकालम् आलोक्य दृष्ट्वा उत्कण्ठया उत्सुकतया निर्भरा पूर्णा पुनः पुनः निश्वस्य निश्वासं मुक्त्वा उत्कम्पमाना उद्वेपमाना साध्वसेन भयेन स्विन्नानि स्वेदयुक्तानि सर्वाणि अङ्गानि यस्याः तथाभूता समुत्कण्टकिता संजात-कण्टका रोमाञ्चितेत्यर्थः तनुः शरीरं यस्याः सा, उच्छुष्यन् शोषं गच्छन् अधरः अधरोष्ठः वदनं मुखं च यस्याः सः, महाश्वेतायाः अवलोकनात् वीक्षणात् भयात् भीतेः कारणात् अतिचिरम् इवेति वाक्यालंकारे मुहुर्मुहुः वारं-वारं दिक्षु दिशासु विक्षिप्ता प्रहिता चकिता त्रस्ताः दृष्टिः दृग् यया सा, उपसृत्य उपगम्य पुनः पुनः स्थित्वा अवस्थानं कृत्वा आविष्टा भूतग्रस्ता इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, परवती पराधीना सती भुवनानां त्रयम् त्रीणि भुवनानि तस्य उन्मादं चित्तविक्षेपं करोतीत्येवंशीलेन भगवता मन्मथेन कामदेवेन लज्जया त्रपया सह अवला-जने महिलासु सहजां सहोत्पन्नां स्वाभाविकीमिति यावत् भीतिं भयं बलात् बलपूर्वकं यथा स्यात्तथा परित्याजिता परित्यक्तुं प्रेरिता कामोद्रेकात् लज्जाम् भीतिमपि च परित्यजन्तीति भावः, आत्मानं स्वाम् संधारयितुं रोद्धुमित्यर्थः अपारयन्ती अशक्नुवती एकान्ते रहः निःसहा असहिष्णुः तम् चन्द्रापीडम् अभिपत्य गत्वा मुकुलिते संजातमुकुले ईषत् मुद्रिते इत्यर्थः नयने पङ्कजे इन्दीवरे इवेति लुप्तोपमा यस्याः तथाभूता कादम्बरी जीवन्तं प्राणन्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् चन्द्रापीडं निर्भरं निविडं यथा स्यात्तथा कण्ठे गले जग्राह गृहीतवती आश्लिष्यदित्यर्थः।

चन्द्रा०—अमृतस्य पीयूषस्य सेकः सिञ्चनं तद्वत् आह्लादयितुं सुखयितुं शीलमस्येति तथोक्तेन कादम्बर्याः कण्ठग्रहेण कण्ठाश्लेषेण चन्द्रापीडस्य सुदूरगतम् अतिदूरदेशं गतम् अपि जीवितं प्राणितं प्राणा इत्यर्थः पुनः सद्यः तत्कालं कण्ठस्थानं गल-प्रदेशं प्रत्यपद्यत प्राप। दिवसस्य दिनस्य यः क्लमः तापः तेन आमीलितम् संकुचितं शरदः ज्योत्स्नायाः चन्द्रिकायाः अभिपातात् पतनात् आ बन्धनात् वृन्तपर्यन्तम् उच्छ्वसितम् उल्लसितं कुमुदम् कैरवम् इवेत्युपमायाम् चन्द्रापीडस्य हृदयं कादम्बरीकृतकण्ठग्रहात् आबन्धनात् उच्छ्वसितं प्राणितम्, हृदयस्य तुलना कमलेन क्रियते, अतएव हृत्कमलमित्युच्यते, तस्य बन्धनं वृन्तम् आधारो भवति, समूलं हृदयम् उच्छ्वसितमिति भावः। कर्णयोः श्रोत्रयोः अन्तं प्रान्तं यावत् आयतं दीर्घं चक्षुः, अत्र जातावेक-

---

बार-बार उसासें भरकर, काँपती हुई, भय के कारण सभी अंगों में पसीज, शरीर में रोमाञ्चित हुई, अधर और मुख में सूखी जा रही, महाश्वेता देख न ले—इस डर के मारे चारों ओर बार-बार चकित दृष्टि डाले, बड़ी देर बाद पास आकर और बार-बार ठहरकर, भुतही-जैसी पराधीन हुई तीनों लोकों को उन्मत्त कर देने वाले भगवान् कामदेव द्वारा बलात् लज्जा के साथ-साथ स्त्री-स्वभावसुलभ भय छोड़ देने को विवश की हुई, अपने को किसी तरह न रोक सकती हुई, असमर्थ बनी, एकान्त पाकर एकदम उस (चन्द्रापीड) के पास आकर नयन-कमलों को कुछ मीचे हुए कसकर आलिंगन कर बैठी, जैसे कि वह जीता हो।

अमृत–सिञ्चन की तरह आनन्द देने वाले कादम्बरी के उस आलिंगन से चन्द्रापीड के दूर गए हुए भी प्राण तत्काल फिर गले में आ गए। उसका हृदय (कमल) वृन्त से लेकर इस तरह उच्छ्वसित हो उठा जैसे शरद की चाँदनी पड़ने से दिन के ताप के कारण बन्द हुआ

चक्षुः । अम्भोरुहविभ्रमेण चाजृम्भत वदनम् । एवं च सुप्तप्रतिबुद्ध इव प्रत्यापन्नसर्वाङ्गचेष्टश्चन्द्रापीडस्तथा कण्ठलग्नां कादम्बरीं चिरविरहदुर्बलाभ्यां दोर्भ्यां गाढतरं कण्ठे गृहीत्वा वाताहतां बालकदलीमिव भयोत्कम्पमानाङ्गयष्टिमुद्गाढतरामीलिताक्षीं वक्षस्येव प्रवेष्टुमीहमानां न मोक्तुं न ग्रहीतुमात्मना पारयन्तीं श्रोत्रहृदयग्राहिणानुभूतपूर्वेण स्वरेणानन्दयन्नवादीत् ।

'भीरु, परित्यज्यतां भयम् । प्रत्युज्जीवितोस्मि तवैवामुना कण्ठग्रहेण । त्वं खल्वमृतसंभवादप्सरसां कुलादुत्पन्ना । किं न स्मरसि तन्मे वचनमिदम् । तत्तेजोमयं वपुः

वचनम्, चक्षुषी इत्यर्थः उषसा प्रत्यूषेण अरुणोदयेनेति यावत् परामृष्टं स्पृष्टं यत् इन्दीवरस्य नीलकमलस्य मुकुलं कुड्मलं तस्य लीलया विलासेन उदमीलत् विकसितम्, उषःसम्पर्कविकसितकमलमुकुलवत् चन्द्रापीडस्य चक्षुरपि कादम्बर्याश्लेषसंपर्केण विकसितमिति भावः । अम्भोरुहस्य सरोजस्य विभ्रमेण लीलया च वदनं अजृम्भत विकासं गतम्, इन्दीवरमुकुलस्य लीला इन्दीवरमुकुले एव न तु चक्षुषि, एवम् अम्भोरुहस्य विभ्रमः अम्भोरुहे एव न तु वदने इत्यसंभवद्वस्तुसम्बन्धेनात्र इन्दीवरमुकुल-चक्षुषोः, अम्भोरुह-वदनयोश्च परस्पर-बिम्बप्रतिबिम्बभावे लीलया इव लीलया, विभ्रमेण इव विभ्रमेण इति सादृश्ये पर्यवसानात् उभयत्र निदर्शनालंकारः । एवं च आदौ सुप्तः निद्रितः पश्चात् प्रतिबुद्धः जागरित इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रत्यापन्ना पुनः प्राप्ता सर्वेषु अङ्गेषु चेष्टा व्यापारः येन तथाभूतः चन्द्रापीडः तथा तेन प्रकारेण कण्ठ-लग्नां कण्ठाश्लिष्टां कादम्बरीं चिरः चिरकालीनः यः विरहः वियोगः तेन दुर्बलाभ्यां कृशाभ्यां दोर्भ्यां भुजाभ्यां कण्ठे गले गाढतरं पूर्वापेक्षया अधिकगाढं यथा स्यात्तथा गृहीत्वा आदाय वातेन वायुना आहतां ताडिताम् बाला लघ्वी चासौ कदली रम्भा ताम् इवेत्युपमायाम् भयेन भीत्या कम्पमाना वेपमाना अङ्गं देहः यष्टिः इवेति लुप्तोपमा, यस्याः तथाभूताम्, उद्गाढतरम् अतिशयेन उद्गाढं यथा स्यात्तथा आमीलिते संकोचिते अक्षिणी चक्षुषी यया ताम्, वक्षसि भुजान्तरे प्रवेष्टुं प्रवेशं कर्तुम् ईहमानाम् अभिलषन्तीम् आत्मना स्वयं न मोक्तुम् त्यक्तुं (कण्ठग्रहम्) न ग्रहीतुं स्वीकर्तुम् अपारयन्तीम् अशक्नुवानाम् श्रोत्रं कर्णश्च हृदयं च तयोः समाहारः इति श्रोत्रहृदयं तत् गृह्णाति आकर्षतीत्येवंशीलेन पूर्वम् अनुभूतेन विदितेन स्वरेण कण्ठध्वनिना आनन्दयन् आनन्दं जनयन् अवादीत् अकथयत् ।

भीरु—अयि भीरु कातरे ! भयं भीतिः परित्यज्यताम् मुच्यताम् । तव अमुना एतेन कण्ठग्रहेण आलिङ्गनेन अहं प्रत्युज्जीवितः पुनर्जीवनं प्राप्तः अस्मि । त्वं खलु निश्चयेन अमृतात् पीयूषात् अप्सरसां कुलात् वंशात् उत्पन्ना जाता । किम् तत् पूर्वोक्तं मे इदं वचनं कथनं

पड़ा कुमुद । कानों तक लंबी उसकी आँखें अरुणोदय का स्पर्श प्राप्त किये इन्दीवर की कलियों की लीला अपनाकर विकसित हो उठीं । उसका चेहरा कमल की तरह खिल गया । इसी प्रकार सोकर जागा हुआ-जैसा सभी अंगों में क्रिया प्राप्त किये हुए चन्द्रापीड़ गले लगी कादम्बरी को देर से चले आ रहे विरह के कारण दुबली बनी अपनी दोनों भुजाओं से और अधिक कसके गले लगाकर, तूफान को मारी छोटी-सी कदली के समान भय के कारण अपनी छड़ छड़ी-सी गात में काँपती जा रही, आँखें बिलकुल बन्द किये, छाती के भीतर प्रविष्ट हो जाना चाहती हुई-जैसी, स्वयं (कण्ठग्रह को) न छोड़ सकती हुई और नहीं अपना सकती हुई उसे कान और हृदय को आकर्षित कर देने वाले पहले से जाने हुए स्वर द्वारा आनन्दित करता हुआ बोला—"ओ भीरु, भय को छोड़ दो । तुम्हारे इस कण्ठग्रह से मैं फिर जीवित हो उठा हूँ । तुम सचमुच अमृत से निकले हुए अप्सराओं के कुल में उत्पन्न हुई हो । तुम्हें मेरी कही यह बात याद नहीं कि 'वह तेजोमय

स्वत एवाविनाशि विशेषतोऽमुना कादम्बरीकरस्पर्शेनाप्यायितमिति। तदेतावन्त्येव दिनानि पाणिना ते स्पृश्यमानोऽपि न यत्प्रत्युज्जीवितोऽस्मि तच्छापदोषात्। अद्य तु स मे द्वितीयवारं त्वदर्थमेवानुभूतदुर्विषहमदनज्वरदाहवेदनापरमदुःखस्य व्यपगतः शापः। परित्यक्ता सा मया त्वद्विरहदुःखदायिनी मानुषी शूद्रकाख्या तनुः। एषापि च तवास्यां रुचिरुत्पन्नेति त्वत्प्रीत्या प्रतिपन्ना पालिता च। तदयं लोकश्चन्द्रलोकश्च ते द्वावप्यधुना चरणतलप्रतिबद्धौ। अपि च प्रियसख्या अपि ते महाश्वेतायाः प्रियतमो मयैव सह विगतशापः संजातः।' इत्यभिदधत्येव चन्द्रापीडशरीरान्तरितवपुषि चन्द्र-लोकावस्थानलग्नममृतपरिमलमेव केवलमधिकमुद्वहन्नङ्गैरनन्यतमस्तादृशेनैव वेषेण

[आकाशवाणीरूपेण] न स्मरसि यत् 'तव तेजोमयं ज्योतीरूपं वपुः शरीरं स्वतः आत्मना एव अविनाशि अविनश्वरं विशेषतः अमुना एतेन कादम्बर्याः करस्य हस्तस्य स्पर्शेन परामर्शेन आप्यायितम् पोषं प्राप्तम् अस्तीति शेषः। तत् तस्मात् एतावन्ति इयन्ति एव दिनानि दिवसान् [कालात्यन्तसंयोगे द्वि०] ते तव पाणिना करेण स्पृश्यमानः स्पर्शविषयीक्रियमाणः अपि न यत् प्रत्युज्जीवितः पुनर्जीवितः अस्मि तत् शापस्य पुण्डरीकदत्ताभिशापस्य दोषात् प्रभावादित्यर्थः। अद्य तु त्वदर्थं त्वन्निमित्तम् अनुभूतं भुक्तं दुर्विषहा अत्युकटेत्यर्थः मदनज्वरस्य कामज्वरस्य दाहः तापः तेन या वेदना पीडा तया परमम् अत्यन्तं दुःखं कष्टं येन तथाभूतस्य मे स शापः द्वितीयवारं व्यपगतः नष्टः। मया तव विरहस्य वियोगस्य दुःखं कष्टं ददातीत्येवंशीला सः शूद्रक आख्या नाम यस्याः तथाभूता मानुषी मनुष्ययोनिस्थिता तनुः शरीरं परित्यक्ता मुक्ता। अस्यां चन्द्रा-पीडाख्यायां तनौ तव एषा रुचिः प्रीतिः उत्पन्ना इति कारणात् तव प्रीत्या प्रेम्णा प्रतिपन्ना स्वीकृता पालिता संरक्षिता च। तत् तस्मात् अयं लोकः भूलोकः चन्द्रलोकश्च द्वौ अपि लोकौ अपि अधुना साम्प्रतं ते तव चरणयोः पादयोः तले नीचैः प्रतिबद्धौ लग्नौ त्वदायत्तौ इत्यर्थः। अपि च किंच ते तव प्रियसख्याः महाश्वेतायाः अपि प्रियतमः वल्लभः पुण्डरीकः इति यावत् मया एव सह विगतः समाप्तः शापो यस्य तथाभूतः संजातः संवृत्तः'। इत्यभि०—इति चन्द्रा-पीडस्य शरीरेण अन्तरितं व्यवहितं वपुः शरीरं यस्य तथाभूते चन्द्रमसि चन्द्रे अभिदधति कथयति सति एव चन्द्रलोके यत् अवस्थानं वासः तेन लग्नं संसक्तम् अमृतस्य पीयूषस्य परिमलं सौरभम् एव केवलम् अधिकम् अधिकम् उद्वहन् धारयन्, अङ्गैः शरीरावयवैः न अन्यतमः अनन्यतमः न अतिशयेन अन्यः अर्थात् अत्यन्तं भिन्नः तादृश एवेति यावत्, तादृशेन तथाविधेन एव वेषेण

शरीर स्वयं ही अविनाशी है विशेषतः कादम्बरी के इस स्पर्श से भी पुष्टि पा रहा है'। इसलिए इतने दिनों तक तुम्हारे हाथ का स्पर्श प्राप्त करता हुआ भी जो मैं फिर जीवित नहीं हो उठा, उसका कारण शाप-दोष था। किन्तु आज तुम्हारे हेतु ही असह्य काम ज्वर की वेदना से हुए महान् कष्ट को झेले हुए मेरे उस शाप की दूसरी बार समाप्ति हो गई है। तुम्हारे वियोग का दुःख देने वाली शूद्रक नाम की वह मानुष काया मैंने छोड़ दी है। इस (चन्द्रापीड-रूपी) काया में तुम्हारी यह प्रीति उत्पन्न हुई है, इसलिए तुम्हारी प्रीति के कारण मैंने यह अपनाया है और इसकी रक्षा की है। इसलिए यह मनुष्यलोक और चन्द्रलोक—दोनों ही तुम्हारे चरणतल के अधीन है। इसके अतिरिक्त तुम्हारी प्रिय सखी महाश्वेता का प्रियतम भी मेरे ही साथ शाप-मुक्त हो गया है"। चन्द्रापीड के शरीर के रूप में प्रच्छन्न शरीर वाले चन्द्रमा के यह कहते-कहते ही कपिञ्जल का हाथ पकड़े, गगनतल से नीचे उतरता हुआ पुण्डरीक दिखाई पड़ा, जो चन्द्रलोक में रहने के कारण अधिकतर अमृत का ही सौरभ रख रहा था, अङ्गों से और

यादृशेन महाश्वेतोत्कण्ठ्योपरतस्तथैव कण्ठेनैकावलीं धारयंस्तथैवाकल्पनिःसहैरङ्गैस्तथैवा-पाण्डुक्षामकपोलवाहिना मुखेनाम्बरतलादवतरन्नदृश्यत कपिञ्जलकरावलम्बी पुण्डरीकः।

दृष्ट्वा च तं दूरत एवोन्मुक्तचन्द्रापीडवक्षःस्थला कादम्बरी स्वयमेव धावित्वा दत्तकण्ठग्रहां महाश्वेतां पुण्डरीकागमनमहोत्सवेन यावन्न वर्धयत्येव तावदवतीर्य पुण्डरीकः परमोपकारिणे चन्द्रापीडवपुषे शशाङ्कायाढौकत। चन्द्रापीडस्तु तं कण्ठे गृहीत्वाब्रवीत्। 'सखे पुण्डरीक यद्यपि प्राग्जन्मसंबन्धाज्जामातासि तथाप्यनन्तरजन्माहितसुहृत्स्नेहसद्भावेनैव मया सह वर्तितव्यं भवता।' इत्येवं च वदत्येव चन्द्रापीडे चित्ररथहंसौ दिष्ट्या वर्धयितुं केयूरको हेमकूटमगमत्। मदलेखापि धावमाना निर्गत्य मृत्युञ्जयजप-

---

नेपथ्येन यादृशेन यथाविधेन महाश्वेतायाम् उत्कण्ठायाम् उत्सुकतायाम् उपरतः मृतः, तथा एव तेन एव प्रकारेण कण्ठेन गलेन एकावलीं मौक्तिकानाम् एकसूत्रं धारयन्, तथा एव आकल्पः नेपथ्यं प्रसाधनमिति यावत् (**आकल्प–वेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्'** इत्यमरः) तस्य निःसहैः तं सोढुमशक्तैः अङ्गैः अवयवैः तथा एव आपाण्डु किमपि पाण्डुवर्णौ क्षामौ कृशौ च कपोलौ गण्डस्थले वोढुं शीलमस्य इति तथोक्तेन मुखेन वदनेन उपलक्षितः (उपलक्षणे तृ०) अम्बर तलात् गगनपृष्ठात् अवतरन् नीचैः आगच्छन् कपिञ्जलस्य करम् अवलम्बते आश्रयतीत्येवंशीलः पुण्डरीकः अदृश्यत लोकदृष्टिपथमागच्छत्।

दृष्ट्वा—दूरतः दूरात् एव (अवतरन्तं) तं पुण्डरीकं दृष्ट्वा विलोक्य मुक्तं त्यक्तं चन्द्रापीडस्य वक्षःस्थलम् उरःस्थलं यया तथाभूता कादम्बरी स्वयम् आत्मना एव धावित्वा द्रुतं गत्वा दत्तः कण्ठग्रहः आलिंगनं यस्यै तथाभूतां महाश्वेतां पुण्डरीकस्य आगमनस्य यो महान् उत्सवः महः तेन यावत् तां न वर्धयति वर्धापनेन योजयति तावत् अवतीर्य अवतरणं कृत्वा पुण्डरीकः परमश्चासौ उपकारी उपकारकः तस्मै चन्द्रापीडस्य वपुः शरीरं यस्य तस्मै चन्द्रापीडरूपेणावतीर्णायेति यावत् शशाङ्काय चन्द्रमसे अढौकत उपागच्छत् (अत्र चतुर्थीस्थाने द्वितीयैवोचिता)। चन्द्रापीडः तु तं पुण्डरीकं कण्ठे गृहीत्वा आश्लिष्य अब्रवीत्—'सखे मित्र, पुण्डरीक, यद्यपि प्राग्जन्मनः पूर्वजन्मनः सम्बन्धात् त्वम् मम जामाता दुहितुः पतिः असि, महाश्वेता चन्द्रोत्पन्नाप्सरसां कुले जाता अतः सा कुलपरम्परया चन्द्रस्य दुहिता एव, तथापि अनन्तर-जन्मनि पश्चात्-कालीने चन्द्रापीडरूपेण ममावतरणे आहितः जनितः यः सुहृत्स्नेहः मित्र-स्नेहः तस्य सद्भावेन सद्भावनया मया सह भवता त्वया वर्तितव्यम् व्यवहारः कर्तव्यः वैशम्पायनरूपेण त्वं मम मित्रं जातः, अतः मित्रवत् व्यवहारः कर्तव्यः नतु जामातृवत् इति भावः' इति। चन्द्रापीडे एवं वदति कथयति सति एव चित्ररथः कादम्बर्याः पिता च हंसः महाश्वेतायाः पिता चेति तौ दिष्ट्या वर्धयितुं वर्धापनेन संयोजयितुं केयूरकः कादम्बर्याः भृत्यः हेमकूटम् अगमत् अगच्छत्।

ही तरह का नहीं था; वेश में भी वैसा ही था जिसमें महाश्वेता की उत्सुकता में प्राण त्यागे थे, गले में उसी प्रकार मोतियों की एक लड़ धारण कर रहा था, और जिसके उसी तरह वेष-भूषा न सह सकने वाले अंग तथा उसी तरह पीले और दुर्बल पड़े जाल थे।

उसे दूर से ही देखकर चन्द्रापीड़ के वक्ष को छोड़े, स्वयमेव दौड़कर महाश्वेता को गले लगाये, कादम्बरी पुण्डरीक के आगमन के महोत्सव की जब तक बधाई भी नहीं देने पाई थी कि इतने में नीचे उतर कर पुण्डरीक अपने परम उपकारी, चन्द्रापीड़ के रूप में शरीर धारण किये चन्द्रमा के पास आ पहुँचा। चन्द्रापीड़ आलिंगन करके उसे बोला—'मित्र पुण्डरीक ! यद्यपि पूर्व जन्म के सम्बन्ध से तुम मेरे दामाद हो, तथापि बाद के जन्म में हुए मित्र स्नेह के कारण तुम मेरे साथ वैसा (मित्र-जैसा) ही व्यवहार करना।' चन्द्रापीड़ के यह कहते-कहते ही चित्ररथ और हंस को बधाई देने हेतु केयरक हेमकूट चल दिया। मदलेखा भी दौड़ी-दौड़ी

व्यग्रस्य तारापीडस्य विलासवत्याश्च पादयोः पतित्वा 'देव देव्या सह दिष्ट्या वर्धसे, प्रत्युज्जीवितो युवराजः समं वैशम्पायनेन' इत्यानन्दनिर्भरमुच्चैर्जगाद। राजा तच्छ्रुत्वा तु शरीरसंस्कारविरहोद्गताविरलदीर्घपरुषपलितलोमशप्रकोष्ठाभ्यां दोर्भ्यां परिष्वज्य तां हर्षपरवशो विलासवतीं कण्ठेऽवलम्ब्य [1]जराभङ्गवलिपरिशिथिलितमूलेन बाहुनोत्क्षिप्तोत्तरीयांशुकाञ्चलः स्वयमेवाशिक्षितलयविसंष्ठुलैः पदैर्नृत्यन्निवोत्फुल्लवदननरपतिसहस्रपरिवृतोऽम्भोजाकर इति मलयमारुतप्रङ्खोलनाविवर्तितो मदलेखां क्वासौ क्वासाविति पुनः पुनः पृच्छन्पुनःपुनर्निर्विशेषहर्षवृत्तिं शुकनासं कण्ठे सम्भावयंस्तत्रैवागच्छत्। दृष्ट्वा च तथा पुण्डरीककण्ठे लग्नं चन्द्रापीडमानन्दनिर्भरः शुकनासमवादीत्। 'दिष्ट्या मया

मदलेखा कादम्बर्याः सखी धावमाना प्रद्रवन्ती निर्गत्य निष्क्रम्य मृत्युञ्जयस्य 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यात्मकस्य मृत्युञ्जयमंत्रस्येत्यर्थः जपे जापे व्यग्रस्य व्यापृतस्य तारापीडस्य विलासवत्याः च पादयोः पतित्वा नमस्कृत्येत्यर्थः 'देव महाराजा देव्या महिष्या विलासवत्या सह, दिष्ट्या सौभाग्येन वर्धसे उभयोः कृते वर्धापनम् इति यावत्, वैशम्पायनेन समं सह युवराजः चन्द्रापीडः प्रत्युज्जीवितः पुनर्जीवितः' इति आनन्देन हर्षेण निर्भरं पूर्णं यथा स्यात्तथा उच्चः तारं जगाद अवदत्। तत् श्रुत्वा आकर्ण्य राजा तारापीडः शरीरस्य संस्कारस्य क्षौरादिकर्मणः विरहेण अभावेन उद्गतानि प्रादुर्भूतानि अविरलानि घनानि च दीर्घाणि प्रलम्बानि च परुषाणि कठोराणि च पलितानि श्वेतानि च लोमानि रोमाणि सन्त्यनयोरिति लोमशौ प्रकोष्ठौ कफोणेः अधोवर्तिभागौ ययोः तथाभूताभ्यां दोर्भ्यां भुजाभ्यां तां मदलेखां परिष्वज्य आश्लिष्य हर्षस्य मोदस्य परवशः आयत्तः विलासवतीं कण्ठे अवलम्ब्य गृहीत्वा जरया वृद्धावस्थया यः भङ्गः त्वचः आकुञ्चः तेन याः वलयः चर्मरेखाः ताभिः परिशिथिलितम् अतिशैथिल्यमवाप्तं मूलम् अधोभागः यस्य तथाभूतेन बाहुना भुजेन उत्क्षिप्तम् उत्थापितम् उत्तरीयांशुकस्य उत्तरीयवसनस्य अञ्चलं प्रान्तः येन तथाभूतः स्वयम् एव अशिक्षितः शिक्षया न गृहीतः यो लयः गीतस्य कालक्रियासाम्यं तेन विसंष्ठुलैः अव्यवस्थितैः पदैः पाद-न्यासैः नृत्यन् नृत्यं कुर्वन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उत्फुल्लानि विकसितानि वदनानि मुखानि येषां तथाभूताः ये नरपतयः राजानः तेषां सहस्रैः परिवृत्तः परिगतः, मलयस्य मलयाचलस्य मारुतेन पवनेन या प्रेङ्खोलना इतस्ततः संचालनम् तया विवर्तितः संचलितः अम्भोजानां कमलानाम् आकरः वनम् इवेत्युपमायाम् 'क्व कुत्र असौ चन्द्रापीडः' इति पुनः पुनः मदलेखां पृच्छन् अनुयुञ्जन् निर्विशेषा स्वसमाना इत्यर्थः हर्षस्य मोदस्य वृत्तिः भावो यस्य तथाभूतं शुकनासं कण्ठे सम्भावयन् कण्ठग्रहणद्वारा सम्मानयन् इत्यर्थः तत्र एव यत्र पुनर्जीवितः चन्द्रापीड आसीत् अगच्छत् जगाम। चन्द्रापीडं तथा प्रकारेण पुण्डरीकस्य कण्ठे गले लग्नं कृताश्लेषम् दृष्ट्वा आनन्देन निर्भरः पूर्णः शुकनासम् अवादीत् अगदत्—'दिष्ट्या सौभाग्येन एकाकिना

जाकर मृत्युन्जय के जप में लगे तारापीड़ और विलासवती के चरणों में गिरकर बोली—'महाराज और महारानी जी को वधाई। वैशम्पायन के साथ-साथ युवराज फिर जीवित हो गये हैं।' यह सुनकर शरीर का संस्कार—बनाव-ठनाव—न होने के कारण उगे, घने, लंबे, कठोर और सफेद दोनों से भरे कोहनी के निचले भागों वाली भुजाओं से उसको गले लगाकर, हर्ष-वश विलासवती का आलिंगन करके, बुढ़ापे के कारण त्वचा के सिकुड़ने से पड़ी झुर्रियों से ढीलेढाले बने बाहु द्वारा चादर का आँचल ऊपर उठाये, लय की शिक्षा प्राप्त न करने के कारण अव्यवस्थित पगों से स्वयमेव नृत्य करते जाते हुए-जैसे, हजारों प्रफुल्लित हुए चेहरों वाले राजाओं से घिरे, मलयाचल की हवा द्वारा हिलाये जाने से डाँवाडोल बने कमलवन के समान राजा 'कहाँ है वह? कहाँ वह?' इस तरह बार-बार मदलेखा को पूछते हुये, वैसे-जैसे ही हर्ष-भरे शुकनास को आलिंगन द्वारा सम्मानित करते हुये वहीं चल दिये। पुण्डरीक को गले लगाये चन्द्रापीड़

१. 'जराभङ्ग······तारापीडोऽभ्यधात्' इत्येतन्नास्ति।

नैकाकिना तनयप्रत्युज्जीवनोत्सवसुखमनुभूतम्' इति। चन्द्रापीडस्तु तथा हर्षपरवशं पितरमालोक्य ससंभ्रमोन्मुक्तपुण्डरीकः पुरेव पृथ्वीतलनिवेशितशिराश्चरणयोरपतत्। अथ सत्वरोपसृतस्तं तथा प्रणतमुन्नमय्य तारापीडोऽभ्यधात्। 'पुत्र यद्यपि पिताहं तव शापदोषात्स्वपुण्यैर्वा सञ्जातस्तथापि जगद्वन्दनीयो लोकपालस्त्वम्। अपि च मय्यपि नमस्यो योंऽशः सोऽपि मया त्वय्येव संक्रामितः। तदुभयथापि त्वमेव नमस्कार्यः।' इत्यभिदधदेव समं राजपुत्रलोकसहस्रैः प्रतीपमस्य पादयोरपतत्। विलासवती तु तथा पित्रा प्रणते तस्मिन्परितोषेण वाङ्गेष्विवासम्मान्ती तं पुनः शिरसि पुनर्ललाटे पुनश्च कपोलयोश्चुम्बित्वा गाढतरं सुचिरमालिलिङ्ग। उन्मुक्तश्च मात्रोपसृत्य पुनः पुनः कृतनमस्कारः शुकनासं प्रणनाम। आशीःसहस्राभिवर्धितश्च तेनात्मनोपसृत्य यथानुक्रमं पित्रोः

अद्वितीयेन मया तनयस्य पुत्रस्य प्रत्युज्जीवनस्य पुनर्जीवनस्य यः उत्सवः महः तस्य सुखम् आनन्दः न अनुभूतम् अनुभवविषयीकृतम्' इति। चन्द्रापीडः तु तथा तेन प्रकारेण हर्षस्य परवशम् आयत्तं पितरं जनकम् आलोक्य दृष्ट्वा संभ्रमः त्वरा तेन सहितं यथा स्यात् तथा उन्मुक्तः त्यक्तः पुण्डरीकः येन तथाभूतः सन् पुरा इव पूर्ववत् पृथ्वीतले भूतले निवेशितं स्थापितं शिरः मूर्धा येन तथाभूतः सन् चरणयोः पादयोः अपतत्। अथ अनन्तरं सत्वरं शीघ्रम् उपगतः उपसृतः तारापीडः तथा प्रणतं प्रणिपतितं तं चन्द्रापीडम् उन्नमय्य उत्थाप्य अभ्यधात् अवोचत्। 'पुत्र, यद्यपि शापस्य दोषात् प्रभावादित्यर्थः अथवा स्वस्य आत्मनः पुण्यैः सुकृतैः अहं तव पिता जनकः संजातः संवृत्तः, तथापि त्वं जगतः लोकस्य वन्दनीयः वन्द्यः लोकपालः असि। अपि च मयि अपि नमस्यः नमस्कार्यः यः अंशः, अत्र जातौ एकवचनम्, तत्तदिन्द्रादिलोकपालानाम् अंशाः यथोक्तम् 'अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः', सः अंशोऽपि मया त्वयि एव संक्रामितः स्थानान्तरितः। तत् तस्मात् उभयथा द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम् अपि त्वम् एव मम नमस्कार्यः प्रणतियोग्यः असि'। इति अभिदधन् वदन् एव राजा राजपुत्रलोकानां राजन्यानां सहस्रैः समं सह प्रतीपम् विपरीतं यथा स्यात् तथा, पुत्रः पितृचरणयोः पतति, अत्र तु पिता पुत्रचरणयोः पततीत्येवात्र वैपरीत्यम्, अस्य चन्द्रापीडस्य पादयोः अपतत्। विलासवती तु तथा तेन प्रकारेण तस्मिन् चन्द्रापीडे पित्रा जनकेन प्रणते नमस्कृते सति परितोषेण हर्षेण अङ्गेषु अवयवेषु असमान्ती न मानं कुर्वाणा इवेत्युत्प्रेक्षायाम् तं चन्द्रापीडम् पुनः शिरसि मूर्धिन, पुनः ललाटे भाले, पुनश्च कपोलयोः गण्डस्थलयोः चुम्बित्वा चुम्बनं कृत्वा गाढतरम् अतिशयेन गाढं निबिडं यथा स्यात्तथा आलिलिङ्ग आश्लिष्टवती। मात्राजनन्या उन्मुक्तः त्यक्तश्च चन्द्रापीडः उपसृत्य उपगम्य पुनः पुनः वारं-वारं कृतः नमस्कारः नमनं येन तथाभूतः सन् शुकनासं प्रणनाम प्रणिपपात। तेन शुकनासेन आशिषाम् आशीर्वचनानां सहस्रैः अभिवर्धितः अभिनन्दितः आत्मना स्वयम् उपसृत्य उपगम्य

को देख आनन्द में फूले न समाते शुकनास को बोले—'सौभाग्य से मैंने अकेले ही पुत्र के पुनर्जीवन-महोत्सव का आनन्द नहीं लूटा'। चन्द्रापीड उस प्रकार हर्ष-भरे पिता को देखकर जल्दी-जल्दी पुण्डरीक को छोड, पहले की तरह भूतल पर सिर रखे चरणों में पड़ गये। तत्पश्चात् जल्दी-जल्दी पास आये हुये तारापीड उस तरह नीचे झुके पुत्र को उठा कर बोले—'बेटा यद्यपि शाप के दोष से अथवा मेरे अपने पुण्यों से मैं तुम्हारा पिता हो गया हूँ, तथापि तुम जगद्वन्द्य लोकपाल हो। इसके अतिरिक्त, मेरे भीतर भी जो (लोकपालों का) अंश है, वह भी मैंने तुम में ही स्थानान्तरित कर दिया है, इसलिये दोनों प्रकारों से तुम ही मेरे वन्द्य हो। यह कहते ही हजारों राजपुत्रों के साथ राजा उलटे उसी के चरणों में पड़ गये। पिता के उस प्रकार (पुत्र को) प्रणाम करने पर, हर्ष से अङ्गों में फूली न समाती हुई-जैसे विलासवती उसको शिर पर, फिर माथे पर और फिर कपोलों पर चूमकर खूब देर तक गाढालिंगन में जकड़े रही। माता द्वारा उन्मुक्त हुए, पास जाकर बार-बार नमस्कार किये उसने शुकनास को प्रणाम किया। उसके

शुकनासस्य मनोरमायाश्च 'एष वो वैशम्पायन' इति पुण्डरीकं विनयविलक्षावनम्रवदनमदर्शयत्।

तस्मिन्नेव च प्रस्तावे समुपसृत्य कपिञ्जलः शुकनासमवादीत्। 'एवं सन्दिष्टमार्यस्य भगवता श्वेतकेतुना। अयं खलु पुण्डरीकः संवर्धित एव केवलं मया। आत्मजः पुनस्तव। अस्यापि भवत्स्वेव लग्नः स्नेहः। तद्वैशम्पायन एवायमित्येवमवगत्याविनयेभ्यो निवारणीयः। परोयमिति कृत्वा नोपेक्षणीयः। यच्चापगतशापोऽप्यात्मसमीपं नानीतः तत्तवायमिति। अन्यच्चात्मानमस्मिन्नाचन्द्रकालीनायुषि स्थापयित्वा कृतार्थः। सम्प्रत्यस्माद्दिव्यलोकादप्युपरिष्टाद्गन्तुमुद्यतं मे सत्त्वाख्यं ज्योतिः' इति। शुकनासस्तु विनयावनतं पुण्डरीकं पाणिनांसेऽवलम्ब्य कपिञ्जलं प्रत्यवादीत्। 'कपिञ्जल, सकलजगदाशयज्ञेन

यथाक्रमं क्रमानुसारेण पित्रोः पुण्डरीकस्य माता पित्रोः शुकनासस्य मनोरमायाश्च 'एषः अयम् वः युष्माकं वैशम्पायनः। इति विनयेन नम्रभावेन विलक्षं विस्मितम् ['विलक्षो विस्मयान्विते इत्यमरः] अवनम्रं नतं च वदनं मुखं यस्य तथाभूतं पुण्डरीकम् अदर्शयत् दृष्टिपथम् आनयत्।

तस्मिन्—तस्मिन् एव प्रस्तावे प्रकरणे समये इत्यर्थः समुपसृत्य कपिञ्जलः शुकनासम् अवादीत् अब्रवीत्—'भगवता ऐश्वर्यशालिना श्वेतकेतुना आर्यस्य भवतः (सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी) सन्दिष्टं सन्देशः प्रहितः 'अयं खलु निश्चयेन पुण्डरीकः मया केवलं संवर्धितः पालित-पोषित एव। आत्मजः पुत्रः पुनः किन्तु तव एवास्ति। अस्य अपि स्नेहः प्रीतिः भवत्सु युष्मासु एव लग्नः सम्बद्धः। तत् तस्मात् अयं पुण्डरीकः वैशम्पायन एव इति अवगत्य बुध्वा अविनयेभ्यः धाष्ट्र्येभ्यः निवारणीयः रोद्धव्यः। अयम् परः अन्यदीयः इति कृत्वा कारणात् उपेक्षणीयः उपेक्षाविषयीकार्यः। यत् च अपगतः दूरीभूतः शापः यस्य तथाभूतः अपि आत्मनः स्वस्य समीपं निकटं न आनीतः प्रापितः तत् तव भवतः एव अयम् इति कारणात्। अन्यत् च अपि च चन्द्रस्य चन्द्रापीडस्य कालः जीवितकालः आयुरिति यावत् इति चन्द्रकालः आ मर्यादीकृत्य चन्द्रकालमिति आचन्द्रकालम् भवतीति आचन्द्रकालीनम् आयुः जीवन-कालो यस्य तथाभूते अस्मिन् वैशम्पायनाख्यपुण्डरीके आत्मानं स्वम् स्थापयित्वा संस्थाप्य 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इत्यनुसारेण यावत् चन्द्रापीडो जीवति तावत् मदात्मरूपेण पुण्डरीकोऽपि जीविष्यति इति कृत्वा कृतार्थः कृतकृत्योऽहं संवृत्तः। सम्प्रति अधुना अस्मात् दिव्यलोकात् सुरलोकात् अपि उपरिष्टात् उच्चैः गन्तुम् मे मम सत्त्वम् आख्या नाम यस्य तथाभूतं ज्योतिः आत्मज्योतिरित्यर्थः उद्यतम् उद्युक्तम् अस्ति' इति। शुकनासः तु विनयेन नम्रतया अवनतं विनतं पुण्डरीकं पाणिना करेण अंसे स्कन्धदेशे अवलम्ब्य गृहीत्वा कपिञ्जलं प्रत्यवादीत् प्रत्यब्रवीत्—'कपिञ्जल ! सकलस्य समस्तस्य जगतः जीवलोकस्य

द्वारा हजारों आशीषों से अभिनन्दित हुआ स्वयं आगे बढ़कर क्रमशः माता-पिताओं—शुकनास और मनोरमा—को 'यहाँ है आप लोगों का वैशम्पायन' यह कहके विनय से हैरान और मुँह नीचे किये हुए पुण्डरीकको दिखाया।

ठीक उसी समय पास आकर कपिञ्जल शुकनास को बोला--'भगवान् श्वेतकेतु ने आपको सन्देश दिया है कि इस पुण्डरीक को मैंने केवल पाला-पोसा ही है। किन्तु पुत्र तुम्हारा है। इसका भी आप लोगों से स्नेह बँध गया है। इसलिए 'यह वैशम्पायन ही है' यह समझकर इसे अविनय (के कामों) से रोकते रहना। 'यह दूसरा है' यह कहके उपेक्षा न कर बैठें। और शाप से मुक्त हुए भी इसे जो मैं अपने पास नहीं लाया उसका कारण यह है कि यह तुम्हारा ही है। इसके अतिरिक्त, चन्द्रापीड के आयुकाल तक के आयुकाल वाले इसमें अपनी आत्मा को प्रतिष्ठित करके मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। अब इस दिव्यलोक से भी ऊपर जाने हेतु मेरी सत्त्वनामक ज्योति तय्यार हुई बैठी है'। शुकनास विनय से अवनत हुए पुण्डरीक को हाथ से कन्धे पर पकड़कर कपिञ्जल को बोले—'कपिञ्जल ! सकल जगत के हृदयों के ज्ञाता होते हुए भगवान्

सता भगवता किमित्यादिष्टम्। सर्वथा स्नेहस्यायमसन्तोषः।' इत्येवंविधैश्च पूर्वजन्मवृत्तान्तानुस्मरणालापैः परस्परालोकनसुखोत्फुल्ललोचनानां सर्वेषामेव तेषामचेतितैव सा क्षणदा प्रभाता। प्रातरेव च सकलगन्धर्वलोकानुगतौ समं मदिरागौरीभ्यां चित्ररथहंसौ गन्धर्वराजावपि तत्रैवाजग्मतुः। आगतयोश्च तयोर्लज्जितात्मजोपगमसुदितहृदययोर्जामातृदर्शनसमुत्फुल्लवदनयोस्तारापीडशुकनासाभ्यां सहानुभूतसम्बन्धकोचितसंवादकथयोः सहस्रगुण इव महोत्सवः प्रावर्तत।

अथ प्रवर्तमान एव तस्मिंश्चित्ररथस्तारापीडमवादीत्। 'विद्यमाने स्वभवने किमर्थमयमरण्ये महोत्सवः क्रियते। यपि च यद्यप्यस्माकमयमेव परस्पराभिरुचिनिष्पन्नो

आशयं हृदयं जानाति वेत्तीति तथोक्तेन सता भगवता श्वेतकेतुना किमिति आदिष्टम् (यत् परोऽयमिति कृत्वा नोपेक्षणीयः) सर्वथा अयम् स्नेहस्य प्रेम्णः असन्तोषः धैर्याभावस्थानम्'। कालिदासानुसारम् 'अतिस्नेहः पापशङ्की' अर्थात् स्नेहातिशयः स्नेहपात्रविषये विविधापत्तीनां शङ्कां करोति। सुखितस्यापि दूरस्थस्नेहपात्रस्य विषये अतिस्नेहकारणात् माता-पित्रादयो विपत्तिमेवाशङ्कन्ते तस्मादेव भगवता एवं संदिष्टम् इति भावः। इति एवंविधैः एतादृशैः पूर्वजन्मनां वृत्तान्तानाम् उदन्तानाम् अनुस्मरणस्य पश्चात् स्मरणज्ञानस्य आलापैः वार्तालापैः परस्परस्य अन्योन्यस्य अवलोकनेन दर्शनेन यत् सुखम् आनन्दः तेन उन्फुल्ले विकसिते लोचने येषां तथाभूतानां तेषां सर्वेषाम् अपि अचेतिता अज्ञाता एव सा क्षणदा रात्रिः प्रभाता समाप्ता। प्रातः प्रभाते च सर्वे च ते गन्धर्वलोकाः गन्धर्वजनाः तैः अनुगतौ अनुसृतौ मदिरा कादम्बर्याः माता च गौरी महाश्वेतायाः माता च ताभ्यां समं सह चित्ररथः कादम्बर्याः पिता च हंसः महाश्वेताया पिता चेति गन्धर्वाणां राजानौ तत्र एव अच्छोदसरस्तटे एव आजग्मतुः आगतवन्तौ। आगतयोः आयातयोः च तयोः लज्जिते त्रपिते ये आत्मजे दुहितरौ तयोः उपगमेन उपसरणेन मुदितं प्रहृष्टं हृदयं ययोः तथाभूतौ, जामात्रोः दुहितृपत्योः दर्शनेन विलोकनेन समुत्फुल्लं विकसितं वदनं मुखं ययोः तथाभूतौ, तारापीडश्च शुकनासश्च ताभ्यां सह अनुभूतः अनुभवविषयीकृतः सम्बन्धकयोः सम्बन्धिनोः पुत्र-पुत्रीश्वसुरयोरित्यर्थः उचितः संवादकथा परस्परवार्तालापः याभ्यां तयोः सहस्रगुणः सहस्रेण गुणित श्वेत्युत्प्रेक्षायाम् महोत्सवः विवाहमहोत्सवः प्रावर्तत प्रारभत।

अथ—तस्मिन् महोत्सवे प्रवर्तमाने प्रारब्धे चित्ररथः कादम्बर्याः पिता तारापीडम् अवादीत् अवोचत्—'स्वभवने हेमकूटस्थराजभवने इत्यर्थः विद्यमाने सति (अपि) किमर्थं कस्मात् अरण्ये वने महोत्सवः क्रियते प्रवर्त्यते? अपि च किं च यद्यपि अस्माकं गन्धर्वाणाम् अयम् एव परस्परस्य अन्योन्यस्य वरस्य कन्यायाश्चेत्यर्थः या अभिलाषः अनुराग इति यावत् तया निष्पन्नं

(श्वेतकेतु) यह क्या आज्ञा दे बैठे। सर्वथा यह स्नेह की अधीरता है।' इस तरह के पूर्वजन्मों के वृत्तान्तों की स्मृति के वार्तालापों में एक दूसरे को देखने की प्रसन्नता से प्रफुल्लित लोचनों वाले उन सभी को पता भी न चला कि रात कब बीत गई। प्रातःकाल होते ही सभी गन्धर्व लोगों को अपने पीछे लिये गन्धर्वराज चित्ररथ और हंस मदिरा और गौरी समेत वहीं आ पहुँचे। आये हुए, लजाती हुई अपनी पुत्रियों के पास आने से हृदय में प्रसन्न तथा जामाताओं को देखकर चेहरे में प्रफुल्लित हुए, तारापीड़ और शुकनास के साथ सम्बन्धियों के योग्य बातें किये हजार-गुणा जैसा महोत्सव करने लगे।

बाद को उत्सव चल पड़ने पर, चित्ररथ तारापीड़ को बोले—'अपना घर होते हुए महोत्सव जंगल में क्यों किया जा रहा है? अपि च, यद्यपि हम लोगों का परस्पर प्रेम से हुआ

धर्म्यो विवाहस्तथापि लोकसंव्यवहारोनुवर्तनीय एव। तद्गम्यतां तावदस्मदीयमवस्थानम्। ततः स्वभूमिं चन्द्रलोकं वा गमिष्यथ।' तारापीडस्तु तं प्रत्यवादीत्। 'गन्धर्वराज यत्रैव निरतिशयं सम्पत्सुखं तदेव वनमपि भवनम्। तदीदृशं क्वापरत्र मया सम्पत्सुखं प्राप्तम्। अन्यच्च सम्प्रति सर्वगृहाण्येव मया जामातरि ते संक्रामितानि। तद्वयस्य बधूसमेतं तमेवादाय गम्यतां गृहसुखानुभवनाय' इति। चित्ररथस्तु तथाभिहितो "राजर्षे यथा ते रोचते" इत्युक्त्वा चन्द्रापीडमादाय हेमकूटमगात्। गत्वा च चित्ररथः कादम्बर्या सह समग्रमेव स्वं राज्यं चन्द्रापीडाय न्यवेदयत्। पुण्डरीकायापि समं महाश्वेतया निजपदं हंसः। तौ तु हृदयरुचितवधूलम्भमात्रकेणैव कृतार्थौ न किंचिदप्यपरं प्रत्यपद्येताम्।

जातः विवाहः प्रणय-विवाहः इत्यर्थः धर्म्यः धर्मात् अनपेतः धर्मानुकूलो भवतीति शेषः तथापि लोकस्य जगतः संव्यवहारः आचारः अनुवर्तनीयः अनुसर्तव्य एव भवति। तत् तस्मात् अस्मदीयम् अस्माकीनम् अवस्थानं स्थानं हेमकूट इत्यर्थः गम्यताम् प्रचल्यताम्। ततः तदनन्तरम् स्वभूमिम् उज्जयिनीम् अथवा चन्द्रलोकं गमिष्यथ प्रयास्यथ'। तु किन्तु तारापीडः तम् चित्ररथं प्रत्यवादीत् प्रत्यवोचत्—'गन्धर्वराज गन्धर्वाणां राजा तत्सम्बुद्धौ हे गन्धर्वाधिपते! यत्र यस्मिन् स्थाने एव निर्गतः अतिशयः यस्मात् तत् अत्यधिकमित्यर्थः सम्पत्-सुखम् सम्पदा कृतं सुखम् अथवा सम्पत् च सुखं च तयोः समाहारः भवतीति शेषः तत् स्थानम् एव वनम् अरण्यम् अपि भवनं गृहम् अस्ति। तत् तस्मात् ईदृशम् एतद्-विधं सम्पत्सुखं क कुत्र अपरत्र अपरस्मिन् स्थाने मया प्राप्तम्, पुत्रोऽपि जीवितः स्नुषापि लब्धेति भावः। अन्यत् च अपि च सम्प्रति इदानीं मया सर्वाणि गृहाणि भवनानि एव ते तव जामातरि चन्द्रापीडे संक्रामितानि समर्पितानीत्यर्थः। तत् तस्मात् हे वयस्य मित्र! वध्वाः पत्न्या समेतं सहितं तं चन्द्रापीडम् आदाय गृहीत्वा गृहस्य सुखस्य आनन्दस्य अनुभवनाय भोगाय गम्यताम् प्रयायतां त्वयेति शेषः'। तया तारापीडेन अभिहितः कथितः चित्ररथः तु—'हे राजर्षे राजा चासौ ऋषिश्च तत्सम्बुद्धौ यथा ते भवते रोचते स्वदते' इति उक्त्वा कथयित्वा चन्द्रापीडम् आदाय गृहीत्वा हेमकूटम् अगात् अगच्छत्। गत्वा च चित्ररथः कादम्बर्या सह समग्रं निखिलम् एव स्वं स्वकीयं राज्यं चन्द्रापीडाय न्यवेदयत् निवेदितवान् प्रस्तुतवान् इत्यर्थः। पुण्डरीकाय अपि हंसः महाश्वेतायाः पिता महाश्वेतया समं सह निजपदं राज्यपदम् न्यवेदयदित्यनुवर्तते। तु किन्तु तौ चन्द्रापीड-पुण्डरीकौ हृदयेन रुचिते अभिलषिते ये वध्वौ पत्न्यौ तयोः लम्भमात्रकेण प्राप्ति-मात्रेण एव कृतार्थौ कृत-कृत्यौ सन्तौ अपरम् अन्यत् न किञ्चित् अपि वस्तु प्रत्यपद्येताम् स्वीकृतवन्तौ।

विवाह धर्मानुकूल ही होता है, तथापि दुनिया का रीति-रिवाज करना ही पड़ता है। इसलिए हमारे स्थान में चलिए। बाद को अपने देश अथवा चन्द्रलोक चले जाएँ'। किन्तु तारापीड़ ने उत्तर दिया—'गन्धर्वराज! जहाँ अतिशय संपत्सुख मिले, वही वन होता हुआ भी घर ही है। इसलिए ऐसा सम्पत्सुख दूसरी जगह मुझे कहाँ मिला? दूसरी बात यह है कि अब मैंने सभी घरबार आपके दामाद को हस्तान्तरित कर दिये हैं। अतः वधू समेत उसे ही लेकर गृह-सुख अनुभव करने हेतु जाइये'। इस तरह कहने पर चित्ररथ 'राजर्षि! जैसा आपको अच्छा लगे' यह कहकर चन्द्रापीड़ को लेकर हेमकूट चल दिये। जाकर चित्ररथ ने अपना सारा राज्य कादम्बरी सहित चन्द्रापीड़ को देने का प्रस्ताव किया। हंस ने महाश्वेता सहित पुण्डरीक को भी अपना राजपद सँभालने का प्रस्ताव किया। किन्तु अपने हृदयकी रुचि के अनुसार पत्नी मात्र पा लेने से कृतकृत्य हुए उन दोनों ने अन्य कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया।

अन्यदा जन्माभिवाञ्छितहृदयवल्लभलाभमुदिता सर्वस्वजनमध्योपगमननिर्वृतापि कादम्बरी बाष्पोत्तरललोचना विषण्णमुखी वासभवनागतं चन्द्रापीडमूर्तिं चन्द्रमसमप्राक्षीत्। "आर्यपुत्र, सर्वे खलु वयं मृताः सन्तः प्रत्युज्जीविताः परस्परं संघटिताश्च। सा पुनर्वराकी पत्रलेखास्माकं मध्ये न दृश्यते। न विद्मः किं तस्याः केवलाया वृत्तम्" इति। चन्द्रापीडमूर्तिश्चन्द्रमाः तच्छ्रुत्वा प्रीतान्तरात्मा तां प्रत्यवादीत्। "प्रिये, कुतोत्र सा। सा हि खलु मद्दुःखदुःखिनी रोहिणी शप्तं मामुपश्रुत्य 'कथं त्वमेकाकी मर्त्यलोकनिवासदुःखमनुभवसि' इत्यभिधाय निवार्यमाणापि प्रथमतरमेव मच्चरणपरिचर्यायै मर्त्यलोके जन्माग्रहीत्। इतश्च धन्मान्तरं गच्छता मया तदुपरमसमसुन्मुक्तशरीरा पुनरपि मर्त्यलोकमवतरन्ती वलादावर्ज्यात्मलोकं विसर्जिता। तत्र पुनस्तां

अन्यदा—अन्यदा अन्यस्मिन् समये जन्मनि जीवने अभिवाञ्छितः अभीप्सितः यः हृदयस्य वल्लभः प्राणप्रियः तस्य लाभेन प्राप्त्या मुदिता प्रहृष्टा, सर्वे च ते स्वजनाः कुटुम्बिनः तेषां मध्ये उपगमनेन उपसरणेन अवस्थानेनेत्यर्थः निर्वृता सुखिता अपि कादम्बरी बाष्पेण उत्तरले चञ्चले लोचने नयने यस्याः तथाभूता विषण्णं विषाद-पूर्णं मुखम् आननं यस्याः तथाभूता सती वास-भवनं निवास-गृहम् आगतं चन्द्रापीडः मूर्तिः शरीरं यस्य तम् चन्द्रमसं चन्द्रम् अप्राक्षीत् पृष्टवती—'आर्यपुत्र नाथ! सर्वे खलु निश्चयेन वयं मृताः मरणप्राप्ताः सन्तः प्रत्युज्जीविताः पुनर्जीविताः परस्परम् अन्योन्यं संघटिताः सम्मिलिताः च। पुनः किन्तु वराकी तपस्विनी सा पत्रलेखा भवतः सेविका अस्माकं मध्ये न दृश्यते लोचनपथमायाति। वयं न विद्मः जानीमः केवलायाः एकाकिन्याः तस्याः पत्रलेखायाः किं वृत्तं जातम्' इति। चन्द्रापीडमूर्तिः चन्द्रमाः तत् कादम्बर्या वचनं श्रुत्वा आकर्ण्य प्रीतः प्रसन्नः अन्तरात्मा मनो यस्य तथाभूतः सन् तां कादम्बरीं प्रत्यवादीत् प्रत्यवोचत्—'प्रिये! सा पत्रलेखा अत्र अस्मिन् स्थाने कुतः कथं स्यात्। हि यतः सा खलु निश्चयेन मम दुःखेन कष्टेन दुःखम् अस्याः अस्तीति तथोक्ता रोहिणी एतदभिधेया मम पत्नी तारा माम् शप्तं पुण्डरीकेण शापविषयीकृतम् उपश्रुत्य आकर्ण्य 'कथं केन प्रकारेण त्वम् भवान् एकाकी एकलः मर्त्यलोके मनुष्यलोके निवासस्य निवसनस्य दुःखं कष्टम् अनुभवसि अनुभविष्यसि' इति अभिधाय कथयित्वा मया निवार्यमाणा निरुध्यमाना अपि प्रथमतरं मदपेक्षया पूर्वम् एव मम चरणयोः परिचर्यायै सेवायै मर्त्यलोके जन्म अग्रहीत् गृहीतवती। इतः अस्मात् स्थानात् च जन्मान्तरम् अन्यत् जन्म गच्छता भूलोके शूद्रकरूपेण जन्म गृह्णता मया तस्य चन्द्रपीडशरीरस्य उपरमेण मरणेन समं समकालमेवेत्यर्थः अच्छोदसरसि पतनात् उन्मुक्तं त्यक्तं शरीरं यया तथाभूता पुनः अपि द्वितीयवारं मत्सेवार्थं मर्त्यलोके अवतरन्ती जन्म गृह्णन्ती बलात् बलपूर्वकम् आवर्ज्य निवार्येत्यर्थः आत्मलोकं चन्द्रलोकमित्यर्थः विसर्जिता प्रेषिता। तत्र

दूसरे समय की बात है कि जीवन में वाञ्छित प्राणवल्लभ प्राप्त करने से प्रसन्न तथा अपने सभी कुटुम्बिजनों के मध्य रहने से निश्चित होती हुई भी आँखों में डबडबाई और मुख में विषाद-भरी कादम्बरी निवास-स्थान में आये हुए चन्द्रापीड़स्वरूप चन्द्रमा को पूछ बैठी—'आर्यपुत्र, हम सब मृत होते हुए भी पुनर्जीवित हो उठे हैं और परस्पर मिल गये हैं, लेकिन वह बेचारी पत्रलेखा हमारे बीच नहीं दिखाई पड़ रही है। पता नहीं कि अकेली उसका क्या हुआ।' चन्द्रापीड़-स्वरूप चन्द्रमा यह सुनकर हृदय में प्रसन्न हुए उसे बोले—'प्रिये, वह यहाँ क्यों होगी? क्योंकि वास्तव में वह तो मेरे दुख से दुखी रोहिणी थी, जो मुझे शाप दिये जाने की बात सुनकर 'आप अकेले मर्त्यलोक-निवास का दुख कैसे झेलेंगे' यह कहके मेरे रोकने पर भी मुझसे बहुत पहले ही मेरी चरण-सेवा हेतु मर्त्यलोक में जन्म ले चुकी थी। यहाँ से (शूद्रक-रूप में) दूसरा जन्म लेते हुए मैंने उस (चन्द्रापीड़ देह) के मृत हो जाने साथ-साथ ही अपना शरीर त्यागे वह फिर मर्त्यलोक में जन्म ले रही थी कि जबरन उसे रोककर अपने लोक में भेज

द्रक्ष्यसि" इति। कादम्बरी तु तच्छ्रुत्वा रोहिण्यास्तयोदारतया स्नेहलतया महानुभावतया पतिव्रततया पेशलतया च विस्मितहृदया परं लज्जिता न किंचिदपि वक्तुं शशाक।

अत्रान्तरे जन्मद्वयाकाङ्क्षितं [1]कालप्रभोश्चन्द्रमसः कादम्बरीसम्भोगसुखमिवोपपादयितुमपससार वासरः। अनुरागपताकेवोल्लसदपरसंध्यावधूत्रपावरणायेव वितस्तार वासतेयी। चन्द्रोदयाभिरामं च समग्रमेव जगदभवत्। एवं च भरेणावतीर्णायां रजन्यां चन्द्रापीडश्चिराभिलषितमुन्मीलितनयनकुवलयमुत्स्रस्तनीवीप्रसृतकरनिवारणानुबन्धमनुभूतप्रत्यालिङ्गनसुखमभिप्रार्थितसुरतपरिसमाप्तित्रपासुभगं कादम्बरीप्रथमसुरतसुख-

---

मम लोके तां पुनः त्वं द्रक्ष्यसि विलोकयिष्यसि' इति। तत् श्रुत्वा आकर्ण्य कादम्बरी रोहिण्याः तया उदारतया औदार्येण, स्नेहः प्रीतिः अस्याः अस्तीति स्नेहला तस्याः भावः तत्ता तया प्रीतिमत्तया, महानुभावतया महाप्रभावतया, पतिव्रतायाः भावः पतिव्रतता तया पातिव्रत्येनेत्यर्थः, पेशलतया कोमलहृदयतया च विस्मितं चकितं हृदयं यस्याः तथाभूता सती परम् अत्यन्तं यथा स्यात्तथा लज्जिता त्रपायुक्ता न किञ्चित् वक्तुं वदितुं शशाक पारयामास।

अत्रा०—अत्रान्तरे एतत्समयमध्ये जन्मनोः द्वयं युगं तस्मिन् आकाङ्क्षितम् वाञ्छितम् कालजनकः प्रभुः कालप्रभुः तस्य चन्द्रो हि उदयास्तमयनाभ्यां कालं निर्माति चन्द्रमसः चन्द्रस्य कादम्बर्याः संभोगः रमणं तस्य सुखम् आनन्दम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उपपादयितुम् उत्पादयितुम् वासरः दिवसः अपससार अपगतः। दिवसः समाप्तिमगादित्यर्थः। अनुरागः प्रेम एव अनुरागः लालिमा तस्य पताका वैजयन्ती इव उल्लसन्ती विभासमाना या अपरसन्ध्या पश्चिमसन्ध्या एव वधूः स्त्री तस्याः त्रपायाः लज्जायाः आवरणाय आच्छादनाय इव वासतेयी रात्रिः वितस्तार विस्तृता बभूव। अत्र श्लिष्टरूपकोत्प्रेक्षयोः संकरः। समग्रं समस्तम् एव जगत् चन्द्रस्य उदयेन आगमनेन अभिरामं रमणीयम् अभवत्। एवं च रजन्यां रात्रौ भरेण भारेण पूर्णतयेत्यर्थः अवतीर्णायां संजातायां सत्यां चन्द्रापीडः चिरात् अभिलषितं चिरकाङ्क्षितम्, उन्मीलिते विकसिते नेत्रे नयने कुवलये इन्दीवरे इवेति लुप्तोपमा, यस्मिन् तथाभूतम् उत्स्रस्तः शिथिलीभूतः नीव्यां कटिवस्त्रबन्धे ('स्त्रीकटीवस्त्रबन्धेऽपि नीवी परिपणेऽपि च' इत्यमरः) प्रसृतः गतः (चन्द्रापीडस्य) यः करः हस्तः तस्य निवारणस्य अपाकरणस्य अनुबन्धः सातत्यं यत्र तथाभूतम्, अनुभूतम् आस्वादितम् प्रत्यालिंगनस्य आलिंगनं प्रति आलिंगनस्य सुखं यत्र तत्, अभिप्रार्थितम् याचितम् यत् सुरतं सम्भोगः तस्य परिसमाप्तौ अवसाने या त्रपा लज्जा तया सुभगं रम्यम्

दिया था। तुम उसे फिर वहाँ देखोगी। यह सुनकर कादम्बरी रोहिणी की उस उदारता, स्नेहशीलता, महानुभावता, पति-परायणता, तथा हृदय की कोमलता से हृदय में आश्चर्य-चकित हुई अत्यन्त लज्जित हो कुछ भी न बोल सकी।

इसी बीच समय निर्माता चन्द्रमा को कादम्बरी के साथ दोनों जन्मों में वाञ्छित संभोगसुख देने हेतु मानो दिन समाप्त हो चला। अनुराग (प्रेम, लालिमा) की पताका जैसी रजनी दमक रही पश्चिम सन्ध्या-रूपी नायिका की लाज ढकने मानो फैल गई। सारा जगत् चन्द्रोदय से रमणीय उठा। इस तरह जब भरकर रात हो गई, तो चन्द्रापीड कादम्बरी के साथ प्रथम संभोग-सुख भोगकर–जिसकी चाह उसे चिरकाल से चली आ रही थी, जिसमें नयन-इन्दीवर बन्द नहीं हो रखे थे, साड़ी की गाँठ की ओर गए हाथ को रोके रखने का सिलसिला (स्वतः) ढीला पड़ गया था, आलिंगन-प्रत्यालिंगन सुख का स्वाद लिया जा रहा था

---

१. न—कालं प्रभोः; क—'कालप्रभोश्चन्द्रमसः' इति नास्ति।

मनुभूयैकदिवसमिव दशरात्रं स्थित्वा परितुष्टहृदयाभ्यां श्वशुराभ्यां विसर्जितः पितुः पादमूलमाजगाम।

आगत्य च समकालमेवानुभूतक्लेशं राजलोकमात्मसमं कृत्वा समारोपितराज्यभारः पुण्डरीके परित्यक्तसर्वस्वकार्ययोः पित्रोः पादावनुचरन् कदाचिदत्यद्भुतोत्फुल्लनयनैर्नैगमजनावलोकितो जन्मभूमिस्नेहादुज्जयिन्याम्, कदाचिद्गन्धर्वराजगौरवेणानुपमरमणीयतममहिम्नि हेमकूटे, कदाचिदमृतपरिमलाधिवाससुरभिशिशिरसर्वप्रदेशहारिणि रोहिणीबहुमानेन चन्द्रलोके, कदाचिदहर्निशोत्फुल्लसहस्रपत्रनिवहोदकवाहिनि पुण्डरीकप्रीत्या लक्ष्मीनिवाससरसि, कादम्बरीरुच्या च सर्वत्रैवापरेष्वपि रम्यतरेषु तेषु

कादम्बर्याः प्रथमस्य आद्यस्य सुरतस्य निधुवनस्य सुखम् आनन्दम् अनुभूय आस्वाद्य एकं दिवसम् दिनम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दश-रात्रं दशानां रात्रीणां समाहारः इति दशरात्रम् स्थित्वा अवस्थानं कृत्वा परितुष्टं प्रसन्नं हृदयं ययोः तथाभूताभ्याम् श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ ताभ्यां विसर्जितः गन्तुमाज्ञप्तः पितुः तारापीडस्य पादमूलं चरणसमीपम् आजगाम आगच्छत् चन्द्रापीडः।

आगत्य०—आगत्य च समः एकः कालः समयः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा युगपत् एव अनुभूताः भुक्ताः क्लेशाः कष्टानि येन तथाभूतं राजलोकं राजवर्गम् आत्मना स्वेन समं समानं कृत्वा पुण्डरीके समारोपितः न्यस्तः राजस्य भारः यः येन तथाभूतः चन्द्रापीडः परित्यक्तम् उज्झितं सर्वं निखिलं स्वं स्वीयं कार्यं याभ्यां तथाभूतयोः पित्रोः मातुः पितुश्च पादौ अनुचरन् सेवमानः कदाचित् अत्यद्भुतेन अत्याश्चर्येण ['विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यम्' इत्यमरः] चन्द्रापीडविषयकाद्भुतघटनयेत्यर्थः, उत्फुल्ले विकसिते नयने येषां तथाभूताः नैगमाः वणिजश्च ते जनाः तैः अवलोकितः दृष्टः, जन्मभमौ जन्मस्थाने स्नेहात् प्रीतेः कारणात् उज्जयिन्याम् नगर्याम्, कदाचित् गन्धर्वराजस्य चित्ररथस्य गौरवेण आदरेण अनुपमः अतुलितः रमणीयतमः अतिशयेन रमणीयश्च महिमा माहात्म्यं यस्य तथाभूते हेमकूटे हेमकूटपर्वते, कदाचित् रोहिण्याः बहुमानेन अत्यादरेण अमृतस्य पीयूषस्य यः परिमलं सुगन्धः तेन यः अधिवासं अधिवासनं सुगन्धितीकरणमिति यावत् तेन सुरभिः गन्धवान् शिशिरः शीतलश्च यः सर्वः समस्तः प्रदेशः स्थानम् तेन हरतीति तथोक्ते मनोहरे इत्यर्थः चन्द्रलोके, कदाचित् पुण्डरीकस्य प्रीत्या स्नेहेन अहर्निशम् अहोरात्रम् उत्फुल्लानि विकसितानि यानि सहस्रपत्राणि कमलानि तेषां निवहः राशिः यत्र तथाभतम् उदकं जलं वहति धारयतीत्येवंशीले लक्ष्म्याः श्रियः निवासस्य सरसि सरोवरे, लक्ष्मीः पद्मालयेत्युच्यते, कादम्बर्याः रुच्या स्पृहया सर्वत्रैव अपरेषु अन्येषु अपि रम्यतरेषु अतिशयेन रम्येषु तेषु तेषु स्थानेषु प्रदेशेषु तया कादम्बर्या सह जन्मनोः द्वयस्य द्वयोः जन्मनोः आकाङ्क्षया इच्छया एव अपरिसमाप्तानि अर्थात् द्वयोः जन्मनोः काङ्क्षितानि, किन्तु अद्यापि

और जिसे प्रार्थित संभोग की समाप्ति पर लाज से सुन्दर बना दिया था—एक ही दिन लग रही जैसी दस रातें (ससुराल में) रहकर प्रसन्न-हृदय श्वशुर और सास द्वारा विदा दिया जाता हुआ पिता के चरण-समीप आ गया।

और आकर, एक साथ ही दुख झेले हुए राजा लोगों को अपना-जैसा बनाकर पुण्डरीक के ऊपर राज्यभार सौंपे, अपने सभी (राज) कार्य छोड़े बैठे हुए माता-पिताओं की सेवा करता हुआ, कभी आश्चर्य में फटी-फटी आँखों वाले वणिग्-जनों के देखने में आया हुआ जन्मभूमि के स्नेह के कारण उज्जयिनी में, कभी गन्धर्वराज के प्रति आदरभाव से अनुपम और अत्यन्त रमणीय महिमाशाली हेमकूट पर, कभी रोहिणी के प्रति समान-भाव से अमृत के परिमल द्वारा सुगन्धित बने और ठंडे सभी प्रदेशों वाले चन्द्रलोक में, कभी पुण्डरीक के प्रति प्रीतिभाव से रातदिन खिले रहने वाले कमलसमूह से भरे जलप्रवाह वाले लक्ष्मी के निवास-

तेषु स्थानेषु तया सह जन्मद्वयाकाङ्क्षयैवापरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि च तानि तानि न केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह कादम्बरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु पुण्डरीकेण सह पुण्डरीकोपि चन्द्रमसा सह परस्परा वियोगेन सर्व एव सर्वकालं सुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन् ।

अपूर्णानि, अपुनरुक्तानि नित्यं नव-नवानीत्यर्थः च तानि तानि चन्द्रमाः चन्द्रापीड रूपः कादम्बर्या सह, कादम्बरी महाश्वेतया सह, महाश्वेता पुण्डरीकेण सह, पुण्डरीकोऽपि स्वमित्रेण चन्द्रमसा चन्द्रेण सह परस्परस्य अन्योन्यस्य अवियोगेन अविरहेण परस्परं सम्मिल्येत्यर्थः सर्वे एव सर्वकालं सर्वदैव सुखानि अनुभवन्तः भुञ्जानाः आनन्दस्य मोदस्य परां कोटिं पराकाष्ठाम् अध्यगच्छन् प्राप्नुवन् इति शम् ॥

स्थानभूत सरोवर में, कादम्बरी की इच्छानुसार अन्य उन सभी अतिरमणीय स्थानों में उसके साथ दोनों जन्मों में चाहे, (किन्तु) अपूर्ण हुए पड़े, नये-नये सुखों को हमेशा भोगते हुए न केवल चन्द्रमा कादम्बरी के साथ (बल्कि) कादम्बरी महाश्वेता के साथ, महाश्वेता पुण्डरीक के साथ, पुण्डरीक भी चन्द्रमा के साथ एक दूसरे से अनबिछुड़े सबके सब आनन्द की पराकाष्ठा को प्राप्त हो बैठे ॥

इति उत्तरप्रदेशे गढदेशस्य टिहरी-नगर्या वास्तव्येन सीतादेवी-गर्भसमुद्भवेन, पं० जयदेवपन्तात्मजेन, अम्बालास्थ दीवान कृष्णकिशोर सनातन धर्म-संस्कृतमह विद्यालयस्य सेवानिवृत्त-प्रधानाचार्येण, पं० मोहनदेव-पन्तेन प्रणीता कादम्बर्या उत्तरभागस्य 'छात्रतोषिणी' टीका हिन्दी-अनुवादश्च षट्सप्तत्युत्तरैकोनविंशे खीष्टाब्दे समाप्तिमगात् ।

परिशिष्टम्

श्रीभूषणभट्टस्य कतिपय-सुभाषितानि

१—अत्र तावदनेकभवसुकृतसहस्राधिगम्यं मानुष्यमेव दुर्लभम् ।

२—अमोच्यं तातचरणशुश्रूषासुखम् ।

३—आजन्मक्रमाहितो बलवाञ्जननीस्नेहः ।

४—किमस्ति कश्चिदसावियति लोके यस्य निर्विकारं यौवनमतिक्रान्तम् ?

५—केन कदा वावलोकितो ज्योत्स्नारहितश्चन्द्रः ?

६—गङ्गां प्रविश्य भुवि तन्मयतामुपेत्य स्फीताः समुद्रमितरा अपि यान्ति नद्यः ।

७—गुरवो हि दैवतं बालानाम् ।

८—जीवितफलं प्रियतमामुखावलोकनम् ।

९—तपसो हि सम्यक्-कृतस्य नास्त्यसाध्यं नाम किञ्चित् ।

१०—ददात्येव हृदयेऽवकाशमत्युदारता ।

११—न खलु वैदिकानामवैदिकानां वा कर्मणामसाध्यं नाम किञ्चित् ।

१२—न राजते एव सहकारकुसुममञ्जरीपरिग्रहमन्तरेण सर्वजनसुलभोऽपि कुसुममासः ।

१३—नवरागपल्लवोद्गमलीलान्तर्विशेषदुश्चरितचक्रवर्तिनि तारुण्यावतारे सर्वस्यैव विषमतर-विषयमार्गपतितस्य स्खलितमापतति ।

१४—परत्र फलदायी कुत्रोपयुज्यते परमार्थः ।

१५—परिणामेऽपि पुण्यवतां केषांचिदेव हि केशैः सह धवलिमानमापद्यन्ते चरितानि ।

१६—प्रमाथी मन्मथहतकः ।

१७—प्रसिद्धिरत्रायशसे यशसे वा दोषगुणाश्रया वा फलवती ।

१८—भृत्या अपि त एव ये सम्पत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते ।

१९—मृदुस्वभावमपि जलमिव मुक्ताफलतामुपगतं कठिनीभवत्युत्कण्ठितं हृदयमबलाजनस्य ।

२०—यथैवाशिषो गुरुजनवितीर्णा वरतामापद्यन्ते, तथैवाक्रोशाः शापताम् ।

२१—यस्यामेव वेलायां चित्तवृत्तिः सैव वेला सर्वकार्येषु ।

२२—यादृशाद्बै जायते तादृगेव भवति ।

२३—येषां च भक्ष्याभक्ष्यनियमोऽस्ति तेषामप्यापत्काले प्राणानां सन्धारणमभक्ष्योपयोगेनापि न्याय्यमिति ।

२४—यौवनावतारे हि शैशवेनैव सह गलति गुरुजनस्नेहः।

२५—विकाराणां च कारणं प्रायः सरसता।

२६--विधिर्नामापरः कोऽप्यत्रास्ते, यत् तस्मै रोचते तत्करोति।

२७—विलसति च कुसुममार्गणे केन कार्येण छिद्रसहस्राणि न भवन्ति यैः सत्त्वमेवाधस्ताद् व्रजति।

२८—सत्यमेव गरीयः खलु जीविताालम्बनमिदं विनोदश्च वियोगिनीनां यदुत संकल्पमयः प्रियः।

२९—सर्वोऽपि प्रत्याशया धार्यते।

३०--स्वप्नायमानानामपि यद् गुरूणां मुखेभ्यो निष्क्रामति शुभमशुभं वा शिशुषु तदवश्यं फलति।

हर्षचरित

मोहनदेव पन्त

ईसा की सातवीं शती के पूर्वार्ध में उत्तरी भारत में सार्वभौम नृपति हर्षवर्धन हुए जिनकी राजधानी स्थाण्वीश्वर (थानेसर) थी। प्रस्तुत कृति के रचयिता बाणभट्ट इन्हीं के आश्रय में रहे। इन्हीं का जीवन-चरित लिखकर बाणभट्ट ने धन-मान की प्राप्ति की। आठ उच्छ्वासों में यह ग्रंथ विभाजित है।

पहले तीन उच्छ्वासों में बाणभट्ट ने अपना जीवन-चरित दिया है। तीसरे उच्छ्वास के कुछ अंशों में हर्ष के पूर्वज पुष्पभूति का आख्यान है। चतुर्थ में राज्य-वर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री का चरित है। पंचम में राज्यवर्धन और हर्षवर्धन का उत्तर की ओर हूणों के विरुद्ध अभियान वर्णित है। षष्ठ में कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं हैं। सप्तम में विजय-अभियान तथा अन्तिम अष्टम उच्छ्वास में विन्ध्यसामन्त से भेंट, बौद्ध भिक्षु से मिलन और राज्यश्री को सती होने से रोकने का वर्णन है, जो तथ्य किसी अन्य स्रोत से उपलब्ध नहीं हैं।

प्रत्येक उच्छ्वास में मूलपाठ के साथ संस्कृत और हिन्दी टीका और पद-अन्वय भी हैं। सम्पूर्ण सजिल्द रु० १६५

दशकुमारचरित

विश्वनाथ झा

महाकवि दण्डी संस्कृत के मूर्धन्य गद्यकार माने जाते हैं। उनकी प्रस्तुत कृति में आनुप्रासिक पदविन्यास की छटा देखने योग्य है। ललित पदों की शृंखलाबद्ध संस्थापना की विलक्षण-कला से समस्त दशकुमारचरित ओत-प्रोत है। संस्कृत-संसार में "दण्डिनः पदलालित्यम्" अत्यन्त प्रसिद्ध उक्ति है। इस ग्रंथ की शैली सरल एवं प्रसादमयी है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह और यथास्थान मुहावरों का सन्निवेश है।

प्रत्येक उच्छ्वास में मूल पाठ के साथ संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद दे दिए गए हैं। कई स्थलों पर टिप्पणियां भी हैं। मूल्य : रु० २५

श्रीबाणभट्टप्रणीता

कादम्बरी (पूर्वार्द्धम्)

संस्कृत टीका **भानुचन्द्र-सिद्धचन्द्र गणि** : हिन्दी टीका **हरिश्चन्द्र विद्यालंकार**

सम्पादक : **मोहनदेव पन्त**

यह ग्रंथ संस्कृत के प्रख्यात गद्यलेखक बाणभट्ट की चूड़ान्त-रचना है। इसमें वर्णन-शैली प्रधान है और घटना गौण। यह रोमानी प्रेम-भाव से ओत-प्रोत है। कलाकार स्वतन्त्र होकर, पार्थिव बन्धनों से उन्मुक्त पाकर कल्पना की ऐसी उड़ानें भरता है कि पृथ्वीलोक से परे दिव्य-लोकों तक जा पहुंचता है, द्यौ-भू को एकाकार करके मानव को अति-मानव से मिला देता है और आत्मा के शारीरिक आवरण हटाकर दो-दो, तीन-तीन जन्मों के जगतों का वृत्तान्त हमारे मानस-पटल पर अङ्कित कर देता है। वाक्य लम्बे-लम्बे समास-बहुल, पौराणिक संकेतों से भरे, अलंकारों का तांता लिए हैं। कहानी व कला समृद्ध, सशक्त, परिपक्व और उर्वर रूप में निखरी है। (अजिल्द) रु० ५०; (सजिल्द) रु० ७०

मो ती ला ल ब ना र सी दा स

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास



Honours

Honorary D.Litt by National Sanskrit University, Tirupati AP. for his unique contribution in Indian Philosophy.

-Vachaspati

-Yoga Ratna

-Shastra nidhi

-Utkrisht Sanskrit Pandit

-Yajna Surabhi

-Shastri (Karavir Peeth)

-Shastra Ratnakara

Awards

- Sahitya Academy award

- Maharashtra govt sadhana award

- Pt. Satvalekar award

- Pt. Latkar shastri award

- Pt. Ghatate award

- Somnath Trust Award with Gold Medal and title of Best Scholar

- Sribhashyam national award

and many other.

Foreign Travel

The Netherlands, Canada for World Sanskrit Conference 2018.

Indian embassy, Nepal 2023

DVDs on yoga, Indian philosophy and Sanskrit Literature.

mspenna67@gmail.com

Digitization by eGangotri Trust/Sarayu Trust, New Delhi

Funding for Digitization: Shri Ravi Parimi, Hyderabad